कर्नल टॉड कृत

राजस्थान का इतिहास

कर्नल टॉड कृत

राजस्थान का इतिहास

कर्नल टॉड

लेखक
कर्नल जेम्स टॉड

अनुवादक
केशव ठाकुर

सम्पादक
लोकेश शर्मा

भाग
प्रथम

प्रकाशक
साहित्यागार
धामाणी मार्केट की गली,
चौड़ा रास्ता,
जयपुर

संस्करण
2008

मूल्य
सात सौ पचास रुपये मात्र

I.S.B.N.
81-7711-049-7

लेजर टाईपसैटिंग
साहित्यागार कम्प्यूटर्स

मुद्रक
शीतल ऑफसेट, जयपुर

राजस्थान का इतिहास

मेवाड़ का इतिहास

बीकानेर का इतिहास

प्रस्तावना

इस बात पर सभी लोग आम तौर पर विश्वास करते हैं कि भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है। लेकिन यह बात सही नहीं है। क्योंकि अबुल फजल ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक में हिन्दुओं के प्राचीन इतिहास का वर्णन किया है। यदि हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं था तो उसे वह सामग्री कहाँ से मिली। मिस्टर विलसन ने राजतरंगिणी नामक काश्मीर के इतिहास का अनुवाद करके लोगों के भ्रम को बहुत कुछ मिटाने का काम किया है। हिन्दुओं के इस प्रकार के ग्रन्थ इस बात का प्रमाण देते हैं कि इतिहास लिखने की परिपाटी से प्राचीन काल में हिन्दू अपरिचित न थे। खोजने के बाद इस बात का भी पता चलता है कि प्राचीनकाल में हिन्दुओं के पास आज की अपेक्षा ऐसी अधिक पुस्तकें थीं, जो प्राचीन काल के हिन्दुओं के इतिहास को संग्रह करने में मदद कर सकतीं थीं। कोलब्रुक, विलकिन्सन, विल्सन और दूसरे विद्वानों ने भारतवर्ष के ऐतिहासिक साहित्य को संसार के सामने लाने का बहुत कुछ काम किया है। फिर भी संसार का कोई भी विद्वान इस बात का दावा नहीं कर सकता कि वह भारत के ऐतिहासिक विज्ञान के दरवाजे तक पहुँचने के सिवा कुछ अधिक काम कर सकता है। भारत के अनेक भागों में विशाल पुस्तकालय जो मुसलमान आक्रमणकारियों के विध्वंस से बच गये हैं, अब तक मौजूद हैं और उनके हजारों ग्रन्थ आज भी देखने को मिलते हैं।

इतना सब होने पर भी, इस देश में ऐतिहासिक ग्रन्थों का यदि अभाव है तो उसका कारण है। यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन काल में हिन्दू एक सभ्य और शिक्षित जाति थी। उसने साहित्य, संगीत, शिल्प और अनेक दूसरी कलाओं में बड़ी योग्यता प्राप्त की थी। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि उसको अपनी ऐतिहासिक घटनाओं, राजाओं के व्यवहारों और राज्य शासन के कार्यों को लिखने का ज्ञान न रहा हो। महमूद गजनवी के आक्रमण से लेकर आठ सौ वर्षों तक भारत की अवस्था जिस प्रकार संकट में रही, जिस प्रकार इस देश के प्रमुख नगर निर्दयी आक्रमणकारियों के द्वारा लूटे गये और जिस प्रकार उनके साहित्य की होलियाँ जलायी गयीं, उन पर एक बार नजर डालने के बाद, हमारे सामने वे सब दृश्य अपने आप आकर उपस्थित हो जाते हैं, जब इस देश के राजा-महाराजा अपनी राजधानियों से भगाये जाते थे और, वे अरक्षित अवस्था में एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में जाकर साँस लेते थे। वे निर्जन वनों में जाकर अपने परिवारों और प्राणों की रक्षा करते थे, क्या यह समय ऐसा था, जब इस देश के लोग उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं को लिखने का काम कर सकते थे?

रोम और यूनान के ऐतिहासिक ग्रन्थों की तरह हिन्दुओं के ग्रन्थों की आशा करना एक बड़ी भूल है। हिन्दुओं के समस्त ग्रन्थ जीवन का ऐसा स्रोत प्रवाहित करते हैं, जो बाकी संसार के साहित्य से बिल्कुल भिन्न है। इस अवस्था में हिन्दुओं का इतिहास भी कुछ इसी प्रकार का होना चाहिये। हिन्दुओं का साहित्य और उनकी संस्कृति संसार के दूसरे देशों से भिन्न हैं। हिन्दुओं के दर्शन-शास्त्र, उनकी कविता तथा उनके अन्यान्य ग्रन्थ उनकी स्वतन्त्रता का परिचय देते हैं। यही मौलिकता और स्वतन्त्रता उनके इतिहास में भी अधिक सम्भव है। क्योंकि उनके इतिहास की रचना की सम्भावना किसी अन्य प्रेरणा के आधार पर नहीं की जा सकती। हिन्दुओं के ग्रन्थों में धर्म की घनिष्ठता अधिक है। इसके साथ ही हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि इंगलैंड और फ्राँस के साहित्य की गतिविधि जब तक योरोप के प्राचीन साहित्य की पुस्तकों के अध्ययन से ठीक नहीं की गयी थी, उस समय तक इन दोनों देशों का इतिहास ही नहीं बल्कि समस्त योरोप की सभ्य जातियों के इतिहास भी वैसे ही अव्यवस्थित और नीरस थे, जैसे कि प्राचीन राजपूत जाति के।

भारत में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव होने पर भी यहाँ बहुत से ऐसे ग्रन्थ पाये जाते हैं जिनके मंथन और संशोधन करने से इतिहास की सामग्री बहुत-कुछ एकत्रित की जा सकती है। इन ग्रन्थों में पुराण हैं जिनमें राजवंशों के वर्णन हैं, लेकिन कथाओं, रूपकों और बहुत-सी असम्भव बातों के साथ मिल जाने से वे वर्णन अस्पष्ट हो गये हैं। उनके मंथन का कार्य आसान नहीं है। भारत की ऐतिहासिक सामग्री के लिये उनके युद्ध सम्बन्धी काव्य भी, सहायता करते हैं। लेकिन कविता और इतिहास दो चीजें हैं। साहित्य में दोनों की शैली अलग-अलग है। राजा और कवि के बीच स्वार्थ का एक समझौता रहता है। उसके फलस्वरूप कवि प्रशंसा के पुरस्कार में धन प्राप्त करता है और उसके ऐसा करने से ऐतिहासिक तत्वों की ईमानदारी में अन्तर आ जाता है।

कवि का पक्षपात और विद्रोह दोनों ही इतिहास के लिए घातक हैं। वह अपनी दोनों अवस्थाओं में सत्य से दूर निकल जाता है। युद्ध सम्बन्धी काव्यों में इस प्रकार के दोष स्वाभाविक रूप से आते हैं। काव्य-ग्रन्थों में राजपूतों के इतिहास को इन दोषों से मुक्त नहीं समझा जा सकता। इसलिये ऐसे ग्रन्थों में मंथन और संशोधन की आवश्यकता अधिक है। इस प्रकार के दोषों के होने पर भी भारतीय भाटों की पुस्तकों से इतिहास की बहुत-सी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। मन्दिरों के दान, भेंट और उनके निर्माण सुधार के सम्बन्ध में जो लेख मिलते हैं, उसमें भी इतिहास की बहुत-सी चीजें मिलती हैं। इसी प्रकार की खोज करने से धार्मिक स्थानों और कथाओं में भी बहुत सी चीजें ऐसी पायी जाती हैं, जो इतिहास लिखने में सहायता करती हैं। जैनियों की धार्मिक पुस्तकों में कुछ ऐतिहासिक चीजें पायी जाती हैं। इस देश की धार्मिक पुस्तकों में

आडम्बर अधिक है। लेकिन एक चतुर अन्वेषक अपने गम्भीर मंथन से काम की सामग्री प्राप्त कर सकता है। इन ग्रन्थों में ब्राह्मणों ने अपनी प्रधानता जिस प्रकार समाज पर कायम कर रखी हैं, उसमें देशवासियों के अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं है। प्राचीन काल में मिश्र की भी यही अवस्था थी। इन दोनों में राजाओं और धार्मिक नेताओं के बीच एक ऐसा समझौता काम करता था, जिससे अप्रकट रूप में देश में सर्व-साधारण को अज्ञान के अंधकार में रखकर सदा अधीनता में रखा जा सके।

भारतवर्ष में युद्ध सम्बन्धी जो काव्य ग्रन्थ हैं, वे इस देश के इतिहास की सामग्री देने में सहायता करते है। कवि मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहासकार माने जाते हैं। साहित्य में इतिहास का एक अलग स्थान बनने के समय तक कवि सही घटनाओं को लिखने का काम करते रहे। भारतवर्ष में व्यास के समय से लेकर मेवाड़ के प्रसिद्ध इतिहास लेखक बेनीदास के समय तक सरस्वती देवी की पूजा होती रही। पश्चिमी भारत में अन्य लेखकों के साथ-साथ कवि इतिहास के प्रधान लेखक रहे हैं। लेकिन उनकी कविता की भाषा अजीब होती है और जब तक उनकी कविताओं का अर्थ न किया जाये अथवा कोई उनका अर्थ करने वाला न हो तो वे कवितायें समझ में नहीं आती। उन कवियों में एक बात और भी है। उनमें अतिशयोक्ति अधिक रहती है और उनकी इस अतिशयोक्ति से इतिहास का सही अंश नष्ट हो जाता है। इस दशा में प्राचीन काल में जिन कवियों ने ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अपने काव्यों में किया है, उनके ग्रन्थों से ऐतिहासिक सामग्री लेने का कार्य बड़ी सावधानी का होता है। अगर ऐसा न किया गया तो इतिहास, इतिहास न होकर कविताओं और कहानियों के रूप में रह जाता है।

प्राचीन काल में कवियों ने इतिहासकारों के स्थान की पूर्ति की थी। परन्तु उनमें कुछ त्रुटियाँ थीं। वे त्रुटियाँ अतिशयोक्ति तक ही सीमित न थी। उनमें खुशामद की मनोवृत्ति भी थी और कवि की प्रसन्नता एवम् अप्रसन्नता—दोनों ही इतिहास के लिए जरूरी नहीं है। इतिहासकार मित्र और शत्रु—दोनों के लिये एक-सा रहता है और अपने इस कार्य में वह जितना ही ईमानदार रहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ इतिहासकार होता है। खुशामद से इतिहास की मर्यादा नष्ट हो जाती है ओर वही परिस्थिति उसकी अप्रसन्नता में पैदा होती है।

प्राचीन काल में राजा और नरेश अपनी प्रशंसा चाहते थे और इसके लिये वे कवियों को अपनी सम्पत्ति से खुश करते थे। कवि को भी अधिकांश अवसरों पर सम्पत्ति के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ता था। यह मनोवृत्ति कवि और इतिहासकार के लिये अत्यन्त भयानक है। यद्यपि इस प्रकार का अपराध प्राचीन काल के सभी कवियों को नहीं लगाया जा सकता। उस समय के अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में इतिहास की सही घटनाओं का उल्लेख

किया है। लेकिन पक्षपात अधिक देखने को मिलता है। इसके अपराधी इस देश के कवि ही नहीं माने जा सकते। दूसरे देशों में भी इतिहास के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार के पक्षपात देखने को मिलते हैं। यहाँ पर इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

ऐतिहासिक सामग्री के लिये इस देश में दूसरे साधन भी हैं। भौगोलिक वृत्तान्त, काव्यमय राजाओं के चरित्र, घटनाओं को लेकर लिखे गये लेख, विभिन्न प्रकार की धार्मिक पुस्तकें भी इस कार्य में सहायता करती हैं। ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ, स्मृति पुराण, टिप्पणियाँ, जन श्रुतियाँ, शिलालेख, सिक्के और ताम्रपत्र जिनमें बहुत सी ऐतिहासिक बातों के उल्लेख मिलते हैं—इस कार्य में सहायक साबित होते हैं। परन्तु इस प्रकार के सभी साधन इतिहास के अन्वेषक से बहुत सावधानी चाहते हैं। इस बात को कभी न भूलना चाहिये कि आज का इतिहास, साहित्य में अपना अलग से स्थान रखता है।

भारतवर्ष में पैर रखते ही मैंने इस बात का निर्णय कर लिया था कि एक ऐसी जाति के सम्बन्ध में, जिसका ज्ञान योरोप के लोगों को बिल्कुल नहीं के बराबर है, मैं ऐतिहासिक खोज का काम अवश्य करूँगा। अपने इस निर्णय के अनुसार यहाँ आते ही मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया था। पूरे दस वर्षों तक एक जैन विद्वान की सहायता लेकर उन पुस्तकों की सामग्री लेने का काम करता रहा, जिनमें राजपूतों के इतिहास की कोई भी घटना मिल सकती थी। यह कार्य साधारण न था और उसके लिये अधिक से अधिक परिश्रम की आवश्यकता थी। इस कार्य और परिश्रम में मुझे सुख मिलता था। लेकिन मेरे स्वास्थ्य ने अधिक साथ न दिया और मेरी रूग्णावस्था ने इस देश से लौट जाने के लिये मुझे मजबूर किया।

यदि यह स्वीकार करना पड़े कि कवियों ने अपने वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लिया है तो उसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उस राजपूत जाति का वैभव निश्चित रूप से तरक्की पर रहा होगा। अनेक शताब्दियों तक एक वीर जाति का अपनी स्वतन्त्रता के लिये लगातार युद्ध करते रहना, अपने पूर्वजों के सिद्धान्तों को रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करना और अपनी मान-मर्यादा के लिये बलिदान हो जाने की भावना रखना, मनुष्य के जीवन की ऐसी अवस्था है, जिसको देखकर और सुनकर शरीर रोमांचित हो जाता है। इस देश के ऐतिहासिक स्थानों में पहुँचकर जो कुछ मैंने सुना और समझा है, यदि उसका सही-सही चित्र खींच कर मैं अपने पाठकों के सामने रख सकूँ तो मुझे विश्वास है कि मैं अपने देश वालों की उदासीनता को दूर कर सकूँगा, जिसके कारण वे देश के इतिहास को जानने और खोजने की चेष्टा नहीं करते।

इस देश के प्राचीन नगरों के खंडहरों के बीच में बैठकर मैंने उनके विध्वन्स होने की कहानियाँ ध्यान देकर सुनी हैं और उनकी रक्षा करने के लिये

इस देश के जिन राजपूत वीरों ने अपनी जीवन की आहुतियाँ दी हैं, उनको सुनकर मैं अवाक रह गया हूँ। इस देश के इतिहास को समझने के लिये मैंने यहाँ के उन स्थानों को स्वयं जाकर देखा है, जहाँ पर युद्ध हुये हैं अथवा किसी विदेशी शत्रु ने यहाँ पर आक्रमण किया है। घटनास्थलों को देखकर और उस समय की बहुत-सी बातों को सुनकर भी मैंने इतिहास की सामग्री जुटाने का काम किया है।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए मैंने इस बात को स्वीकार किया है कि राजस्थान और योरोप की वीर जातियों का जन्म-स्थल एक ही था। मैंने भारत में जागीरदारी की प्रथा ठीक वैसे ही पायी है, जैसी कि प्राचीन योरोप में प्रचलित थी और उसके टूटे-फूटे अंश आज भी हमारे देश के राज्य शासन में पाये जाते हैं। अपने जीवन में मैंने जो ऐतिहासिक खोज की है, वह मुझे इस सत्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य करती है। लेकिन सभी लोग मेरी इस विचारधारा के साथ सहमत न होंगे, यह भी मैं जानता हूँ। यद्यपि इसको स्वीकार करने में मैंने पक्षपात अथवा हठधर्मी से काम नहीं लिया। अब पुराना संसार बदल चुका है और नया संसार ऐतिहासिक खोजों पर अधिक विश्वास करने लगा है। अब अधिक समय तक उसे अन्धकार में नहीं रखा जा सकता। जो लोग इतिहास की उस सच्चाई पर विश्वास नहीं करना चाहते, उनके समझने के लिए मैंने बहुत सी बातें प्रमाण-स्वरूप इस पुस्तक में लिखी है। सन्देह और विवाद की बहुत-सी बातें पैदा की जा सकती हैं। लेकिन नवीन खोजों पर विश्वास करने वाले, निश्चित रूप से इन बातों को महत्त्व देंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। ऐसा करने पर ही पाठक-ग्रन्थकार के अनुसन्धान और परिश्रम की प्रशंसा करेंगे।

इस इतिहास में अनेक कमजोरियाँ और त्रुटियाँ है, उन्हें मैं जानता हूँ। उनके लिए मैं सर्व साधारण से क्षमा माँगता हूँ। इन त्रुटियों के लिये मैं और कोई बात नहीं कहना चाहता, सिवा इसके कि मेरा स्वास्थ्य अधिक समय तक काम न कर सका, जैसा कि मैंने पहले भी लिखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान अवस्था में भी इस पुस्तक का सर्वसाधारण के सामने लाने का कार्य मेरे लिये बहुत कुछ कठिन और असाध्य हो गया था। मैं यह साफ बताना चाहता हूँ कि मैं इस इतिहास को ऐसे साँचे में नहीं ढालना चाहता था कि जिससे उसकी बहुत सी काम की बातें पाठकों के निकट अप्रकट रूप में रह जायें। मैं इस ऐतिहासिक ग्रन्थ को परिपूर्ण नहीं समझता। इसलिए भविष्य में जो विद्वान इस इतिहास को लिखने का काम करेंगे, मैं उनको अपने इस इतिहास की सामग्री भेंट करता हूँ। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि पुस्तक बहुत बढ़ गयी है बल्कि चिन्ता यह है कि उसकी कोई उपयोगी सामग्री एकत्रित करने में रह तो नहीं गयी।

—जेम्स टॉड

टॉड साहब का जीवन-चरित्र

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल तक प्रसिद्ध राजपूत जाति एवम् राजपूताने का इतिहास जानने के लिये कुछ भी योग्य साधन न थे। राजपूत जाति के परम हितैषी कर्नल जेम्स टॉड ने जब से राजपूताने में अपना कदम रखा, तब से ही उनके चित्त में राजपूत जाति के इतिहास के अभाव को दूर करने का विचार उत्पन्न हुआ, जिसे पच्चीस वर्षों के सतत् परिश्रम से उन्होंने पूर्ण कर राजपूतों की कीर्ति के जय-स्तम्भ रूप में राजस्थान के इतिहास को प्रकट किया। उन्होंने अपना यह अपूर्व ग्रन्थ ऐसे समय में लिखा था, जबकि कुछ भी सामग्री क़हीं से तैयार मिलने की सम्भावना ही नहीं थी। टॉड साहब की इस पुस्तक में कई स्थानों पर परिवर्तन करने की आवश्यकता अवश्य रही। फिर भी उनका यह ग्रन्थ अब तक राजपूत जाति तथा राजपूताना के लिये प्रमाण स्वरूप माना जाता है।

कर्नल जेम्स टॉड, स्काटलैण्ड के निवासी मिस्टर जेम्स टॉड के दूसरे पुत्र और हेनरी टॉड के पौत्र थे। उनका जन्म 20 मार्च 1782 ईसवीं को इस्लिंगटन नामक स्थान में हुआ था। टॉड साहब के मामा मिस्टर पेट्रिक हेटली ने, जो बंगाल के सिविलियन थे, उनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिक उम्मीदवारों में भरती करा दिया था और वे सत्रह वर्ष की अवस्था में बंगाल भेज दिये गये थे। उसके बाद उनकी बदली मुहिम में जाने वाली जल-सेना में हो गयी थी। उस मौके पर कुछ समय तक उनको एक जहाज की जल सेना में काम करना पड़ा था। उसके बाद कलकत्ता, हरिद्वार होते हुए उनका तबादला देहली के लिये हो गया था।

इंजीनियरिंग के काम में कुशल होने के कारण सन् 1801 ईसवी में देहली के पास पुरानी नहर की पैमाइश करने का काम उनको सौंप दिया गया। इसके बाद वे मिस्टर मर्सर के साथ रहने वाली अँग्रेजी सेना के एक अधिकारी बना दिये गये। उस समय तक यूरोपियन विद्वानों को राजपूताना और उसके आस-पास के प्रदेशों का भूगोल सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही कम था और उनके बनाये हुए नक्शों में प्रमुख स्थानों के स्थान भी सही न थे। मिस्टर रेनल ने उन भूलों के संशोधन का कुछ काम किया था, परन्तु वे नक्शे सही न बन पाये थे। टॉड साहव पैमाइश का काम करते हुए 1806 ईसवी के जून महीने में एक अँग्रेजी राजदूत के साथ उदयपुर पहुँच गये। इसी समय उनके मन में यह भाव पैदा हुआ कि राजपूताना और उसके आस-पास के प्रदेशों का एक उत्तम नक्शा

तैयार किया जाये। इसी विचार से उनको जहाँ कहीं राजपूताना में जाने का अवसर मिला, वे अपना बहुत-सा समय इसी काम में खर्च करने लगे और उन प्रदेशों के इतिहास, जनश्रुति और शिलालेखों का भी वे यथासाध्य संग्रह करते जाते थे। इस इतिहास की सामग्री के संग्रह का कार्य यहीं से आरम्भ हुआ।

थोड़े ही अरसे में टॉड साहब ने इन विस्तृत प्रदेशों के इतने नक्शे तैयार किये कि उनकी ग्यारह जिल्दें बन गयीं। उस समय राजपूताना में मराठों का जोर बढ़ा हुआ था और यहाँ के रईसों तथा सरदारों में भी परस्पर फूट फैली हुई थी। मराठों के आतंक और सरदारों की फूट के कारण देश की दुर्दशा हो रही थी। होलकर और सींधिया की लूट से मुल्क वीरान हो रहा था। टॉड साहब ने यह देखकर मुल्क की रक्षा करने का संकल्प लिया। सन् 1801 से 1813 ईसवी तक लार्ड मिन्टो हिन्दुस्तान के गवर्नर-जनरल रहे। उन्होंने देशी रियासतों के मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। फलस्वरूप राजपूताना लुटेरों का घर बन गया। टॉड के दिल में राजपूताना की अशान्ति मिटाने की प्रबल इच्छा थी। इसलिए अपनी सरकार की आज्ञा लेकर वे एक अँग्रेजी सेना के अधिकारी बन गये और अनेक लड़ाइयों में उन्होंने अत्याचार करने वाली देशी रियासतों की फौजों को पराजित किया। पिन्डारियों और मराठों के उपद्रव मिटाने पर सरकार ने राजपूताना के राज्यों के साथ सन्धि करना आरम्भ किया और टॉड साहब को कई देशों की रियासतों का पोलिटिकल एजेण्ट बना दिया।

सन् 1819 ईसवी के अक्टूबर महीने में टॉड साहव जोधपुर को रवाना हुए और नाथद्वारा, कुम्भलगढ़, घाणेराव, नाडोल होते हुए वहाँ पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने दो शिलालेखों की खोज की और ताम्रपत्रों, हस्तलिखित पुस्तकों तथा सिक्कों को प्राप्त किया। इसी प्रकार का कार्य पुष्कर और अजमेर में भी उनका हुआ। इन्हीं दिनों में टॉड साहब तिल्ली के बढ़ जाने से बीमार पड़े। लेकिन इस इतिहास की सामग्री जुटाने का काम बराबर करते रहे। एक दिन जब उनकी तिल्ली में साठ जोंकें लगी हुई खून पी रही थीं, उस समय भी वे चारपाई पर लेटे हुए ब्राह्मणों और पटेलों से बातें करते हुए प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं को सुनकर लिखने का काम करते रहे। सरकारी काम करते हुए टॉड साहव उस खोज में बरावर लगे रहे, जो इस इतिहास के लिए जरूरी थी। स्थान-स्थान पर उनको शिलालेख, सिक्के और इस प्रकार की दूसरी चीजें मिलीं, जो राजस्थान का इतिहास लिखने के लिये बहुत काम की साबित हुईं। उन्होंने गुफाओं और खण्डहरों के भीतर जाकर बहुत कुछ खोज की और चट्टानों पर खुदे हुए लेखों को प्राप्त किया।

टॉड साहब को स्वदेश छोड़े हुए बाईस वर्ष बीत चुके थे। अपने सौजन्य के कारण वे इस देश में सबके प्रिय बन गये थे। राजपूताना में पहुँचकर उन्होंने सबसे पहले वहाँ के भूगोल और नक्शों के काम को पूरा किया और उसके बाद

वे राजस्थान के इतिहास की सामग्री जुटाने में लग गये थे। उनको क्षत्रीत्व से प्रेम था और इस देश के राजपूतों की वीरता को सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए थे। राजपूताना के बहुत-से भागों में पहुँचकर उन्होंने इस प्रदेश के पुराने इतिहास की सामग्री एकत्रित की। वे जहाँ कहीं पहुँचते, बड़े, बूढ़ों और जानकारों के साथ बैठकर बातें करते और जो काम की बातें मालूम होतीं, उन्हें वे उसी समय लिख लेते। प्राचीन सिक्कों, शिलालेखों और इस प्रकार की दूसरी सामग्री को खोजने तथा एकत्रित करने के लिए उन्होंने बहुत-से बड़े-बड़े नगरों में अपने एजेन्ट नियुक्त किये थे, जो ग्रीक, शक और दूसरे प्राचीन राजवंशियों के सिक्के एकत्र कर उनके पास पहुँचाया करते थे। जैन मन्दिरों, राजाओं और प्रतिष्ठित पण्डितों की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह वे बड़ी रुचि से देखते और उनकी उपयोगी सामग्री लेने का काम करते थे। महाराणा भीमसिंह ने इतिहास सम्बन्धी सामग्री एकत्र करने में टॉड साहब को बड़ी सहायता दी। उन्हीं के द्वारा पुराणों, महाभारत, रामायण, पृथ्वीराज रासो आदि अनेक पुस्तकों की सामग्री टॉड साहब को प्राप्त हुई थी। राजपूताना के राजवंशियों की ख्याति, पृथ्वीराज रासो, खुम्भाण रासो, हम्मीर रासो, रतन रासो, विजय विलास, सूर्य प्रकाश, जगत विलास, जय विलास, राज प्रकाश, राज प्रशस्ति, नवसाह, साँक चरित्र, कुमार पाल चरित्र, मान चरित्र, हमीर काव्य, राजावल, राजतरंगिणी, जयसिंह कल्पद्रुम, राजवंशों की वंशावली आदि अनेक प्रकार की बहुत सी सामग्री बड़े परिश्रम के साथ टॉड ने एकत्रित की थी। अनेक प्रकार के काव्य ग्रन्थ, नाटक, व्याकरण कोष, ज्योतिष, शिल्प, महात्म्य और जैन धर्म सम्बन्धी अनेक पुस्तकें तथा अरबी, फारसी भाषा की कई हस्तलिखित ऐतिहासिक किताबों का भी उत्तम संग्रह उन्होंने किया था। बहुत से स्थलों के शिलालेखों, ताम्रपत्रों की प्रतियाँ, बहुत-सी प्राचीन मूर्तियाँ और बीस हजार के करीब प्राचीन सिक्के अपने इस इतिहास की सहायता के लिये उन्होंने प्राप्त किये थे।

सन् 1822 ईसवीं की 1 जून को अपने देश के लिये टॉड साहब ने उदयपुर से प्रस्थान किया था। उसके पहले ही उन्होंने इस ग्रन्थ 'राजस्थान' का ढाँचा तैयार कर लिया था। टॉड साहब ने राजपूताना का खूब भ्रमण किया और कोई भी प्रसिद्ध नगर और स्थान उन्होंने बाकी नहीं रखा। इन यात्राओं में आश्चर्यजनक सामग्री उनको प्राप्त हुई। वेरावल स्थान के एक छोटे-से मन्दिर में गुजरात के राजा अर्जुन देव के समय का एक बड़ा ही उपयोगी लेख उन्हें मिला। सोमनाथ घूमते हुए जूनागढ़ पहुँच कर उन्होंने प्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध गुफाओं के गिरनार के पास एक बड़ी चट्टान पर अशोक की धर्म आज्ञाओं के पास अनेक प्राचीन राजाओं के प्राचीन लेख देखे। परन्तु इन मिले हुए लेखों को पढ़ने वाला उन्हें कोई न मिला। 14 जनवरी 1823 ई. को वे बम्बई पहुँच गये। अपनी इस सम्पूर्ण यात्रा का संग्रह उन्होंने "ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इंडिया" नामक

अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है।

बम्बई से रवाना होकर वे इंगलैण्ड चले गये। वहाँ पर सन् 1823 ईसवी के मार्च महीने में 'ऐशियाटिक सोसाइटी' नामक सभा की स्थापना हुई थी। वहाँ जाकर आप उसके सदस्य हो गये और कुछ दिनों के वाद वे उसके पुस्तकालयाध्यक्ष बना दिये गये। उस सभा में उन्होंने अपने इस संग्रह का एक निबन्ध पढ़ा। उसे लोगों ने वहुत पसन्द किया। इसलिये कि उस समय तक योरोप के विद्रान राजपूत जाति के इतिहास के अपरिचित थे।

16 नवम्बर 1826 ईसवी को टॉड साहब ने अपनी चवालीस वर्ष की अवस्था में लंदन नगर के डाक्टर क्लटर वक की पुत्री से विवाह किया और उसके कुछ दिनों के बाद दोनों योरोप के देशों के भ्रमण को चले गये। सन् 1827 के मई मास में जनरल एसियाटिक सोसायटी में उनका एक लेख प्रकाशित हुआ और सन् 1828 में उन्होंने अपने दो निबंध रायल एशियाटिक सोसाइटी नामक सभा में पढ़े।

सन् 1829 ईसवी में टॉड साहव ने राजस्थान के इतिहास की पहली जिल्द अपने व्यय से छपवा कर प्रकाशित की और सन् 1832 में उन्होंने उसकी दूसरी जिल्द प्रकाशित की। इस इतिहास से योरोप, अमेरिका और हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोगों में उनकी वहुत ही प्रशंसा हुई और राजपूत जाति की कीर्ति सर्व भूमण्डल में फैल गयी। इंग्लैण्ड में रहने के समय टॉड साहव का स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी वे अपना समय विद्यानुराग में ही व्यतीत करते रहे। राजस्थान का इतिहास छप जाने के वाद उन्होंने चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' का अँग्रेजी अनुवाद छपवाने के लिए नमूने के तौर पर संयोगिता के कथानक को अँग्रेजी कविताओं में लिखा और उसे छपवाकर प्रकाशित किया, जिसे वहाँ के लोगों ने वहुत पसन्द किया।

टॉड साहव का स्वास्थ्य विगड़ने के वाद फिर सम्हल न सका। 16 नवम्बर सन् 1835 को लंदन की लम्बर्ट स्ट्रीट के साहूकार के यहाँ उनको एकाएक मिर्गी का आक्रमण हुआ। उसमें 27 घन्टे तक मूर्छित रहने के वाद 17 नवम्बर सन् 1835 को 53 वर्प की अवस्था में अपनी स्त्री, दो पुत्रों और एक पुत्री को छोड़कर टॉड साहव ने इस संसार से प्रयाण किया। उनका कद मध्यम दर्जे का और शरीर पुष्ट था। वे सदा प्रसन्न चित्त रहा करते थे। उनके जीवन में सादगी थी। राजपूताना के लोगों के वीच वैठ कर जाड़े में वे घन्टों आग तापते और उन लोगों की वातें सुनते थे। रास्ते में किसी दुखिया को देखकर उसकी सहायता करते। वे अपनी ख्याति के लिये कोई काम न करते थें पिंडारियों के साथ लड़ाई में विजय के वाद लूट के माल से कोटा से छः मील पूर्व एक पुल वनवाया गया था। उस पुल का नाम लोग 'टॉड साहव का पुल' रखना चाहते थे। लेकिन टॉड साहव ने इसको पसन्द न किया और उनकी सलाह से उस पुल

का नाम 'हेस्टिंग्स ब्रिज' रखा गया। इसी प्रकार उजड़े हुये भीलवाड़ा को फिर बसाये जाने पर लोगों ने उसका नाम टॉड गंज रखना चाहा तो टॉड साहव ने इन्कार कर दिया और कहा कि उसका उद्धार महाराणा भीमसिंह की उदारता से हुआ है। इसलिये उसका श्रेय राणा को ही मिलना चाहिये। टॉड साहब राजपूतों की वीरता की प्रशंसा करते थे। लेकिन उनके अधिक विवाहों, उनकी अफीम खाने की आदतों और आलस्य में पड़े रहने के उनके स्वभावों के सम्बन्ध में वे उनको उपदेश दिया करते थे। टॉड साहब वीर चरित्रवान थे और इसीलिये वे पराक्रम तथा चरित्र बल के समर्थक थे।

टॉड साहब का जीवन चरित्र बहुत बड़ा है और वह पढ़ने ही नहीं बल्कि समझने के योग्य है। उन्होंने इस इतिहास के लिखने के साथ-साथ अपनी जिस मनुष्यता का परिचय दिया है, वह संसार में बहुत कम मिलती है। टॉड साहव भारतवर्ष में राजस्थान का इतिहास लिखने के लिये नहीं आये थे। लेकिन उन्होंने यहाँ आकर जो कुछ देखा, उससे उन्हें मालूम हुआ कि योरोप के लोगों को भारतवर्ष के सम्वन्ध में और विशेषकर इस देश के राजपूतों के सम्बन्ध में बहुत बड़ी गलतफहमी है। उस गलतफहमी के कारण योरोप के लोगों ने इस देश की उपेक्षा कर रखी हैं। उसको दूर करने के लिये टॉड साहब ने इतिहास का यह महान ग्रन्थ लिखा और लिखा इतिहास की बहुत बड़ी योग्यता के साथ नहीं, बल्कि उस मनुष्यता के साथ जो आराधना के योग्य है। उनकी यह योग्यता इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रत्येक पन्ने में है।

टॉड साहव का जीवन चरित्र तो पाठक इतिहास के इस ग्रन्थ में पढ़ेंगे ही। यहाँ पर थोड़ी-सी पंक्तियों के साथ हम टॉड साहव का परिचय देने के लिये इतना ही लिखना चाहते हैं कि वे गरीबों से प्रेम करते थे। पीड़ितों के साथ बैठकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते थे। राजपूतों की कमजोरियों पर अफसोस करते थे और उनको समझा-बुझाकर अच्छी जिन्दगी बनाने के लिए आदेश दिया करते थे। राजपूत अफीम का सेवन करते थे, उससे उनकी शक्तियाँ नष्ट हो रही थीं। इसलिए अफीम का सेवन छोड़ देने के लिए वे राजपूतों से प्रतिज्ञायें करवाते थे। टॉड साहव की मनुष्यता और कर्त्तव्य परायणता की प्रशंसा नहीं की जा सकती। वे कहा करते थे— "मैं इस देश के महलों से नहीं—मिट्टी से प्रेम करता हूँ, वृक्षों और उनकी शाखाओं से स्नेह रखता हूँ एवम् इस देश के स्त्री-पुरुषों के साथ मैं अपना आत्मिक सम्बन्ध रखता हूँ।" टॉड साहव की इन वातों ने उनको इस देश के रहने वालों के साथ सदा के लिये स्नेह की मजबूत जंजीर में बांध दिया था, संसार में इतिहासकार वहुत मिलेंगे लेकिन किसी विद्वान इतिहासकार में यह मनुष्यता न मिलेगी।

—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

राजस्थान का इतिहास
भूगोल सम्बन्धी परिचय

भारतवर्ष में राजपूत राजाओं के रहने वाले प्रदेश का नाम राजस्थान है। इसको रजवाड़ा, रायथाना और राजपूताना भी कहा जाता है। शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण के पहले राजस्थान का विस्तार कितना था, यह नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि उस समय उसका विस्तार गंगा, यमुना को पार कर हिमालय के करीब तक पहुँच गया हो। इस समय हमारे सामने उतना ही राजस्थान है, जिसके अन्तर्गत अनेक जातियों के लोग रहते हैं और जिसे राजस्थान अथवा राजपूताना कहा जाता है। इसके पश्चिम में सिन्धु नदी का कछार, पूर्व में बुन्देलखण्ड, उत्तर में सतलज नदी के दक्षिण का मरुस्थल भाग, जो जंगल देश कहलाता है और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत है। इसका क्षेत्रफल तीन लाख पचास हजार वर्गमील है। इस इतिहास में उसके राज्यों के वर्णन का जो क्रम रखा गया है, वह इस प्रकार है– (1) मेवाड़ अथवा उदयपुर, (2) मारवाड़ अथवा जोधपुर, (3) बीकानेर और कृष्णगढ़, (4) कोटा, (5) बूंदी, (6) आम्वेर अथवा जयपुर, उसके स्वतन्त्र और परतन्त्र भाग, (7) जैसलमेर, (8) हिन्दुस्तान का मरुस्थल भाग, जो सिन्धु नदी के कछार तक चला गया है।

सन् 1806 ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से जो राजदूत सिंधिया-दरबार में भेजा गया था, उसके साथ मेरी नियुक्ति हो गयी थी। उसी समय से इस इतिहास की सामग्री जुटाने का काम मैंने आरम्भ कर दिया था। उस समय के पहले बने हुए राजस्थान के नक्शे सही न थे। मैंने उसे सही तौर पर तैयार करने का काम किया और सन् 1815 ईसवी में यहाँ का भूगोल नक्शों के रूप में तैयार करके मारक्विस आफ हेस्टिंग्स को मैंने भेंट किया, वह वहुत काम का सावित हुआ।

सिंधिया की सेना उन दिनों मेवाड़ में थी। इस स्थान से ही नहीं, वल्कि राजस्थान की वास्तविक स्थिति से योरोप के लोग पूर्ण रूप से अपरिचित थे। उस समय तक यहाँ के जो नक्शे बने थे। उनमें यहाँ का कोई भी प्रसिद्ध स्थान तक नक्शों में सही स्थानों पर न था, यहाँ तक कि मेवाड़ के उदयपुर और चित्तौड़ की दोनों राजधानियाँ भी नक्शों में गलत स्थानों पर दिखायी गई थीं और वह गलती इस प्रकार थी कि चित्तौड़ उदयपुर के पूर्व और ईशान के मध्य में होने के वजाय, अग्निकोण में दिखाया गया था। इसका साफ अर्थ यह है कि राजस्थान के भूगोल का ज्ञान नक्शा बनाने वालों को विल्कुल न था। जो नक्शे उस समय तक वने थे, उनमें अन्य वातों का कोई वर्णन नहीं था। जो नक्शे सन् 1806 ईसवी तक के बने हुए थे, उनमें राजस्थान के वहुत से पश्चिमी और मध्य के राज्यों का पता न था। उस समय तक लोग यह समझते थे कि राजस्थान की समस्त नदियाँ दक्षिण की ओर वढ़ती हुई नर्मदा में जाकर मिलती हैं। इस प्रकार की भूल को संशोधन करने का कार्य भारतवर्ष के भूगोल तैयार करने वाले मिस्टर रेमल ने किया था। उसके बाद उसमें जो

त्रुटियाँ रह गई थीं, उनको दूर करने का काम मेरे द्वारा हुआ। यहाँ पर यह लिखना अनुचित न होगा कि मेरे वाद जो नक्शे बने हैं, उनका आधार मेरा तैयार किया हुआ नक्शा रहा।

उदयपुर जाने के लिये अंग्रेजी दूत का रास्ता आगरा से जयपुर की दक्षिणी सीमा से होकर था। इस रास्ते के कुछ अंश की पैमाइश डाक्टर डब्ल्यू हण्टर ने की थी। मैंने अपनी पैमाइश में उसको आधार मान लिया। डाक्टर हण्टर का तैयार किया हुआ नक्शा उस रेजीडेण्ट के पास मौजूद था, जो सिंधिया दरबार को भेजा गया था और जिससे होकर सन् 1791 ईसवी में राजदूत कर्नल पामर गया था। उतने भाग का नक्शा वह सही था। इसलिए अपनी पिछली पैमाइश में मैंने उसी का आर्धार लिया। उस नक्शे में मध्य भारत के समस्त सीमा के स्थान दिखाये गये थे। उस नक्शे में आगरा, नर्बर, दतिया, झाँसी, भोपाल, सारंगपुर, उज्जैन और वहाँ से लौटने पर कोटा, बूंदी, रामपुरा और बयाना से लेकर आगरा तक सभी स्थानों को प्रकट किया गया था। इस प्रकार डाक्टर हण्टर का जो नक्शा था, वह रामपुरा तक ही मेरे लिये सहायक रहा। उसके पश्चात् रामपुरा से उदयपुर तक मुझे नयी पैमाइश करनी पड़ी।

जिस सेना के साथ मैं था, उदयपुर से चित्तौड़ के करीब से गुजरती हुई वह सेना मालवा के मध्य में पहुँचकर विन्ध्याचल से निकलने वाली अनेक नदियों को पार करती हुई बुन्देलखण्ड की सीमा पर खिमलासा में जाकर रुकी और कुछ दिनों तक वहाँ पर उसने मुकाम किया। सिंधिया के दरबार में रहकर मैं इस प्रदेश के विभिन्न स्थानों में घूमता रहा और पैमाइश का काम करता रहा। सन् 1810 और 11 में पैमाइश करने वालों की मैंने टोलियाँ नियुक्त कीं और आवश्यकता के अनुसार मैं उनसे काम लेने लगा। अपने इस काम के लिये मैंने और भी साधन जुटाये थे। पारितोषिक देकर मैंने इस देश के अनेक जानकारों से काम लिया। प्राचीन हिन्दू राज्यों में एक नगर से दूसरे नगर की दूरी का हिसाब रहता था।[1]

जिन लोगों को मैंने इस काम में लगा रखा था, उनके कामों को मैं देख-सुनकर सही समझने का प्रयास करता था। इन तरीकों से कई वर्षों में मैंने यहाँ के रास्ते का नक्शा तैयार कर लिया और फिर उनकी सहायता से एक साधारण नक्शा तैयार किया। उसके बाद बने हुए नक्शों की त्रुटियों को समझने का काम किया। पैमाइश के काम में मैंने बड़ी साधानी से काम लिया। सन् 1815 ईसवीं में मैंने जो नक्शा तैयार करके गवर्नर जनरल को दिया था, उससे भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को काम करने में बड़ी सहायता मिली। पिण्डारियों के युद्ध में उस नक्शे ने बहुत काम किया और बाद में पेशवा के राज्य को छिन्न-भिन्न करने में उसने विशेष सहायता पहुँचायी।

सन् 1817 से 1822 ईसवी तक की पैमाइश करके मैंने रेखायें तैयार कीं, इस स्थान पर मैं कप्तान पी. टी. वाध के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी सहायता से मेरे कार्य में वहुत कुछ सुधार हुआ। उनकी पैमाइश से चित्तौड़, माण्डलगढ़, जहाजपुर, राजमहल, भिणाय, वदनौर और देवगढ़ की तरह के अनेक स्थानों का कार्य सरल हो गया। सन् 1820 ईसवी में मैंने अरवाली को पारकर एक यात्रा की और उसमें मैं कुम्भलमेर और पाली होता हुआ मारवाड़ की राजधानी जोधपुर और मेड़ता होकर लूनी नदी की खोज करता हुआ अजमेर तक पहुँच गया। उसके वाद घूमता हुआ उदयपुर लौट आया।

---

1. पाटलिपुत्र (पटना) के मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में सीरिया के राजा सेल्युकस का एलची मैगस्थनीज ईसा से 306 वर्ष पूर्व आया था, उसने लिखा है कि भारतवर्ष में प्रत्येक दस स्टेडियम के फासले पर कोसों के पत्थर लगे हुए हैं। एक स्टेडियम 606 फीट 9 इंच का होता है।

राजस्थान के राज्यों की भौगोलिक स्थिति वहुत-सी बातों में एक दूसरे से भिन्न है। इसलिए उसका संक्षेप में यहाँ पर कुछ वर्णन आवश्यक है। आवू पहाड़ के सबसे ऊंचे शिखर पर खड़े होकर देखने से अरावली पहाड़ की 1500 फीट नीची श्रेणी को पार करती हुई दृष्टि मेवाड़ के मैदानों तक पहुँचेगी। चित्तौड़ के करीव ऊंची भूमि पर खड़े होकर देखने से यदि रतनगढ़ और सींगोली होकर कोटा की ओर जाने वाले रास्ते पर दृष्टिपात किया जाये तो रूसी तातार के छोटे-छोटे मैदानों की तरह के तीन मैदान दिखायी देंगे।

अरावली पर्वत विन्ध्याचल से मिला हुआ है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि अरावली विन्ध्याचल से निकला है। यद्यपि दोनों पहाड़ों की ऊंचाइयों को लेकर अनेक प्रकार की इस विषय में शंकायें भी की जा सकती हैं। आबू पर खड़े होकर मालवा की भूमि पर दृष्टिपात करने से मालवा के काले मैदान दिखाई देते हैं। विन्ध्याचल के शिखरों से निकलकर उत्तर की ओर वहने वाली अनेक जल की धारायें देखने में आती हैं। उनमें कुछ धारायें ऊंचे टीलों से घाटियों पर गिरती हैं और कुछ पहाड़ी रास्तों को पार करती हुई चम्बल नदी में जाकर मिल जाती हैं।

कुम्भलमेर से अजमेर तक का सम्पूर्ण भाग मेरवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर मेर नाम की एक पहाड़ी जाति के लोग रहा करते हैं। इस प्रकार के स्थानों की ऐतिहासिक बातें आगामी पृष्ठों में इतिहास के साथ लिखी गयी हैं। इस पहाड़ी स्थान की चौड़ाई लगभग 6 से 15 मील तक है। उस स्थान में करीव डेढ़ सौ गाँवों की आवादी है। यहाँ पर खेती का काम अधिक होता है। इस पर्वत माला पर खड़े होकर देखने से इसकी चोटियों पर कई एक किले दिखाई देते हैं। अरावली और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली पहाड़ियों पर खनिज और धातु सम्बन्धी अनेक पदार्थ पाये जाते हैं। वहाँ पर जो खानें हैं, उनमें राजाओं का अधिकार रहता है। कुछ पहले मेवाड़ में राँगे की खानें थीं। यहाँ के लोगों का कहना है कि यहाँ पर खानों से चाँदी निकाली जाती थी। लेकिन मुगल शासन काल में उन खानों की बर्बादी हो गई। उसके पहले यहाँ पर ताँबे की खानें भी थीं, जिनसे पैसे बनाये जाते थे। इसके पश्चिमी भाग में सुरमा भी मिलता था। तामड़ा, नीलमणि, विल्लौर और साधारण श्रेणी के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते थे।

अरावली के ऊँचे स्थानों के बाद इस प्रदेश के पठार और मध्य हिन्द की ऊंची और वरावर जमीन कुछ बातों में विशेषता रखती है। इसीलिये उसके सम्बन्ध में थोड़ा-सा यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक है। इस जमीन की ऊंचाई और विषमता पश्चिम से पूर्व की तरफ मैदानों को पार करने पर साफ-साफ दिखायी देती है। रणथम्भौर के करीव यह ऊंची जमीन अनेक पंक्तियों में बदलती हुई दिखायी देती है। सूर्य की धूप में उसके शिखर श्वेत रंग के मालूम होते हैं। यहाँ की नदियों का प्रवाह बड़ी तेजी के साथ बहता हुआ दिखायी देता है। उनमें चार नदियाँ अपनी तेज धारा के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। इस ऊंची और वरावर जमीन का धरातल दूसरे ही प्रकार का है। कोटा के आगे की विस्तृत चट्टान पर वनस्पति का पूर्ण अभाव है। यहाँ की जमीन खनिज पदार्थों के लिये अच्छी नहीं समझी जाती। यहाँ पर सीसा और लोहा पाया जाता है। जिन स्थानों में खनिज पदार्थों की खानें हैं, उनका लाभ यहाँ के लोग वहुत कम उठा पाते हैं। यहाँ पर सीसा, रांगा और ताँवा अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इस प्रकार की चीजों के लिये भी यहाँ के लोग दूसरे देशों पर आश्रित रहते हैं।

मध्य हिन्द की नदियों में चम्बल नदी सबसे बड़ी है। उसके वहुत से सोते विन्ध्याचल पर्वत के बीच में हैं। इस नदी की लम्बाई पाँच सौ मील से अधिक है। उसके

किनारे बहुत-सी जातियों के लोग रहा करते हैं। सिंधिया, चन्द्रावत, सिसोदिया, हाड़ा, गौड़, जादूँ, सीकरवाल, गूजर, जाट, तोंमर, चौहान, भदौरिया, कछवाहा, सेंगर और बुन्देला आदि अनेक जातियों के निवास स्थान चम्बल और कुँवारी नदियों के बीच में हैं। लूनी नदी के मार्ग की लम्बाई उसके आरम्भ से लेकर अन्त तक 300 मील से अधिक है। दक्षिण की तरफ लूनी नदी के उत्तर तरफ से और पूर्व की ओर शेखावाटी की सीमा से रेतीले भाग की शुरुआत होती है। बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर आदि सभी रेतीली जमीन पर हैं। जैसलमेर मरुस्थल से घिरा हुआ है। यहाँ का दुर्ग एक पहाड़ी पर कई सौ फीट की ऊंचाई पर बना है। कहा जाता है कि यहाँ पर किसी समय हाड़ा नाम के किसी राजा का अधिकार था। लेकिन उसका अब कोई अस्तित्व वहाँ पर नहीं है। राजस्थान के जो प्रदेश इस मरुस्थली भूमि पर हैं, उनको मरुभूमि के नाम से ही लोग अधिक मानते हैं। वास्तव में यह नाम उसी भाग के लिये अधिक उपयोगी मालूम होता है जो राठौड़ राजाओं के अधिकार में है।

लूनी नदी के बालोतरा स्थान से लेकर उसके समस्त घाट और उमरसुमरा तथा जैसलमेर के पश्चिमी हिस्से बिल्कुल सूनसान तथा उजाड़ हैं। लेकिन सतलज नदी से लेकर पाँच सौ मील की लम्बाई और लगभग पचास मील की चौड़ाई तक की सारी भूमि अनेक प्रकार की चीजों के लिये उपयोगी है। वहाँ पर सिन्धु नदी के कछार और उसकी सूखी जमीन पर रहने वाले गड़रिये अपनी भेड़ें चराया करते हैं। इन स्थानों पर जल के बहुत से झरने हैं। उनके आसपास राजड़, सोढ़ा, माँगलिया और सहराई लोग प्रायः दिखायी देते हैं।

यहाँ पर विस्तार के भय से झीलों, सज्जी क्षेत्रों एवं मरुस्थल की अन्यान्य पैदावारों का वर्णन नहीं किया गया है और न वनस्पति तथा खनिज पदार्थों का ही वर्णन करने की आवश्यकता है। जैसलमेर के निकट एक पहाडी है जिसमें पीले पत्थर अधिक पाये जाते हैं और जिसके खूबसूरत पत्थर इस देश से अरब देश तक की अच्छी इमारतों में लगाये गये हैं।

☐

राजपूत जातियों का ऐतिहासिक परिचय

अध्याय-1

मनुष्य जाति का इतिहास

मध्य और पश्चिमी भारत की वीर राजपूत जातियों का इतिहास लिखने के समय सबसे पहले यह जानना जरूरी होता है कि उनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई, इस पर सावधानी के साथ खोजकर लिखा जाये। इस छानबीन के लिये मैंने हिन्दुओं के पौराणिक ग्रन्थों को प्राप्त किया और एक पण्डित मण्डली के द्वारा उनको समझने का काम किया। उस मण्डली का प्रधान पती ज्ञान चन्द्र नामक व्यक्ति था। इन पुराणों में इस देश के ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन पाये जाते हैं। लेकिन इस प्रकार की सामग्री को जुटाने में भागवत, स्कन्द, अग्नि और भविष्य पुराण अधिक सहायता करते हैं। इन पौराणिक ग्रन्थों में इतिहास और भूगोल की जो सामग्री मिलती है वह एक-सी नहीं है। कुछ बातों में इन ग्रन्थों के वर्णन एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं परन्तु इस प्रकार के विरोध राजाओं के नामों और उनकी संख्या के सम्बन्ध में ही अधिक पाये जाते हैं। ऐतिहासिक वर्णन में कोई मतभेद नहीं है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रन्थों का वर्णन बहुत कुछ उसी प्रकार का है, जिस प्रकार संसार की अन्य जातियों ने इसके सम्वन्ध में वर्णन किया है। सभी जातियों के ग्रन्थों के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति महाप्रलय के बाद से आरम्भ होती है। इस उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दुओं के ग्रन्थ अग्नि पुराण में बहुत कुछ लिखा है।

ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र ने समस्त संसार को नष्ट कर दिया। उस समय वैवस्वत मनु (नूह), जो कि हिमालय पर्वत के पास रहा करता था, कृतमाला नदी में देवताओं को जलान्जलि दे रहा था, अकस्मात् उस समय उसके हाथ में एक छोटी-सी मछली आ गयी। उस समय वैवस्वत मनु को सुनाई पड़ा– 'इसकी रक्षा करो।' मछली ने बढ़ना आरम्भ किया और उसने विशाल काया धारण कर ली। वेवस्वत मनु अपने पुत्रों, स्त्रियों और तपस्वियों के साथ समस्त जीवधारियों का वीर्य अपने साथ लेकर उस नाव पर बैठ गया जो उस मछली के सींग में बँधी थी। इस प्रकार वे सव बच गये। यहाँ पर उत्तर की एक विशाल पर्वत श्रेणी का वर्णन मिलता है, जिसके करीब वैवस्वत मनु रहा करता था, जिससे संसार के समस्त मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। उस मनुष्य को हिन्दुओं के ग्रन्थों में वैवस्वत मनु, कहा गया है जिसे हिन्दू सूर्य का पुत्र मानते हैं और ईसाई लोग उसको नूह के नाम से मानते हैं, लिखा गया है। उन लोगों का विश्वास है कि महाप्रलय में नूह वच गया था और उसी के बाद से संसार में मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। भविष्य पुराण में लिखा है –

"वैवस्वत मनु जो सूर्य का पुत्र था, सुमेरू पहाड़ पर राज्य करता था। उसके वंश में ककुत्स्थ नामक राजा की उत्पत्ति हुई। उसने अयोध्या के राज्य पर अधिकार किया और उसके वंशज धीरे-धीरे संसार में फैल गये।"

इस सुमेरु पर्वत को ब्राह्मण महादेव, आदिश्वर और वाघेश का निवास स्थान मानते हैं और जैनियों का कहना है कि आदिनाथ अर्थात् प्रथम जिनेश्वर के रहने का स्थान सुमेरू पर्वत पर था। उनके अनुसार यह भी मालूम होता है कि वहीं पर मनुष्यों को खेती और सभ्यता की शिक्षा दी गयी थी। यूनानी लोग सुमेरू पर्वत को वैंकस का निवास स्थान मानते हैं। उन लोगों में एक प्रचलित कथा का सार इस प्रकार है "वैंकस जुपीटर की रानी से उत्पन्न हुआ था।"

मनुष्य जाति के इतिहास के सम्वन्ध में हिन्दुओं और यूनानी लोगों का एक ही विश्वास है। दोनों जातियों के प्राचीन ग्रन्थ एक ही प्रकार का निर्णय करते हैं। उनके ग्रन्थों से मालूम होता है कि संसार के समस्त मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही आदमी से हुई और उस आदमी के नाम भिन्न-भिन्न जातियों ने अलग लिखे हैं। वास्तव में आदीश्वर, असिरीश, वाघेश, वैंकस, वैवस्वत मनु और मीनस आदि सभी नाम उस आदि पुरुष नूह के ही हैं, जिससे मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई। हिन्दुओं के ग्रन्थ मनुष्य की उत्पत्ति का स्थान पश्चिम में काकेशस पर्वत के मध्य में स्वीकार करते हैं। वैवस्वत मनु, जो उनके अनुसार इस सृष्टि का आदि पुरुष था, वहीं पर रहा करता था। उसके वंशज वहाँ से चल कर पूर्व की ओर सिन्धु नदी और गंगा के किनारे आये और कौशल में अयोध्या को अपनी राजधानी वनाया, जो अव अवध के नाम के प्रसिद्ध है। उस समय हिन्दू और ग्रीक जाति में कोई भेद न था। सव मिल कर एक ही स्थान पर रहते थे और एक जैसा जीवन व्यतीत करते थे।

मध्य एशिया के जिस भाग से आमू, आक्सस, जेहून और दूसरी नदियाँ प्रवाहित हुई हैं, उसी पर्वतीय स्थान को सूर्य और चन्द्रवंशी लोगों ने अपना आदि स्थान स्वीकार किया है।[1] इन सव वातों से सावित होता है कि संसार के सभी मनुष्यों का मूल स्थान एक ही था और वाद में वहीं से लोग पूर्व की तरफ आये। संसार की सभी जातियाँ उसे अपना जन्म स्थान स्वीकार करती हैं।

राजपूतों के स्वभावों और उनकी आदतों से भी इस वात का साफ-साफ पता चलता है कि वे और शक लोग किसी समय एक थे और ठंडे प्रदेश में एक साथ रहा करते थे। इसका प्रमाण यह है कि शक लोगों की सभी वातें राजपूत जातियो में पायी जाती हैं। शीत प्रधान देश के रहने वाले शकों के स्वभाव और उनकी आदतों को अपना लेना गर्म देश के निवासियों के लिये संभव न था। शक लोगों की वीरता, उनकी आदतें और उनके विश्वास राजपूतों में पूर्ण रूप से देखने को मिलते हैं। अनेक प्रकार की सामाजिक प्रथाओं के साथ-सथ अश्वमेघ यज्ञ की प्रथा भी राजपूतों में वही है जो शक लोगों में पाई गई है। इन सव वातों का साफ अर्थ यह हैं कि आरंभ में वहुत थोड़े से मनुष्य संसार में थे और वे विना किसी भेद और विचार के एक ही स्थान पर रहकर अपना जीवन व्यतीत करते थे।

□

1. प्रसिद्ध इतिहासकार सर वाल्टर रेले ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है— जल प्रलय के वाद सवसे पहले भारत में ही वृक्षों और लताओं की उत्पत्ति हुई और मनुष्य की आवादी शुरू हुई। इसका सवसे वड़ा प्रमाण यह है कि मूसा ने जिस अरारट पर्वत का जिक्र किया है उसका अर्थ जर्मनी भाषा में पर्वत माला है। वह स्थान काकेशस (कोहकाफ) की पर्वतमाला के हिस्से में रहा होगा। वह स्थान उस पर्वत माला की पूर्व दिशा में होना चाहिए। सर वाल्टर रेले के अनुसार , मनु का निवास स्थान भारत और शाकद्वीप के बीच में होना चाहिए।

अध्याय-2
राजपूतों की वंशावली-
हिन्दू ग्रन्थों का आधार

सूर्य और चन्द्रवंशी राजपूतों की वंशावली का वर्णन करने के लिये यहाँ पर हमने भागवत और अग्निपुराण से सामग्री लेने की चेष्टा की है। इन वंशावलियों का कुछ हिस्सा सर विलियम जोन्स, मिस्टर बेंटले और कर्नल विल्फर्ड के द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज की पुस्तकों में प्रकाशित हो चुका है। फिर भी हिन्दुओं के ग्रंथों का अवलोकन करना हमारे लिये जरूरी है। हमें यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि भारत में इन वंशों की वंशावलियाँ गलत हैं।-इसलिये कि उनकी गलतियों में भी उनके इतिहासों का सत्य है और हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ ही अपने इतिहास को बताने के अधिकारी हैं।

यह बात सही है कि पुराणों में ऐतिहासिक वर्णन है। लेकिन उनके भाष्यकारों ने उनकी ऐतिहासिक सामग्री में जिस प्रकार की निकृष्ट मिलावट की है, उससे उनके ऐतिहासिक तत्वों का अनुसंधान करना बहुत कठिन हो गया है। हिन्दुओं ने बौद्धिक उन्नति की थी, इसका प्रमाण आज भी उनकी टूटी इमारतों और पौराणिक चित्रों से मिलता है। उन्नति के बाद पतन का समय आया और उस समय नयी रचनाओं के अभाव में पुरानी रचनाओं के केवल भाष्य किये गये। उस समय भाष्यकारों को नियंत्रण में रखने के लिये, ऐसा मालूम होता है कि सच्चे समालोचकों की यहाँ पर बहुत कमी थी। इस अभाव में भाष्यकारों ने मनमानी की और किसी प्रकार का भय न होने के कारण प्रत्येक ब्राह्मण भाष्यकार ने यह समझ लिया कि हम इन प्राचीन ग्रंथों में जितनी आश्चर्यजनक बातों की मिलावट करेंगे, उतनी ही हमारी प्रशंसा होगी। परिणाम यह हुआ कि उस भयानक मिश्रण में पुराणों की ऐतिहासिक सच्ची सामग्री विलीन हो गयी और जो पुराण ऐतिहासिक सामग्री के लिये आधार थे, वे असत्य और आश्चर्य में डाल देने वाली कहानियों के रूप में रह गये। यही अवस्था बैबिलोनिया देश की हुई थी। ईसा से तीन शताब्दी पहले उसके इतिहास लेखक बेरोसन ने अपनी-अपनी कल्पनाओं के द्वारा उस देश के पुराने इतिहास को आश्चर्यमय वना दिया था। लेकिन उस देश की कोई बड़ी क्षति इसलिये नहीं हुई कि उस देश के पुराने इतिहास लेखकों के लेखों द्वारा इतिहास के सही तत्वों का छिप जाना संभव न हो सका। परन्तु भारतवर्ष की परिस्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है।

भाष्यकारों के पहले इस देश के पुराण कुछ और थे। यदि आरंभ से ही वे इसी प्रकार अस्पष्ट होते, जैसे कि वे आज हैं तब तो इस बात पर विश्वास करना ही कठिन हो जाता कि भारतवर्ष ने विद्या और बुद्धि में बहुत बड़ी उन्नति की थी। परन्तु ऐसा न था। पतन के आरंभ होते ही इस देश में नयी रचनायें नहीं लिखी गईं। बल्कि पुराने ग्रंथों को रहस्यपूर्ण बनाने के लिये भाष्य लिखे गये और उन भाष्यों के अगणित भाष्य तैयार कर

डाले गये। इसका नतीजा यह हुआ कि उन ग्रंथों की मूल सामग्री विलीन हो गयी और उनके रहस्यमय भाष्य लोगों के सामने आ गये। आज की परिस्थिति यह है कि उनमें सुधार और परिवर्तन के नाम पर कोई खोज का काम नहीं कर सकता। अगर कोई ऐसा करने का साहस करे भी तो वह अधर्मी और विरोधी समझा जायेगा।

संसार की अन्य जातियों की तरह हिन्दुओं ने भी धीरे-धीरे अपनी उन्नति की होगी। उस समय संसार की जो जातियाँ उत्थान के मार्ग में आगे बढ़ रही थीं, उनके साथ हिन्दुओं ने मिलकर कुछ न कुछ अवश्य ही एक दूसरे से लिया होगा, यह स्वाभाविक है, लेकिन यदि किसी देश ने ऐसा नहीं किया तो यह मानी हुई बात है कि उसकी उन्नति स्थायी रूप से अधिक समय तक नहीं चल सकती।

इस देश के आरंभ काल में धार्मिक नेतृत्व आजकल की तरह कुछ लोगों के लिये पैतृक नहीं था बल्कि उस पर सब का समान रूप से अधिकार था। यह बात मैं हिन्दुओं के ग्रंथों के आधार पर ही लिखने का साहस कर रहा हूँ। इक्ष्वाकु के दस लड़के थे। उनमें तीन धार्मिक हो गये थे और उन तीन में से एक ने अग्निहोत्र लेकर अग्नि की पूजा की थी। उसका एक पुत्र व्यवसायी हो गया था। चन्द्रवंशी राजपूत पूर्तवा के छः पुत्रों में चौथे का नाम रेहा था। उसकी पन्द्रहवीं पीढ़ी में हारीत हुआ और वह अपने आठ भाइयों के साथ धार्मिक हो गया था। उसी ने कौशिक गोत्र की प्रतिष्ठा की थी, जो ब्राह्मणों की एक शाखा है।

राजा ययाति की चौवीसवीं पीढ़ी में भारद्वाज नाम का एक राजा हुआ। उसके नाम पर एक गोत्र की प्रतिष्ठा हुई और उस गोत्र वाले आज तक पुरोहित का काम करते हैं। राजा मनु के दो पुत्र धार्मिक वृत्ति के कारण ब्राह्मण हो गये और एक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज बहुत से काम ब्राह्मणों तक ही सीमित हैं। लेकिन पहले ऐसा न था। हिन्दुओं के ग्रंथों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि अनेक सूर्यवंशी राजा शासन करते हुए भी ब्राह्मणों के काम करते थे। रामचन्द्र के पहले और बाद तक राज्य वंश में उत्पन्न होने वाले धर्मावलम्वी होकर धार्मिक वृत्ति के कार्य करते रहे। उनके सिर के बाल जोगियों की तरह के होते थे। उन्हीं ग्रंथों में इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि राजपूत राजाओं की लड़कियों के विवाह राजर्षियों के साथ होते थे। शूरवीर पाँचालिक की लड़की अहिल्या का विवाह गौतम ऋषि के साथ हुआ था जो यदुकुल की एक शाखा है। हैहयवंश में उत्पन्न होने वाले राजा सहस्त्रार्जुन की लड़की जमदग्नि को ब्याही गयी थी। परशुराम के पिता का नाम जमदग्नि था। शासन और धर्म का अधिकार क्षत्रियों और ब्राह्मणों को था। दोनों को शासन और धर्म में बराबर अधिकार थे। यही अवस्था प्राचीन काल में मिश्र और रोम की थी। रोम और मिश्र के लोग अपनी रुचि के अनुसार शासन और धर्माधिकार स्वीकार कर सकते थे। समाज का विधान इसका विरोधी न था। हेरोडोटस ने लिखा है कि मिश्र के शासन का अधिकार धर्म के आचार्यों और वीर पुरुषों को ही दिया जाता था। शासन का अधिकारी कोई तीसरा नहीं हो सकता था।

भारत के शासन में ब्राह्मणों का स्थान कम नहीं रहा। जमदग्नि से लेकर महाराष्ट्र के पेशवा तक में इस बात के प्रमाण बराबर मिलते हैं कि ब्राह्मण इस देश में शासन करते रहे। शासकों पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। मिथिला का राजा जनक राजर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ से हाथ जोड़कर प्रार्थना किया करता था। बहुत से ब्राह्मणों ने भारत में राज्य किया। रावण ब्राह्मण था और लंका में राज्य करता था। उसने अयोध्या के राजा राम से युद्ध किया था।

विश्वामित्र गाधिपुरा के कौशिक वंशी राजा गाधी का लड़का था। वह इक्ष्वाकु के वंशज अयोध्या के राजा अम्बरीष का समकालीन था और रामचन्द्र से दो सौ वर्ष पहले हुआ था। उस समय जाति व्यवस्था समाज में मजबूती के साथ कायम हो रही थी। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि भारत में जिस समय जाति व्यवस्था कायम हुई वह समय ईसा से लगभग चौदह सौ वर्ष पहले का था। महाभारत महाकाव्य का लिखने वाला व्यास दिल्ली के राजा शान्तनु का बेटा था और योजनगन्धा नाम की मल्लाह जाति की लड़की से उसकी अविवाहित अवस्था में उत्पन्न हुआ था। व्यास के उत्पन्न होने के बाद योजनगन्धा का विवाह शान्तनु के साथ हुआ और उससे विचित्रवीर्य नामक पुत्र पैदा हुआ। विचित्रवीर्य के तीन लड़कियाँ पैदा हुईं, उसमें एक का नाम पाण्डया था।[1] शान्तनु के वंश में कोई अन्य पुरुष पैदा न होने के कारण व्यास अपनी भतीजियों का धर्म पिता हुआ और बाद में अपनी धर्मपुत्री पाण्डया के साथ उसने विवाह कर लिया। यूनानी इतिहासकार ऐरियन ने इस कथा का कुछ परिवर्तन के साथ उल्लेख किया है, जिसको लिखने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं है।

उस लड़की के वंशजों ने इकतीस पीढ़ी तक ईसा से पूर्व 1120वें वर्ष से लेकर 610वें वर्ष तक राज्य किया और पाण्डु वंश के अंतिम शासक के अयोग्य होने के कारण, राज्य के सरदारों ने विद्रोह किया और उसी वंश के सैनिक मंत्री को राजा बनाया गया। उसके बाद विक्रमादित्य तक दूसरे दो वंशों ने राज्य किया। भारत की राजधानी उत्तर से उठकर दक्षिण में चली जाने के कारण विक्रम सम्वत् की चौथी शताब्दी और कुछ अधिकारी लेखकों के अनुसार आठवीं शताब्दी तक इन्द्रप्रस्थ में कोई शासक न रहा। उसके पश्चात् तोमर जाति के राजपूतों ने, जो अपने आपको पाण्डु के वंशज कहते थे, इन्द्रप्रस्थ पर शासन किया और उस राजधानी का नाम दिल्ली रखा गया। तोमर जाति के जिस राजा ने दिल्ली में शासन किया, उसका नाम अनंगपाल प्रथम था। बारहवीं शताब्दी तक उसका वंश चलता रहा। उसने दिल्ली की राजगद्दी अपनी लड़की के पुत्र पृथ्वीराज को दे दी, जो भारत का अंतिम राजपूत सम्राट हुआ और मुसलमानों के द्वारा उसके पराजित होने पर भारत में मुस्लिम शासन का प्रारंभ हुआ।

□

1. इन तीन लड़कियों में एक लड़की विचित्रवीर्य के द्वारा एक दासी से पैदा हुई थी। वह दासी भी विचित्रवीर्य के राजमहल में रहा करती थी और रानियों की तरह उसके साथ व्यवहार किया जाता था इसलिए यह निर्णय करना बहुत कठिन था कि इन तीन कन्याओं में दासी से उत्पन्न होने वाली पुत्री कौन है। इसके लिए व्यास पर निर्णय करना रखा गया। व्यास ने आज्ञा दी कि तीनों राज कन्याएँ मेरे सामने नग्न होकर निकलें। उस अवस्था में बड़ी लड़की लज्जा के कारण नेत्र बन्द करके व्यास के सामने से निकल गई। उस लड़की से हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र का जन्म हुआ। दूसरी लड़की लज्जा से अपने शरीर पर पीली मिट्टी लपेट कर निकली, इसीलिये उसका नाम पांडु मिट्टी के कारण पाण्ड्या पड़ा और उसका पुत्र पांडु कहलाया। तीसरी लड़की बिना संकोच के सामने से निकल गयी। इसीलिए वह दासी मानी गयी और उससे विदुर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

अध्याय - 3
सूर्य वंश एवं चन्द्र वशं की उत्पत्ति

व्यास ने सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु से लेकर रामचन्द्र तक सूर्य वंश के सत्तावन राजाओं के नामों का उल्लेख किया है और अट्ठावन नामों से अधिक राजाओं की वंशावली चन्द्रवंश के सम्वंध में मुझे देखने को नहीं मिली। इस संख्या में और मिश्र वालों को दी हुई संख्या में अंतर है। मिश्र के ग्रंथों में हेरोडोटस के अनुसार, अपने आदि पुरुप सूर्य पुत्र मीनस से लेकर ऊपर दिये गये समय तक के तीन सौ तीस राजाओं के नाम लिखे हैं। मनु का वेटा इक्ष्वाकु पहला राजा था, जिसने पूर्व की तरफ जाकर अयोध्या का निर्माण किया था। वुध-चन्द्रवंशियों का आदि पुरुप माना जाता है। "जैसलमेर की कथा" नामक ग्रंथ में लिखा है कि महाभारत के पहले प्रयाग, मथुरा, कुशस्थली और द्वारिका में क्रमशः चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानियाँ रहीं। लेकिन इस वात के निर्णय करने की हमें कोई सामग्री नहीं मिली कि उनकी प्रथम राजधानी प्रयाग की प्रतिष्ठा किसने की। फिर भी जो कुछ पढ़ने को मिला है, उसके आधार पर यह लिखा जा सकता है कि वुध के छठी पीढ़ी में पुरु ने उसकी स्थापना की थी।

इक्ष्वाकु से लेकर राम तक सत्तावन राजा अयोध्या के राज सिंहासन पर वैठे। ययाति से चन्द्रवंश आरंभ होता है। उसकी शाखा यदुवंश में ययाति से लेकर कहीं पर सत्तावन और कहीं उनसठ पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। युधिष्ठिर, शल्य, जरासंघ और वहुरथ तक, जो कृष्ण और कंस के समकालीन थे, उनके पूर्वज ययाति से क्रमशः 51, 46 और 47 पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है। सूर्यवंशी शाखाओं और चन्द्रवंश की यदुवंशी शाखाओं में वहुत अंतर पाया जाता है। उनके सम्वंध में विभिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न संख्याओं का उल्लेख किया है। हमने यहाँ पर वही संख्यायें दी हैं जो अधिक सही मालूम हुई हैं।

इन वंशावलियों का उल्लेख मिस्टर वेंटले सर विलियम जोन्स और कर्नल विल्फर्ड ने अपने लेखों में किया है। मिस्टर वेंटले और सर विलियम जोन्स की दी हुई संख्याओं में कोई अंतर नहीं है। उन दोनों ने सूर्य और चन्द्रवंशों की क्रमशः 56 पीढ़ियों का जिक्र किया है। कर्नल विल्फर्ड की संख्या सूर्यवंशियों के सम्वंध में सही नहीं मालूम होती लेकिन चन्द्रवंश के सम्वंध में पुरु और यदु दोनों वंशों की नामावली सही मालूम होती है। रामचन्द्र का समय कृष्ण से वहुत पूर्व महाभारत युद्ध से चार पीढ़ी पहले का था। चन्द्रवंशी प्रमुख शाखाओं में पुरु, हस्ती, अजामीढ़, कुरु, शान्तनु और युधिष्ठिर वड़े प्रतापशाली हुये। इनकी वंशावली जो मिलती है वह वहुत कुछ सही मालूम होती है। कर्नल विल्फर्ड ने इस प्रकार की खोज के लिए अधिक सामग्री एकत्रित की थी और इसीलिए वह हस्ती और कुरु दोनों ही वंशों की अधिक शाखाओं का उल्लेख कर सका। इन दोनों वंशावलियों में भीमसेन के

बाद दिलीप का नाम है। इस प्रकार के नामों के सम्बंध में हिन्दुओं के सभी ग्रंथों का मत एक नहीं है।

इन वंशावलियों के सम्बंध में सही बातों की खोज करने के लिए मैंने कुछ वाकी नहीं रखा। हिन्दुओं के ग्रंथों के साथ-साथ, विदेशी लेखकों के ग्रंथों को भी मैंने भली प्रकार देखा है और छान-बीन के वाद जो सही मालूम हुई है, उसी को मैंने लिखने का प्रयास किया है। ऐसे स्थानों पर सबसे बड़ी कठिनाई यह पैदा हो जाती है कि हिन्दुओं के ग्रंथ स्वयं कहीं-कहीं पर एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाते हैं। इस विषय में कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है, जिसे प्रामाणिक माना जा सके और सही वंशावली प्राप्त की जा सके। इक्ष्वाकु की चौथी पीढ़ी के सम्बंध में बड़ा मतभेद है। मैंने विश्वस्त ग्रंथों के आधार पर उसकी चौथी पीढ़ी में अनपृथु का नाम लिखा है। लेकिन उनके स्थान पर दो नाम अनयास और पृथु के भी उल्लेख मिलते हैं। मैंने अपनी वंशावली में त्रिशंकु को तेईसवीं पीढ़ी में रखा है। परन्तु विलियम जोन्स ने छब्बीसवीं में उसको लिखा है। कुछ नाम ऐसे भी हैं, जिनको विभिन्न रूप में लिखा गया है। उनमें अक्षरों और मात्राओं की भूलें हो सकती हैं।

राजवंशों के प्राचीन समय का निर्णय रामायण पुराणों और अन्य पुराने ग्रंथों के द्वारा ही किया गया है, जिससे किसी प्रकार की भूल न हो सके। सूर्यवंश का प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु का बेटा था, जो अपने सत्य वचन के लिये इस देश में आज तक विख्यात है। अपने वंश का वह चौबीसवां राजा था और वह उस परशुराम का समकालीन था जिसने नर्बदा नदी के तीरवर्त्ती माहिष्मती के हैहय अर्थात् चंद्रवंशी राजा सहस्त्रार्जुन का वध किया था। परशुराम की कथा रामायण में लिखते हुए बताया गया है कि उसने क्षत्रियों का नाश किया था। सूर्यवंश का बत्तीसवां राजा सगर चंद्रवंशी सहस्त्रार्जुन की छठी पीढ़ी के तालजंघ का समकालीन था। परशुराम ने जव क्षत्रियों का विध्वंस किया था, उस समय सहस्त्रार्जुन के पांच बेटे वच गये थे। भविष्य पुराण में उन पांचों बेटों के नाम लिखे गये हैं। सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओं के बीच लगातार युद्ध हुए थे, जिनके विवरण रामायण और पुराणों में मिलते हैं। सगर तालजंघ में होने वाली लड़ाई का वर्णन भविष्य पुराण में किया गया है। हस्तिनापुर के राजा हस्ती और अंगदिश, अंगवंश की प्रतिष्ठा करने वाले बुध के वंशज अंग का समाकालीन माना गया है। रामायण से प्रकट होता है कि सूर्यवंश का चालीसवां वंशज अयोध्या का राजा अम्बरीष कन्नौज की प्रतिष्ठा करने वाले राजा गाधी और अंगदेश [1] के राजा लोमपाद का समकालीन था। कृष्ण और युधिष्ठिर की समकालीनता महाभारत से सिद्ध है। उनके बाद द्वापर युग का अंत होता है और कलियुग का आरंभ होता है। सूर्यवंशी राम और चंद्रवंशी कृष्ण के बीच के समय का निर्णय करने के लिए हमें किसी ग्रंथ में कोई सामग्री नहीं मिली।

कोष्टावंशी मथुरा का राजा कंस बुध से उनसठवां और उसका भांजा कृष्ण अट्ठावनवां वंशज था। पुरु के वंश में अजमीढ़ और देवीमीढ़ के वंश में शल्य, जरासंघ और युधिष्ठिर क्रमशः इक्यावन, त्रेपन और चौवन वंशज थे। महाभारत के युद्ध में लड़ने वाला अंगवंशी पृथुसेन बुध से तिरपनवां था। इस प्रकार बुध से लेकर कृष्ण और युधिष्ठिर तक पचपन पीढ़ियों का होना साबित होता है। उनमें प्रत्येक राजा के शासन का औसत वीस वर्ष रखने से यह समझ में आता है कि पचपन पीढ़ियों में उसके सभी राजाओं ने 1100 वर्ष शासन किया। यह समय यदि विक्रमादित्य तक सभी राजाओं के शासन काल में जोड़ दिया जाये,

---

1. अंगदेश तिब्बत के करीब है। उसके निवासी अपने को हुंगी कहते हैं। मालूम होता है कि चीनी ग्रंथों में वर्णन किये गये होंगनू हूण लोग थे और ये लोग चंद्रवंश से सम्बंध रखते थे।

जो ईसा से 56 वर्ष पूर्व तक रहा तो भारत में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी प्रतिष्ठा का समय ईसा से 2256 वर्ष पहले का माना जा सकता है। क्योंकि उससे कुछ ही दिनों के बाद मिश्र, चीन और असीरिया के राज्यों की प्रतिष्ठा का समय माना जाता है और वह समय महाप्रलय के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद माना जाता है।

अग्निपुराण में यह भी लिखा है कि मध्य एशिया से जो लोग भारत में आकर बसे उनमें इक्ष्वाकु के वंशज सूर्यवंशी सबसे पहले आये थे। इस लेख के आधार पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चंद्रवंश का आदि पुरुष बुध उनका समकालीन था। इस प्रकार की धारणा का एक अभिप्राय यह भी है कि बुध ने इस भारत देश में आकर इक्ष्वाकु की बहन इला से विवाह किया था।

चंद्रवंशी कृष्ण और अर्जुन के तथा सूर्यवंशी रामचन्द्र और उनके पुत्र लव और कुश के वंशजों के सम्बंध में अधिक लिखने के पहले, उनके पूर्वजों पर आगामी प्रकरण में आवश्यकता के अनुसार प्रकाश डालना जरूरी है।

□

अध्याय - 4
इतिहास के प्रसिद्ध नगरों व राज्यों की स्थापना

सूर्यवंशियों ने सबसे पहले अयोध्या की स्थापना की थी और लगभग उसी समय इक्ष्वाकु के प्रपौत्र मिथिल ने मिथला देश की राजधानी मिथलापुरी बसाई। जनक मिथिल का बेटा था। उसी के नाम से सूर्यवंश की इस शाखा का नाम प्रसिद्ध हुआ। अयोध्या और मिथिलापुरी दोनों को प्राचीन काल में अधिक प्रसिद्धि मिली। यद्यपि रामचन्द्र के पहले रोहतास और चम्पापुर की तरह के कई एक नगरों की स्थापना हो चुकी थी।

बुध से चलने वाले चन्द्रवंशियों के द्वारा अनेक राज्यों की स्थापना हुई थी। उनमें प्रयाग की प्राचीनता अब तक प्रसिद्ध है। अनुभव से जाहिर होता है कि चन्द्रवंशियों की पहली राजधानी की स्थापना हैहय वंश के सहस्त्रार्जुन के द्वारा हुई। उसका नाम माहिषमती था और वह नर्मदा नदी के किनारे पर बसी थी। सूर्यवंशियों और चंद्रवंशियों का परस्पर विरोध बहुत दिनों तक चला था। उस विरोध में ब्राह्मणों ने सूर्यवंशियों की सहायता की थी और सहस्त्रार्जुन को माहिषमती से निकाल दिया था।

कृष्ण की राजधानी कुशस्थली द्वारका में थी, जो प्रयाग, सुरपुर और मथुरा के पूर्व में थी। भागवत के अनुसार, सूर्यवंशी इक्ष्वाकु के बंधु आनर्त के द्वारा बसी थी परन्तु वह यादवों के अधिकार में कैसे पहुँच गई, इसका कोई उल्लेख नहीं मिला। जैसलमेर के पुराने ग्रंथों से मालूम होता है कि सबसे पहले प्रयाग, उसके बाद मथुरा और फिर द्वारका की स्थापना हुई। ये तीनों नगर आरंभ से ही प्रसिद्ध रहे हैं शकुन्तला। का बेटा भरत प्रयाग में ही रहा करता था। रामायण के अनुसार, सूर्यवंशी लोगों के साथ हैहय वंशियों की लड़ाई में शशविंधी लोग (संदर्भ) जो यदुवंशी की एक शाखा थी, हैहय वंश वालों के साथ शामिल हो जाते थे। चेदी राज्य को कायम करने वाला शिशुपाल इसी शशविंधी वंश का था, जो कृष्ण का शत्रु था। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार, सिकन्दर के आक्रमण के समय मथुरा के आसपास के निवासी सूरसेनी कहे जाते थे। सूरसेन नाम के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। उनमें एक तो कृष्ण का पितामह और दूसरा आठ शताब्दी पहले हुआ था। उन्हीं में से किसी के द्वारा सुरपुर नामक राजधानी की प्रतिष्ठा हुई थी।

हस्तिनापुर राजा हस्ती का बसाया हुआ था, जो एक प्रसिद्ध चंद्रवंशी राजा था। महाभारत के बाद हस्तिनापुर का अस्तित्व बहुत समय तक कायम रहा। फिर सिकन्दर के आक्रमण का इतिहास लिखने वाले यूनान के लेखकों ने इस प्राचीन नगरी का उल्लेख क्यों नहीं किया, यह समझ में नहीं आता। भारत में सिकन्दर के आक्रमण का समय महाभारत के बाद अनुमानतः आठ सौ वर्षों के बाद का था। सिकन्दर के साथ युद्ध करने वाला पोरस राजा था। पोरस नाम के दो राजा हुए हैं। एक तो पुरुवंशी था और दूसरा पंजाब की सीमा पर रहता था, इस दशा में यह बात समझ में आती है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय

पोरी लोग चन्द्रवंशी थे। अजमीढ़, देवमीढ़ और पुरमीढ़ नाम की शाखायें राजा हस्ती से सम्बंध रखती हैं। अजमीढ़ से उत्पन्न होने वाले भारत के उत्तरी भागों में पहुँच गये थे। वह समय ईसा से 1600 वर्ष पहले का मालूम होता है। अजमीढ़ के पश्चात् चौथी पीढ़ी में बाजस्व नामक राजा हुआ उसने सिंध नदी के समीपवर्ती सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। उसके पाँच बेटे हुए और उन पाँचों के नाम से उस प्रदेश का नाम पाञ्जालिक [1] पड़ा। उसके छोटे भाई कम्पिल ने कम्पिल नगर नाम की राजधानी कायम की थी। अजमीढ़ की दूसरी स्त्री केशनी थी। उसके बेटों ने एक नया राज्य कायम किया और एक वंश चलाया। उसका नाम कुशिक वंश है। कुश के चार बेटे पैदा हुये। उसके एक पुत्र कुशनाभ ने गंगा किनारे महोदय नाम का एक नगर बसाया था। उसका नाम बाद में कान्यकुब्ज और फिर कन्नौज हो गया। सन् 1193 ईस्वी में शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण के समय यह एक प्रतिष्ठित नगर था और उस समय गाधीपुर अथवा गाधी नगर कहलाता था। इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि प्राचीन काल में यह नगर पचास कोस अर्थात् पैंतीस मील के घेरे में बसा था और इस नगर में तीस हजार केवल तंबोलियों की दुकानें मौजूद थीं। उसकी यह अवस्था छठी शताब्दी तक बराबर कायम रही। बारहवीं शताब्दी में जयचन्द के बाद उस नगर का भी सर्वनाश हुआ। कुश के दूसरे पुत्र कुशाम्ब ने भी कौशाम्बी नामक नगर की प्रतिष्ठा की थी। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह नगर बराबर कायम रहा। गंगा के किनारे कन्नौज से दक्षिण की तरफ उस नगर के खंडहर अब भी पाये जाते हैं। कुश के बाकी दो बेटों ने भी नगरों की स्थापना की थी परन्तु उनके कोई विवरण नहीं मिलते।

कुश से सुधन्वा और परीक्षित नामक दो पुत्र पैदा हुए। प्रथम पुत्र का वंश जरासंघ के समय तक चला। उसकी राजधानी बिहार प्रांत में गंगा के किनारे राजगृह में थी। परीक्षित के वंश में शान्तनु और बलिक अथवा बाल्हीक राजा हुआ। युधिष्ठिर और दुर्योधन शान्तनु के वंशज थे और बाल्हीक राजा से जो पैदा हुए वे बाल्हीक पुत्र कहलाये। कुरु की राजगद्दी का उत्तराधिकारी दुर्योधन प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर में रहा करता था लेकिन युधिष्ठिर ने जमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया था। उसका नाम बाद में बदल कर आठवीं शताब्दी में दिल्ली हो गया।

बाल्हीक के पुत्रों ने पालिपोत्र और आरोड़ नामक दो राज्य स्थापित किये थे। पहला गंगा के किनारे और दूसरा सिन्धु नदी के किनारे था।

चंद्रवंश के सभी राजा ययाति के प्रथम और छोटे बेटे यदु और पुरु के वंशज थे। ययाति के बाकी लड़कों के सम्बंध में कोई विवरण नहीं पाया जाता। उरु अथवा उरसु, जिसे कुछ विद्वानों ने तुरवसु लिखा है, ययाति के वंश की एक प्रसिद्ध शाखा है। उरु अपने राजवंश का मूल पुरुष था। उसके वंशजों ने अनेक राज्यों की स्थापना की थी। उससे आठवाँ राजा विमुत हुआ। उसके आठ पुत्र पैदा हुए लेकिन द्रुहा और बभ्रु नामक दो पुत्रों के सिवाय बाकी का कोई विवरण नहीं मिलता। इन दो पुत्रों से दो वंशों की शाखायें निकलीं। द्रुह्य के वंश में गान्धार और प्रचेता नाम के दो राजा हुए। उनके द्वारा भी एक-एक राज्य की स्थापना हुई।

दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ विवाह किया था और भरत शकुन्तला का बेटा था। कालिंजर, केरल, पाण्ड्य और चोल नामक प्रपौत्र राजा दुष्यंत के पैदा हुए थे और उन्होंने

---

1. शशविंधी शब्द शशक से सम्बंध रखता है। सीसोदिया वंश की उत्पत्ति इसी वंश से मानी जाती है। सीसोदाग्राम में रहने के कारण वहाँ के लोग सीसोदिया अथवा शीशोसिया कहलाये, ऐसा भी कहा जाता है।

अपने-अपने नाम से राज्यों की स्थापना की थी। वुन्देलखण्ड में कालिंजर का प्रसिद्ध किला है और आज तक अपनी अनेक वातों के लिये प्रसिद्ध है। केरल द्वारा स्थापित केरल देश मलवार से मिला हुआ है। इसी को कोचीन कहते हैं। पाण्ड्य का स्थापित किया हुआ राज्य मलवार के दूसरे किनारे पर है जो पाण्ड्य मंडल अथवा पांड्य राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। चोल सौराष्ट्र प्रदेश में प्रसिद्ध द्वारका के पास बसा हुआ है।

वभ्रु से एक दूसरे वंश की शाखा निकली और उसके चौतीसवें राजा अंग ने अंगदेश की स्थापना की। उसकी राजधानी चम्पामालिनी थी। इसकी स्थापना कन्नौज के साथ-साथ ईसा से 1500 वर्ष पहले हुई थी। राजा अंग के नाम से उसका वंश चला और प्राचीन हिन्दुओं के इतिहास में अंगवंश को वड़ी ख्याति मिली। इस वंश का अंत पृथुसेन के साथ हुआ।

मनु तथा वुध से लेकर राम, कृष्ण, युधिष्ठिर एवं जरासंध तक सूर्य और चन्द्रवंश के सम्वंध में ऊपर संक्षेप में लिखा गया है। इन प्रसिद्ध दोनों वंशों के सम्वन्ध में वहुत-सी काम की वातों का स्पष्टीकरण हो गया है, इस वात की आशा करना चाहिए।

□

अध्याय 5
भागवत व पुरुणो के अनुसार राजवंश

इक्ष्वाकु से लेकर रामचंद्र तक, बुध से लेकर कृष्ण तथा युधिष्ठिर तक सूर्य और चंद्रवंश[1] की विवेचना करके और बारह सौ वर्षों के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालकर आगामी पृष्ठों में वंशावलियों के दूसरे भाग पर हमने लिखने की कोशिश की है। मेवाड़, जयपुर, मारवाड़ और बीकानेर के वर्तमान राजपूत और उनकी अनेक शाखाओं के लोग अपने को रामचंद्र का वंशज बताते हैं। इसी प्रकार जैसलमेर और कच्छ के राजवंश जो सतलज नदी से समुद्र के किनारे तक भारत के समस्त मरुस्थल में फैले हुए हैं, बुध एवं कृष्ण के वंश में अपनी उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं।

रामचंद्र और कृष्ण के पश्चात् सूर्य और चंद्र वंश में जो राजा लोग पैदा हुए, उनके सम्बंध में यहाँ पर तीन राजवंशों का वर्णन किया जाता है–

(1) सूर्य वंश अर्थात् रामचंद्र के वंशज।
(2) इंदुवंश अर्थात् पांडुवंशी युधिष्ठिर के वंशज।
(3) इंदुवंश अर्थात् राजगृह के राजा जरासंघ के वंशज।

आजकल सूर्यवंशी सभी राजूपत, रामचंद्र के बेटे लव और कुश का वंशज होना स्वीकार करते हैं। मेवाड़ के राणा और बड़गूजर लोग अपनी उत्पत्ति रामचंद्र से बतलाते हैं। नर्बर और आंबेर के कुशवाहा कुश के वंशज माने जाते हैं। मारवाड़ का राजवंश भी इसी वंश में अपनी उत्पत्ति मानता है। आंबेर राज्य के राजा ने जो वंशावलियाँ तैयार करायी हैं उनमें मेवाड़ के राजवंश की उत्पत्ति राम के बड़े पुत्र लव से मानी गयी है और उसमें लव से सुमित्र तक एक नामावली दी गयी है।

बाहुमान रामचंद्र से चौंतीसवीं पीढ़ी में हुआ था। उसके शासन का समय रामचंद्र से छ: सौ वर्ष बाद में होने का अनुमान किया जाता है। भागवत के अनुसार, सूर्य अर्थात् राम के वंश का अन्त सुमित्र के साथ दिया गया है। पुराणों के अनुसार, सुमित्र राम के वंश का अंतिम राजा था। इस हिसाब से सूर्यवंश के 56 राजा होते हैं। लेकिन सर विलियम जोंस ने उनकी संख्या 57 लिखी है। यदि उनकी संख्या 56 ही मान ली जावे तो रामचंद्र से सुमित्र तक का समय जो विक्रमादित्य से कुछ ही पहले बीता है, 1120 वर्ष

1. संस्कृत में इंदु और सोम को चंद्र कहते हैं। इसलिये इंदुवंश और सोमवंश का अभिप्राय चंद्रवंश से है। यह भी संभव हो सकता है कि हिन्दू शब्द इंदु से ही बना हो।

का होता है और रामचन्द्र से युधिष्ठिर तक 1100 वर्ष का समय ऊपर लिखा जा चुका है। इसका अर्थ यह निकलता है कि सूर्यवंश के प्रतिष्ठाता इक्ष्वाकु से सुमित्र तक का समय 2200 वर्षों का होता है।

पांडुवंशी युधिष्ठिर की सन्तानों के इंदुवंश की वंशावली राजतरंगिणी और राजावली से ली गयी है। ये दोनों पुस्तकें प्रामाणिक हैं। जो राजवंशों के इतिहास और उनकी वंशावली के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों में युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक इन्द्रप्रस्थ और दिल्ली में शासन करने वाले सभी वंशों की वंशावलियाँ दी गयी हैं। 'तरंगिणी' जैन देवताओं की वंशावली की पुस्तक मानी जाती है। इसलिए उसका आरंभ आदिनाथ अथवा ऋषभ देव से किया गया है। ऊपर जिन राजवंशों के विवरण दिये जा चुके हैं, इस पुस्तक में उन वंशों के प्रसिद्ध राजाओं के नाम देकर धृतराष्ट्र और पांडु एवं उनकी संतान की उत्पत्ति के विवरण भी दिये गये हैं।

यहाँ पर यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि पूर्व और पश्चिम के सभी देशों में राजवंशों की उत्पत्ति लिखने के समय बहुत कुछ आधार कल्पनाओं का लिया गया है। हिन्दू ग्रंथों में पांडु की उत्पत्ति ठीक उसी प्रकार की कल्पित कथाओं के साथ पढ़ने को मिलती है। जिस प्रकार पश्चिमी देशों में रोमूलस[1] की उत्पत्ति। पांडु की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने हस्तिनापुर में उपस्थित समस्त बंधुओं के सामने पांडवों के जन्म को कलंक पूर्ण बतलाया था। लेकिन इसका कोई प्रभाव न पड़ा था और पांडव बंधुओं में ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार मिला था। इस प्रकार युधिष्ठिर को राज्याधिकार मिलने में समस्त ब्राह्मणों और पंड़ितों ने सहायता की थी।

पांडवों के विरुद्ध दुर्योधन तरह-तरह के षडयंत्र करने में लगा रहा और उसकी कूटनीति से व्यथित होकर पांचों पांडवों ने राजधानी छोड़कर कुछ समय के लिये गंगा के क़िनारे कहीं जाकर समय बिताने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार सिन्धु नदी के समीपवर्ती देशों की तरफ वे चले गये। उस अवस्था में पांचाल के राजा द्रुपद ने अपने यहाँ उनको स्थान देकर उनकी सहायता की। राजा द्रुपद की राजधानी कम्पिलनगर में थी। उसी अवसर पर राजा द्रुपद की राजधानी में आस-पास के अनेक राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में आये हुए थे। उस स्वयंवर में द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला पहनायी। उस पर उपस्थित राजाओं ने अर्जुन के साथ युद्ध किया लेकिन अर्जुन के साथ युद्ध में सभी पराजित हुए और द्रौपदी अर्जुन के साथ जाकर पांचों भाइयों की स्त्री[2] हुई। विवाह की इस प्रकार की प्रथा शक लोगों में भी पाई जाती है।

1. रोमूलस ने रोम नगर की स्थापना की थी। उसकी उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि विष्टा नाम की एक प्रसिद्ध देवी थी। उसकी पूजा करने वाली लड़कियाँ आजन्म अविवाहित रहती थीं। यदि उस देवी की कोई पुजारिन अपना सतीत्व भ्रष्ट करने के अपराध में पाई जाती थी तो उस अपराध के दंड में उसको जीवित जमीन में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया जाता था और उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाली संतान को टाइबर नदी में फेंक दिया जाता था। सिल्विया नामक एक महिला उस देवी की पुजारिन थी। उससे भी इसी प्रकार का अपराध हुआ और मार्स अर्थात् मंगल देवता से उसके दो बेटे पैदा हुए। माँ और बेटों के साथ वही किया गया, लेकिन बेटे किसी प्रकार बच गये। उन दोनों पुत्रों का पालन-पोषण जंगल में रहने वाली एक कुतिया ने अपना दूध पिला कर किया। रोमूल उन दो पुत्रों में से एक था।
2. एक स्त्री के एक से अधिक पतियों का होना प्राचीन काल में एक साधारण रस्म थी। जैसाकि हेरोडोटस ने शक जाति के सम्बंध में लिखा है और सीथियन लोगों की बहुत सी इस प्रकार की बातों का उल्लेख किया है। विवाह की एक रस्म यह भी उस समय पाई जाती थी, परन्तु हिन्दू टीकाकारों ने इस ऐतिहासिक सत्य पर धूल डाल कर द्रौपदी के पाँच पतियों के सम्बंध में अर्थहीन बातों की जनश्रुति पैदा करने में सहायता की है।

हस्तिनापुर से पांडवों का निकल जाना धृतराष्ट्र को असह्य हो रहा था। उसकी कोशिश से पांडव बुलाये गये और राज्य का बँटवारा किया गया। हस्तिनापुर का अधिकार दुर्योधन को मिला। इसलिए युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ नामक नई राजधानी कायम करनी पड़ी। महाभारत के बाद युधिष्ठिर ने अपने नाम का एक सम्वत् निकाला और अपने भतीजे के पुत्र परीक्षित को राज्य का अधिकारी बना दिया। युधिष्ठिर का चलाया हुआ सम्वत् 1100 वर्ष तक प्रचलित रहा। हुआ यह कि उसी वंश के उज्जैन के तोंमर राजा विक्रमादित्य ने इन्द्रप्रस्थ को पराजित कर अपने अधिकार में ले लिया और अपने नाम का एक नया सम्वत् चलाया, जिसके कारण युधिष्ठिर का चलाया हुआ सम्वत् समाप्त हो गया।

इन्द्रप्रस्थ की राजधानी कायम हो जाने के बाद हस्तिनापुर का वैभव क्षीण हो गया और आस-पास के समस्त राज्यों में पाँचों पांडवों का वैभव बहुत बढ़ गया था। उन सभी राजाओं ने पांडवों की अधीनता को स्वीकार कर लिया था। ऐसे समय पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का निर्णय किया। इस यज्ञ में अर्जुन के संरक्षण में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। वह बारह महीने तक बराबर घूमता रहा और किसी ने उसको पकड़ा नहीं। इसके बाद इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ हुआ। इस प्रकार के यज्ञ में सभी कार्य राजाओं को ही अपने हाथ से स्वयं करने पड़ते थे। इसमें भी ऐसा ही हुआ और हस्तिनापुर के राजा को प्रसाद बाँटने का काम दिया गया। दुर्योधन और उसके बन्धुओं ने उसे अपना अपमान समझा। इससे कौरवों[1] और पांडवों के बीच ईर्ष्या बढ़ी। दुर्योधन ने युधिष्ठिर के विरुद्ध जितने षडयंत्र किये थे, उनमें उसे कोई सफलता न मिली थी। युधिष्ठिर की धर्मनीति से सभी लोग प्रसन्न थे। इसलिए दुर्योधन ने जुआ खेलने का एक नया षड़यंत्र युधिष्ठिर के साथ रचा। यह जुआ खेलने की प्रथा भी सीथियन[2] (शक लोगों) की है, जो राजपूतों में अब तक चली आ रही है।

दुर्योधन के साथ जुआ के जाल में युधिष्ठिर फंस गया। फलस्वरूप, वह अपना राज्य खो बैठा और अपने शरीर के साथ-साथ अपने भाइयों तथा स्त्री द्रौपदी को भी हार गया। इससे वह अपने परिवार के साथ बारह वर्ष के लिए अपने राज्य से चला गया। उसके बाद कौरवों और पांडवों में जो युद्ध हुआ, वह महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युद्ध में और हजारों की संख्या में लोग मारे गये।

अन्त में युधिष्ठितर की विजय हुई।युधिष्ठरके उसके हृदय पर इसका घातक प्रभाव पड़ा। वह सांसारिक जीवन से उदासीन हो गया। युद्ध में युधिष्ठिर के भाई भीम के द्वारा दुर्योधन मारा गया था इसलिये हस्तिनापुर में युधिष्ठिर ने दुर्योधन का अंतिम संस्कार किया। इसके बाद अपने प्रपौत्र परीक्षित को राजसिंहासन पर बिठाकर वह कृष्ण और बलदेव के साथ द्वारका चला गया। सन् 1740 ईस्वी तक महाभारत के 4636 वर्ष बीत चुके थे। महाभारत में जो लोग बच गये थे वे सब युधिष्ठिर के साथ द्वारका चले गये थे। वहाँ पर एक भील के द्वारा कृष्ण के प्राणों का अंत हुआ। महाभारत में युद्ध करके वे लोग शरीर और मन से इतने थक गये थे कि युधिष्ठिर के साथ के लोग अब युद्ध करने योग्य

1.. दुर्योधन और युधिष्ठिर के राज्य अलग हो जाने पर उसके वंश अलग-अलग चले। दुर्योधन ने अपने आदि पुरुष कुरु के नाम से कौरव वंश और युधिष्ठिर ने अपने पिता पांडु के नाम से पांडव वंश चलाया। जिस स्थान पर महाभारत हुआ उसका नाम भी कुरु के नाम पर कुरुक्षेत्र रखा गया।
2. शक लोगों में जुआ खेलने की पुरानी प्रथा थी। उन्हीं से राजपूतों में यह प्रथा आयी। इसका वर्णन हेरोडोटस ने किया है। टैटीस ने लिखा है कि जर्मनी के लोग जुआ में अपने शरीर को भी दाँव में लगाते थे। हार जाने पर दाँव पर रखा हुआ आदमी गुलाम की तरह, गुलामों की बिक्री होने वाले बाजारों में बेचा जाता था।

नहीं रह गये थे। कृष्ण के मर जाने के बाद बलदेव और साथ के कुछ आदमियों को लेकर युधिष्ठिर भारत के बाहर, सिन्ध के रास्ते से उत्तर में हिमालय पर्वत पर चला गया। इसके बाद उनमें से किसी का भी कोई समाचार नहीं मिला। इसलिए यह अनुमान किया गया कि वे सब हिमालय की बर्फ में गल गये।[1]

युधिष्ठिर के वंश में परीक्षित से लेकर विक्रमादित्य तक चार वंशों के विवरण दिये गये हैं। उनमें राजपाल तक 66 राजाओं के नाम आते हैं। कुमाऊँ के आक्रमण में वह सुखवन्त के द्वारा मारा गया था और आक्रमणकारी विजयी राजा ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया था। लेकिन उसके बाद विक्रमादित्य ने उसको पराजित किया और गये हुए राज्य को वापस लेकर इन्द्रप्रस्थ से राजधानी हटाकर अवन्ती (उज्जैन) में कायम की। आठ सौ वर्षों तक इन्द्रप्रस्थ में राजधानी नहीं रही। उसके पश्चात् तोमर वंश के प्रतिष्ठाता अनंगपाल ने उसे फिर राजधानी बनायी। वह अपने आपको पांडवों का वंशज कहता था। उस समय से इन्द्रप्रस्थ का नाम बदल कर दिल्ली हो गया।

सुखवन्त राजा ने कुमाऊँ के उत्तरी पर्वतों से आकर दिल्ली पर चौदह वर्ष तक राज्य किया था। उसके बाद विक्रमादित्य ने उसे मार डाला। युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज तक जो क्षत्रिय राजा दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठे उनकी संख्या के बारे में अनेक मतभेद हैं। उनके विवाद में यहाँ पर अधिक लिखना आवश्यक नहीं मालूम होता। जरासंध राजगृह अर्थात् बिहार का राजा था। उसका पुत्र सहदेव और पौत्र मार्जारी महाभारत के समकालीन माने गये हैं। इस दशा में वे दिल्ली के सम्राट परीक्षित के समकालीन थे।

जरासंध के वंश में तेईस राजा हुए। उनमें अंतिम रिपुञ्जय था। उसके मंत्री सुनक ने उसे मार कर राज्य का अधिकार छीन लिया था। सुनक का वंश पाँच पीढ़ी तक चला। उसके वंश के अंतिम राजा का नाम नन्दीवर्धन था। सुनक वंश के राजा का समय 130 वर्ष माना जाता है। शेषनाग नामक एक विजेता की अधीनता में शेषनाग देश के लोग भारत में आये और वे पांडु की गद्दी पर बैठे। उनका वंश दस पीढ़ी तक चल कर अंतिम राजा महानन्द के साथ—जो अनौरस था समाप्त हो गया। इन दस राजाओं का राज्य काल 360 वर्ष का लिखा गया है। चौथी वंशावली इसी तक्षक[2] वंश के चन्द्रगुप्त मौर्य से आरंभ हुई। इस वंश में दस राजा हुए और उनका अन्त 137 वर्ष में ही हो गया। शृंगी नामक देश से आकर पाँचवें वंश के आठ राजाओं ने 112 वर्ष तक यहाँ पर राज्य किया। उसके अंतिम राजा को काण्व देश के एक राजा ने आकर पराजित किया और उसे मारकर उसका राज्य छीन लिया। इन आठ राजाओं में चार शूद्र वंश के थे।

---

1. हिमालय पर्वत पर चले जाने के बाद युधिष्ठिर और बलदेव के संबंध में हिन्दुओं के ग्रंथों में कोई विवरण नहीं मिलता। यहाँ पर यूनान के पुराने ग्रंथों से बहुत कुछ समझने में मदद मिलती है। पांचालिक में जब सिकन्दर ने पूजा के स्थानों की प्रतिष्ठा की थी, उस समय वहाँ पर पुरु और हरिकुलियों के वंशज रहते थे। वहाँ पर यह अनुमान किया जा सकता है कि उन वंशों के बहुत से लोग युधिष्ठिर और बलदेव के साथ चल कर यूनान में जाकर बस गये थे और उन्होंने उस समय यूनानियों पर विजय पायी थी। जब सिकन्दर ने वहाँ पर आक्रमण किया तो पुरुवंशियों और हरिकुलियों ने हरक्यूलीज़ के चित्र का प्रदर्शन किया। हिन्दुओं और यूनानियों के पुराने ग्रंथों का अवलोकन करने से साफ-साफ समझ में आता है कि वे दोनों एक ही स्थान पर उत्पन्न हुए थे। प्लेटो (अफलातून) भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहता है कि यूनान और पूर्वी देशों की प्राचीन बातों में कोई अंतर नहीं है। वे एक ही हैं। यह भी समझ में आता है कि हरिकुलियों का यह दल हेराक्लाइडी लोगों का समूह था जो बाँटने के लिखने के अनुसार, ईसा से 1078 वर्ष पहले पेलोपेनेसस में जाकर बसा था। वह समय महाभारत के समय के बहुत करीब साबित होता है।
2. मोरी वंश का अभिप्राय मौर्य वंश से है। बौद्ध और जैन लेखकों ने इस वंश को सूर्यवंशी माना है, तक्षक वंशी नहीं। ऐसा कुछ अन्य विद्वानों का कहना है।—अनुवादक

उसके बाद शूद्राणी से उत्पन्न होने वाला कृष्ण राजा हुआ। कांडव देश से आया हुआ यह वंश 23 पीढ़ी तक चला। उसके अंतिम राजा का नाम सुलोमधी था। इस तरह से महाभारत के पश्चात् छः वंशावलियाँ दी गयी हैं। उनमें जरासंध के वंशज सहदेव से सलोमधी तक वसायी राजाओं का लगातार क्रम चला है। कुछ छोटी-छोटी वंशावलियाँ भी दी गयी हैं। उनके विवरण यहाँ पर देने की जरूरत नहीं है। संसार के बाकी हिस्से में भी राजाओं का शासन चला है। उनके विस्तार में हम यहा नहीं जाना चाहते। संसार के बाकी शासकों का शासन यहूदियों, स्पार्टावालों और एथीनियन लोगों से सम्बंध रखता है। उनका प्रारंभ ईसा से करीब ग्यारह सौ वर्ष पहले हुआ था। यह समय महाभारत से आधी शताब्दी भी दूर नहीं मालूम होता। इसके साथ-साथ बैविलोन, असीरिया और मीडिया के शासन भी हैं। उनका प्रारंभ ईसा से आठ सौ वर्ष पहले और यहूदी राजाओं के शासन का अंत छः सौ वर्ष पहले हुआ। सम्पूर्ण संसार के प्राचीन इतिहास की खोज गंभीरता के साथ करके एक सही निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

अपने इस प्रकार के निर्णय में हमने हिंदू ग्रंथों के साथ-साथ संसार की अन्य प्राचीन जातियों के ग्रंथों और इतिहासों को भी पूर्ण रूप से समझने की कोशिश की है। इसके साथ ही वेन्टले साहव की तरह के प्रसिद्ध विद्वान लेखकों के निर्णय देकर अपना निर्णय करने की भी हमने चेष्टा की है। इस प्रकार की छानवीन के साथ युधिष्ठिर के सम्वत् का समय संसार की उत्पत्ति से 2825 वर्ष वाद निकलता है। इस हिसाव से अगर 4004 में से अर्थात् संसार की उत्पत्ति से लेकर ईसा के जन्म के समय तक का समय निकाला जाये तो युधिष्ठिर के सम्वत् का प्रारंभ ईसा के 1179 वर्ष और विक्रमादित्य से 1123 वर्ष पहले सावित होता है।

☐

अध्याय 6

राजस्थान के छत्तीस राजवंश व उनकी आक्रमणकारी जातियों से समानता

पिछले पृष्ठों में राजपूत जाति की वंशावली और उसका जो इतिहास लिखा गया है, उसके बाद यहाँ पर उन जातियों के सम्बंध में हम प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे, जिन्होंने समय-समय पर भारत में आकर आक्रमण किया और बाद में वे राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में मानी गयीं।

जिन जातियों का यहाँ पर हम उल्लेख करने जा रहे हैं, वे हय अथवा अश्य, तक्षक, जिट अथवा जिटी के नाम से प्रसिद्ध थीं। उनके देवताओं, विचारों, आचारों और नामों का सामंजस्य अन्य जातियों के साथ इतना अधिक था, जिससे बिना किसी विवाद के इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि वे और चीनी, तातारी, मुग़ल, हिन्दू और शक जातियाँ अपने प्रारंभिक जीवन में एक ही थीं, उन सब का मूल एक था। भारत में जिन बाहरी जातियों ने आकर आक्रमण किये, उनके आने और आक्रमण करने का समय निश्चित रूप में नहीं लिखा जा सकता। लेकिन जिन प्रदेशों से वे भारत में आयीं, उनको आसानी के साथ समझा जा सकता है।

सबसे पहले हमें तातारियों और मुग़लों की उत्पत्ति को देखना है। उनका वर्णन, उनके इतिहास–लेखक अबुलगाजी ने किया है और उनकी उत्पत्ति के सम्बंध में पुराणों में भी उल्लेख मिलते हैं। तातारियों के आदि पुरुष का नाम मुग़ल था। उसके पुत्र का नाम ओगज था। वह उन सब जातियों का आदि पुरुष माना गया, जो उत्तरी प्रदेशों में रहती थीं और तातारी एवं मुग़ल कहलाती थीं।

ओगज के छः बेटे थे[1]। पहला बेटा किऊन[2] था, उसका नाम पुराणों में सूर्य लिखा गया है, दूसरा अय था उसका नाम पुराणों में चन्द्र अथवा इन्द्र लिखा गया था। अंतिम नाम था आयु, जिसको पुराणों ने चन्द्रवंश के एक पूर्वज का नाम माना है। सभी तातारी लोग अपने-आप को आयु अथवा पुराणों में वर्णित चंद्र का वंशज मानते हैं और इसी आधार पर, जर्मन लोगों की तरह वे चंद्रमा को अपना देव मानते हैं।

---

1. इनमें चार पुत्रों के नाम चार तत्वों पर है। इन छः बेटों से तातार की छह जातियाँ चलीं। बहुत समय तक हिन्दुओं ने उनकी दो ही जातियाँ मानीं। बाद में चार को मिलाकर छः और उसके अंत में वे छत्तीस हो गयीं।
2. अबुलगाजी के अनुसार, किऊन का अर्थ तातारी भाषा में सूर्य और चन्द्र होता है।

अय नाम का जो तातारी था, जुल्डस नाम का उसके एक बेटा था और उसके बेटे का नाम ह्यू था। उसके वंशजों से चीन का सबसे पहला राजवंश चला।

पुराणों में लिखे अनुसार आयु के यदु नाम का एक बेटा था। इसका नाम कहीं-कहीं जदु भी कहा गया है। यदु और जदु में उच्चारण के सिवा और कोई अंतर नहीं है उसके तीसरे पुत्र ह्यू से किसी संतान का होना हिन्दू लेखक नहीं मानते परन्तु चीन में लोग उसके वंश में अपने आप को इन्दु की संतान मानते हैं।[1]

अय की नवीं पीढ़ी में एलखा के दो बेटे थे। पहले का नाम काइयान और दूसरे का नगस था। सम्पूर्ण तातार में फैले हुए लोग दूसरे बेटे के वंशज हैं। प्रसिद्ध चंगेज खाँ अपने को काइयान का वंशज मानता था। यह भी माना जा सकता है कि पुराणों और तातारी ग्रंथों में तक्षक और नागवंश[2] का जिक्र किया गया है, उनका संस्थापक नगस रहा हो। डी निगनीस ने उसका नाम तकिपुक मुग़ल लिखा है।

इन तीनों जातियों की उत्पत्ति जिस प्रकार एक दूसरे से मिलती है, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब इन जातियों के देवताओं की उत्पत्तियों पर थोड़ा-सा प्रकाश डालने की आवश्यकता है। पुराणों के मत से इला (पृथ्वी) जो सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु की पुत्री थी, किसी समय जंगल में घूम रही थी। बुध ने उसे पकड़कर उसके साथ बलात्कार किया। उससे जो संतान पैदा हुई, उससे इंदुवंश की उत्पत्ति हुई।

चीनी लोगों का सबसे पहला राजा य (अयू) था। उसकी उत्पत्ति चीनी ग्रंथों के अनुसार इस प्रकार है। यात्रा में एक तारे का उसकी माता के साथ समागम हो गया। उसके गर्भ रह गया और उससे यू की उत्पत्ति हुई। चीनियों का प्रथम राजवंश इसी यू से आरंभ हुआ। यू ने चीन को नौ भागों में बाँटा। उसने ईसा से 2207 वर्ष[3] पहले राज्य करना आरंभ किया था।

इस प्रकार तातारियों का अय, चीनियों का यू और पुराणों का आयु–ये तीनों नाम इस बात को साफ-साफ सिद्ध करते हैं कि इन तीनों जातियों का आदि पुरुष–जिसके वंशजों से इन तीनों का विस्तार हुआ–कोई एक था और उसकी उत्पत्ति चंद्रमा से हुई थी।

इन्दु अथवा चंद्र का बेटा बुध पहला पुरुष था, जिसे हिन्दुओं में वही स्थान मिला, जो चीन में फो को मिला। अब हमें सीथियन अर्थात् शक जाति की उत्पत्ति पर विचार करना है और देखना है कि उस जाति का इन जातियों के साथ क्या सम्बंध था।

सीथियन लोग सबसे पहले अरेक्सीज नदी पर रहते थे। उनकी मूल उत्पत्ति इला अर्थात् पृथ्वी से हुई, जिसके कमर के ऊपर का भाग एक स्त्री के रूप में था और नीचे का भाग एक साँप की तरह था। जूपीटर (बृहस्पति) से उसके एक बेटा पैदा हुआ उसका नाम था सीथीस।[4]

---

1. चीनी ग्रंथों के आधार पर सर विलियम जोन्स ने लिखा है कि चीनी लोग अपने आप को हिन्दुओं की एक शाखा मानते हैं। लेकिन प्राचीन तथ्यों पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दू और चीनी-दोनों चंद्रवंशी जातियाँ हैं और दोनों जातियों के पूर्वज सीथियन (शक) थे।
2. संस्कृत में नाग और तक्षक को साँप कहते हैं। इसको बुध का चिन्ह माना जाता है। भारत में प्रसिद्ध नाग जाति के लोग सीथिया के निवासी तक्षक और तकयुक हैं। इन लोगों ने ईसा से छह शताब्दी पहले भारत में आक्रमण किया था।
3. यह समय और पुराणों में स्वीकार किया गया समय लगभग एक ही है।
4. सीथीस सीथि से बना है, सीथ + ईश, सीथ = शाक द्वीप और ईस अर्थात् स्वामी, इस प्रकार सीथीस

उसके वंशजों ने उसी के नाम से अपनी जाति का नाम रखा। सीथीस के दो पुत्र पैदा हुए। एक का नाम था पालास और दूसरे का नाम था नापास। यहाँ पर यह शंका होती है कि यह वंश तातारियों का नागवंश तो नहीं है, जिसने अपने अनेक कामों के लिये बड़ी ख्याति पायी थी। उन लोगों ने अपनी सेना के बल पर बहुत-सी जातियों पर अधिकार कर लिया था और सीथियन साम्राज्य को पूर्वी महासागर, कास्पियन समुद्र और मोइटिस झील तक पहुँचा दिया था। उस जाति के बहुत राजा थे, जिनके वंश में सैकेन्स अथवा सैंकी, मैसेजेटी अथवा जट या जिट, एरीअस्पियन और दूसरी बहुत सी जातियाँ हैं। उन्होंने असीरिया और मीडिया[1] को जीतकर वहाँ के राज्य का सर्वनाश किया था। सैंकी, जट और तक्षक आदि नाम की अनेक शाखायें उस जाति की थीं। वे सभी जातियाँ और उपजातियाँ राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में आ गयीं। इनके नाम यूरोप की अन्यान्य जातियों के प्राचीन इतिहास में भी मिलते हैं। अब देखना यह है कि उन जातियों का मूल निवास कहाँ पर था।

स्ट्रेबो ने लिखा है कि कास्पियन सागर के पूर्व में रहने वाली सभी जातियाँ सीथिक कही जाती हैं। उन सबके रहने के स्थान अलग-अलग हैं। यह भी पता चलता है कि ये जातियाँ अधिकतर भ्रमण किया करती थीं और आवश्यकता के अनुसार अपने रहने का स्थान बना लेती थीं। बहुत बड़ी संख्या में अपने स्थान से चलकर इन जातियों के लोग किसी देश के लोगों पर आक्रमण करते थे। शक जाति के इन लोगों ने एशिया में भी आक्रमण किया था। हमें इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि इन लोगों के आक्रमण भारत में उस समय हुए, जब उस जाति के समूह ने यूरोप में प्रवेश किया। इसी आधार पर यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि राजपूत और यूरोप की प्राचीन जातियाँ प्राचीन काल में किसी एक ही स्थान पर रहा करती थीं और उनकी मूल उत्पत्ति एक थी। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इन सभी जातियों के देवी-देवता एक थे। उनमें प्रचलित कहानियाँ भी एक थीं। उनमें प्रचलित रीति और रस्में भी एक ही थीं। उनमें एक-सी आदतें पायी जाती थीं। आक्रमण करने की आदतें भी उन सब की एक-सी थीं। उनकी भाषा में कोई अंतर न था। वे एक-से गाने गाते थे। जिस प्रकार की बातों को वे पसंद करते थे, वे सब एक ही प्रकार की थीं। पुराणों के अनुसार, इंदु, सीथिक, जेटी, तक्षक और असी जातियों का आरंभ में भारत में आने तथा शेशनागु (तक्षक) का शेषनाग देश से आने का समय ईसा से छः शताब्दी पहले साबित होता है। इस बात का भी पता चलता है कि लगभग इसी समय इन जातियों ने एशिया माइनर पर आक्रमण करके उसको पराजित किया था। उसके बाद स्कैंड़ीनेविया तथा बाक्ट्रिया के यूनानी राज्य पर हमला करके उसको विध्वंस किया था। इसके कुछ दिनों के बाद असी, काठी और किम्बरी जातियों ने रोमन लोगों पर बाल्टिक सागर के किनारे से आक्रमण किया था।

यहां पर यदि यह साबित किया जा सके कि आदि काल में जर्मनी के लोग सीथियन थे अथवा गांथ या जेटी जाति से सम्वंध रखते थे तो जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचना चाहते हैं, उसके लिए बहुत कुछ रास्ता साफ हो जायेगा। हेरोडोटस के अनुसार, शक लोगों ने ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले स्कैण्डीनेविया पर अधिकार कर लिया था। ये शक लोग मर्कयूरी अर्थात् बुध, ओडन अर्थात् ओडिन की आराधना करते थे और अपने आप को उन्हीं की संतान कहते थे। यूनानियों और गांथ लोगों के देवता एक ही थे और उनके विश्वास भी एक ही प्रकार के थे। उनके देवता केलस और टेरा बुध और पृथ्वी के पुत्र थे। देवी-देवताओं और

1. चन्द्रवंश की अश्व जाति अथवा वाजस्व जाति मीड के नाम से प्रसिद्ध है, जैसे पुरमीड, अजमीड और देवमीड। इस जाति के लोग वाजस्व के पुत्र थे। उनका मूल निवास पाँचालिक देश था। वहाँ से वे लोग असीरिया और मीडिया पर आक्रमण करने के लिये आये थे।

इस प्रकार की सभी बातें स्कैण्डीनेविया वालों की ठीक वही ह३९५ैं, जो यूनान और रोम की हैं। इस प्रकार की अनेक प्राचीन जातियों की सभी बातें एक दूसरङ१ से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। उनके परस्पर विचारों और विश्वासों में कोई अंतर नहीं था। प्राचीन यूरोप की जातियों, राजपूतों और सीथियन अर्थात् शकों की उत्पत्ति एक ही थी। इस पर यहाँ थोड़ा-सा विचार कर लेना चाहिए।

एक विद्वान लेखक ने लिखा है–"तातारियों के साथ हम लोग घृणा करते हैं। लेकिन यदि हम इन तातारियों और अपने पूर्वजों के सम्बंध में थोड़ा-सा विचार करें तो हमें मालूम होगा कि हम में और उनमें कोई अंतर नहीं है। हम दोनों के पूर्वज एक ही थे और वे एशिया के उत्तर से आये थे। हमारे और उनके जीवन की सभी बातें एक-सी हैं। इस प्रकार की बातों को समझ लेने पर उनके प्रति हमारी घृणा की भावना समाप्त हो जायेगी।"

वे सब तातार से आने वाले ही थे, जिन्होंने किम्ब्रियन, केल्ट और गांथ के नाम से यूरोप का समस्त उत्तरी भाग अपने अधिकार में कर लिया था। गांथ, हूण, एलन, स्वीड, बांडल, फ्रैंक आदि जातियों के लोग वास्तव में एक ही थे। स्वीडन इतिहास के अनुसार स्वीड लोग काशगर से आये थे, और सैक्सन तथा किपचक भाषाओं में कोई विशेष अंतर नहीं। ब्रिटनी और वेल्स में अब तक बोली जाने वाली केल्टिक भाषा इस बात का प्रमाण है कि वहाँ के निवासी तातारियों के वंशज हैं।

प्राचीन काल में अनेक प्रदेशों ने सभ्यता में उन्नति की थी। एशिया की ऊँची जमीन पर बसने वाली जातियों का जीवन केवल देहाती नहीं था बल्कि सू लोगों ने जब वहाँ यूची और जिट लोगों पर आक्रमण किया तो आक्रमणकारियों को वहाँ पर एक दो से अधिक ऐसे नगर मिले, जिनमें भारत की तैयार की हुई बहुत-सी व्यावसायिक चीजों की बिक्री होती थी और उनमें यहाँ के राजाओं के चित्रों के साथ सिक्कों का प्रचार था। मध्य एशिया की यह अवस्था ईसा से बहुत पहले थी। उसके बाद इन देशों में ऐसी लड़ाइयाँ हुईं, जिन्होंने उन देशों का सर्वनाश किया। इस प्रकार की लड़ाइयाँ यूरोप में कभी नहीं हुईं।

जेटी, जोट अथवा जिट और तक्षक जातियाँ जो आज भारत के छत्तीस राजवंशों में शामिल हैं, सब की सब सीथिया प्रदेश से आई हैं। पूर्वकाल में उनके स्थान छोड़ने का कारण हमें पुराणों में खोजना चाहिए। परन्तु उनके हमलों के सम्बंध में बहुत-सी बातों की जानकारी महमूद गजनबी और तैमूर के इतिहास से होती है।

जौऊद के पर्वतों से लेकर मकरान के किनारे और गंगा के समीपवर्ती स्थानों में जिट लोग[1] बहुत बड़ी तादाद में रहते हैं। प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों में तक्षक जाति का उल्लेख मिलता है।

इन प्राचीन जातियों के नामों में भी अब परिवर्तन हो गये हैं। जेटी लोग बहुत समय तक स्वतंत्र बने रहे। लेकिन उनको पराजित करने के लिये जब साइरस ने उन पर आक्रमण किया तो टोमिरिस ने उनका सामना किया। कई लड़ाइयों के बाद वे सतलज नदी के पार भागकर चले गये और लाहौर के जिट सरदार की मातहती में रंगरूटों की तरह भर्ती होकर एवं बीकानेर के समीप मरुभूमि में चरवाहों की तरह रहने लगे। बाद में चरवाहों का काम छोड़कर वे लोग काश्तकारी का काम करने लगे।

इन इंदु सीथिक जातियों अर्थात् जेटी, तक्षक, अस्सी, कट्टी, राजपाली, हूण, कैमेरी लोगों के आक्रमणों के बाद इस देश में इन्दुवंश (चन्द्रवंश) के संस्थापक बुध की पूजा का

1. बलूचिस्तान की नूमरी अथवा लोमड़ी जाति के लोग जिट हैं। इन्हीं लोगों को केनेल ने नोमाड़ी नाम देकर अपने लेखों में उल्लेख किया है।

श्री गणेश हुआ। अश्व अथवा वाजस्व का इंदुवंश सिंधु नदी के दोनों किनारों के प्रदेशों में आबाद हो गया। अश्व लोग इंदुवंशी थे। लेकिन यही नाम सूर्यवंशी की एक शाखा का भी पाया जाता है। उनके संबंध में लिखा गया है कि वे लोग घोड़ों की सवारी करते थे और घोड़ों की पूजा भी करते थे और सूर्य देवता को घोड़े की बलि भी देते थे। जेटिक जाति में प्रचलित अश्वमेघ यज्ञ इस बात का एक प्रधान प्रमाण है कि इस जाति के लोगों की उत्पत्ति सीथियन लोगों से हुई, क्योंकि यह प्रथा सीथियन लोगों की बहुत पुरानी है।

ईसा से 1200 वर्ष पहले, सूर्यवंशी राजाओं में गंगा और सरयू के तट पर अश्वमेघ यज्ञ किया जाता था। इसी प्रकार की प्रथा जेटी लोगों में साइरस के समय थी। घोड़े की पूजा और उसका बलिदान देना राजपूतों में आज तक पाया जाता है। स्कैंडीनेविया में घोड़े की पूजा की प्रथा का प्रचार जेटी जाति में अस्सी लोगों द्वारा हुआ और सू, सुएवी, कट्टी, सुकिम्ब्री और जेटी नामक समस्त प्राचीत जर्मन जातियों ने इस प्रथा का प्रचार जर्मनी के जंगलों और एल्ब तथा वेजर नदियों के आस-पास किया। दूध के समान सफेद घोड़े को लोग ईश्वर का अंश मानते थे और उसकी हिन-हिनाहट से भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगाते थे। इस प्रकार का विश्वास गंगा और जमुना के समीप रहने वालों में उस समय से फैला हुआ था, जब स्कैंडीनेविया के पर्वतों और बाल्टिक समुद्र के किनारे तक कोई मनुष्य कभी पहुँच भी नहीं पाया था।

चीन और तातार के इतिहास लेखकों के अनुसार, बुद्ध और फो ईसा से 1027 वर्ष पहले हुए थे। वाक्ट्रिया और जेहुन नदी के किनारे बसने वाले यूची लोग बाद में जेटा अथवा जेटन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका साम्राज्य एशियाई भाग में बहुत समय चला और वह भारतवर्ष में भी फैला हुआ था। यूनानी लोग इनसे इन्डोसीथी के नाम से परिचित थे। उनके जीवन की बहुत-सी बातें तुर्कों की तरह की थीं। शेषनाग देश से तक्षक जाति के आने का समय इसा पूर्व छठी शताव्दी माना गया है।

मूल उत्पत्ति एक होने का सबसे बड़ा प्रमाण भाषा की अपेक्षा धर्म भी है। इसलिये कि भाषा में हमेशा परिवर्तन होता रहा है। लेकिन रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास सदा एक रहते हैं। टैसिटस अपने लेखों में स्वीकार करता है कि जर्मन का प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल उठने पर सबसे पहले स्नान करता था। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जर्मनी के प्राचीन निवासियों की उत्पत्ति जर्मनी की तरह के किसी शीत प्रधान देश की नहीं हो सकती। निश्चित रूप से उनकी उत्पत्ति का स्थान पूर्वी देशों में कहीं पर था। सीथियन, किम्ब्री, जट, कट्टी और सुएबी लोगों की बहुत-सी बातें दूसरी जातियों के साथ मिलती हैं और वे राजपूतों में अब तक पाई जाती हैं।

धार्मिक विश्वासों की समानता पूर्ण रूप से इस बात को साबित करती हैं कि सभी जातियों की मूल उत्पत्ति एक थी। जर्मनी के प्राचीन लोग टुइस्टो (मर्क्यूरी अर्थात् बुध) और अर्था (पृथ्वी) को अपना मुख्य देवता मानते थे। स्कैण्डीनेविया की जेटी जातियों में सुयोनीज अथवा सुएबी एक प्रसिद्ध जाति थी। वह बाद में अनेक जातियों में विभाजित हो गयी थी। उन जातियों के लोग पृथ्वी की पूजा करते थे और उसे प्रसन्न करने के लिए मनुष्य की बलि देते थे।

सुएबी लोग ईसिस (ईस, गौरी) की पूजा करते थे। उदयपुर में अब तक गौरी का त्यौहार मनाया जाता है और उसके मनाने का तरीका ठीक वैसा ही है जैसा कि ऊपर लिखी हुई जातियाँ प्राचीन काल में मनाया करती थीं। इस प्रकार के वर्णन हेरोडोटस ने अपने ग्रंथों में किये हैं।

संसार की सभी प्राचीन जातियों के युद्ध के तरीके एक से थे। उन सबके देवता एक थे। भाषा की विभिन्नता के कारण आज उनके नामों में अंतर आ गये हैं। सभी जातियाँ युद्ध में जाने के पहले देवताओं का स्मरण करती हैं और अपने आदि पुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करती हैं। यह पहले लिखा जा चुका है कि संसार की सभी जातियों का आदि पुरुष एक ही था। प्राचीन काल में युद्ध में जाने वाले लोग अपने-अपने देवता की मूर्तियाँ ले जाते थे। युद्ध में लड़ने की कलाएं उन सभी की एक-सी थीं। सभी जातियों में लोग हथियारों में वर्छा और भालों का प्रयोग करते थे। सुएबी अथवा सुयेनीज लोगों ने उपसाला का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया और उनमें थोर, वोडेन और फ्रेमा नामक अपने देवताओं की मूर्तियाँ रखीं। सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजपूतों में भी ये तीन देवता माने जाते हैं। थोर अर्थात् युद्ध का देवता महादेव अर्थात् शत्रु का नाश करने वाला देवता, दूसरा वोडेन अर्थात् बुध जो रक्षा करता है और तीसरा फ्रेमा अर्थात् उमा जो शक्ति उत्पन्न करने वाली देवी है। बसन्त ऋतु में फ्रेमा का उत्सव मनाने की प्रसिद्ध प्रथा थी। उस उत्सव में स्कैंडीनेवियन लोग सुअर का बलिदान करते थे।

इसी बसंत में राजपूत लोग सबसे बड़ा उत्सव मनाते हैं और बसंत के प्रारंभ में राजपूत राजा सुअर का शिकार करने के लिये अपने सरदारों के साथ जाता है। यदि राजा को सुअर के शिकार में सफलता न मिले तो उसके लिये वह वर्ष अपशकुन का माना जाता है।

पिंकर्टन टॉलेमी के अनुसंधान के आधार पर जटलैंड की जिन छः जातियों का जिक्र किया गया है, उनके देवता और उनके धार्मिक विश्वास उसी प्रकार के थे जैसे कि ऊपर अनेक प्राचीन जातियों के सम्बंध में लिखा गया है। सैमीज ने भी इन बातों का समर्थन किया है।

जटलैण्ड की छः जातियों में किम्ब्री का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उस जाति के लोग अपने जीवन में वीरता को सबसे प्रधान मानते थे। भारत के राजपूतों में जितने भी अच्छे गुण थे और आज भी हैं, उनमें उनकी वीरता प्रमुख है। कोई भी ऐसा राजपूत न मिलेगा, जिसमें इस गुण का अभाव हो।

इस प्रकार की और भी बहुत-सी बातें मिलती हैं जो संसार की विभिन्न प्राचीन जातियों का आदिकाल में एक होना साबित करती हैं। कुमार को राजपूत युद्ध का देवता मानते हैं। हिन्दुओं के ग्रंथों में और उनकी देव-कथाओं में उस देवता के सात सिर बताये गये हैं। सैक्सन लोग अपने युद्ध के देवता के छः सिर मानते थे।

किम्ब्री चेर्सोनीज का मार्स छः सिर वाला माना गया था और वेजर नदी के तट पर उसके नाम का इर्मन स्योल बनाया गया था। सैकेसनी, कट्टी, सीबी अथवा सुएबी, जोटी अथवा जेटी और किम्ब्री जाति के लोग उसकी पूजा किया करते थे।

राजपूतों के धर्म और सिद्धांत बाकी उन हिन्दुओं के धर्म और सिद्धांतों से नहीं मिलते, जो लोग फलों, पत्तियों और पौधों को खाकर जीवन निर्वाह करते हैं और गाय की पूजा करते हैं। राजपूत लोग युद्ध करना और शत्रु का नाश करना पसंद करते हैं, अपने युद्ध के देवता पर वे रक्त और मदिरा चढ़ाते हैं और जिस पात्र में वे अपने देवता का अर्घ्य देते हैं, वह मनुष्य की खोपड़ी का होता है। उनका देवता इन चीजों को पसंद करता है और इसीलिये उनको भी प्रिय है। राजपूतों की ये सभी बातें, उनके कार्य विश्वास और सिद्धांत ठीक उसी प्रकार के हैं, जिस प्रकार स्कैंडीनेवियन वीरों के।

राजपूत भैंसों की हिंसा करते हैं, सुअर और हरिन का शिकार करके उनके मांस को भोजन के रूप में खाते हैं। वे अपने घोड़े, तलवार और सूर्य की पूजा करते हैं और ब्राह्मणों के मंत्रों के मुकावले में वे वीर रस से भरे हुए भाटों की कविताओं को अधिक पसंद करते हैं। ठीक इसी प्रकार का स्वभाव स्कैंडीनेविया के लोगों का पाया जाता है। उनकी देवकथाओं में वीरता के कथानक पाये जाते हैं और उनकी कितावों में वीर रस पूर्ण कवितायें मिलती हैं। पूर्व और पश्चिम की इन जातियों की आलोचना करने से पता चलता है कि इन जातियों के आदि पुरुष एक ही थे और उनकी उत्पत्ति एक दूसरे से भिन्न नहीं है।

भाट कवि राजपूतों को अपनी कवितायें सुनाकर जिस प्रकार युद्ध में जाने के लिये तैयार करते थे, उसी प्रकार प्राचीन काल में सैक्सन लोगों में भी इस प्रकार की प्रथा थी और उनके यहाँ भी कुछ लोग भाट कवियों की तरह का ही काम करते थे। टैसीटस ने उनके सम्वंध में लिखा है–युद्ध में जाने के समय वे लोग जोशीली कवितायें सुनाकर सैक्सन लोगों को युद्ध के लिये तैयार करते थे। राजपूत आज भी रामायण, गीता और अन्य हिन्दू ग्रंथों की अपेक्षा महाभारत और आल्हा अधिक पढ़ते और गाते हैं।

महाभारत के समय से लेकर भारत में आक्रमण करने वाले मुसलमानों की विजय तक इंडो-सीथीक जातियों में रथ की सवारी खूब मिलती है। उसके वाद रथ की सवारी की प्रथा धीरे-धीरे कम होती गई। इसके पहले संसार की प्राचीन जातियाँ लड़ाई में रथों का अधिक प्रयोग करती थीं। रथ की सवारी का प्रचार दक्षिण-पश्चिम भारत में अभी कुछ दिन पहले भी वहुत पाया जाता था और सौराष्ट्र की काठी, कोमानी और कोमारी जातियों का रहन-सहन, उनके स्वभाव विश्व ास और जिन्दगी की वहुत-सी बातें अव तक विल्कुल सीथियन लोगों की तरह की पायी जाती हैं।

प्राचीन जर्मनी और स्कैण्डीनेविया की ज़ातियों, जेटी लोगों और राजपूतों के आचारों, सिद्धांतों और विश्वासों में सबसे अधिक समानता स्त्रियों के प्रति व्यवहारों में मिलती है। वे सभी लोग स्त्रियों के प्रति शिष्टता कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं, मानों उन सभी ने इस विषय में किसी एक ही स्कूल से और एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की है।

टैसीटस ने लिखा है कि जर्मनी के लोग अपनी स्त्रियों पर बहुत विश्वास करते हैं और उनके परामर्श को भविष्यवाणी के रूप में मानते हैं। राजपूतों की भी यही आस्था है। अपनी स्त्रियों का सम्मान करते हैं और उनके मान-समान में वे अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देते हैं।

प्राचीन काल में जुआ खेलने की आदतें सीथियन लोगों में पायी जाती थीं और उन्हीं के द्वारा जर्मनी के लोगों में इस आदत का प्रचार हुआ। राजपूतों में भी जुआ खेलने की आदतें खूब पायी जाती है। जुआ में अपना शरीर, अपनी रियासत और अपने अधिकृत लोगों को दांव में लगा देने और हारने-जीतने की प्रथा सीथियन और जर्मनी के लोगों में थी। भारत में इसी दुर्व्यसन के कारण पांडवों ने अपना राज्य और शारीरिक स्वतंत्रता जुए में हारकर खो दी थी। समस्त हिन्दू जातियों में अव तक इस प्रकार के जुए का प्रचार है, उनके धर्म में भी इस कुप्रथा को स्थान दिया गया और वर्ष में एक दीवाली के अवसर पर जुआ खेलने की आज्ञा दी गई है। वे लोग ऐसा लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये करते हैं।

शकुन और अपशकुन पर इन जातियों का विश्वास वहुत पुराना चला आता है। जेटी जातियों और जर्मन जातियों के लोग प्राचीन काल में शकुन और अपशकुन को बहुत मानते थे। इनको समझने के लिए उनके पास बहुत-सी वातें थीं। चिठ्ठियाँ डालने और पक्षियों को उड़ते देखकर इस प्रकार की बहुत-सी वातों का वे लोग अनुमान लगाकर विश्वास करते थे।

स्कैंडीनेविया की असी जाति और जर्मन जातियों में मदिरा पीने का प्रचार प्राचीन काल में अधिक था। मदिरा सेवन में भी राजपूत जातियों के लोग सीथिया और यूरोप के लोगों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। मदिरा और मादक द्रव्यों के सेवन की आदत भारत में दूसरे देशों से आयी है।

राजपूत लोग अपने अतिथि का सत्कार करना खूब जानते हैं। यहाँ तक कि शत्रुओं के साथ भी जब वे एक बार खा-पी लेते हैं तो उनकी शत्रुता के भाव मिट जाते हैं। इस प्रकार की आदतें भी सीथियन तथा जर्मनों के पुराने लोगों में पायी जाती थीं।

युद्ध के देवता थोर की पूजा करने वाले स्कैंडीनेविया के लोग मनुष्य की, विशेषकर शत्रु की खोपड़ी का प्याला बनाकर रक्त का पान करते थे। उनकी इस प्रथा की समता बहुत-कुछ राजपूतों के देवता महादेव के साथ होती है। महादेव के सम्बंध में इस प्रकार की बातें पढ़ने और सुनने को मिली हैं। महादेव उन सबका रक्षक है, जो सुरा और संग्राम से प्रेम करते हैं। राजपूतों की विशेष श्रद्धा महादेव पर रहती है और इसी आधार पर अपने प्रधान देवता को अर्घ्य देने के लिये रक्त और मदिरा को वे मुख्य पदार्थ मानते हैं।

मनुष्य के लड़ने के बाद मृतक की जो अंतिम क्रिया होती है, उसके सम्बंध में भी प्राचीन जातियों की एकता और समानता मिलती है। इसके सम्बंध में स्कैंडीनेविया में दो प्रकार की प्रथायें पायी जाती थीं। एक तो मृत शरीर को आग में जलाकर भस्म कर देने की और दूसरी उसको पृथ्वी में गाड़ देने की।

ओडिन बुध ने मृत शरीर को पृथ्वी में गाड़ देने की प्रथा का प्रचार किया और वहां पर समाधि बनाने की रस्म भी उसके द्वारा चालू हो गयी। उसी समय मृत पति के साथ उसकी पत्नी के जल जाने की प्रथा का भी प्रचार हुआ। इस प्रकार की बातों का प्रचार भारत में शक द्वीप से अथवा शक-सीथिया से आकर हुआ। हेरोडोटस ने लिखा है–सीथिया में लोग मरने पर चिता में जलाये जाते थे और उनके साथ उनकी पत्नी जीवित जला दी जाती थी।

स्कैंडीनेविया के जेटी, सीवी अथवा सुएवी लोगों में मृत-व्यक्ति के यदि एक से अधिक स्त्रियाँ होती थीं, तो उसकी बड़ी स्त्री को ही अपने पति के साथ जलने का अधिकार था। पति के साथ चिता बनाकर पत्नी के जलने की प्रथा राजपूतों में ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार उसकी प्रथायें अन्य जातियों के सम्बंध में ऊपर लिखी गई हैं। इसका साफ-साफ अर्थ यह है कि आदि काल में सीथिक, स्कैंडीनेविया और राजपूत जातियाँ एक थीं।

हेरोडोटस लिखता है–"सीथियन जेटी लोगों की चिता पर उनके घोड़े जीवित जलाकर उनका बलिदान किया जाता था और स्कैंडीनेविया के जेटी लोगों के मृत शरीर के साथ उनके घोड़े और उनके अस्त्र-शस्त्र जमीन में गड़वा दिये जाते थे। उन लोगों का विश्वास था कि मरने पर मृतक अपने घोड़े पर बैठकर और अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने प्रभु के पास पहुँचेगा, अन्यथा उसे स्वर्ग में पहुँचने के लिये पैदल ही चलना पड़ेगा। राजपूतों में भी उनके घोड़ों के बलिदान की प्रथा इससे मिलती-जुलती है। राजपूत का मृत शरीर शस्त्रों से सुसज्जित चिता पर रखा जाता है और उसका घोड़ा उसके साथ जलाया नहीं जाता, बल्कि उसके देवता के नाम पर उसके किसी पुजारी को अर्पण कर दिया जाता है।

जो राजपूत युद्ध में मारे जाते हैं, उनके चबूतरे, स्तम्भ और किसी अन्य प्रकार के स्मारक बनवाये जाते हैं और इस प्रकार के स्मारक अथवा उनके चिह्न सम्पूर्ण राजस्थान में अब तक पाये जाते हैं जिन पर मृतक को घोड़े पर सवार और सभी प्रकार के शस्त्रों से

सुसज्जित दिखाया जाता है। उसके स्मारक में उसकी सती स्त्री और सूर्य-चन्द्र की आकृति भी पत्थर पर खुदी हुई देखने को मिलती है।

सौराष्ट्र प्रदेश में काठी, कोमानी, वल्ला और दूसरे सीथिक वंश के लोगों में भी इसी प्रकार की प्रथायें प्रचलित थीं। तातार के कोमानी लोगों में उसी प्रकार के पत्थरों को प्रयोग में लाया जाता था, जिस प्रकार के पत्थरों के प्रयोग केल्ट लोगों में होते थे। मृत्यु के वाद इस प्रकार के स्मारक वनाने की प्रणाली प्राचीन जातियों में लगभग एक-सी थी और वह प्रणाली उन सबके एक होने की साक्षी देती है।

राजपूत अपने घोड़े के भक्त होते हैं और शस्त्रों की पूजा करते हैं। तलवार, ढाल, वर्छा और कटार उनके विशेष हथियारों में रहे हैं और आज भी वे लोग अपने शस्त्रों को प्रणाम करते हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर वे उनकी शपथ लेते हैं। प्रसिद्ध इतिहास लेखक हेरोडोटस ने सीथियन जेटी लोगों के सम्वंध में इसी प्रकार की अनेक वातें लिखी हैं।

सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मनी के युवकों में जो प्रणाली काम में लायी जाती थी, ठीक वही राजपूतों में भी चलती है। अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये प्राचीन जातियों में वलि देने की जो प्रथायें थीं वे एक दूसरे से वहुत भिन्न न थीं। वलिदान की प्रथा एक ही थी, वलि दिये जाने वाले पशुओं में भिन्नता थोड़ी वहुत मिलती है। हेरोडोटस ने लिखा है कि स्कैंडीनेविया के लोगों में संक्रांति का त्यौहार वड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता था। राजपूतों और हिन्दुओं में भी यह त्यौहार मनाया जाता है।

मनुष्य जाति की उत्पत्ति होने के वाद भी, जव उनकी संख्या वढ़ी, उस समय उनके द्वारा अलग-अलग नामों से जातियों की उत्पत्ति हुई। आरंभ में उनकी भाषा एक थी, लेकिन वे लोग एक दूसरे से जितने दूर होते गये, उनकी भाषाओं में अंतर शुरू हुआ और धीरे-धीरे उनकी भाषायें भी अलग-अलग वन गयीं। उन प्राचीन भाषाओं का मिलान करने से साफ-साफ जाहिर होता है कि उन सवकी उत्पत्ति किसी एक ही भाषा से हुई है, क्योंकि उन सवकी भाषाओं में अनेक वातों की समता और एकता मिलती है। पशुओं, विभिन्न प्रकार के जीवों और अगणित चीजों के नाम उन भाषाओं में वहुत मामूली अंतर के साथ पाये जाते हैं। प्राचीन जातियों में जो त्यौहार मनाये जाते थे, उनके संस्कार अव तक अनेक वातों में समता रखते हैं। इसी प्रकार अश्वमेघ यज्ञ की प्रथा भी वहुत पुरानी है। इस यज्ञ में भयानक रूप से व्यय किया जाता था और उसका परिणाम विनाश की ओर ले जाता था। भारतीय इतिहास में उसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। विस्तार से उन पर यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता। इस यज्ञ में वहुत-से पक्षियों और जीवों के साथ-साथ, घोड़े का वध किया जाता था। इस प्रकार के वध के समय व्राह्मण वेद-मंत्रों का उच्चारण करते थे। एक अपार भीड़ के वीच में यज्ञ करने वाला राजा यज्ञ के समीप वैठकर वलि दिये जाने वाले जीवों के वलिदानों को देखता था। उन जीवों के हृदयों को जव अग्नि के सुपुर्द किया जाता था तो राजा उसकी सुगंध लेता था, इस यज्ञ में व्राह्मणों को वहुमूल्य स्वर्ण दान में दिया जाता था। इस प्रकार की प्रथायें संसार की प्राचीन जातियों में वहुत कुछ मिलती-जुलती पायी जाती थीं और उनके सम्वंध में प्राचीन धर्मों का विश्वास एक-सा था।

धर्म के नाम पर इस प्रकार न केवल पशुओं के वलिदान की प्रथायें थीं, वल्कि पशुओं की तरह देवता को प्रसन्न करने के लिये मनुष्यों की वलि भी दी जाती थी, जैसा कि केल्टिक ड्रुइन्ट लोगों के सम्वंध में प्राचीन इतिहासकारों ने लिखा है।

विश्व की प्राचीन जातियों के सम्वंध में इस प्रकार जितने भी अनुसंधान किये जा सकते हैं, वे सभी इस वात का सवूत देते हैं कि आरंभ में वे सभी एक थीं और उनकी

उत्पत्ति में भी एक दूसरे से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं रहती थी। धार्मिक विश्वास देवताओं की पूजा, युद्ध की प्रणाली, शिकार करने की आदत, लड़ने के तरीके, युद्ध के गीत, युद्ध के हथियार, उनमें काम आने वाली सवारियाँ, स्त्रियों का सम्मान, जुआ खेलना, मादक चीजों का सेवन, आतिथ्य-सत्कार, पति के साथ पत्नी के जलने की प्रथा, मृत्यु के बाद के संस्कार और शस्त्र पूजा आदि जीवन की सैकड़ों बातें आदि काल में उनके एक होने का प्रमाण देती हैं। जीवन की मोटी-मोटी बातों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। खोज करने के बाद और भी बहुत-सी ऐसी बातें उनके जीवन की मिल सकती हैं, जो हमारे इस अनुसंधान का समर्थन करती हैं कि संसार की सभी जातियों की उत्पत्ति का मूल आधार एक ही है। इसलिये इसके सम्बंध में हमें अब अधिक लिखने और खोज करने की आवश्यकता नहीं है। संसार की प्राचीन जातियों का प्रत्येक इतिहास लेखक इसी सिद्धांत का समर्थन करता है। इसके विरोध में हमें कोई सामग्री नहीं मिली।

□

अध्याय-7

छत्तीस राजवंश व उनकी शाखाएँ राम और कृष्ण के वंशज

राजस्थान के सभी राजवंश छत्तीस भागों में विभाजित माने जाते हैं। इन वंशों की नामावली और उनके विवरण उन साधनों के द्वारा प्राप्त किये गये हैं, जिनके सम्बंध में अधिक विश्वास किया जा सकता है और उनसे अधिक विश्वस्त साधन कोई दूसरा संभव नहीं था।

राजस्थान के जिन छत्तीस राजवंशों का हम इतिहास लिखने जा रहे हैं, वे बहुत-सी शाखाओं अर्थात् उपवंशों में विभाजित हैं और ये शाखायें अगणित प्रशाखाओं अर्थात् गोत्रों में बदल गयी हैं। उनकी संख्या बहुत अधिक है, इसलिये जो अधिक प्रसिद्ध हैं, उन्हीं के विवरण यहाँ पर दिये गये हैं।

इन राजवंशों में कुछ वंश ऐसे भी हैं, जिनकी शाखायें नहीं हैं और उनकी संख्या लगभग एक तिहाई है। उनके साथ-साथ चौरासी व्यावसायिक जातियों की नामावली भी यहां पर दी गयी है, जो विशेषकर राजपूतों की ही शाखायें हैं और इस सूची में उन जातियों के भी विवरण हैं, जो आदि काल में खेती का काम करती थीं अथवा पशुओं के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती थीं।

आरंभ में सूर्य और चन्द्र-दो ही वंश थे। बाद में चार अग्निवंश वालों के मिल जाने से उनकी संख्या छः हो गयी। इनके सिवा अन्य जितने भी वंश हैं, वे सब सूर्यवंश और चन्द्रवंश की शाखायें हैं अथवा उनकी उत्पत्ति इंडो-सीथियन जाति से हुई है, जिनकी गणना भारत में मुस्लिम शासन के पहले, राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में की जाती थी।

गहिलोत अथवा गहलोत-छत्तीस वंशों के आभूषण और चित्तौड़ के स्वामी सूर्यवंशी राणा की वंशावली सभी की सम्मति के अनुसार जैसा कि इस जाति के गौत्र से भी साबित होता है, उपर्युक्त वंश के सभी राजा सूर्यवंशी रामचंद्र के वंशज माने जाते हैं। यह वंश रामचंद्र से निकला है और पुराणों में लिखी हुई वंशावली के अंतिम राजा सुमित्र के साथ इस वंश का सम्बंध है। इस वंश की अधिक बातें मेवाड़ के इतिहास में लिखी गई हैं। यहाँ पर संक्षेप में उनकी उन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है, जो उनके गोत्र और प्रदेशों से सम्बंध रखती हैं अर्थात् जिस गौत्र के लोग कनक सेन के समय से उनके अधीन रहे हैं और जिन्होंने दूसरी शताब्दी में अपना राज्य कौशल को छोड़कर सौराष्ट्र में सूर्यवंश की स्थापना की। विराट के स्थान पर जो पांडवों के वनवास के समय उनके रहने का मशहूर स्थान था,

इक्ष्वाकु के उस वंशज ने अपने वंश की प्रतिष्ठा की और उसके वंशज विजय ने कई पीढ़ियों के पश्चात् विजयपुर[1] बसाया।

इस वंश के लोगों के द्वारा वल्लभी राज्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। लेकिन वे वल्लभी के राजा कहलाये। वहाँ का एक सम्वत् भी चला और उसका आरंभ विक्रम सम्वत् 375 में हुआ।

गजनी अथवा गपनी, वल्लभी राज की दूसरी राजधानी थी। उसका अंतिम राजा शिलादित्य मारा गया था और छठी शताब्दी में उसका परिवार वहाँ से निकाल दिया गया था। गुहादित्य, शिलादित्य का लड़का था, जो उसके मरने के बाद पैदा हुआ था। उसने ईडर नामक छोटे से राज्य पर अधिकार कर लिया और उसी के नाम पर उसका वंश चला। उस समय से यह सूर्यवंशी कुल गहलोत कहलाने लगा। उसके कुछ समय बाद गहलोत वंश अहाड़िया वंश कहलाया और बारहवीं शताब्दी तक इसी नाम से वह प्रसिद्ध रहा। इस वंश के राहप नामक व्यक्ति ने चित्तौड़ की गद्दी पर अपना अधिकार छोड़कर डूंगरपुर में एक अलग राज्य बसाया। उस राज्य के लोग अब तक अपने आप को अहाड़िया के वंश वाले बतलाते हैं।

राहप के छोटे भाई माहप ने अपने राज्य की राजधानी सीसोदा में कायम की और उस समय से उसके वंशज सीसोदा नामक स्थान के नाम पर सीसोदिया कहलाये। उस समय से अब तक यह वंश इसी नाम से विख्यात है। लेकिन यह सीसोदिया उपवंश गहलोत की शाखा माना जाता है।

गहलोत वंश चौबीस शाखाओं में विभक्त हो गया था और उनमें थोड़ी शाखायें अब अपना अस्तित्व रखती हैं। चौबीस शाखायें इस प्रकार हैं —

(1) अहाड़िया डूँगरपुर में, (2) मांगलिया मरुभूमि में, (3) सीसोदिया मेवाड़ में, (4) पीपाड़ा मारवाड़ में, (5) कैलावा, (6) गद्दोर, (7) धोरणिया, (8) गोंधा, (9) मगरोपा, (10) भीमला, (11) कंकोटक, (12) कोटेचा, (13) सोरा, (14) ऊडड़, (15) ऊसेवा, (16) निरूप, (ये 5 से 17 तक बहुत कम संख्या में थे और अब उनके अस्तित्व नहीं मिलते), (17) नादोडया, (18) नाद्योता, (19) भोजकरा, (20) कुचेरा, (21) दसोद, (22) भटेवरा, (23) पाहा और (24) पूरोत। इनमें 17 से 24 तक वंश बहुत पहले से समाप्त हो गये थे।

यदु जिससे यादव वंश चला, सभी वंशों में अधिक प्रसिद्ध था और चन्द्रवंश के आदि पुरुष बुध के वंशजों का यही वंश बाद में प्रसिद्ध हुआ।

कृष्ण का देहांत हो जाने पर युधिष्ठिर और बलदेव के दिल्ली और द्वारका से चले जाने पर यदुवंशी लोग मुल्तान के रास्ते सिंधु के उस पार चले गये। उनके साथ कृष्ण के पुत्र भी गये, उन्होंने जाबुलिस्तान पहुँच कर गजनी नगर की प्रतिष्ठा की और समरकंद तक अपना विस्तार किया।

यादवों ने सिन्धु के पार जाकर पंजाब में अधिकार कर लिया और सलभनपुर को आबाद किया। लेकिन उसके कुछ बाद वे वहाँ से चलकर भारत की मरुभूमि में पहुँच गये और वहाँ से लगंधा, जोहिया और मोहिल आदि लोगों को भगाकर तन्नोट देरावल तथा सम्बत् 1212 में जैसलमेर की प्रतिष्ठा की। यही जैसलमेर कृष्ण के वंशजों भट्टी अथवा भाटी लोगों की अब तक राजधानी है। यहाँ पर भट्टी नाम का एक वंश चला, जिसे भट्टी ने चलाया। इन लोगों ने गारह नदी के दक्षिण की ओर के सभी देशों पर अधिकार कर लिया। लेकिन उनके प्रभाव को राठौड लोगों ने पहुँचकर कम कर दिया।

---

1. यह स्थान विराट के साथ मिलाकर व्यवहार में आता है, अर्थात् विजयपुर विराट गढ़।

यदुवंश से जाड़ेजा[1] नाम की एक शाखा चली और उसे भी बहुत ख्याति मिली। वे लोग भी कृष्ण के ही वंशधर माने गये श्याम अथवा साँवले होने के कारण कृष्ण का नाम श्याम भी पड़ा और उन्हीं के वंशधर होने के कारण जाड़ेजा वंश के लोग अपने आपको श्याम पुत्र अथवा सामपुत्र कहते थे। इन जाति के लोगों में जो राजा हुए, उनकी उपाधि सम्भा थी। इन श्याम पुत्रों के सम्बंध में अनेक प्रकार की बातें लिखी हुई मिलती हैं। उनमें यह भी उल्लेख पाया जाता है कि बहुत समय के बाद श्याम वंशियों ने अपने सम्बंध में स्वीकार किया कि हम लोग शाम अथवा सीरिया से आये हैं और ईरान के जमशेद वंशी हैं। इसी आधार पर शाम के स्थान पर जाम हो गया। इस जाम के नाम पर ही जाम राज्य की भी प्रतिष्ठा हुई।

यदुवंश की आठ शाखायें हैं – (1) यदु करौली के राजा, (2) भाटी जैसलमेर के राजा, (3) जाड़ेजा कच्छ भुज के राजा, (4) समैवा सिंध के मुसलमान, (5) मुड़ैचा, (6) विदमन, (7) बद्दा और (8) सोहा। अंत की इन तीनों शाखाओं का कोई विवरण नहीं मिलता।

तोमर वंश वास्तव में यदुवंश की एक शाखा है, परन्तु उसे छत्तीस वंशों में स्थान दिया गया है। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की थी, जिसका नाम बाद में दिल्ली पड़ा। आठवीं शताब्दी तक वह सुनसान रहा। सन् 742 ईसवी में अनंगपाल तोमर ने फिर से उसके निर्माण का काम किया। उसके बाद उसके बीस वंशज वहाँ के राजसिंहासन पर बैठे। इन बीस में अंतिम राजा का नाम भी अनंगपाल ही था, जिसने पुत्रहीन होने के कारण सन् 1164 ई. में अपनी लड़की के पुत्र पृथ्वीराज को अपने राज्य का अधिकारी बनाया।

राजपूतों में राठौड वंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। लेकिन उसकी उत्पत्ति के सम्बंध में कई प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। राठौड वंश के लोग अपनी उत्पत्ति रामचंद्र के पुत्र कुश से बतलाते हैं। इस आधार पर वे लोग सूर्यवंशी होने चाहिए। लेकिन उस वंश के भाट लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना कुछ और है, जिनको लिखने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं मालूम होती।

राठौडों का प्राचीन स्थान गांधीपुर अर्थात् कन्नौज है। वहाँ पर इस वंश के लोग पाँचवीं शताब्दी में राज्य करते थे और तातारियों ने जब भारत को विजय किया तब, उसके कुछ पहले उन लोगों ने दिल्ली के अंतिम तोमर राजा और फिर चौहान राजाओं के साथ युद्ध किया था। आपसी ईर्ष्या के कारण दिल्ली का चौहान राजा मारा गया और उसकी पराजय से उत्तर-पश्चिम की सीमा की रक्षा का फाटक खुल जाने से कन्नौज का नाश हुआ। कन्नौज के उस सर्वनाश में वहाँ का अंतिम राजा जयचंद जब गंगा में डूबकर मर गया तो उसके पुत्र ने मारवाड़ की मरुभूमि में जाकर अपनी जान बचायी। जयचन्द के इस लड़के का नाम सिहाजी था। उसने मारवाड़ में राठौड वंश की प्रतिष्ठा की।

राठौड़ राजपूतों की चौबीस शाखायें हैं– धाँधला, भडेल, चकित, धूहाड़िया, खोखरा, बदरा, छाजीढ़ा, रामदेवा, कबरिया, हटदिया, मालावत, सुंडू, कटेचा, मुहोली, गोगादेवा, महेचा, जयसिंहा, मुरसिया, चौबसिहा, जोरा आदि।

कुशवाहा–रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशज कुशवाहा कहलाते हैं। इस वंश का नाम कुशवंशी भी है जैसे मेवाड़ के राजपूत लववंशी माने जाते हैं।

---

1. जाड़ेजा राजपूतों के सम्बंध में अनेक भ्रामक बातों का उल्लेख मिलता है। जाड़ेजा जाड़ा के और सामेजा के वंशज थे। वे लोग शाम अथवा सीरिया से न आये थे। यदुवंशी कृष्ण से इन वंशों की उत्पत्ति हुई। कुछ अधिकारियों का इस प्रकार कहना है। –अनुवादक

दो शाखायें कौशल देश से निकली हैं। उनमें से एक ने सोन नदी के किनारे रोहतास की स्थापना की और दूसरी लाहर के पास जाकर कोहारी के दर्रों में रहने लगी। दसवीं शताब्दी में एक शाखा ने अपने स्थान से चलकर बड़गूजर जाति के राजपूतों से राजोर और उसके आस-पास के इलाकों को लेकर आँबेर की स्थापना की। बारहवीं शताब्दी के अंत में भी कुशवाहा वंश के लोग दिल्ली राज्य के सामन्तों में थे। राजस्थान के दूसरे वंशों का जब पतन आरंभ हुआ, उस समय से कुशवाहा वंश की उन्नति आरंभ हुई।

कुशवाहा वंश भी बारह भागों में विभाजित हुआ और ये भाग कोठारियों के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनका वर्णन आगे किया जायेगा।

अग्निकुल अथवा वंश राजपूतों में चार वंश ऐसे हैं, जिनकी उत्पत्ति अग्नि से बतायी जाती है। परमार, परिहार, चालुकू अथवा सोलंकी और चौहान–इस प्रकार चार वंश अग्निवंशी कहे जाते हैं। अग्निवंशी राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बंध में अनेक प्रकार की कथाओं के उल्लेख मिलते हैं। उनका ऐतिहासिक सत्य इतना ही है कि जिस समय ब्राह्मणों के द्वारा अगणित देवी-देवताओं की पूजा का प्रचार बढ़ रहा था, बौद्धधर्म ने उसका विरोध किया और एक ईश्वर की आराधना का प्रचार किया। उस समय ब्राह्मणों ने बौद्धधर्मी लोगों के विरोध का निर्णय किया और इसके लिये आबू की चोटी पर अग्निकुंड बनाकर जिनको संस्कार करके बौद्ध धर्म के विरुद्ध युद्ध करने के लिये तैयार किया, उन राजपूतों की उत्पत्ति अग्नि से मानी गयी और उसी समय से वे और उनके वंशज अग्निवंशी कहलाये।

परमार वंश से पैंतीस शाखाओं की उत्पत्ति हुई और बहुत बड़े विस्तार में उन लोगों ने राज्य किया। उनके विस्तार के कारण ही अब तक लोग कहा करते हैं कि पृथ्वी परमारों की है। परमारों के द्वारा जो राज्य जीते गये अथवा बसाये गये, उनमें माहेश्वर, धार, मांडू, उज्जैन, चंद्रभागा, चित्तौड़, आबू, चन्द्रावती, मऊमैदाना, परभावती, उमरकोट, बेखर, लोद्रवा और पट्टन अधिक प्रसिद्ध हैं। परमार वंश के लोग सम्पत्ति में अनहिलवाड़ा के समान और प्रताप में राजपूतों की तरह के न थे, परन्तु राज्य के विस्तार में उनकी ख्याति अधिक थी।

ऐसा मालूम होता है कि हय अथवा हैहयवंश के राजाओं की प्राचीन राजधानी माहेश्वर, परमार राजपूतों की पहली राजधानी थी। परमार राजपूतों के राज्य की सीमा नर्मदा तक ही न थी, बल्कि राम नामक परमार राजा का राज्य तिलंगाना में भी था और चौहान राजाओं का भाट चंद्र उसे भारत के सम्राट होने की पदवी देता था। लेकिन राम के उत्तराधिकारी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये काफी न थे। इसीलिये उनसे चितौड़ का राज्य गहलोत राजपूतों के द्वारा छीन लिया गया था।

परमार राजपूतों में राजा भोज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भारत में भोज नाम के कई राजा हुए हैं। लेकिन परमारों में इस नाम का एक ही राजा हुआ है, जिसने बहुत ख्याति प्राप्त की थी।

सिकन्दर का प्रतिद्वन्द्वी चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का था पुराणों में उसको तक्षक वंशी लिखा गया है। परमारों की अनेक शाखायें हैं, मोरीवंश उसकी एक मुख्य शाखा है। इस वंश को तुष्टा अथवा तक्षक भी लिखा गया है।

विक्रमादित्य को पराजित करने वाला शालिवाहन तक्षकवंशी था। परमार राजपूतों के महत्त्व को प्रकट करने वाले अब उनके खंडहर ही बाकी रह गये हैं। इस देश की मरुभूमि में घाट का राजा इस वंश का अंतिम राजा था। वह सोढा कुल में पैदा हुआ था, यह कुल परमार राजपूतों की एक प्रसिद्ध शाखा थी। इसी घाट के राजा के एक वंशज ने हुमायूँ को अपनी राजधानी अमरकोट में उस समय शरण दी थी, जब वह तैमूर के राजसिंहासन से

निकाला गया था और भारत में उसे कोई राजा शरण देने को तैयार न था। इसी अमरकोट में हुमायूँ का पुत्र अकबर पैदा हुआ था।

परमार वंश में कुल पैंतीस शाखायें थीं और उनमें विहल नाम की शाखा अधिक प्रसिद्ध हुई। इस शाखा के राजाओं का राज्य चन्द्रावती में था, जो अरावली पहाड़ के बिल्कुल नीचे था। बीजोल्याँ का सरदार राणा के दरबार में सम्मानित स्थान पर था, वह प्राचीन घाट शाखा का परमार राजपूत था।

परमारों की पैंतीस शाखायें इस प्रकार हैं :–

मोरी – इस शाखा में चन्द्रगुप्त और गहिलोतों से पहले के चित्तौड़ के राजा हुए।

सोड – सिकन्दर के समय के सोगडी जो भारत की मरुभूमि में घाट के राजा थे।

साँखला – पूँगल के जागीरदार और मारवाड़ में।

खैर – इनकी राजधानी खेरालू थी।

ऊमरा और सूमरा – पहले ये लोग मरुभूमि में रहते थे और अब इस शाखा के लोग मुसलमान हैं।

वेहिल अथवा बिहिल – चन्द्रावती के राजा।

मैयावत – मेवाड़ में बीजील्याँ के आधुनिक जागीरदार।

बुल्हर – मरुभूमि के उत्तरी भाग में।

कावा – पहले सौराष्ट्र देश में रहते थे और आजकल उनमें से कुछ लोग सिरोही में पाये जाते हैं।

ऊमट – मालवा में ऊमटवाड़ा के राजा। वहाँ पर इस शाखा के लोग बारह पीढ़ी से रहते हैं। परमार राजपूतों के अधिकार में जितने भी प्रदेश हैं, ऊमटवाड़ा सबसे वड़ा है।

रेहवर, ढुंडा, सोरटिया, हरैर – मालवा में इन शाखाओं के लोग छोटे-छोटे जागीरदार हैं।

इनके सिवा अन्य शाखायें बहुत साधारण हैं, जैसे :– चौंदा, खेचड़, सुगडा, बरकोटा, पूनी, सम्पल, भीवा, कालपुरस, कालमोह, कोहिला, पूया, कहोरिया, धुन्ध, देवा, वरहर, जीप्रा, पोसरा, धूँता, रिकमवा, ढीका आदि। इनमें से कई शाखाओं के लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है।

चौहान – चौहान वंश को चाहुमान[1] भी लिखा गया है। चौहान समस्त राजपूतों में शूरवीर रहे हैं। इनके संबंध में किसी को विरोध नहीं हो सकता है। इस वंश की शाखाओं के लोगों में भी बहादुरी के कार्य सदा रहे हैं। चौहानों की चौबीस शाखायें हैं, उनमें हाड़ा, खीची, देवड़ा, सोनगरा शाखायें अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध रही हैं।

चौहान का अर्थ है, चार बाँह वाला अर्थात् चतुर्भुज। पुराणों की कथाओं के अनुसार, दैत्यों से लड़ने के लिये जिनको ब्राह्मणों ने भेजा था, उनमें चौहान के सिवा दैत्यों से सभी पराजित हुए थे। चौहानों की उत्पत्ति के सम्बंध में हिन्दुओं की जो पौराणिक कथा है, उसको यहाँ पर संक्षेप में लिखना आवश्यक मालूम होता है। वह इस प्रकार है –

आबू पर्वत को जिसे संस्कृत में अर्बुटगिरि कहा जाता है, हिन्दू ग्रंथों में बहुत पवित्र माना गया है। उसके सम्बंध में लिखा गया है कि उसकी चोटी पर केवल एक दिन का व्रत करने से मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

---

1. कुछ विद्वानों की धारणा है कि चाहुमान चौहान वंश का आदि पुरुष था और उसी के नाम से चौहान वंश चला।

किसी समय इस आबू गिरि पर कुछ मुनि तपस्या कर रहे थे। दैत्यों ने उनको तंग करना शुरू कर दिया। वे मुनियों के तप और यज्ञ को भंग करने लगे। यह देखकर ब्राह्मणों ने दैत्यों को रोकने के लिये एक अग्निकुंड खोदा। लेकिन दैत्यों ने ऐसी आँधियाँ उठाई कि जिससे चारों दिशायें अंधकारपूर्ण हो गयीं और वहाँ पर मुनियों तथा ब्राह्मणों के द्वारा जो यज्ञ हो रहे थे, उनमें विष्ठा, रक्त, अस्थि और माँस की वर्षा होने लगी। इससे मुनि और ब्राह्मण बहुत घबराये। अंत में मुनियों और ब्राह्मणों ने अग्नि कुंड को प्रज्जवलित किया और दैत्यों के विनाश के लिए महादेव से प्रार्थना की। उस प्रार्थना के बाद अग्नि कुंड से एक पुरुष निकला। परन्तु वह देखने में योद्धा नहीं मालूम होता था इसलिये ब्राह्मणों ने उसे द्वारपाल बनाकर वहीं पर बैठा दिया। उसका जो नाम रखा गया, उसका अर्थ पृथिहार अथवा परिहार होता है। उसके बाद दूसरा पुरुष निकला, उसका नाम चालुकू हुआ। तीसरा पुरुष जो निकला, उसका नाम परमार रखा गया। वह दैत्यों से युद्ध करने गया, लेकिन वह पराजित हुआ। इसके बाद देवताओं से फिर प्रार्थना की गयी तो अग्नि कुंड से एक दीर्घकाय और उन्नत ललाट का पुरुष निकला। उसके सम्पूर्ण शरीर में युद्ध के वस्त्र थे। वह एक हाथ में धनुष और दूसरे में तलवार लिये था। ठसका नाम चौहान रखा गया। चौहान को दैत्यों से लड़ने को भेजा गया तो उसने दैत्यों को पराजित किया। कुछ मारे गये और कुछ भाग गये। दैत्यों के सर्वनाश से मुनि और ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उस चौहान के नाम से उसके वंश का नाम चौहान वंश चला और उसी वंश में पृथ्वीराज चौहान पैदा हुआ।

चौहानों के वंश-वृक्ष से पता चलता है कि चौहानों का आदि पुरुष अनहिल नाम का था। उससे लेकर पृथ्वीराज तक जो भारत का अंतिम सम्राट था–सब मिलाकर उन्तालीस राजा चौहानों में हुए। चौहानों के इतिहास के अनुसार, अजयपाल चौहान ने अजमेर के दुर्ग का निर्माण किया था। चौहानों की राजधानियों में उनकी वहाँ पर भी एक राजधानी थी।

चौहानों की चौबीस शाखायें हैं। उनमें बूंदी और कोटा के वर्तमान राजवंश अधिक प्रसिद्ध हैं। वे राजवंश हाड़ौती की शाखा में हैं और युद्ध में वहादुर रहे हैं। गागरोन और राधोगढ़ के खीची, सिरोही के देवड़े, जालौर के सोनगरे, सूयेबाह और सांचोर के चौहान, पावागढ़ के पोवेचे लोग अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध रहे। चौहान वंश के सरदारों ने अपनी जन्म भूमि के सम्मान के लिए अपना सर्वस्व त्याग किया। इनमें क़ामयखानी, सुरवानी, लोवानी, कुरवानी और वैदवान लोग जो शेखावाटी में रहते हैं, वहुत प्रसिद्ध हैं।

चौहानों की चौबीस शाखायें इस प्रकार हैं –चौहान, हाड़ा, खीची, सोनगरा, देवड़ा, थाविया, संचोरा, गोएलवाल, भदौरिया, निर्वाण मालानी, पूर्बिया, सूरा, मादड़ेचा, संक्रेचा, भूरेचा, वालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, टोसिया, चाँदू, नुकुम्प, भावर और बंकट।

चालुकू अथवा सोलंकी – इस वंश की ख्याति के सम्वंध में हमें ऐतिहासिक सामग्री अधिक नहीं मिली। भाटों की कथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोलंकियों का राज्य उस समय गंगा के किनारे सोरूँ में था, जब राठौर राजपूतों ने कन्नौज में अधिकार प्राप्त नहीं किया था। वंशावली के आधार पर उनके रहने का स्थान लोहकोट में था जो लाहौर का पुराना नाम है। चौहानों और सोलंकियों की मूल शाखा एक ही है। सोलंकीवंश का एक राजकुमार कल्यान से लाकर, अनहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजपरिवार का उत्तराधिकारी वनाया गया।

उस समय अनहिलवाड़ा का स्थान भारत में ठीक उसी प्रकार प्रसिद्ध था, जिस प्रकार यूरोप में वेनिस का। अनहिलवाड़ा भारत में अपनी उपज के लिये केन्द्र हो रहा था,

चामुंडराय के शासन काल में महमूद गजनवी अपनी सेना अनहिलवाड़ा में ले गया और उसने वहाँ पर अपरिमित सम्पत्ति की लूट की। चौहानों का एक वंशज कुमारपाल सोलंकियों के वंश का उत्तराधिकारी बना।

सोलंकी वंश सोलह शाखाओं में इस प्रकार विभाजित है –

(1) बघेल – बघेलखंड के राजा, जिसकी राजधानी बाँधगढ़ थी, पीथापुर, थराद और अदलज आदि के सरदार।

(2) बीरपुरा – लूणावाड़ा के सरदार।

(3) बेहिल – मेवाड़ के अंतर्गत कल्याणपुर के जागीरदार।

(4) भूरता।

(5) कालेचा– जैसलमेर के अंतर्गत बारू टेकरा और चाहिर में।

(6) लंघा– मुल्तान के निकट रहने वाले मुसलमान।

(7) तोगरू – पंचनद प्रदेश के निवासी मुसलमान।

(8) ब्रिकू – पंचनद प्रदेश के निवासी मुसलमान।

(9) सोलके – दक्षिण में पाये जाते हैं।

(10) खिरिया – सौराष्ट्र प्रदेश के अंतर्गत गिरनार में रहते हैं।

(11) राओका – जयपुर के अंतर्गत टोडा के हलके में रहते हैं।

(12) राणकरा – मेवाड़ के अंतर्गत देसूरी में रहते हैं।

(13) खरूरा – मालवा देश में आलोट और जावरा के रहने वाले हैं।

(14) तौंतिया – चन्दभूड सकुनबरी।

(15) अलमेचा –इनका कोई स्थान नहीं है।

(16) कुलमोर – गुजरात के रहने वाले हैं।

प्रथिहार अथवा परिहार – अग्निवंश का यह वंश है, जिसके सम्बंध में ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम प्राप्त हो सकी है। राजस्थान के इतिहास में परिहारों का कोई भी ख्यातिपूर्ण कार्य नहीं है और दिल्ली के तोमर राजपूतों तथा अजमेर के चौहानों के यहाँ इस वंश के लोग सदा जागीरदार होकर रहे हैं।

मंडोवर – जिसे संस्कृत में मन्दोद्री कहते हैं– परिहार राजपूतों की राजधानी थी। मारवाड़ का यह एक प्रसिद्ध नगर था। इस नगर में राठौड़ राजपूतों के आक्रमण के पहले, इस वंश के लोगों का अधिकार था। यह नगर आधुनिक जोधपुर की ओर पाँच मील की दूरी पर बसा हुआ है।तथा मंडोर कहलाता है।

कन्नौज के राठौड़ राजा कन्नौज से भागकर परिहारों के यहाँ आये और शरण पायी। लेकिन इस उपकार का बदला उन लोगों ने विश्वासघात के द्वारा दिया और चूड़ा नाम के एक राठौड़ राजा ने परिहारों के अंतिम राजा का राज्य छीन कर अपना अधिकार कर लिया। उसके बाद उसने मंडोवर के किले पर राठौड़ वंश का झंडा लगा दिया।

परिहार वंश के लोग सम्पूर्ण राजस्थान में फैले हुए हैं। परन्तु उनके अधिकार में किसी स्वतंत्र जागीर का कहीं उल्लेख नहीं मिला। कोहारी, सिन्धु और चम्बल नदियों का जहाँ पर संगम होता है, वहाँ पर इस वंश वालों की आबादी है और आस-पास के छोटे-बड़े अनेक गाँव उनसे बसे हुये हैं। परिहारों की बारह शाखायें थीं, इनमें ईदा और सिन्धल नाम

की दो प्रमुख शाखायें थीं। इन दोनों शाखाओं के कुछ लोग लूनी नदी के दोनों किनारों पर पाये जाते हैं।

चावड़ा अथवा चावरा वंश के लोग किसी समय इस देश में प्रसिद्ध थे। लेकिन अब उनका अस्तित्व मिटता जा रहा है। उनकी उत्पत्ति का कोई उल्लेख हमें नहीं मिला। सूर्यवंश और चंद्रवंश के साथ उनका कोई सम्वंध नहीं है। ऐसी दशा में सीथियन लोगों से उनकी उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है।

इस वंश के लोगों का उत्तरी भारत में कोई स्थान नहीं है। यह भी हो सकता है कि ये लोग वाहर से इस देश में आये हों। यदि ऐसा है तो भी उनके आने का समय वहुत पहले प्राचीन काल में नहीं होना चाहिये। इसलिये कि मेवाड़ के सूर्यवंशी वर्तमान राज-परिवारों के साथ इस वंश के लोगों के सामाजिक और वैवाहिक सम्वंध वहुत समय से देखने में आते हैं।

चावड़ों की राजधानी सौराष्ट्र के समुद्री किनारे के पास दीव वंदर के टापू में थी। इस वात के उल्लेख पाये जाते हैं कि दीव के राजा ने सन् 746 ईसवी में अनहिलवाड़ा पट्टन की नींव डाली, जो उस समय भारत के इस हिस्से का एक प्रमुख नगर वना। चावड़ा वंश के कुछ उल्लेख पुराने ग्रंथों में मिलते हैं। मेवाड़ के इतिहास में वताया है कि मुसलमानों के पहले आक्रमण से चित्तौड़ को वचाने के लिये चतनसी नाम का एक चावड़ा सरदार एक सेना के साथ युद्ध के लिये गया था।

मजमूद गजनवी ने जब सौराष्ट्र पर आक्रमण करके उसकी राजधानी अनहिलवाड़ा को अपने अधिकार में कर लिया तो उसने वहाँ के राजा को गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर वहाँ के एक प्राचीन परिवार के राजा को सिंहासन पर वैठाया, जिसका नाम दावशिलिम था। मिले हुये लेखों से यह भी मालूम होता है कि डावी एक वंश की शाखा थी, जिसको वहुत से लोग चावड़ा के अंतर्गत मानते हैं।

सूयवंशी राजाओं और सौराष्ट्र के चावड़ों तथा सौरों का सम्वन्ध एक हजार वर्ष वीत जाने के वाद भी कायम है। राणा-परिवार राजस्थान में वहुत सम्मानपूर्ण माना जाता है और चावड़ा वंश गिरी हुई अवस्था में है। फिर भी इस वंश की कन्यायें राणा परिवारों में जाती हैं। इस वात के और भी उदाहरण हैं।

टांक अथवा तक्षक— वहुत खोजने के वाद जाहिर होता है कि तक्षकवंश उस जाति का नाम है, जिससे प्राचीन काल में भारत के आक्रमणकारी विभिन्न सीथियन वंशों की उत्पत्ति हुई थी । तक्षकवंश जेटी जाति की अपेक्षा-जिससे अगणित शाखाओं की उत्पत्ति हुई अधिक प्राचीन है। इन दोनों जातियों के सम्वंध एक-दूसरे के इतने नजदीक हैं कि दोनों को एक दूसरे से अलग करना वहुत कठिन है।

अवुलगाजी ने तांनक को तुर्क और तर्गेताई का वेटा माना है जो पुराणों में तुरक के नाम से लिखा गया है और चीनी ग्रंथों में उसी को तक्युक्स नाम दिया गया है, जो चोटरी जाति से उत्पन्न हुआ मालूम होता है, जिसने यूनान के अंतर्गत वाकट्रिया के राज्य का सर्वनाश करने में मदद पहुँचायी थी। इस चोटरी जाति के नाम से ही एशिया के एक विशाल भाग का नाम चोर्टारिस्तान पड़ा। यही आगे चलकर तुर्किस्तान वना। ताजक जाति जिसका वर्णन एलफिन्स्टन साहव ने अपनी पुस्तक कावुल-राज के वृतान्त में खूव किया है—वास्तव में तक्षक वंशी थी ऐसा मालूम होता है कि ये दो नाम एक ही जाति के हैं।

इस वात का वर्णन पहले किया जा चुका है कि राजस्थान के अनेक भागों मे तुस्टा, तक्षक और टाँक जाति के पाली अथवा वौद्ध अक्षरों में प्राचीन शिला लेख मिले हैं, जो

मोरी, परमार और उनके वंशजों से सम्बंध रखते हैं। नाग और तक्षक को संस्कृत में सर्प कहते हैं और तक्षक वह वंश है जिसका वर्णन नागवंश के नाम से भारत के ऐतिहासिक वीरकाव्य-ग्रंथों में किया गया है। महाभारत में इन्द्रप्रस्थ के पांडु-वंशियों और उत्तर के तक्षक लोगों के युद्ध का वर्णन किया गया है। तक्षक के हाथ से परीक्षित का मारा जाना और उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी जनमेजय का तक्षकों के विनाश के लिये युद्ध करना सभी कुछ उस वर्णन में आता है। जैसलमेर के भाटी राजाओं के प्राचीन इतिहास में लिखा गया है कि जब वे लोग जाबुलिस्तान से निकाल दिये गये तो उन लोगों ने टाँक जाति के लोगों से सिन्धु नदी के किनारे के देशों का राज्य छीन लिया और फिर वे वहीं पर रहने लगे। वहां की राजधानी शालमनपुर थी। इतिहास की इस घटना का समय युधिष्ठिर के सम्वत् का 3008वाँ वर्ष माना गया है। इस दशा में यह निश्चित है कि तोमर वंशी विक्रम को विजय करने वाला शालिवाहन अथवा सालवाहन–तक्षक जाति का था। उसी वंश का था, जिसको भाटी लोगों ने पराजित करके दक्षिण की ओर चले जाने के लिये विवश किया था।

शेषनाग की अधीनता में तक्षक अथवा नागवंश के आक्रमण का समय ईसवी सन् लगभग छः अथवा सात शताब्दी पहले माना गया है। आबू महात्म्य में तक्षकों को हिमाचल का पुत्र माना गया है। इस प्रकार की सभी बातों से साबित होता है कि वे सीथियन जाति से सम्बंध रखते थे और उन्हीं के वंशजों में थे। यह पहले लिखा जा चुका है कि तक्षक मोरी वंश के लोग अत्यंत प्राचीन काल से ही चित्तौड़ के अधिकारी रहे थे1 लेकिन कुछ पीढ़ियों के बाद जब गुहिलोतों ने मोरी लोगों को चित्तौड़ से निकाल दिया तो हिन्दुओं के इस स्वतंत्र और सुरक्षित स्थान पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। उस समय जिन राजपूत राजाओं ने चित्तौड़ की रक्षा करने के लिये मुसलमानों के साथ युद्ध किया, उनमें आसेरगढ़ के टाँक लोग भी थे, जिन्होंने इस घटना के पश्चात् लगभग दो शताब्दी तक आसेरगढ़ पर अपना अधिकार रखा। इसका प्रमाण यह है कि वहाँ का सरदार पृथ्वीराज की सेना में एक शक्तिशाली सेनापति था और उसका उल्लेख चन्द कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में किया है और उसे झंडा बरदार आसेर का टाँक कहकर लिखा है।

यह पुराना वंश जनमेजय का शत्रु और सिकन्दर का मित्र था। इस वंश में सेहारन नामक एक पुरुष था, जिसने अपना धर्म परिवर्तन किया और अपनी उत्पत्ति टाँक जाति को छिपा कर उसने अपनी जाति का नाम वजेहउलतुल्क जाहिर किया। उसका बेटा जाफ़र खाँ गुजरात के सिंहासन पर उस समय बैठा, जब तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था। जाफ़र के पहले गुजरात का अधिकारी फ़िरोज था। परन्तु उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर जाफ़र ने उसका अधिकार छीन लिया और मुजफ्फ़र के नाम से वह गुजरात का शासक बन गया। उसके पोते ने उसे मार डाला और अनहिलवाड़ा की प्राचीन राजधानी हटाकर उसने अपने बनाये हुए नगर अहमदाबाद में कायम की।

टाँक – इस जाति के लोगों द्वारा धर्म परिवर्तन के बाद टाँक जाति का अस्तित्व राजस्थान में खत्म हो गया।

जिट अथवा जाट – राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में जिट अथवा जाट का भी स्थान है। परन्तु इस जाति को लोग राजपूत नहीं मानते और न राजपूतों के साथ उनके कहीं वैवाहिक सम्बंध ही पाये जाते हैं। लेकिन इस जाति के लोग भारत में सभी जगह पाये जाते हैं। ये लोग आमतौर पर खेती का काम करते हैं। पंजाब में इन लोगों को प्रायः जिट कहा जाता है लेकिन गंगा और जमुना के किनारे वे जाट के नाम से संबोधित किये जाते हैं। इन लोगों में भरतपुर का राजा बड़ा सम्मान रखता है। सिंधु नदी के किनारे और सौराष्ट्र में इन लोगों को जट कहा जाता है। राजस्थान में जिन लोगों के द्वारा खेती होती है, उनमें अधिक

इसी जाति के लोग हैं। सिन्धु नदी के उस पार जो जातियाँ आवाद हैं और जो मुसलमान हो गई हैं, वे सभी पहले जाट वंश की थीं।

एक समय था, जब जेटी का राज्य बहुत प्रसिद्ध था और साइरस के समय से लेकर चौदह शताब्दी तक उसकी बहुत ख्याति रही। उसकी राजधानी जग जार्टीज नदी के किनारे थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। चीनी ग्रंथकारों के अनुसार, इस जाति के लोग बहुत पहले बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।

जिट जाति के सम्बंध में अनेक प्रकार की बातें हैं। उनके रहने के स्थान सिन्धु नदी के पश्चिम ओर के देश माने जाते हैं और यदुवंश से उनकी उत्पत्ति मानी जाती है। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिट और तक्षक वे जातियाँ हैं, जिनसे होने वाली विभिन्न उपजातियों ने भारत पर आक्रमण किया था। इसके साथ-साथ पाँचवी शताब्दी का एक शिलालेख मिला है। उससे मालूम होता हैं कि एक ही जाति के ये नाम हैं। उस शिलालेख से यह भी मालूम होता है कि इस जाति का राजा सूर्य की उपासना करता था, जैसे कि सीथियन लोग करते थे। उसमें यह भी लिखा है कि जिट वंशी राजा की माता यदुवंश में पैदा हुई थी। इससे जाहिर होता है कि इस जाति के यदुवंशी होने का दावा सही है।

डिगिग्नीज़ ग्रंथकार का कहना है कि यूची अथवा जिट लोग पाँचवी और छठी शताब्दी में पंजाब में रहते थे और इस वंश के जिस राजा का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसकी राजधानी सालिन्द्रपुर के नाम से मशहूर थी। इससे जाहिर होता है कि सालिबाहनपुर का ही नाम किसी समय सालिन्द्रपुर था, जहाँ यदुवंशी भाटियों ने टाँक लोगों को पराजित करके अपना अधिकार कर लिया था।

इसके कितने पहले जिट लोगों ने राजस्थान में प्रवेश किया था, इसका निर्णय शिलालेखों के आधार पर ही किया जा सकता है। यह तो मानी हुई बात है कि सन् 440 ईसवी में उनका शासन चल रहा था।

जब यादव जाति के लोग सालिबाहन से भागे तो उन लोगों ने सतलुज नदी पार करके भारत की मरुभूमि में दहिया और जोहिया राजपूतों के यहाँ शरण ली और यहाँ पर उन्होंने अपनी पहली राजधानी देवराल में स्थापित की। उनमें से बहुत से लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। उसी समय से वे लोग जाट कहे गये, जिनकी बीस से अधिक शाखाओं का उल्लेख यदुवंश के इतिहास में किया गया है।

जिट लोगों के सम्बंध में बहुत-सी काम की बातें भारत विजेता महमूद के इतिहास में पढ़ने को मिलती हैं। महमूद की सेना सन् 1026 ईसवी में आक्रमण करने के लिए भारत की तरफ बढ़ी। उस समय जिट लोगों ने उसे रोक कर उसके साथ युद्ध किया। वह वर्णन इस प्रकार है –

जिट लोग मुल्तान की सीमा के नजदीक उस नदी के किनारे रहते थे, जो जौद के पहाड़ों के निकट से होकर प्रवाहित होती है। जब महमूद मुल्तान वहाँ पहुँचा तो उसने कई विशाल नदियों से सुरक्षित जिट लोगों के प्रदेश का अध्ययन किया। उसने पन्द्रह सौ नावें तैयार कीं। उन नावों में प्रत्येक के आगे नोकदार लोहे के मजबूत और मोटे ऐसे डंडे लगे हुए थे, जिनसे शत्रु नावों के निकट आकर आक्रमण न कर सके। क्योंकि इस प्रकार की लड़ाई में जिट लोग बहुत होशियार थे। प्रत्येक नाव पर बीस धनुप बाण लिए सैनिकों को खड़ा कर दिया और महमूद की सेना परिणाम देखने के लिए इंतजार करने लगी। जिट

लोगों ने अपनी स्त्रियों, बाल-बच्चों और सामान को सिंध सागर[1] भेज दिया और चार हजा तथा कुछ लेखों के आधार पर आठ हजार नावें गजनी की सेना से लड़ने के लिए तैया थीं। इन नावों ने जल में प्रवेश किया। दोनों ओर से युद्ध आरंभ हुआ। जिट लोगों क अनेक नावें डुबो दी गयीं, कुछ में आग लगा दी गयी जिसके लिए गजनी की नावों प पहले से व्यवस्था थी। फल यह हुआ कि जिट लोग युद्ध से भागे, उनमें बहुत-से कैद का लिये गये। जो लोग बचे, उनके द्वारा बीकानेर की स्थापना हुई।

इस घटना के थोड़े ही दिनों के पश्चात् जिट लोगों का जो असली राज्य था, वह भी नष्ट हो गया और बहुत-से जिट लोगों ने भागकर भारत में शरण ली। सन् 1360 ईस्वी में तोगलताश तैमूर जेटी जाति का प्रधान था। 1369 ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी तो जेटी लोगों की प्रधानता की पदवी बड़े खान के नाम से चागताई तैमूर को मिली। सन् 1370 ईसवी में उसने एक जेटी जाति की राजकन्या के साथ अपना विवाह किया। इसके बाद जेटी लोग पंजाब में कायम रहे और आज तक लाहौर का प्रतापी राजा जिट वंशी है। उसका अधिकार उन सभी प्रदेशों में है, जहाँ पर पाँचवी शताब्दी में यूची लोग रहते थे और जहाँ पर गजनी से भागने पर यदुवंशी लोगों ने टाँक लोगों के मिट जाने पर अपना अधिकार कर लिया था। जिट लोगों के घुड़सवारों और सीथियन लोगों के तरीके बहुत-कुछ मिलते जुलते हैं।

हूण जाति – राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में जिन सीथियन जातियों को स्थान मिला है, उनमें हूण लोग भी हैं। इस जाति के लोग यूरोप में उत्पात और उपद्रव के लिए बहुत मशहूर रहे हैं। किसी भी उल्लेख से इस बात का निर्णय नहीं होता कि हूणों ने भारत पर कब आक्रमण किया, लेकिन यह तो निश्चित ही है कि जिन जातियों ने भारत पर आक्रमण किया था, उनमें यह जाति भी एक है और इस जाति के लोग आज भी सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। इस देश के पुराने इतिहासों में और यहाँ के शिलालेखों में हूणों के सम्बंध में लगातार उल्लेख मिलते हैं।

एक शिलालेख से पता चला है कि बिहार के एक राजा ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने के साथ-साथ इन हूणों को भी पराजित करके इनके अभिमान को नष्ट किया था। भारत में जब पहले-पहल मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और मुसलमानों ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी, उसमें उनकी सेना के साथ अंगत्सी नाम का एक हूण सरदार भी था। डिगिग्नीज़ ने लिखा है कि अंगत हूणों और मुगलों के एक विशाल दल का नाम था और अबुलगाजी का कहना है कि चीन की विशाल दीवार जो तातार जाति के लोगों के संरक्षण में थी, उसी का नाम अंगती था। उसका अपना एक राजा था और उस राजा की बहुत प्रतिष्ठा थी। जिन देशों में हियागनो और ओह ओन अर्थात् तुर्क और मुगल जाति के लोग रहते थे, उन्हीं का नाम तातार था। तातार नाम तातान देश से सम्बंध रखता है। इस देश का विस्तार इर्टिश नदी के पास से लेकर अल्ताई पहाड़ों के बराबर पीत सागर के किनारे तक चला गया था। इन देशों के सम्बंध में हूण जाति के इतिहास-लेखक ने बहुत-सी बातों का वर्णन किया है। रोम के पतन का इतिहास लिखने वाले गिबन ने हूणों के उस समय का इतिहास लिखा है, जब उन लोगों ने यूरोप पर चढ़ाई की थी।

कास्मस नामक यात्री के ग्रंथ के आधार पर डिएन्विल ने लिखा है कि भारत के उत्तरी भाग में श्वेत हूणों का अधिकार था। इसी आधार पर यह अनुमान किया जाना अनुचित न होगा कि इस जाति के कुछ लोग सौराष्ट्र और मेवाड़ में भी रहते हों।

---

1. सिंध सागर पंजाब के दोआबों में से एक है।

जनश्रुति के आधार पर कुछ लोगों का विश्वास है कि हूणों का निवास स्थान चम्बल नदी के पूर्वी किनारे बाडोली नामक स्थान में था। वहाँ पर अन्यान्य प्रसिद्ध मंदिरों में एक मंदिर इस जाति के राजा का वैवाहिक स्थान है जिसका नाम है, सेनगर चाओरी। उस राजा का अधिकार चम्बल नदी के दूसरे किनारे तक फैला हुआ था। यह जाति अभी नष्ट नहीं हुई और अभी तक वे इस देश में मौजूद हैं। यद्यपि उनमें अब बहुत परिवर्तन हो गया है और वे इस देश की अन्य जातियों के साथ बहुत कुछ मिल गये हैं।

कट्टी अथवा काठी– इस जाति के सम्बंध में पहले लिखा जा चुका है और राजस्थान तथा सौराष्ट्र की वंशावली लिखने वाले उनको राजवंशों में स्वीकार करते हैं। पश्चिमी प्रायद्वीप में जो जातियाँ प्रसिद्ध मानी जाती हैं, उनमें एक यह जाति हैं। इस जाति के लोगों ने सौराष्ट्र का नाम बदल कर काठियावाड़ कर दिया है।

काठियावाड़ में जो जातियाँ रहती हैं, उनमें इसी कट्टी अथवा काठी ने अपना अस्तित्व कायम रखा है। इस जाति की धार्मिक और सामाजिक रस्में तथा उनके शरीर की बनावट और मुखाकृति उनके सीथियन होने का प्रमाण देती हैं। सिकन्दर के समय इस जाति के लोग पंजाब के उस कोने में अपना अधिकार जमाये थे, जो स्थान पाँचों नदियों के संगम के पास है। उसी जाति के लोगों से सिकन्दर ने युद्ध किया, जिसमें वह किसी प्रकार बच गया था। जैसलमेर के इतिहास में वहाँ के लोगों ने कट्टी लोगों के साथ युद्ध किया था, उसका वर्णन किया गया है।

बारहवीं शताब्दी में उनके अस्तित्व के और भी प्रमाण हैं। उस समय इस जाति के अनेक सरदार पृथ्वीराज और कन्नौज की सेना में मौजूद थे। कट्टी लोग अब तक सूर्य की पूजा करते हैं और युद्ध तथा आक्रमण उनको सहज ही प्रिय है। वे इसी प्रकार के काम कर सकते हैं। कप्तान मैक्समर्डी ने इस जाति के सम्बंध में लिखा है –

"कट्टी जाति के लोग अनेक बातों में राजपूतों से भिन्न हैं। वे स्वाभाविक रूप से निर्दयी हैं और बहादुरी में वे राजपूतों से भी अधिक हैं। शारीरिक शक्ति में उनका स्थान ऊँचा है। कद में वे साधारण आदमी की अपेक्षा लंबे होते हैं। उनका कद प्रायः छह फीट से अधिक होता है। उनके शरीर मजबूत और मेहनत से भरे होते हैं। उनके मुख पर सुन्दरता नहीं होती। लेकिन उनकी मुखाकृति में कट्टरता पायी जाती है। उनके जीवन में कोमलता किसी प्रकार की भी नहीं होती।"

बल्ला और बाला– राजपूत वंशावली लेखकों ने बल्ला जाति को राजवंशों में माना है। भाटों के आधार पर इस जाति के लोगों का निवास-स्थान सिंधु नदी के किनारे पाया जाता है। ये लोग अपने आप को सूर्य वंशी राजपूत कहते हैं, उनका कहना है कि हमारे पूर्वज रामचन्द्र के बड़े पुत्र लव के वंशज थे। उनकी प्राचीन बस्ती सौराष्ट्र के टाँक में थी। यह स्थान बहुत प्राचीन काल में गोंगी-पट्टन कहा जाता था। इन लोगों ने वहाँ के आस-पास के प्रदेशों को जीत कर अपने देश का नाम बल्ल क्षेत्र रखा और राजधानी का नाम बल्लभीपुर हुआ। इन लोगों ने बल्लाराय की उपाधि का प्रयोग किया। वे अपने आपको गहलोत राजपूतों की बराबरी का समझते हैं। यह भी संभव हो सकता है कि बल्ला गहलोतों की शाखा हो। इनका मुख्य देवता सूर्य था। इस प्रकार की अनेक बातें इनकी सीथियन लोगों से मिलती हैं।

कट्टी – इस वंश के लोग अपनी शाखा बल्ल भी मानते हैं। तेरहवीं शताब्दी में बल्ला लोग मेवाड़ पर हमला करने के लिये जिम्मेदार थे। राणा हमीर ने चोटीला के बल्ला सरदार को मारा था। टाँक का मौजूदा राजा बल्ला है।

झालामकवाण जाति के लोग भी सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में रहते हैं। इस जाति के लोग राजपूत कहे जाते हैं। लेकिन उनके सूर्यवंशी, चंद्रवंशी अथवा अग्निवंशी होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। इस जाति के लोग भारत में और विशेषकर राजस्थान में भी बहुत ही कम प्रसिद्ध हैं।

सौराष्ट्र के बड़े भागों में झालावाड़ एक बड़ा हिस्सा है। उसमें झालामकवाण के ही लोगों की विशेषता है। झालावाड़ में बीकानेर, तलवद और ध्राँगदरा नाम के बड़े-बड़े नगर हैं। यहाँ पर झाला कब आये और उनका पुराना इतिहास क्या है इसके निर्णय के लिये हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है परन्तु इतिहास की कुछ घटनायें इसके निर्णय में सहायता करती हैं। भारत में मुसलमानों के पहले आक्रमण के समय राणा को झाला जाति की ओर से युद्ध के लिये सैनिक सहायता प्राप्त हुई थी और पृथ्वीराज के इतिहास में झाला सरदारों के वर्णन आये हैं। झाला जाति की कई शाखायें हैं, उनमें मकवाणा प्रधान है।

जेठवा, जेटवा अथवा कमरी – यह एक प्राचीन जाति है और इतिहास लेखकों ने इसे राजपूत माना है, यद्यपि झाला लोगों की तरह सौराष्ट्र के बाहर ये लोग भी बहुत कम प्रसिद्ध हैं। इस जाति के राजा का स्थान पोरबंदर है और वह राणा कहलाता है। प्राचीन काल में उसकी राजधानी गूमली थी। उसकी टूटी इमारतों में उस राज्य के वैभव का परिचय मिलता है। वहाँ की शिल्पकला यूरोप के शिल्प की बराबरी करती थी। जेठवों के बारे में भाटों से एक सौ तीस राजाओं की जानकारी होती है, जो वहाँ के सिंहासन पर बैठे। मिले हुये लेखों से जाहिर होता है कि आठवीं शताब्दी में यहाँ के एक राजा का विवाह दिल्ली की फिर प्रतिष्ठा करने वाले और उसको नया जीवन देने वाले तोमर राजा के यहाँ हुआ था। इन दिनों में जेठवा वंश का नाम कमर चल रहा था। कहा जाता है कि बारहवीं शताब्दी में उत्तर की दिशा से आक्रमण करने वालों ने जिस राजा को गूमली से निकाला था, उसका नाम सेहल कमर था। इसके बाद कमर वंश फिर जेठवा के नाम से प्रचलित हुआ। इस वंश के लोग सीथियन वंश के जाहिर होते हैं। उनका सम्बंध भारत की प्राचीन जातियों के साथ कुछ जाहिर नहीं होता, ऐसा मालूम होता है कि यह वंश एशिया की प्रसिद्ध जाति किमेरी अथवा यूरोप की किम्ब्री जाति की शाखा है।

इस जाति की बहुत-सी बातें कुछ अनोखी सी मालूम होती हैं। वे लोग अपने आपको प्रसिद्ध वानर हनुमान का वंशज कहते हैं और इसके समर्थन में वे लोग अपने राजाओं की लम्बी पीठ की हड्डी का उदाहरण देते हैं।

गोहिल – यह एक प्रसिद्ध वंश है, जो सूर्यवंशी होने की बात कहता है। ये लोग पहले मारवाड़ में लूनी नदी के मोड़ के पास जूना खेड़गढ़ में रहते थे। खेरवा नाम के एक भील सरदार से इन लोगों ने यह स्थान अपने अधिकार में किया था और अंत में राठौड़ राजपूतों ने उनको वहाँ से भगा दिया। वहाँ से वे लोग सौराष्ट्र की तरफ जाकर पीरमगढ़ में रहने लगे। इसके बाद उनकी एक शाखा बगवा में जाकर रहने लगी और उनके राजा ने नन्दन नगर अथवा नान्दोद के राजा की लड़की से विवाह करने के बाद अपने श्वसुर के राज्य पर अधिकार कर लिया। सोमपाल से नरसिंह तक जो नान्दोदी में आजकल राजा है–सत्ताईस पीढ़ी मानी जाती है। दूसरी शाखा सिहोर में जाकर रहने लगी और उसने भावनगर तथा गोगो नगर आबाद किया। भावनगर माही की खाड़ी पर गोहिल के रहने का स्थान है और उन्हीं लोगों के नाम पर सौराष्ट्र के प्रायद्वीप का पूर्वी भाग गोहिलवाड़ा कहलाता है। यहाँ के राजा का प्रमुख कार्य व्यवसाय है।

सर्व्य अथवा सरिअस्प – बहुत पहले इस वंश के प्रसिद्ध होने का पता चलता है। भाटों के द्वारा वह क्षत्रिय माना जाता है।

सिलार अथवा सुलार – इनके सम्बंध में भी अधिक बातें नहीं मिलतीं। लार जाति किसी समय सौराष्ट्र में थी। अनहिलवाड़ा के इतिहास से मालूम होता है कि प्रसिद्ध राजा जयसिंह ने उन लोगों को जो इस जाति से सम्बंध रखते थे, अपने राज्य से निकाल दिया था। इसलिए सिलार अथवा सुलार जाति लार जाति मालूम होती है। कुमारपाल चरित्र में उसको राजकुमार लिखा गया है लेकिन अब यह जाति वैश्यों में मानी जाती है और यह बौद्ध धर्म को मानती है। उसकी चौरासी शाखाओं में एक यह लार भी है। इन चौरासी शाखाओं में कुछ के राजपूतों से निकलने के उल्लेख भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

डाबी– इस जाति के सम्बंध में कुछ भी नहीं मिलता। यद्यपि किसी समय सौराष्ट्र में इस जाति के लोग रहते थे। कुछ लोगों के अनुसार यह यदुवंश की एक शाखा है।

गौड़ – एक समय था जब इस जाति की प्रतिष्ठा राजस्थान में थी। लेकिन इसने कभी उन्नति नहीं की। बंगाल के प्राचीन राजा इसी जाति के माने जाते थे और उन्हीं के नाम से उनकी राजधानी का नाम लखनौती पड़ा था। सिन्धिया ने 1809 ईसवी में गौड़वंश के अधिकारों को छीन लिया था। इस प्रकार की बहुत थोड़ी बातें इसके सम्बंध में पढ़ने को मिलती हैं। इस जाति की पाँच शाखायें हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं– अंतहिर, सिलाहाल, तूर, दुसना, बोडाना।

डोड अथवा डोडा – इस वंश के सम्बंध में केवल इतना कहा जा सकता है कि राजपूतों की वंशावलियों में उसका नाम है।

गेहरवाल – इस जाति के राजपूतों को राजस्थान के लोग राजपूत मानने के लिए तैयार नहीं होते। इस जाति का मौलिक स्थान काशी का प्राचीन राज्य है। इसके पूर्वजों में खोरतजदेव कोई हुआ है। उसकी सातवीं पीढ़ी में जेसन्द ने विन्धवासिनी देवी के स्थान पर एक यज्ञ किया था और बुन्देला की उपाधि धारण की थी। उसी के आधार पर बुन्देलखंड प्रदेश का नाम अब तक प्रसिद्ध है। इस प्रदेश में कालींजर, मोहिनी और महोबा प्रसिद्ध नगर हैं।

चन्देल–ये पहले बुन्देलखंड के प्राचीन निवासी थे, और राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में माने जाते हैं। ये लोग बारहवीं शताब्दी में अपनी शक्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उस समय उनके अधिकार में वह सारा देश था जो जमुना और नर्बदा नदी के बीच में है और जिस पर अब बुन्देलों और बघेलों का अधिकार है। पृथ्वीराज के साथ चन्देलों की युद्ध में पराजय हुई थी और वहीं से गहरवाल लोगों को विजय का द्वार खुल गया था।

अकबर के समय से लेकर मुग़लों के अंत तक बुन्देलों ने सभी प्रसिद्ध लड़ाइयों में वहादुरी के साथ युद्ध किया था। बुन्देला राज्यों में ओर्छा का राज्य अधिक प्रसिद्ध रहा। आजकल बुन्देला वंश के लोगों की संख्या बहुत अधिक है और गेहरवाल नाम उनके निवास स्थानों में ही रह गया है।

बड़गूजर – यह वंश सूर्यवंशी है और इस वंश के लोग रामचन्द्र के बड़े पुत्र लव का अपने आपको वंशज कहते हैं। इन लोगों के इलाके ढूँढाड़ में थे और माचेड़ी राज्य में राजौर का पहाड़ी किला उनकी राजधानी था। राजगढ़ और अलवर भी उनके इलाकों में थे। कछवाहों ने उनको उनके स्थानों से भगा दिया था, जिससे उस वंश के कुछ लोगों ने गंगा के किनारे रहना आरंभ किया था और वहाँ पर उन्होंने अनूप शहर बसाया था।

सेंगर – इस वंश के सम्बंध में बहुत कम वर्णन मिलता है। इसे कभी प्रसिद्धि नहीं मिली। जमुना के किनारे जगमोहनपुर में सेंगरों का एक ही राज्य है।

सीकरवाल – इस वंश को भी कभी कोई ख्याति नहीं मिली। इस वंश का एक छोटा-सा इलाका चम्बल के किनारे पर यदुवाटी से मिला हुआ और वंश के नाम से सीकड़वाड़ कहलाता है और अब ग्वालियर के राज्य में मिला लिया गया है।

बैस – यह वंश छत्तीस राजवंशों में है। इस वंश में आज अगणित लोगों की संख्या है और उन्हीं के नाम से एक विस्तृत प्रदेश बैसवाड़ा कहलाता है, जो गंगा और जमुना के बीच में है।

दाहिया – इस प्राचीन जाति के लोग सिन्धु नदी के किनारे, सतलुज के संगम के पास रहा करते थे। उनको छत्तीस राजवंशों में स्थान मिला है, परन्तु वे लोग अब कहीं पाये नहीं जाते। जैसलमेर के इतिहास में उनका उल्लेख पाया जाता है।

जोहिया – इस वंश के लोग भी दाहिया लोगों के करीब रहते थे। इस जाति के लोगों का अस्तित्व भी अब करीब-करीब मिट गया है।

मोहिल – इस वंश के पुराने इतिहास के सम्बंध में इतना ही कहा जा सकता है कि वर्तमान बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा के पहले वे लोग एक विस्तृत प्रदेश में रहते थे और बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा करने वाले राठौड़ राजपूतों ने इस वंश के लोगों को उनके स्थानों से भगा दिया था।

मालण, मालाणी और मल्लिया नाम की जातियाँ अब नष्ट हो गयी हैं।

निकुम्प – सभी वंशावलियों में इस वंश की ख्याति लिखी गयी है। लेकिन उसका वर्णन इतना ही किया गया है कि गहलोतों से पहले इस वंश के लोग मांडलगढ़ के अधिकारी थे।

राजपाली – वंशावलियों में इस वंश का उल्लेख राजपालिका अथवा पाल के नाम से किया गया है। वे लोग सौराष्ट्र देश में रहते थे और सभी प्रकार से वे सीथियन मालूम होते थे। सीथियन से उनकी उत्पत्ति के और भी प्रमाण मिलते हैं। राजपाली नाम से जाहिर होता है कि यह वंश प्राचीन पाल जाति की एक शाखा के सिवा और कुछ न था।

दाहिरया – कुमारपाल चरित्र के आधार पर इस वंश की गणना छत्तीस राजवंशों में की जा सकती है। इसके सम्बंध में अधिक कोई उल्लेख नहीं मिलता, सिवा इसके कि पहले पहल मुस्लिम सेना से चित्तौड़ में आक्रमण करने पर जो लोग उसकी रक्षा के लिए युद्ध में गये थे, उनमें देबिल का राजा दाहिर सरदार भी था। यह दाहिर दाहिरिया वंश का ही जाहिर होता है।

दाहिमा – यह जाति कभी अपनी बहादुरी के लिये विख्यात हुई थी। लेकिन उस ख्याति का अब कहीं पता नहीं है। दाहिमा बयाने का अधिकारी था और चौहान सम्राट पृथ्वीराज के शक्तिशाली सामन्तों में से था। इस वंश के तीन भाई सम्राट पृथ्वीराज के यहाँ उच्च अधिकारी थे और उनमें बड़ा भाई पृथ्वीराज का मंत्री था। लेकिन किसी ईर्ष्या के कारण मारा गया था। दूसरा भाई पुंडीर लाहौर में एक सैनिक अधिकारी था। तीसरा भाई चामुंडराय उस अंतिम युद्ध में प्रधान सेनापति था, जब पृथ्वीराज घग्गर नदी के किनारे मारा गया था। शहाबुद्दीन के इतिहास लेखकों ने वीर दाहिमा चामुंडराय की बहादुरी की प्रशंसा की है और इस बात को स्वीकार किया है कि उसी की बहादुरी के कारण शहाबुद्दीन युद्ध में

मारे जाने की स्थिति में पहुँच गया था। इस बात के उल्लेख भी पाये जाते हैं कि पृथ्वीराज का इकलौता बेटा रेणसी चामुंडराय की बहन से पैदा हुआ था परन्तु वह दिल्ली में मुसलमानों का अधिकार होने के पहले ही मर गया था।

जंगलों में रहने वाली जातियाँ – बागरी, मेर काबा, मीना, भील, सेरिया, थोरी, खाँगर, गौड, भाड़ा, जँवर और सरूद।

कृषक चरवाहा जातियाँ – अभीर अथवा अहीर, ग्वाला, कुर्मी, कुलम्बी, गूजर और जाट।

व्यवसायिक चौरासी जातियाँ – श्री श्रीमाल, श्रीमाल, ओसवाल, बगैरवाल, डींडू पुष्करवाल मेरतावाल, हर्सोरूह, सूरूरवाल पल्ली वाल भम्बू, खंडेलवाल, केदरवाल, डीसावल, गूजरवाल, सोहरवाल, अग्रवाल, जाइलवाल, मानतवाल, कजोटीवाल, कोर्टवाल, चेत्रवाल, सोनी, सोजतवाल, नागर मोड, जल्हेरा लाड कापोल, खेरता, दसोरा, बरूड़ी, बम्बरवाल, नागद्रा करबेरा, भटेवरा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, खतरेवाल, पंचमवाल, हुनरवाल, सरकैरा, वैश्य, स्तुखी, कम्बोवाल, जीरागवाल, भगेलवाल, ओरचितवाल, बामणवाल, श्रगौड़, ठाकुरवाल, बालमीवाल, टिपोरा, टीलोना, अतबर्गी, लादिसका, बदनोरा, खीचा, गुसोरा, बाओसर, जाइमा, पदमोरा, मेहेरिया, ढाकरवाल, मंगोरा, गोयलवाल, चीतोड़ा, काकलिया, मौहरवाल, भारेजा, अन्दोरा, साचोरा, भूँगरवाल, मन्दइलू, ब्रामड़िया, बागड़िया, डींजोरिया, बोरवाल, सोरबिया, नपाग और नागोरा, दो नाम अज्ञात।

☐

अध्याय-8
राजस्थान में जागीरदारी प्रथा -1

राजस्थान में किसी भी हिस्से में दीवानी और फौजदारी के मामलों का कोई विधान न था, निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इस समय यहाँ पर इस प्रकार का कोई विधान नहीं है, यह बात निश्चित है। यह बात जरूर है कि इन राजपूत राज्यों में फौजी कानून इस प्रकार काम करता है कि उसके द्वारा यहाँ पर शासन की पूरी व्यवस्था होती जाती है। राजस्थान की जागीरदारी प्रथा, प्राचीन यूरोप की इस प्रथा के बिल्कुल समान थी। परन्तु उसके बाद वहाँ की यह प्रथा ऐसी बिगड़ गयी कि उसके साथ राजस्थान की जागीरदारी प्रथा की तुलना करने का मैं साहस नहीं कर सकता। राजस्थान की इस प्रथा के सम्बंध में मैं जो कुछ इन पृष्ठों में लिखने जा रहा हूँ, उसको समझाने, जानने, अध्ययन और अनुशीलन करने में मैंने अपना बहुत समय व्यतीत किया है और बहुत परिश्रम के बाद मैंने जो कुछ पाया है उसको यहाँ पर लिखने का मैं प्रयास करूँगा। इस प्रथा के सम्बंध में सही बातों को जानने की मैंने कोशिश की है, परन्तु लिखी हुई सामग्री मुझे बहुत कम मिली है। फिर जो लोग इस विषय के जानकार थे, मैंने पूरी तौर पर उनसे लाभ उठाने की कोशिश की है और उन लोगों ने भी मेरी सहायता की है। इस प्रकार मुझे जो सामग्री मिल सकी है उससे मेरा अनुमान है कि राजस्थान की यह प्रथा प्राचीन काल में निश्चित रूप से अत्यंत परिपूर्ण और उपयोगी रही होगी।

अंग्रेजों के साथ राजस्थान के राजाओं का सम्पर्क स्थापित होने के पहले, इस देश की ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारी बहुत कम लोगों को थी। उन दिनों में केवल मनोरंजन के लिये मैं यहाँ के राज्यों में घूमा करता था और उस समय मुझे यहाँ के इतिहास और भूगोल के सम्बंध में जो जानकारी होती थी, उसे मैं लिख कर अपनी सरकार के पास भेज देता था। यूरोप और राजस्थान की इन प्रथाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखने और समझने के लिये मेरे पास काफी अच्छे साधन थे। जागीरदारी प्रथा के सम्बंध में मांगटेस्की, ह्यूम, मिलर और गिबन आदि प्रसिद्ध इतिहासकारों के लिखे हुये ग्रंथों का मैंने अध्ययन किया और दोनों देशों की प्रथाओं की तुलना करते हुये अपना निष्कर्ष निकालने की कोशिश की। इन्हीं दिनों में प्रसिद्ध इतिहासकार हालम का इस विषय पर लिखा हुआ ग्रंथ मुझे पढ़ने को मिला। इसमें जागीरदारी प्रथा के अनेक छिपे हुए उन पहलुओं पर विद्वान लेखक ने प्रकाश डाला था, जो उस समय तक स्पष्ट न हुए थे। मैंने इतिहासकार हालम के निर्णय के साथ राजपूतों की इस प्रथा का मिलान किया। मेरा विश्वास है कि जो लोग यहाँ की इस **प्रथा को यूरोप** से अलग समझते थे, उनको संतोष मिलेगा। मैं अनुमान के खतरों से

अपरिचित नहीं हूँ। इसलिए मैं उस पर विश्वास नहीं करता और जो प्रमाण निर्विवाद हैं, उन्हीं का आधार लेकर लिखना चाहता हूँ।

जो असभ्य जातियाँ किसी एक स्थान पर न रहकर सदा जंगलों में इधर-उधर घूमा करती हैं, उनमें भी कुछ शासन सम्बंधी बातें होती हैं और उनके शासन की अनेक बातें सभ्य जातियों के शासन के साथ मिलती जुलती हैं। संसार के सभी देशों के मनुष्यों का जीवन किसी समय एक सा रहा है और समस्त प्राचीन जातियों में प्रचलित शासन की मूल बातों में अभिन्नता रही है। यूरोप के सभी देशों में जागीरदारी प्रथा का प्रचार किसी समय था और काकेशस पर्वत से लेकर हिन्द महासागर तक वह प्रथा फैली हुई थी। बर्बर, तातारों, जर्मन और कलीडोनिअन जातियों, झारिजा लोगों और राजपूतों में जागीरदारी प्रथा का प्रचार था। उसकी प्रमुख बातें एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिलती थीं। युगों के बाद इन प्रथाओं में कहाँ क्या अंतर पड़ा? इसके अनुसंधान के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। लगातार आक्रमणों और अत्याचारों ने राजस्थान की परिस्थितियों को बहुत बिगाड़ दिया है, फिर भी उसकी प्राचीनता और मौलिकता की खोज की जा सकती है, जो इस प्रथा के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

मराठों की लूटमार और मुस्लिम अत्याचारों ने राजपूत राज्यों का बहुत विनाश किया है। उनकी राष्ट्रीय भावनायें मिट गयी हैं और उनके पुराने संग्रह इन दिनों में अप्राप्य अवस्था में हैं। राजपूत राज्यों का फिर से संगठन बनने की आवश्यकता है और उनकी सभी बातों का नया निर्माण होना चाहिये। राजपूत फिर शक्तिशाली बनाये जा सकते हैं। उनका सामाजिक जीवन परिवर्तन चाहता है। राजस्थान की इस समय अवस्था अच्छी नहीं है, उसकी शृंखला टूट गयी है। शासन की उपयोगिता खत्म हो गयी है। उनके वर्तमान शृंखलाहीन सामाजिक और राजनीतिक जीवन को देखकर कोई आज प्रभावित नहीं हो सकता। विदेशी लोग उसकी आलोचना कर सकते हैं, क्योंकि उनको यहाँ की प्राचीन शासन-व्यवस्था को समझने और जानने का अवसर नहीं मिला। बाहरी लोगों की इन आलोचनाओं से इस देश के प्राचीन इतिहास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक इतिहासकार को किसी देश का इतिहास जानने के लिए बड़ी ईमानदारी से काम लेना चाहिए और गंभीर नेत्रों से उसकी प्राचीनता की खोज करनी चाहिए। बाहरी जातियों के भीषण आक्रमणों और अत्याचारों में जिस देश ने एक हजार वर्ष व्यतीत किये हैं, वह देश किस प्रकार जर्जरित और नष्ट प्राय हो सकता है, इसका अनुमान एक विद्वान, इतिहासकार आसानी के साथ लगा सकता है। राजस्थान की शासन-व्यवस्था का आधार, उसकी जागीरदारी प्रथा थी और यह प्रथा प्राचीन काल में यूरोप की जागीरदारी प्रथा के समान थी। उसकी श्रेष्ठता बहुत समय तक कायम रही और बाहरी संगठित जातियों के लगातार अत्याचारों तक छिन्न-भिन्न नहीं हो सकी। भारत का प्राचीन गौरव इस शासन-व्यवस्था की श्रेष्ठता का ऐसा प्रमाण है, जिससे कोई निष्पक्ष और बुद्धिमान इंकार नहीं कर सकता।

मध्यकालीन युग के यूरोप के साथ राजस्थान की तुलना करके यह लिखना आवश्यक नहीं है कि आचारों, विचारों और जीवन के सिद्धांतों में किस देश ने किस देश से क्या सीखा। आवश्यकता के अनुसार सभी देशों को एक दूसरे से अच्छी बातें लेनी पड़ीं और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। जो व्यवस्था किसी एक देश में आरंभ होती है, वह निश्चित रूप से दूसरे देशों में फैलती है और अनुकूल वातावरण पाकर विकसित होती है।

जागीरदारी की प्रथा इंगलैंड में नार्मन लोगों से पहुँची थी और नार्मन लोगों ने इस प्रथा को स्कैंडीनेविया से पाया था। स्कैंडीनेविया ने दूसरी जातियों से इसको प्राप्त किया था।

एशिया की जातियों से यह प्रथा अन्य देशों की जातियों में फैली और कुछ जातियों ने तातारी लोगों से इसको प्राप्त किया। यह तो निश्चित है कि प्राचीनकाल में इस प्रकार की शासन प्रणाली संसार के अनेक देशों में फैली हुई थी। प्रत्येक अवस्था में यह स्वीकार करना पड़ता है कि संसार के पूर्वी देशों में इस प्रथा की उत्पत्ति हुई और एशिया से असी, कैटी, किम्ब्रिक और लोम्बर्ड से स्कैंडीनेविया, फ्रीजलैंड और इटली में यह प्रथा फैली।

'मध्यकालीन युग में जागीरदारी प्रथा' के प्रसिद्ध लेखक हालम के शब्दों में, सामन्तों की उत्पत्ति का अनुसंधान करना अथवा संसार के विभिन्न देशों में प्रचलित जागीरदारी प्रथा की तुलनात्मक आलोचना करना बहुत कठिन नहीं है। मौलिक बातों में वे एक दूसरे की छाया हैं। उनकी शासन-व्यवस्था एक ही प्रणाली का अनुकरण करती है। इस प्रथा को एक देश ने दूसरे देश से और एक जाति ने दूसरी जाति से पाया है। समय और परिस्थितियों ने उनके व्यावहारिक रूप में अंतर पैदा कर दिया है। फिर भी उनमें बहुत सी बातों की समानता मिलती है और उनसे जागीरदारी प्रथा के मौलिक सिद्धांतों का समर्थन होता है।

रोम की रिपब्लिक गवर्नमेंट की शासन प्रणाली और जागीरदारी प्रथा में कोई अंतर नहीं है। उन दिनों में जंगली जातियों और सभ्य जातियों के संगठन अलग-अलग चलते थे। दोनों ही जातियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में जिस प्रकार की शासन-प्रणाली की व्यवस्था रखती थीं, उनका रूप जागीरदारी प्रथा से भिन्न न था। उनकी प्रणाली एक थी और उन जातियों के लोग संगठित होकर अपने राज्यों के प्रति राजभक्त होकर रहते थे। यही अवस्था हिन्दुस्तान के जमींदारों और टर्की के तीमारिया लोगों की थी। संक्षेप में इन आलोचनाओं के आधार पर यह कहना आवश्यक नहीं मालूम होता है कि प्राचीन काल में जो शासन प्रणाली चलती थी, वह जागीरदारी प्रथा से ही अनुप्रेरित होती थी।

यहाँ पर राजस्थान के राज्यों में प्रचलित जागीरदारी प्रथा को आवश्यकतानुसार विस्तार से लिखना मेरा उद्देश्य है। परन्तु इसके लिखने के समय उस समय की शासन-प्रणालियाँ जो दूसरे देशों में चल रही थीं, मेरे सामने आ जाती हैं। मुझे यहाँ की जागीरदारी प्रथा में और वहाँ की शासन प्रथाओं में कोई मौलिक अंतर दिखाई नहीं देता। यहाँ के राज्यों के सम्बंध में जो कुछ मैंने लिखा है, उसका समर्थन यहाँ की बहुत-सी बातों के द्वारा होता है। ग्रंथों में वही व्यवस्था मिलती है जो जनश्रुति द्वारा मालूम होता है। जो सनदें मुझे मिली हैं, अथवा उनकी जो नकलें प्राप्त हुई हैं, उनके द्वारा भी वही सामग्री मुझे प्राप्त होती है।

उत्तरी भारत में रहने वाली जातियों में जागीरदारी की प्रथा प्रचलित थी, उसके समर्थन में मेरे पास बहुत सामग्री है और उस सामग्री के आधार पर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यह प्रथा उत्तरी भारत से राजस्थान में आकर प्रचलित हुई।

ईसा की सातवीं शताब्दी तक मुग़लों और पठानों के द्वारा राजपूतों का भयानक रूप से विध्वंस हुआ। फिर भी उनमें जो प्रथा प्रचलित हुई थी, वह निर्जीव नहीं हुई। राजस्थान के जिन-जिन राज्यों में इस शासन प्रणाली ने स्थान पाया था, उन राज्यों में वह प्रथा अब तक प्रचलित है।

इस प्रथा के सम्बंध में मैंने मेवाड़ में प्रचलित शासन नीति का प्रमुख रूप से आश्रय लिया है। इसका कारण है। जहाँ तक मैंने समझा है, राजस्थान में मेवाड़ राज्य की जागीरदारी प्रथा शक्तिशाली थी, इस राज्य का मस्तक अन्य राज्यों की अपेक्षा ऊँचा था और मेवाड़ राज्य पर आक्रमणकारियों के जितने अत्याचार हुए थे, उतने राजस्थान के किसी दूसरे राज्य पर नहीं हुए थे। इतना सब होने पर भी मेवाड़ राज्य की सामन्त शासन प्रणाली सदा

सजीव और शक्तिशाली होकर रही। जिन दिनों में मुग़ल-सम्राट का शासन शिथिल और निर्बल पड़ गया था, मेवाड़ राज्य की सामन्त शासन-प्रणाली उस समय भी दृढ़ता के साथ चल रही थी।

यूरोप के राज्यों में जिस प्रकार भूमि के अधिकार का निर्णय होता था, उसी प्रकार का निर्णय राजस्थान के राज्यों में मिलता है। उसके आधार पर यह मान लेना पड़ता है कि उन दिनों में भूमि का विधान पूर्व से लेकर पश्चिम तक–संसार के सभी राज्यों में एक ही था। शासन-प्रणाली का आधार यही भूमि थी। प्राचीन प्रथाओं में समय के अनुसार बहुत परिवर्तन हो जाना अत्यंत स्वाभाविक होता है। मेवाड़ राज्य में राणा लोगों के द्वारा जागीरदारी प्रथा के पुरानी प्रथा में कुछ परिवर्तन किये गये थे। परिवर्तन यहाँ के बहुत से शिलालेखों के द्वारा मालूम होते हैं। दीवारों में लगे हुए बहुत से पाषाणों में राणा की खुदी हुई आज्ञायें पढ़ने को मिलती हैं।

राजपूतों ने अनेक शताब्दियाँ आक्रमणकारियों के अत्याचारों में व्यतीत की थी। इन दिनों में भयानक रूप से उनका विनाश हुआ था। विनाश और संहार के दिनों में किसी भी राज्य का विकास नहीं हो सकता। फिर भी राजपूतों ने अपने प्राचीन गौरव की रक्षा की थी। मुग़लो में जब बादशाह अकबर का व्यापक साम्राज्य चल रहा था, उन दिनों में भी मेवाड़ राज्य में राणा प्रताप के गौरव की पताका फहरा रही थी।

शासन व्यवस्था में राजपूतों को मैंने बहुत योग्य पाया है। अपने जीवन में वे जिस प्रकार शूरवीर होते थे, उसी प्रकार नीति कुशल भी होते थे। समाज की जो मर्यादा उनके द्वारा कायम हुई थी, निश्चित रूप से वह प्रशंसनीय थी। व्यवसायियों और कृषकों को राज्य में सम्मानपूर्ण स्थान मिला था और उनको ऐसी सुविधाएँ प्राप्त थीं, जिनसे वे अपनी उन्नति कर सके। प्राचीन शिलालेखों के पढ़ने से पता चलता है कि जागीरदारी प्रथा में यहाँ पर शासन की एक अच्छी प्रणाली काम करती थी।

राजस्थान के राज्यों में जिन राजाओं ने राज्य किया है और जो अब तक कर रहे हैं, यदि उनकी तुलना हम यूरोप के राजवंश के लोगों के साथ करें तो राजपूतों की श्रेष्ठता हमें स्वीकार करनी पड़ेगी। राजपूतों का प्राचीन इतिहास पढ़ने के बाद यह स्वीकार करना पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति साधारण वंशों में नहीं हुई है। यह बात सही है कि उनका प्राचीन काल का गौरव आज मिट चुका है। उनके राज्य इन दिनों में बहुत गिरी हुई अवस्था में हैं और उनके स्वाभिमान व मर्यादा का पतन हो चुका है। परन्तु उनके जीवन की वर्तमान परिस्थितियाँ आज भी उनके प्राचीन गौरव का परिचय दे रही हैं।

लगातार अनेक शताब्दियों तक अत्याचारों से पीड़ित रहकर भी राजपूतों ने अपने स्वाभिमान को बहुत अंशों में अब तक सुरक्षित रखा है। मेरी आँखों के सामने राणा का वंश है। इस वंश ने अपनी स्वाधीनता और मर्यादा की रक्षा के लिए कितने भीषण अत्याचारों को लगातार सैकड़ों वर्षों तक सहन किया है, इसको सोचकर शरीर रोमांचित हो उठता है। मुग़ल सम्राट जहाँगीर ने सीसोदिया वंश का इतिहास लिखा है।[1] मेवाड़ के राणा को राजनीतिक परिस्थितियों के अधीन में होकर मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मुग़ल सम्राट बाबर राजपूतों के विरुद्ध जो न कर सका था, हुमायूँ और अकबर को जिसमें सफलता न मिली थी, सम्राट जहाँगीर ने उसमें सफलता प्राप्त की थी। जहाँगीर ने मेवाड़ के

1. मेवाड़ की राजपूत जाति में सीसोदिया वंश का बहुत ऊँचा स्थान है। इस वंश ने घटनाओं और परिस्थितियों के अनुसार अपने नामों में परिवर्तन किया है। पहले ये लोग सूर्यवंशी नाम से विख्यात थे। उसके बाद इस वंश के लोग गहिलोत कहलाये। बाद में आटेरिया और उसके उपरांत सीसोदिया के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सीसोदिया वंश की प्रशंसा लिखी है। इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ के शासन काल में सर टामसरो भारत में दूत बनकर आया था। उसने यहाँ के राजपूतों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

मारवाड़ की राजपूत जातियों में राठौड़ राजपूतों का सम्मानपूर्ण स्थान है। लेकिन सीसोदिया वंश के लोगों के सम्बंध में जितनी आजादी के साथ मैं लिख सकता हूँ, उतनी आजादी के साथ राठौड़ राजपूतों के सम्बंध में लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ फिर भी मैं इतना तो जानता हूँ कि जिन दिनों में फ्रांस के लोग भारत में अपना स्थान बना रहे थे, यहाँ के राठौड़ राजपूत उन दिनों में अत्यंत शक्तिशाली थे और उनका शासन बहुत दूर तक फैला हुआ था। बारहवीं शताब्दी में उनके विस्तृत राज्य का पतन हुआ और उसके बाद इस वंश का शासन मारवाड़ में केन्द्रित होकर रहा।

आमेर के कछवाहे – प्राचीन काल में निषध नामक राजपूतों का जो एक प्रसिद्ध राज्य था और जो आजकल नरवर के नाम से मशहूर है, राजा नल और रानी दमयंती ने जिनकी कथायें सर्वसाधारण में बहुत प्रचलित हैं (संदर्भ) इसी वंश में जन्म लिया था। बाहरी आक्रमणों के कारण इस वंश के लोगों को अपना पैतृक राज्य छोड़ना पड़ा था। उस समय भारतवर्ष में चार प्रधान राज्य थे। अरब के प्रसिद्ध यात्री ने उन चारों राज्यों के सम्बंध में जो कुछ लिखा है, उनके द्वारा उन राज्यों का हमको परिचय मिलता है।

मेवाड़ का सीसोदिया वंश – राजस्थान के राज्यों में मेवाड़ का स्थान अधिक सम्मानपूर्ण है और सम्पूर्ण राजपूत जातियों में सीसोदिया वंश का स्थान ऊँचा है। मेवाड़ की राजनीति, समाजनीति और शासन व्यवस्था यहाँ के अन्यान्य राज्यों से बिल्कुल भिन्न है। राजस्थान के दूसरे राज्य जब कोई विशेष स्थान न रखते थे, मेवाड़ का राज्य उस समय इस देश में विख्यात हो रहा था। सीसोदिया वंश के स्वाभिमानी राणा लोगों ने आक्रमणकारियों के साथ बहुत समय तक युद्ध किया। उन्होंने जीवन की भयानक कठिनाइयों का सामना किया परन्तु वे अपनी स्वाधीनता को नष्ट करने के लिए तैयार न हुए। सीसोदिया वंश की सबसे बड़ी प्रशंसा यह थी कि इस वंश का कोई भी राणा अवसरवादी न था।

मुग़ल साम्राज्य के पतन के दिनों में उसके बहुत से अधीन राज्यों ने लाभ उठाया था। साम्राज्य के छोटे-छोटे राजा और सामन्त विद्रोह करके स्वतंत्र हो गये थे। मारवाड़, आमेर और राजस्थान के दूसरे राज्यों ने भी उस मौके का लाभ उठाया था। उन्होंने अपने राज्यों की सीमा बढ़ा ली थी और मुग़लों के साथ विद्रोह करके अपनी स्वाधीनता की घोषणा की थी। परन्तु मेवाड़ के सीसोदिया वंश ने इस अवसर पर कोई लाभ नहीं उठाया था।

परिवर्तन और पतन के दिनों में भी राजपूतों ने अपने पूर्वजों के गौरव को नहीं भुलाया। उन्होंने जिस प्रकार श्रेष्ठ वंशों में जन्म लिया है, अनेक विपदाओं में आकर भी उन्होंने उनकी श्रेष्ठता की रक्षा की है। उनके मनोभावों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि उनके जीवन की परिस्थितियों में भयानक अंतर आ चुका है। मेवाड़ राज्य के प्राचीन पुरुष, जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे और भयानक विपदाओं के समय भी वे अपना मस्तक नीचा न करते थे, उनके वंशजों में पूर्वजों के वे गुण और स्वभाव आज भी देखने को मिलते हैं।

मेवाड़ की राजपताका लाल रंग की है और उस पताका पर सूर्य की आकृति अंकित रहती है। मेवाड़ के सामन्तों की पताकायें, मेवाड़ की पताका से भिन्न रहती हैं। आम्बेर की

राज पताका पाँच रंग की होती है। चन्देरी नाम के एक छोटे राज्य की पताका पर प्रमत्त सिंह की आकृति अंकित रहती है।[1]

ईसा के जन्म से बहुत पहले भारत में महाभारत का युद्ध हुआ था। उस समय अर्जुन की पताका में हनुमान की मूर्ति अंकित रहती थी। इसका समर्थन हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ महाभारत के द्वारा होता है।

राजपूतों के महलों में उनके वंश के देवता की मूर्ति रहा करती है। राजपूत लोग अपने वंश के उस देवता की मूर्ति को साथ में लेकर युद्ध में जाते थे। राजा उस मूर्ति को अपने साथ लेकर घोड़े पर सवार होता था। कोटा के राजा भीमहर ने युद्ध के समय अपने देवता के साथ-साथ अपने प्राणों का वलिदान किया था। खींची जाति के सरदार स्वर्गीय जयसिंह की भी यही दशा थी। अपने देवता को साथ लेकर ही वह युद्ध में जाता था।[2]

युद्ध में अपने वंश के देवता को ले जाने का आम रिवाज हिन्दू राजाओं में था। यूनान के वादशाह सिकन्दर ने जब भारत में आक्रमण किया था, उन दिनों में जितने भी इस देश के राजा उसके साथ युद्ध करने गये थे, सभी अपने-अपने वंश के देवता को साथ ले गये थे। कुछ राजाओं ने अपनी सेना के आगे कुल देवता को रखकर युद्ध आरंभ किया था।

सिंध नदी के पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश में जिस समय युद्ध हुआ था, उसके बहुत पहले युधिष्ठिर की राजपताका के नीचे बहुत से मुसलमान एकत्रित हुये थे। पराक्रमी विशाल देव का नाम दिल्ली के विजय स्तंभों पर खुदा हुआ है। वह यवन सेना के साथ युद्ध करने के लिये जो अपनी सेना ले गया था, उसमें चौरासी हिन्दू राजाओं की पताकायें थीं। इस युद्ध में शामिल होने के लिये विशाल देव ने बहुत से राजाओं को निमंत्रण पत्र भेजा था। प्रसिद्ध चन्द कवि ने अपने ग्रंथ में उस युद्ध की बहुत-सी बातें लिखी हैं। कवि चन्द ने अपने ग्रंथ में पृथ्वीराज के शासन की सामन्त प्रणाली का खूब वर्णन किया है।

राजस्थान में प्रचलित सामाजिक नियमों के अनुसार जिनका जन्म विशुद्ध राजपूत वंश में हुआ है, उन्हीं को मेवाड़ राज्य में सामन्त होने का अधिकार है। इस राज्य के जितने भी सामन्त अब तक बने थे, सभी के साथ इस नियम की पाबंदी की गयी थी। मेवाड़ राज्य में वंश की श्रेष्ठता को बहुत महत्त्व दिया जाता था। राज्य के कार्यों में राजपूतों के सिवा दूसरे लोग भी नियुक्त किये जाते थे और उसमें जिनको गुजारे के लिये भूमि दी जाती थी, उस पर उनका पैतृक अधिकार नहीं होता था। पाने वाला जब तक राज्य का काम करता था, उस समय तक वह उस भूमि का अधिकारी माना जाता था।

यूरोप के देशों में राज्य के प्रमुख कर्मचारियों को भूमि अथवा कुछ गाँवों का इलाका दिया जाता था। उसी प्रकार राजस्थान के राज्यों में भी राज्य के प्रधान कर्मचारियों को भूमि अथवा इलाका देने की परिपाटी थी। इस परिपाटी का एक कारण था। उन दिनों में सिक्के का प्रचार न हुआ था। उस दशा में वेतन देने में बड़ी असुविधा होती थी। इस उलझन से बचने के लिये प्राचीनकाल में राजकर्मचारियों को उनके पदों के अनुसार भूमि अथवा इलाका दिया जाता था।

---

1. इस राज्य का सम्पूर्ण भाग जंगलों से घिरा हुआ है। यूरोप के लोगों में से सबसे पहले मैं ही सन् 1805 ईसवी में वहाँ गया था। उस यात्रा में मुझे भयानक कष्ट भोगने पड़े थे। उन दिनों में यह राज्य स्वतंत्र था। उसके तीन वर्ष बाद इस राज्य पर सिन्धिया ने अपना अधिकार कर लिया था।
2. खींची चौहान राजपूत वंश की एक शाखा है। हाड़ावती के पूर्व की तरफ इस वंश के लोगों का राज्य था।

मेवाड़ के मंत्री लोग वेतन के स्थान पर भूमि अथवा इलाका अधिक सम्मानपूर्ण समझते थे। यूरोप के अनेक देशों में भी उस युग में इसी प्रकार के भूप्रबन्ध पाये जाते थे फ्रांस के राजा सार्लमन के यहाँ राज कर्मचारियों की अलग-अलग श्रेणियाँ बनी थीं। उनमें छोटे और बड़े सभी प्रकार के कर्मचारी थे। मंत्रियों और अध्यक्ष लोगों की भी श्रेणियाँ थी। राजपूत राज्यों में भी हमको बहुत कुछ उसी प्रकार की बातें देखने को मिलती हैं।

मेवाड़ राज्य में वेतन के स्थान पर भूमि पाने वाले सभी प्रकार के लोग देखे जाते हैं। प्रासाद निर्माता, चित्रकार, चिकित्सक, दूत और मंत्री लोग भूमि पाने के अधिकारी माने जाते हैं। राज्य के कर्मचारियों में उनके वंश की श्रेष्ठता को अधिक महत्त्व दिया जाता है। राज्य के कार्यों में आमतौर पर पैतृक अधिकार चलता है। इसका अर्थ यह है कि जिस पद पर जो आदमी काम करता है, उस पद पर उसी का पुत्र, प्रपौत्र और उत्तराधिकारी काम कर सकता है। ऐसे लोगों को राज्य की तरफ से उपाधि भी दी जाती है।

यदि किसी कारण से किसी को दी गई भूमि वापस ले ली जाती है तो जिसकी भूमि वापस ली जाती है, उसे अपने अधिकार के लिये लड़ने का मौका मिलता है। भूमि अथवा गुजारा पाये हुए राज कर्मचारियों को राज्य के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ता है। किसी भी अवस्था में वे अपने राजा के भक्त होते हैं और राज्य के प्रति उनको शुभचिंतक होकर रहना पड़ता है। कर्त्तव्यपरायणता के विरुद्ध कोई काम करने पर अथवा अपने आचरणों से राज्य के प्रति विश्वासघात का परिचय देने पर उसे जो भूमि अथवा इलाका दिया गया था, वह वापस ले लिया जाता है। यदि इसके सम्बंध में कोई अपील करता है तो उस पर फिर से निर्णय किया जाता है।

मेवाड़ राज्य की व्यवस्था सभी प्रकार से सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। राज्य की दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर लड़ाकू और लुटेरे भील, मीणा और मीणा जाति के लोग रहते हैं। राज्य के चारों तरफ सामन्तों का शासन है। राज्य की मध्यवर्ती भूमि खालसा है। यह भूमि अधिक उपजाऊ है। इस प्रकार की व्यवस्था के द्वारा मेवाड़ राज्य साधारण परिस्थितियों में सुरक्षित समझा जाता है।

मेवाड़ में सामन्तों को जितनी भूमि दी गई है,खालसा भूमि उसकी चौथाई भी नहीं है। इस खालसा भूमि की आमदनी से ही राज्य का कार्य चलता है। किसी उत्तम कार्य के लिये इसी आय से राणा, लोगों को पारितोषिक देता है। राजधानी के निकट किसी भी सामन्त को भूमि नहीं दी जाती। इस नियम को राणा भीमसिंह ने पहले से भी अधिक कठोर बना दिया है।

सामन्तों को राज्य की भूमि का जो इलाका दिया जाता है, उसके बदले में उनको राज्य की रक्षा के लिए शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता है। मेवाड़ के सामन्तों के सामने, उनके सीमा पर होने के कारण, एक न एक लड़ाई बनी ही रहती है। कभी पहाड़ों पर रहने वाली जंगली जातियों के उपद्रव होते हैं, तो उस दशा में सामन्तों को उनका सामना करना पड़ता है और कभी आक्रमणकारियों के आने पर उनके साथ उनको संग्राम करना पड़ता है। इस प्रकार के जितने भी संघर्ष पैदा होते हैं उनका सामना करने के लिये अपनी सेनाओं के साथ राणा की सहायता के लिए युद्ध स्थल में जाना पड़ता है।

शासन के सुभीते के लिए राज्य का विभाजन होता है। राज्य मे बड़े-बड़े जिले होते हैं और प्रत्येक जिले में पचास से लेकर सौ तक ग्राम होते हैं। कहीं-कहीं इन ग्रामों की संख्या और अधिक हो जाती है। सम्पूर्ण राज्य चौरासी भागों में विभाजित किया जाता है। जिन दिनों में जागीरदारी की प्रथा इंगलैंड में थी, उन दिनों में वहाँ पर भी इसी प्रकार का विभाजन होता था।

मेवाड़ राज्य की रक्षा के लिए बहुत से स्थानों पर सीमा रक्षक सरदार रहा करते हैं। उनके अधिकार में सैनिकों की एक संख्या रहती है। यह संख्या सभी सीमा-रक्षकों की एक-सी नहीं होती। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ उतने ही कम और अधिक सैनिक रखे जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर कोई भी सीमा रक्षक सरदार अपने निकटवर्ती सामन्त की सेना को सहायता के लिए बुला सकता है। इन सीमा रक्षकों की नियुक्ति बड़े उत्तरदायित्वों के साथ की जाती है। जो लोग इस कार्य के लिये राज्य के अधिकारियों के पास प्रार्थना पत्र भेजते हैं उनका अंतिम निर्णय राणा के द्वारा होता है। इन रक्षकों के अधिकार में राज्य की पताका राजकीय चिन्ह मानसूचक बाजे व घोषक दूत आदि अनेक चीजें होती हैं।

राज्य के जो सामन्त (जागीरदार) ऊँची श्रेणी के होते हैं, साधारण अवस्था में सीमा के संघर्ष में जाकर भाग नहीं लेते। बल्कि अपनी सेना के किसी अधिकारी के नेतृत्व में अपनी सेना भेज देते हैं।

राज्य के विभाजन में प्रत्येक जिले में मामले-मुकदमें का निर्णय करने के लिए एक दीवानी का अधिकारी और दूसरा एक सैनिक अधिकारी रहा करता है। इन लोगों का कार्यालय किसी दुर्ग में रहता है और वहीं पर रहकर वे लोग अपना कार्य करते हैं।

विभाजित राज्य की सुव्यवस्था उसके सामन्तों (जागीरदारों) के द्वारा होती है। जो सामन्त (जागीरदार) इस प्रकार का कार्य करते हैं, राज्य की तरफ से वे चार श्रेणियों में विभाजित हैं और वे इस प्रकार हैं –

पहली श्रेणी – इस श्रेणी में सोलह सामन्त हैं। राज्य की तरफ से मिले हुये इलाकों के द्वारा इन सामन्तों की सालाना आमदनी पचास हजार रुपये से लेकर एक लाख रुपये तक है। इस श्रेणी के सामन्त राणा के द्वारा आमंत्रित होने पर किसी भी कार्य के समय राजभवन में जाते हैं। वंशों की मर्यादा के अनुसार इस श्रेणी के सामन्तों को राणा के मंत्री होने का पद मिलता है, यह मेवाड़ में बहुत दिनों से चला आ रहा है।

दूसरी श्रेणी – इस श्रेणी के सामन्तों की वार्षिक आय पाँच हजार रुपये से लेकर पचास हजार रुपये तक है। इन सामन्तों को नियमित रूप से राजभवन में रहना पड़ता है। इन्हीं सामन्तों में से प्रायः सीमा रक्षक चुने जाते हैं। उनको फौजदार कहते हैं। उनके अधिकार में सैनिकों की एक छोटी सेना रहती है।

तीसरी श्रेणी – सामन्तों की यह तीसरी श्रेणी गोल नाम से प्रसिद्ध है। इनकी वार्षिक आय पाँच हजार रुपये होती है। राणा उनमें से किसी को भी उनके कार्यों से प्रसन्न होकर अधिक भूमि देने का अधिकार रखता है। इन सामन्तों को राज्य के जो कार्य करने पड़ते हैं, वे राणा पर निर्भर होते हैं। इन्हीं के द्वारा राणा राज्य की व्यवस्था करता है। प्रत्येक अवस्था में इन सामन्तों को राणा के अधिकार में रहना पड़ता है। यदि ऊँची श्रेणी के सामन्त राणा के साथ विद्रोह करें तो इस श्रेणी के सामन्त उस समय राणा की सहायता करते हैं और विरोधी सामन्तों को विद्रोही समझकर राणा के आदेश के अनुसार उनके साथ युद्ध करते हैं।

चौथी श्रेणी – राणा के परिवार में उत्पन्न होने वाले राजकुमार एक निश्चित अवस्था तक बाबा कहे जाते हैं। उनके पालन-पोषण के लिए राज्य की तरफ से एक निश्चित भूमि होती है। ये लोग चौथी श्रेणी के सामन्त माने जाते हैं। इस श्रेणी में शाहपुरा और बनेड़ा के सामन्त अधिक शक्तिशाली हैं। इन सामन्तों को राणा के अधीन होकर चलना पड़ता है।

राज्य की दीवानी के मामलों का निर्णय करने के लिये जैसा कि ऊपर लिखा गया है–दीवानी का एक अधिकारी रहता है। यह अधिकारी सामन्तों में से ही नियुक्त होता है।

फौजदारी के अपराधों के निर्णय करने के लिये राणा के परामर्श की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निर्णय जिनके द्वारा होते हैं, वे पंचायतें कहलाती हैं।

मालगुजारी और राणा के अधिकार – इस विषय में यहाँ हम अधिक विस्तार में नहीं जाना चाहते। आवश्यकतानुसार, उन्हें आगामी पृष्ठों में विस्तार के साथ लिखा जायेगा। मेवाड़ राज्य में जो खालसा भूमि है, राणा की आय का साधन वही है। उसके द्वारा राज्य के कर की आय होती है। इसी खालसा भूमि पर राज्य का व्यवसाय और दूसरे कार्य निर्भर हैं। इन करों के द्वारा पहले राज्य को अच्छी आमदनी हो जाती थी और राणा लोग इन करों पर अधिक ध्यान देते थे। यह कर अधिक संख्या में राज्य के व्यवसायियों से वसूल होता था। इन व्यापारियों के साथ राज्य की तरफ से उदारतापूर्ण व्यवहार रहता था और राज्य के व्यवसायी भी निर्धारित कर राज्य को देकर अपना कर्त्तव्य पालन करते थे।

मेवाड़ राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ जितनी ही बिगड़ती गयीं और बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचार जितने ही राज्य में अधिक होते गये, राज्य के व्यवसायियों की परिस्थितियाँ भी उतनी ही खराब होती गयीं। आक्रमणकारियों की लूटमार के कारण राज्य की प्रजा बहुत गरीब हो गयी। साथ ही राज्य की तरफ से प्रजा की रक्षा की कोई व्यवस्था न हो सकने के कारण प्रजा की राज भक्ति में भी बहुत अंतर पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यापारियों को जो कर देना पड़ता था, उसकी वसूली में बहुत कठिनाइयाँ होने लगीं।

अनेक अवसरों पर मेवाड़ के राणा ने आक्रमणकारियों को अपरिमित सम्पत्ति देकर अपना खजाना खाली कर दिया था और इस दशा में राज्य की तरफ से जो कर व्यवसायियों पर बढ़ाये गये थे, पहले की अपेक्षा अधिक थे। इन करों के बढ़ने से प्रजा पीड़ित हो रही थी और व्यवसायियों के मनोभावों में बहुत अंतर पड़ गया था। यही कारण था कि एक व्यापारी ने राज्य के इन अधिक करों के सम्बंध में मुझसे कहा था – "राज्य की प्रजा जितनी ही निर्धन होती जाती है, राज्य की तरफ से कर उतने ही बढ़ते जाते हैं।"

इसमें संदेह नहीं कि राज्य की तरफ से जो कर बढ़े थे, उनका प्रभाव राज्य की प्रजा पर अच्छा नहीं पड़ा था। मेवाड़ के पतन के पहले राणा के साथ प्रजा का जितना शुद्ध और सम्मानपूर्ण व्यवहार था उसको फिर से कायम करने के लिए बहुत समय लगेगा।

प्राचीन काल में मेवाड़ राज्य में बहुत सी खानें थीं। उन खानों से राज्य को लाखों रुपये की आय होती थी। इस राज्य में केवल जावरा की खान से जो चाँदी पायी जाती थी, वह कई लाख रुपये की होती थी। चम्बल नाम के स्थान में जो खानें थीं, उनसे लोहा, ताँबा और सीसा की उत्पत्ति होती थी। इस राज्य में कुछ खानों में कीमती पत्थर पाया जाता था। परन्तु राज्य की परिस्थितियाँ बिगड़ जाने से ये खानें नष्ट हो गयी हैं और अब उनसे लाभ उठाने के लिए असाधारण परिश्रम और धन के खर्च करने की जरूरत है।[1]

बरार – बरार का अर्थ कर है। इस राज्य में साधारण तौर पर प्रजा से जो कर वसूल किये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं : 'गनीमबरार' अर्थात् युद्ध सम्बंधी कर, 'घारगुंती बरार' अर्थात् घर का कर, 'हल बरार' अर्थात् खेती का कर, 'न्योता बरार' अर्थात् विवाह

1. मेवाड़ राज्य में सिक्का निर्माण कराने का अधिकार राणा के सिवा किसी दूसरे को नहीं है। शालुम्ब्रू का सामन्त ताँवे का पैसा बनवा सकता है। परन्तु सोने अथवा चाँदी की मुद्रा निर्माण कराने का अधिकार उसको भी नहीं है। प्राचीन काल में इस राज्य के टकसाल घर से राणा को बहुत अधिक आय होती थी। इस प्रकार की व्यवस्था मेवाड़ राज्य में अब उसी समय हो सकती है, जब राज्य में पूरी तौर पर शांति कायम हो।

का कर, इस प्रकार के कई कर इस राज्य में लगाये जाते हैं। इन दिनों में युद्ध का कर प्रजा से वसूल नहीं किया जाता। इसके पहले इस राज्य में एक न एक युद्ध का कर चलता ही रहता था। इसका कारण यह था कि उन दिनों में इस राज्य को लगातार वहुत समय तक युद्ध करने पड़े थे।

कृषकों पर जो खेती का कर लगता था, उसका निश्चय खेती में पैदा होने वाले अनाजों के आधार पर होता था। खेती में जिसकी जैसी पैदावार होती थी, उसको उसी हिसाव से कर देना पड़ता था। पिछले दिनों में युद्ध कर की भी यही हालत हो गयी थी। खेतों की पैदावार के हिसाव से ही युद्ध कर भी लिया जाता था। राज्य के पहाड़ी स्थानों पर कर वसूल करने की दूसरी व्यवस्था है। क्योंकि यहाँ की भूमि में जो खेती होती है, उसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसीलिए भूमि के हिसाव से पहाड़ी कृषकों पर कर लगा दिया जाता है।

राज्य में कुछ और भी ऐसे अवसर आते हैं, जिससे राणा को आर्थिक लाभ होता है। ऐसे अवसरों में, किसी सामन्त अथवा सरदार का अभिषेक अथवा इस तरह के कोई भी दूसरे कार्य जव कभी राज्य में होते हैं तो उन अवसरों पर राणा को नजर दी जाती है। इस भेंट में मिलने वाली सम्पत्ति का कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। समय और परिस्थितियों के अनुसार मिलने वाली सम्पत्ति कम और अधिक हो सकती है। भूमिया सरदारों से वार्षिक अथवा त्रैवार्षिक राणा को एक निश्चित आय होती है। नियमों को भंग करने वालों और दूसरे अपराधियों को जो दंड दिया जाता है, उससे भी आर्थिक आय होती है।

मेवाड़ राज्य में अपराधियों को अधिक कठोर दंड नहीं दिया जाता। प्राण दंड के स्थान पर उनको आर्थिक दंड देकर छोड़ दिया जाता है। इसका कारण यह भी है कि पहाड़ों पर रहने वाले जंगली लोग प्रायः अधिक अपराधी होते हैं और वे शारीरिक दंड की अपेक्षा आर्थिक दंड से अधिक घवराते हैं।

खड लकड – यह भी एक प्रकार का कर है। इसके द्वारा राज्य को अच्छी आय होती है। यह कर वहुत पहले से चला आ रहा है। जिस समय राणा अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए रवाना होता है, उस समय राज्य का प्रत्येक मनुष्य अथवा उसका परिवार राज्य की सेना के लिए काष्ठ और खड दिया करता था। कुछ दिनों के वाद यह कर विना किसी युद्ध के ही लिया जाने लगा। खड लकड का अभिप्राय रसद से है। युद्ध के दिनों में सेनाओं के लिये रसद राज्य के प्रत्येक ग्राम और नगर में वसूल किया जाता था। इस रसद में खाने के पदार्थों के सिवा और भी वहुत-सी चीजें वसूल की जाती थीं।

यह प्रथा अव भी प्रचलित है। फ्रांस में जव सामन्त शासन-प्रणाली (जागीरदारी प्रथा) चल रही थी तो प्रजा से इसी प्रकार रसद ली जाती थी। वह प्रणाली विगड़ कर कुछ और हो गयी और रसद के नाम पर खाने-पीने के पदार्थों के अतिरिक्त राज्य के अधिकारी धन वसूल करने लगे थे। फ्रांस की इन वातों का उल्लेख इतिहासकार हालम ने अपने ग्रंथ में किया है। उसने लिखा है कि फ्रांस का राजा जव राज्य में घूमने के लिए निकलता था तो उसके सामन्त उसके पास जाकर भेंट करते थे और सम्मानपूर्वक वे लोग सम्पत्ति के साथ घोड़ा और वहुमूल्य पदार्थ राजा को उपहार में देते थे। इस सम्मान में सामन्त जो कुछ खर्च करता था, उसे वह अपने कृषकों और व्यवसायियों से वसूल कर लेता था। मेवाड़ में मदिरा, अफीम और दूसरे मादक पदार्थों पर कर लिया जाता है, इन करों के द्वारा राज्य को आर्थिक लाभ होता है।

मेवाड़ राज्य के अच्छे दिनों में राणा दीवानी के अधिकारियों, चार मंत्रियों और उनके सहायक मंत्रियों के साथ राज भवन में बैठकर परामर्श करता था और राज्य की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए चेष्टा करता था। राज्य के सामन्त और सरदार इन वैधानिक कार्यों से कोई सम्बंध न रखते थे।

जिन दिनों में राज्य की दशा बिगड़ रही थी, शासन की व्यवस्था खराब हो रही थी सर्वत्र अशांति फैल रही थी, राज्य की शक्तियाँ दुर्बल हो गई थी, उन दिनों में राज्य का वैधानिक कार्य बहुत निर्बल हो गया था। यद्यपि उन दिनों में राणा की अवस्था अच्छी न रही थी और आक्रमणकारियों के अत्याचारों से राज्य बहुत पीड़ित हो रहा था, फिर भी राज्य की पंचायतें अपना कार्य नियमित रूप से कर रही थीं। अशांत्ति के इन दिनों में भी राज्य का प्रत्येक विभाग अपना कार्य कर रहा था। सीमा पर जो छावनी बनी हुई थी, उनमें अधिकारी बैठकर अपना काम करते थे और सीमा की रक्षा के लिए वे सदा सावधान रहते थे।

राज्य में कर वसूल करने का कार्य सावधानी के साथ चल रहा था। कहीं पर राज्य की तरफ से कोई उत्पात न हो, सबल निर्बलों को सता न सके, नीच और उद्दंड अनुचित कार्य न कर सकें, इन सभी बातों के प्रति राज्य के अधिकारी सदा सतर्क रहते थे। राज्य के बहुत से कार्य प्रजा के प्रतिनिधियों के द्वारा हुआ करते थे। प्रत्येक नगर और ग्राम से प्रजा अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजा करती थी और वे लोग एकत्रित होकर राज्य की समस्याओं का बहुमत से निर्णय किया करते थे।

राजस्थान के सभी बड़े-बड़े नगरों मे निर्णायक समितियाँ बनी हुई थीं। उन समितियों का जो प्रधान चुना जाता था, वह नगर सेठ कहलाता था। इस पद के लिए नगर और ग्राम के श्रेष्ठ पुरुषों का चुनाव होता था। प्रजा के प्रतिनिधियों के साथ नगर सेठ बैठकर राज्य की समस्याओं का निर्णय किया करता था। सामन्त शासन-प्रणाली (जागीरदारी प्रथा) के दिनों में फ्रांस में भी यही होता था। वहाँ पर भी प्रजा के प्रतिनिधि एकत्रित होकर अपना प्रधान चुनते थे और वह प्रधान प्रतिनिधियों की सहायता से राज्य के कार्यों की व्यवस्था करता था। इस प्रकार की संस्थाओं के द्वारा राज्य के कार्यों का संचालन होता था। उनके बनाये हुये नियमों के आधार पर राज्य के बड़े-बड़े ग्रामों में पंचायतें काम करती थीं और उनके कार्यकर्त्ताओं का भी चुनाव हुआ करता था।

प्राचीनकाल में राज्य की संस्थायें अपना कार्य करने के लिए चबूतरों पर बैठकें करती थीं। इस प्रकार के कार्यों के लिये जो चबूतरे चुने जाते थे, वे खालसा भूमि की सीमा के भीतर होते थे, जिन पर राणा का अधिकार होता था। किसी सामन्त के अधिकृत क्षेत्र में इस प्रकार के स्थान नहीं चुने जाते थे। सामन्त (जागीरदार) लोग अपने अधिकार की भूमि का स्वतंत्र रूप से उपभोग करते थे। उसमें राजा का हस्तक्षेप वे पसंद नहीं करते थे। वे स्वयं राजा की अधीनता में रहते थे। फिर भी अपने अधिकार के क्षेत्र को वे स्वतंत्र मानते थे।

रोजाना – सामन्तों में किसी के अपराधी होने पर, राणा की आज्ञा का अनादर करने पर, राणा के द्वारा बुलाये जाने पर देर से उपस्थित होने पर अथवा इस प्रकार के किसी कार्य के करने पर राणा का दूत अपने साथ कुछ अश्वारोही अथवा पैदल सेना लेकर उस सामन्त के पास जाता है और राणा का आदेश पत्र उसकी मोहर के साथ सामन्त को दिखाकर दूत उससे रसद माँगता है। इसी रसद को रोजाना कहते हैं।

अपराधी सामन्त जब तक राणा की आज्ञा का पालन न करे, उस समय तक राणा का दूत अपनी सेना के साथ सामन्त के यहाँ रहने का अधिकारी है और उसके लिए उस सामन्त

को रसद देनी पड़ती है। राजभवन पहुँचने में सामन्त प्रायः देर कर देते हैं। उस दशा में उनके विरुद्ध राणा को यही करना पड़ता है। परन्तु इसके परिणाम कभी-कभी बहुत भयानक हो जाते हैं।

सामन्तों के क्षेत्रों में राणा को अथवा राज्य के किसी विभाग के अधिकारियों को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। सामन्त अपने-अपने क्षेत्रों की व्यवस्था स्वयं करते हैं। सामन्तों के क्षेत्रों में भी पंचायतों की प्रथा काम करती है। देवगढ़ के सामन्त ने अपने अधीन सरदारों के सामने एक बार प्रतिज्ञा की थी–"आप सब के परामर्श के बिना हम किसी प्रकार के कार्य का अनुष्ठान न करेंगे।"

राज्य में किसी प्रकार की अशांति पैदा होने पर अथवा किसी बाहरी शक्ति के आक्रमण करने पर अथवा आक्रमण की संभावना होने पर मेवाड़ के सभी सामन्त राणा की सभा में आकर एकत्रित होते हैं। राणा उनके साथ परामर्श करता है। उस समय इस बात का निर्णय किया जाता है कि ऐसे समय पर क्या होना चाहिये। सामन्तों के परामर्श के बिना उनके निर्णय के विरुद्ध राणा को ऐसे अवसरों पर कुछ भी करने का अधिकार नहीं है।

मेवाड़ राज्य पर जब कोई राजनीतिक विपदा आती है, तो राणा के पास पहुँचने के पहले ही सामन्त लोग आपस में परामर्श कर लेते हैं कि उनको राणा की सभा में जाकर क्या निर्णय करना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर सामन्त यही करते हैं और उसके बाद राणा की सभा में जाते हैं।

ऐसे अवसरों पर यदि राणा की तरफ से किसी (जागीरदार) सामन्त को निमंत्रण नहीं मिलता अथवा वह बुलाया नहीं जाता, तो वह सामन्त अपना अपमान अनुभव करता है। राणा अपने राज्य में शासन की जिस व्यवस्था को काम में लाता है, सामन्त लोग भी उसी प्रथा का अनुसरण करके अपने क्षेत्रों में राज्य का प्रबंध करते हैं।

प्रत्येक सामन्त की अधीनता में कुछ सरदार रहते हैं, उसके कुछ प्रमुख कर्मचारी होते हैं। ये सरदार और प्रमुख कर्मचारी अपने सामन्त के दरबारी होते हैं। उसके दरबार में पंडित, कवि और प्रजा की तरफ से कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति रहा करते हैं। ये सभी लोग अनेक अवसरों पर सामन्त को अपना परामर्श देते हैं। जिस प्रकार राणा अपने मंत्रियों और सदस्यों के साथ बैठकर किसी समस्या का निर्णय करता है, ठीक उसी प्रकार सामन्तों को भी अपने-अपने क्षेत्र में करना पड़ता है। इस प्रकार के परामर्शों में राणा के विचारों को प्रायः महत्त्व दिया जाता है और राज्य की समस्याओं को राणा के दरबार में एकत्रित होकर सभी सामन्त सुलझाते।

सैनिक कार्य – सुख और संतोष के दिनों में मेवाड़ में पंद्रह हजार अश्वारोही सेना राज्य के प्रत्येक भाग से आकर एकत्रित होती और युद्ध भूमि में राणा के साथ जाती थी। इन सैनिकों को राज्य की तरफ से केवल भूमि दी जाती थी। जिसके बदले उनको राज्य की यह सेवा करनी पड़ती थी। सैनिकों की इस संख्या में प्रत्येक सामन्त अपने सरदारों के साथ उस सेना को लेकर जो उसके अधिकार में रहती थी, राणा के पास उपस्थित होता था।

सामन्तों को भूमि अथवा इलाका जो दिया जाता था, वह सब के लिए एक-सा नहीं था और वे लोग अपने अधिकार में जो सेनायें रखते थे, वे भी एक-सी न थीं। उनके सैनिकों की संख्या अलग-अलग थी। जिस सामन्त की आय जैसी होती थी, उसी हिसाब से वह अपने अधिकार में सेना रख सकता था। एक हजार रुपये की वार्षिक आय पर कम से कम दो और आमतौर से तीन सैनिक सवारों को रखने का नियम था। कभी-कभी भूमि दी जाने के समय आय के प्रत्येक एक हजार रुपये पर किसी-किसी को तीन अश्वारोही और

तीन पैदल सैनिक रख सकने का अधिकार दे दिया जाता था। इंगलैंड के राजा विलियम ने जिस समय अपना राज्य साठ हजार भागों में विभजित किया था, उस समय उसके प्रत्येक भाग को दो सौ रूपये सेना के लिए देने पड़ते थे। जो भाग सेना नहीं दे सकता था, वह रुपये देता था।

इधर बहुत दिनों से इंगलैंड में जागीरदारी प्रथा का अंत हो गया है। इसके पहले जब यह प्रथा वहाँ पर जारी थी, उस समय सामन्तों की सेना पर राजा के अधिकार निर्धारित थे। प्रत्येक सैनिक वर्ष में केवल चालीस दिन राज्य का काम करता था। इन दिनों में राजा सैनिकों से कोई भी कार्य ले सकता था। इन सैनिकों को राज्य के भीतर अथवा बाहर राजा के आदेश पर युद्ध करना पड़ता था।

राजा के प्रति राजस्थान में सामन्तों को कुछ नियम पालन करने पड़ते हैं। मेवाड़ के सामन्तों को वर्ष में कुछ दिन राणा की राजधानी उदयपुर में रहना पड़ता है। सभी सामन्तों को एक साथ ऐसा नहीं करना पड़ता। सामन्तों का विभाजन हो जाता है। एक बार आये हुये सामन्तों का जब समय समाप्त हो जाता है तो वे चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे सामन्त आ जाते हैं। कुछ युद्ध सम्बंधी उत्सव हुआ करते हैं। ऐसे अवसरों पर सभी सामन्तों को सेना और रसद के साथ राजधानी में आकर उपस्थित होना पड़ता है। लेकिन राज्य से बाहर जब कभी सैनिक युद्ध के लिये जाते हैं तो सामन्तों की सेनाओं के लिये कुछ रसद राणा की तरफ से भी दी जाती है।

सामन्तों को दंड – जिन दिनों यूरोप में जागीरदारी प्रथा के अनुसार राज्य का शासन होता था, उन दिनों में राजा की आज्ञा का पालम न करने पर सामन्तों को दंड दिया जाता था। इसी प्रकार की प्रणाली मेवाड़ में भी चलती है। यहाँ पर सामन्तों को भूमि देकर जो इकरारनामा लिखा जाता है, उसमें साफ-साफ इस बात का उल्लेख कर दिया जाता है। उसके अनुसार किसी सामन्त के द्वारा अनुशासन भंग करने पर अथवा अशिष्ट व्यवहार करने पर सामन्त को राजा के दंड देने पर रुपये देने पड़ते हैं। राजा को यह भी अधिकार होता है कि सामन्त के कर्त्तव्य पालन न करने पर वह उसके अधिकार की भूमि को जब्त कर ले।

राजस्थान के राजा ऐसे अवसरों पर सामन्तों के अधिकार की भूमि को वापस ले लेने की अधिक चेष्टा करते हैं और उनको पदच्युत कर देते हैं। सामन्त लोग इस प्रकार का दंड पाने पर भूमि छोड़ने की अपेक्षा रुपये देना अधिक पसंद करते हैं। जब कोई सामन्त पैतृक अधिकारों पर अपनी नियुक्ति पाता है और उस दशा में जब उसकी भूमि उससे वापस ली जाती है तो वह उसे किसी प्रकार छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता और कभी-कभी राणा के साथ विद्रोह करके वह लड़ने के लिये तैयार हो जाता है।

जागीरदारी प्रथा की अयोग्यता – सम्पूर्ण राजस्थान में राज्य का भाग्य और दुर्भाग्य एक राजा के ऊपर निर्भर है। यदि वह अच्छा है तो राज्य की उन्नति हो सकती है और यदि वह अच्छा नहीं है तो राज्य के लाखों मनुष्यों का भाग्य पतित हो जाता है। इस प्रथा के अनुसार केवल एक ही मनुष्य लाखों मनुष्यों के भाग्य का संचालन करता है। यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके अथवा उसके चरित्र में निर्वलता हो तो उसके राज्य का पतन निश्चित हो जाता है। फलस्वरूप अशांति, उपद्रव और अत्याचार पैदा होते हैं। इस प्रथा की यह सबसे बड़ी निर्बलता है। इस प्रथा में इस प्रकार की अनेक त्रुटियाँ हैं। इसके द्वारा कभी कोई राज्य अपनी उन्नति नहीं कर सका। जो कमजोरियाँ राजस्थान के राज्यों में इन प्रथाओं के सम्बंध में पायी जाती हैं, वही यूरोप के राज्यों में भी रही है।

मेवाड़ में चूंडावत व शक्तावत बहुत समय तक एक दूसरे के शत्रु बने रहे। उनके वैर विरोध के कारण राणा की शक्तियाँ दुर्बल होती गयीं। उन पर राणा का आतंक काम न कर सका। दोनों ही वंशों के सरदार समय-समय पर राणा की आज्ञाओं का उल्लंघन कर देते थे। इन दोनों वंशों की आपसी शत्रुता के कारण राणा निर्बल होता गया और वह बाहरी शत्रुओं का सामना कर सकने में असफल रहा।

जिस समय मुगल सम्राट जहाँगीर ने मेवाड़ की प्राचीन राजधानी चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया था और राणा को वहाँ से भाग जाना पड़ा था, उस समय राणा ने सब सामन्तों को एकत्रित करके परामर्श किया। युद्ध में चूंण्डावत वंश के सरदार अपनी सेना लेकर आगे-आगे चला करते थे। वहाँ पर इस अधिकार को बहुत महानता दी जाती थी। इस अधिकार को मेवाड़ में हरावल को कहा जाता था। इसका अर्थ होता है, सेना के आगे चलने का अधिकार। यह बहुत सम्मानपूर्ण समझा जाता है। शक्तावत सरदार युद्ध में किसी प्रकार चूंण्डावतों से निर्बल न थे। इसीलिये शक्तावत सरदारों ने इस सम्मान को प्राप्त करने के लिए कोशिश की।

चूण्डावत सरदारों ने शक्तावतों का विरोध किया। उनका कहना था कि ये अधिकार और सम्मान सदा से हमको मिला है। इसलिए इस अधिकार को प्राप्त करने वाला कोई दूसरा नहीं हो सकता। यह विवाद दोनों वंशों के सरदारों में बढ़ने लगा और अंत में वे दोनों अपनी-अपनी तलवारें लेकर एक दूसरे पर आक्रमण कर बैठे। जब इस अधिकार का निर्णय वे स्वयं दोनों करने लगे और एक दूसरे के सर्वनाश करने के लिए तैयार हो गये तो राणा के सामने बड़ा असमंजस पैदा हुआ।

उस भयानक परिस्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए राणा ने दोनों वंशों के सरदारों से कहा –"इस अधिकार के लिए आप लोग आपस में युद्ध न करें। हमारे सामने अन्तला नामक स्थान को अधिकार में लाने का प्रश्न है। जो अन्तला के दुर्ग में पहले प्रवेश कर सकेगा, वही हरावल को प्राप्त करने का अधिकारी माना जायेगा।"

राणा के इस निर्णय को दोनों वंशों के लोगों ने स्वीकार कर लिया और उसी समय दोनों वंशों के सरदार अपने-अपने सैनिकों के साथ अन्तला दुर्ग की तरफ रवाना हो गये। राजधानी उदयपुर से पूर्व की तरफ अन्तला दुर्ग नौ कोस की दूरी पर है। वहाँ से चित्तौड़ की तरफ एक पुराना रास्ता गया है। यह दुर्ग जमीन की सतह से कुछ ऊँचाई पर बना हुआ है। उसकी रक्षा के लिए पत्थर का बना हुआ उसका घेरा बहुत मजबूत है। उसके भीतर अनेक महल बने हुए हैं। दुर्ग के नीचे एक नदी प्रवाहित होती है।[1] दुर्ग के भीतर उसके शासक के रहने का जो महल बना है, उसकी दीवारें भी मजबूत बनी हुई हैं। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए केवल एक ही द्वार है।

शक्तावत सरदारों ने बहुत तेजी के साथ दुर्ग के पास पहुँचने की चेष्टा की। वे लोग सूर्य निकलने के पहले ही वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचने का समाचार किसी प्रकार दुर्ग के मुसलमान सैनिकों को मिल गया। वे युद्ध के लिए तैयार होकर दुर्ग के ऊपर एक सुरक्षित स्थान पर एकत्रित हो गये।

---

1. यह दुर्ग इन दिनों में बिल्कुल नष्ट हो गया है। लेकिन उस दुर्ग की ऊँची चोटी के महल और दुर्ग के कुछ हिस्से अब भी टूटी-फूटी दशा में पाये जाते हैं। उनको देखकर हर बात का अनुमान किया जा सकता है कि वह दुर्ग किसी समय बहुत मजबूत बना हुआ था।

दुर्ग में पहुँचने के लिए यद्यपि चूण्डावत सरदारों ने कम सावधानी से काम नहीं लिया था परन्तु वे एक दूसरे रास्ते से रवाना हुए थे। उस रास्ते का बहुत बड़ा भाग पानी से भरा हुआ था। इसलिए वे लोग रास्ते से लौटने लगे। संयोग से उसी समय अन्तला का रहने वाला एक गड़रिया उनको मिला। उससे उनको अन्तला पहुँचने का सही रास्ता मालूम हुआ। उसी समय चूण्डावत लोग बड़ी तेजी के साथ अन्तला दुर्ग की तरफ बढ़े। शक्तावतों की अपेक्षा चूण्डावत लोग युद्ध में अधिक कुशल थे। दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए उनके पास अच्छे साधन थे। वे अपने साथ ऊँची और मजबूत सीढ़ियाँ भी ले गये थे।

जिस समय शक्तावत लोग दुर्ग में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे थे, चूण्डावत लोग वहाँ पहुँच गये और उन लोगों ने दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए अपने साथ के लोगों को ललकारा। चूण्डावत लोगों के अधिकारी ने सीढ़ी लगाकर उस पर चढ़ना आरंभ किया और अपने साथ के आदमियों को उसने सीढ़ी पर आने के लिए आदेश दिया। उसी समय शत्रु का एक गोला आकर उस पर गिरा। उसके लगते ही चूण्डावतों का अधिकारी सीढ़ी से गिरते ही मर गया।

दुर्ग के नीचे चूण्डावत और शक्तावत उसमें प्रवेश करने की कोशिश कर रहे थे और दुर्ग के ऊपर जो मुस्लिम सेना मौजूद थी वह उन दोनों को असफल करने की चेष्टा कर रही थी। जिस समय चूण्डावत का नेता शत्रु के गोले से नीचे गिरा, उस समय शक्तावत अपनी पूरी शक्ति लगाकर दुर्ग के ऊपर पहुँचने के लिये प्रयास कर रहे थे, शक्तावतों का नेता अपने ऊँचे हाथी के ऊपर चढ़ गया और उसने दुर्ग के मजबूत फाटक को तोड़ने की कोशिश की। उसने अपने हाथी को आगे बढ़ाया। फाटक के मजबूत किवाड़ों में लोहे की मोटी-मोटी कीलें लगी हुई थीं। इसलिये हाथी उसके किवाड़ों को तोड़ने में सफल न हो सका। इस समय मुस्लिम सैनिकों की गोलियों से शक्तावत सैनिक बड़ी तेजी के साथ घायल हो रहे थे। इसी समय चूण्डावत सैनिक भीषण रूप से गरजते हुए आगे बढ़े। उस गर्जना को सुनकर शक्तावत नेता को अपनी जीत में संदेह मालूम होने लगा। वह किसी प्रकार हरावल प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने प्राणों का भय छोड़कर फाटक की कीलों पर अपना शरीर लगा दिया और महावत को ललकार कर हाथी को उसके शरीर पर जोर से टक्कर मारने का आदेश दिया। महावत ने यही किया। हाथी की जोरदार टक्कर से दुर्ग का फाटक टूट गया। शक्तावत नेता हाथी की ठोकर से और लोहे की मजबूत नुकीली कीलों के लगने से क्षतः विक्षत हो कर मर गया। उसके मृत शरीर पर पैर रखते हुये शक्तावत सैनिकों ने दुर्ग में प्रवेश करके मुस्लिम सैनिकों का संहार करना आरंभ किया। इस अपूर्व बलिदान के बाद भी शक्तावतों को हिरोल प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये कि इसके पहले जिस समय चूण्डावत सैनिकों की भीषण गर्जना सुनायी पड़ी थी, उसी समय चूण्डावत सैनिकों ने अपने नेता का मृत शरीर दुर्ग के ऊपर फेंक दिया था और उसके बाद बचे हुये सभी चूण्डावत सैनिक दुर्ग के ऊपर पहुंच गये थे।

जिस समय गोला लगने से चूण्डावतों का नेता सीढ़ी से गिर कर मर गया था, उसी समय उस वंश के एक दूसरे शूरवीर सैनिक ने जो मरे हुये नेता का निकटवर्ती आत्मीय था, उसका स्थान ग्रहण किया। चूण्डावतों का यह नया नेता देवगढ़ का सामन्त था। वह जितना साहसी था, भीषण अवसरों पर वह उतना ही निर्भीक भी था। चूण्डावत नेता के सीढ़ी से गिरते ही देवगढ़ के सामन्त ने उसके मृत शरीर को चादर में बाँधकर अपनी पीठ पर रखा और हाथ में भाला लेकर वह सीढ़ी पर चढ़ गया। दुर्ग के ऊपर जाकर उसने बड़े पराक्रम

के साथ युद्ध किया और मुस्लिम सैनिकों का संहार करके अपने स्वामी का शव दुर्ग के ऊपर रखा। ठसी सयम समस्त चूण्डावत सैनिकों की एक साथ आवाज हुई थी। "अन्तला दुर्ग के विजयी चूण्डावत–हरावल के अधिकारी चूण्डावत।" [1]

वंशगत संगठन किसी भी देश और राज्य के लिए कल्याणकारी नहीं होते। इस प्रकार की प्रतिद्वन्दिता से सदा राज्यों का पतन हुआ है। शक्तावतों और चूण्डावतों के आपसी द्वेष की घटना का जो उदाहरण ऊपर दिया गया है, राजस्थान के इतिहास में यह घटना अकेली नहीं है। वल्कि सम्पूर्ण राजस्थान का इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है। मेवाड़ का इतिहास पढ़कर कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि अगर वहाँ पर शक्तावतों और चूण्डावतों लोगों में आपस की यह प्रतिद्वन्दिता न होती तो मेवाड़ राज्य का इतने वुरे तरीके से पतन न होता, जिस तरीके से हुआ। चूण्डावतों लोगों की अपेक्षा शक्तावत लोग संख्या में वहुत कम हैं। परन्तु वे अधिक साहसी और पराक्रमी हैं। दोनों वंश के लोग मेवाड़ राज्य के प्रमुख योद्धा थे। उनकी पारस्परिक ईर्ष्या ने राज्य को निर्वल वना दिया था।

यह वात सही है कि भारत के विभिन्न राज्यों में वहुत समय पहले से सामन्त शासन-प्रणाली रही है। इस प्रणाली की अच्छाइयाँ सहज ही विगड़ जाती हैं। इस देश में जव तक यह प्रणाली सही रूप में चली और राज्य में एक केन्द्रीय शक्ति काम करती रही, उस समय तक उस राज्य का शासन कार्य उत्तम तरीके से चलता रहा। लेकिन केन्द्रीय शक्ति के शिथिल पड़ने पर अथवा सामन्तों के अनुशासन भंग करने पर सामन्त शासन प्रणाली का मूल सिद्धांत निर्वल पड़ जाता है। उस दशा में यह प्रणाली किसी भी राज्य के लिये कल्याणकारी सावित नहीं होती।

राजस्थान के राजाओं को मुगल शासन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी, जो नाममात्र को थी। मुगल सम्राट की दी हुई सनद के वाद अधीन राजा अपने राज्य का कार्य संचालन करते थे। जितने राजाओं ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी, सभी को यही करना पड़ा था। दिल्ली के सम्राट ने सभी को सनद दिये थे। सनद प्राप्त करने वाले राजाओं ने मुगल सम्राट को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया था। सनद देने के समय सम्राट राजाओं को हाथी, घोड़ा, मूल्यवान वस्त्र और वहुमूल्य आभूषण भेंट में देकर उनका सम्मान करता था। अधीन राजा लोग सम्राट को अपने राज्य की तरफ से एक निश्चित धनराशी नजराने के तौर पर दिया करते थे।

इस अधीनता के लिये सम्राट और राजाओं के वीच एक संधि-पत्र लिखा जाता था और उसके अनुसार सम्राट के वुलाने पर अधीन राजाओं को एक निर्धारित संख्या में सेना को लेकर सम्राट के यहाँ उपस्थित होना पड़ता था। मुगल सम्राट अपने प्रत्येक अधीन राजा

1. चंदावत वंश की महावली शाखा में संगावत का एक कवि अमर मेरा मित्र था। संगावत लोग देवगढ़ के सामन्त के अधिकार में रहा करते थे। देवगढ़ का सामन्त दो हजार सैनिकों का मालिक था। संगावत अमर ने अंतला दुर्ग की विजय के सम्वंध में एक वड़ी अच्छी घटना मुझे सुनायी थी। उसने वताया था कि जिस समय राजपूत सेना ने अंतला के दुर्ग पर आक्रमण किया था, मुस्लिम सेना के दो अधिकारी दुर्ग के भीतर जुआ खेल रहे थे। उन्होंने सुना कि दुर्ग पर राजपूतों ने आक्रमण किया है लेकिन उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह समझ कर कि विजय तो हम लोगों की होगी ही वे दोनों जुआ खेलने में दत्तचित वने रहे। उनका ध्यान युद्ध की तरफ नहीं गया। जिस समय राजपूत दुर्ग के ऊपर पहुँच गये, उनका जुआ वंद हुआ। उसी समय कुछ राजपूतों ने कमरे में घुसकर खेलने वाले दोनों मुस्लिम सरदारों को घेर लिया। इस दशा में भी एक मुस्लिम सरदार ने प्रार्थना की कि हमारा खेल खतम होने वाला है। परन्तु उसकी प्रार्थना पर राजपूतों ने ध्यान नहीं दिया। दोनों वंशों के नेता मारे जा चुके थे। इसलिए राजपूतों ने उन दोनों को वहीं पर मार डाला।

को राजपताका, राजचिन्ह और कुछ दूसरी चीजें दिया करता था। राजा लोग उन चीजों को अपनी सेना में प्रयोग करते थे।[1] अधीन राजाओं के साथ सम्राट का यह व्यवहार सावित करता है कि मुगल शासन काल में सामन्त शासन-प्रणाली इस देश में प्रचलित थी।

सम्राट हुमायूँ ने कई राजपूत राजाओं को अपने अधीन वना लिया था। परन्तु वादशाह अकवर की तरह उसको सफलता न मिली थी। शासन और राजनीति में अकवर वहुत वुद्धिमान और दूरदर्शी था। अपनी सूझ-वूझ के वल पर ही उसने लगभग समस्त राजस्थान के राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया था। उसने हिन्दू और मुसलमानों का भेद मिटा दिया था। इस कार्य में उसे सफलता भी मिली थी और उसकी व्यवहारिक कुशलता का ही यह परिणाम था कि वहुत से हिन्दू राजाओं ने उसको अपना सम्राट मान लिया था। आमेर राज्य दिल्ली के समीप है। उन दिनों में आमेर का शासन वहुत निर्वल था। अपनी निर्वलता के कारण ही और दिल्ली के निकट होने से आमेर के राजा को मुगल सम्राट के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा था। सवसे पहले आमेर के राजा विहारीमल ने अकवर के साथ अपनी लड़की का विवाह किया था। उसके वाद मुगल सम्राट से अपनी लड़की का विवाह करना राजपूत राजाओं के लिए एक वहुत साधारण वात हो गयी और उन राजपूत वालाओं से कई मुगल सम्राटों का जन्म हुआ।

सम्राट जहाँगीर का जन्म भी एक राजपूत वाला से हुआ था। उसका वेटा खुसरो, शाहजहाँ,[2] कामबख्श और औरंगजेब का वेटा अकवर राजपूत राजकुमारी से पैदा हुए थे। औरंगजेब के व्यवहारों से सभी हिन्दू राजा अप्रसन्न थे। इसलिये औरंगजेब को सिंहासन से उतार कर राजापूत राजाओं ने उसके लड़के अकवर को सिंहासन पर विठाने की चेष्टा की। मुगल सम्राटों का राजपूतों के साथ जो वैवाहिक सम्वंध शुरू हुआ था, वह अंत तक चलता रहा। जिस समय मुगलों की शक्तियाँ शिथिल हो गई थी, उन दिनों में भी सम्राट फर्रुखसियर ने मारवाड़ के राजा अजीतसिंह की लड़की के साथ विवाह किया था।[3]

जिन राजपूत राजाओं ने अपनी लड़कियाँ मुगल सम्राटों को व्याही थी, उन राजपूत वालाओं से जो लड़के पैदा हुए, उनकी नावालिग अवस्था में वही राजा उसके संरक्षक वने और उन दिनों में उन राजाओं ने अपने राज्यों की वृद्धि की।

---

1. सन् 1877 इसवीं में दिल्ली के दरवार में व्रिटिश महारानी के भारतेश्वरी उपाधि धारण करने की घोषणा लार्ड लिटन ने की थी। उस समय सभी हिन्दू-मुस्लिम राजाओं को एक-एक पताका दी गयी थी। जय घोषणा के वाजे के साथ-साथ एक-एक सोने का पदक भी दिया गया था। यह प्रणाली ठीक उसी प्रकार की थी, जैसी की प्राचीन काल में सम्राट अपने अधीन राजाओं को सनद देने के समय काम में लाया करता था। ऐसा मालूम होता है कि इस दिल्ली दरवार में हिन्दुस्तान की पुरातन प्रणाली का अनुकरण करके अंग्रेजी सरकार ने यहाँ के राजाओं के साथ व्यवहार किया था।
2. सम्राट शाहजहाँ जोधावाई के पेट से पैदा हुआ था। आगरा के पास सिकन्दरा में जोधा वाई का प्रसिद्ध समाधि मंदिर अव तक वना है।
3. इस विवाह से अंग्रेजों की शक्तियाँ हिन्दुस्तान में मजवूत हुई थी। विवाह के दिनों में सम्राट फर्रुखसियर वीमार हो गया था। उस समय अंग्रेज कम्पनी सूरत में व्यवसाय करती थी, और सूरत से जो दूत सम्राट के पास दिल्ली भेजे गये थे, उनके साथ हेलिटन नाम का एक डाक्टर भी था। हेमिल्टन ने सम्राट का इलाज किया और उसकी औषधियों से वह सेहत हो गया। इसके वाद विवाह हुआ अंत में सम्राट ने डाक्टर से उसके पुरस्कार का प्रश्न किया। सम्राट को उत्तर देते हुए डाक्टर ने कहा:—'मेरे साथ व्यवसाय के लिए जो अंग्रेज आये हैं, उनको अपनी कोठी वनाने के लिए हुगली में थोड़ी सी भूमि की जरूरत है।' सम्राट ने डाक्टर की वात को स्वीकार कर लिया। अंग्रेजों को हुगली में कोठी वनाने के लिए आवश्यकतानुसार भूमि मिल गयी। कोठी वन जाने से अंग्रेजों को रहने, व्यवसाय के माल को रखने तथा व्यापार करने के सुभीते पैदा हो गये।

बादशाह अकबर के समय मुगल साम्राज्य में अबुल-फजल के अनुसार, चार सौ सोलह सेनापति थे, जो दो सौ से दस हजार तक अश्वारोही सैनिकों पर अधिकार रखते थे और सेनापतियों में सैंतालीस राजपूत सेनापति थे, जिनके अधिकार में तिरेपन हजार अश्वारोही सेना थी। मुगल साम्राज्य के समस्त सेनापतियों के अधिकार में पाँच लाख तीस हजार अश्वारोही सैनिक थे। सम्राट के अधिकार में चालीस लाख पैदल सेना थी।

सैंतालीस राजपूत सेनापतियों में सत्रह के अधिकार में एक हजार से पाँच हजार तक अश्वारोही और शेष तीस के अधिकार में पाँच सौ से एक हजार तक अश्वारोही सैनिक थे। आमेर, मारवाड़, बीकानेर, बूँदी, जैसलमेर, बुन्देलखंड और सिखावत के राजा एक हजार से अधिक अश्वारोही सैनिकों के सेनापति थे। मुगलों के साथ वैवाहिक सम्वंध होने के कारण आमेर के राजा को पाँच हजार अश्वारोही सैनिकों के सेनापति होने का अधिकार मिला था।

मारवाड़ का राठौड़ राजा उदयसिंह एक हजार अश्वारोहियों का सेनापति था। परन्तु मारवाड़ के राजवंश की शाखा में उत्पन्न होने वाले बीकानेर के रायसिंह को केवल चार हजार अश्वारोहियों का सेनापतित्व मिला था। चन्देरी, करौली, दतिया के स्वतंत्र राजा और कुछ दूसरे राजा लोग तथा सिखावत के राजा नीची श्रेणी के सेनापति थे और वे चार सौ से सात सौ तक अश्वारोहियों के सेनापति थे। इन्हीं लोगों में शक्तावत वंश के लोग भी थे। जिनका अपने भाई राणा प्रताप के साथ झगड़ा होने के वाद सम्राट अकवर ने लगभग सभी राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता में ला कर उन्हें अपने यहाँ सेनापति वना लिया था।

वादशाह अकबर ने अपनी दूरदर्शिता और राजनीति से दो लाभ उठाये। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्वंध कायम करके उसने उनको अपनी तरफ आकर्पित किया। उसके परिणामस्वरूप राजपूतों के मनोभावों से उसके विदेशी होने का भाव दूर हो गया। दूसरा लाभ उसने यह उठाया कि जिन राजाओं की स्वाधीनता का उसने अपहरण किया, वे उसके विद्रोही होने के वजाय साम्राज्य के सेनापति वनकर सदा उसके शासन को सुदृढ़ वनाते रहे।

अकवर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने मुगल सिंहासन पर बैठकर जिस उदार नीति का आश्रय लिया था, औरंगजेब उस नीति का अनुयायी न वन सका। बादशाह शाहजहाँ के समय तक मुगलों की जो नीति रही थी, औरंगजेब ने अपने शासन काल में उसे विल्कुल मिटा दिया और खुलकर उसने पक्षपातपूर्ण शासन आरंभ किया, इसके फलस्वरूप हिन्दू लोग उसके विरोधी होने लगे। राजपूत राजाओं के साथ शत्रुता का भाव पैदा हुआ। इसके पहले तक देशी राजाओं की जो भावना मुगल साम्राज्य के प्रति थी, वह एक साथ तिरोहित हो गयी। समय-समय पर राजपूतों ने औरंगजेब का विरोध किया और उसके लड़के अकवर का समर्थन करके औरंगजेव को सिंहासन से उतारने की चेष्टा की। औरंगजेव की मृत्यु हो जाने के वाद फर्रूखसियर सिंहासन पर बैठा। वह अयोग्य और निर्वल था। उसके शासन काल में तैमूर के वंशजों का सुदृढ़ और अचल साम्राज्य क्षत विक्षत हो गया।

इस समय किस प्रकार की शासन-प्रणाली राजस्थान में श्रेष्ठ मानी जा सकती है, इसकी सही कल्पना करना इस समय संभव नहीं है। वहुत समय से इन राज्यों में सामन्त शासन प्रणाली रही है, उसने न जाने कितनी शताब्दियों तक सफलतापूर्वक शासन किया है। इस दशा में आसानी के साथ इस वात का निर्णय नहीं किया जा सकता कि इन राज्यों के लिए शासन की कौन-सी प्रणाली सर्वोत्तम हो सकती है। लगभग आठ सौ वर्षों तक इस देश में मुगलों, पठानों और बीच-बीच में थोड़ा-वहुत अन्य लोगों का शासन चला है। उसके समय में जो भी प्रणाली काम करती रही, उसमें भी वहुत कुछ आधार सामन्त शासन-प्रणाली (जागीरदारी प्रथा) का था।

इस देश में राजपूतों का जो शासन चल रहा था, वह आपसी प्रतिद्वन्दिता के कारण यदि निर्बल न पड़ गया होता और बाहर से आयी हुई लुटेरी जातियों के आक्रमण का उन लोगों ने यदि मुँह तोड़ जवाब दिया होता, यदि यहाँ के राज्यों ने सामन्त शासन-प्रणाली की श्रेष्ठता को कायम रखा होता और यदि यहाँ के राज्यों के सामन्तों ने शासन-प्रणाली के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन किया होता तो यहाँ के राज्यों में प्रचलित सामन्त शासन-प्रणाली का पतन न हुआ होता।

यूरोप में जिस समय फ्रांस के राजा सप्तम चार्ल्स ने अपनी स्थायी सेना रखकर टेल नामक कर लगाया, उस समय उसके सामन्त विद्रोही हो उठे। इसके पहले यूरोप के किसी राज्य में राजा की अलग से कोई स्थायी सेना न थी। सामन्तों की सेनाओं के द्वारा राज्य के सभी काम होते थे। इसी प्रकार की परिस्थितियाँ राजस्थान के राज्यों में समय-समय पर पैदा हुई। कोटा के राजा के द्वारा शासन की पुरानी प्रथा में परिवर्तन करने पर भयानक कांड हुआ था। साठ वर्ष पहले मेवाड़ के कुछ सामन्तों के विद्रोही हो जाने पर अवसरवादी जातियों ने मेवाड़ पर आक्रमण किये। उस समय मेवाड़ के राणा को अर्थ लोभी सिंधी सेना की सहायता लेनी पड़ी। उसका परिणाम राज्य के लिये और भयानक साबित हुआ। राज्य के सामन्त आपस में लड़ रहे थे। उन लोगों का विश्वास अब राणा पर न रहा गया था। राज्य में कोई ऐसी शक्ति न थी जो सब को एक कर सकती। इसलिए मेवाड़ राज्य का पतन भयानक रूप से आरंभ हुआ।

उन दिनों में मारवाड़ राज्य की दशा अच्छी चल रही थी। वहाँ के सामन्तों में ईर्ष्या का कोई भाव न था इसलिये वहाँ के राजा को आक्रमणकारी जातियों की सहायता लेने की आवश्यकता न पड़ी।उन्हीं दिनों में पठानों की सेना ने मारवाड़ में प्रवेश करके बुरे तरीके से राज्य का विध्वंस किया। इस प्रकार की परिस्थितियाँ समय-समय पर यहाँ के राज्यों के सामने आयी और उनके परिणाम स्वरूप न केवल राजस्थान के राज्य निर्बल और असमर्थ हो गये, बल्कि उनमें प्रचलित शासन-प्रणाली क्षत-विक्षत होकर मृतप्राय हो गयी।

राजा स्वेछाचार से काम न ले और राज्य के सामन्त राजभक्त बने रहने के साथ-साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो इतिहासकार हालम के अनुसार सामन्त शासन-प्रणाली शासन की एक अच्छी प्रणाली साबित हो सकती है। इस प्रणाली का मूल उद्देश्य देशभक्ति अथवा राजभक्ति होना चाहिये। अधिकार पाने के बाद स्वेच्छाचार से मनुष्य का पतन होता है। यदि राजा और सामन्तों में देशभक्ति अथवा राजभक्ति की अटूट भावना न हो तो सामन्त प्रणाली कभी अच्छी साबित न होगी।

जागीरदारी प्रथा के अनुसार राजा और सामन्तों के कर्त्तव्यों का निश्चय होता है और वे लिखित रुप में राजाओं और सामन्तों के पास रहा करते हैं। राजस्थान के राज्यों में ऐसा ही रहा है। मारवाड़ के राजा और सामन्तों के कर्त्तव्यों के निर्णय करने में दोनों को महत्त्व दिया गया है। उसके अनुसार यदि वहाँ का राजा स्वेच्छाचार से काम लेता है अथवा सामन्तों के परामर्श की उपेक्षा करता है तो वहाँ के सामन्तों को अधिकार होता है कि वे मिलकर अपने स्वेच्छाचारी राजा के विरुद्ध विद्रोह करें और उसको सिंहासन से उतारकर किसी दूसरे को सिंहासन पर बैठावें।

राजा और सामन्तों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वे एक दूसरे का सम्मान करें। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सामन्तों को सम्मान दे और सामन्तों का कर्त्तव्य है कि वे अपने राजा के प्रति सदा राज-भक्त बने रहें। इस प्रकार राजा और सामन्त मिलकर अपने राज्य के कल्याण की बात सदा सोचें। सामन्त शासन-प्रणाली का सबसे श्रेष्ठ उद्देश्य यही है।

सरदारों का संगठन – सामन्त शासन-प्रणाली में राजा और सामन्तों के कर्त्तव्य जितना महत्त्व रखते हैं, उनसे कम महत्त्व राज्य के सरदारों का नहीं होता। वे सामन्तों के दरबारों के प्रमुख व्यक्ति रहते हैं। उनके जीवन के कार्य सामन्तों के कार्यों के साथ बंधे रहते हैं। शिकार के लिए जाना, राज दरबार में उपस्थित होना, युद्ध स्थल में पहुँच कर युद्ध करना और शत्रुओं का संहार करना राज्य के सरदारों का मुख्य कार्य होता है। सरदार प्रमुख रूप से सामन्तों के दरबार से सम्बंध रखते हैं। वहाँ पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है। उपस्थिति न हो सकने वाले दिनों के लिये सरदारों को नियमानुसार छुट्टी लेनी पड़ती है। राज्य का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सरदारों पर होता है।

जहाँ राजा, सामन्त लोग और सरदार अपने-अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार पालन करते हैं, वहाँ पर सामन्त शासन-प्रणाली कभी असफल नहीं हो सकती।

□

अध्याय–9

राजस्थान में जागीरदारी प्रथा-2

इस परिच्छेद में जागीरदारी प्रथा के सम्वंध में उन घटनाओं और परिस्थितियों का विस्तार से उल्लेख किया जायेगा, जिन पर अभी तक कुछ नहीं लिखा गया। साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डालेंगे कि उनके सम्वंध में यूरोप के राज्यों में किस प्रकार की प्रथा थी और राजस्थान के राज्यों के साथ उनकी कहाँ तक समानता है।

जिन घटनाओं के सम्वंध में हम यहाँ पर लिखने जा रहे हैं, उनमें छह प्रमुख हैं और वे इस प्रकार हैं – (1) नजराना (2) जागीर का हस्तान्तरित होना (3) पुत्रहीन सामन्त के मरने पर उसको जागीर का अधिकार (4) धन की सहायता (5) नावालिग सामन्त की रक्षा (6) विवाह।

नजराना – जागीरदारी प्रथा की उपयोगिता और श्रेष्ठता नजराने पर निर्भर होती है। नजराना ही राजा की शक्ति है। सामन्त की राजभक्ति है। जिस राज्य में इसका भली प्रकार पालन होता है, उस राज्य की शासन-व्यवस्था सुचारू रूप से चलनी चाहिए। इसके अनुसार राज्य की तरफ से सामन्त को भूमि दी जाती है और उसके बदले में अपने अन्यान्य कर्त्तव्यों के पालन के साथ-साथ सामन्त अपने राजा को एक निर्धारित नजराना देता रहता है।

यदि संयोग से किसी सामंत की मृत्यु हो जाती है तो उसका उत्तराधिकारी राजा के सामने प्रार्थना पत्र उपस्थित करके और उतना ही नजराना देने की प्रतिज्ञा करके सामन्त का पद प्राप्त करता है।

मेवाड़ राज्य में नियम यह है कि जव एक स्वत्वाधिकारी का अधिकार समाप्त हो जाता है तो उस जागीर पर दूसरा अधिकारी स्वीकार करना राजा के अधिकार में होता है। यूरोप की प्रथा के अनुसार सामन्त का पुत्र, पिता का नजराना राजा को देकर जागीर का अधिकारी हो जाता है। उसका पूर्ण वयस्क होना आवश्यक होता है। नजराना पाकर राजा उसे सामन्त का पद दे देता है। वास्तव में नजराना निर्धारित करना राजा के अधिकार में नहीं था। वह सामन्त की इच्छा पर निर्भर होता था। जिसके लिए राजा यूरोप के राज्यों में सामन्त को विवश नहीं कर सकता था और वहाँ की जागीरदारी प्रथा का यही विधान भी था। लेकिन जव राजा नजराना निर्धारित करके उसकी अदायगी के लिए सामन्त को वाध्य करने लगा तो वहाँ पर भीषण असंतोष पैदा हुआ।

सामन्त शासन-प्रणाली में नजराने का वंधन यूरोप के राज्यों में नहीं था। उसे सामन्तों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था। नजराना निर्धारित करने का अर्थ उसे एक प्रकार का कर वना देना होता है और यह नजराना किसी कर के रूप में नहीं माना गया था। इसलिए

उसके विरोध में जब असंतोष पैदा हुआ तो प्राचीन विधान का संशोधन किया गया और नजराने को निर्धारित करके उसके देने का एक नियम बना दिया गया। उसका निर्णय सामन्त का पद प्राप्त करने वाले की मर्यादा के अनुसार किया गया।[1]

फ्रांस में अभिषेक हो जाने के बाद सामन्त को प्राचीन विधान के अनुसार अपने इलाके की एक वर्ष की पूरी मालगुजांरी राजा को देनी पड़ती थी। यही अवस्था मेवाड़ राज्य की भी थी। सामन्त अपनी भूमि की एक वर्ष की मालगुजारी राणा को देता था। यह नियम उस राज्य में बहुत दिनों तक चलता रहा।

मेवाड़ राज्य में जब किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो राणा उस सामन्त के स्थान पर काम करने के लिए जब्ती दल को भेजा करता है।[2]

जब्ती लोगों का अध्यक्ष उस सामन्त के क्षेत्र में पहुँचकर राणा की तरफ से अधिकार कर लेता है। उस अध्यक्ष के साथ दीवानी का एक अधिकारी और कुछ सैनिक रहा करते हैं। राणा के आदमियों के द्वारा वहाँ पर अधिकार हो जाने पर जिस सामन्त की मृत्यु हो जाती है, उसका उत्तराधिकारी उस पद को प्राप्त करने के लिए राणा के पास प्रार्थना-पत्र भेजता है। उस प्रार्थना पत्र में नजराना देने की प्रतिज्ञा को साफ-साफ लिखना पड़ता है।

प्रार्थना-पत्र के बाद नजराना राजा के पास पहुँच जाता है। उसके पश्चात् प्रार्थी राजा के दरबार में बुलाया जाता है। वह राजा के पास पहुँचकर अपने प्रार्थना-पत्र के अनुसार उस इलाके का, जिसके लिए उसने प्रार्थना पत्र भेजा है, सामन्त बनाये जाने के लिए निवेदन करता है। राणा उसे सनद देता है और पुरानी प्रथा के अनुसार उसका अभिषेक कार्य आरंभ होता है। नवीन सामन्त की कमर में एक तलवार बाँधी जाती है। मेवाड़ में यह अभिषेक बड़े उत्साह के साथ उत्सव के रूप में मनाया जाता है। उस उत्सव में राज्य के सभी सामन्त एकत्रित होते हैं। इस अभिषेक में नजराना पाने के बाद राणा उस नवीन सामन्त को घोड़ा, दुशाला और अन्य बहुमूल्य चीजें देकर सम्मानित करता है।

जब इस अभिषेक का कार्य समाप्त हो जाता है तो जब्ती लोग उस इलाके से लौटकर राजधानी में आते हैं और नवीन सामन्त वहाँ का अधिकारी बन जाता है। उस दशा में वह सब से पहले अपने यहाँ के गुरूजनों का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनके पास जाता है। इसके पश्चात् अभिषेक का कार्य समाप्त होता है।

अभिषेक के समय नवीन सामन्त की कमर में तलवार बाँधने का उल्लेख ऊपर किया है। अभिषेक की प्रथा का यह एक नियम है। इस नियम का पालन राजपूतों में अन्य अवसरों पर भी होता है। जब कोई राजपूत बालक अस्त्र धारण करने योग्य हो जाता है, उस समय इसी प्रकार उसकी कमर में तलवार बाँध कर इस नियम का पालन किया जाता है और उत्सव मनाया जाता है। उस उत्सव का उद्देश्य यह होता है कि आज से यह राजपूत बालक अस्त्र धारण करने का अधिकारी समझा जाता है। राजपूतों में इस नियम को खड्गबंधी प्रथा के नाम से पुकारा जाता है।

यह प्रथा राजपूतों का एक वीरोचित कार्य है। इस प्रकार के उत्सव के द्वारा राजपूत लोग अपनी संतान में शौर्य का संचार करते हैं। प्राचीन जर्मन लोगों में भी इसी प्रकार की प्रथा थी। वयस्क अवस्था में प्रवेश करते ही उनके बालक भाला धारण करते थे। रोम के

---

1. अर्ल लोगों का उत्तराधिकारी, पिता का पद और उसकी जागीर को प्राप्त करने के लिए एक सौ पौंड देता था। बैरन लोगों का उत्तराधिकारी एक सौ मार्क और नाइट लोगों का उत्तराधिकारी एक सौ शिलिंग नजराने में देता था।
2. किसी सामन्त के मर जाने पर उसके अधिकृत क्षेत्र पर राणा का अधिकार कायम करने के लिए जो लोग

नवयुवकों में इसी प्रकार की प्रथा बहुत पहले पायी जाती थी। उनके बालकों को अस्त्रों से विभूषित किया जाता था।

मेवाड़ राज्य में नजराना देने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। लेकिन राज्य के पतन के दिनों में उसके बहुत से सामन्तों ने नजराना देना बंद कर दिया था। उन दिनों में राणा की शक्तियाँ क्षीण हो गयी थी। राज्य पर बाहरी आक्रमण लगातार हो रहे थे और आक्रमणकारियों के साथ संधि करके राणा ने अपना खजाना खाली कर दिया था। उन्हीं दिनों में कुछ सामन्तों ने नजराना देना बंद किया। इसके फलस्वरूप वहाँ की मूल प्रणाली में परिवर्तन हो गया और नजराने की प्रथा अनुचित समझी जाने लगी।

जागीर का हस्तांतरित होना – जागीरदारी प्रथा में जब किसी सामन्त को राज्य की ओर से एक जागीर मिल जाती है तो उसके हस्तांतरित होने का कोई नियम उसके विधान में नहीं है। अपनी जागीर को सामन्त न तो बेच सकता है और न किसी दूसरे को वह दे सकता है। सामन्त को इस प्रकार का साधारण परिस्थितियों में कोई अधिकार नहीं है। धार्मिक बातों में सामन्त को इसके लिए कुछ अधिकार दिये गये हैं। परन्तु उस अधिकार में भी वह स्वतंत्र नहीं है। उसको राजा की आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि राजा आदेश नहीं देता तो धार्मिक मामलों में भी अपने अधिकार को हस्तांतरित करने का उसे कोई हक नहीं होता।

देवगढ़ के सामन्त ने राणा की आज्ञा के बिना और अपने सरदारों से बिना परामर्श किये किसी समय अपनी जागीर के अधिकार को दूसरे के नाम कर दिया था। उसके ऐसा करने पर राणा ने उसके अधिकार का सम्पूर्ण इलाका उससे छीन लिया और जब देवगढ़ के सामन्त ने अपने यहाँ पहले की व्यवस्था फिर से कायम कर ली तो राणा की तरफ से उसकी भूमि उसको फिर वापस दे दी गयी।

जो लोग खेती का काम करते हैं, वे रुपये देकर राज्य से अपने खेतों का पट्टा लिखा लेते हैं और वे उसके अधिकारी बन जाते हैं। पट्टा हो जाने के बाद राजा केवल उनसे निर्धारित क़र वसूल कर सकता है।

पुत्रहीन सामन्त के मरने पर उसकी जागीर का अधिकार– जिन सामन्तों को राज्य की तरफ से इलाका मिलता है, जागीरदारी प्रथा के विधान के अनुसार उनका उस पर अधिकार होता है और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी उसके अधिकारी माने जाते हैं। लेकिन दत्तक पुत्रों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता। इसलिए जब कोई सामन्त पुत्रहीन रह कर मरता है तो उसकी भूमि को राणा अपने अधिकार में ले लेता है। मेवाड़ राज्य की यह पुरानी प्रथा है और राणा को अनेक अवसरों पर ऐसा करना पड़ा है।

सामन्त के किसी प्रकार अपराध करने पर राणा को उसकी भूमि वापस लेने का अधिकार है। अपराध के अनुसार सामन्त को दंड दिया जाता है और उसके लिए उसके अधिकार की सम्पूर्ण भूमि उससे ले ली जाती है। प्राचीन काल में इसी प्रकार का नियम यूरोप के राज्यों में भी था।

मारवाड़ में आजकल लगभग सभी प्रथम श्रेणी के सामन्त अपना राज्य छोड़कर दूसरे राज्यों में निर्वासित देखे जाते हैं। अपने राजा की तरफ से निकाले गये हैं। ईश्वर के राजा ने भी अपने सामन्तों के साथ ऐसा ही किया होता, यदि बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन ने उसका विरोध न किया होता।

जो राजपूत अपने परिश्रम, त्याग और पुरुषार्थ से राज्य का उपकार करते हैं, राणा की तरफ से उनको जीवन भर अधिकार में रखने के लिए राज्य की भूमि दी जाती है। जिस प्रथा के द्वारा मेवाड़ राज्य में ऐसा होता है उसका नाम 'चारुत्तर' है। अर्थात् यह नियम

'चारुत्तर प्रथा' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसको इस प्रकार की भूमि दी जाती है, उनके मर जाने के बाद राणा उस भूमि पर अधिकार कर लेता है। जिन लोगों को इस प्रकार की भूमि इस अधिकार के साथ दी जाती है कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी संतान उसकी अधिकारिणी होगी, ऐसे लोगों की भूमि को बिना किसी विशेष कारण के वापस नहीं लिया जाता। भूमि अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर उसके उत्तराधिकारी का उस भूमि पर हक होता है।

आर्थिक सहायता – राज्य में कितने ही ऐसे अवसर आते हैं, जब राजा को धन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अवसरों पर राजा साधारण प्रजा से उसकी आय का दसवाँ भाग लेने का अधिकारी होता है। अपने-अपने क्षेत्रों में सामन्त लोग भी ऐसा ही करते हैं।

इस प्रकार के अवसरों में राजा की लड़की का विवाह भी एक है। उसके व्यय के लिए साधारण प्रजा से सहायता ली जाती है। कई वर्ष पहले राणा की दो लड़कियों और एक लड़के का विवाह हुआ था। उन विवाहों के खर्च के लिये राणा ने सर्वसाधारण से उनकी आय का छठा भाग वसूल किया था। लेकिन प्रायः देखा जाता है कि ऐसे अवसरों पर सभी लोगों से धन एकत्रित नहीं हो पाता और अंत में राज्य के बहुत से लोग उससे छूट जाते हैं।

ऐसे अवसरों पर निर्धन और धनी-सभी प्रकार के लोगों से धन संग्रह किया जाता है। वैवाहिक कार्यों से सम्बंध रखने वाले अवसर प्रजा के सामने बार-बार नहीं आते, अथवा बहुत देर में आते हैं। इसीलिये प्रजा इच्छापूर्वक उसके लिये तैयार रहती है।

प्राचीन काल में सामन्त शासन-प्रणाली का जो विधान था, वह आज से अनेक बातों में भिन्न था। प्रसिद्ध इतिहासकार हालम ने लिखा है कि प्राचीन काल में किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था। आवश्यकता के समय राजा लोग धन एकत्रित कर लिया करते थे। परन्तु प्राचीन काल का वह विधान अब मिट गया है और राजा सामन्तों से कर लेने लगा है।

राजाओं की तरह सामन्त लोग भी अपनी लड़कियों के विवाहों में प्रजा से धन लेकर व्यय करते हैं। प्रजा को ऐसे अवसरों पर आर्थिक सहायता देनी पड़ती है। लड़कियों के विवाह में आर्थिक सहायता करना प्रायः लोग परमार्थ समझते हैं। फ्रांस की प्राचीन सामन्त शासन-प्रणाली में भी इसी प्रकार के नियम धन संग्रह करने के लिये काम में लाये जाते थे।

धन संग्रह करने के और भी कितने ही अवसर राज्य के सामने आते थे। युद्ध के लिये भी धन संग्रह किया जाता है। शत्रुओं के आक्रमण करने पर अथवा संधि करके रुपये देने पर प्रजा से धन एकत्रित किया जाता है, शत्रुओं के द्वारा बंदी हो जाने पर दंड स्वरूप धन देकर छुटकारा पाने के लिये राज्य में धन संग्रह किया जाता है। राजस्थान के राज्यों में ऐसे अवसर बार-बार आते थे, जब राज्य के सामन्त शत्रुओं के द्वारा बंदी हो जाते थे और उनके छुटकारे के लिए धन एकत्रित किया जाता था।

जागीरदारी प्रथा का यह नियम प्राचीन काल में कदाचित यूरोप के राज्यों में न था, नहीं तो इंगलैंड के राजा रिचर्ड को बहुत दिनों तक बंदी अवस्था में आस्ट्रिया में न रहना पड़ता।

नाबालिग सामन्त का संरक्षण – किसी सामन्त की मृत्यु के बाद जब उसका उत्तराधिकारी नाबालिग होता है तो सामन्त शासन-प्रणाली के विधान के अनुसार उस नाबालिग को अधिकारी घोषित कर दिया जाता है। परन्तु उसकी नाबालिग अवस्था में राणा

को उसकी रक्षा का प्रवंध करना पड़ता है और उसके वालिग हो जाने पर राणा अपना प्रवंध वापस ले लेता है।

नावालिग सामन्त की रक्षा के लिए जो प्रवंध राणा को करना पड़ता है, वह कभी-कभी वुरे परिणाम लेकर सामने आता है। ऐसे अवसरों पर राणा उन लोगों को नाबालिग का संरक्षक बना देता है, जो लोग उसके निकटवर्ती सम्वंधी होते हैं। ऐसे लोगों के संरक्षक बनने से मेवाड़ में कभी कल्याण होता हुआ नहीं देखा गया। प्रायः जाति और वंश के लोग या तो किसी ईर्ष्या के कारण अथवा अपने छिपे हुये किसी स्वार्थ के कारण नाबालिग सामन्त का हित साधन करने में सफल नहीं होते।

ऐसे अवसरों पर यूरोप के राज्यों में भी यही होता था। यद्यपि ऐसे मौके पर किसी निकटवर्ती व्यक्ति को खोजना ही आवश्यक मालूम होता है। परन्तु उसका परिणाम कहीं पर भी अच्छा सावित नहीं हुआ। मेवाड़ राज्य में राणा ने ऐसे अवसरों पर जव कभी इस प्रकार की व्यवस्था की है तो उसके लिए वाद में उसे पश्चाताप करना पड़ा।

इस दशा में जव कोई सामन्त नावलिग होता है तो उसका प्रवंध राणा को अपने हाथों में लेना पड़ता है। यद्यपि अपने नाबालिग बच्चे के लिये माता आम तौर पर स्वाभाविक रूप से संरक्षक मानी जाती है। कोई भी दूसरे अपने अलग से स्वार्थ रख सकते हैं। अपने पुत्र से भिन्न माता का कोई स्वार्थ नहीं हो सकता। इसलिए माता को नाबालिग बच्चे का संरक्षक मानना ही सर्वथा उचित होता है। इसलिये ऐसे अवसरों पर नावालिग की रक्षा का भार माता को सौंप देने से कभी किसी प्रकार की अवान्छनीय परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती।

विवाह – प्रत्येक सामन्त वैवाहिक कार्यों के सम्वंध में अपने राजा के साथ परामर्श करता है। ऐसा करना राजा के प्रति उसकी शिष्टता और सद्‌भावना का परिचय देता है। उसके लिए यह कोई बंधन नहीं है लेकिन कर्त्तव्य पालन के नाम पर आवश्यकता है। राजा का इससे प्रभुत्व बढ़ता है और इस प्रकार की शिष्टता के प्रदर्शन से सामन्त की मर्यादा का विस्तार होता है। इस प्रकार के अवसरों के परामर्श पर राजा सामन्त के सम्मान में मूल्यवान वस्तुयें भेंट में देता है।

कोई राजपूत अपने वंश की लड़की के साथ विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार का नियम नार्मन लोगों में भी था। नार्मन लोग भी अपने वंश की लड़की के साथ विवाह नहीं करते थे। इसके साथ-साथ उन लोगों में शत्रु के साथ वैवाहिक सम्बंध जोड़ने का नियम न था। विवाह के इन नियमों का प्रचार सवसे पहले नार्मन लोगों में हुआ।

सामन्त के भूस्वामित्व की समय सीमा – राज्य की तरफ से जो लोग भूमि पाते हैं, जागीरदारी प्रथा में उनके लिए क्या नियम हैं और उनकी भूमि की व्यवस्था उस प्रथा में किस प्रकार होती है, उसको यहाँ पर स्पष्ट करना हमारा उद्देश्य है। प्राचीन काल की शासन-प्रणाली जागीरदारी प्रथा की थी और सर्वत्र एक से मौलिक सिद्धांतों को लेकर बहुत समय तक चलती रही। समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन हुये और शासन के विभिन्न नामों से समय-समय पर उसे सम्बोधित किया गया। जिसे आज डेमोक्रेसी अथवा प्रजातंत्र शासन कहा जाता है, यह इसी सामन्त शासन प्रणाली का संशोधित और परिवर्तित रूप है।

मेवाड़ राज्य में दो प्रकार के भूमि के अधिकारी राजपूत थे। इन दोनों में पहला, दूसरे की अपेक्षा संख्या में अधिक था। पहला है ग्राम्य ठाकुर अर्थात् स्वामी और दूसरा भूमिया। ग्राम्य सामन्त वह कहलाता है जो राजा के द्वारा लिखे पट्टे से भूमि का अधिकारी होता है

और उसके लिए अपने घर पर रह कर वह राज्य के काम आता है। उसकी सेवायें राज्य के भीतर और बाहर सर्वत्र मानी जाती हैं। उसका पट्टा स्थायी नहीं होता। एक निश्चित समय के बाद वह फिर लिखा जाता है और पुराना रद्द कर दिया जाता है। इसके लिए ग्राम्य ठाकुर सामन्त को निर्धारित नियमों का पालन करना पड़ता है और राजा को नजराना देना पड़ता है।

भूमिया सामन्त को इसी प्रकार पट्टे पर भूमि मिलती है। लेकिन उसके पट्टे के नियम दूसरे होते हैं, उसका पट्टा बिना किसी कारण के रद्द नहीं होता और उसे नया नहीं कराना पड़ता। भूमिया अपने पट्टे का दीर्घकाल तक प्रयोग करता है। उसके लिए उसे कोई नजराना नहीं देना पड़ता है। लेकिन उसका साधारण किराया वार्षिक उसे अदा करना पड़ता है। इसके साथ ही उसको आवश्यकता पड़ने पर राज्य में या बाहर निश्चित समय के लिए काम करना पड़ता है। मेवाड़ राज्य में ये भूमिया राजपूत ठीक उसी प्रकार के सामन्त पाये जाते हैं जिस प्रकार के यूरोप के राज्यों में बिना किसी शर्त के भूमि के अधिकारी सामन्त होते थे। परसिया में इस प्रकार के सामन्तों को जमींदार कहा जाता था। उन जमींदारों और मेवाड़ के भूमिया राजपूतों में कोई अंतर नहीं है।

भूवृत्ति का पुनर्गहण – जो सामन्त मेवाड़ राज्य में बहुत दिनों से भूमि अधिकारी रहे हैं, उनकी भूमि पर अपनी इच्छा से अथवा किसी कारण के पैदा होने पर राणा अपना अधिकार कर सकता है अथवा नहीं, यह प्रश्न सदा से विवादपूर्ण रहा है।

प्राचीनकाल में यूरोप के राज्यों में शासन की जो प्रणाली प्रचलित थी, उसके विधान के अनुसार वहाँ पर सामन्त लोग अपने जीवन-भर मिली हुई भूमि के अधिकारी रहते थे और वहाँ का नियम आज भी वैसा ही है। किसी सामन्त की मृत्यु के बाद उसका अधिकृत क्षेत्र राजा के अधिकार में आ जाता है। यूरोप की यह प्रणाली अनेक अंशों में मेवाड़ की प्रथा से भिन्न है। यहाँ पर जिस सामन्त को सनद देकर भूमि दी जाती है, उसका निर्णय उसी सनद अथवा उसके पट्टे में ही कर दिया जाता है। इस प्रकार का निर्णय मेवाड़ में प्रचलित विधान के अनुसार होता है।

मेवाड़ राज्य में किसी सामन्त के मरने पर उसका उत्तराधिकारी राणा के सम्मान में नजराना देकर और राणा के द्वारा अभिषिक्त होकर सामन्त होने का पद प्राप्त करता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मृत सामन्त के उत्तराधिकारी को सदा से स्वीकार करते चले आ रहे हैं इसलिए उनका यह अधिकार प्रयोग में न लाये जाने के कारण विवादपूर्ण बन गया है।

इसके सम्बंध में अनुसंधान करने के बाद स्वीकार करना पड़ता है कि मृत सामन्त के उत्तराधिकारी की प्रार्थना को स्वीकार करना और न करना राणा के अधिकार में रहा है। राणा संग्रामसिंह के शासनकाल में इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं और उस समय भी उत्तराधिकारियों को स्वीकार किया गया था। लेकिन लगभग दो शताब्दी से यह प्रथा मेवाड़ में बंद हो गई है। इसके पहले सामन्तों का अधिकृत राज्य, निर्धारित समय के पश्चात् मेवाड़ का राणा किसी दूसरे सामन्त को दे देता था और वह सामन्त जिसकी सनद का निर्धारित समय खत्म हो जाता था, अपने परिवार को लेकर पशुओं और नौकरों के साथ चुप्पान[1] की जंगली भूमि में रहने के लिए चला जाता था।

1. मेवाड़ और गुजरात के बीच एक पहाड़ी और जंगली देश है। वह मेवाड़ के दक्षिण-पश्चिम में है। उसी देश को चुप्पान कहा जाता है।

इन्हीं परिस्थितियों में कितने ही शक्तावत सामन्त अरावली के पहाड़ी स्थानों में जाकर रहने लगे थे और चूण्डावत सामन्त चम्वल नदी के निकटवर्ती स्थानों को छोड़कर मेवाड़ की पूर्वी सीमा के निकट पहाड़ी स्थानों में रहने के लिए चले गये थे। उन दिनों में सामन्त का पट्टा एक निश्चित समय के लिए होता था। उस समय के बीत जाने पर न केवल सामन्त का पट्टा रद्द हो जाता था, बल्कि सामन्त राज्य के उस क्षेत्र को छोड़कर किसी दूरवर्ती स्थान पर अथवा दूसरे राज्य में रहने के लिए चला जाता था और वहाँ पर भूमि देकर उसे सामन्त स्वीकार कर लिया जाता था।

उन दिनों में सामन्तों के पट्टे आम तौर पर तीन वर्ष के लिए स्वीकार किये जाते थे। उसके वाद उनको किसी नये स्थान में भेज दिया जाता था और वहाँ पर पहुँचकर वे सामन्त वना लिये जाते थे। सभी सामन्त इन नियमों के साथ बँधे हुए थे। किसी को राज्य की इस व्यवस्था पर असंतोष करने का मौका न था।

सामन्त के पट्टे को एक निश्चित समय के लिए निर्धारित कर देना और उसके वाद उस सामन्त को किसी नये स्थान में भेजकर सामन्त वनाने की नीति मेवाड़ राज्य में कुछ विशेष अर्थ रखती थी। इसका सम्वंध राजनीति के साथ है। किसी एक ही स्थान पर अधिक समय तक सामन्त वहाँ के स्त्री-पुरुषों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेता है। इसका वह किसी समय दुरूपयोग कर सकता है और राणा के विरुद्ध उसके द्वारा विद्रोह करने पर वहाँ की प्रजा राणा के विरुद्ध तलवार उठा सकती है। अपनी प्रजा के साथ इस उत्पन्न होने वाली अवांछनीय परिस्थिति से वचने के लिए मेवाड़ राज्य के राणाओं ने इस प्रकार की नीति का आश्रय लिया था। राणा की इस राजनीतिक सूझ को हमें स्वीकार करना चाहिए।

एक निर्धारित समय के पश्चात् सामन्त के परिवर्तन की प्रथा जब तक मेवाड़ राज्य में प्रचलित रही, उस समय तक राज्य का कोई भी सामन्त राणा के साथ विद्रोह करने का साहस न कर सका। परिवर्तन की उस प्रथा ने राणा और सामन्त के सम्वंध को अटूट वना दिया था। राज्य पर आयी हुई विपदाओं के समय सभी सामन्त शत्रुओं के आक्रमणों का जवाव देने में अपनी कोई शक्ति उठा न रखते थे और राज्य की रक्षा में शत्रुओं से लड़ते हूए बलिदान हो जाने में अपना गौरव समझते थे।

मेवाड़ की इस परिवर्तनशील प्रथा का जिसमें सामन्त अपनी भूमि का स्थायी रूप से पट्टा पाते थे, समर्थन करते हुये विद्वान इतिहासकार गिवन लिखता है– "प्राचीन काल में इसी प्रकार की प्रथा का प्रचार फ्रांस में भी था। सामन्तों को जो भूमि दी जाती थी, उसका एक निश्चित समय रहता था।" जागीरदारी प्रथा का अनुसंधान करते हुये प्राचीन इतिहासकार कांगटेस्की ने भी इसी प्रथा का उल्लेख किया है, जिसका समर्थन गिवन ने अपने ग्रंथ में किया है।

सामन्तों को भूमि देने के सम्वंध में तीन प्रकार के नियम प्रचलित हैं– (1) मियादी सामन्त, (2) चिरस्थायी सामन्त और (3) वंशगत सामन्त।

किसी सामन्त की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसके पुत्र, प्रपौत्र उत्तराधिकारी होकर क्रम से उस जागीर का अधिकार प्राप्त करते हैं। लेकिन उनके इस अधिकार की स्वीकृति राणा पर निर्भर है। वह उनको अनधिकारी घोषित कर सकता है। जागीरदारी प्रथा का यह नियम वहुत पुराना है।

राणा के सामन्तों में राठौड़, चौहान, परमार, सोलंकी और भाटी आदि सभी राजवंशों के लोग थे। सभी के साथ राणा के वैवाहिक कार्य होते थे। इन सम्वंधों ने उन सवके वीच

के भेद-भाव मिटा दिये थे। राठौड़ और चौहान सामन्तों के वंश दिल्ली व अनहिलवाड़ा नगर से सम्बंध रखते हैं। उन वंशों की लड़कियां विवाहित होकर राणा के वंश में आती हैं। राणा वंश के सामन्त भी राणा का अनुकरण करके अपने लड़कों के विवाह उन्हीं राजपूत वंशों में करते हैं, जिनके साथ राणा के विवाह सम्बंध होते हैं।

वैवाहिक सम्बंधों के कारण राजपूतों के कई वंशों में पारस्परिक स्नेह की वृद्धि हुई है। इन सम्बंधों के फलस्वरूप मेवाड़ पर आने वाली विपदाओं में दूसरे वंश के राजपूतों ने न केवल सहानुभूति प्रकट की है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उन लोगों ने सभी प्रकार के उत्सर्ग किये हैं।

मेवाड़ की एकता और मित्रता बहुत दिनों तक शक्ति-सम्पन्न होकर रही। लेकिन समय का प्रहार होने पर छिन्न-भिन्न हो गयी और उस एकता के टुकड़े-टुकड़े होते ही आक्रमणकारी लोगों को अत्याचार करने और लूटने का अवसर मिला। संगठित मराठा दलों ने मेवाड़ में क्या नहीं क्या ? दिल्ली के मुगल सम्राट की शक्तियाँ जब तक मजबूत बनी रहीं, मराठों के अत्याचार नहीं हुये और न उनको मेवाड़ का विध्वंस करने का अवसर मिला।

मेवाड़ राज्य का पतन और मुगलों की शक्तियों का विनाश लगभग एक साथ हुआ। उन्हीं दिनों में मेवाड़ पर संगठित जातियों के आक्रमण आरंभ हुये और उनके प्राचीन गौरव को बड़ी निर्दयता के साथ छिन्न-भिन्न करके राज्य की मर्यादा को मिट्टी में मिला दिया गया।

राजपूतों के विभिन्न वंशों ने मेवाड़ राज्य की जागीरदारी प्रथा का आश्रय लिया और सामन्त होने के पश्चात् उन लोगों ने अपने वैवाहिक सम्बंध राणा वंश के साथ कायम किये, उन दिनों में राणा ने जिन विभिन्न जागीरों की स्वीकृतियाँ दीं, उन पर हम नीचे प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

काला पट्टा– यह पहले लिखा जा चुका है कि राणा रायमल और उदयसिंह के वंशजों ने जो प्रधान राजपूत शाखायें कायम की थीं, उनके वंशजों ने अन्यान्य राजपूतों की उप शाखायें पैदा की और उन शाखाओं तथा उप शाखाओं में जो पैदा हुये, वे मेवाड़ के श्रेष्ठ सामन्तों और सरदारों में माने गये।

चूडावत और शक्तावत राजपूतों की दो प्रधान शाखायें हैं। चूण्डावत दस और शक्तावत छह शाखाओं में विभाजित हैं। राजपूतों में प्रचलित प्रणाली के अनुसार वे अपने वंश वालों की लड़कियों के साथ विवाह करने के अधिकारी नहीं हैं। इन शाखाओं और उप-शाखाओं में जितने भी राजपूत विभाजित हैं, वे सभी सीसोदिया कुल के नाम से विख्यात हैं। इस कुल का लड़का इस कुल की लड़की के साथ विवाह नहीं कर सकता, यह निश्चित है।

मेवाड़ की जागीरों पर जो प्रभाव सीसोदिया वंश के राजपूतों का है, वह राठौरों, परमारों और चौहानों का नहीं है, यद्यपि ये सभी मेवाड़ के सामन्त हैं और बहुत दिनों से इस राज्य की जागीरों के अधिकारी होते चले आये हैं। इनका प्रभाव निर्बल है, इसका कारण सीसोदिया वंश के सभी सामन्त राणा वंश के साथ सम्पर्क रखते हैं। इसीलिये उनके अधिकार श्रेष्ठ माने जाते हैं। सीसोदिया सामन्तों की जागीरें यद्यपि स्थायी पट्टों के अनुसार नहीं हैं, फिर भी उनका अधिकार स्थायी रूप से चला करता है। परमार, चौहान और राठौड़ सामन्तों के साथ ऐसा नहीं है। उनको यह कहने का अधिकार नहीं है कि जागीरों पर हमारा स्वत्व स्थायी हो गया है। सीसोदिया सामन्तों के अतिरिक्त परमार, राठौड़ और चौहान आदि वंश के सामन्तों को जो पट्टा दिया जाता है, वह काला पट्टा के नाम से प्रसिद्ध है। जिनको इस प्रकार का पट्टा प्राप्त होता है, वे स्वयं कहा करते हैं कि हम काला पट्टा धारी हैं।

काले पट्टा का अर्थ यह है कि उसके अनुसार जो भूमि अथवा जागीर किसी सामन्त को दी गयी है, वह राणा के द्वारा किसी भी समय पर वापस ली जा सकती है। लेकिन यह परिस्थिति सीसोदिया सामन्तों की नहीं है। अन्य वंश वालों की अपेक्षा सीसोदिया वंशी सामन्तों को सुविधायें भी अधिक प्राप्त हैं।

राणा भीमसिंह के समय मेवाड़ की अवस्था वहुत शोचनीय हो गयी थी। कितने ही सामन्तों ने पट्टे में मिली हुई जागीर के अतिरिक्त राज्य के स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इस अराजकता को मिटाने के लिये आवश्यक समझा गया कि सभी सामन्तों को वुलाकर नये पट्टे दिये जायें और इन नवीन पट्टों पर राणा भीमसिंह के हस्ताक्षर हों। इसके पहले के सभी पट्टे रद्द कर दिये जाएं।

इसके लिये राणा का प्रधान मंत्री चूण्डावतों के सरदार सलुम्बर के सामन्त के पास गया और उसने पट्टा दिखाने के लिये उससे प्रार्थना की। उसने राणा को निर्वल समझकर राज्य के अनेक अच्छे ग्रामों पर अधिकार कर रखा था। इसलिए प्रधान मंत्री की प्रार्थना को सुनकर उसने उत्तर दिया – "मेरा पट्टा राणा के महल की नींव में है।"

राणा के प्रति उसके एक सामन्त का यह उत्तर कितने वड़े विद्रोह से भरा हुआ है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसी प्रकार का उत्तर अर्लवारेन ने इसी प्रकार की परिस्थिति में इंगलैंड के एडवर्ड के प्रतिनिधि को देते हुए कहा था – "मेरे पूर्वजों ने तलवार के वल से इस भूमि पर अधिकार किया था और मैं भी अपनी तलवार के बल से इस भूमि की रक्षा करूँगा।"

ऊपर हमने जिस पट्टे का उल्लेख किया है, जागीरदारी प्रथा के पुराने विधान के साथ उसका संवंध है। अब नये नियमों के अनुसार अपने जीवन-भर के लिए सामन्त लोग जागीर का पट्टा पाते हैं। किसी भी विधान में दत्तक पुत्र का उत्तराधिकारी होना स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन नये नियमों में सामन्त राणा का परामर्श लेकर यदि किसी बालक को गोद लेता है तो वह वालक भूमि अथवा जागीर का उत्तराधिकारी मान लिया जाता है।

सामन्त के जीवन की कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी हैं, जिनके कारण उसकी जागीर पर राणा अधिकार कर सकता है। इसके लिए सामन्त का कोई अपराध होना चाहिए। अनुशासन भंग करना अथवा इस प्रकार के किसी भी अपराध में सामन्त की जागीर राणा के द्वारा वापस ली जा सकती है।

राणा के परामर्श के अनुसार गोद लिए वालकों को उत्तराधिकारी मान लेने पर जव उनकी प्रार्थनायें राणा के सामने आती हैं तो उनके अभिषेक के समय सामन्त प्रणाली के साधारण नियम प्रयोग में लाये जाते हैं। उत्तराधिकारी को नजराना देना पड़ता है उसके पश्चात राणा उसका पट्टा स्वीकार करता है।

कुछ परिस्थितियों में, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, राणा को अधिकार है कि वह किसी सामान्त को पदच्युत कर दे और उसके अधिकार की जागीर को उससे वापस ले ले। परन्तु इस अधिकार को प्रयोग में लाना राणा के लिए साधारण कार्य नहीं होता। उसके सामने भीषण विपंदायें पैदा होती हैं और उसे भयानक संकटों का सामना करना पड़ता है। इसीलिए अधिकार रखते हुए भी राणा ऐसा करने का सहज ही साहस नहीं करता है।

सामन्त लोग दो प्रकार के मिलते हैं। कुछ तो राणा के वंशगत हैं और दूसरे राजपूतों के अन्य वंशों और उनकी शाखाओं से सम्बंध रखते हैं। किसी सामन्त को पदच्युत करने पर राणा का सार्वजनिक विरोध होता है और सभी सामन्त राणा के साथ विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस प्रकार के विघ्नों से बचने के लिए, जब कोई सामन्त अक्षम्य अपराध करता है तो राणा उसको पदच्युत करके उसी वंश के किसी राजपूत को उसकी जागीर का अधिकारी स्वीकार कर लेता है।

भूमिया– मेवाड़ के इतिहास में लिखा गया है कि प्राचीन काल में राणा के वंशज भूमिया नाम से प्रसिद्ध थे और राज्य में वे विशेष रूप से सम्मान पाते थे। उनकी मर्यादा बादशाह बाबर और राणा संग्रामसिंह के समय तक बराबर कायम रही। उनकी मर्यादा में उसके समय तक कोई अंतर नहीं पड़ा। सीसोदिया राजपूतों के वंशज होने के कारण उनको यह मर्यादा प्राप्त हुई थी। उनकी इसी मर्यादा के कारण उनको भूमिया पद प्राप्त करने का अवसर मिला था।

इस राज्य में जिनके ऊपर युद्ध का उत्तरदायित्व था उनमें यही भूमिया लोग प्रमुख माने जाते थे। उनका भूमिया नाम स्वयं उनकी श्रेष्ठता का परिचय देता था। मुस्लिम काल में राज्य के ये लोग जमींदार के नाम से पुकारे गये। यद्यपि जमींदार और भूमिया के शाब्दिक अर्थों में कोई अंतर नहीं है। फिर भी उन दिनों में लोग भूमिया पद को अधिक महत्त्व देते थे। प्राचीन काल में भूमिया लोगों का ही राज्य में प्रभुत्व था और वे राज्य के अधिकांश भाग पर शासन करते थे। भूमिया लोग कमलमीर और माण्डलगढ के मैदानों में विशेष रूप से रहा करते थे। उनके नियंत्रण में कृषि कार्य होता था।

कृषि कार्य भूमिया लोगों के पूर्वजों का कार्य था। इस व्यवसाय में रहकर भी उन्होंने कभी अपनी युद्ध कला को नहीं छोड़ा। वे सदा तलवार, भाला और धनुष बाण धारण करते थे। कृषि कार्य में रहकर भी वे स्वाभिमानी लड़ाकू लोगों में माने जाते थे।

भूमिया लोगों के पूर्वजों और उनकी आज की संतानों के जीवन में बहुत अंतर पड़ गया है। पूर्वजों की अपेक्षा वे आज अधिक शिक्षित और सभ्य हो गए हैं। राजपूतों में जो लोग उनसे कम मर्यादा रखते थे, उनकी लड़कियों के साथ इनके विवाह सम्बन्ध होते थे और आज तक होते हैं।

इन भूमिया लोगों में सभी प्रकार के लोग हैं। उनकी जागीरें बराबर नहीं है। कुछ लोग तो इतनी छोटी जागीर रखते हैं कि उनके अधिकार में एक ग्राम से अधिक नहीं आता। अपनी जागीर के लिए वे लोग राणा को बहुत कम कर देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर राज्य की तरफ से सैनिक बनकर उनको युद्ध के लिये जाना पड़ता है। युद्ध के दिनों में उनके खाने-पीने का खर्च राणा की तरफ से किया जाता है। भूमिया होने के साथ-साथ ये लोग राज्य की प्रजा में गिने जाते हैं और युद्ध के दिनों में वे राज्य के सैनिक समझे जाते हैं। युद्ध के सभी अस्त्र-शस्त्र रखने के वे अधिकारी हैं। अपने साधारण जीवन में वे युद्ध के सभी अस्त्रों को प्रयोग में लाया करते हैं।

मेवाड़ के इन भूमिया लोगों की बहुत सी बातें यूरोप के भूमि की अधिकारियों के साथ मिलती हैं।[1] भूमिया राजपूत मेवाड़ के अश्वारोही सैनिक हैं। वे किसी शत्रु के आक्रमण करने पर बड़ी से बड़ी संख्या में युद्ध के लिए तैयार होकर राजधानी में आते हैं।

---

1. मेवाड़ के भूमिया लोगों के साथ यूरोप के भूमि अधिकारियों की तुलना करते हुए इतिहासकार हालम ने लिखा है : – जागीरदारी प्रथा में भूमि के ये अधिकारी लोग शांति के दिनों में अपने घर पर रहकर जीवन व्यतीत करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनको राज्य की सेना में पहुँच जाना पड़ता है। इससे वे इंकार नहीं कर सकते, परन्तु वे लोग अपने अधिकार की भूमि के बदले में राजा को किसी प्रकार का कर नहीं देते। भूमिया लोगों के साथ राज्य के जो नियम चलते हैं, वे सभी राज्यों में समान रूप से नहीं माने जाते। मेवाड़ में उसके उत्तराधिकारियों को स्वीकार किया जाता है, परन्तु कच्छ में ऐसा नहीं है। उनके स्वत्वों की

जब मेवाड़ राज्य पर कोई बाहरी शक्ति आकर आक्रमण करती है तो उसके साथ युद्ध करने के लिए राणा युद्ध की घोषणा करता है। उस घोषणा को सुनते ही प्रत्येक भूमिया राजपूत को अपना घर छोड़कर युद्ध के लिए जाना पड़ता है। इस सैनिक कार्य के लिए राज्य की तरफ से उनको किसी प्रकार का वेतन नहीं दिया जाता। इस दशा में भूमिया राजपूतों का कहना है कि "राणा को हम लोगों से भूमि का कोई भी कर नहीं लेना चाहिए।" उनका यह भी कहना है कि "कर के नाम पर जो कुछ हम राणा को देते हैं, राणा उसको लेने का अधिकारी नहीं है।"

भूमिया राजपूत राज्य की जितनी भूमि पर अधिकार कर लेते हैं, उसके लिए वे लोग राणा से कोई पट्टा मंजूर नहीं करवाते। बिना पट्टे के भूमि के अधिकारी बनने में वे लोग अपना गौरव समझते हैं। अपने अधिकार की भूमि के सम्बंध में भूमिया राजपूत बड़े स्वाभिमान के साथ कहा करते हैं – "यह हमारी भूमि है और हम इसके स्वामी हैं।"

प्राचीन काल में भूमिया राजपूत बनने के लिए बड़े-बड़े प्रयत्न करने पड़ते थे और उसके बाद भी अक्सर सफलता नहीं मिलती थी। देवला के राठौर सरदार ने बनेड़ा के राजा से पट्टा मंजूर करा के कुछ ग्रामों पर अधिकार कर लिया था। उस अधिकार के बदले राठौर सरदार राजा को निर्धारित कर दिया करता था। जागीरदारी प्रथा के अनुसार राठौर सरदार को राजा के दरबार में उपस्थित रहना चाहिए। लेकिन इस नियम के पालन में उसने अत्यंत शिथिलता से काम लिया। पट्टे के अनुसार किसी भी युद्ध के समय सरदार को पैंतीस सवार देने चाहिए थे। जब उस प्रकार का समय उपस्थित हुआ तो वह सरदार इस नियम का भी पालन न कर सका। उन दिनों में बनेड़ा का राजा युद्ध में फँसा हुआ था। जब युद्ध समाप्त हुआ तो उसने राठौड़ सरदार को अपने यहाँ बुलाकर कहा – "तुम्हारा जो पट्टा स्वीकार किया गया था, उसे तुम लौटा दो।"

सरदार ने उस समय कुछ न कहा और वहाँ से लौटकर उसने राजा के पास संदेश भेजा – "सेना, मस्तक और देवला की जागीर एक साथ है। जागीर को मेरे मस्तक से और मस्तक को इस जागीर से अलग नहीं किया जा सकता।"

इस अभिमान के कारण राठोड़ सरदार के अधिकार की भूमि छीन ली गयी। सरदार के नियम विरुद्ध कार्यों के कारण उसका पट्टा रद्द कर दिया गया।

भूमिया राजपूतों का पद सामन्त शासन-प्रणाली में इतना सम्मानपूर्ण माना जाता है कि उस पद के लिए प्रधान श्रेणी के सामन्त भी चेष्टा किया करते हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिए कोई पट्टा नहीं होता और सभी सामन्तों में इस प्रकार के अधिकारी को अनेक बाधाओं से मुक्त समझा जाता है।

बनेड़ा और शाहपुरा के राजा – मेवाड़ राज्य में बनेड़ा और शाहपुरा के सामन्त स्वतंत्र रूप के राजा माने जाते हैं। उन दोनों सामन्तों को राजा की उपाधियाँ मिली हैं। ये दोनों राजा, राणा के वंश के हैं। बनेड़ा का राजा जयसिंह के वंश में और शाहपुरा का राजा राणा उदयसिंह के वंश में उत्पन्न हुआ है। इन दोनों राज्यों की एक-सी व्यवस्था है। यदि इन राज्यों का राजा मर जाता है तो उसका उत्तराधिकारी राणा सनद अथवा पट्टा प्राप्त कर लेता हैं नियमानुसार उसका अभिषेक कार्य होता है और राणा धन और बहुमूल्य वस्त्र उसे भेंट में देता है।

सामन्त शासन प्रणाली को यहाँ भली-भाँति समझ लेने की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक राज्य छोटे और बड़े बहुत-से राजाओं में विभाजित होता है और वे सभी राजा एक प्रधान राजा की अधीनता में कार्य करते हैं। वह प्रधान छोटे-बड़े समस्त राजाओं की

केन्द्रीय शक्ति है। उसके और अधीन राजाओं के वीच का एक विधान होता है। उसी विधान के अनुसार राज्य का शासन चलता है। ठीक यही अवस्था राजा और सामन्तों के वीच की है।

बनेड़ा और शाहपुरा के राजा यद्यपि मेवाड़ के श्रेष्ठ सामन्तों में से थे, परन्तु वे अन्य सामन्तों की अपेक्षा कितने ही नियमों में स्वतंत्र माने जाते थे। दूसरे सामन्तों की तरह उनको राज्य के वकसी अभिषेक में राणा के दरवार में नियमानुसार आना पड़ता है। ये दोनों राज्य अपने निकटवर्ती जिले में होने वाले राणा के किसी क़ार्य में भाग लेने के लिए नियमवद्ध हैं।

सामन्त शासन प्रणाली के अनुसार जो नियम सामन्तों को पालन करने पड़ते हैं, उनमें से कुछ का पालन बनेड़ा और शाहपुरा के दोनों राजाओं के लिए आवश्यक है। लेकिन इधर वहुत दिनों से दोनों राजा अपने कर्त्तव्य पालन में वहुत शिथिल पाये जाते हैं। मेवाड़ राज्य की शक्तियाँ वाहरी आक्रमणों के कारण जिस प्रकार शिथिल होती जा रही हैं, उनका प्रभाव राज्य के अन्य सामन्तों के साथ-साथ इन दोनों राज्यों पर भी पड़ रहा है, ऐसा होना स्वाभाविक है।

दिल्ली मुगल शासकों की राजधानी है। अजमेर मुगलों की अधीनता में है। वनेड़ा और शाहपुरा अजमेर के निकटवर्ती हैं। इस दशा में मुगलों का प्रभाव इन दोनों राज्यों पर पड़ना स्वाभाविक है। इतने निकट रह कर शक्तिशाली मुगलों के विरुद्ध वना रहना इन दोनों के लिए संभव नहीं था। इस दशा में इन दोनों का खिचाव दिल्ली की तरफ हुआ। वहाँ से इनको राजा की उपाधियाँ मिली। शाहपुरा के राजा ने मुगलों की मेहरवानी का कुछ और भी लाभ उठाया।

पट्टा– राणा की ओर से सामन्तों को जो भूमि अथवा जागीर दी जाती है, उसकी लिखा-पढ़ी पट्टे के नाम पर होती है। इसी पट्टे को राणा की सनद के नाम से भी लिखा गया है। यों तो सामन्त शासन-प्रणाली का एक विधान होता है और प्रत्येक सामन्त को राजा के साथ-साथ उस विधान का पालन करना पड़ता है। फिर भी प्रत्येक पट्टे में राणा और सामन्त के वीच निर्धारित होने वाली वातें लिखी जाती हैं। इस शासन-व्यवस्था में सर्वत्र लगभग यही होता है और मेवाड़ राज्य में भी वहुत प्राचीन काल से यही होता चला आया है।

राजस्थान के अन्य राज्यों के मुकावले में मेवाड़ राज्य शासन की नीति में सदा आगे रहा है और इसीलिए राजस्थान में यह राज्य सदा श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु वाहरी आक्रमणों के दिनों से मेवाड़ का राजनीतिक पतन आरम्भ हुआ और फिर इस राज्य की परिस्थितियाँ लगातार बिगडती गयी। इसी कमजोरी के फलस्वरूप मेवाड़ के राणा की राजनीतिक नीति निर्वल पड़ गयी। उस निर्वलता में राणा ने अपने आपको शक्तिहीन वनाने का कार्य किया।

पतन के इन दिनों में राणा की शक्तियाँ इस योग्य भी न रह गयी कि वे सामन्तों को नियमानुसार चलाने के लिए काफी होती। अभिषेक में नये आने वाले सामन्तों ने उसकी इस निर्वलता का लाभ उठाया। अपनी दुरवस्था में राणा ने मिलने वाले नजरानों पर ही संतोष करना आरंभ किया। उसके इस संतोष का प्रभाव और भी वुरा पड़ा। हुआ यह कि इन दिनों में सामन्तों के जो पट्टे लिखे गये और स्वीकार किये गये, उनमें विधान के अनुसार सभी नियमों की पावंदी नहीं करायी गयी और राणा उतने ही नियमों पर संतुष्ट हो गया।

इस प्रकार की परिस्थितियों में नये सामन्तों के अभिषेक निर्बल पड़ते गये। कुछ पट्टे तो ऐसे भी लिखे गये, जिनमें नजराने का भी कोई उल्लेख न था। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि राणा ने कुछ सामन्तों को नजराने से भी मुक्त कर दिया था। इसी प्रकार विधान के और भी नियम हैं, जिनका पालन नये पट्टों में ठीक-ठीक न होने लगा। इस प्रकार नियम और विधान के विरुद्ध चलने से राणा की शक्तियाँ क्षीण पड़ गयी और सामन्त लोग मनमानी करने लगे। सिक्का चलाने का जो अधिकार सामन्तों को न था, उसका भी दुरुपयोग हुआ। कुछ इस प्रकार की बातों के कारण राणा की जो आर्थिक आय होती थी, वह भी नष्ट हो गयी।

राज्य के प्रधान सामन्त अपनी व्यवस्था में राजा का अुनकरण करते हैं। जिस प्रकार मंत्री से लेकर पनवाड़ी तक राजा के यहाँ कर्मचारी रहते हैं, उसी प्रकार प्रधान सामन्तों के यहाँ भी मंत्री से लेकर छोटे-छोटे कर्मचारी पाये जाते हैं। राजा की तरह उनके भी महल होते हैं और पूजा करने के लिए राजा की भाँति उन सामन्तों के अपने-अपने मंदिर होते हैं। राजा का अनुकरण करके उसी प्रकार श्रेष्ठ सामन्त गौरीशाला में प्रवेश करते हैं, गाने-बजाने वाले तुरंत खड़े होकर सामन्तों का अभिवादन करते हैं और उनकी जय-जयकार करते हैं।

सामन्त के सिंहासन पर बैठ जाने के बाद सभी लोग अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार वहाँ पर बैठते हैं। सबसे पहले सामन्त के स्वास्थय के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। बैठे हुए लोगों की ढालें जब परस्पर टकराती हैं तो उनके आघात से उठने वाली आवाज सामन्त के दरबार में गूँज उठती है।

राजपूत – यूरोप के राज्यों की तरह मेवाड़ में सामन्तों के द्वारा राजा का हाथ चुम्बन करना अथवा राज्य भक्ति प्रदर्शित करने के लिए शपथ ग्रहण करने की प्रथा नहीं है। वल्कि जब कोई सामन्त नियुक्त किया जाता है तो राजा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए उसका यह कहना अथवा लिखना ही काफी होता है–"मैं आपका वालक हूँ। मेरा सिर और मेरी तलवार आपकी है और मेरी सेवायें आपके आदेश पर निर्भर हैं।" राजपूतों के प्रति विश्वासघात की कल्पना नहीं की जा सकती। उनके त्याग और बलिदान की घटनायें अगणित हैं, उनमें से कुछ इन पृष्ठों में लिखी गयी हैं। राजपूतों के जीवन में अराजकता की भावना नहीं है। उनका सम्पूर्ण इतिहास राजभक्ति और देशभक्ति से भरा हुआ है। राजपूत जिन ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, उनमें राजभक्ति को वहुत अधिक प्रोत्साहन दिया गया है। कवि चन्द ने स्वयं अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ में राजभक्ति की श्रेष्ठता का अद्भुत वर्णन किया है। स्वाधीनता, राजभक्ति और वीरता राजपूतों का गौरव होकर रही है। राजपूतों को राजभक्ति की शिक्षा शैशवकाल से ही मिलती है। प्रत्येक राजपूत के जीवन में सबसे पहले राजभक्ति की भावना है, उसके बाद उसके जीवन का दूसरा सुख है। सामन्त जिस प्रकार अपनी राजभक्ति का परिचय अपने राजा को देते हैं, उसके सरदार उसी भावना से प्रेरित होकर अपना व्यवहार सामन्तों के प्रति प्रकट करते हैं।

राजपूतों के साथ किसी दूसरी जाति की तुलना नहीं की जा सकती। इन राजपूतों ने भीषण दुर्भाग्य और अत्याचारों में अनेक शताब्दियाँ अपने जीवन की व्यतीत की हैं। परन्तु उनकी स्वाधीनता और स्वाभिमान की भावना में आज तक कोई अंतर नहीं पड़ा। राजपूतों ने अपना सब कुछ खोया है परन्तु अपने स्वाभिमान को नष्ट नहीं होने दिया। उनको अपना सम्मान बहुत प्रिय है। अपमान को अनुभव करने की उनमें अद्भुत शक्ति पायी जाती है। जहाँ तक सम्मान का प्रश्न है, उसकी रक्षा के लिए आज भी एक राजपूत जीवन की छोटी-मोटी भूलों में युद्ध का एक मोर्चा कायम कर देता है और प्राण लेने और देने के लिए तैयार हो जाता है। एक राजपूत का यह चरित्र है, जो अनादि काल से उसके साथ चला आ रहा है।

संसार में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। न जाने कितनी जातियाँ मिट गयी और न जाने कितनी जातियाँ नयी उत्पन्न हो गयी। स्वभाव और चरित्र के भयानक परिवर्तन इस संसार में देखने को मिले। परन्तु राजपूतों के जीवन का कोई भी परिवर्तन आज तक आँखों के सामने नहीं आया। इस जाति के लोग हजारों वर्ष पहले जैसे थे, आज भी उनकी संतानें हजारों वर्षों के बाद वैसी ही हैं। राजपूत राजवंशों की एक जाति है, जिसकी शाखाओं और उपशाखाओं ने थोड़े से राजपूतों को लाखों और करोड़ों की संख्या तक पहुँचा दिया है। राजवंश के नाम पर राजपूत शब्द उनके साथ रह गया है। राज्यों के स्थान पर उनके जीवन की विवशता और दरिद्रता उनके साथ रह गयी है। लेकिन उनके चरित्र की स्वतंत्र प्रियता में कोई अंतर नहीं आया। एक राजपूत अपने सम्मान की रक्षा में आज भी जिस प्रकार अपने प्राणों को बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है, उसको देखकर इस वात का अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में स्वाभिमान की भावना ने इनकी अंतरात्माओं में कितनी गहराई तक प्रवेश किया था।

मेवाड़ में जितनी भी बड़ी-बड़ी जागीरें हैं, उनका अधिकारी प्रत्येक श्रेष्ठ सामन्त अपने बेटों और भाइयों की भरण पोषण की व्यवस्था अपनी मर्यादा के अनुसार करता है। जिस जागीर की वार्षिक मालगुजारी साठ हजार से अस्सी हजार रुपये तक होती है, उस जागीर के अधिकारी का दूसरा भाई तीन हजार से पाँच हजार रुपये वार्षिक मालगुजारी का इलाका पाने का अधिकारी होता है। यह उसका वपौता है अर्थात् उसका पैतृक अधिकार है। इसके सिवा वह अपने राजा के यहाँ अथवा बाहर कोई भी कार्य कर सकता है। उससे जो छोटे भाई होते हैं, उनको भी जागीर में निर्धारित भाग मिलता है। इसी प्रकार का निर्णय सामन्तों के पुत्रों के लिए होता है। सबसे पहले बड़ा बेटा अधिकारी होता है। लेकिन उससे जो छोटे होते हैं, उनके भी निर्धारित भाग होते हैं। उनके इन अधिकारों को न कोई बदल सकता है और न कम कर सकता है।

जागीर में भाइयों और बेटों के जो पैतृक अधिकार होते हैं, उनका क्रम पुत्रों के साथ प्रपौत्रों में बराबर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभाजन होते-होते एक दिन किसी अच्छी जागीर के भी सैकड़ों और हजारों टुकड़ों हो जाते हैं और उस जागीर का महत्त्व नष्ट हो जाता है।

चरसा – चरसा शब्द का अर्थ चर्म होता है। भूमि की नाप के लिए इस चरसा शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में इसको हाइड कहते हैं। एक अश्वारोही सैनिक के भरण-पोषण और सैनिक जीवन व्यतीत करने के लिए जितनी भूमि उसे दी जाती है, मेवाड़ में उसकी नाप चरसा के नाम पर की जाती है। जागीरदारी प्रथा के अनुसार, नीची श्रेणी के सैनिक मेवाड़ में जितनी भूमि पाते हैं, इंगलैंड में भी उस श्रेणी के सैनिक को उतनी ही भूमि इस प्रथा के अनुसार मिलती है। राजस्थान में भूमि की नाप में चरसा शब्द का प्रयोग किया जाता है और इंगलैंड में हाइड के द्वारा भूमि की नाप होती है। दोनों का अर्थ एक ही है। दोनों का उपयोग भी एक ही अर्थ में होता है।

इंगलैंड में एंग्लो सैक्शन शासन का आरंभ भूमि की इसी नाप के द्वारा हुआ था। मेवाड़ में एक चरसा भूमि एक अश्वारोही सैनिक को दिये जाने का नियम है। इंगलैंड में नाइट उपाधि के फौजी आदमी को चार हाइड भूमि देने का नियम था। इस भूमि का परिमाप चालीस एकड़ के बराबर है। मेवाड़ में एक चरसा भूमि का अर्थ पच्चीस से तीस बीघा तक का होता है।

राजपूतों के सगे भाईयों और परिवार के लोगों में जो प्रायः संघर्ष पैदा होते हैं, उनका कारण यही पैतृक अधिकार है। यह अधिकार सुनने में वड़ा अच्छा मालूम होता है। लेकिन इसका परिणाम भयानक होता है। पैतृक अधिकारों ने अधिक संख्या में राजपूतों को न केवल अकर्मण्य बना दिया है, वल्कि वाप-दादाओं और सगे भाइयों का सर्वनाश करने के लिए अनेक अवसरों पर प्रोत्साहन दिया है।

इस पैतृक अधिकार के दुष्परिणामों को प्राचीन काल के फ्राँसीसी लोग जानते थे। इसीलिये अपने यहाँ की सामन्त शासन-प्रणाली के विधान में उन लोगों ने इस अधिकार को स्थान नहीं दिया था। वहाँ पर ऐसा कोई नियम नहीं है, जिसके अनुसार किसी सामन्त की जागीर अथवा भूमि उसके उत्तराधिकारियों में वाँटी जा सके। सामन्त का वड़ा लड़का ही केवल उसका उत्तराधिकारी होता है।[1] उत्तराधिकारियों में जागीर के वाँटने का प्रश्न वहुत भयानक है और न वाँटने की अवस्था में सामन्त के भाइयों और वेटों के लिए क्या होना चाहिए, इसका निर्णय भी आसानी के साथ नहीं किया जा सकता। जागीर में पैतृक अधिकार होने के कारण सामन्त के परिवार का कोई भी एक सदस्य चाहे वह भाई हो अथवा वेटा, सहज ही अपना अधिकार चाहता है। इसी अधिकार के नाम पर फ्रांस में फिरेज का प्रश्न पैदा हुआ था और उस समय वहां के अधिकारियों ने सामन्त के परिवार के सम्मान और जागीर के अविभाजन पर एक निर्णय कर लिया था। इसी प्रकार की व्यवस्था इंगलैंड में प्रथम एडवर्ड के शासन काल में हुई थी। उस समय फ्रांस और इंगलैंड में विभाजन को सीमित वनाकर यह निश्चय कर लिया गया था कि इस निर्णय के विरुद्ध यदि किसी जागीर में कोई काम किया गया तो वह जागीर जव्त कर ली जाएगी।

जागीर के विभाजन के सम्वंध में इस प्रकार का नियम होना अत्यंत आवश्यक है। जो व्यवस्था हो उसका उद्देश्य होना चाहिए कि न तो उत्तराधिकारियों के अधिकारों की अवहेलना की जाये और न जागीर को छिन्न-भिन्न होने दिया जाये। इसके लिए क्या होना चाहिए, यह प्रश्न तो अधिकारियों के निर्णय से सम्वंध रखता है। यदि जागीर का विभाजन सीमित कर दिया जाये तो उसके द्वारा राष्ट्र के हितों की वहुत कुछ रक्षा हो सकती है।

जागीर के विभाजन की प्रथा ने इस देश के राजपूतों को मटियामेट कर दिया है। भीषण संघर्षों की उत्पत्ति हुई है और आपस के द्वेष भावों ने भयानक रूप से उनका सर्वनाश किया है। जागीरों के विभाजन के कारण कच्छ और काठियावाड़ में राजपूतों का भयानक पतन हुआ है। उनमें मुकदमेवाजी की वृद्धि हुई है और उसके फलस्वरूप, अपराधों और अत्याचारों की लज्जापूर्ण सृष्टि करके वे अपने सर्वनाश के स्वयं कारण वन गये हैं। जहाँ पर जागीरों का विभाजन सीमित कर दिया गया है, वहाँ पर वहुत लाभ है और उत्तराधिकारियों के साथ-साथ जागीरें सुरक्षित हो गयी हैं। मेवाड़ में जागीरों का विभाजन उत्तराधिकार की प्रथा के कारण कितना अधिक हुआ है और अव भी हो रहा है, उसे लिख सकने में हम असमर्थ हैं। अपनी खोज में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जागीरों के विभाजन और लड़कियों के विवाहों में दहेज की प्रथा के कारण राजपूतों में शिशु हत्या की सृष्टि हुई है।

□

---

1. अन्य देशों की तरह इंगलैंड में भी सामन्त शासन-प्रणाली के द्वारा शासन चलता था। सामन्तों को उन्हीं तरीकों से वहाँ की भूमि दी गयी थी, जिन तरीकों से दूसरे देश के राज्यों में। परन्तु इंगलैंड के प्रथम एडवर्ड ने यह नियम वना दिया था कि किसी सामन्त की जागीर उत्तराधिकारियों में वांटी नहीं जा सकती।

अध्याय-10
राजस्थान में कर व्यवस्था

रखवाली – सामन्त शासन-प्रणाली में पूर्वी और पश्चिमी राज्यों के जो नियम एक दूसरे के साथ बहुत कुछ समानता रखते हैं, उन पर हम इस परिच्छेद में प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे। बढ़ती हुई अशान्ति, असुरक्षा और अराजकता में प्रजा के धन और प्राणों की रक्षा करने के लिए जिस प्रकार के कर को जन्म दिया गया, वह रखवाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार की अशान्ति और असुरक्षा के दिनों में यूरोप के राज्यों में सैलवामेंटा नाम का कर लगाया गया था। रखवाली का अर्थ रक्षा करना है। यह कर राजस्थान के राज्यों में थोड़ा-वहुत हमेशा रहा है। परन्तु पिछले पचास वर्षों से यह कर भयानक हो उठा है।

रक्षा की आवश्यकता होने पर इस कर की सृष्टि हुई। आवश्यकता पड़ने पर संरक्षक खोजे गये अथवा वे अवसर देखकर स्वयं पैदा हो गये। जिन लोगों ने रक्षा करने का कार्य किया, उनको उसका मूल्य अदा किया गया। यह अदायगी कई तरीकों से की गयी। उस रक्षा का मूल्य अधिकतर सम्पत्ति के द्वारा किया गया और कभी-कभी खेतों की पैदावार से उस रक्षा की कीमत चुकाई गयी। अनेक अवसरों पर रक्षा करने वालों ने बिना किसी नियम और व्यवस्था के भूमि पर अधिकार कर लिया और उसका मनमाना लाभ उठाया।

जिन लोगों ने रक्षा करने का व्यवसाय आरंभ किया, उनका मुख्य उद्देश्य भूमि पर अधिकार करना रहा। भूमिया सामन्तों की तुलना हम यूरोप के उन सामन्तों के साथ कर चुके हैं, जो किसी प्रकार का कर अपने राजा को न देते थे। वे सामन्त जिस भूमि पर अधिकार पा जाते थे, उसके वे सदा के लिए स्वामी बन जाते थे और उसमें फिर किसी प्रकार का कोई संशोधन और परिवर्तन नहीं होता था।

दासत्व- अरक्षित अवस्था में प्रजा ने जिन लोगों का आश्रय ग्रहण किया, उन्होंने प्रजा की रक्षा कर के अपनी रक्षा के मूल्य में प्रजा के भूमिया स्वत्व पर अधिकार करना आरंभ किया। यह पहले लिखा जा चुका है कि राज्य की कुछ भूमि, जो सामन्तों को नहीं दी जाती थी, वह मेवाड़ में राणा के अधिकार में रहती थी। वाहरी अत्याचारों के दिनों में जब राणा की शक्तियाँ बहुत निर्बल पड़ गयी थी, उन दिनों में राणा की आश्रित प्रजा के सामने अधिक संकट उपस्थित हो गये थे। प्रजा को अपने समीपवर्ती सामन्त का आश्रय लेना पड़ा। उस रक्षा के बदले प्रजा को अपने संरक्षक की दासता स्वीकार करनी पड़ी। जिन लोगों ने अपनी अरक्षित अवस्था में सहायता प्राप्त की, उनको वर्ष में कई-कई महीने सामन्तों के यहाँ जाकर खेती का कार्य करना पड़ा। यह अवस्था मेवाड़ राज्य में अपने आप फैली और उसके कारण प्रजा के सामने भीषण संकट पैदा हो गये। सन् 1818 ई. में राणा के साथ राज्य के सामन्तों

ने जो नयी संधि की, उससे राज्य की यह दुरवस्था दूर हुई।

यूरोप के देशों में बहुत समय तक गुलामी की प्रथा चली है। उन दिनों में वहाँ पर जिस प्रकार के गुलाम पाये जाते थे, उनकी बहुत कुछ अवस्था यहाँ के राज्यों के उन लोगों से मिलती जुलती है, जो अपनी अरक्षित अवस्था में सामन्तों की सहायता खरीदा करते थे और उसका मूल्य चुकाने के स्थान पर वर्ष में कुछ दिनों तक उनके यहाँ रहकर उनकी खेती का काम किया करते थे। इन लोगों की परिस्थितियाँ बहुत कुछ यूरोप के गुलामों की तरह की थी। यद्यपि दोनों को एक सा गुलाम नहीं कहा जा सकता, परन्तु दोनों की दासता और विवशता अनेक अर्थों में एक सी थी। इन दासों के सम्बंध में इतिहासकार हालम ने बहुत कुछ खोज करने के बाद जो कुछ अपने ग्रंथ में लिखा है, उसको पढ़ने से मालूम होता है कि इन दासों की विवशता बिल्कुल दासता का रूप रखती है।

मेवाड़ राज्य की बढ़ती हुई दुरावस्था में अवसरवादी सामन्तों ने प्रजा के साथ रक्षा करने के नाम पर जो व्यवसाय शुरू किया था, उसके फलस्वरूप अगणित संख्या में राज्य के कृषक और दूसरे लोग सामन्तों की ऐसी दासता में आ गये थे कि जिनसे उनका उद्धार हो सकना असंभव हो गया था। इन दिनों में अवसरवादी सामन्तों ने संरक्षक बनकर उन लोगों की भूमि पर अधिकार कर लिया था, जो राज्य के भूमिया राजपूत कहलाते थे और वे बहुत समय तक अत्याचारों में रहकर निर्बल हो गये थे। अरावली के बहुत से किसान इसी प्रकार के दास हो गये थे। उनके अधिकार में जितनी भी भूमि थी, उस पर सामन्तों ने कब्जा कर लिया था और उन लोगों ने भूमि के असली मालिकों को दास बनाकर यहाँ रखा था। वे कृषक अपने स्वामी सामन्तों के यहाँ रहकर उनकी खेती का काम किया करते थे।

भूमि के छोटे-छोटे मालिकों की दुरवस्था को अनुभव करते हुए विद्वान हालम ने लिखा है – "लूट-मार और अत्याचार के दिनों में भूमि के निर्बल अधिकारियों की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी है। उनकी भूमि पर दूसरे लोग स्वामी बन बैठे हैं और जो असली मालिक थे, वे दासता का जीवन बिता रहे हैं।"

हाली तथा बसी- अरावली प्रांत के 'हाली' लोगों की दशा पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। सामन्तों का आश्रय लेने पर भूमि के छोटे-छोटे अधिकारी दासता में आ गये हों, यह पूरे तौर पर सही नहीं है। बल्कि राज्य के भीतर बहुत दिनों से जिस प्रकार भीषण अत्याचार हो रहे हैं, उनके कारण विशेष रूप से जिस श्रेणी की दासता उत्पन्न हुई है, वह 'बसी' के नाम से प्रसिद्ध है। कोटा राज्य के 'हाली' लोग भी यद्यपि दासता का भोग कर रहे हैं, परन्तु उनमें और बसी दासों में बहुत अंतर है। बसी लोगों की दशा उनकी अपेक्षा अधिक शोचनीय है। इसका कारण यह है कि अपनी भूमि पर अब उनका कोई अधिकार नहीं रह गया और जो भूमि उनके अधिकार में पहले थी, उसके सर्वेसर्वा मालिक सामन्त बन गये हैं। उन सामन्तों के ऋण के जाल में ये लोग इस प्रकार फँसे हुए हैं कि उनका उससे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। वे जीवन भर उनकी दासता स्वीकार करने के लिए प्रत्येक अवस्था में बाध्य हैं। यद्यपि उनकी उस अवस्था में अब बड़ा परिवर्तन हो गया है।[1]

---

1. राजस्थान में प्रचलित रखवाली कर के समान इंगलैंड में भी किसी समय इस प्रकार का एक कर प्रचलित हुआ था सन् 1724 ईसवी में लार्ड लोवेट ने इंगलैंड के जार्ज प्रथम से प्रार्थना की थी कि "इंगलैंड की दशा इन दिनों में बहुत शोचनीय हो गई है। चारों ओर लुटेरों के अत्याचारों से प्रजा का सर्वस्व नष्ट हो गया है। इन संगठित लुटेरों ने प्रजा के सामने एक प्रस्ताव रखा था कि यदि आप लोग वर्ष में एक निश्चित रकम कर के रूप में देना पसंद करे तो कुछ लोगों को सशस्त्र सैनिक बनाकर आपकी रक्षा की जा सकती है।" प्रजा के द्वारा इस कर के स्वीकार करते ही लूट-मार बंद हो गयी। लेकिन जो लोग इस कर को अदा न करते, वे लूट लिए जाते थे।

गोला – गोला का अर्थ दास अथवा गुलाम होता है। भीषण दुर्भिक्षों के कारण राजस्थान में गुलामों की उत्पत्ति हुई थी। इन अकालों के दिनों में हजारों की संख्या में मनुष्य बाजारों में दास बनाकर बेचे जाते थे। पहाड़ों पर रहने वाली पिंडारी और दूसरी जंगली जातियों के अत्याचार बहुत दिनों तक चलते रहे और उन्हीं जातियों के लोगों के द्वारा बाजारों में दासों की बिक्री होती थी, वे लोग असहाय राजपूतों को पकड़कर अपने यहाँ ले जाते थे और उसके बाद बाजारों में उनको बेच आते थे।

इस प्रकार जो निर्धन और असहाय राजपूत खरीदे और बेचे जाते थे, उनकी संख्या राजस्थान में बहुत अधिक हो गयी थी और उन लोगों की जो संतान पैदा होती थी, वह गोला के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन गुलाम राजपूतों को गोला और उनकी स्त्रियों तथा लड़कियों को गोली कहा जाता था। यूरोप में इसी प्रकार के सेक्सन दास होते थे। गोला लोग अपने बायें हाथ में चाँदी का कडा पहना करते हैं। अच्छा व्यवहार किये जाने पर ये लोग अच्छे लडाका सिद्ध होते हैं।

ये गोला लोग अपनी माता के वंश के अनुसार ख्याति पाते हैं। इन गोला लोगों में राजपूत, मुसलमान और अनेक दूसरी जातियों के लोग पाये जाते हैं। बाजारों में उन सबका क्रय और विक्रय होता है। बहुत से राजपूत सामन्त इन गोला लोगों की अच्छी लड़कियों को अपनी उपपत्नी बना लेते हैं और उनसे जो लड़के पैदा होते हैं, वे सामन्तों के राज्य में अच्छे पदों पर काम करने हेतु नियुक्त कर दिये जाते हैं। देवगढ़ का स्वर्गीय सामन्त जब उदयपुर राजधानी में आया करता था तो उसके साथ तीन सौ अश्वारोही गोला सैनिक आया करते थे। उन सैनिकों के बायें हाथ में एक-एक साने का कडा होता था।

प्राचीन जर्मन जातियों में जुआ खेलने का बहुत प्रचार था। टैसीटस नामक रोमन इतिहासकार ने उन जातियों के जुए का वर्णन करते हुए लिखा है– "वहाँ पर जुआ खेलते हुए अंत में जिनकी हार होती थी, उनको गुलामों के बाजार में ले जाकर बेचा जाता था।" जर्मन जातियों की तरह जुआ खेलने का प्रचार राजपूतों में बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों से साफ जाहिर होता है कि जुआ के कारण इस देश के प्राचीन वंशों का किस प्रकार सर्वनाश हुआ है। इस देश में कुरुक्षेत्र का महाभारत न होता, यदि पांडवों और कौरवों में जुआ खेलने की आदतें न होतीं और उस महाभारत के युद्ध में अगणित वीरों को अपनी आहुतियाँ न देनी पडती। संक्षेप में यहाँ पर यह कहना अनुचित नहीं है कि जुआ खेलने की आदत के ही कारण युधिष्ठिर को अपना राज सिंहासन खोना पड़ा था और जुआ खेलने की आदतों के ही कारण उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ भारतवर्ष मटियामेट हो गया। आश्चर्य यह है कि जिस गंदी और अनैतिक आदत के कारण इस देश का सर्वनाश हुआ है, उस आदत का और उसकी अनैतिकता का आज तक अंत नहीं हुआ। सब कुछ खोने के बाद भी राजपूतों ने अपने जीवन में जुआ खेलने की आदतों को आज तक कायम रखा है। राजस्थान के राज्यों में आज भी जुआ खेलने का प्रचार बहुत अधिक है।

ऊपर गोला लोगों का वर्णन किया गया है। जो राजपूतानी गोली लड़कियाँ मेवाड़ के सामन्तों से पुत्र उत्पन्न करती हैं और जो राणा के सम्पर्क से लड़के पैदा करती हैं, वे सभी दासों के नाम से पुकारे जाते हैं। इन दासों को सामन्तों के अथवा राणा के राज्य से जीवन निर्वाह के लिए भूमि मिलती है। परन्तु समाज में उनको कोई प्रतिष्ठा नहीं दी जाती।

बसी और गोला गुलामों के नाम हैं। ये लोग स्वयं अपने आपको दास अथवा गुलाम कहते हैं। गोला, गोली लड़कियों के साथ, बसी, बसी लड़कियों के साथ और इसी प्रकार दूसरे गुलाम अपने वंश क्रम के अनुसार वैवाहिक सम्बंध करते हैं। दासता अथवा गुलामी इन लोगों के मनोभावों में अधिकार रखती है। जो दास जिस श्रेणी का हो चुका है

वह अव उसी में रहना चाहता है, इसे वह जन्म गत मानता है। उसको वदलने और दासता के जीवन से निकलने की वह कभी अभिलाषा नहीं करता। किसी के समझाने से उसकी समझ में नहीं आता। वह अपने जीवन की दासता में रहना चाहता है और उससे निकल कर वह दासता से अपनी मुक्ति नहीं चाहता। वह जिस अवस्था में है, उसी में वह संतोष करता है। उनमें से वहुत की यह भी धारणा है कि इस दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए समाज और राज्य से जो सुविधायें प्राप्त हैं, उनसे वंचित होना पड़ेगा। इसलिए उन संकटों का सामना करने के लिए ये दास न तो इच्छुक हैं और न तैयार हैं।

राजस्थान में 'वसी' लोगों की भांति दासों की एक दूसरी श्रेणी भी विद्यमान थी। शत्रुओं के द्वारा जो लोग युद्ध में कैदी हो जाते थे, वे जव किसी सामन्त अथवा अन्य किसी के द्वारा बंदी जीवन से उद्धार पाते थे तो वे कैदी लोग मुक्ति दिलाने वालों के दास हो जाते थे। बसी लोगों का इस प्रकार इतिहास राजस्थान में पाया जाता है। राजपूतों में सदा से कृतज्ञता की भावना अधिक रही है और अपनी इस कृतज्ञता को सार्थक वनाने के लिए वे अपने उपकारी की दासता स्वीकार लेते थे। वसी लोगों का कुछ इसी प्रकार का इतिहास है। उनके इस इतिहास के सही होने के वहुत से प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं।विजोली के रहने वाले वहुत लोग परमार सामन्तों के बसी कहे जाते हैं। वारह वर्ष पहले परमार सामन्त के साथ वहुत से वसी लोग मेवाड़ में आये थे और राणा ने उनके साथ सम्मान पूर्ण व्यवहार करके अपने राज्य का एक वड़ा हिस्सा उन वसी लोगों को रहने के लिए दिया था।

गोला लोग जिस प्रकार अपने वायें हाथ में दासता का चिन्ह स्वरूप कडा पहनते हैं, उसी तरह वसी लोग भी अपनी दासता का परिचायक वालों का एक गुच्छा रखते हैं। राजस्थान में वसी लोग गुलामों की एक जाति में माने जाते हैं। परन्तु उनमें और गोला लोगों में अंतर समझा जाता है। वसी लोग गोला लोगों की तरह नीच नहीं माने जाते। वसना अर्थात् कहीं पर रहना अथवा बस्ती शव्द से वसी शव्द की उत्पत्ति हुई है। वसी शव्द का अर्थ वास्तव में उपनिवेशी होता है अर्थात् कुछ दिनों से निवास करने वाला। प्राचीनकाल में वहुत से सामन्त किसी कारणवश अपने पूर्वजों का स्थान छोड़कर दूसरे राज्य में चले जाते थे और वहीं पर रहने लगते थे। जहाँ पर वे रहने लगते थे उन स्थानों को लोग वसी नाम से मशहूर कर देते थे और फिर वही नाम सदा के लिए उनके विख्यात हो जाते थे।

रामपुरा राज्य में टोंक के समीप वसी नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। इस नाम की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई थी। सोलंकी राजा ने किसी आक्रमणकारी के अत्याचार से अपने पूर्वजों का राज्य गुजरात छोड़ दिया था और उसने टोंक के पास पहुँच कर जिस नगर की स्थापना की थी, उसे लोगों ने वसी नाम दिया था। सोलंकी राजा के चले आने पर गुजरात की वहुत सी प्रजा उसके पास पहुँची थी और उसके वसाये हुए वसी नगर में रहने लगी थी। परन्तु इस वसी नगर के निवासियों को अव तक लोग भ्रमवश वसी गुलाम मानते हैं। आश्चर्य की वात यह है कि बहुत समय के वाद लोगों के कहने के अनुसार उस नगर के निवासी अपने आप को वसी लोगों में मानने लगे और अव तक मानते हैं।[1]

---

1. युद्ध का कर ने दे सकने के अपराध में मराठा सैनिकों ने कुछ राजपूत युवकों को कैद कर लिया था। जो लोग पकड़े गये थे, उनमें पूरावत सरदार का छोटा भाई भी था। उन्हीं दिनों में उसकी माता वीमार हो गयी और उसकी मृत्यु का समय वहुत समीप आ गया। किसी प्रकार उसके वचने की आशा न रही। उस समय मृत्यु शैया पर पड़ी हुई माता ने अपने छोटे पुत्र को देखने की लालसा प्रकट की। ऐसे अवसर पर मराठा लोगों से मिलकर मैंने उन राजपूत युवकों को कैद से छुड़वा दिया। वंदी अवस्था से छूटकर पूरावत सरदार के छोटे भाई को अपनी माता के पास पहुँचा कर उसके अंतिम दर्शन करने चाहिए थे। परन्तु उसे जब मालूम हुआ कि मेरे द्वारा उसको मुक्ति मिली है तो वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे पास पहुँचा। मैं उससे वहुत प्रभावित हुआ और तुरंत उसको माता के पास भेज दिया।

राजपूतों के स्वभाव में बदला लेने की भावना– राजपूतों का जिस प्रकार सर्वनाश और पतन हुआ है, उसका कारण बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचार की अपेक्षा, उनका आपस का वैमनस्य अधिक है। इस जाति में बदला लेने की भावना बहुत प्रबल है और इस भावना ने ही मेवाड़ को श्मशान बना दिया है।

जीवन की साधारण बातों में राजपूतों का उन्मत्त हो जाना और भयानक संघर्ष पैदा कर देना उनके स्वभाव की मामूली बात है। राजस्थान के राज्यों का सम्पूर्ण इतिहास उन घटनाओं से भरा हुआ है, जिनसे हमारे इस विश्वास का समर्थन होता है। यद्यपि इस समय मेवाड़ की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। राजस्थान का परम रमणीक राज्य मेवाड़ अब फिर से सुख और शांति का जीवन व्यतीत करने लगा है। मेवाड़ राज्य के विध्वंस होने में कुछ बाकी न रह गया था। भयानक बाघ और जंगली सूअर राजधानी उदयपुर के भीतर रात दिन घूमा करते थे। राजप्रासाद के भीतर उसके रमणीक कमरों में गीदड़ बसेरा करते थे। प्रासाद के जिस विशाल प्रांगण में सामन्त लोग अपनी सेनाओं के साथ आकर शोभा की वृद्धि करते थे, वह रमणीक स्थान बड़ी-बड़ी घासों से भरा था और राणा स्वयं उस घास को पार करता हुआ अपनी राजधानी में प्रवेश करता था। वह समय मेवाड़ के जीवन से अब तिरोहित हो चुका है और सम्पूर्ण राज्य अब फिर से शांतिपूर्ण जीवन का अनुभव करने लगा है, यह प्रसन्नता की बात है।

बदला लेने की भावना राजपूतों में इतनी अधिक है कि उससे एक भी राजपूत को अलग समझना कठिन मालूम होता है। एक निर्बल राजपूत भी अपना बदला लेना चाहता है। वह सब कुछ कर सकता है। लेकिन बदला लिए बिना नहीं रह सकता है। राजपूत आत्म सम्मान को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। किसी भी दशा में यदि वे अपने अपमान का बदला न ले सके तो वे अपने आपको बहुत घृणित और पतित समझते हैं।

स्वाभिमान की यही भावना प्राचीन सैक्शन लोगों में मौजूद थी। परन्तु राजपूत उनसे सदा से बहुत आगे रहे हैं। सैक्सन लोगों में यह प्रथा पुरानी थी कि जब कोई एक को क्षति पहुँचाता था, अथवा अपमानित करता था तो उस अपराध के दंड में कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार उसे धन देना पड़ता था। उंगली, अंगूठा और इस प्रकार के शारीरिक छोटे-छोटे अंगों को क्षति पहुँचने से अपराधी को अर्थ–दंड देने की व्यवस्था थी। किसी अंग के कट जाने से अथवा आघात पहुँचने से अपराधी को क्या दंड देना पड़ेगा इसका सैक्सन लोगों में एक विधान था। परन्तु राजपूतों की व्यवस्था ऐसी नहीं है। वे रक्त के बदले रक्त चाहते हैं। इस प्रकार के अपराधी को अर्थ दंड दिये जाने पर राजपूतों को संतोष नहीं हो सकता।

जीवन की छोटी-मोटी बातों में स्वाभिमान के नाम पर उन्मत्त हो जाना अच्छा नहीं होता। राजपूतों में यह एक स्वाभाविक कमजोरी है, जो बहुत प्राचीन काल से उनमें चली आ रही है। इस कमजोरी के कारण राजपूतों ने दूसरों की अपेक्षा अपना विनाश अधिक किया है। उनके इस स्वभाव के कारण जीवन में जिस प्रकार की घटनायें पैदा होती हैं, यद्यपि उनसे प्रत्येक राजपूत की जिंदगी भरी हुई है, फिर भी संक्षेप में कुछ उदाहरण देकर हम यहाँ पर उनकी स्वाभाविक कमजोरी को समझने की चेष्टा करेंगे। उसके पहले हमारे सामने एक प्रश्न पैदा होता है कि राजपूतों में फैली हुई इस भीषण कलह को क्या रोका नहीं जा सकता?

जो लोग इस देश के और राजपूतों के शुभचिंतक हैं, वे राजपूतों की मनोवृत्तियों को बदलने का कार्य कर सकते हैं। एक अपराधी राजपूत, जिसके प्रति अपराध करता है, यदि वह अपने अपराध के लिए क्षमा माँग लेना सीख ले और जिसका अपमान करता है, यदि

वह अपने अपराध को क्षमा करना अपना धर्म और कर्त्तव्य समझ ले तो इस विशाल और श्रेष्ठ जाति में फैली हुई भयानक कलह का–जिसके द्वारा प्राचीन काल से लेकर अब तक इस देश का सर्वनाश होता चला आ रहा है–अंत हो सकता है। यह कार्य जितना ही महत्वपूर्ण है, उतना ही गंभीर और कठोर भी है।

शाहपुरा का राजा मेवाड़ के सामन्तों में अत्यंत शक्तिशाली था। वह राणा के वंश में उत्पन्न हुआ था। अमरगढ़ का भूमिया राणावत सामन्त राजा शाहपुरा का एक सरदार था। शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह की दो जागीरें थीं। एक जागीर उसको मेवाड़ के राणा से मिली थी और दूसरी उसने दिल्ली के वादशाह से पायी थी। उन दोनों जागीरों से उसको बीस हजार पौंड की वार्षिक आय थी। चुंगी आदि की जो आमदनी होती थी, वह इससे अलग थी। मेवाड़ की जागीर मांडलगढ़ जिले में थी और उसी जिले में भूमिया सामन्त दिलील भी रहता था। उसकी शक्तियाँ वहुत साधारण थीं, उसके अधिकार में केवल दस ग्राम थे। उसकी वार्षिक आय बारह सौ पौंड से अधिक न थी। राजा उम्मेदसिंह की जागीर की सीमा सामन्त दिलील के ग्रामों के पास तक पहुँच गयी थी। दोनों के बीच की भूमि प्रायः झगड़े का कारण बन जाती थी। शाहपुरा के राजा की जागीर के किसान अक्सर सामन्त के किसानों के साथ झगड़ा कर लेते थे और उस झगड़े का प्रभाव राजा उम्मेद सिंह और सामन्त दिलील पर पड़ता था।

राजा उम्मेदसिंह की शक्तियाँ विशाल थीं। परन्तु उनमें लोकप्रियता न थी। स्वभाव की कठोरता के कारण वह सर्वसाधारण में अप्रिय हो रहा था। सामन्त दिलील का जीवन दूसरी तरह का था। वह प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता था। उसके न्याय से सभी लोग प्रसन्न रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने कृषकों का सहायक था। इसीलिए उसकी प्रजा उसका आदर करती थी और आवश्यकता पड़ने पर सभी प्रकार से उसकी सहायता के लिए तैयार रहती थी।

सामन्त दिलील का एक अच्छा परिवार था। उसके भाई-भतीजे और पुत्र सभी प्रकार से योग्य थे। वे तलवार चलाना खूब जानते थे। परिवार के लोग सामन्त से प्रसन्न थे। दिलील का दुर्ग और महल एक शिखर पर बना हुआ था। उसके पश्चिमी भाग में ऊँची चोटी के महल के ऊपर कई तोपें लगी रहती थी। उसके दुर्ग और महल के आस-पास घना जंगल है। उसी जंगल से होकर प्रासाद में जाने के लिए रास्ता था। दुर्ग और महल की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि उन पर शत्रु का आक्रमण आसानी के साथ नहीं हो सकता। यदि ऐसा न होता तो प्रवल पराक्रमी शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह ने कभी भी सामन्त दिलील पर आक्रमण किया होता और अपनी शक्तियों के द्वारा उसने उसको मिटा दिया होता।

सामन्त दिलील अपनी सैनिक शक्तियों में वहुत निर्बल था। परंतु वह स्वाभिमानी था और राजा उम्मेदसिंह से वह किसी प्रकार डरता न था। दोनों सीमाओं के वीच की भूमि के कारण अनेक वार राणा और सामन्त के बीच झगडे पैदा हो चुके थे। उनमें सामन्त ने सदा बड़ी निर्भीकता से काम लिया था। राजा उम्मेदसिंह कठोर और अहंकारी होने के वाद भी सामन्त को कोई क्षति नहीं पहुँचा सका था। लेकिन सामन्त दिलील ने अक्सर राजा की जागीर में प्रवेश करके और आक्रमण करके लूट-मार की थी। अनेक अवसरों पर राजा के धनियों को कैद करके वह अमरगढ़ ले गया था और उन कैदियों को उसने कारागार में वंद कर दिया था।

सामन्त के इन व्यवहारों से राजा उम्मेदसिंह वहुत चिढ़ा हुआ था। उसके जिन आदमियों को कैद करके सामन्त कारागार में रखता था, कई वार उन लोगों को कारागार से

मुक्ति दिलाने के लिए राजा उम्मेदसिंह को रुपये देने पड़े थे। ये सब बातें ऐसी थीं जो बहुत दिनों से राजा और सामन्त के बीच में चल रही थी। राजा इनका बदला लेना चाहता था। लेकिन इसके लिए उसको कोई रास्ता न मिलता था।

राजा और सामन्त के बीच बढ़ते हुए द्वेष के कारण जागीर के किसानों को बहुत हानि पहुँची थी। झगड़ों के कारण जो भूमि दोनों सीमाओं के बीच में पड़ती थी, उसमें खेती न हो पाती थी। विरोधियों के द्वारा वह उजाड़ कर नष्ट कर दी जाती थी। इस प्रकार की लगातार हानि के कारण जागीर के बहुत से किसान अपने घरों और गाँवों को छोड़कर कर चले गये थे। राजा उम्मेदसिंह से आस-पास के दूसरे भूमिया सामन्त भी प्रसन्न न थे। इसका कारण राजा का अहंकार था।

शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह न केवल बाहरी आदमियों के लिए अप्रिय था, बल्कि वह अपने राज्य और परिवार के लिए भी बहुत कठोर था। एक बार उसने अपने लड़के की कमर में रस्सी बाँध कर उसको शाहपुरा के मंदिर की ऊपरी छत से लटका दिया था और उसकी माता को बुलाकर उस भयानक दृश्य को देखने के लिए विवश किया था।

राजा उम्मेदसिंह घोड़े पर बैठकर प्रायः इधर-उधर घूमा करता था और कभी-कभी कई-कई दिनों तक लौटकर वह अपने महल में नहीं आता था। एक दिन घूमता हुआ वह सामन्त दिलील के यहाँ अमरगढ़ में पहुँच गया। वहाँ पर सामन्त के साथ उसकी भेंट हो गयी। एक राजा को अपने यहाँ आया हुआ देखकर साधारण भूमिया सामन्त दिलील ने नम्रता के साथ उसको प्रणाम किया और अत्यंत सम्मान के साथ वह राजा को अपने महल में लिवा ले गया।

सामन्त ने राजा के सत्कार में कोई कमी न रखी। दोनों ने एक स्थान पर बैठकर अफीम का सेवन किया।[1] उसके बाद दोनों ने मिलकर एक साथ भोजन किया और अंत में आपस की शत्रुता को सदा के लिए मिटा देने की दोनों ने प्रतिज्ञायें कीं। इसके पश्चात् सामन्त ने बड़े सम्मान के साथ अपने यहाँ से राजा को विदा किया।

राजा और सामन्त में इस प्रकार जो मित्रता कायम हुई, वह सभी लोगों को मालूम हो गयी। मेवाड़ के राणा ने उसे सुनकर सुख का अनुभव किया। उन्हीं दिनों में मेवाड़ के सभी सामन्त किसी अवसर पर उदयपुर में एकत्रित हुए। राजा उम्मेदसिंह और सामन्त दिलील भी वहाँ पहुँचा। वहाँ से लौटने के समय उम्मेदसिंह ने दिलील को शाहपुरा में आने के लिए निमंत्रण दिया। सामन्त ने हर्ष के साथ उसको स्वीकार किया और निश्चित दिन वह शाहपुरा पहुँचने के लिए अपने बीस अश्वारोही सैनिकों के साथ रवाना हुआ।

सामन्त के शाहपुरा पहुँचने पर राजा उम्मेदसिंह ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और अपनी राजधानी में ले जाकर उसको रखा। दोनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया।[2] सामन्त को प्रसन्न करने के लिए राजा के दरबार मे बहुत सी बातें की गयी। नाच और गाना भी हुआ। पिछली शत्रुता को भुला देने के लिये दोनों मंदिर में गये और प्रतिज्ञायें कीं। मंदिर से लौटते समय, जब सामन्त सीढ़ियों से उतर रहा था, राजा उम्मेदसिंह की तलवार से सामन्त का सिर नीचे गिरा और सामन्त के गिरते ही मंदिर की सीढ़ियाँ रक्त से सराबोर हो उठीं।

---

1 अतिथि सत्कार के समय राजपूत लोग एक साथ बैठकर बड़े स्नेह के साथ अफीम का सेवन किया करत थे।

2 एक साथ बैठकर भोजन करना राजपूतों में स्नेह का परिचायक माना जाता है।

राजा उम्मेदसिंह ने अपने हृदय में छिपी हुई बहुत दिनों की शत्रुता का अंत किया। उसने सामन्त के जीवन को खत्म करके संतोष पाया। सामन्त के कटे हुए सिर को अपने पैर की ठोकर मारकर उसने अनेक प्रकार की कड़वी और गंदी बातें कही। यह समाचार सामन्त के पुत्र ने जब सुना तो वह अपने पिता का बदला लेने के लिये तैयार हो गया। यह समाचार राणा के पास उदयपुर पहुँचा। सामन्त दिलील के इस प्रकार मारे जाने की घटना सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ। राजा उम्मेदसिंह के साथ सामन्त के पुत्र का जो झगड़ा होने जा रहा था, उसको रोकने के लिए राणा ने शक्ति भर कोशिश की। वह मध्यस्थ बना। उम्मेदसिंह ने सामन्त को मारकर उसके आभूषणों के साथ जो कुछ था, लेकर अपने अधिकार में कर लिया था, राणा ने वह सब सामन्त के पुत्र को दिलवा दिया। दिलील का घोड़ा भी उसके पुत्र को दिलाया गया। भविष्य के झगड़े को रोकने के लिए राणा ने उम्मेदहिं के पाँच प्रसिद्ध ग्राम सामन्त के बेटे को उसके पिता के साथ होने वाले विश्वासघात के बदले में दिये। राणा ने इतना ही नहीं किया बल्कि जो जागीर मेवाड़ की तरफ से उम्मेदसिंह को दी गयी थी, उसके पाँच ग्राम जो सामन्त के पुत्र को दिये गये छोड़कर बाकी सम्पूर्ण जागीर पर राणा ने अपना अधिकार करवा लिया।

न्यायपूर्ण आचरण न करके राजपूत जिस प्रकार आपस में कलह पैदा करते थे और आज भी करते हैं, उनके उदाहरण प्राचीन काल से लेकर अब तक इतने अधिक हैं कि वे लिखे नहीं जा सकते। ऐसे अवसरों पर राजपूत लोग यदि क्षमा माँगना और क्षमा करना सीख लें तो उनकी कलह आसानी से खत्म हो सकती है। प्राचीन इतिहास को पढ़ने से मालूम होता है कि न केवल अन्य देशों के राजाओं में, बल्कि राजपूत राजाओं में भी कलह को मिटाने के लिए और शत्रुता के स्थान पर मित्रता कायम करने के लिए कई प्रकार की प्रथायें थीं। उन प्रथाओं में एक वैवाहिक प्रथा भी थी। अपराधी पक्ष का राजा निरपराधी पक्ष के राजा के साथ शत्रुता मिटाने के लिए अपनी लड़की अथवा बहन का विवाह कर देता था। इस सत्य के प्रमाण में सभी देशों के ऐतिहासिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। राजपूत भी यदि ऐसा करने लगें अथवा इस प्रकार के कोई भी दूसरे साधन काम में लायें तो उनका परिणाम अत्यंत कल्याणपूर्ण हो सकता है।

राजपूतों में आपसी कलह के अनेक कारण हैं। सीमा विवाद भी उनमें से एक है। सीमावर्ती अनेक झगड़ों ने सामन्तों और राजाओं को प्रायः युद्ध के लिए तैयार कर दिया है। जैसलमेर और बीकानेर राज्यों के सीमावर्ती झगड़े अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। लेकिन सीमा पार के झगड़ों का अब अंत हो चुका है और भविष्य में राजाओं और सामन्तों के बीच इनके कारण कोई उत्पात पैदा न होंगे, इसकी पूरी आशा की जाती है। इसी आधार पर इन दिनों राज्यों में शांति दिखायी देती है।

राजा और मंत्री – राजाओं और सामन्तों के कार्यों के सम्बंध में अनेक बातें लिखी जा चुकी हैं। राज्य में ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जिनमें सामन्तों को अपने परिवार के साथ राजधानी में आकर रहना पड़ता है। वहाँ पर उनके रहने का समय निर्धारित रहता है। राजधानी के कार्य से जब सामन्त वहाँ आते हैं तो परिवार के साथ-साथ उनकी सेना और नौकर-चाकर भी साथ में आते हैं और निश्चित दिनों तक वहीं रहते हैं।

मेवाड़ में जागीरदारी का यह नियम सभी सामन्तों के लिए ऐसा नहीं है। यहाँ के श्रेष्ठ सामन्त अधिक स्वतंत्रता का लाभ उठाते हैं। राजस्थान के अन्य राज्यों के सामन्त जिस प्रकार शृंखलाबद्ध और राजा की आज्ञा में तत्पर पाये जाते हैं, मेवाड़ के ऊँची श्रेणी के सामन्त उतने नहीं। अन्य राज्यों की भाँति धार्मिक उत्सवों में मेवाड़ के प्रधान सामन्त अपनी सेनायें लेकर राजधानी में नहीं आते।

राज्य के सामने युद्ध की तरह का जब कोई गंभीर प्रश्न उपस्थित होता है तो मेवाड़ के समस्त सामन्त राजधानी में आकर अपना-अपना परामर्श देते हैं। राणा उनके परामर्शों की अवहेलना नहीं कर सकता। कुछ ऐसे अवसर भी राणा के सामने आते हैं, जिनका निर्णय करने के लिये राणा अपने प्रधान सामन्तों से परामर्श करता है और उनके समर्थन के आधार पर वह किसी निर्णय पर पहुँचता है।

सामन्त शासन प्रणाली में राजा और सामन्तों का सम्बंध बहुत सम्मानपूर्ण और निकटवर्ती माना जाता है। सामन्त के प्रासाद के सामने आने का समाचार पाकर राणा सम्मानपूर्वक उसका अभिवादन स्वीकार करता है। इसके बाद सामन्त अपने अनुचरों के साथ राणा के दरबार में जाता है। वहाँ पर सामन्तों के बैठने के लिए बहुमूल्य गलीचों के साथ स्थान सजाये जाते हैं। भोजन के समय राणा भोजनशाला में सामन्त के साथ बैठकर भोजन करता है। राणा के दरबार में मर्यादा के अनुसार सामन्तों को स्थान मिलता है।

राजस्थान के सभी राज्यों में मंत्री पद उन्हीं सामन्तों को मिलता है, जो बुद्धिमान, वीर और साहसी होने के साथ-साथ राजा को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। राजा की प्रसन्नता ही मंत्री होने वाले सामन्त की योग्यता समझी जाती है। इन मंत्रियों को दीवानी के मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता। एक स्वतंत्र मंत्री दीवानी के कार्यों का निर्णय किया करता है। राजपूत मंत्री साधारण तौर पर युद्ध मंत्री माने जाते हैं। दीवानी विभाग के मंत्री पद पर राजपूत जाति का कोई भी मनुष्य साधारणतया नियुक्त नहीं किया जाता। कार्यों के अनुसार मंत्रियों को उपाधियाँ दी जाती हैं।

यहाँ के राज्यों में मंत्री पद पर पैतृक अधिकार चला करता है। यह प्रथा बहुत पुरानी है। कुछ अर्थों में यह प्रथा अच्छी कही जा सकती है। लेकिन आमतौर से इस प्रकार की प्रथाओं का परिणाम अच्छा नहीं हुआ करता। सबसे बड़ी हानि यह होती है कि इन पुरानी प्रथाओं के मंत्री पद के लिए श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं मिला करते।

कोटा और जैसलमेर के राज्यों में मंत्रियों के अधिकार अधिक हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध इतिहासकार मागंटेस्की ने अपने यहाँ मंत्रियों के सम्बंध में लिखा है – "यहाँ के मंत्री अपने राजाओं को महलों में बंदी बनाकर रखा करते थे और वे राजाओं को वर्ष में एक बार प्रजा के सामने आने का मौका देते थे। प्रजा को दर्शन देने के समय मंत्री लोग राजाओं को जितना सिखाते थे, वे प्रजा के सामने उतना ही बोलते थे।" मांगटेस्की के ये शब्द कोटा और जैसलमेर के मंत्रियों के कार्यों का चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

गोद लेने की प्रथा – पुत्र के अभाव में गोद लेने की प्रथा राजपूतों में बहुत पहले से चली आ रही है। यह प्रथा पैतृक अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए राजाओं में उत्पन्न हुई थी। इसके द्वारा उत्तराधिकारियों का कभी अभाव नहीं हो सकता। पुत्र के अभाव को पूरा करने के लिए यह एक सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था है। राजपूतों की तरह यह प्रथा पारसी और अन्य जातियों के लोगों में भी पायी जाती है। इस प्रथा के प्रभाव से, मेवाड़ के राजा और सामन्त के सामने उत्तराधिकारी का अभाव नहीं रहता। यह प्रथा उसके सम्मान और अधिकार को सुरक्षित बनाती है। यद्यपि इसके प्रायः भयानक दुष्परिणाम देखे जाते हैं। पुत्र न होने पर गोद लेने का कार्य प्रायः जीवन काल में ही होता है। सामन्त अपनी स्त्री के साथ पहले स्वयं गोद लिये जाने वाले लड़के का निर्णय करता है। उसके बाद वह अपना इरादा राजा के सामने रखता है, राजा अधिकतर उसे स्वीकार कर लेता है। जिस बालक को गोद लिया जाता है, वह वंश का सबसे अधिक समीपवर्ती होना चाहिये। यदि ऐसा न हुआ और निकटवर्ती अधिकारी विद्रोह करता है, तो उस समय राजा उसका

निर्णय करता है। विधान के अनुसार, निकटवर्ती वंशज को गोद लेने के लिए राजा अपना निर्णय देता है और उसके कारण जो झगड़ा पैदा होने वाला होता है, उसको वह रोकने की चेष्टा करता है।

यदि अकस्मात पुत्रहीन अवस्था में किसी सामन्त की मृत्यु हो जाती है तो प्रथा के अनुसार उसकी स्त्री को गोद लेने का अधिकार होता है। वह वंश के किसी निकटवर्ती बालक को गोद लेने का निर्णय कर लेती है और जब तक बालक नावालिग रहता है, उसकी माता उसके स्थान पर जागीर का प्रबंध करती है।

मेवाड़ के सोलह प्रधान सामन्तों में देवगढ़ का सामन्त भी एक था। पुत्रहीन अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी। मरने के पहले उसने अपनी स्त्री और अपने सरदार को परामर्श देते हुये कहा था कि यदि मैं मर जाऊँ तो नाहरसिंह को गोद लिया जाये।

नाहरसिंह संग्रामसिंह के स्वतंत्र सामन्त का लड़का था। उसके साथ देवगढ़ के सामन्त का सम्बंध ग्यारह पीढ़ी पहले का था। कुछ दूसरे लोग ऐसे भी थे, जिनके साथ देवगढ़ के सामन्त के सम्बंध सात और आठ पीढ़ी से अधिक दूरी के न थे। इसलिए ये लोग अधिक निकटवर्ती थे। परन्तु इनकी मर्यादा देवगढ़ के सामन्त की अपेक्षा बहुत साधारण थी और वे लोग या तो राणा की अश्वारोही सेना में थे अथवा राज्य के साधारण कर्मचारी थे। इन निकटवर्ती लोगों में दो परिवार ऐसे थे, जिनका कोई बालक देवगढ़ के सामन्त की स्त्री के द्वारा गोद लिया जा सकता था। परन्तु मर्यादा में कम होने के कारण उनके लिये देवगढ़ के सामन्त ने अपनी स्त्री और अपने-अपने सरदारों को परामर्श नहीं दिया था।

मेवाड़ के राजा के सामने जब देवगढ़ के लिये गोद लेने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसने अपने मंत्रियों के परामर्श से इन्हीं दो परिवारों के किसी एक लड़के को गोद लिए जाने का निर्णय दिया, जो कि अधिक समीपवर्ती थे। देवगढ़ के सामन्त ने मरने के पहले अपने जिन सरदारों को गोद लेने के सम्बंध में अपना परामर्श दिया था, उनसे सलाह लेकर सामन्त की स्त्री ने नाहरसिंह को गोद लेने का निर्णय कर लिया। इसके लिए राणा के दरबार की उपेक्षा करके सामन्त की स्त्री ने नाहरसिंह पर सामन्त की पगड़ी बाँध दी और उसको गोद लेने की उसने घोषणा कर दी।

राणा ने जब उस घोषणा को सुना तो वह अप्रसन्न हुआ। सम्वत् 1847 सन् 1791 ईसवी में जो विद्रोह मेवाड़ में पैदा हुआ था, देवगढ़ का स्वर्गीय सामन्त भी उस समय विद्रोहियों में एक था। परन्तु अंत में राणा ने उसको क्षमा कर दिया था। इस समय उस सामन्त की स्त्री और उसके सरदारों का विद्रोहात्मक व्यवहार देखकर राणा ने निर्वाचित सामन्त नाहरसिंह के विरोध का निर्णय किया। उसने देवगढ़ की जागीर पर अपना अधिकार करवा लिया और आदेश दिया कि देवगढ़ में जो खेती की गयी, वह सब कटवा ली जावे।

राणा का यह आदेश देवगढ़ के सरदारों ने सुना। वे समझदार और दूरदर्शी थे। गोद लेने की समस्या पर वे राणा के पास पहुँचे और बड़ी बुद्धिमानी के साथ उन सरदारों ने प्रार्थना करते हुए राणा से कहा– "हम लोगों ने अब तक गोद लेने के सम्बंध में कोई निर्णय नहीं किया। मृत्यु के पहले आपके योग्य सामन्त ने नाहरसिंह के सम्बंध में अपनी इच्छा जाहिर की थी और यह भी कहा था कि इसका अंतिम निर्णय हमारे राणा के द्वारा होगा। इसका निर्णय किसी दूसरे के अधिकार में नहीं है।

सरदारों के मुख से इस सम्मानपूर्ण बात को सुनकर राणा का क्रोध तिरोहित हो गया। सरदारों ने उसके मनोभावों को अनुकूल समझकर कहा – "स्वर्गीय सामन्त ने हम

सबको आपके पास आने और नाहरसिंह की योग्यता आपको बताने की आज्ञा दी थी। अभी तक हम लोग आपके पास पहुँच नहीं पाये थे। देवगढ़ के सम्बंध में किसी ने असत्य समाचार सुनाकर आपको भ्रम में डाल दिया है।"

सरदारों की इन बातों से राणा बहुत प्रभावित हुआ। इसी समय उन सरदारों ने नाहरसिंह की प्रशंसा में कुछ बातें राणा से कहीं –"अपने स्वर्गीय सामन्त की आज्ञानुसार हम आपसे इतनी ही प्रार्थना करना चाहते हैं कि मेवाड़ में राजपूतों की मर्यादा को सदा सम्मान दिया गया है। नाहरसिंह अभी से इतना योग्य मालूम होता है कि वह न केवल देवगढ़ जागीर के लोगों का नेतृत्व कर सकेगा, बल्कि वह आपका अत्यंत आज्ञाकारी सामन्त साबित होगा।"

राणा ने सरदारों की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। देवगढ़ के विरुद्ध उसने जो आदेश दिया था, उसे वापस ले लिया और नाहरसिंह को उसने गोद लिये जाने के सम्बंध में स्वीकार कर लिया।

यदि राजपूतों ने प्राचीन काल की तरह अपनी उन्नति की होती तो उनके राज्यों के सम्बंध में हमें कुछ भी कहने की आवश्यकता न थी। प्राचीन काल से लेकर अब तक उनके इतिहास का गंभीर अध्ययन करने के पश्चात् स्वीकार करना पड़ता है कि राजपूत कभी भी संगठित होकर नहीं रह सके। वे आपस में ऐसे अवसरों पर भी संगठित न हो सके, जब उनके सामने जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित हुआ है। राजपूत राज्यों ने कभी भं राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण नहीं किया और उनमें मराठों की तरह कभी केन्द्रीय शक्ति नही रही। प्रत्येक राजा अपने राज्य का स्वयं अधिकारी था और उसकी रक्षा के लिये वह अपनी सेना रखता था। उसकी कमजोरियों में कोई शक्ति सहायक हो सके, इस प्रकार की शक्तित का निर्माण राजपूतों ने कभी नहीं किया।

सामन्त शासन प्रणाली में प्रत्येक राज्य अपने पड़ौसी के लिए जितना घातक सिद्ध होता है, उतना किसी दूरवर्ती राज्य के लिए नहीं। इस प्रकार के शासन में कोई भी राज्य अपनी रक्षा नहीं कर पाता और किसी के आक्रमण के समय पर उसकी शक्तियाँ निर्बल साबित होती हैं।

उन साधनों की कमी नहीं है, जिनके द्वारा राजपूतों के चरित्र और स्वभाव का अध्ययन किया जा सकता है। बहुत कुछ उकसाये जाने के बाद भी इन राजपूतों में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। उनके गुणों में कृतज्ञता, राजभक्ति और सम्मानप्रियता प्रमुख थी और आज भी है। इन्हीं गुणों पर एक राजपूत के जीवन का निर्माण हुआ है। वह आज भी इन्हीं गुणों पर आसक्ति रखता है। लेकिन समय के परिवर्तन से उसके गुणों का महत्व अब बहुत घट गया है। जिन गुणों के द्वारा प्राचीन काल में राजपूतों ने ख्याति पायी थी, उन्हीं के कारण राजपूतों का सम्मान आज घटता जा रहा है।

यदि किसी राजपूत से पूछा जाये कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा अपराध क्या है? इस प्रश्न को सुनकर उत्तर देते हुए वह तुरन्त कहेगा : "उपकारी के प्रति कृतघ्न होना।" उसके इस उत्तर से साफ जाहिर है कि जो कृतघ्नता मनुष्य के जीवन की सबसे बुरी चीज है उससे इन राजपूतों को कितनी बड़ी घृणा है। वास्तव में राजपूत कृतज्ञता को जितना अधिक महत्व देते हैं, कृतघ्नता से उतनी ही वे घृणा करते हैं।

राजभक्ति, राजपूतों का प्रधान गुण है। वे अपने राजा के लिए जीते हैं और उसी के लिए मरते हैं। इन राजपूतों के जीवन में राष्ट्र प्रेम अथवा देश प्रेम के स्थान पर हम को राजभक्ति मिलती है। वे अपने राजा के साथ कभी विश्वासघात नहीं कर सकते। एक राजपूत

के साथ जब कभी कोई उपकार करता है तो वह राजपूत अपने जीवन भर उनके प्रति कृतज्ञ होकर रहता है। उसका विश्वास है कि उपकारी के प्रति कृतघ्नता करने से अथवा उसके उपकारों को भूल जाने से दूसरे जन्म में साठ हजार वर्ष तक नर्क में रहना पड़ता है। राजपूत लोग जिन धार्मिक पुस्तकों को पढ़ते हैं,उनमें इस प्रकार के वर्णन बहुत स्पष्ट और विस्तार से किए गये हैं।

राजपूतों के चरित्र की श्रेष्ठता का बहुत कुछ ज्ञान हमको उन प्रसिद्ध इतिहासकारों के ग्रंथों से होता है, जिन्होंने सम्राट अकबर, जहाँगीर और औरंगजेब के राज्यों का इतिहास लिखा है। उन इतिहासकारों ने साफ-साफ इस बात को स्वीकार किया है कि साम्राज्य के निर्माण में मुगलों की असीम सफलता का कारण राजपूतों के साथ उनकी मित्रता थी। राजपूतों के द्वारा मुगल बादशाहों को बहुत से युद्धों में विजय मिली थी। जिस आसाम को पराजित करने के लिए आजकल अंग्रेजी सेना युद्ध कर रही है, उसे किसी समय जयपुर के राजा मानसिंह ने पराजित किया था और अराकान तथा उड़ीसा को जीतकर वहाँ पर उसने अपनी विजय की पताका फहराई थी। कोटा का राजा रामसिंह मुगल बादशाह के लिए कई युद्धों में लड़ा था और सफलता प्राप्त की थी। उन युद्धों में उसके पाँच भाईयों के साथ, उसका प्यारा पौत्र ईश्वरीसिंह भी लड़ते हुए मारा गया था।

□

मेवाड़ का इतिहास

अध्याय-11

प्रारम्भ से राजा शिलादित्य तक का इतिहास

यहाँ से राजस्थान के राज्यों का इतिहास आरम्भ होता है और उनका श्री गणेश मेवाड़ से किया जायेगा। राणा यहाँ के राजाओं की पदवी है और उनका वंश सूर्य वंश की बड़ी शाखा है। छत्तीस राजवंशों में इस वंश का सबसे श्रेष्ठ स्थान है और उसकी पवित्रता एवम् निर्मलता में कभी किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो सकता।

सम्पूर्ण राजस्थान आठ भागों में विभाजित है और वे आठों भाग इस प्रकार हैं : पहला मेवाड़ अथवा उदयपुर, दूसरा मारवाड़ अथवा जोधपुर, तीसरा बीकानेर अथवा किशनगढ़, चौथा कोटा, पाँचवाँ बूँदी, (ये दोनों हड़ावती के नाम से भी प्रसिद्ध हैं) छट आमेर अथवा जयपुर, सातवाँ जैसलमेर और आठवाँ भारतवर्ष की मरुभूमि।

इन आठों में मेवाड़ और जैसलमेर अपनी प्राचीनता के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष की स्वाधीनता पर आक्रमण होते हुए लगभग आठ सौ वर्ष बीत चुके हैं परन्तु मेवाड़ का गौरव अब तक सुरक्षित है। समय के प्रभाव से उसके बहुत से स्थानों का विनाश हुआ है, परन्तु उसका विस्तार और आकार-प्रकार आज भी ज्यों का त्यों है। जिन प्राचीन पुस्तकों में मेवाड़-राज्य के ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं, उनमें जयविलास, राजरत्नाकर और राज विलास अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त खुमान रासो, मामदेव परिशिष्ट और कितने ही जैन तथा भट्ट ग्रंथों में मेवाड़ के विवरण पाये जाते हैं। इन ग्रंथों में बहुत से मतभेद भी हैं। फिर भी सावधानी के साथ अध्ययन करने से उनके ऐतिहासिक सत्य को खोज कर निकाला जा सकता है और हमने यही किया भी है।

भट्ट ग्रंथों में कनकसेन को मेवाड़ का प्रतिष्ठाता माना गया है। उन ग्रन्थों के अनुसार कनकसेन का मूल स्थान भारत के उत्तर में था और वहाँ से वह सम्वत् 201 और सन् 145 ईसवी में सौराष्ट्र में आ गया था। अयोध्या - जिसे आज अवध कहा जाता है– प्रसिद्ध राम की राजधानी थी। राम के दो बेटे थे लव और कुश। राणा का वंश अपने आपको लव का वंशज मानता है। कहा जाता है कि लव ने लोटकोट (लोह कोट) नामक नगर बसाया था; जिसे अब लाहौर कहा जाता है। इस लोटकोट में मेवाड़ राज्य के पूर्वज उस समय तक रहते रहे, जब तक कनकसेन उसे छोड़कर द्वारका नहीं चला आया। लोटकोट से चलकर वे किस रास्ते से सौराष्ट्र पहुँचे, इसका कोई विवरण नहीं मिलता। कनकसेन ने परमार राजा को पराजित करके उसके राज्य को अपने अधिकार में कर लिया था और उसके बार दूसरी शताब्दी सन् 144 ईसवी में उसने वीर नगर की स्थापना की थी। चार पीढ़ी के बाद

कनकसेन के वंश में राजा विजयसेन ने, जिसको आमेर के राजा जयसिंह ने नौशेरवाँ लिखा है, विजयपुर बसाया था। समय के प्रभाव से विजयपुर उजड़ गया और उस स्थान पर वर्तमान में धोलका नगरी बनी हुई है। भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि विजयसेन ने बल्लभीपुर और विदर्भ नामक दो अन्य नगर भी बसाये थे। इन दोनों में बल्लभीपुर ही अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन यह बल्लभीपुर कहाँ है, निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता। परन्तु अनुसंधान के बाद यह स्वीकार किया गया है कि वर्तमान भावनगर के पाँच कोस उत्तर पश्चिम की ओर बल्लभी नामक जो नगर बसा हुआ है यही प्राचीन बल्लभीपुर है।

अनेक लोगों के मतानुसार से ऊपर लिखे हुए बल्लभीपुर से मेवाड़ का राजवंश आरम्भ हुआ है। लेकिन इसके सम्बन्ध में लोगों का परस्पर मतभेद है। अभी कुछ दिन पहले की बात है कि राणा के राज्य के पूर्व की ओर एक गिरे हुए शिवालय में एक शिलालेख पाया गया है, उसमें मेवाड़ राजवंश का प्राचीन वर्णन संक्षेप में लिखा है। इसके सिवा, राणा राजसिंह के समय की बातों का आधार लेकर जो पुस्तक लिखी गयी है, उसमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि पश्चिम में सौराष्ट्र नाम का एक देश है। मलेच्छों ने इस देश पर चढ़ाई की थी और वहाँ के बालकनाथों को पराजित किया था, इस पराजय के समय बालक नाथराज की पुत्री के सिवा और कोई बाकी न रहा था। एक दूसरे ग्रंथ में लिखा है कि बल्लभीपुर के विध्वंस हो जाने के बाद वहाँ के निवासी भद्रदेश अर्थात् मारवाड़ में भाग कर चले गये और वहाँ उन लोगों ने बाली सान्डेराव व नोडोला नाम के तीन नगर बसाये। वे तीनों नगर अब तक मौजूद हैं। छठी शताब्दी के आरम्भ में जब म्लेच्छों ने बल्लभीपुर का विनाश किया था, उस समय वहाँ जैन धर्म का प्रचार था और आज उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भी वहाँ पर जैन धर्म का प्रचार बराबर पाया जाता है। इन तीन नगरों के सिवा गायनी[1] नामक नगर का भी उल्लेख पाया जाता है। यह भी पता चलता है कि बल्लभीपुर का राजा शिलादित्य अपने परिवार के साथ सौराष्ट्र से भाग कर गायनी नगर में पहुँचा था। भट्ट ग्रंथों में यह भी लिखा हुआ है कि म्लेच्छों ने राजा शिलादित्य के गायनी राज्य पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। उस लड़ाई में राजा शिलादित्य के बहुत से योद्धा मारे गए। उसका वंश समाप्त हो गया। केवल उसका नाम बाकी रह गया।

जिन मलेच्छों[2] ने गायनी में आक्रमण किया था, वे कौन थे इसको निश्चित रूप से बता सकना कठिन है। फिर भी जो ऐतिहासिक आधार मिलता है, उससे यह मानना पड़ता है कि जिनको यहाँ पर मलेच्छ लिखा गया है, वे सीथिक लोग थे और वे पारसियन राज्य से आये थे। उन्होंने तीसरी शताब्दी में सिंधु के किनारे अपना राज्य कायम किया और श्याम नगर को अपनी राजधानी बनाया, जहाँ पर प्राचीन यदु लोगों ने बहुत समय तक राज्य

---

1. गायनी अथवा गजनी वर्तमान काम्बे का प्राचीन नाम है। इस नगर के दक्षिण दिशा में तीन मील की दूरी पर इसके खंडहर अब तक मौजूद हैं। भट्ट ग्रंथों में इस प्रकार के और भी नगरों के खंडहर पाये जाते हैं। उनके सम्बन्ध में अध्ययन करने से जाहिर होता है कि बालक रायगण भारतवर्ष के दक्षिण में शासन करते थे। इन ग्रंथों में लिखा है कि देवगढ़ प्राचीन काल में बिलबिलपुर पट्टन के नाम से प्रसिद्ध था। इस बिलबिलपुर पट्टन में मेवाड़ राज्य के अधिकारियों के पूर्वज राज्य करते थे। इससे पता चलता है कि बिलबिलपुर पट्टन सौराष्ट्र देश में ही है।
2. इन मलेच्छों के सम्बन्ध में कई प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं, कई लेखकों ने इनके सम्बन्ध में अपनी-अपनी खोज के अनुसार उल्लेख किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार एलफिन्टन ने इन म्लेच्छों को पारसी बतलाया है। इसके लिये उसने जो प्रमाण दिये हैं, वे अधिक विश्वस्त मालूम होते हैं। इसलिये यह मान लेना ही सही मालूम होता है कि आक्रमणकारी म्लेच्छ पारसी लोग थे। परसियन ऐतिहासिक ग्रंथों में लिखा है कि सन् 600 ईसवी के प्रारम्भ में बादशाह नौशेरवाँ ने सिंध देश पर आक्रमण किया था, परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ, यह कुछ नहीं लिखा।

किया था। विद्वान एरियन ने इस श्याम नगर को मीनगढ़[1] और अरब के भूगोल विशारदों ने 'मनकर' नाम देकर लिखा है।

सिन्धु नदी के किनारे एक विशाल और विस्तृत देश में सीथिक लोग रहते थे। उनके कारण उस तरफ से भारत में आने वालों का रास्ता बहुत आसान हो गया था। इसलिए अनेक आक्रमणकारी जातियों ने उस तरफ से आकर इस देश पर हमला किया और इसका विनाश किया। जिट, हूण, कामारी, काठी, मकवाहन, बल्ल और अश्वारियाँ नाम की अनेक जातियों ने उस तरफ से भारत में प्रवेश किया और सूरत में पहुँचकर अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया था। ये संभी जातियाँ इस देश में उसी तरफ से आयी थीं और उनको सुभीता यह था कि भारत की वह दिशा इस समय बहुत अरक्षित अवस्था में थी। यही कारण था कि मध्य एशिया की सभी संगठित आक्रमणकारी जातियों ने इस देश की निर्वलता का लाभ उठाया। प्रसिद्ध यात्री परिब्राजक कासमास चीन के राजा जस्टीनियम के शासन काल में भारत में मौजूद था और वल्लभी राज्य का कल्यान नगर देखने गया था। उसने अपनी यात्रा सम्बन्धी पुस्तक में लिखा है कि जिस समय वल्लभीपुर नष्ट हुआ उस समय बहुत-से हूण सिन्धु नदी के किनारे आबाद हो गये थे। उस समय उनके सरदार का नाम गोलास था। लेकिन इतिहासकार एरियन ने इसके सम्बन्ध में एक दूसरी बात का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि सिन्धु और नर्मदा के बीच के विस्तृत देश में अगणित संख्या में सीथिक लोग रहते थे। मीनगढ़ उनकी राजधानी थी। यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों में क्या सही है। सम्भव है कि चीनी परिब्राजक कासमस ने सीथिकों को ही हूण लिखा हो और यह भी हो सकता है कि पहले वहाँ पर सीथिक लोग रहते रहे हों। उसके बाद हूणों ने आक्रमण करके उनको वहाँ से भगा दिया हो और अपना आधिपत्य कायम कर लिया हो। कुछ भी हो, यह तो निश्चित ही है कि इन्हीं दोनों जातियों में किसी एक ने बल्लभीपुर राज्य का विनाश किया था।

सूर्यवंशी राजा कनकसेन से आठवीं पीढ़ी में शिलादित्य नाम का एक राजा हुआ और उसी के शासन काल में म्लेच्छों ने बल्लभीपुर में आक्रमण करके उसको नष्ट किया। आक्रमणकारियों की संख्या बहुत अधिक थी। राजा शिलादित्य अपनी सेना के साथ उनसे लड़ा और शक्ति भर उनके साथ युद्ध किया। परन्तु अन्त में उसकी पराजय हुई और अपनी सेना के साथ वह मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही उसका सभी प्रकार सर्वनाश हुआ। उसके बाद उसके वंश में कोई न रह गया।

☐

1. मीनगढ़ के सम्बन्ध में विदेशी लेखकों ने अनेक बातें लिखी हैं। डेनविल से लेकर सर हेनरी पोटिंजर तक कई विद्वानों ने इ (के सम्बन्ध में अनुसंधान किया था। उसमें कुछ को सफलता भी मिली थी। लेकिन उसके सम्बन्ध में कोई एक निर्णय नहीं हो सका। टाड साहब ने इसके सम्बन्ध में बड़े परिश्रम के साथ खोज की और कई विद्वानों के आधार पर इस बात को स्वीकार किया कि मीनगढ़ सिन्धु नदी के किनारे सिवाने पर है।

अध्याय—12
बालक गोह से बप्पा रावल तक का इतिहास

म्लेच्छों के आक्रमण में वल्लभीपुर का विनाश हुआ और उसका राजा सेना के साथ मारा गया। उसकी बहुत-सी रानियाँ थीं। रानी पुष्पावती के सिवा सभी रानियाँ राजा शिलादित्य के साथ सती हुईं। विन्ध्य पर्वत के नीचे की भूमि में चन्द्रावती नाम का एक राज्य है, उसमें परमार वंश में वह उत्पन्न हुई थी और राजा शिलादित्य के साथ उसका विवाह हुआ था। राजा के मारे जाने के कुछ समय पहले से ही रानी गर्भवती थी और म्लेच्छों के आक्रमण के पहले वह अपने पिता के यहाँ चली गई थी।

जिस दिन राजा शिलादित्य का अन्त हुआ, रानी पुष्पावती अपने पिता के यहाँ किसी देवी के मन्दिर में पूजा करने गयी थी। जब वह पूजा करके लौटी तो रास्ते में उसने वल्लभीपुर के विनाश और राजा के मारे जाने का समाचार सुना, रानी को असह्य आघात पहुँचा। उसके साथ में अनेक सहेलियाँ थीं। उस समय उन्होंने उसकी सहायता की। रानी गर्भवती होने के कारण उस समय सती होने का निर्णय न कर सकी और तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिये मलिया नाम की एक गुफा में चली गयी। उसी गुफा में उसके पुत्र उत्पन्न हुआ।

मलिया शैलमाला के पास वीर नगर नाम की एक बस्ती थी। उसमें कमलावती नामक एक ब्राह्मणी रहती थी। रानी ने उस ब्राह्मणी को बुलाकर अपना पुत्र सौंपा और चिता बनाकर उसमें वह जलकर खाक हो गयी। चिता पर बैठने के पहले उसने जब कमलावती ब्राह्मणी को अपना पुत्र सौंपा तो उससे उसने कहा। कमला, यह पुत्र तुम्हारा है और तुम इसकी माता हो। अपना पुत्र समझकर तुम इसका पालन-पोषण करना और ब्राह्मणाचित शिक्षा देकर इसके बड़े होने पर किसी राजपूत कन्या के साथ इसका विवाह कर देना।

कमलावती स्त्री थी। पुत्र को प्यार करना वह जानती थी। रानी के सती हो जाने के बाद कमला ने बालक का पालन अपना पुत्र समझकर किया। बालक गुफा में पैदा हुआ था और गुफा को वहाँ के लोग गुहा कहते थे। इसलिये कमला ने उस पुत्र का नाम गोह रखा। गोह अपने जीवन के आरम्भ से ही चंचल और ढीठ स्वभाव का था। बड़े होने पर उसकी ये आदतें बढ़ने लगीं। उसका मन खेल-कूद में अधिक लगता और कमला के रोकने की वह कुछ परवाह न करता। उसे जो बातें सिखायी जाती थीं, उनको भी वह सुनता न था। उसे जो शिक्षा दी जाती, उसकी तरफ उसका ध्यान न जाता। आरम्भ से ही चिड़ियों को पकड़ना और उनको मार डालना उसके लिए साधारण बात थी। कुछ दिनों के बाद घने

जंगलों में जाकर वह शिकार खेलता और वड़ी स्वतन्त्रता से काम लेता। ऐसे मौकों पर कमला की एक न चलती। उसकी ये आदतें स्वतन्त्र रूप से उसमें वढ़ने लगीं।

मेवाड़ के दक्षिण में शैलमाला के भीतर ईडर नाम का एक भीलों का राज्य है। मण्डलीक नामक एक भील उस समय वहाँ का राजा था। गोह उस राज्य के भीलों के साथ वहाँ के जंगलों में घूमा करता और वहाँ के जानवरों का पीछा किया करता। वहाँ पर जो ब्राह्मण रहते थे, उनके साथ न तो वह रहता और न उनकी वातों को पसंद करता। वहाँ के भील गोह का वहुत आदर करते और उसे वहुत सम्मान देते। अवुलफजल और भट्ट ने वहाँ के एक वर्णन को इस प्रकार लिखा है:

एक दिन भीलों के लड़के गोह के साथ खेल रहे थे। सभी लड़कों ने मिल कर गोह को अपना राजा वनाया और एक भील वालक ने अपनी उंगली काटकर अपने खून से गोह के माथे पर राजतिलक किया। किस घटना का भविष्य में क्या परिणाम होता है, इसको पहले से कोई नहीं जानता। ईडर राज्य के मण्डलीक राजा ने यह घटना सुनी कि यहाँ के भील लड़कों ने गोह को अपना राजा वनाया है तो वह वहुत प्रसन्न हुआ और एक दिन उसने अपना राज्य गोह को सौंप कर राज्य से छुट्टी ले ली। राजा मण्डलीक के कई पुत्र थे। परन्तु उसने अपना राज्य अपने पुत्रों को न दिया था और गोह को सौंप दिया था। परन्तु गोह ने इसके वदले में राजा मण्डलीक को एक दिन मार डाला। उसने ऐसा क्यों किया, इसके सम्वन्ध में कहीं पर कोई उल्लेख नहीं मिलता। आगे चलकर गोह का वंश उसी के नाम से चला और उसके वंशधर गुहिलोत अथवा गोहलोत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस समय के वाद का कोई विशेप उल्लेख ग्रन्थों में नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है, उसके आधार पर इतना ही जाहिर होता है कि गोह के वाद आठवीं पीढ़ी तक ईडर राज्य में गोह लोगों का राज्य रहा और वहाँ के भील राजपूतों के सभी प्रकार काम आते रहे। गोह की आठवीं पीढ़ी में नागादित्य नाम का एक राजा हुआ। उसके व्यवहारों से वहुत से भील अप्रसन्न थे। इसलिए एक दिन जव नागादित्य जंगल में शिकार खेलने गया था तव भीलों ने उसे घेर लिया और उसे मारकर ईडर राज्य में भीलों का राज्य कायम किया।

वहाँ पर जो लोग रहते थे, सभी भील थे और उनका आतंक वहाँ पर पहले से फैला हुआ था। नागादित्य के मारे जाने के वाद वह आतंक और भी वढ़ गया। भीलों का मुकावला करने में राजपूत घवरा उठे थे। उनके सामने भविष्य के लिए कोई आशा न रह गयी थी। नागादित्य के वप्पा नाम का एक तीन वर्ष का वालक था। उस वालक की रक्षा का कोई उपाय दिखाई न देता था। इसलिए कि भीलों का आंतक लगातार वढ़ता जाता था। लेकिन उसकी रक्षा का उपाय निकला। वीरनगर की जिस कमलावती ब्राह्मणी ने शिशु गोह के जीवन की रक्षा की थी, उसी के वंशजों ने शिलादित्य के राजवंश की रक्षा करने का काम किया। उन लोगों ने राजकुमार वप्पा की रक्षा करने का निश्चय किया। उन दिनों भीलों के आतंक भयानक हो रहे थे और वप्पा के मारे जाने की आशंकाएं लोगों की समझ में आती थीं। इसलिए वहाँ के ब्राह्मण वप्पा को लेकर भाँडेर नाम के किले पर चले गये। उस किले में एक भील ने उन ब्राह्मणों की सहायता की, परन्तु वह स्थान भी अधिक सुरक्षित न था। इसलिए वप्पा को लेकर जो ब्राह्मणी गये थे, वे उस किले से पराशर नाम के एक स्थान में चले गये। यह स्थान सभी प्रकार के वृक्षों से भरा हुआ था। वहीं पर त्रिकुट पर्वत है और उसके नीचे नागेन्द्र नाम का, जिसे साधारण तौर पर नागदा कहते हैं और जो उदयपुर से दस मील उत्तर की तरफ है, एक स्थान है। वहाँ पर शिवजी की उपासना करने वाले वहुत से ब्राह्मण रहा करते थे। उन्हीं ब्राह्मणों को वप्पा सौंपा गया और उस समय से वप्पा वहाँ के स्वतन्त्र वातावरण में रहने लगा।

बप्पा के बचपन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ सुनने और जानने को मिलती हैं, जैसी कि आम तौर पर अन्य प्रसिद्ध पुरुषों के सम्बन्ध में कही जाती हैं। जिन ब्राह्मणों के संरक्षण में बप्पा दिया गया था, वह उन ब्राह्मणों के पशुओं को चराया करता और प्रसन्न रहता। भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि राजपूतों में शरद ऋतु के दिनों में झूलों का उत्सव बड़े उत्साह और आनन्द के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव में सभी लड़के और लड़कियाँ शामिल होते हैं। उन दिनों में नागेन्द्र नगर में सोलंकी राजपूतों का राज्य था। उस वर्ष के झूला उत्सव में भाग लेने के लिए राजा की लड़की अपनी अनेक सखियों और सहेलियों के साथ गयी। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि झूला डालने की रस्सी नहीं है। इसलिए अपनी सखियों के साथ राजकुमारी इधर-उधर देखने लगी। उसी समय बप्पा वहाँ पर घूमता हुआ पहुँच गया। राजकुमारी ने बप्पा से झूले के लिए रस्सी ला देने की बात कही। बप्पा ने उत्तर देते हुए कहा– "यदि तुम मुझसे विवाह कर लो तो मैं रस्सी ला दूंगा।" उपस्थित लड़कियाँ झूलने के लिए उत्सुक हो रही थीं। राजकुमारी ने अपनी सखियों की तरफ देखा और सभी ने हँसकर बप्पा की बात को स्वीकार कर लिया। उसी समय वहाँ पर विवाह की रचना होने लगी। राजकुमारी का दुपट्टे से बप्पा के पहने हुए कपड़ों की गाँठ बाँध दी गयी और सभी सखियाँ एक दूसरे के हाथ पकड़ कर घेरा बना कर खड़ी हो गयीं। जहाँ पर वे खड़ी थीं, बीच में एक आम का वृक्ष था। घेरा बनाये हुए लड़कियाँ उस वृक्ष के आस पास घूमने लगीं और राजकुमारी के साथ बप्पा का विवाह हो गया। उसके बाद झूला उत्सव आरम्भ हुआ और उत्सव के बाद सखियों के साथ राजकुमारी अपने महल में चली गयी। सभी लड़कियाँ बाद में विवाह की इस घटना को भूल गयीं।

राजकुमारी विवाह के योग्य हो चुकी थी। इसलिए उसके पिता ने उसके विवाह की तैयारी शुरू कर दी। इसी अवसर पर एक दिन राजा को एक ज्योतिषी ने राजकुमारी का हाथ देखकर बताया कि राजकुमारी का विवाह तो हो चुका है। इस बात को सुनते ही सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन कुछ देर के लिए सभी लोग चुप हो गये। विवाह के इस रहस्य को जानने के लिए राजा ने अपने मंत्रियों से कहा और इस रहस्य को पता लगाने के लिये राज्य के गुप्तचरों को आदेश दिया गया।

यह सम्वाद बप्पा ने भी सुना। भविष्य में आने वाले संकट का अनुमान लगाकर उसने अपने साथियों से बातें कीं। उसके सभी साथी उससे बहुत प्रेम करते थे। इसलिए उनके द्वारा किसी आशंका की सम्भावना न थी। फिर भी बप्पा ने उनसे एक प्रतिज्ञा कराने के लिए एक छोटा-सा गड्ढा खोदा और पत्थर का एक टुकड़ा लेकर उसने अपने साथियों से कहा– "तुम सभी लोग यह शपथ लो कि सुख-दुःख में तुम लोग हमारे साथ रहोगे और प्राण जाने की घड़ी आ जाने पर भी तुम लोग मेरी किसी बात को किसी से भी प्रकट नहीं करोगे। लेकिन अन्य लोगों की जो बातें मालूम होंगी वे तुम सभी मुझसे कहोगे। शपथ लेने के बाद भी यदि तुम लोग मेरे साथ विश्वासघात करोगे तो तुम सभी के पूर्वजों के पुण्य प्रताप इस पत्थर की तरह धोबी के गड्ढे में मिल कर नष्ट हो जायेंगे।[1]

इतना कह कर बप्पा ने हाथ में लिये पत्थर के टुकड़े को उस गड्ढे में डाल दिया। उसके बाद बप्पा के सभी साथियों ने उसके कहने के अनुसार शपथ ली और कभी अपनी शपथ के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। लेकिन बप्पा के साथ सोलंकी राजकुमारी के विवाह की बात उसके पिता से छिपी न रही और यह जाहिर हो गया कि राजकुमारी के विवाह की घटना जिसके साथ हुई है, वह बप्पा ही है।

---

1. राजपूत लोग धोबी के गड्ढे को बहुत अपवित्र मानते हैं और इस प्रकार के गड्ढे नदियों के किनारे खोदें जाते हैं।

इस बात को बप्पा ने भी अपने साथियों के द्वारा सुना। उसको आने वाली विपत्ति की आशंका होने लगी। इसलिए वह पर्वत के एक गुप्त स्थान में जाकर रहने लगा। यह स्थान बिल्कुल निर्जन था। इस स्थान पर पहले बप्पा के वंशधर कई बार आकर शरण ले चुके थे। बप्पा के साथ बलीय और देव नाम के दो भीलों के लड़के भी थे। बलीय उन्द्रीका और देव अगुन पानोर नामक स्थान का रहने वाला था। इन दोनों लड़कों ने बप्पा का साथ नहीं छोड़ा और दोनों ने बप्पा का किसी भी संकट में साथ देने का निश्चय कर लिया था। इसलिये वे दोनों उसके साथ बराबर बने रहे।

बप्पा ने अपनी माँ से सुना था कि मैं चित्तौड़ के मोरी राजा का भान्जा हूँ। इस आधार पर उसने चित्तौड़ जाने का विचार किया। इस समय उसके बहुत से साथी हो गये थे। उनको लेकर वह चित्तौड़ पहुँचा। उन दिनों वहाँ पर मौर्य वंश का मानसिंह नामक राजा राज्य करता था। उसने बप्पा को भान्जे के रूप में पाकर बहुत आदर किया। उसने उसको अपने राज्य का एक सामन्त बनाया और उसके लिए एक अच्छी जागीर का प्रबन्ध कर दिया। मौर्यवंश परमार वंश की शाखा है। मौर्य वंशी पहले मालव के राजा थे और इन दिनों में यह वंश चित्तौड़ के सिंहासन पर आसीन था।

उन दिनों राजस्थान में सामन्त प्रथा चल रही थी। इस प्रथा के अनुसार युद्ध प्रिय लड़ाकू सरदारों को राज्य की ओर से एक जागीर दी जाती थी और इसके बदले में वे सरदार आवश्यकता पड़ने पर अपने राजा की ओर से शत्रु से युद्ध करते थे। राजा मानसिंह के बहुत-से सरदार थे और वे राजा के साथ बड़ी श्रद्धा के साथ व्यवहार रखते थे। लेकिन बप्पा के पहुँचने पर सामन्तों के उस व्यवहार में अन्तर पड़ना आरम्भ हुआ। इसका कारण यह था कि राजा मानसिंह बप्पा का बहुत आदर करने लगा था और उसके सामन्त इसे पसन्द नहीं करते थे।

इन्हीं दिनों की बात है। किसी विदेशी ने अपनी सेना से साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजा मानसिंह ने उस शत्रु से लड़ने के लिये अपने सामन्तों को आदेश भेजा। सामन्त इसके लिये तैयार नहीं हुए। उनके हृदयों में पहले से ही अन्तर पड़ गया था। वे लोग बप्पा से ईर्ष्या रखते थे।आने वाले शत्रु से सामन्तों के युद्ध नहीं करने पर बप्पा स्वयं युद्ध के लिये तैयार हुआ और चित्तौड़ की सेना लेकर वह शत्रु से लड़ने के लिये चला गया। उस समय ईर्ष्या रखने वाले सामन्त भी शत्रु से लड़ने के लिये गये। दोनों ओर से खूब युद्ध हुआ और शत्रु की पराजय हुई। इस युद्ध में बप्पा ने अपने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, उसको देखकर राजा मानसिंह के सामन्त आश्चर्य में पड़ गये।शत्रु को पराजित करके बप्पा लौटकर चित्तौड़ नहीं गया बल्कि चित्तौड़ की सेना और सामन्तों के साथ वह अपने पूर्वजों की राजधानी गजनी नगर में पहुँचा। उस समय गजनी में सलीम नाम का राजा राज्य करता था। बप्पा ने उस पर आक्रमण किया और गजनी का राज्य अपने अधिकार में लेकर म्लेच्छ राजा सलीम की लड़की के साथ विवाह किया। इसके बाद गजनी के राज्य को अपने एक सरदार को सौंपकर वह अपनी सेना के साथ चित्तौड़ आया।

राजा मानसिंह के सामन्त बप्पा के कारण असन्तुष्ट थे और उनकी समझ में बप्पा अत्यन्त पराक्रमी था। इसलिये उन लोगों ने बप्पा के साथ अपना मेल-जोल बढ़ाया और बप्पा ने भी परिस्थितियों का लाभ उठाकर राजा मानसिंह को सिंहासन से उतार दिया और चित्तौड़ राज्य का वह शासक बन गया। चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठने के बाद बप्पा ने 'हिन्दू-सूर्य', 'राजगुरु' और 'चक्कवै' नाम की तीन उपाधियाँ धारण कीं।

महाराज बप्पा ने बहुत-से विवाह किये थे। उनसे जो लड़के पैदा हुए थे, उनमें से कुछ सौराष्ट्र चले गये थे और उसके पाँच बेटे मारवाड़ चले गये थे। अपनी पचास वर्ष की आयु में महाराज बप्पा खुरासान राज्य में चले गये और वहाँ के राज्यों को जीत कर उन्होंने बहुत सी म्लेच्छ स्त्रियों के साथ विवाह किया, उन स्त्रियों से भी बप्पा के अनेक पुत्र एवं कन्यायें पैदा हुई।[1]

एक सौ वर्ष तक जीवित रहने के बाद बप्पा की मृत्यु हुई। देलवाड़ा नरेश के एक प्राचीन ग्रन्थ से पता चलता है कि महाराज बप्पा ने इस्फनहान, कन्धार, काश्मीर, ईराक, ईरान, तूरान और काफरिस्तान आदि अनेक पश्चिम के देशों को जीत कर उन राजाओं की बेटियों से विवाह किया था और अन्त में साधु जीवन व्यतीत किया। सब मिलाकर बप्पा के एक सौ तीस संतानें पैदा हुई थीं और उससे पैदा हुए बेटे नौशैरा पठानों के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुए। उनके पुत्रों ने अलग-अलग वंशों की स्थापना की। हिन्दू स्त्रियों से अट्ठानवे पुत्र पैदा हुए थे, जो अग्नि के उपासक और सूर्यवंशी नाम से विख्यात हुए। भट्ट ग्रन्थों में लिखा है कि बप्पा के मरने पर मुसलमान उसके मृतक शरीर को जमीन में गाड़ना चाहते थे और हिन्दू दाह क्रिया करना चाहते थे। इस बात को लेकर हिन्दू और मुसलमानों में बहुत विवाद बढ़ा। अन्त में बप्पा के मृत शरीर पर ढका हुआ कपड़ा हटा कर देखा गया तो शव पर सफेद रंग के हुए कमल थे। उन फूलों को लेकर मान सरोवर पर लगाया गया। फारस के नौशेरवाँ बादशाह के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बातें कही जाती हैं।

मेवाड़ के राजवंश के मूल प्रतिष्ठाता बप्पा रावल का यहाँ पर संक्षेप में जीवन चरित्र लिखा गया है। अब उसके जन्म के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। पहले लिखा जा चुका है कि राजा शिलादित्य के शासनकाल में सम्वत् 205 में बल्लभीपुर का विनाश हुआ था और उसकी नवीं पीढ़ी में बप्पा रावल का जन्म हुआ। लेकिन राणा के महलों में जो ग्रन्थ पाये जाते हैं, उनसे जाहिर होता है कि सम्वत् 191 में और सन् 135 ईसवी में बप्पा रावल ने जन्म लिया था। एक शिलालेख से मालूम होता है कि सम्वत् 770 और 714 ईसवीं में चितौड़ का राजा मानसिंह मौर्य वंशी था और बप्पा रावल उस वंश का भान्जा था। राजा मानसिंह ने बप्पा रावल को पन्द्रह वर्ष की अवस्था में अपने राज्य का सामन्त बनाया था। उसके बाद चित्तौड़ राज्य के सामन्तों की सहायता से बप्पा ने वहाँ का राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इस मतभेद में सही बात का निर्णय करना बहुत कठिन मालूम होता है लेकिन इसका निर्णय करने में सौराष्ट्र के सोमनाथ मन्दिर में मिले हुए एक शिलालेख से सहायता मिलती है। उसमें बल्लभीपुर नाम के एक सम्वत् का उल्लेख है जो विक्रम सम्वत् के 375 वर्ष बाद आरम्भ होता है। ऊपर सम्वत् 205 बल्लभीपुर के विनाश का सम्वत् लिखा गया है। यह 205 बल्लभीपुर सम्वत् जो विक्रम सम्वत् के बाद आरम्भ होता है, सम्वत् 375 में सम्वत् 205 जोड़ देने से 580 विक्रम सम्वत् आता है। इसी सम्वत् और सन् 524 ईसवी में म्लेच्छों ने बल्लभीपुर का विध्वंस किया था।

मौर्य-राजाओं के समय के शिलालेख से जाहिर होता है कि बप्पा का जन्म सम्वत् 770 में हुआ। अगर इस 770 में से 580 घटा दिये जायें तो 190 बाकी रहते हैं। इस 190 में 1 वर्ष जोड़ देने से भट्ट कवियों का उल्लेख सही हो जाता है, जिसमें बताया गया है कि सम्वत् 191 में बप्पा का जन्म हुआ था। यहाँ पर समस्त मतभेद नष्ट हो जाते हैं और एक वर्ष के अन्तर को भुलाकर, इस बात को सही मान लेना पड़ता है। इस हिसाब से

1. इस सत्य को सभी लोग स्वीकार नहीं करते। कुछ ऐसे भी उल्लेख मिलते है जिनसे पता चलता है कि सम्वत् 810 में बप्पा ने सन्यास ले लिया था, यह बात मेवाड़ के इतिहास में भी लिखी जाती है।

चित्तौड़ का राज्याधिकार प्राप्त करने के समय बप्पा की अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी। इससे यह भी जाहिर है कि बप्पा ने सन् 728 ईसवी में चित्तौड़ का राज्य प्राप्त किया था। इसी समय से गुहिलोत का उत्थान आरम्भ होता है। इस समय से 1100 वर्ष के भीतर 59 राजा मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठे।

विद्वान ह्यूम ने लिखा है, "कवि जब किसी ऐतिहासिक कथानक का काव्य में वर्णन करते हैं तो इतिहास के सही अंशों को तोड़-मरोड़कर कुछ का कुछ कर देते हैं और ऐतिहासिक सत्य के प्रतिपादन में कल्पनाओं से भरी हुई अपनी पूर्ण स्वतंत्रता से काम लेते हैं।" ह्यूम का कवियों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहना यहाँ पर पूरे तौर पर प्रकाश डालता है। राजस्थान का प्राचीन इतिहास बहुत-कुछ वहाँ के भट्ट कवियों के काव्य ग्रन्थों पर निर्भर है।

बप्पा के जीवन काल में ही आक्रमणकारी मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया था और वे लोग सिन्धु नदी को पार करके इस देश में आये थे। हिजरी सम्वत् 95 में खलीफा वलीद का सेनापति मोहम्मद विन कासिम सिन्ध देश को पराजित करके गंगा के तट तक आया था, जैसा कि अरब वालों की तवारीखों में लिखा हुआ है। एलमेकिन के ग्रंथ में भी इस बात का वर्णन है कि मुसलमानों ने सिन्ध देश पर आक्रमण किया था और इस आक्रमण से इस देश के राजा भयभीत हो गये थे। अजमेर के राजा माणिकराय के राज्य का आठवीं शताब्दी के मध्य में आक्रमणकारियों के द्वारा विध्वंस किया गया था। शत्रु लोग नावों पर सवार होकर आये थे और अञ्चर नामक स्थान पर उतरे थे। सिन्ध के राजा दाहिर का इतिहास पढ़ने से इस बात का सन्देह नहीं रह जाता कि अजमेर पर आक्रमण करने वाला कासिम था।[1] अबुल फजल ने लिखा है कि हिजरी सम्वत् 95 में और सन् 713 ईसवी में कासिम ने राजा दाहिर को मारा और उसके राज्य को नष्ट किया। राजा दाहिर का वेटा अपने राज्य से भागकर चित्तौड़ के मौर्य राजा के पास चला गया था। बप्पा से लेकर शक्तिकुमार तक, दो शताब्दियों के भीतर चित्तौड़ के सिंहासन पर नौ राजा बैठे। इनमें चार महान् प्रतापी हुए, जो इस प्रकार हैं– पहला कनकसेन सन् 144 ईसवी में, दूसरा शिलादित्य सन् 524 ईसवी में, तीसरा बप्पा सन् 728 ईसवी में और चौथा शक्तिकुमार सन् 1068 ईस्वी में।

☐

1 मोहम्मद विन कासिम भारत में आकर चितौड़ की तरफ वढ़ा था उसके वहाँ पहुँचने पर बप्पा ने उसके साथ

अध्याय—13
राणा खुमान का शासन

यह लिखा जा चुका है कि बप्पा सम्वत् 784, सन् 728 में चित्तौड़ के राज सिंहासन पर बैठा था। उसके चित्तौड़ से ईरान चले जाने के बाद से लेकर राजा समर सिंह के समय तक का वर्णन इस परिच्छेद में लिखने की हम चेष्टा करेंगे। चित्तौड़ से बप्पा के चले जाने के बाद इस देश में एक नये युग का आरम्भ होता है। बप्पा रावल से लेकर समरसिंह तक चार शताब्दियाँ व्यतीत होती हैं। इन चार सौ वर्षों के भीतर मेवाड़ के सिंहासन पर कुल मिलाकर अठारह राजा बैठे। उनके सम्बन्ध में भट्ट ग्रन्थों में कुछ ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। कहीं-कहीं पर जो थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है, उससे यह जाहिर होता है कि वे राजा बप्पा रावल के योग्य वंशज थे और उनकी कीर्ति आज भी राजस्थान में मौजूद है।

आयतपुर के एक शिलालेख से जाहिर होता है कि बप्पा रावल और समरसिंह के बीच में शक्तिकुमार नाम का एक राजा हुआ और वह सम्वत् 1024, सन् 968 ईसवी में मेवाड़ का अधिकारी था। जैनियों के लेखों से पता चलता है कि राजा शक्तिकुमार से चार पीढ़ी पहले सम्वत् 922, सन् 866 ईसवी में अल्लट नाम का एक राजा चितौड़ के राज सिंहासन पर बैठा था। खुमान रासो नाम के एक प्राचीन काव्य ग्रंथ से जाहिर होता है कि बप्पा और समरसिंह के मध्यवर्ती समय में मेवाड़ राज्य पर एक बार मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और वह आक्रमण राणा खुमान के समय में हुआ था। राणा खुमान ने सन् 812 ईसवी से लेकर सन् 836 ईसवी तक राज्य किया था।

भारतवर्ष में इस समय भयानक अन्धकार फैला हुआ था और उस अन्धकार के दिनों का ऐतिहासिक वर्णन खोजना बहुत कठिन मालूम होता है। फिर भी भट्ट कवियों, आईने अकबरी और फरिश्ता आदि ग्रन्थों की सहायता से जो सामग्री हमें मिल सकी है, उसकी सहायता से हम यहाँ पर कुछ लिखने का प्रयास करेंगे।

गुहिलोत वंश की चौबीस शाखाओं का वर्णन पहले किया जा चुका है। इन शाखाओं में से कुछ शाखायें बप्पा के द्वारा उत्पन्न हुईं। चित्तौड़ पर अधिकार कर लेने के बाद बप्पा सूरत देश में गये। उसके पास के बन्दर द्वीप पर इस्फगुल नाम का राजा राज्य करता था। इस्फगुल को कुछ अधिकारियों ने बाण राजा का पिता होना स्वीकार किया है। राजा इस्फगुल के एक बेटी थी। बप्पा ने उसके साथ विवाह किया और उसे लेकर वे चित्तौड़ चले आये। इस स्त्री के गर्भ से बप्पा के अपराजित नाम का एक लड़का उत्पन्न हुआ। इससे पहले बप्पा ने द्वारिका के समीप कालीबाष नगर के परमार राजा की बेटी से भी विवाह किया था। उसके गर्भ से जो लड़का उत्पन्न हुआ था उसका नाम असिल था।

वह सब.से बड़ा था। परन्तु अपने मामा के यहाँ रहने के कारण वह अपने पिता के राज्य का अधिकारी न हो सका और उसका छोटा भाई अपराजित सिंहासन पर बैठा।[1]

असिल ने सौराष्ट्र में अपना एक राज्य स्थापित किया और अपने वंश की एक शाखा की प्रतिष्ठा की। इसलिए उसके वंश के लोग असिल गुहिलोत के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपराजित के दो बेटे हुए। एक का नाम खलभोज और दूसरे का नाम नन्दकुमार था। उसका बड़ा बेटा खलभोज सिंहासन पर बैठा। छोटे बेटे नन्दकुमार ने दोदा वंश के राजा भीमसेन को मार कर दक्षिण के देवगढ़ नाम के राज्य को अपने अधिकार में ले लिया।

खलभोज (जिसका दूसरा नाम कर्ण था) के मरने के वाद खुमान चित्तौड़ के राजसिंहासन पर बैठा। मेवाड़ के इतिहास में राजा खुमान का नाम वहुत प्रसिद्ध है। उसी के शासनकाल में मुसलमानों ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और आक्रमणकारियों ने चित्तौड़ को घेर लिया। चित्तौड़ की रक्षा करने के लिये अनेक राजपूत राजा युद्ध करने के लिये गये। राजा खुमान ने आक्रमणकारी सेना का मुकावला बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया। मुस्लिम सेना की पराजय हुई। उसके बहुत से सिपाही मारे गये और जो बाकी रहे, वे युद्ध से भाग गये। राजा खुमान ने अपनी सेना के साथ उनका पीछा किया और शत्रु सेना के सेनापति महमूद को गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद उसे राजपूत सैनिक चित्तौड़ ले गये।

यहाँ पर महमूद के नाम पर सन्देह पैदा होता है। इसलिए कि इस युद्ध के दो शताब्दी बाद गजनी की सेना लेकर जिस मुसलमान ने भारत पर आक्रमण किया था, उसका नाम भी महमूद था। यह सन्देह उस विवरण से जो नीचे लिखा जायेगा, दूर हो जायेगा। जिस समय खलीफा उमर बगदाद के सिंहासन पर था, उस समय आक्रमणकारी मुसलमान पहले पहल भारतवर्ष में आये। उन दिनों में गुजरात और सिन्धु इस देश में वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे। इन नगरों को अपने अधिकार में लेने के उद्देश्य से खलीफा उमर ने टाइग्रेस नदी के किनारे बसोरा नाम का एक शहर वसाया और उसके बाद अबुलआयास नाम के सेनापति के अधिकार में एक वड़ी सेना देकर उसे भारतवर्ष की ओर भेजा गया। अबुलआयास अपनी सेना के साथ सिंध देश तक आया और अरोर नामक स्थान पर भारत के लोगों ने उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में अबुलआयास मारा गया।

उमर के मरने के बाद खलीफा ऊसमान उस सिंहासन का अधिकारी हुआ। उसने भारत पर आक्रमण करने के लिए बहुत सी तैयारियाँ की, परन्तु वह कुछ कर न सका। उसके बाद खलीफा अलीबगदाद वहाँ के सिंहासन पर बैठा। उसके सेनापति ने सिंध देश पर आक्रमण किया और वह विजयी हुआ। परन्तु उसका अधिकार सिंध देश में अधिक समय तक न रह सका। अली बगदाद के मर जाने पर खलीफा अब्दुल मलिक और खुरासान के बादशाह अजीद के समय में भी भारत पर आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ होती रहीं। परन्तु कोई आक्रमण न हुआ।

इस बीच में कुछ समय बीत गया। खलीफा वलीद अपने पिता के स्थान पर सिंहासन पर बैठा और राज्य का अधिकारी होने के बाद उसने एक विशाल सेना को साथ में लेकर भारत पर आक्रमण किया। उसने सिंध राज्य और उसके आस-पास के नगरों पर अधिकार कर लिया। कुछ लेखों से पता चलता है कि गंगा के पश्चिमी किनारों पर जो छोटे-छोटे राजा रहते थे उन्होंने कर देना मन्जूर कर लिया था। उस समय इस्लाम की तलवार तेजी पकड़ रही थी और कोई राजा युद्ध करने के लिए सहज ही तैयार न होता था।

---

1. जिस लेख से इस घटना का यहाँ पर उल्लेख किया है, उसके एक स्थान पर लिखा है कि असिल ने अपने नाम पर एक किले का नाम असिलगढ़ रखा था। असिल के बेटे का नाम पाल था। वह युद्ध में मारा गया

जो युद्ध में गया, उसी का सर्वनाश हुआ। उस समय इस्लामी सेना के आक्रमण से यह दशा हो गई थी। इसी मौके पर दाहिर के सिन्ध राज्य का पतन हुआ और राजा दाहिर मारा गया। राजा रोडरिक के अण्डलूस राज्य पर इस्लामी झण्डा फहराने लगा। इस प्रकार के सैकड़ों संघर्ष हुए और इस्लामी सेना का आतंक भयानक हो उठा। इस प्रकार के आक्रमण सम्वत् 474 सन् 718 ईसवी में सेनापति मोहम्मद बिन कासिम के द्वारा भारत में हुए। सिंध के राजा दाहिर को मार कर कासिम दाहिर की दो लड़कियों को अपने साथ ले गया और उन्हें खलीफा की भेंट में भेज दिया। इन्हीं दोनों लड़कियों के द्वारा सेनापति मोहम्मद बिन कासिम का सर्वनाश हुआ। आईने अकबरी और फरिश्ता इतिहास में इस घटना के सम्बन्ध में लिखा है कि राजा दाहिर की दोनों लड़कियाँ जब खलीफा के पास भेजी गयीं तो उन दोनों ने कासिम के अश्लील व्यवहार को खलीफा से जाहिर किया। उसे सुनते ही खलीफा को बहुत क्रोध आया और उसने आदेश दिया कि सेनापति कासिम को कच्ची खाल में भर कर मेरे सामने पेश किया जाये और यही हुआ। उस समय कासिम कन्नौज के राजा हरचन्द के साथ युद्ध करने के लिए जा रहा था। आदेश के अनुसार वह खलीफा की अदालत में लाया गया और उसका अन्त किया गया।

अलमंजूर जब खलीफा अब्बास का सेनापति था, उस समय सिंध और कुछ अन्य राज्य उसके अधिकार में थे। उसने सिंध की पुरानी राजधानी अरोर का नाम जो सख्खर के उत्तर में सात मील की दूरी पर है, बदल कर मंसूर रखा और और उसे अपने रहने का स्थान बनाया। यह वही समय था, जब बप्पा-रावल चित्तौड़ छोड़कर ईरान चले गये थे।

हारूँ अलरशीद ने खलीफा बनने पर अपने विशाल राज्य को अपने बेटों में बाँटा और उसने दूसरे पुत्र अलमामून को खुरासान, जबूनिस्तान, सिंध और हिन्दुस्तानी राज्य दिये। हारूँ की मृत्यु के बाद अलमामून अपने भाई को पदच्युत करके हिजरी 78 सन् 813 ईसवी में खलीफा बन गया। यह वही समय था, जब खुमान चित्तौड़ का राजा था। उसी के शासन काल में अलमामून ने जबूलिस्तान से आकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। ऊपर चित्तौड़ के आक्रमण में जिस महमूद का नाम लिखा गया है और जिसे चित्तौड़ के राजा खुमान ने पराजित करके कैद कर लिया था, वह यही मामून था, जिसका नाम लिखने वालों की भूल से महमूद लिखा गया है।

इसके बाद बीस वर्ष तक मुसलमानों ने भारत मे कहीं पर आक्रमण नहीं किया। उनका प्रभाव इन दिनों में कमजोर पड़ रहा था और भारत वर्ष के जिन देशों में उन्होंने अधिकार कर लिया था, सिंध को छोड़कर बाकी सभी देश उनके अधिकार से निकल गये थे। इन्हीं दिनों में हारूँ रशीद का पोता मोताविकेल बगदाद के सिंहासन पर बैठा। यह समय सन् 850 ईसवी का था। मोताविकेल के बाद उसका पैतृक राज्य निर्बल पड़ने लगा और उस समय के पश्चात् बगदाद सौदागरों के एक बाजार के सिवा और कुछ न रह गया।

बगदाद के अधःपतन के इन दिनों में उसके खलीफों का भारत के साथ जो सम्बन्ध था, वह भी टूट गया ओर मुस्लिम आतंक कुछ समय के लिए इस देश से समाप्त हो गया। परन्तु सुबुक्तगीन के सिंहासन पर बैठते ही खुरासान में हिजरी संवत् 365, सन् 975 ईसवीं में भारत पर आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ होने लगी और इसी वर्ष सुबुक्तगीन ने अपनी विशाल सेना लेकर सिन्ध नदी को पार किया और उसके पश्चात् भारत में पहुँचकर उसने आक्रमण किया। उसकी विशाल सेना के सामने भारत के कितने ही राजाओं का पतन हुआ और अगणित संख्या में हिन्दू अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो गये।

इसी शताब्दी के अन्त में सुबुक्तगीन ने भारत पर दूसरा आक्रमण किया और हिन्दुओं के साथ उसने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। उसके इस दूसरे आक्रमण में उसका बेटा महमूद भी उसके साथ आया था और उसने अपने पिता से भी अधिक निर्दय व्यवहार इस देश के लोगों के साथ किये थे। सुबुक्तगीन के बाद उसका बेटा महमूद सिंहासन पर बैठा और उसने बारह बार भारत पर भयानक आक्रमण किये। अपनी इन लड़ाइयों में उसने उपस्थित सम्पत्ति की लूट की, नगरों का विनाश किया और मन्दिरों को तोड़कर उनका सर्वनाश किया। अपने अमानुषिक अत्याचारों के द्वारा उसने हिन्दुओं को अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ने और कुरान पढ़ने के लिए मजबूर किया।

हिजरी सम्वत् की पहली शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी के अन्त तक खलीफा लोगों का जो व्यवहार भारत के साथ रहा, उसका संक्षेप में यहाँ पर वर्णन किया गया है। इसके पहले जो विवरण चल रहा था, वहाँ का इतिहास मिली हुई सामग्री के अनुसार हम आगे लिखने की चेष्टा करते हैं। चित्तौड़ के राजा मानसिंह के शासन काल में म्लेच्छों ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था और बप्पारावल ने उनको पराजित किया था। कदाचित इजीद उन म्लेच्छों का नेता था और मोहम्मद बिन कासिम की सेना में सिंध देश से आकर उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं होता कि राजा मानसिंह के समय जो सेना आक्रमण करने के लिये चित्तौड़ में आयी थी, उसका प्रधान कौन था। हिन्दू ग्रंथों में इस स्थल के वर्णन भिन्न-भिन्न तरीकों से किये गये हैं। उन ग्रंथों में इन आक्रमणकारी म्लेच्छों को कहीं पर यवन, कहीं पर राक्षस, कहीं पर दैत्य और कहीं पर दूसरे नामों से लिखा गया है।

गुहिलोतों, चौहानों और यदु लोगों के ऐतिहासिक ग्रंथों में लिखा है कि सम्वत् 750 से 780 तक, सन् 694 से 724 ईसवी तक आक्रमणकारियों के द्वारा एक भयानक आतंक की वृद्धि हुई थी। ग्रन्थों में साफ-साफ वह बात नहीं लिखी गयी कि वे आक्रमणकारी कौन थे। इस बात का भी उल्लेख पाया जाता है कि हिजरी सम्वत् 950 में एक यदुवंशी राजा ने अपनी राजधानी शालपुर से निकल कर शतद्रु नदी के पूर्व की मरुभूमि में जाकर आश्रय लिया था। जिस शत्रु के कारण इस राजा को अपनी राजधानी से भागना पड़ा था, भट्ट ग्रन्थों में उसका नाम फरीद लिखा है। इसी समय अजमेर के चौहान राजा माणिकराय पर भी शत्रुओं का आक्रमण हुआ था और युद्ध में मणिकराय मारा गया था।

इन दिनों में पंजाब का सिन्ध सागर दुआबा खींची वंश के पूर्ववर्ती राजाओं के अधिकार में था और हारस वंश के पूर्वज गोलकुण्डा में रहते थे। इन दोनों वंशों के राजा एक ही समय में अपने राज्यों से निकाले गये थे। जिन शत्रुओं ने उन पर आक्रमण किये थे, भट्ट लोगों ने अपने ग्रंथों में उन्हें दानव लिखा है। मुस्लिम तवारीखों में लिखा है कि ठीक इसी समय में इजीद खलीफा की ओर से खुरासान में राज्य करता था और खलीफा वलीद की सेना भारत में आक्रमण करने के लिए गंगा के किनारे तक आ गयी थी। इसके आगे इन तवारीखों में भी कुछ नहीं लिखा गया। इस प्रकार के उल्लेखों से जाहिर होता है कि इन दिनों में जिन आक्रमणकारियों ने भारत में आकर उधम मचाया था, उनमें इजीद कासिम अथवा वलीद के किसी अन्य अधिकारी का होना सम्भव मालूम होता है। यह भी सम्भव है कि इन्हीं दो में से किसी की ओर से किसी ने अधिकारी बन कर उन दिनों आक्रमण किया हो। क्योंकि मुसलिम तवारीखों में भारत पर होने वाले आक्रमण के जो वर्णन लिखे गये हैं, उनमें इन्हीं दोनों का नाम पाया जाता है। उनके आक्रमण भारत में उस समय हुए थे, जब राजा मानसिंह चित्तौड़ में राज्य करता था। उस समय म्लेच्छों के आक्रमण से चित्तौड़ की रक्षा करने के लिए जो राजा युद्ध में गये थे, उनके नाम इस प्रकार हैं :

अजमेर, कोटा, सौराष्ट्र और गुजरात के राजाओं के अतिरिक्त हूणों का सरदार अंगुत्सी, उत्तर देश का राजा बूसा, जारीजा का राजा शिव, जंगल देश का राजा जोहिया, शिवपत, कुल्हर, मालून, ओहिर और हल। इनके सिवा और बहुत से राजाओं तथा सरदारों ने अपनी सेना के साथ चित्तौड़ आकर म्लेच्छों के साथ युद्ध किया था। उस युद्ध में मानसिंह की तरफ से और भी अनेक राजाओं ने आकर भाग लिया था जिनके नामों के उल्लेख भट्ट ग्रंथों में नहीं पाये जाते। सिंध देश का राजा दाहिर जब कासिम के द्वारा मारा गया था उस समस उसका लड़का अपने राज्य से भाग कर चित्तौड़ चला गया था और इस समय मानसिंह की तरफ से उसने भी शत्रुओं के साथ युद्ध किया था।

राजा मानसिंह - जैसा कि पहले लिखा जा चुका है - मौर्यवंश का था और मौर्यवंश की प्रमुख शाखा परमार वंश के राजा उस समय भारतवर्ष के चक्रवर्ती राजा थे[1] राजा मानसिंह की ओर से जिन राजाओं और सरदारो ने उस लड़ाई में युद्ध किया था उनमें बप्पा रावल ने युद्ध में अधिक बहादुरी दिखायी थी और उसी के कारण शत्रु लोग पराजित होकर सिंध देश की तरफ चले गये थे। उनका पीछा करता हुआ बप्पा रावल अपने पूर्वजों के राज्य गजनी पहुँच गया था। उस समय वहाँ का राजा सलीम था। उसको पराजित करके उसने अपने भान्जे को वहाँ के सिंहासन पर बिठाया था और राजा सलीम की बेटी से ब्याह कर के वह अपने साथ उसे लेकर चित्तौड़ चला आया था।

सन् 812 से 836 ईसवी तक राजा खुमान ने चित्तौड़ में राज्य किया। उसके शासनकाल में जिस महमूद ने आकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर यह लिखा जा चुका है कि उस आक्रमणकारी का नाम महमूद भूल से लिखा गया है। वास्तव में वह मामून था, जो अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ था और उसके बाद उसने लगातार भारत पर आक्रमण किये थे। राजा खुमान के समय में चित्तौड़ पर जो आक्रमण हुआ था, उसकी दो शताब्दी के बाद सुबुक्तगीन के बेटे महमूद के आक्रमण आरम्भ होते हैं। इसलिए यह साफ जाहिर है कि राजा खुमान के समय खुरासान के बादशाह मामून ने अपनी सेना लेकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। राजा खुमान के समय के ऐतिहासिक विवरण भट्ट ग्रन्थों में बहुत कम पाये जाते हैं। इसलिए जो सामग्री मिलती है, उसके आधार पर उस समय के वर्णन हम लिखने की यहाँ कोशिश करेंगे। चित्तौड़ पर आक्रमण होने पर राजा खुमान की तरफ से जो नरेश युद्ध में लड़े थे, उनके नाम इस प्रकार पाये जाते हैं।

गजनी के गुहिलोत, असीर के टाँक, नादोल के चौहान, रहिरगढ़ के चालुक्य (1) सेतबंदर के जीरकेड़ा, (2) मन्दोर के खैरावी, मगरोल के मकवाना, जेतगढ़ के जोड़िया। तारागढ़ के रीवर, नीरवड़ के कछवाहे, सञ्जोर के कालुम, (3) जूनागढ़ के यादव, अजमेर के गौड़, लोहादुरगढ़ के चन्दाना, कसींदी के डोर, (4) दिल्ली के तोमर, (5) पाटन के चावड़ा, जालौर के सोनगरे, (6) सिरोही के देवड़ा, गागरोन के खींची, पाटरी के झाला, जोयनगढ़ के दुसाना। (7) लाहौर के बूसा, कन्नौज के राठौड़, छोटियाला के बल्ला, पीरनगढ़ के गोहिल, जैसलमेर के भाटी, (8) रोनिजा के संकल, (9) खेरलीगढ़ के सीहुर, मण्लगढ़ के निकुम्प, राजौड़ के बड़गूजर (10) फुरनगढ़ के चन्देल।

---

1. चित्तौड़ के राज्य दरवार में वहुत से सामन्त रहा करते थे। उनका वर्णन चन्द्र भट्ट ने अपने ग्रन्थ में किया है। यूनान के इतिहासकारों ने लिखा है कि मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध में पराजित होने पर सेल्यूकस ने अपनी लड़की चन्द्रगुप्त के साथ ब्याह दी थी और उसके साथ उसने मित्रता कर ली थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि उन दिनों चन्द्रगुप्त की सेना में वहुत से ग्रीक सैनिक काम करते थे।

सिकर के सिकरवार, ओमरगढ़ के जेनवा, पल्ली के पीरगोटा, खुनतरगढ़ के जारीजा, जरिगाँह के खेरर और काश्मीर के परिहार।[1]

चित्तौड़ पर खुरासान के बादशाह के आक्रमण करने पर इन सभी राजाओं ने अपनी सेनाओं के साथ आकर शत्रु सेना से युद्ध किया था और चित्तौड़ की रक्षा की थी। राजा खुमान को चौबीस बार शत्रुओं से युद्ध करना पड़ा था। उन युद्ध में राजा खुमान ने अपनी जिस बहादुरी का परिचय दिया था। वह रोम सम्राट सीजर की तरह राजपूतों के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उसके शौर्य और प्रताप ने भारत के इतिहास में राजपूतों का नाम अमर कर दिया है।

राजा खुमान का प्रताप उसके जीवन काल में ही बहुत बढ़ गया था और उसका प्रभाव अब तक यह है कि उदयपुर में जब कभी कोई किसी विपत्ति में आ जाता है अथवा ठोकर खाकर गिर जाता है तो लोगों के मुँह से निकलता है - "खुमान तुम्हारी रक्षा करें।" लोगों की इन भावनाओं का अर्थ यह है कि सर्वधारण का राजा खुमान पर बहुत विश्वास बढ़ गया था।

राजा खुमान ने अपने राज्य का अधिकार छोटे पुत्र जगराज को दे दिया। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उसका विचार बदल गया और राज्याधिकार फिर वापस लेकर सिंहासन पर बैठ गया।(1) सेतबंदर मालवार के पास है। (2) मन्दोर से आने वाले खैरावी प्रमार वंश की शाखा के वंशज थे। (3) जूनागढ़ (गिरनार) से जो यादव आये थे, उनके वंशजों ने उस देश में बहुत समय तक राज्य किया था। (4) यह नगर गंगा के किनारे दक्षिण में बसा है। (5) इसके संबंध में भट्ट ग्रन्थों में कोई विशेष बात नहीं मिलती है। (6) सोनगढ़े चौहानों की एक शाखा के वंशज थे। (7) फरिश्ता इतिहास में लिखा है कि जिस समय पहले मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की, उस समय लाहौर में हिन्दू राजा का राज्य था। सन् 761 ईसवी में अफगानों ने लाहौर के हिन्दू राजा के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया था। उस समय तक अफगानों ने इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया था। लाहौर के हिन्दू राजा को पाँच महीने के भीतर सत्ताईस बार युद्ध करने पड़े। अंत में अफगानों ने संधि कर ली। (8) यह परमार कुल की शाखा है और यह राज्य मारवाड़ में है। (9) खैरलोगढ़ के सीहुर सिंध नदी के किनारे राज्य करते थे। भट्ट ग्रन्थों में इनके सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ लिखा गया है। (10) कुरनगढ़ से जो चंदेल अपनी सेना के साथ युद्ध में गये थे, उनके देश का वर्तमान नाम बुन्देलखण्ड है।

इस प्रकार की घटना के फलस्वरूप पुत्रों के साथ उसका संघर्ष बढ़ गया और एक दिन उसके मंगल नामक बेटे ने उसको जान से मार डाला और वह स्वयं राजा बन बैठा।राज्य के सामन्तों और सरदारों ने इसको सहन न किया। सब ने मिल कर मंगल को राज्य से निकाल दिया। वह अपने पिता के राज्य से उत्तर मरुस्थली के मैदान में चला गया और वहाँ पर जाकर उसने लोद्रवा नामक नगर बसाया और मांगलिया गुहिलोत गोत्र की प्रतिष्ठा की।

मंगल के निकाले जाने पर मातृ भाट चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा उसके और उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में चित्तौड़ के राज्य की सीमा की बहुत वृद्धि हुई। महानदी के किनारे और आबू पर्वत के नीचे के विस्तृत मैदानों में जो असभ्य और जंगली जातियों के लोग रहते थे, वे सभी चित्तौड़ की अधीनता में आ गये थे। यहाँ के दो प्रसिद्ध किले

1. जिन राजाओं ने अपनी सेनाओं के साथ आकर चित्तौड़ को सुरक्षित रखने के लिए शत्रुओं के साथ संग्राम किया था, उनके नाम यहाँ पर लिखे गये हैं।

धरनगढ़ और अजरगढ़ अब तक मौजूद हैं। मातृ भाट ने मालवा और गुजरात में तेरह स्वतंत्र राज्यों की स्थापना[1] की थी। उस समय से उसके पुत्र गाटेरा गुहिलोत के नाम से प्रसिद्ध हुये। राजा खुमान के बाद पन्द्रह पीढ़ी तक चित्तौड़ के सिंहासन पर जो राजा बैठे। उनके शासन काल में ऐसी घटनायें नहीं हुई, जिनको ऐतिहासिक महत्व मिलता। इसीलिये प्राचीन ग्रंथों में उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं लिखा गया।

उन दिनों में चित्तौड़ के गुहिलोत राजाओं और अजमेर के चौहानों में कभी एक-सा व्यवहार नहीं रहा। वे कभी घनिष्ठ मित्रों के रूप में हो जाते थे और कभी एक दूसरे के भयानक शत्रु हो जाते थे। वे कभी एक दूसरे का सर्वनाश करने के लिए तैयार हो जाते और कभी देश की रक्षा करने के लिये मिलकर शत्रुओं के साथ संग्राम करते। चित्तौड़ के वीरसिंह ने चौहान राजा दुर्लभ को मार डाला था। लेकिन दुर्लभ के बेटे बीसलदेव की वीरसिंह के उत्तराधिकारी रावल तेजसिंह के साथ अटूट मित्रता थी और दोनों ने मिलकर मुस्लिम सेनाओं के साथ युद्ध किया था। राजपूतों के इस प्रकार के गुण भट्ट ग्रन्थों में और प्राचीन काल के शिलालेखों में पढ़ने को मिलते हैं। उन सब में यह भी पढ़ने को मिलता है कि राजपूतों के जीवन में आरम्भ से ही हथियार, घोड़ा और शिकार का प्रेम मिलता है। उनके जीवन में इन तीन बातों के सिवा और कुछ न रहता था और इन्हीं तीनों बातों के द्वारा उनके जीवन में जिस शौर्य का संचार होता था, उसका परिचय वे अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक दिया करते थे।

□

1. जिन तेरह राज्यों की स्थापना हुई थी, उनमें ग्यारह के नाम इस प्रकार हैं- कूलानगर, चम्पानेर, चौरेता, भोजपुर, लुनार, नीमखोर, सोदारु, जोधगढ़, मन्दपुर, आइतपुर और गंगाभाव।

अध्याय – 14
समरसिंह से लेकर देशद्रोही जयचन्द तक का इतिहास

दूसरी शताब्दी में कनकसेन और चौथी शताब्दी में बल्लभी के प्रतिष्ठाता विजय से लेकर तेरहवीं शताब्दी में समरसिंह तक वंश का शृंखलाबद्ध वर्णन ऐतिहासिक तथ्य के साथ हमारे सामने नहीं है। इसलिए यहाँ पर हम जो वर्णन करने जा रहे हैं, उसका प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दी के समरसिंह से होता है।

समरसिंह का जन्म संवत् 1206 में हुआ था। उस समय देश की राजनीतिक परिस्थिति क्या थी, इस पर संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। दिल्ली में तोमर राजवंश का लोप हो गया था। पाटन नगर में भोला भीम चालुक्य वंश का राजा था। आबू पर्वत पर परमारवंशी जिट लोग अधिकारी थे। मेवाड़ में समरसिंह के वंशज शासन कर रहे थे। मरुभूमि में नाहुर का आतंक चल रहा था और दिल्ली में राजा अनंगपाल का राज्य था। मण्डोर, नागौर, सिंध,जलावत और इनके निकटवर्ती देश पेशावर, लाहौर, काँगडा, पहाड़ी राजा लोग तथा प्रयाग, काशी और देवगिरि के राजा दिल्ली की अधीनता में चल रहे थे।

जबूलिस्तान से भागकर भाटी लोग भारतवर्ष में आ गये थे और उन्होंने पंजाब के शालिवाहन तन्नोट और मारवाड़ के लोद्रवा को अपने अधिकार में कर लिया था। उसके बाद बरावल नगरी को बसाकर उन लोगों ने जैसलमेर की प्रतिष्ठा का कार्य आरम्भ कर दिया था। यह वही समय था, जब पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठे थे। जैसलमेर के निर्माण के बहुत पहले अरोर में रहने वाले खलीफा के सेनापतियों के साथ भाटी लोगों के युद्ध हुए थे और कई बार उनकी विजय हुई थी।

भाटी लोग पहले बहुत साधारण अवस्था में रहे। पृथ्वीराज के समय उनकी उन्नति हुई। अचलेश नाम का एक भाटी सरदार पृथ्वीराज की सेना में सेनापति था और वह भाटी राजा का भाई था।

राजा अनंगपाल अपने शासनकाल में भारत के चक्रवती राजा थे। वे तोवँर राजा विहलन देव से उन्नीसवीं पीढ़ी में हुए थे। राजा विक्रमादित्य ने जब भारतवर्ष की राजधानी उज्जैन में कायम की थी, उस समय दिल्ली का महत्व बिल्कुल क्षीण हो गया था। उसके बाद राजा विहलन देव ने दिल्ली की फिर उन्नति की थी और अनंगपाल के नाम से वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में अजमेर के चौहान दिल्ली की अधीनता में रहते थे और उनका स्थान दिल्ली राज्य के सामन्तों में था।

विहलन देव के शासन काल में अजमेर के चौहानों को अधिक श्रेष्ठता मिल गयी थी और उस समय से उनकी उन्नति आरम्भ हुई थी।

जिन दिनों में दिल्ली के राजा अनंगपाल के साथ कन्नौज के राठौड़ राजा का युद्ध हुआ, उन दिनों में सोमेश्वर नाम का एक चौहान राजा अजमेर के सिंहासन पर था। सोमेश्वर ने उस युद्ध में राजा अनंगपाल की सहायता की। उससे प्रसन्न होकर अनंगपाल ने सोमेश्वर के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। इसी लड़की से पृथ्वीराज का जन्म हुआ। इसके कुछ दिन पूर्व राजा अनंगपाल ने अपनी एक लड़की का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल के साथ किया था। उस लड़की से जयचंद का जन्म हुआ था। जयचंद पृथ्वीराज से बड़ा था। अनंगपाल के कोई बेटा न था, इसलिए उसने पृथ्वीराज को अपने राज्य का अधिकारी बना दिया। उस समय पृथ्वीराज की अवस्था आठ वर्ष की थी। इसके परिणामस्वरूप राठौड़ो और चौहानों में भयानक ईर्ष्या हो गई और वह ईर्ष्या दोनों वंशों के सर्वनाश का कारण बन गई। पृथ्वीराज जब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, जयचंद ने न केवल उसकी प्रधानता को मानने से इन्कार कर दिया, बल्कि उसने अपनी श्रेष्ठता की घोषणा की। इस अवसर पर अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा ने, जो चौहानों का पुराना शत्रु था, जयचंद का समर्थन किया और मण्डोर के परिहार राजा ने उसका साथ दिया।

पृथ्वीराज के साथ मण्डोर के परिहार राजा की शत्रुता का कारण लगभग इन्ही दिनों का था। मण्डोर के राजा ने पृथ्वीराज के साथ अपनी लड़की के विवाह का निश्चय किया था। परन्तु सब कुछ तय हो जाने के बाद मण्डोर राजा ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। पृथ्वीराज और उसके बीच की यह घटना एक वैमनस्य के रूप में बदल गयी और उसके कुछ ही दिनों के बाद दोनों राजाओं के बीच जो युद्ध हुआ, उससे शत्रुओं को पृथ्वीराज के पराक्रम का पूरा परिचय मिला।

इस प्रकार की घटनाओं से जयचंद हृदय में पृथ्वीराज के प्रति ईर्ष्या की वृद्धि होती गई। पट्टन और मण्डोर के राजा इसके सम्बन्ध में जयचंद के पूरे साथी बन गये। इस आपसी अशान्ति और ईर्ष्या का लाभ मोहम्मद गौरी ने उठाया।

पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह चित्तौड़ के राजा समरसिंह के साथ हुआ था। इस सम्बन्ध ने पृथ्वीराज और समरसिंह को मित्रता की एक जंजीर में बाँध दिया ताकि वे दोनों अपने जीवन काल में एक दूसरे से फिर अलग न हो सके।

समरसिंह, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, पृथ्वीराज का बहनोई था और अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा के साथ भी समरसिंह का वैवाहिक सम्बन्ध था। फिर भी पृथ्वीराज के साथ समरसिंह की जो घन्ष्ठिता और मित्रता थी, वह पट्टन के राजा के साथ न थी। यही कारण था कि अनहिलवाड़ा पट्टन का राजा समरसिंह से प्रसन्न न था। समरसिंह ने कई बार पृथ्वीराज की सहायता की थी और सबसे पहला अवसर वह था, जब उसकी सहायता से नागौर में सात करोड़ रुपये का सोना पृथ्वीराज को मिला था, यह खजाना प्राचीन समय से नागौर के उस स्थान में रखा हुआ था। इससे कन्नौज और अनहिलवाड़ा पट्टन के राजाओं के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति और भी अधिक ईर्ष्या की वृद्धि हुई। वे किसी प्रकार पृथ्वीराज के सर्वनाश के लिए उपाय ढूँढ़ने लगे और उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन दोनों ने गजनी के शहाबुद्दीन को भारत में आने के लिए आमंत्रित किया।

जयचंद ने कई छोटे राजाओं को मिलाकर अनहिलवाड़ा पट्टन, मन्डोर और धार के राजाओं के परामर्श से एक योजना तैयार की और उस योजना के अनुसार शहाबुद्दीन के द्वारा वह पृथ्वीराज का सर्वनाश करना चाहता था। पृथ्वीराज को इन सब बातों का पता हो

गया और उसे यह भी मालूम हो गया कि दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये गजनी से एक विशाल सेना लेकर शहाबुद्दीन आ रहा है। उसने इस अवसर पर समरसिंह को बुलाने के लिए अपने सामन्त चण्डपुण्डीर को चितौड़ भेजा। चण्डपुण्डीर युद्ध में कुशल, पराक्रमी और पृथ्वीराज का अत्यन्त विश्वासपात्र सामन्त था। उसने चित्तौड़ पहुँचकर समरसिंह से सारा वृतान्त कहा। इसके बाद समरसिंह राजपूतों की शक्तिशाली सेना को लेकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ।

पृथ्वीराज अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा पर आक्रमण करके उसको शिकस्त देना चाहता था। पट्टन के राजा के साथ सम्बन्ध होने के कारण समरसिंह ने वहाँ जाना अपने लिए उचित न समझा। इसलिए पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ पट्टन राज्य की तरफ रवाना हुआ और समरसिंह को उसकी सेना के साथ शहाबुद्दीन से युद्ध करने के लिए चित्तौड़ में छोड़ दिया।

जिस समय शहाबुद्दीन अपनी विशाल सेना के साथ भारत में पहुँचा, समरसिंह ने अपनी राजपूत सेना के साथ रावी नदी के तट पर उसका मुकाबला किया। दोनों ओर से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। कई दिनों के भीषण संग्राम के बाद भी कोई निर्णय न हुआ। समरसिंह की राजपूत सेना ने गजनी की सेना को आगे बढ़ने न दिया। इसी बीच में अनहिलवाड़ा पट्टन के राजा को पराजित करके पृथ्वीराज अपनी विजयी सेना के साथ चित्तौड़ लौट आया और शहाबुद्दीन के साथ युद्ध करने के लिए वह युद्ध क्षेत्र में पहुँच गया। समरसिंह और पृथ्वीराज के राजपूत सैनिकों ने गजनी की सेना के साथ भयंकर युद्ध किया। अंत में गजनी की सेना की पराजय हुई। शहाबुद्दीन अपने प्राण लेकर युद्ध से भागा। राजपूतों ने उसके सेनापति को गिरफ्तार कर लिया। इस तरह शहाबुद्दीन के अनेक आक्रमणों को विफल किया गया।

नागौरो में जो सम्पत्ति पृथ्वीराज को मिली थी, उसे उसने समरसिंह को देना चाहा। परन्तु समरसिंह ने उसमें से कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया और पृथ्वीराज के बहुत आग्रह करने पर समरसिंह ने अपने सरदारों को आदेश दिया कि वे पृथ्वीराज से मिलने वाली सम्पत्ति को स्वीकार कर लें।

इसके बाद कई वर्ष बीत गये। गजनी की सेना की पराजय से जयचंद और उसके साथी राजाओं ने अपना अपमान अनुभव किया। वे लोग पृथ्वीराज को पराजित करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय ढूँढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस बार शहाबुद्दीन पहले से अधिक विशाल सेना लेकर भारतवर्ष की ओर फिर रवाना हुआ। उसके इस आक्रमण का समाचार पाकर पृथ्वीराज ने चित्तौड़ सम्वाद भेजा। राजा समरसिंह ने अपनी पूरी शक्तियों के साथ युद्ध की तैयारी की। राज्य का भार अपने छोटे पुत्र कर्णसिंह को सौंपकर वह दिल्ली की तरफ रवाना हुआ।[1] गज़नी की सेना भारतवर्ष में पहुँच चुकी थी।कग्गर के किनारे पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। तीन दिन तक भीषण मारकाट हुई। तीसरे दिन समरसिंह अपने पुत्र कल्याण और तेरह हजार राजपूत सैनिकों तथा सरदारों के साथ युद्ध में मारा गया था। उसकी रानी पृथा ने अपने पुत्र और पति के मारे जाने का समाचार सुना। उसने यह भी सुना कि उसका भाई पृथ्वीराज शत्रुओं के द्वारा कैद कर लिया गया है और दिल्ली तथा चित्तौड़ के राजपूत सैनिकों और सरदारों का संहार हुआ है। उसने

---

1. कर्णसिंह समरसिंह का छोटा लड़का था। राज्य का अधिकार पाने का अधिकारी बड़ा पुत्र कुम्भकर्ण था। लेकिन समरसिंह के द्वारा राज्याधिकार छोटे भाई को मिलने से बड़ा भाई बहुत अप्रसन्न हुआ और वह अपने पिता के राज्य से निकल कर दक्षिण की ओर चला गया। वहाँ पर विदौर नामक एक हब्शी बादशाह के साथ रहकर उसने एक नये राज्य के प्रतिष्ठा की।

बिना किसी बात की प्रतीक्षा किये चिता तैयार करवाई और उसमें अपने पति के साथ जलकर भस्म हो गयी।

इसके बाद गजनी की विजयी सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया और उसको अपने अधिकार में लेने के बाद शहाबुद्दीन की सेना ने देशद्रोही जयचंद के राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया। जयचंद घबराकर कन्नौज से भागा और नाव पर बैठकर वह गंगा नदी को पार कर रहा था। दुर्भाग्य के प्रकोप से नाव गंगा में डूब गयी और जयचंद का वहीं पर अंत हो गया।

पृथ्वी पर ऐसी कौन-सी जाति है जो शौर्य, धैर्य, पराक्रम और जीवन के ऊंचे सिद्धान्तों में राजपूत जाति की बराबरी कर सके? सैकड़ों वर्ष तक विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों को सहकर और भीषण सर्वनाश को पाकर राजपूत जाति ने जिस प्रकार अपने पूर्वजों की सभ्यता को अपने जीवन में सुरक्षित रखा है, उसकी समता विश्व की कोई भी जाति नहीं कर सकती, इस बात को तो मानना ही पड़ेगा। यह बात जरूर है कि राजपूतों का स्वभावतः निडर और स्वाभिमानी होते हुए अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने में प्राणों का उत्सर्ग करना उनके लिए साधारण बात होती है। वास्तव में एक वीर जाति के लिए इस प्रकार की बातें उसके गौरव की वृद्धि करने वाली होती हैं। राजपूत शत्रु के साथ युद्ध करने में पराजित होकर भागने की अपेक्षा मृत्यु का सामना करने में अपने जीवन का महत्व समझते हैं, उनकी समता संसार की वे जातियाँ नहीं कर सकतीं, जो अवसरवादी होने का लाभ उठाती हैं। राजपूत किसी प्रकार अवसरवादी नहीं कहे जा सकते। इसका प्रमाण उनके हजारों वर्षों का इतिहास है। प्रत्येक राजपूत शरण में आये हुए शत्रु की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है, जीवन के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की श्रेष्ठता कौन स्वीकार न करेगा?

राजस्थान के इतिहास की सभी घटनायें अपने जीवन की अलग-अलग मर्यादा रखती हैं। कन्नौज के राठौड़ राजपूतों ने कुछ दूसरे राजाओं के साथ मिलकर जाति द्रोह और देशद्रोह किया। उसका परिणाम उनके सिर पर आया। कन्नौज का पतन हुआ। अनहिलवाड़ा पट्टन का केवल नाम बाकी रह गया और जिन दूसरे राज्यों ने जातिद्रोह करके विदेशी शत्रु का साथ दिया, उनके नाम पर अनन्तकाल के लिए देशद्रोह का कलंक लगा। पृथ्वीराज की युद्ध में पराजय हुई। परन्तु उसका नाम सदा-सर्वदा के लिए इस देश के इतिहास में अमर हो गया। समरसिंह के जीवन का अंत हुआ परन्तु उसका यश और प्रताप इतिहास के पन्नों में अमिट अक्षरों से लिखा गया। राजस्थान के इस प्रकार के अगणित उदाहरण इस बात की शिक्षा देते हैं कि देश और धर्म पर बलिदान होने वालों की सदा पूजा होती है।

समरसिंह के युद्ध में मारे जाने पर उसकी रानी पृथा उसके साथ सती हो गयी थी और उसका बेटा कर्णसिंह उस समय नाबालिग था। समरसिंह के कई छोटे बेटे थे। लेकिन कर्णसिंह ही उसका उत्तराधिकारी था। उसके नाबालिग होने के कारण समरसिंह की दूसरी रानी कर्मदेवी ने-जो विधवा हो चुकी थी - राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया और बड़ी योग्यता के साथ उसने अपने राज्य में शासन किया। उसके शासन काल में कुतुबुद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। रानी कर्मदेवी ने शत्रु का मुकाबला करने के लिए युद्ध की तैयारी की और स्वयं घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए गयी। उसके साथ नौ राजा और ग्यारह शूरवीर सामन्त अपनी सेनाओं के साथ कर्मदेवी की सहायता के लिए युद्ध करने के लिए गये। आमेर के पास दोनों ओर की सेनाओं का आमना-सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। उस संग्राम में कुतुबुद्दीन की पराजय हुई। वह घायल होकर भागा। रानी कर्मदेवी की विजयी सेना शत्रु को भगाकर लौट आयी।

राजकुमार कर्णसिंह सम्वत् 1249 सन् 1193 ईसवी में अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। भट्ट ग्रन्थों में लिखा है कि कर्णसिंह के माहुप और राहुप नाम के दो बेटे उत्पन्न हुए थे। लेकिन दूसरे उल्लेखों और आगे की घटनाओं से पता चलता है कि भट्ट ग्रंथों में यह बात भूल से लिख गयी है। राजा समरसिंह के सूर्यमल नाम का एक भाई था। उससे जो लड़का पैदा हुआ था, उसका नाम भरत था। समरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का विवाह चौहान वंश की एक राजकुमारी के साथ हुआ था। उस राजकुमारी से माहुप का जन्म हुआ था। कर्णसिंह के मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने के बाद राज्य के सरदारों ने भरत के विरुद्ध एक षड़यन्त्र रचा और उसे मेवाड़ राज्य से निकाल दिया।

भरत मेवाड़ से निकल कर सिंध देश की तरफ चला गया। वहाँ के अरोर नामक नगर में एक मुसलमान का शासन था। भरत ने अरोर नगर पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों के बाद उसने पूगल के भाटी सरदार की लड़की के साथ विवाह कर लिया। उससे राहुप नाम का लड़का पैदा हुआ। कर्णसिंह अपने भतीजे भरत को बहुत प्यार करता था। राज्य से उसके चले जाने के बाद वह बहुत दुःखी रहने लगा। उसके हृदय में एक संताप इस बात का और था कि उसका बेटा माहुप अयोग्य और निकम्मा था। वह मेवाड़ को छोड़कर अपने ननिहाल में रहा करता था। इन्हीं दोनों बातों के कारण कुछ समय तक दुःखी रहने से कर्णसिंह की मृत्यु हो गयी।

राणा कर्णसिंह के एक लड़की थी। उसका विवाह जालौर के सोनगरे वंशी सरदार के साथ हुआ था। उस लड़की से रणघोल नाम का एक लड़का उत्पन्न हुआ। कर्णसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। उसका बेटा माहुप बिलकुल अयोग्य था और भरत मेवाड़ राज्य से चला गया था। इसलिये चित्तौड़ के सिंहासन पर रणघोल को बिठाने के लिये सोनगरे सरदार कोशिश करने लगा। समय पाकर उसने चित्तौड़ राज्य के सरदारों पर आक्रमण किया और भयानक विश्वासघात के साथ उसने चित्तौड़ के सिंहासन पर अपने बेटे रणघोल को बिठाने में सफलता पायी।

रणघोल के सिंहासन पर बैठने से चितौड़ के राज-परिवार में बड़ा असन्तोष पैदा हुआ। उस असंतोष के फलस्वरूप राज्य-परिवार का एक पुराना भट्ट भरत के पास भेजा गया। उसने वहाँ पहुँच कर भरत को सब वृतान्त सुनाया। भरत ने अपनी सेना के साथ अपने पुत्र राहुप को चित्तौड़ की तरफ रवाना किया। यह समाचार जब सोनगरे के सरदार को मिला तो वह अपनी सेना लेकर राहुप के साथ युद्ध करने को रवाना हुआ। पाली नामक स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। उस लड़ाई में राहुप की विजय हुई और सोनगरा सरदार पराजित होकर भाग गया।

राहुप की इस विजय को सुनकर चित्तौड़ के सरदार और सामन्त बहुत प्रसन्न हुए। वे यह न चाहते थे कि बप्पा रावल के वंशजों के राज्य-सिंहासन पर सोनगरे का सरदार बैठे और बप्पा रावल के वंश का अंत हो जाये। चित्तौड़ के सरदारों और सामन्तों ने राहुप का स्वागत किया और बड़े सम्मान के साथ उसे चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार सम्वत् 1297 सन् 1241 ईसवी में राहुप चित्तौड़ के राज्य का अधिकारी हुआ।

इसके कुछ ही दिनों के बाद चित्तौड़ के राजा राहुप ने मुस्लिम सेनापति शमसुद्दीन के साथ युद्ध किया। यह युद्ध नगरकोट के मैदान में हुआ। उस युद्ध में शमसुद्दीन को पराजित करके राहुप विजयी हुआ।

राहुप के शासन काल में मेवाड़ में दो परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का सम्बन्ध गुहिलोत वंश के साथ था। पहला परिवर्तन यह हुआ कि मेवाड़ का राजवंश अब तक

गुहिलोत वंश के नाम से प्रसिद्ध था। राजा राहुप के समय से यह वंश सिसोदिया वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि गुहिलोत वंश के राजाओं की उपाधि अब तक रावल थी। राजा राहुप के समय से वहाँ के राजा राणा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

राणा उपाधि का रहस्य यह है कि राजा राहुप के शत्रुओं में मण्डोर का परिहार राजा मुकुल भी एक था। राणा उसकी उपाधि थी और वह राणा मुकुल के नाम से पुकारा जाता था। राजा राहुप ने अपनी सेना लेकर मण्डोर पर आक्रमण किया और मुकुल को उसकी राजधानी से कैद करके सिसोदिया में ले आया। उसके बाद उसका जोदवाड़ नामक नगर तथा राणा की उपाधि लेकर उसको छोड़ दिया और राहुप ने स्वयं उस समय से राणा की उपाधि धारण की।

अड़तीस वर्ष तक वड़ी योग्यता के साथ राहुप ने राज्य किया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गई। राहुप के सिंहासनं पर बैठने के समय मेवाड़ की परिस्थिति अच्छी नहीं थी। राजा की राजनीतिक शक्तियाँ बहुत कुछ छिन्न-भिन्न हो गई थीं। राहुप ने बुद्धिमानी के साथ बिखरी हुई निर्बल शक्तियों को शक्तिशाली बनाया और अनेक अच्छाइयों के लिये प्रसिद्ध हुआ।

राजा राहुप से लेकर लक्ष्मणसिंह तक अर्द्ध शताब्दी में नौ राजा चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। उनका शासनकाल लगभग एक दूसरे के बराबर रहा। उनमें छह राजा युद्ध में मारे गये। म्लेच्छों ने गया में आक्रमण किया था और अपने तीर्थ स्थान गया की रक्षा करते हुए उन छह राजाओं ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। उन छह राजाओं में पृथ्वीमल का नाम अधिक विख्यात है। उसके बाद अलाउद्दीन के समय तक फिर वहाँ कोई अशान्ति पैदा नहीं हुई। परन्तु इस बीच में एक बार चित्तौड़ कुछ दिनों के लिये राजपूतों के हाथ से निकल कर शत्रुओं के अधिकार में चला गया था और फिर सीसोदिया वंश के भानुसिंह ने अपने शासन काल में चित्तौड़ का उद्धार कर राणा की उपाधि धारण की थी। भानुसिंह के दूसरे बेटे का नाम चन्द्र था। उसके वंश के लोग चन्द्रावत नाम से प्रसिद्ध हैं। यह वंश मेवाड़ के सामन्तों में वहुत पराक्रमी समझा जाता है।

राजा राहुप और लक्ष्मणसिंह के मध्यवर्ती समय में जो राजा हुए थे, उनके शासन काल में आक्रमणकारियों के उपद्रव अधिक बढ़ गये थे और बाहरी शक्तियों ने समय-समय पर आक्रमण करके अच्छे-अच्छे नगरों और तीर्थ स्थानों का सर्वनाश किया था।

लेकिन उस समय के विवरण जो भट्ट ग्रन्थों में पढ़ने को मिलते हैं, उनमें कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं पाई जाती। उस समय के विवरण कुछ ऐसे ढंग से लिखे गये हैं, जिनको पढ़ कर कई प्रकार के संशय उत्पन्न होते हैं और एक ही प्रकार के उल्लेख उस समय के उन ग्रंथों में बार-बार लिखे गये हैं। इसलिये उनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ अधिक नहीं लिखा गया।

□

अध्याय - 15
लक्ष्मण सिंह के शासन से लेकर चित्तौड़ पर खलजी शासन स्थापना तक का इतिहास

सम्वत् 1332, सन् 1275 ईसवी में लक्ष्मणसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर वैठा, उस समय उसकी अवस्था छोटी थी। इसलिए उसके चाचा भीमसिंह ने उसके संरक्षक का काम किया और शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में रखा। राणा भीमसिंह ने सिंहल द्वीप के निवासी चौहान वंशी हमीरशंख की लड़की पद्मिनी के साथ विवाह किया था। पद्मिनी अपने रूप-यौवन के लिए वहुत प्रसिद्ध थी और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा वहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी।

राणा भीमसिंह के शासन काल में अलाउद्दीन ने अपनी तातार सेना को लेकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। भट्ट ग्रंथों ने इस वात को स्वीकार किया है कि अलाउद्दीन ने पद्मिनी के कारण ही चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। अपनी शक्तिशाली सेना के द्वारा चित्तौड़ को घेर कर अलाउद्दीन ने इस वात को जाहिर किया कि पद्मिनी को पा लेने के वाद में चित्तौड़ से वापस लौट जाऊंगा। दूसरे ऐतिहासिक ग्रंथों से मालूम होता है कि अपने इस उद्देश्य के लिए वह वहुत दिनों तक चित्तौड़ को घेरे रहा।

वहुत समय वीत जाने के वाद जव अलाउद्दीन को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली तो उसने घोषणा की कि दर्पण में पद्मिनी के दर्शन करके मैं चित्तौड़ से लौट जाऊंगा।

वादशाह अलाउद्दीन की इस प्रकार की वातों को सुनकर राजपूतों का खून उवल रहा था। इस तरह की वातों को सुनने और सहन करने के लिए वे कदापि तैयार न थे। परन्तु वे सव के सव खामोश थे। वादशाह अलाउद्दीन के उद्देश्यों को सुनकर राणा भीमसिंह के राज दरवार में कव क्या निर्णय हुआ, इसका कोई उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है, वह यह है कि वादशाह अलाउद्दीन ने दर्पण में रानी पद्मिनी को देखने के लिए अपने कुछ शरीर रक्षकों के साथ चित्तौड़ में प्रवेश किया। वहाँ पर इसकी व्यवस्था थी। अलाउद्दीन ने पद्मिनी को दर्पण में देखा और उसके वाद वहाँ से वह लौट पड़ा।

इस अवसर पर चित्तौड़ में वादशाह अलाउद्दीन का स्वागत-सत्कार हुआ और उसके लौटने पर राणा भीमसिंह स्वयं कुछ दूर तक उसे विदा करने गया। दोनों ही वातें करते हुए महलों से दूर निकल गये। अचानक समय और संयोग पाकर वादशाह के कुछ सशस्त्र सैनिकों ने राणा पर आक्रमण किया और भीमसिंह को कैद करके अपने शिविर में ले गये। उसके वाद वादशाह की तरफ से चित्तौड़ के राजपूत सरदारों को संदेश मिला कि पद्मिनी को

पाने पर ही राणा भीमसिंह को छोड़ा जा सकता है। बादशाह का यह सन्देश वायु के समान सम्पूर्ण चित्तौड़ नगरी में फैल गया।

रानी पद्मिनी को भी यह संदेश सुनने को मिला। उसने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया। चित्तौड़ में उसके साथ उसका चाचा गोरा और बादल नाम का एक बन्धु रहता था। दोनों ही राजपूत शूरवीर और लड़ाकू थे। रानी पद्मिनी ने दोनों को बुलाकर परामर्श किया और जो निर्णय हुआ, उस पर चित्तौड़ के प्रमुख सामन्तों के साथ बातचीत हुई। उसके आधार पर बादशाह के पास संदेश भेजा गया कि जिस समय तातार सेना घेरा तोड़कर चित्तौड़ से जाने को तैयार होगी, पद्मिनी बादशाह के पास पहुँच जायेगी। बादशाह अलाउद्दीन ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उसके स्वीकार कर लेने पर चित्तौड़ की तरफ से उससे यह भी कहा गया कि पद्मिनी के साथ जो राजपूत सहेलियाँ रहा करती हैं, वे सभी पद्मिनी को यहाँ तक भेजने आएंगी। वे सभी पालकियों पर परदों के भीतर होंगी। उन सहेलियों में थोड़ी-सी रानी की सखियाँ साथ-साथ दिल्ली भी जायेंगी और बाकी चित्तौड़ वापस लौट जाएंगी। बादशाह ने इन सब बातों को स्वीकार कर लिया।

इसके लिये दिन और समय निश्चित हो गया और निर्णय के आधार पर सात सौ बन्द पालकियाँ चित्तौड़ से निकलकर बादशाह के शिविर की तरफ रवाना हुई। प्रत्येक पालकी में छह-छह कहार थे और वे अपने वस्त्रों में लड़ने के लिए हथियार छिपाये थे। उन पालकियों में चित्तौड़ के शूरवीर सशस्त्र राजपूत बैठे थे। चित्तौड़ से निकल कर ये पालकियाँ बादशाह के शिविर के सामने पहुँच गई। बादशाह ने शिविर में आने के लिये एक बड़ा शामियाना लगा दिया था और उस शामियाने के चारों तरफ एक दरवाजा बनाकर कनातें लगा दी गई थीं। एक-एक करके सभी पालकियाँ उस शामियाने के भीतर पहुँच गईं।

तातार सेना चित्तौड़ से दिल्ली जाने के लिये तैयार हो चुकी थी और बादशाह को पद्मिनी को दिल्ली ले जाने में कोई संदेह नहीं रह गया था। उसने राणा भीमसिंह को पद्मिनी से अंतिम भेंट करने के लिए आधा घन्टे का समय दिया था। भीमसिंह शामियाने के भीतर पहुँचा। उसी समय एक पालकी में बैठे हुए राजपूत ने उसकी तरफ देखा और कुछ संकेतों के साथ राणा को अपनी पालकी में बिठा लिया। इस कार्य का सम्पादन बड़ी सावधानी और तत्परता के साथ हुआ। उसके बाद ही वह पालकी शामियाने से निकलकर चित्तौड़ की तरफ रवाना हुई। उसके पीछे चित्तौड़ की कुछ अन्य पालकियाँ भी वहाँ से लौटी। बाकी पालकियाँ शामियाने के भीतर मौजूद रहीं। राणा को जो आधे घन्टे का समय दिया गया था, उसके बीत जाने पर और राणा के शामियाने से न लौटने पर बादशाह को बहुत क्रोध आया। आवेश में आकर वह अपने स्थान से रवाना हुआ और सहज ही शामियाने के भीतर पहुँच गया। उसके साथ बहुत से सैनिक भी शामियाने के भीतर गये। बादशाह को देखते ही कहारों ने, जो पालकियों के साथ थे, आपस में कुछ संकेत किये और उसके बाद ही पालकियों के भीतर से सशस्त्र राजपूतों ने निकलकर बादशाह पर आक्रमण किया।

दोनों ओर से मार-काट आरम्भ हो गई। बादशाह के सैनिकों ने अलाउद्दीन की रक्षा बड़ी तेजी के साथ की। उसकी सेना को राजपूतों का कपट मालूम हो गया था। उसी समय तातार सेना का एक सैनिक दल भीमसिंह को पकड़ने के लिये चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ। शिविर से लौटी हुई पालकियाँ अभी तक चित्तौड़ से दूर थीं। बादशाह के सैनिकों के आ जाने पर पालकियों में बैठे हुए राजपूतों ने कूद कर उनका सामना किया। कुछ देर तक भयानक मार-काट हुई और उन राजपूतों ने भीमसिंह की सभी प्रकार से रक्षा की। इसी अवसर पर चित्तौड़ से आया हुआ एक तैयार घोड़ा मिला और उस पर बैठकर भीमसिंह

सुरक्षित अवस्था में चित्तौड़ पहुँच गया। बादशाह के सैनिकों ने उसका पीछा करते हुए दुर्ग के समीप सिंह द्वार पर आक्रमण किया।

दुर्ग के करीब चित्तौड़ के राजपूतों ने बादशाह के सैनिकों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया। वहाँ पर गोरा और बादल ने अपनी अद्‌भुत वीरता का प्रदर्शन किया। बादल की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। उसकी तलवार की मार से बादशाह के सैनिकों के छक्के छूट गये। बालक बादल ने बहुत से यवन सैनिकों का संहार किया। युद्ध करते हुए सिंह द्वार पर गोरा मारा गया। बादशाह के सैनिकों की संख्या अधिक थी। बहुत से राजपूत मारे गये। युद्ध बन्द हुआ तो कुछ थोड़े से बचे हुए राजपूतों के साथ बादल चित्तौड़ लौटकर आया।

शिविर और सिंह द्वार पर युद्ध का जो दृश्य उपस्थित हुआ, उसे देख कर बादशाह अलाउद्दीन का साहस टूट गया। इस दृश्य के पहले उसने कुछ और ही सोच रखा था और हुआ कुछ और। पद्मिनी को पाने के स्थान पर उसने जो पाया, उससे वह युद्ध को रोक कर अपनी सेना के साथ दिल्ली की तरफ रवाना हो गया। सिंह द्वार के युद्ध में रुधिर से नहाये हुए और सैकड़ों जख्मों से क्षत विक्षत बालक बादल चित्तौड़ पहुँचा। उसके साथ गोरा नहीं था। यह देखते ही गोरा की पत्नी युद्ध के परिणाम को समझ गई। उसने अपने गम्भीर नेत्रों से बादल की ओर देखा। उसकी सांसों की गति तीव्र हो उठी थी। वह बादल के मुँह से तुरन्त सुनना चाहती थी कि बादशाह के सैनिकों के साथ उसके पति गोरा ने किस प्रकार बहादुरी से युद्ध किया और शत्रुओं का संहार किया। वह बादल के कुछ कहने की प्रतीक्षा न कर सकी और उतावलेपन के साथ उससे पूछ बैठी– "बादल युद्ध का समाचार सुनाओ। प्राणनाथ ने आज शत्रुओं के साथ किस प्रकार युद्ध किया?" बादल में साहस था, उसमें बहादुरी थी। अपनी चाची को उत्तर देते हुए उसने कहा– "चाचा की तलवार से आज शत्रुओं का खूब संहार हुआ। सिंह द्वार पर डटकर संग्राम हुआ। चाचा की मार से शत्रुओं का साहस टूट गया। बादशाह के खूब सैनिक मारे गये। सीसोदिया वंश की कीर्ति को अमर बनाने के लिए शत्रुओं का संहार करते हुए चाचा ने अपने प्राणों की आहुति दी।"

बादल के मुँह से इन शब्दों को सुनकर गोरा की स्त्री को संतोष मिला। क्षण भर चुप रह कर और बादल के आगे कुछ न कहने पर उसने तेजी के साथ कहा– "अब मेरे लिए देर करने का समय नहीं है। प्राणनाथ को अधिक समय तक मेरी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।" यह देख कर वीरबाला गोरा की पत्नी ने जलती हुई चिता में कूद कर अपने प्राणों का अन्त कर दिया।

बादशाह अलाउद्दीन चित्तौड़ से दिल्ली चला गया। उसके दिल में जो आग पैदा हुई थी, वह किसी प्रकार बुझ न सकी। दिल्ली लौटने के कुछ दिनों के बाद उसने फिर चित्तौड़ पर आक्रमण करने का निर्णय किया और अपनी सफलता के लिए उसने इस बार अधिक शक्तिशाली सेना का गठन किया। अपनी पूरी शक्ति को संचय करके वह फिर दिल्ली से रवाना हुआ और सम्वत् 1346 सन् 1290 ईसवी में उसने चित्तौड़ पर अपना दूसरा आक्रमण किया। इस आक्रमण का समय फरिश्ता ग्रंथ में तेरह वर्ष बाद का लिखा गया है। दक्षिणी ओर के पहाड़ी हिस्से पर बादशाही सेना ने मुकाम किया और उसके नीचे उसने खाई खुदवा दी। दूसरी बार तातार सेना के चित्तौड़ में पहुँचते ही एक भयानक आतंक वहाँ पर फैल गया। पहले आक्रमण में जिस प्रकार चित्तौड़ के राजपूतों का संहार हुआ था, उनकी पूर्ति न हो सकी थी। वहाँ के शूरवीर राजपूत पहले ही चित्तौड़ की रक्षा में बलिदान हो चुके थे। इस समय चित्तौड़ की अवस्था अच्छी न थी। लेकिन बादशाह की फौज के आते ही चित्तौड़ के सामन्त और सरदार युद्ध की तैयारियाँ करने लगे और अपने-अपने राज्यों से वे

सभी चित्तौड़ में पहुँच गये। बड़ी तेजी के साथ युद्ध की तैयारियाँ हुई और राणा के बड़े पुत्र अरिसिंह ने चित्तौड़ की सेना लेकर बादशाह की फौज का सामना किया।

तीन दिनों तक यवनों और राजपूतों का भयानक संग्राम हुआ। चौथे दिन अरिसिंह मारा गया। उसके बाद अरिसिंह का छोटा भाई अजयसिंह युद्ध के लिए तैयार हुआ। परन्तु राणा भीमसिंह का प्रेम उसके साथ अधिक था, इसलिये अजयसिंह को युद्ध में जाने से रोका गया। इस अवस्था में अजयसिंह के जो छोटे भाई थे, एक-एक करके वे युद्ध में गये और सब मिलाकर राणा भीमसिंह के ग्यारह लड़के युद्ध में मारे गये। केवल अजयसिंह बाकी रहा। राणा का उसको युद्ध में भेजने का किसी प्रकार इरादा न था इसलिए उसे रोक कर भीमसिंह ने निश्चय किया कि अब मैं स्वयं युद्ध में लड़ने के लिये जाऊंगा।

चित्तौड़ में राणा भीमसिंह एक ओर युद्ध में जाने की तैयारी कर रहे थे तो दूसरी और महलों में जौहर व्रत पालन की व्यवस्था हो रही थी। रानियों और राजपूत बालाओं ने इस बात को समझ लिया था कि चित्तौड़ पर भयंकर संकट आ गया है और चित्तौड़ की स्वतन्त्रता के नष्ट होने के समय राजपूत रमणियों को अपने सतीत्व एवम् स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखने के लिए जौहर व्रत का पालन करना है। चित्तौड़ की पुरानी प्रणाली के अनुसार शत्रु के आक्रमण करने पर जब राज्य की रक्षा का कोई उपाय न रह जाता था तो सहस्त्रों की संख्या में राजपूत बालायें जौहर व्रत का पालन करती हुई एक साथ आग की होली में बैठ कर अपने प्राणों का उत्सर्ग करती थी। उसी जौहर व्रत की तैयारी इस समय आरम्भ हुई। राजप्रासाद के बीच में पृथ्वी के नीचे भीषण अंधकार में एक लम्बी सुरंग थी। दिन में भी उस सुरंग में भयानक अंधकार रहता था। इस सुरंग में बहुत सी. लकड़ियाँ पहुँचा कर चिता जलाई गई। उसी समय चित्तौड़ की रानियाँ, राजपूत बालायें और सुन्दर युवतियाँ अगणित संख्या में प्राणोत्सर्ग करने के लिये तैयार हुईं। सुरंग के भीतर आग की लपटें तेज होने पर वे सभी बालायें अपने बीच में पद्मिनी को लेकर सत्य, सतीत्व और स्वाधीनता के महत्त्व के गीत गाती हुई सुरंग की तरफ चली। सुंरग में प्रवेश करने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, उन सीढ़ियों से होकर वे सुरंग के भीतर प्रवेश करने के लिये नीचे उतरने लगीं। सीढ़ियों के भीतर जाने पर भयानक आवाज के साथ लोहे का बना हुआ सुरंग का मजबूत दरवाजा बन्द हुआ और कुछ क्षणों के भीतर सहस्त्रों राजपूत बालाओं के शरीर सुरंग की प्रज्ज्वलित आग में जलकर ढ़ेर हो गये।

चित्तौड़ की स्वाधीनता की कोई आशा नहीं रही थी। सुरंग का लौह द्वार बन्द होते ही राणा भीमसिंह की सेना युद्ध के लिये चित्तौड़ से निकली। बचे हुए सभी सामन्त और सरदार अपनी सेनाओं के साथ युद्ध में पहुँचे। बादशाह अलाउद्दीन की विशाल सेना के साथ चित्तौड़ का यह अंतिम युद्ध था।

युद्ध-स्थल पर चित्तौड़ की सेना के पहुँचते ही दोनों ओर से संग्राम आरम्भ हो गया। बादशाह के साथ दिल्ली से जो विशाल सेना आई थी, वह एक साथ युद्ध में कूद पड़ी। चित्तौड़ के राजपूत इस संग्राम को अपने जीवन का अन्तिम युद्ध समझते थे। इसलिए उन्होंने शत्रुओं के साथ युद्ध करने में कुछ कसर न रखी। भयानक रूप से दोनों सेनाओं में मार-काट हुई। राजपूत सेना के मुकाबले में बादशाह की सेना बहुत बड़ी थी। इसलिए भीषण युद्ध के बाद चित्तौड़ की सेना की पराजय हुई, अगणित संख्या में उसके सैनिक और सरदार मारे गये और चित्तौड़ की शक्ति का पूर्ण रूप से क्षय हुआ। युद्ध के कारण युद्ध का स्थल श्मशान बन गया। चारों ओर दूर-दूर तक मारे गये सैनिकों के शरीरों से जमीन अटी पड़ी थी और रक्त बह रहा था।

चित्तौड़ की सेना का संहार करके बादशाह अलाउद्दीन ने जब अपनी बची हुई सेना के साथ चित्तौड़ में प्रवेश किया तो नगर की अवस्था युद्ध स्थल से भी भयानक हो गई थी। चित्तौड़ की रानियों, राजपूत बालाओं और सुन्दर युवतियों के साथ रानी पद्मिनी ने सुरंग की होली में जिस प्रकार अपने प्राणोत्सर्ग किये, चित्तौड़ के भीतर पहुँच कर बादशाह को यह सब सुनने को मिला।

सन् 1303 ईसवी में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अधिकार किया और वहाँ पर कुछ दिनों तक रह कर वहाँ का शासन जालौर के सोरगरे वंश के मालदेव नामक सरदार को सोनगरे देकर वह दिल्ली चला गया। अलाउद्दीन ने सिंहासन पर बैठते ही 'सिकन्दर सानी' अर्थात् दूसरे सिकन्दर की उपाधि धारण की थी। उसके अत्याचारों से राजस्थान के सैकड़ों नगर मिट्टी में मिल गये थे। अनहिलवाड़ा, प्राचीन धार, अवन्ती और देवगढ़ आदि राज्यों में जहाँ सोलंकी, परमार, परिहार और तक्षक राजाओं के शासन थे, अलाउद्दीन ने आक्रमण करके भयानक अत्याचार किये और उनके साथ-साथ जैसलमेर, गागरोन तथा बूंदी राज्यों को भी उजाड़ कर नष्ट कर दिया। जिस समय अलाउद्दीन के भयानक अत्याचारों से राजस्थान के राज्यों का इस प्रकार सर्वनाश हो रहा था, मारवाड़ के राठौड़ और आमेर के कुशवाहा लोग किसी प्रकार अपना अस्तित्व कायम किये हुए थे। ये राठौड़ उस समय परिहार राजाओं के सामन्त थे और स्वतंत्र हो जाने की चेष्टा में थे। लेकिन कुशवाहा लोगों की शक्तियां बहुत क्षीण अवस्था में थीं। चित्तौड़ पर अधिकार करने के बाद अलाउद्दीन ने रानी पद्मिनी के महल को छोड़कर बाकी सभी महलों, शिवालयों और मंदिरों का विध्वंस करा दिया था।

चित्तौड़ के पतन के बाद राणा भीमसिंह का लड़का अजयसिंह चित्तौड़ छोड़कर कैलवाड़ा चला गया था। यह कैलवाला मेवाड़ के पश्चिम की तरफ अरावली पर्वत के ऊपर बसा हुआ एक नगर है। वहाँ पर रहकर अजयसिंह चित्तौड़ के भविष्य की चिंता करने लगा। चित्तौड़ के पतन के पहले अजयसिंह ने अपने पिता के मुँह से सुना था कि तुम्हारे बाद अरिसिंह का बेटा चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठेगा। पिता की इस बात को वह भूल न सका। लेकिन उस समय अरिसिंह के बेटे का कहीं पता न था। अरिसिंह के बड़े लड़के का नाम हमीर था। इसी हमीर को चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाने के लिए राणा भीमसिंह ने अजयसिंह को आदेश दिया था। इस हमीर के जन्म का वृतान्त भट्ट ग्रन्थों में इस प्रकार लिखा गया है:

राणा भीमसिंह का सबसे बड़ा लड़का अरिसिंह अपने कुछ सरदारों के साथ अन्दवा नामक जंगल में शिकार खेलने गया था। वहाँ पर उसने एक सूअर को मारने के लिए बाण चलाया। पर शूकर भाग कर एक जुआर के खेत में चला गया। अपने साथियों के साथ अरिसिंह ने उसका पीछा किया। खेत के मचान पर बैठी हुई एक युवती यह सब देख रही थी। अरिसिंह और उसके साथियों को अपने खेत के करीब देख कर उस युवती ने कहा– "आप थोड़ा-सा रुकें, इस सूअर को मैं आपके पास ला देती हूँ।"

अरिसिंह और उसके साथी अपने स्थान पर रुक कर खड़े हो गये। युवती मचान से उतरी और अपने खेत से उसने जुआर का एक पेड़ उखाड़ लिया। जुआर के जो पेड़ खड़े थे, वे दस-बारह फीट लम्बे थे। युवती ने उखाड़े हुए पेड़ के एक सिरे को नुकीला बनाया और अपने मचान पर चढ़कर उसने उसको अपने धनुष में चढ़ाकर छिपे हुए सूअर को मारा, जिससे घायल होकर वह मर गया। युवती ने उसे घसीट कर अरिसिंह के पास पहुँचा दिया और फिर वह अपने खेत में लौट आई।

युवती के इस पराक्रम को देखकर अरिसिंह और उसके सरदार आश्चर्य में पड़ गये। सभी उस युवती की प्रशंसा करने लगे और फिर धीरे-धीरे वहाँ से चल कर वे पास ही नदी के किनारे पहुँच गये। वहाँ पर खाने की सामग्री तैयार की गई। जहाँ पर वे लोग बैठे थे, कुछ ही फासले पर अरिसिंह का घोड़ा बँधा था। अकस्मात् मिट्टी का एक बड़ा सा ढेला खेत की तरफ से आकर अरिसिंह के घोड़े को लगा। वह तुरन्त गिर गया। यह देख कर अरिसिंह और उसके साथियों ने युवती के खेत की तरफ देखा। वह मिट्टी के ढेले फेंक-फेंक कर खेत में आने वाले पक्षियों को उड़ा रही थी। सभी ने समझ लिया कि इसी युवती के ढेले से घोड़े के चोट लगी है। इसी समय उस युवती को भी यह मालूम हो गया कि मेरे फेंके हुए एक ढेले से शिकारियों के एक घोड़े को चोट आ गई है। इसलिए अपने मचान से उतरकर वह युवती उन लोगों के पास पहुँची और उसने जो वातें की, उनसे उसकी निर्भीकता और सभ्यता को देखकर अरिसिंह और उसके सरदार आश्चर्य करने लगे। वातें करके युवती फिर अपने खेत में चली गई। अरिसिंह और उसके साथी सरदार भी शिकार से लौट आये।

लौट आने के बाद भी अरिसिंह उस युवती का स्मरण न भूला। उसने उसका पता लगवाया तो मालूम हुआ कि वह युवती चौहान वंश के एक साधारण राजपूत की लड़की है। सहज ही अरिसिंह के हृदय में उसके साथ विवाह करने की इच्छा पैदा हुई। उसने मित्रों से अपने विचार को जाहिर किया और साथ के कई आदमियों को लेकर वह युवती के पिता के पास गया। युवती का बाप बूढ़ा आदमी था उससे अरिसिंह का प्रस्ताव कहा गया। लेकिन वृद्ध पुरुष ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। परन्तु युवती की माता ने अपने पति को उस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए वाध्य किया। इस प्रकार उस युवती का विवाह अरिसिंह के साथ हो गया और उस युवती से जो लड़का पैदा हुआ, उसका नाम हमीर था। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के अधिकार करने के समय हमीर की अवस्था केवल वारह वर्ष की थी और उस समय तक वह अपने ननिहाल में ही रहता था। इसलिए चित्तौड़ में उसे कोई नहीं जानता था।

चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार होने के पहले ही अजयसिंह कैलवाड़ा के पहाड़ी स्थान पर चला गया था। उसके सामने चित्तौड़ के उद्धार की समस्या थी। इस समस्या को सुलझाने के लिए उसके पास कोई साधन न था। अजयसिंह जहाँ पर जाकर रह रहा था, वहाँ के पहाड़ी सरदारों में मुंजावलैचा नाम का एक सरदार अत्यन्त शूरवीर था। उसके साथ अजयसिंह की शत्रुता हो चुकी थी। कैलवाड़ा शेरो मल्ल प्रान्त का एक हिस्सा था। यहाँ पर मुंजावलैचा ने आक्रमण किया था और अजयसिंह ने उसके साथ युद्ध करके भाले से उसको घायल किया था। उस समय से मुँजा अजयसिंह के लिए वड़ा घातक सिद्ध हो रहा था और उसे पराजित करना अजयसिंह के लिए वहुत आवश्यक हो गया था। ऐसे समय पर अजयसिंह की सहायता उसके पुत्रों के द्वारा होनी चाहिए थी। सुजानसिंह और अजीमसिंह नाम के अजयसिंह के दो वेटे थे। अजीमसिंह वड़ा था, उसकी अवस्था उस समय 16 वर्ष की और सुजानसिंह की 15 वर्ष की थी। इस अवस्था में राजपूत वालक युद्ध में वहुत-कुछ काम करते हैं। लेकिन अपने दो बेटों से अजयसिंह को मुंजा की शत्रुता में कोई सहायता न मिली। इस अवस्था में अजयसिंह ने हमीर की खोज की और उसे मुंजा पर आक्रमण करने को भेजा। अजयसिंह के इस आदेश को मानकर हमीर मुँजा पर आक्रमण करने गया और कुछ ही दिनों में वह उसको मार कर लौटा। उस समय कैलवाड़ा के लोगों ने देखा कि अपने घोड़े पर वैठा हुआ और भाले की नोक पर मुँजा का सिर लिए हुए हमीर आ रहा है।

हमीर ने मुँजा का सिर लाकर अजयसिंह के सामने रख दिया। अजयसिंह ने हमीर को देख कर अत्यन्त प्रसन्नता और संतोप का अनुभव किया। उसकी समझ में आ गया कि अगर कोई संकट आया तो चित्तौड़ का वास्तविक अधिकारी हमीर ही हो सकता है। अजयसिंह ने संतोप और प्रसन्नता का अनुभव करते हुए हमीर के मुख का चुम्वन किया और मुंज़ा के कटे हुए सिर के रुधिर से हमीर के ललाट पर राजतिलक कर दिया।

अजयसिंह के दोनों लड़कों ने यह सव अपनी आँखों से देखा। उनके ऊपर इन वातों का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ दिनों के वाद कैलवाड़ा में अजीमसिंह की मृत्यु हो गयी और सुजान सिंह अपने पिता से असंतुष्ट होकर दक्षिण की तरफ चला गया और वहाँ पर उसने एक नये वंश की स्थापना की। उसी वंश में शिवाजी नाम का एक वालक उत्पन्न हुआ, जिसने अपने प्रताप से भारत वर्ष में अमिट कीर्ति प्राप्त की और इस देश में मुगलों के शासन को मिटाकर अपना एक विशाल राज्य कायम किया।[1]

सम्वत् 1357 सन् 1301 ईसवी में हमीर को मेवाड़ राज्य का अधिकारी वनाया गया। परन्तु उस समय हमीर के हाथ में कुछ न था और चारों ओर शत्रुओं का आधिपत्य था। हमीर साहसी और शूरवीर था। अजयसिंह के राजतिलक करने के वाद हमीर ने अपनी शक्तियों का संचय करना आरम्भ किया। सवसे पहले उसने मुंजावलैचा के राज्य पर आक्रमण किया और उसके सालिओ नाम के पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया।

वादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अधिकार करके वहाँ का राज्य प्रवंध सरदार मालदेव को सौंप दिया था और मालदेव दिल्ली की सेना के साथ चित्तौड़ में रहता था। इस वात को हमीर जानता था। वह किसी प्रकार चित्तौड़ का उद्धार करना चाहता था। परन्तु इसके लिए उसके पास न तो सैनिक शक्ति थी और न धन-शक्ति। लेकिन हमीर के हृदय में साहस और विश्वास था। उसने चित्तौड़ के उद्धार के लिए योजना वना डाली और उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उसने छोटे-छोटे स्थानों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उसने अपने अधिकार में कुछ धन शक्ति और सैन्य शक्ति प्राप्त कर ली। इसके वाद उसने मेवाड़ राज्य में घोपणा की कि जो लोग राणा हमीर को अपना शासक मानने के लिए तैयार हों, वे अपने स्थानों को छोड़कर पश्चिमी भाग के पहाड़ पर आ जाएं। जो ऐसा न करेंगे, उनको शत्रुओं में मान लिया जायेगा।

इस घोपणा के होते ही लोगों ने अपने घर द्वार छोड़े और अरावली पर्वत के पहाड़ी स्थानों पर पहुँच कर रहना आरम्भ किया। इसके पश्चात् राणा हमीर ने मेवाड़ के नगरों और गाँवों पर आक्रमण करके उनको उजाड़ना शुरू किया। मेवाड़ की प्रजा पहले से ही घोपणा को सुनकर पहाड़ों पर चली गई थी। इसलिए मेवाड़ के नगर और ग्राम आपने आप उजड़े हुए दिखाई देते थे। सम्पूर्ण रास्ते विगड़ कर भयानक हो थे। उन नगरों और ग्रामों में जब शत्रु की ओर से कोई आता तो राणा हमीर के सैनिक उन पर हमला करते और उनको लूट कर जान से मार डालते थे।

हमीर की उस नीति से शत्रुओं का संहार आरम्भ हुआ। चित्तौड़ में दिल्ली की जो सेना रहती थी, उसने इन आक्रमणकारियों से वदला लेने के लिए वहुत-कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उसे कुछ सफलता न मिली। हमीर की ओर से इस प्रकार के जो व्यवहार किये गये, उनसे न केवल शत्रुओं को आघात पहुँचा, वल्कि मेवाड़ के वहुत से स्थान निर्जन हो गये।

---

1. भट्ट ग्रन्थों में विस्तार के साथ इस वात का उल्लेख किया गया है कि सुजानसिंह ने दक्षिण में जा कर जो अपना वंश चलाया था, शिवाजी उसी का वंशज था। उस वंश को भट्ट ग्रन्थों में अजयसिंह ने आरम्भ किया है और शिवाजी तक जो नाम आये हैं, वे इस प्रकार हैं-अजयसिंह, सुजानसिंह, दिलीप जी, शिवाजी, तेरव जी, देवराज, उग्रसेन, माहुल जी, खेल जी, जनक जी, सत्य जी, शम्भू जी और शिवा जी।

जो भूमि हरे-भरे खेतों से शोभायमान रहा करती थी, वह जंगलों के रूप में बदल गयी। समस्त रास्ते अरक्षित हो गये और वाणिज्य व्यंवसाय के स्थान सूने मैदानों के रूप में दिखायी देने लगे।

राणा हमीर ने चित्तौड़ के लिए जो योजना बनायी थी, उसके कारण इस प्रकार मेवाड़ का विनाश हुआ। परन्तु इसके सिवा शत्रु को निर्बल करने के लिए उसके पास और कोई साधन न था। वह साहस से काम ले रहा था और अपनी शक्तियों को मजबूत बनाने के लिए बहुत समय तक वह इसी प्रकार के कार्य करता रहा।

राणा हमीर ने कैलवाड़ा में ही अपने रहने का स्थान बनाया। यहाँ पर उसने एक विशाल तालाब तैयार करवाया। उसका नाम हमीर का तालाब रखा गया। राणा हमीर के उस स्थान पर रहने के कारण कैलवाड़ा का पहाड़ी स्थान मनुष्यों से भर गया। वहाँ के जो स्थान जंगली, पहाड़ी और सुनसान थे वे अब मनुष्यों के कोलाहल से प्रत्येक समय भरे रहने लगे। कैलवाड़ा के इस नये निर्माण में राणा हमीर ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। वहाँ पर उसने अनेक ऐसे गुप्त मार्ग भी बनवाये; जहाँ पर शत्रु की सेना आकर कभी कोई हानि न पहुँचा सकती थी। लेकिन उसका स्वयं सुरक्षित अवस्था में वहाँ से लौटना बहुत कठिन था। कैलवाड़ा अरावली पर्वत के शिखर पर बसा हुआ है उस शिखर पर ही बहुत दिनों के बाद कमलमीर का प्रसिद्ध दुर्ग बना।

इन दिनों में कैलवाड़ा की शोभा बहुत बढ़ गयी। वहाँ के जंगली वृक्षों ने इस शोभा को वढ़ाने में बहुत-कुछ सहायता की। उसके स्थान-स्थान पर पहाड़ी नदियाँ प्रवाहित हो रही थीं और उनके द्वारा प्रकृति का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया था। वहाँ पर खाने के लिए अनेक प्रकार के फलों की अधिकता थी। इस बीच में बसे हुए लोगों ने वहाँ पर खेती का कार्य भी आरम्भ कर दिया था। यहाँ का विस्तार भट्ट ग्रन्थों में पच्चीस कोस लिखा गया है। यह स्थान पृथ्वी से आठ सौ और समुद्र की सतह से दो हजार मीटर की ऊंचाई पर है। इस विशाल पर्वत में अगणित ऐसे गुप्त मार्ग है, जिनमें शत्रुओं का प्रवेश बहुत-कुछ असम्भाव है। परन्तु इस समय वहाँ पर जो लोग रहते थे, वे सब वहाँ के गुप्त मार्गों से निकल कर भीलों के राज्य में आते जाते और उनके साथ सहयोग रख कर आवश्यकता के अनुसार उससे लाभ उठाते। अगुनापनीर के भील लोग गुहिलोत राजपूतों के भक्त रहे। उनकी सेवाएं सदा मेवाड़ के राजपूतों को प्राप्त हुईं और आवश्यकता पड़ने पर उन भील लोगों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। उनकी इन बातों ने मेवाड़ के राजपूतों को उनके समर्थक बनने का अवसर दिया था। परन्तु बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का सर्वनाश करने के साथ-साथ इन भीलों के विनाश का भी काम किया था।

राणा हमीर जिन दिनों में चित्तौड़ के उद्धार के लिए चिंतित हो रहा था, चित्तौड़ के राजा मालदेव के यहाँ से उन्हीं दिनों में एक समाचार आया और उसके द्वारा मालदेव ने हमीर के साथ अपनी लड़की का विवाह करने के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया। राणा हमीर और उसके शुभचिंतक राजा मालदेव के इस प्रस्ताव का रहस्य समझ न सके। राणा हमीर के मन्त्रियों ने उस प्रस्ताव पर अनेक प्रकार के संदेह किये और उन लोगों ने चाहा, कि राणा हमीर राजा मालदेव की प्रार्थना को अस्वीकार कर दें।

मन्त्रियों ने राणा हमीर से सभी प्रकार की बातें की। परन्तु मन्त्रियों के अनुसार हमीर विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सका। उसने अपने शुभचिन्तक मंत्रियों को समझाते हुए कहा - "मैं भी इस बात को समझता हूँ कि राजा मालदेव के साथ मेरे सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। वह हमारे शत्रु बादशाह अलाउद्दीन की तरफ से हमारे पूर्वजों के राज्य चित्तौड़ पर

शासन कर रहा है। इस दशा में हमारा और मालदेव का एक होना अथवा सम्वन्धी होना कैसे सम्भव हो सकता है। इसलिये सहज ही इस वात को समझा जा सकता है कि राजा मालदेव ने मेरे विरूद्ध के लिए किसी प्रकार का षड्यंत्र रचा होगा। परन्तु उससे सव को घवराने और चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी भयानक विपदाओं में उज्जवल भविष्य का संदेश छिपा रहता है। मालदेव का कुछ भी अभिप्राय हो, हमें उससे घवराने की आवश्यकता नहीं है। घवराना निर्वलों का कार्य है। कठिनाइयों का स्वागत करना और हँस-हँसकर विपदाओं का सामना करना शूरवीरों का कार्य होता है। महान सफलताओं की प्राप्ति भीषण कठिनाइयों को पार करने के वाद होती है। इस सत्य के आधार पर राजा मालदेव के प्रस्ताव को स्वीकार करना ही उचित है।"

राणा हमीर के मुख से इन साहसपूर्ण वातों को सुनकर उसके मन्त्री कुछ विरोध न कर सके। विवाह का निश्चय हो गया। उसकी तैयारियां भी हो चुकी थी। राणा हमीर पाँच सौ शूरवीर सैनिक सवारों को साथ में लेकर विवाह के लिए चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ। चित्तौड़ के निकट आने पर नगर का विशाल फाटक दिखाई पड़ा। पास पहुँचने पर मालदेव की तरफ से पाँच आदमियों ने स्वागत किया। ये पाँचों मालदेव के वेटे थे। परन्तु वहाँ पर राणा हमीर को विवाह की कोई तैयारी दिखाई न पड़ी।

राणा हमीर अपने सैनिकों के साथ चित्तौड़ के भीतर पहुँच गया। उसने वहाँ पहुँचकर अपने गम्भीर नेत्रों से इधर-उधर देखा, अपने जीवन में चित्तौड़ के उसने पहले पहल दर्शन किये थे। उसने वहाँ के विशाल भवनों और राजमहलों को देखा। उसी समय अपने पुत्र वनवीर के साथ मालदेव ने आकर राणा हमीर का सत्कार किया। उसके वाद हमीर राज प्रासाद के भीतर उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ विवाह का मण्डप वनाया गया था। परन्तु वहाँ पर भी विवाह की तैयारी उसे दिखाई न पड़ी। इस समय उसके हृदय में आशंकायें उत्पन्न हुईं। परन्तु सचेत और सावधान होकर उसने साहस से काम लिया।

इसी समय मालदेव ने अपनी लड़की को लाकर हमीर के सामने खड़ा कर दिया। इस समय भी किसी वैवाहिक प्रणाली का सम्पादन न हुआ। हमीर ने लड़की का हाथ पकड़ा। दोनों की गांठें वाँधी गयीं और विवाह का कार्य सम्पन्न हो गया। पुरानी प्रथा के अनुसार वर और कन्या दोनों को प्रासाद के एकान्त में पहुँचाया गया। मालदेव की लड़की सयानी थी। उसने राणा हमीर की तरफ देखकर उसकी चिन्ताओं को अनुभव किया। इसके वाद उसने नम्रता के साथ कहा– "आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। वास्तव में मैं विधवा हूँ। छोटी अवस्था में मेरा विवाह हुआ था। अपने उस विवाह की कोई वात मैं नहीं जानती। अपने पति को मैंने देखा भी नहीं था। जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था, कुछ ही दिनों के वाद वह लड़ाई में मारा गया था और उसके वाद मैं विधवा मानी गयी।"

मालदेव की लड़की के सुख से इन वातों को सुनकर राणा हमीर ने उसकी तरफ देखा और इस वात को अनुभव किया कि राजा मालदेव ने अपनी विधवा लड़की के साथ विवाह करके मेरा अपमान किया है। इसी समय उसने लड़की के नेत्रों में आंसू देखे। वह सव कुछ भूल गया और उसको संतोष देने के लिए हमीर ने कुछ वातें उससे कहीं। उन वातों में यह भी कहा कि तुम्हारे साथ विवाह होने से मैं किसी प्रकार का खेद नहीं करता। मेरे सामने चित्तौड़ की गुलामी का प्रश्न है, जिसके लिए मैं वहुत दिनों से चिन्तित हूँ।

राणा हमीर के मुख से इस वात को सुनकर उसका मुख मण्डल प्रसन्न हो उठा। उसने गम्भीरता के साथ कहा–"मैं समझती हूँ। मैं इस विषय में आपकी शायद कुछ सहायता कर सकूँगी।"

यह कहकर उसने संक्षेप में राणा हमीर के साथ कुछ परामर्श किया और उसी के आधार पर हमीर ने मालदेव से दहेज में जलधर नाम का सरदार माँगा। मालदेव ने इसे स्वीकार किया। विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद हमीर अपनी पत्नी के साथ जलधर को लेकर कैलवाड़ा लौट आया।

कुछ दिनों तक हमीर अपनी पत्नी के साथ चित्तौड़ के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के परामर्श करता रहा। इन्हीं दिनों में उसकी पत्नी गर्भवती हुई। उससे लड़का पैदा हुआ, उसका नाम क्षेत्रसिंह रखा गया। इसकी प्रसन्नता में राजा मालदेव ने राणा हमीर को अपना सम्पूर्ण पहाड़ी इलाका दे दिया। अपनी अवस्था के बारह महीने बीत जाने पर क्षेत्रसिंह अपनी माता के साथ चित्तौड़ आया। उन दिनों में मालदेव अपनी सेना लेकर मादेरिया के मीर लोगों का दमन करने के लिए चित्तौड़ से चला गया था। क्षेत्रसिंह की माँ ने राणा हमीर के परामर्श के अनुसार अवसर पाकर चित्तौड़ के सरदारों के साथ बातें कीं और हमीर के पास संदेश भेजा। तुरन्त राणा हमीर चित्तौड़ के लिए रवाना हुआ। वहाँ पहुँचते ही उसका विरोध किया गया। परन्तु राणा हमीर को कोई रोक न सका। राणा हमीर ने अपने सैनिकों के बल पर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।

मालदेव मीर लोगों पर विजय प्राप्त करके अपनी सेना के साथ चित्तौड़ वापस आया। वहाँ पर उसने आकर सब हाल सुना। चित्तौड़ के सामन्त और सरदार राणा हमीर के साथ मिल गये थे। इस अवस्था में निराश होकर वह दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। बादशाह अलाउद्दीन के बाद मोहम्मद खिलजी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। मालदेव ने चित्तौड़ का सब हाल उसको सुनाया। मोहम्मद खिलजी अपनी फौज लेकर मालदेव के साथ चित्तौड़ की तरफ चला। राणा हमीर ने अपनी सेना लेकर दिल्ली की फौज का सामना किया। दोनों ओर से भीषण संग्राम हुआ। युद्ध में मालदेव का लड़का हरीसिंह मारा गया। अंत में राणा हमीर की विजय हुई। मोहम्मद खिलजी कैद करके चित्तौड़ में रखा गया। तीन महीने के बाद बादशाह ने अजमेर, रणथम्भौर, नागौर, शुआ और शिवपुर के इलाकों के साथ एक सौ हाथी और पचास लाख रुपये देकर चित्तौड़ की जेल से मुक्ति पायी।

राजा मालदेव की एक न चली। यह देखकर उसके बड़े लड़के बनवीर ने राणा हमीर की अधीनता को स्वीकार कर लिया। राणा हमीर ने नीमच, जीरण, रतनपुर और केवारा के इलाके बनवीर को दे दिये और उससे कहा– "जो इलाके तुमको दिये गये हैं, उनसे तुम अपना और अपने परिवार का जीवन निर्वाह करो। अभी तक तुम यवनों की दासता में थे, अब अपने ही देश और वंश वालों की दासता में तुमको रहना पड़ेगा।"

राणा हमीर की इन बातों को सुनकर बनवीर प्रभावित हुआ। मेवाड़ राज्य का भक्त बनकर रहने के लिए उसने निश्चय किया। इसके कुछ ही दिनों बाद उसने भिनसोर पर आक्रमण किया और उसे जीतकर मेवाड़ राज्य में मिला दिया। यहीं से बनवीर पर राणा हमीर का विश्वास कायम हुआ। यवनों की अधीनता से चित्तौड़ का उद्धार हुआ और राजस्थान के सभी राजा राणा हमीर का सम्मान करने लगे।

राणा हमीर ने इसके बाद लगातार उन्नति की और थोड़े ही दिनों में वह भारतवर्ष का एक पराक्रमी राजा बन गया। मुस्लिम सेनाओं के आक्रमण से जो नगर और ग्राम बरबाद हो गये थे, राणा हमीर ने उनका फिर से निर्माण किया। उसका प्रभाव सम्पूर्ण राजस्थान में काम करने लगा और मारवाड़, जयपुर, बूँदी, ग्वालियर, चन्देरी, रायसीन, सीकरी, कालपी तथा आबू आदि राज्यों के राजाओं ने राणा हमीर की अधीनता स्वीकार की। राणा हमीर ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मेवाड़ राज्य का फिर से निर्माण किया।

राणा हमीर की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का क्षेत्रसिंह सम्वत् 1421 सन् 1365 ईसवी में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता के समान सुयोग्य और बुद्धिमान था। अपने शासन काल में उसने अजमेर और जहाजपुर में आक्रमण करके विजय प्राप्त की और माण्डलगढ़ देसूरी एवम् चम्पन को अपने राज्य में शामिल कर लिया। दिल्ली के किसी तुगलक बादशाह हुमायूँ के साथ बकरौल नामक स्थान पर उसने एक युद्ध किया और दिल्ली की विशाल सेना को उसने पराजित किया।[1]

मेवाड़ के अन्तर्गत बनेडा नामक एक स्थान है। उसके हाड़ा वंशीय एक सरदार की लड़की से क्षेत्रसिंह की सगाई हुई थी। परन्तु विवाह के पहले ही उस सरदार ने धोखे से क्षेत्रसिंह को मार डाला। क्यों मार डाला, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। क्षेत्रसिंह की मृत्यु के बाद राणा लाखा सम्वत् 1339 सन् 1383 ईसवी में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। इसके कुछ ही समय के बाद मेरवाड़ा पर आक्रमण कर उसने उसको पराजित किया और उसके प्रसिद्ध दुर्ग विराटगढ़ को बरबाद करके उसके स्थान पर बदनौर के मशहूर दुर्ग की स्थापना की। उसके शासन काल में मेवाड़ की बहुत उन्नति हुई। राणा लाखा ने साखला वंश के बहुत से राजपूतों को-जो आमेर के अन्तर्गत नगराचल नामक स्थान में रहते थे, पराजित किया था। दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह लोदी के साथ भी उसने युद्ध किया और बिदनौर नामक स्थान पर उसने बारशाह की सेना को पराजित किया। उसके शासन काल में म्लेच्छों ने गया पर चढ़ाई की थी। उनसे युद्ध करने के लिए अपनी सेना लेकर राणा लाखा वहाँ पहुँचा था और युद्ध करते हुए वह मारा गया। उसके शासन काल में मेवाड़ में शिल्प की बहुत उन्नति हुई। कितने ही सुन्दर तालाबों को बनवा कर उसने अपने राज्य की शोभा बढ़ाई थी। इनके सिवा उसने कितने ही मन्दिरों का निर्माण करवाया, जिनमें ब्रह्माजी का मंदिर आज तक प्रसिद्ध है। राणा लाखा के बहुत-से लड़के पैदा हुए, जिन्होंने राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर अपने नये-नये वंश चलाये। उनमें लूमावत और दूलावत नाम के वंश अधिक प्रसिद्ध हैं। राणा लाखा के बड़े लड़के का नाम चूँडा था। अपने पिता के राज्य का वही अधिकारी था। लेकिन वह सिंहासन पर नहीं बैठा। इसका कारण और वर्णन आगामी परिच्छेद में किया जायेगा।

□

---

1. इस हुमायूँ के सम्बन्ध में पाठक संदेह कर सकते हैं। इसलिए कि भारतवर्ष के इतिहास में सन् 1365 ईसवी से लेकर सन् 1383 ईसवी तक किसी हूमायूँ का नाम नहीं पाया जाता। बाबर का वंशज हुमायूँ सोलहवीं शताब्दी में हुआ था। एलफिन्सटन ने अपने लिखे हुए भारत के इतिहास में दिल्ली के बादशाह नसीरुद्दीन तुगलक के बेटे हुमायूँ का उल्लेख किया है। वह अपने पिता के बाद सन् 1394 ईसवी में सिहासन पर बैठा था। जहाँ तक सम्भव है, टाड साहब ने यहाँ पर उसी हुमायूँ का उल्लेख किया है। यद्यपि उसके शासनकाल का समय भी क्षेत्रसिंह के शासनकाल से दूर पड़ जाता है। परन्तु सिंहासन पर बैठने के पहले उसका युद्ध में आना सम्भव हो सकता है।

अध्याय - 16
महाराणा मोकर तक का वर्णन

यदि स्त्री के प्रति पुरुष की भक्ति और उसके सम्मान को कसौटी माना जाये तो एक राजपूत का स्थान सबसे श्रेष्ठ माना जायेगा। वह स्त्री के प्रति किये गये असम्मान को कभी सहन नहीं कर सकता और इस प्रकार का संयोग उपस्थित होने पर वह अपने प्राणों को बलिदान कर देना अपना कर्त्तव्य समझता है। जिन उदाहरणों से इस प्रकार का निर्णय करना पड़ता है, उससे राजपूतों का सम्पूर्ण इतिहास ओत-प्रोत है।

जीवन की परिस्थितियों को पार करते हुए राणा लाखा का वुढ़ापा आ गया था। इन्हीं दिनों में मारवाड़ के राजा रणमल्ल ने चित्तौड़ राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार चुंडा के साथ अपनी लड़की का विवाह करने के लिए राणा लाखा के पास अपना दूत भेजा। दूत की बात को सुनकर राणा लाखा ने कहा–"राजकुमार चुँडा कुछ समय में यहाँ पर आने वाला है। इसके सम्बन्ध में वह स्वयं आकर अपनी स्वीकृति देगा।"इसके वाद अपनी दाढ़ी पर हाथ रखते हुए राणा ने दूत से फिर कहा–"मैं इस प्रकार की कल्पना नहीं करता कि तुम मेरे जैसे सफेद दाढ़ी मूंछ वाले आदमी के लिए इस प्रकार खेल की सामग्री लाये हो।"

इसी समय राजकुमार चुँडा दरवार में आया और दूत के प्रस्ताव को सुनकर उसने कहा–"यद्यपि पिता ने परिहास में इस सम्वन्ध को अपने लिए माना है, फिर भी मेरे लिए यह कैसे सम्भव है कि मैं उस सम्वन्ध को स्वीकार कर लूँ।" चूँडा के इस जवाव को राणा ने सुना और उसने उसको समझाना आरम्भ किया। परन्तु राजकुमार की समझ में एक भी बात न आयी। इस दशा में राणा के सामने भयानक संकट पैदा हो गया। राजकुमार विवाह को स्वीकार करने के लिए किसी प्रकार तैयार न था और सगाई के लिए आया हुआ नारियल लौटा देने से मारवाड़ के राजा रणमल्ल का अपमान होता था। राणा ने राजकुमार को फिर समझाने की चेष्टा की। लेकिन राजकुमार तैयार न हुआ। इस परिस्थिति में राजा रणमल्ल को अपमान से वचाने के लिए राणा ने स्वयं अपने साथ विवाह करना मंजूर किया और राजकुमार चूँडा से कहा– "तुम्हारे मंजूर न करने पर मैं स्वयं यह विवाह करूँगा। लेकिन इस बात को याद रखो कि उससे यदि लड़का पैदा हुआ तो वह इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा और उस दशा में तुम्हारा कोई अधिकार न रहेगा।" राजकुमार चूँडा ने पिता की इस वात को स्वीकार किया।

राजा रणमल्ल की वारह वर्षीय लड़की के साथ पचास वर्ष की अवस्था में राणा ने विवाह किया और उससे जो लड़का पैदा हुआ, उसका नाम मोकल रखा गया। मोकल की पाँच वर्ष की अवस्था में राणा लाखा गया में अपनी सेना लेकर युद्ध करने गया था, जव

वहाँ पर म्लेच्छों ने आक्रमण किया था, उस युद्ध में वह मारा गया। गया के संग्राम में जाने के पहले राणा को अपने लौटकर आने में संदेह उत्पन्न हुआ, इसलिए पाँच वर्ष के बालक मोकल को राजतिलक करने का उसने विचार किया। सारी व्यवस्था की गयी और अभिषेक के समय राजकुमार चूँडा ने स्वयं मोकल के माथे पर राजतिलक किया। उस दिन से राणा मोकल चित्तौड़ के सिंहासन का अधिकारी बना।

राजकुमार चूँडा के मनोभावों में मोकल के प्रति सत्यता और उदारता थी। मोकल की अवस्था बहुत छोटी थी। इसलिए चूँडा स्वयं राज्य का प्रबंध देखने लगा। उसके इस कार्य में उसकी सहानुभूति के सिवा और कुछ न था। परन्तु मोकल की मां इस बात से ईर्ष्या करने लगी। राज्य का प्रबंध वह स्वयं अपने हाथों में रखना चाहती थी। इसलिए उसने समय-समय पर चित्तौड़ के लोगों से कहना आरम्भ किया कि राजकुमार चूँडा स्वयं राणा बनना चाहता है। उसकी इस बात को चन्द्र ने भी सुना। उसके हृदय को आघात पहुँचा। उसने मोकल की माँ को इस बात का विश्वास दिलाने की चेष्टा की कि मैं राज्य पाने की अभिलाषा नहीं रखता। मोकल के प्रति मैं प्रेम करता हूँ और राज्य का भविष्य उज्ज्वल देखना चाहता हूँ। इस समय मोकल की अवस्था बहुत छोटी है। इसलिए मैं राज्य की देख-भाल करता हूँ। लेकिन यदि आपको मेरा यह कार्य पसन्द नहीं है तो मैं चित्तौड़ छोड़कर चले जाने के लिए तैयार हूँ।

राजकुमार चूँडा की बातों से मोकल की माता को सन्तोष न मिला। इसलिए राजकुमार चूँडा चित्तौड़ छोड़कर माँडू राज्य चला गया। वहाँ के राजा ने उसका बहुत सम्मान किया और अपने राज्य का हल्लर नामक इलाका उसको दे दिया। राजकुमार चूँडा वहीं पर रहने लगा।

चित्तौड़ के राज सिंहासन पर पाँच वर्ष का बालक मोकल था और राज्य के अधिकार उसकी माता के हाथ में थे। चूँडा के चले जाने के बाद मोकल के ननिहाल के लोगों की चित्तौड़ में आना आरम्भ हुआ और एक-एक करके वहां के आदमियों से चित्तौड़ के समस्त स्थान भरे दिखाई देने लगे। उन सब के साथ मोकल का मामा जोधा और उसका नाना राठौड़ राजपूत रणमल्ल भी मारवाड़ छोड़ कर चित्तौड़ में आ गया था। इस प्रकार मन्दोर राज्य के लोगों का चित्तौड़ में बढ़ता हुआ आधिपत्य और अधिकार देखकर सिसोदिया वंश की एक बूढ़ी धात्री को बहुत दुःख हो रहा था। राजकुमार चूँडा का पालन-पोषण उसी ने किया था। इस समय के दृश्य को देखकर वह धात्री सोचा करती थी कि मेवाड़ राज्य के भविष्य में क्या परिवर्तन होने वाला है। क्या बप्पा रावल के सिंहासन पर राठोड़ लोगों का अधिकार होगा? क्या सिसोदिया वंश अब मिटने वाला है? इस प्रकार की बहुत सी बातों को सोचकर वह धात्री मन-ही-मन बहुत चिन्तित रहने लगी।

एक दिन बहुत-कुछ सोच-समझकर यह धात्री मोकल की माता के पास गई और अत्यन्त नम्र शब्दों में उसने कहना आरम्भ किया–"तुम राजमाता हो। तुम्हारा छोटा बालक मोकल इस राज्य का स्वामी है। मैं तुम्हारी एक दासी हूँ और जीवन भर मैंने इस सिसोदिया वंश के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना की है। इस समय चित्तौड़ में जो कुछ हो रहा है, उसको देखकर मेरे प्राण कांप रहे हैं। मैं नहीं जानती कि तुम कुछ समझती हो या नहीं। परन्तु मुझे साफ-साफ दिखाई देता है कि अब चित्तौड़ में सिसोदिया वंश के स्थान पर राठौड़ वंश की जड़ मजबूत हो रही है।"

धात्री के मुँह से इन बातों को सुनकर मोकल की माता सन्नाटे में आ गयी। उसको स्वयं अब इन बातों पर सन्देह होने लगा और वह गम्भीरता के साथ धात्री की कही बातों

पर विचार करने लगी। धात्री की बातें उसे सही मालूम हुई। उसने बड़ी देर तक धात्री के साथ बातें की। अब उसकी समझ में आया कि चित्तौड़ से राजकुमार चूँडा को हटाकर मैंने बहुत बड़ी भूल की है। इन बातों पर जितना ही उसका ध्यान गया, उतना ही उसको धात्री की बातों पर विश्वास होने लगा।

उसने गम्भीरता के साथ चित्तौड़ की परिस्थिति को समझने की कोशिश की। उसको इन्हीं दिनों में मालूम हुआ कि रणमल्ल की आंखें चित्तौड़ के शासन पर लगी हैं। मोकल के प्रति भी रणमल्ल के विचार अच्छे नहीं हैं। उसे यह भी मालूम हुआ कि चूँडा के दूसरे भाई रघुदेव को रणमल्ल ने ही धोखे से मरवा डाला था।

राजमाता की शंकायें अब बढ़ने लगीं। चिन्ताओं के मारे वह घबराने लगी। वह सोचने लगी कि जिसने रघुदेव की हत्या करायी है, वह राज्य के लोभ में मोकल का भी वध करा सकता है। राजकुमार चूँडा के प्रति उसके हृदय में ईर्ष्या पैदा कराने का कार्य भी रणमल्ल ने ही किया था, इसका स्मरण अब उसे बार बार-बार होने लगा। वह जितना ही सोचती थी, उतना ही उसे संकटों से घिरा हुआ चित्तौड़ दिखायी देता था। उसकी समझ में आ गया कि सम्पूर्ण मेवाड़ के शासन को मेरे पिता ने अपने अधिकार में कर रखा है। राज्य में छोटे और बड़े जितने भी कर्मचारी हैं, वे मेरे पिता के द्वारा मारवाड़ से आये हैं और राज्य के ऊंचे पदों पर सभी राठौड़ राजपूत हैं। उन स्थानों पर मेवाड़ के जो लोग काम करते थे, उनको नौकरियों से अलग कर दिया गया है और चित्तौड़ के सब से बड़े पद पर जैसलमेर का एक भाटी राजपूत है।

राजमाता को अब धात्री की बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह सोचने लगी कि इस संकट से चित्तौड़ को बचाने का अब उपाय क्या है। यदि सावधानी के साथ कोई उपाय न किया गया तो चित्तौड़ का राज्य सिंहासन राठौड़ो के हाथ में चला जायेगा। बड़ी चिन्ता और घबराहट के साथ इस संकट के समय उसने राजकुमार चूँडा की याद की और उसे बुलाने के लिए उसने अपना दूत भेजा। जिस समय चूँडा चित्तौड़ छोड़कर मान्डू राज्य में गया था, उसके साथ चित्तौड़ के दो सौ भील अपने परिवारों को चित्तौड़ में छोड़कर उसके साथ गये थे।

राजकुमार चूँडा ने अपनी विमाता का पत्र पाकर चित्तौड़ के भीलों से परामर्श किया और अपने आने के पहले उसने उन भीलों को चित्तौड़ भेज दिया। उनके द्वारा उसने विमाता के पास अपना एक सन्देश भी भेजा। उसे सुनकर मोकल की माता को बहुत सन्तोष मिला। भीलों ने आकर उसको जो बातें समझायीं, उसने उन्हीं के अनुसार सब कुछ करने का निश्चय किया। उन्हीं दिनों में दिवाली का त्यौहार था। उसके उत्सव को मनाने के लिए मोकल अपने आदमियों और माता के साथ गोगुन्दा नामक नगर में गया। राजमाता ने वहाँ पर दिन भर गरीबों को भोजन कराया।

शाम हो जाने पर अंधेरा होने के साथ-साथ राजकुमार चुँडा भेष बदले हुए घोड़े पर अपने निर्भीक चालीस सवारों के साथ वहाँ पर आ गया। उन सब के आगे राजकुमार चूँडा वहाँ था। राजमाता ने उसे पहचान लिया। चूँडा ने आते ही राणा मोकल को अभिवादन किया। सब के सब चित्तौड़ की तरफ चले और सिंह द्वार पर पहुँच गये। उनके साथ पूर्व निश्चय के अनुसार और साथ के सभी लोग थे। रामपोल नामक द्वार पर चित्तौड़ के द्वारपालों ने उन्हें रोका। उनको उत्तर देते हुए चूँडा ने कहा, "हम लोग चित्तौड़-राज्य के हैं और धीरे गाँव में रहते हैं, राणा के साथ गोगुण्दा गये थे और राणा को दुर्ग में पहुँचाने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं।"

इसके बाद द्वारपालों के विरोध न करने पर सभी के साथ चूँडा दुर्ग की तरफ बढ़ा। उस समय द्वारपालों को फिर सन्देह पैदा हुआ और वे सब अपने हाथों में तलवारें लेकर राजकुमार और उसके साथ के सवारों पर टूट पड़े। कुछ देर तक खूब मार-काट हुई। राजकुमार चूँडा ने दुर्ग के भाटी सरदार को कैद कर लिया। बहुत से द्वारपाल मारे गये। इसके बाद राजकुमार चूँडा सब के साथ आगे बढ़ा।

राठौड़ राजपूत रणमल्ल को इस घटना का कुछ पता न था। मारवाड़ से चित्तौड़ आकर वह अनेक प्रकार की विलासिता में पड़ा रहता था। चित्तौड़ के राज्य पर अब वह अपना ही अधिकार समझता था। महलों में एक राजपूत बाला दासी के रूप में रहा करती थी। वह युवती अत्यंत सुन्दर थी। रणमल्ल ने इन्हीं दिनों में उसका सतीत्व नष्ट किया था। इससे अप्रसन्न होकर वह राजपूत बाला रणमल्ल से बदला लेने के लिये मौका ढूंढ़ रही थी। जिस दिन रात को मोकल और राजमाता के साथ चित्तौड़ में राजकुमार चूँडा ने प्रवेश किया और द्वारपालों के साथ मार-काट की, उस समय रणमल्ल महल के एक स्थान पर लेटा हुआ सो रहा था। राजपूत बाला ने मौका पाकर रणमल्ल की लम्बी पगड़ी से उसको चारपाई से कसकर बाँध दिया। वह अब भी सोता ही रहा। उसे बाँध कर राजपूत बाला चुपके से वहाँ से चली गयी। चूँडा के साथी सैनिक राज प्रासाद के भीतर आ गये थे। उनमें से एक ने रणमल्ल का वध किया। उसका लड़का जोधाराव उस समय चित्तौड़ के बाहर दक्षिण की तरफ था। वहाँ पर चित्तौड़ का हाल सुनकर वह घबड़ा उठा और अपने घोड़े पर बैठकर वहाँ से भागा। राजकुमार चूँडा को उसके भागने का समाचार मिला। वह उसको कैद करने के लिये चित्तौड़ से रवाना हुआ।

जोधाराव अपने राज्य के मण्डोर नगर में पहुँच गया था। चूँडा से घबरा कर वह हड़बू सांखला नामक एक राजपूत के यहाँ जाकर छिप गया। राजकुमार चूँडा ने मण्डोर नगर पर अधिकार कर लिया। यह नगर बारह वर्ष तक चित्तौड़ राज्य में शामिल रहा। रणमल्ल को उसके विश्वासघात का पूरी तौर पर बदला मिला। मण्डोर नगर अधिकार में आ गया और उस राज्य के बहुत से आदमी मारे गये। जोधाराव छिप गया था। उसके दोनों लड़कों ने चित्तौड़ की अधीनता स्वीकार कर ली जिससे उनके साथ शत्रुता का अन्त हो गया। मण्डोर राज्य का प्रबन्ध करके राजकुमार चूँडा चित्तौड़ लौट गया।

जोधाराव के मन में मण्डोर के उद्धार की बात बराबर उठती रही। अवसर पाकर कुछ सैनिकों को अपने साथ में ले कर उसने फिर मण्डोर पर आक्रमण किया। कुछ समय तक चित्तौड़ की सेना ने युद्ध किया। अन्त में उसकी पराजय हुई और जोधाराम ने मण्डोर नगर पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद भी जोधाराव को शान्ति न मिली। उसको भय था कि चित्तौड़ की सेना किसी भी समय आक्रमण कर सकती है और वह समय भयानक हो सकता है। इसलिये उसने अपने दूत को संधि के लिये चूँडा के पास भेजा और अन्त में दोनों के बीच संधि हो गयी।

राज्य के अधिकारियों को चूँडा के समर्पण करने के बाद मोकल चित्तौड़ के सिंहासन का अधिकारी बना था। परन्तु अधिक समय तक वह इस अधिकार का भोग न कर सका। यद्यपि युवा अवस्था प्राप्त करने पर उसने अपनी योग्यता और क्षमता का परिचय दिया था। सम्वत् 1454 सन् 1398 ईसवी में वह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा था। यह समय भारतवर्ष के इतिहास में बहुत महत्व रखता है। इन्हीं दिनों में तैमूर ने अपनी विशाल सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया था। परन्तु उसके आक्रमण से मेवाड़ को कोई क्षति न पहुँची थी।

राणा मोकल में क्षत्रियोचित शौर्य का कोई अभाव न था। उसके जीवन का असमय अन्त हुआ। क्षेत्र सिंह का पहले उल्लेख किया जा चुका है। उससे एक दासी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम था चच्चा और दूसरे का मैरा। दोनों ही राजमहलों में रहने वाली एक दासी के गर्भ से पैदा हुए थे इसलिये वे राज्य के अधिकारी न थे। चित्तौड़ के सरदार और सामन्त घृणा की दृष्टि से उनको देखते थे। चित्तौड़ के लोगों का यह व्यवहार देखकर वे दोनों भाई असंतुष्ट रहते थे और मोकल से ईर्ष्या रखते थे।

राणा मोकल सब कुछ जानते और समझते हुए भी उन दोनों भाइयों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहता था। इसीलिये दरबार की तरफ से उन दोनों भाइयों को सेना में अच्छे स्थान दिये गये थे। जिस समय भदेरिया के लोगों ने चित्तौड़ राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया था तो उनको दमन करने के लिये राणा मोकल अपनी सेना लेकर वहाँ पर गया था। उस सेना में चच्चा और मैरा भी गये थे।

इन दोनों भाइयों की भावनायें राणा मोकल के प्रति पहले ही कलुषित हो रही थीं। वे अपने आपको चित्तौड़ का राज्य पाने का अधिकारी समझते थे और इसकी बाधा में वे राणा मोकल को प्रमुख समझते थे। भदेरिया में पहुँचकर दोनों भाई आपस में कुछ परामर्श करते रहे और एक दिन अवसर पाकर उन दोनों ने पीछे से मौका पाकर मोकल को जान से मार डाला।

राणा मोकल का बड़ा बेटा कुम्भा चित्तौड़ में था। उसने जब यह समाचार सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। उसने समझ लिया कि चच्चा और मैरा मादेरिया से लौटकर चित्तौड़ पर आक्रमण करेंगे। इसलिये उसने मारवाड़ के राजा से सहायता माँगी और वहाँ के राजा ने अपने लड़के के सेनापतित्व में चित्तौड़ की सहायता के लिये मारवाड़ की सेना भेजी। चच्चा और मैरा उस समय चित्तौड़ के पास एक दुर्ग में आ गये थे। मारवाड़ की सेना के पहुँचते ही वे दोनों उस दुर्ग से भाग कर अरावली पर्वत के पाई नामक स्थान पर चले गये और कुछ दिनों के बाद वहाँ पर वे दोनों राठौड़ो और सिसोदिया राजपूतों के द्वारा मारे गये।

□

अध्याय – 17
राणा कुम्भा तथा सांगा का बचपन

सम्वत् 1475 सन् 1419 ईसवी में राणा मोकल का बड़ा लड़का कुम्भा चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उसे लोग कुम्भा जी के नाम से भी सम्बोधित करते थे, राणा मोकल के मरने के बाद एक साथ मेवाड़ राज्य की परिस्थिति बिगड़ गयी थी। इसीलिये पिता के मारे जाने पर अपनी असहाय अवस्था में कुम्भ को मारवाड़ के राजा से सहायता माँगनी पड़ी थी। वह मारवाड़ के राजा का भाँजा था। मोकल की छोटी अवस्था में मेवाड़ और मारवाड़ के सम्बंध बहुत बिगड़ गये थे और राजकुमार चूँडा ने मारवाड़ पर आक्रमण करके मन्डोर नगर पर अधिकार किया था। लेकिन उसके कुछ समय के बाद दोनों राज्यों के बीच में संधि हो गयी थी।

कुम्भा के सहायता माँगने पर मारवाड़ के राजा ने अपनी एक सेना भेजी थी और उसने आकर चित्तौड़ की पूरी सहायता की थी। उसके बाद कुम्भा चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। वह अपनी छोटी अवस्था से ही शूरवीर और प्रतापी था। राज्य में अनेक कमजोरियों के रहते हुये भी उसने बड़े साहस से काम लिया, विरोधी परिस्थितियों की उसने कुछ परवाह न की और बड़ी योग्यता के साथ उसने चित्तौड़ की शक्तियों का संगठन किया। उसकी शक्तियों का ही यह परिणाम निकला कि उसके शासनकाल में मेवाड़ राज्य ने बड़ी तेजी के साथ उन्नति की। थोड़े ही दिनों के भीतर मेवाड़ की निर्बल शक्तियाँ शक्तिशाली बन गयीं। जो विरोधी राज्य चित्तौड़ को खा जाने के लिए तैयार थे, वे सब राणा कुम्भा को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

राणा कुम्भा से सौ वर्ष पहले आक्रमणकारी मुस्लिम सेना ने चित्तौड़ में आकर जिस प्रकार सर्वनाश किया था और मेवाड़ के राजपूतों को निर्बल बना दिया था, इस समय वहाँ के लोग उस सर्वनाश की बातों को भूल गये थे। इसी चित्तौड़ राज्य के राजा समरसिंह ने शहाबुद्दीन की प्रचंड सेना का सामना किया था और भारत की स्वाधीनता के लिए उसने अपने प्राणों का बलिदान किया था। वह समय अब बदल गया था और मेवाड़ राज्य में एक नया युग आरम्भ हुआ था। शहाबुद्दीन के आक्रमण से लेकर राणा कुम्भा के समय तक दो सौ छब्बीस वर्षों का समय बीता है और इस लम्बे समय में राजस्थान की भूमि पर अनेक प्रकार के परिवर्तन हुये हैं।

खिलजी वंश के पिछले बादशाह के समय विजयपुर, गोलकुण्डा, मालवा, गुजरात, जौनपुर और कालपी जैसे कितने ही राज्यों के राजा लोग दिल्ली के सिंहासन को निर्बल समझकर अपनी-अपनी स्वतंत्रता का निर्माण करने लगे थे। राणा कुम्भा जिस समय चित्तौड़

के सिंहासन पर बैठा, उसी वर्ष मालवा और गुजरात के नवावों ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और दोनों ही अपनी-अपनी विशाल सेनायें लेकर सम्वत् 1496 सन् 1440 ईसवी में मेवाड़ की तरफ रवाना हुए।

नवावों के इस होने वाले आक्रमण का समाचार पाते ही राणा कुम्भ ने बड़ी तत्परता के साथ चित्तौड़ में युद्ध की तैयारियाँ कीं और अपने साथ एक लाख सिपाहियों की सेना लेकर-जिसमें चौदह सौ हाथी थे-राणा कुम्भा नवावों की विशाल सेनाओं का सामना करने के लिए चित्तौड़ से रवाना हुआ और अपने राज्य की सीमा के आगे मालवा के मैदानों में पहुँच कर उसने यवन सेनाओं के साथ संग्राम आरम्भ कर दिया। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। अंत में राणा कुम्भ की विजय हुई और मालवा के नवाव मोहम्मद खिलजी को कैद करके राजपूत चित्तौड़ ले आये।

मोहम्मद खिलजी पूरे छह महीने तक चित्तौड़ की जेल में रहा। भट्ट ग्रंथों के अनुसार राणा कुम्भा ने मोहम्मद खिलजी के ताज को अपनी विजय के प्रमाण में अपने पास रखकर उसको छोड़ दिया था। इसी प्रकार की वात का उल्लेख मुगल वादशाह वावर ने अपनी आत्मकथा में किया है, जिसमे राणा साँगा के लड़के ने अपना मुकुट वादशाह वावर को भेंट में दिया था। अवुल फजल ने भी अपने लिखे हुए इतिहास में राणा कुम्भा की उदारता की प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि "राणा कुम्भा ने विना किसी जुर्माने के अपने शत्रु मोहम्मद खिलजी को कैद से छोड़कर अपने श्रेष्ठ चरित्र का परिचय दिया था।" मोहम्मद खिलजी ने राणा कुम्भा की कृतज्ञता को स्वीकार किया और उसके वाद वह राणा कुम्भा का मित्र वन गया। इसके वाद दिल्ली के वादशाह की सेना के साथ झुंझुनूं नामक स्थान पर राणा ने चित्तौड़ की सेना लेकर भयानक युद्ध किया। उसमें राणा कुम्भा की विजय हुई थी। इस युद्ध में मोहम्मद खिलजी अपनी फौज लेकर राणा की सहायता करने के लिये आया था और उसने दिल्ली के वादशाह की फौज के साथ युद्ध किया था।

मेवाड़ राज्य में चौरासी दुर्ग हैं। उनमें वत्तीस दुर्ग राणा कुम्भा ने वनवाये थे और इन वत्तीस किलों में कमलमीर का दुर्ग सवसे अधिक प्रसिद्ध है। इसका निर्माण वड़ी मजवूती से किया गया है। यह दुर्ग राणा कुम्भा के वाद कुम्भा मीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कुम्भमीर दुर्ग के प्रधान द्वार का नाम हनुमान द्वार है। उसके द्वार पर महावीर की एक वहुत वड़ी मूर्ति है। यह मूर्ति राणा कुम्भा नरकोट से जीतकर अपने साथ लाया था। आवू पहाड़ की एक चोटी पर परमार राजपूतों का एक विशाल दुर्ग बना हुआ था। उसमें वह और उसका परिवार प्रायः रहा करता था। राणा कुम्भा में लोकप्रियता का गुण था। मेवाड़ की प्रजा उस पर वहुत श्रद्धा रखती थी। राणा ने प्रजा की सुविधाओं और राज्य के हितों के लिये वहुत से अच्छे कार्य किये थे और उन्हीं के कारण सम्पूर्ण राजस्थान में उसे वहुत ख्याति मिली।

मारवाड़ के मेड़ता निवासी एक राठौड़ सरदार की वेटी मीरावाई के साथ राणा कुम्भा का विवाह हुआ था।[1] मीराबाई वहुत सुन्दर थी और धर्म में वहुत श्रद्धा रखती थी। कृष्ण की स्तुति के सम्वन्ध में उसने कविता के वहुत से छन्द वनाये थे। राणा कुम्भा को कविता करने का शौक था। मीरावाई ने कविता करने का ज्ञान किससे प्राप्त किया, इसका उल्लेख किसी ग्रंथ में नहीं मिलता। मीरावाई ने भगवान के वहुत से मंदिरों के दर्शन किये थे।

1. जोधपुर के मुन्सिफ वावू देवी प्रसाद ने मीरावाई का जीवन चरित्र लिखा है। उसमें उन्हीं ने टाड साहव की इस वात का विरोध किया है। उनका कहना है कि जिस मीरावाई को वहाँ पर राणा कुम्भा की रानी लिखा गया है, वह जोधपुर के राठौड़ वंश में पैदा हुई थी और उदयपुर के सिसोदिया वंश में राणा साँगा के पुत्र भोज के साथ ब्याही गयी थी। उसका विवाह सम्वत् 1573 ईसवी में हुआ था।

झालावाड़ नरेश की लड़की का विवाह एक राठौड़ राजकुमार के साथ होना निश्चय हुआ था। परन्तु राणा कुम्भा ने उस राजकुमारी का अपहरण किया और चित्तौड़ में लाकर उसने उसको अपनी रानी वनाकर रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि राठौड़ राजपूतों के साथ सीसोदिया वंश की जो मैत्री कायम हुई थी, वह राणा कुम्भा के इस व्यवहार से समाप्त हो गयी और दोनों वंशों के वीच फिर शत्रुता चलने लगी।

राणा कुम्भा ने वड़ी योग्यता के साथ पचास वर्ष तक मेवाड़-राज्य पर शासन किया। अव उसका बुढ़ापा चल रहा था। इस वुढापे में उसके लड़के ने उसका वध किया। जिस लड़के ने अपने पिता के प्रति यह अधर्म किया, उसका नाम ऊदा था। कुछ लोग उसे उदयसिंह भी कहते थे। भट्ट ग्रंथों में उस ऊदा की वड़ी निन्दा लिखी गयी है। इस प्रकार सम्वत् 1525 सन् 1469 ईसवी में राणा कुम्भा की मृत्यु हुई। ऊदा के इस व्यवहार से सम्पूर्ण मेवाड़ के लोग उससे घृणा करने लगे।

ऊदा प्रसिद्ध राणा कुम्भा का वेटा था। परन्तु उसका कोई अच्छा साथी न था। पिता की हत्या करने के कारण उससे अव और भी अधिक लोग घृणा करने लगे। वह पहले से ही अयोग्य और अकर्मण्य था। राणा कुम्भ के बाद उसने खुलकर अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। आवू पर्वत पर देवड़ा नामक एक सरदार रहता था। वह मेवाड़ राज्य का सामन्त था। ऊदा ने उसके साथ मित्रता की और उसको प्रसन्न करने के लिए ऊदा ने उस सामन्त को अपनी अधीनता से स्वतंत्र कर दिया।

ऊदा ने इस प्रकार के और भी कार्य किये। उसने जोधपुर के राजा को साँभर, अजमेर और कुछ अन्य इलाके मित्रता की कीमत में दे दिये। अपने पिता की हत्या करके उसने जो अक्षम्य अपराध किया था, उससे वह सदा भयभीत बना रहता और किसी प्रकार की आपत्ति आने पर सहायता प्राप्त करने के लिये ही उसने देवड़ा तथा जोधपुर के राजा के साथ मैत्री पैदा करने की कोशिश की थी।[1] ऊदा के इन कार्यों से मेवाड़ राज्य का पतन आरम्भ हुआ। राणा कुम्भा ने अपने जीवन भर के प्रयत्नों से मेवाड़ राज्य की जो उन्नति की थी, ऊदा ने पाँच वर्षो के भीतर ही उसका सत्यानाश कर दिया।

मित्रता धन से खरीदी नहीं जाती। परन्तु ऊदा को इस वात का ज्ञान न था। उसने अपने राज्य का सत्यानाश करके जिसको मित्र बनाने की कोशिश की थी, वे कभी उसके काम न आये और न कभी उसका सम्मान किया। इस दशा में निराश होकर वह दिल्ली के मुसलमान वादशाह के पास गया और उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर देने का वादा करके उसने उससे सहायता माँगी।

दिल्ली के वादशाह से मिलकर जव ऊदा दीवान खाने से बाहर जा रहा था, उसके मस्तक पर अचानक विजली गिरी, जिससे वह जमीन पर गिर गया और उसका प्राणान्त हो गया। बप्पा रावल के वंश के सम्मान की रक्षा भगवान ने की और हत्यारे ऊदा को जो फल मिलना चाहिये था, वही उसे मिला।

राणा कुम्भा के सिंहासन का राजकुमार रायमल उत्तराधिकारी था, परन्तु राणा कुम्भा ने अपने जीवन काल में उसे राज्य से निकाल दिया था, जिससे रायमल ईडर चला गया था। राणा कुम्भा की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद सम्वत् 1530 सन् 1474 ईस्वी में रायमल चित्तौड़ के सिंहासन पर वैठा और उसके बाद उसने ऊदा के अपराध का दंड देना अत्यन्त आवश्यक समझा। रायमल के इस निर्णय को जान कर ऊदा भयभीत हुआ और अपनी

1. जिस समय ऊदा ने जोधपुर के राजा को अपने ये इलाके दिये थे, उससे दस वर्ष पहले सम्वत् 1515 में जोधाराव ने जोधपुर की प्रतिष्ठा की थी।

सहायता के लिये वह दिल्ली के वादशाह के पास गया था, जहाँ पर विजली गिरने से उसकी मृत्यु हो गई।

सहसमल और सूरजमल नाम के ऊदा के दो वेटे थे। दिल्ली के वादशाह ने अपने वादे के अनुसार ऊदा के दोनों लड़कों को साथ में लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। इस समाचार को पाकर चित्तौड़ में संग्राम की तैयारी होने लगी। मेवाड़ राज्य के सरदार और सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर चित्तौड़ में आ गये। इसी समय आवू और गिरनार के नरेश भी चित्तौड़ में अपनी सेनाओं के साथ पहुँचे। उन सवके साथ ग्यारह हजार पैदल और अट्ठावन हजार सवारों की सेना लेकर राणा रायमल दिल्ली के वादशाह के साथ युद्ध करने के लिए चित्तौड़ से रवाना हुआ। घासा नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का मुकावला हुआ। तुरन्त युद्ध आरम्भ हो गया और थोड़ी ही देर में वह संग्राम भयानक हो उठा। वहुत समय तक मार-काट होने के वाद वादशाह की फौज पराजित हुई। इसके वाद ऊदा के दोनों लड़कों ने राणा रायमल की अधीनता स्वीकार कर ली और राणा ने उनके अपराधों को क्षमा कर दिया। वादशाह की वची हुई फौज वहाँ से लौटकर दिल्ली की तरफ चली गई।

राणा रायमल के पाँच संतानें हुई थीं, दो लड़कियाँ और तीन लड़के। उसकी एक लड़की गिरनार के यदुवंशी राजा शूरजी को व्याही गई और दूसरी का विवाह सिरोही के देवड़ा राज्य के जयमल के साथ हुआ था। दूसरी लड़की के दहेज में राणा ने अपना आवू पर्वत का इलाका दे दिया। अपने जीवन के अन्त तक राणा ने मेवाड़ की ख्याति को वढ़ाने की चेष्टा की और अपने पूर्वजों के गौरव को कायम रखा। मालवा के वादशाह गयासुद्दीन के साथ राणा की शत्रुता चल रही थी। इसी कारण उसके साथ राणा को कई वार युद्ध करना पड़ा और प्रत्येक युद्ध में राणा रायमल की विजय हुई। अंत में गयासुद्दीन ने संधि के लिये राणा से प्रार्थना की। राणा ने उसे स्वीकार कर लिया। इसके वाद राणा ने सुख और शान्ति का जीवन विताना आरम्भ किया।

साँगा, पृथ्वीराज और जयमल नाम के तीन लड़के रायमल के थे। ये तीनों अपने जीवन के आरम्भ से तेजस्वी और अत्यन्त शूरवीर मालूम होते थे। उन तीनों में साँगा और पृथ्वीराज के नाम अधिक प्रसिद्ध हुए। वल और पराक्रम में तीनों एक दूसरे से वढ़कर थे। परन्तु छोटी अवस्था से ही तीनों आपस में लड़ने-झगड़ने लगे थे। वे जितने ही वड़े होते गये, उनके आपस के झगड़े उतने ही बढ़ते गये। साँगा और पृथ्वीराज दोनों एक ही माता से पैदा हुए थे और उनकी माता झाला वंश की थी। जयमल उनका सौतेला भाई था।

तीनों भाइयों में कोई अन्तर न था। राणा तीनों को वहुत प्यार करता था। उनके प्रति पिता का यह प्यार स्वाभाविक था। तीनों ही वालक जन्म के वाद वहुत होनहार मालूम होने लगे थे। उनको देखकर और उनके भविष्य का अनुमान लगाकर राणा को वड़ी प्रसन्नता होती थी। लेकिन लड़कों के किशोर अवस्था में पहुँचते-पहुँचते राणा का वह सुख और संतोष धीरे-धीरे कम होने लगा। राणा ने देखा कि इन तीनों भाइयों के झगड़े आपस में लगातार बढ़ते जाते हैं। इन झगड़ों के क्या कारण हैं, राणा की समझ में न आया। वहुत समझाये-वुझाये जाने के वाद भी तीनों लड़कों के आपसी झगड़े में कोई अन्तर न आया। लगातार उनके वढ़ते हुए झगड़ों को देखकर राणा को वहुत असंतोष होने लगा और जव उसको कोई दूसरा उपाय दिखाई न पड़ा तो उसने अपने लड़कों को राज्य से निकाल देने का विचार किया। क्योंकि वह अव वहुत दुःखी रहने लगा था।

उन तीनों लड़कों में साँगा बड़ा था और राणा का वह पहला पुत्र था और वही राणा का उत्तराधिकारी था। उस छोटी अवस्था में लड़कों का झगड़ा इस बात पर था कि चित्तौड़ का उत्तराधिकारी कौन है। प्रत्येक अपने आपको उस राज्य का अधिकारी समझता था। इस झगड़े के फलस्वरूप, साँगा को राज्य छोड़कर भागना पड़ा। पृथ्वीराज को राणा ने अपने यहाँ से निकाल दिया और जयमल जान से मारा गया। भाइयों के आपस के झगड़े का यह परिणाम निकला। इस दुष्परिणाम को रोकने के लिये राणा रायमल के पास कोई उपाय बाकी नहीं रह गया था। राजपूतों के चरित्र को देखकर सहज ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि शत्रुओं से युद्ध न करने के दिनों में वे स्वयं एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

दोनों भाई एक दिन चाचा सूरजमल के पास एकान्त में बैठकर मेवाड़ के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में बातें करने लगे। सूरजमल ने दोनों की बातों को सुना और समझा कि इनमें दोनों ही अपने आपको उत्तराधिकारी समझते हैं। बातचीत के सिलसिले में सांगा ने कहा–"अपने पिता का मैं बड़ा लड़का हूँ और न्याय से मैं ही अपने पिता का उत्तराधिकारी हूँ।"

पृथ्वीराज ने साँगा की इस बात को मंजूर नहीं किया। दोनों में विवाद बढ़ने लगा। सूरजमल किसी प्रकार का निर्णय करने में अपने आपको असमर्थ पाता था। वह दोनों की बात सुन रहा था। परन्तु साफ-साफ कुछ कह न सकता था। पृथ्वीराज और साँगा का विवाद बढ़ गया और उसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज ने अपनी तलवार निकालकर तेजी के साथ साँगा पर आक्रमण किया। यह देखते ही सूरजमल दौड़ पड़ा और उसने किसी प्रकार रोक-थाम की परन्तु उससे झगड़ा रुका नहीं। साँगा पृथ्वीराज की तलवार से जब बच गया तो पृथ्वीराज ने सूरजमल को ललकारा। उस समय भी सूरजमल ने दोनों को रोकने की कोशिश की, परन्तु सब बेकार हुई। दोनों एक दूसरे का सर्वनाश करने की चेष्टा करने लगे। दोनों के शरीर में तलवारों के बहुत-से जख्म हो गये। सांगा के शरीर में तलवार के जोरदार पाँच आघात लगे। वह तुरन्त भागा। उसकी एक आंख भीषण आघात से सदा के लिये नष्ट हो गई।

साँगा भागकर सिवान्ती नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर उसे बीदा नाम का एक राजपूत मिला। वह राजपूत उदावत वंश में पैदा हुआ था और इस समय अपने घर से निकल कर कहीं बाहर जाने को तैयार था। अकस्मात अपने सामने रक्त में डूबे हुए साँगा को देखकर वह घबरा उठा। उसी समय जयमल ने वहाँ पहुँच कर साँगा पर अपनी तलवार का वार किया। साँगा की रक्षा करने के लिये बीदा राजपूत ने जयमल का सामना किया। वह जयमल की तलवार से मारा गया। इसके बाद साँगा वहाँ से चला गया।

पृथ्वीराज के शरीर में बहुत से जख्म हो गये थे। वह स्वस्थ हो जाने पर साँगा की खोज करने लगा। यह समाचार साँगा को मिला। वह पृथ्वीराज से बचकर राज्य से दूर निकल गया। इस दुर्घटना का समाचार राणा रायमल ने भी सुना। उसे बहुत क्रोध आया। उसने पृथ्वीराज को बुला कर राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। अपने पाँच सवारों के साथ पृथ्वीराज गोडवाड़ राज्य के बालियो नामक स्थान पर चला गया।

राणा रायमल की अब वृद्धावस्था थी। गोडवाड़ अरावली पर्वत पर बसा हुआ है। इस मौके पर जंगली मीणा लोग वहां पर आकर तरह-तरह के उपद्रव करने लगे और वहाँ के निवासियों को लूटने लगे। गोडवाड़ की राजधानी नाडौल में थी। मीणा लोगों ने वहाँ के सिपाहियों की कोई परवाह नहीं की। उपद्रव करने वाले मीणा लोगों की संख्या इतनी बढ़ गई थी, जो नाडौल के सैनिकों के रोके न रुकी। उस समय पृथ्वीराज बालियों में

उपस्थित था। उसने मीणा लोगों के उपद्रवों को सुना। बालियों में रहकर उसने अपने कुछ साथी बना लिये थे। उसने मन ही मन उपद्रव करने वाले मीणा लोगों के दमन करने का निश्चय किया। उन मीणा लोगों का एक राजा था और उस राजा के यहाँ बहुत से राजपूत नौकरी करते थे। किसी प्रकार पृथ्वीराज उन राजपूतों से मिला और उनको भड़काकर मीणा लोगों पर उसने राजपूतों का आक्रमण करवा दिया।

राजपूतों और मीणा लोगों की लडाईं ने भयानक रूप धारण किया। मीणा लोगों का राजा घबराकर अपने राज्य से भागा। पृथ्वीराज ने उसको पकड़ लिया और अपने भाले से उसको मार डाला। इसके बाद पृथ्वीराज ने अपने साथ के सैनिकों और मीणा लोगों के राजा के यहाँ रहने वाले राजपूतों की सहायता से पहाड़ी मीणा लोगों पर भयानक अत्याचार किये और बड़ी निर्दयता के साथ उनका सर्वनाश करने लगा। बहुत से मीणा लोगों मारे गये और जो बाकी रहे, उनमें से भी कुछ भाग गये। इसके बाद पृथ्वीराज ने मीणा लोगों के सभी पहाड़ी इलाकों पर तेसौड़ी नामक दुर्ग को छोड़कर अधिकार कर लिया। उन दिनों में उस दुर्ग पर चौहान माद्रैचा लोगों का शासन था।

मीणा लोगों के राज्य पर अधिकार करके पृथ्वीराज ने वहाँ का अधिकार सद्दा नामक एक सोलंकी राजपूत को सौंप दिया। उस सोलंकी राजपूत ने उसके बाद सोदगढ़ पर भी अपना अधिकार कर लिया। सद्दा का विवाह माद्रैचा चौहान की लड़की के साथ हुआ था। वह अंत में पृथ्वीराज से मिल गया। मीणा लोगों के राज्य में जो कुछ पृथ्वीराज ने किया, उसका समाचार राणा रायमल ने सुना। उसने प्रसन्न होकर पृथ्वीराज को चित्तौड़ में बुला लिया।

राज्य में लौट आने पर जयमल के मारे जाने की घटना को उसने सुना, जो इस प्रकार थी– अरावली पर्वत के नीचे बदनौर नामक नगर में शवसुरतान रहता था। ताराबाई नाम की उसकी एक सुन्दर लड़की थी। वह अपनी लड़की को बहुत प्यार करता था। किसी समय वह अपने राज्य का अधिकारी था, परन्तु उसके वे दिन अब न रहे थे। उसके राज्य पर मुसलमानों का शासन हो गया था। सुरतान ने इस बात की घोषणा की कि जो हमारे राज्य का उद्धार करेगा, उसी के साथ मैं अपनी लड़की का विवाह करूँगा।

राजकुमार जयमल ने भी सुरतान की घोषणा को सुना और वह ताराबाई के साथ विवाह की अभिलाषा से बदनौर आया। उसने ताराबाई के साथ अशिष्ट और असंगत व्यवहार किया, जिससे क्रोध में आकर सूरतान ने जयमल को मार डाला।

चित्तौड़ में आकर और कुछ दिनों तक रह कर पृथ्वीराज ने ताराबाई के सौंदर्य की प्रशंसा सुनी। उसके मन में सहज ही उसको देखने की अभिलाषा पैदा हुई। वह बदनौर के लिये रवाना हुआ और वहाँ जाकर उसने ताराबाई के पिता सुरतान से भेंट की। मीणों के राज्य को जीत कर अधिकार में कर लेने के बाद पृथ्वीराज का नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया था। सुरतान ने उसका बड़ा सम्मान किया। पृथ्वीराज ने टोड़ा के अफगानों को पराजित करके सुरतान के राज्य का उद्धार करने की प्रतिज्ञा की और इसी आधार पर सुरतान ने पृथ्वीराज के साथ ताराबाई के विवाह का निश्चय किया।

पृथ्वीराज ने अपने निश्चय के अनुसार चुने हुए पाँच सौ सवार सैनिकों को तैयार किया और उनको साथ में लेकर वह टोड़ा की तरफ चला। साथ में ताराबाई को लेकर सुरतान भी रवाना हुआ। टोड़ा में पहुँचकर पृथ्वीराज ने देखा कि मोहर्रम के दिन हैं। बादशाह के महल के पास ताजिया पहुँचा था और बादशाह उसमें शामिल होने के लिए तैयार हो रहा था। इसी समय पृथ्वीराज ने अपने बाणों से उसको मारा, वह गिर गया।

बादशाह के गिरते ही वहाँ के मुसलमानों में हाहाकार मच गया। पृथ्वीराज के सैनिकों ने मार-काट आरंभ कर दी। लड़ाकू मुसलमानों ने एक साथ पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। कुछ समय तक दोनों तरफ से भीषण संग्राम हुआ। अंत में मुसलमानों का साहस छूट गया। राजपूतों के द्वारा बड़ी संख्या में मुसलमान मारे गये और अंत में टोड़ा से अफगान बादशाह का शासन हट गया। राज्य का उद्धार होने से सुरतान को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपनी लड़की ताराबाई का विवाह पृथ्वीराज के साथ कर दिया।

पृथ्वीराज शांतिपूर्वक चित्तौड़ में रहने लगा। जयमल मर चुका था और साँगा का कुछ पता न था। पृथ्वीराज जब अपने पिता के राज्य से चला गया था तो सूरजमल आराम के साथ चित्तौड़ में रहा करता था। पृथ्वीराज के लौट आने पर उसके मन के भाव बिगड़ने लगे। चित्तौड़ आ जाने पर इस बात का रहस्य खुला कि राणा रायमल के तीनों लड़कों को आपस में लड़ाने वाला यही सूरजमल था। वह स्वयं मेवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी बनना चाहता था और साँगा के रहते हुए इस बात की किसी प्रकार सम्भावना न थी। इसके लिये उसने एक भयानक षड़यंत्र की रचना की थी और उस षड़यंत्र के द्वारा उसने राणा के तीनों पुत्रों को अलग-अलग ऐसा समझा दिया, जिससे वे तीनों ही एक दूसरे के प्राण घातक शत्रु हो गये थे।

पृथ्वीराज के लौटकर चित्तौड़ में आ जाने पर सूरजमल की आशाएं फिर नष्ट हो गईं। वह समझता था कि साँगा और पृथ्वीराज के लौट कर आने की उम्मीद नहीं है और जयमल की मृत्यु हो चुकी है। ऐसी दशा में राणा रायमल के मर जाने पर चित्तौड़ राज्य का उत्तराधिकारी मेरे सिवा कोई नहीं हो सकता। पृथ्वीराज के आ जाने पर उसका यह विश्वास समाप्त हो गया।

सूरजमल अब फिर किसी नये षड़यंत्र की खोज में रहने लगा और जब उसे कुछ न सूझा तो वह सारंगदेव नाम के एक राजपूत के पास गया। दोनों में खूब बातें हुईं। इसके बाद दोनों मिलकर मालवा के बादशाह मुजफ्फर के पास पहुँचे और दोनों ने मिलकर चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए उससे सैनिक सहायता माँगी। मालवा के बादशाह ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए अपनी फौज भेजी। उस फौज को लेकर सूरजमल और सारंग देव ने मेवाड़ के दक्षिणी इलाकों पर आक्रमण किया और वहाँ के सादी, बाटुरी और नाई से लेकर नीमच तक सभी स्थानों पर अधिकार करके चित्तौड़ की तरफ बढ़ने लगे।

इस आक्रमण का समाचार राणा रायमल को मिला। वह चित्तौड़ की एक सेना लेकर निकला और राज्य के समीप बहती हुई गम्भीरी नदी के तट पर राणा ने बादशाह की फौज का सामना किया। युद्ध आरम्भ हो गया। कुछ समय तक लगातार युद्ध होने के कारण राणा के शरीर में बाईस घाव लगे। उनसे अविरल रक्त प्रवाहित होने लगा।

राणा की बुढापे की अवस्था थी। लगातार युद्ध करने और जख्मी हो जाने के कारण अब उसका शरीर शिथिल पड़ने लगा। वह युद्ध में निराश हो रहा था। इसी समय अपने एक हजार सवार सैनिकों के साथ पृथ्वीराज युद्ध क्षेत्र में आ गया और राणा को युद्ध से बाहर निकालकर वह स्वयं युद्ध करने लगा। पृथ्वीराज की मार से बादशाह की फौज के बहुत से आदमी मारे गये और सूरजमल स्वयं जख्मी हुआ। इसके बाद युद्ध बन्द हुआ और दोनों सेनायें अपने-अपने शिविरों में पहुँच गईं।

दूसरे दिन सवेरे फिर युद्ध आरम्भ हुआ और दोनों तरफ से भीषण मार-काट हुई। सारंग देव की मार से चित्तौड़ के बहुत से राजपूत मारे गये। परन्तु वह स्वयं जख्मी हुआ।

पृथ्वीराज की तलवार से सारंग देव के शरीर में पैंतीस जख्म हो गये। पृथ्वीराज के शरीर में बहुत-सी चोटें लगी। अन्त में मालवा की फौज युद्ध से हट कर भागी और पृथ्वीराज विजयी होकर चित्तौड़ वापस लौटा।

पराजित होने के बाद भी सूरजमल निराश नहीं हुआ। मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिए वह फिर से युद्ध की तैयारी करता रहा। परन्तु उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई। उसने कई बार चित्तौड़ की सेना के साथ युद्ध किया और अंत तक पराजित होता रहा।

मालवा की फौज के साथ सारंग देव और सूरजमल को पराजित करके पृथ्वीराज कुछ दिनों तक चित्तौड़ में रहा। उसके बाद अपनी पत्नी तारावाई के साथ रहने के लिए वह कमलमीर के दुर्ग में चला गया। सूरजमल के षड़यंत्र को अब वह खूब समझ गया था। सांगा को देखने की उसकी इच्छा हो रही थी। इसलिए कमलमीर के दुर्ग में रह कर उसने साँगा का पता लगाना आरम्भ किया।

इन्हीं दिनों में पृथ्वीराज के पास उसकी वहन का एक पत्र आया। उसकी यह वहन सिरोही के राजा को ब्याही गई थी। उसकी बहन के साथ उसके पति का व्यवहार अच्छा न था। वह प्रत्येक समय मदिरा पीकर नशे में रहता था और अपनी स्त्री को बुरी तरह से तकलीफें दिया करता था। पृथ्वीराज की बहन अपने पति के व्यवहारों से बहुत ऊब गई थी। उस दशा में उसने यह पत्र पृथ्वीराज के पास भेजा था।

पत्र को पाने और पढ़ने के बाद पृथ्वीराज अपनी बहन के पास गया। उसने अपने नेत्रों से अपनी बहन का बुरा हाल देखा। जिन परिस्थितियों में उसने अपनी बहन को पाया, उससे उसको बहुत वेदना पहुँची। अपने बहनोई सिरोही के राजा के साथ उसने बड़ी कठोरता के साथ बातें की और अन्त में उसके क्षमा माँगने पर पृथ्वीराज ने अपना व्यवहार उसके साथ बदल दिया। उसके बाद पृथ्वीराज वहाँ पर पाँच दिन तक रहा। छठे दिन चलने के समय पृथ्वीराज का बहनोई बड़े प्रेम से पृथ्वीराज से मिला और रास्ते में खाने के लिए उसने कुछ लड्डू दिये। बहनोई से विदा होकर पृथ्वीराज लौट आया। कमलमीर के निकट पहुँचकर भूख के कारण उसने बहनोई के दिये हुए लड्डू खाये। खाते ही उसका सिर घूमने लगा। एकाएक उसका हृदय छटपटाने लगा। ताराबाई उस समय कमलमीर के दुर्ग में थी। पृथ्वीराज को वह इस समय देख भी न सकी थी और उसके पहुँचने के पहले ही पृथ्वीराज की मृत्यु हो गयी। ताराबाई उसके मृत शरीर को लेकर चिता पर बैठी।

पृथ्वीराज की मृत्यु से रायमल्ल पर वज्रपात हुआ। साँगा के अभाव में पृथ्वीराज को पाकर उसको सन्तोष मिला था। पृथ्वीराज की मृत्यु को वह सह न सका। पृथ्वीराज के मरने के बाद राणा रायमल की भी मृत्यु हो गई।

□

अध्याय–18

राणा संग्राम सिंह, रतन सिंह और भारत पर बाबर का आक्रमण

सम्वत् 1565 सन् 1509 ईसवी में साँगा संग्रामसिंह के नाम से चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। इसके पहले मेवाड़ राज्य की कमजोरियाँ पैदा हो गयी थीं और राणा के अंतिम दिनों में जो आपसी झगड़े पैदा हो गये थे, वे सब के सब राणा संग्रामसिंह के सिंहासन पर बैठते ही दूर हो गये। संग्रामसिंह न केवल शूरवीर और दूरदर्शी था, बल्कि वह एक सुयोग्य शासक भी था। राणा कुम्भा के बाद मेवाड़ राज्य ने जो कुछ खोया था, राणा संग्रामसिंह के अधिकार पाते ही राज्य ने उसे फिर प्राप्त किया।

दिल्ली का जो राज सिंहासन किसी समय पाण्डवों के द्वारा विभूषित हुआ था और उनके बाद जिस पर तोमर तथा चौहान राजपूतों ने बैठकर भारतवर्ष में चक्रवर्ती राजा की ख्याति पायी थी, समय के परिवर्तन से दिल्ली के उसी सिंहासन पर गौरी, खिलजी और लोदी वंश के बादशाहों ने बैठकर इस देश में शासन किया। समय के प्रभाव से आज उसी दिल्ली का राज्य सैकड़ों टुकड़ों में विभाजित हो गया है और उन छोटो-छोटे टुकड़ों में सैकड़ों राजा और नवाब आज शासन करते हैं। इन दिनों में दिल्ली और बनारस के मध्य दिल्ली, बीना, कालपी और जौनपुर के नाम के चार स्वतंत्र राज्य अपना शासन चला रहे थे। परन्तु संग्रामसिंह के लिए उन राज्यों का कोई महत्व न था। एक समय था, जब मेवाड़ राज्य में आपसी झगड़े पैदा हो गये थे, उस समय गुजरात और मालवा के दोनों शासक मेवाड़ राज्य के विरोधियों से मिल गये थे। परन्तु वे मेवाड़ राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचा सके। संग्रामसिंह के सिंहासन पर बैठते ही मेवाड़ राज्य ने अपनी उन्नति आरम्भ की और कुछ समय के बाद वह भारतवर्ष का चक्रवर्ती राजा माना गया। मारवाड़ और आमेर के राजाओं ने मेवाड़ की ख्याति बढ़ाई। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, राईसीन, कालपी, चन्देरी, बूँदी, गागरौन, रामपुर और आबू आदि कितने ही राज्यों के राजा और नरेश मेवाड़ राज्य के सामन्त रहे थे और आवश्यकता पड़ने पर सभी अधीन राजा और सामन्त अपनी-अपनी सेनाएं लेकर मेवाड़ राज्य की तरफ से शत्रुओं के साथ युद्ध करते थे। राज्य का अधिकार पाने के बाद राणा संग्रामसिंह ने अपनी सेना का संगठन बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया था और अपने सैनिकों को युद्ध की शिक्षा देकर उनको शक्तिशाली बनाया था। यही कारण था कि उसने दिल्ली और मालवा के बादशाहों के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करके शत्रुओं की सेना को पराजित किया। दिल्ली के बादशाह

इब्राहीम लोदी ने दो बार संग्रामसिंह के साथ युद्ध किया और दोनों बार वह पराजित हुआ।

राणा संग्रामसिंह के शासन काल में मेवाड़ राज्य की सीमा बहुत दूर तक फैल गयी थी। उत्तर में बयाना प्रान्त में बहने वाली पीलीनदी, पूर्व में सिंध नदी, दक्षिण में मालवा और पश्चिम में मेवाड़ की दुर्गम शैलमाला उसकी सीमा बन गयी थी। मेवाड़ राज्य की यह उन्नति राणा संग्राम सिंह की योग्यता, गम्भीरता और दूरदर्शिता का परिचय देती है। उसके सिंहासन पर आने के पहले जिन शत्रुओं ने चित्तौड़ पर अधिकार करने के सपने देखे थे, राणा संग्रामसिंह के आते ही उनका और उनके सहायकों का फिर कभी नाम सुनने को नहीं मिला। इन सब बातों का कारण यह था कि राणा संग्रामसिंह प्रतापी और बहादुर राजा था।

मध्य एशिया की रहने वाली जातियों ने बारम्बार आक्रमण करके भारतवर्ष में लूटमार की थी, इस देश का प्राचीन इतिहास स्वयं इस बात का प्रमाण है। इन हमलों और लगातार लूट का कारण यह था कि इस विशाल देश का शासन प्राचीन काल से अगणित छोटे-छोटे राज़ाओं और नरेशों के अधिकार में चला आ रहा था। उन पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं था, जैसा कि इस देश में आज भी है। ये छोटे-छोटे सभी राजा और नरेश एक दूसरे से ईर्ष्या करते थे। उनमें परस्पर मित्रता और सहानुभूति का सम्बन्ध न था।

यूनान के इतिहासकारों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था, केवल पंजाब में छोटे-छोटे बहुत से राजा थे। सिकन्दर के बाद ईरान के लोगों ने भारत पर आक्रमण किया। सम्राट डैरियस ने अपने अधिकृत राज्यों में भारत को सब से अधिक सम्पन्न और समृद्धिशाली पाया था। तक्षक, पारद, हूण, यूनानी, गौरी और चगताई आदि अनेक जातियों ने समय-समय पर इस देश पर आक्रमण किये थे और यहाँ की अपरिमित सम्पत्ति लूटकर अपने देश में ले गये थे। प्राचीन काल से लेकर बहुत समय तक लगातार इस देश के लूटे जाने के दो ही कारण थे। एक तो यह कि यह देश अत्यधिक सम्पत्तिशाली था और दूसरा कारण यह था कि इस देश में अगणित राजा और नरेश थे और उनमें परस्पर फूट चल रही थी। उस फूट और ईर्ष्या के कारण ही बाहरी आक्रमणकारी और लुटेरी जातियों को इस देश में आने और आक्रमण करने का मौका मिला। गौरी से लेकर बाबर तक पाँच आक्रमण इस देश में ऐसे हुए जिनमें प्रत्येक ने यहाँ आकर और इस देश के राज्यों को पराजित करके अपने शासन कायम किये। संग्रामसिंह के समय में जिसने इस देश में आकर आक्रमण किया था, वह इन पाँचों में अंतिम था। उसने यहाँ पर अपना जो राज्य कायम किया, उसमें उसके वंशजों ने अंग्रेजी शासन के आरम्भ तक बादशाहत की।

यहाँ के राजपूत आज भी वैसे ही हैं जैसे कई हजार वर्ष पहले उनके पूर्वज थे। उनके जीवन की नैतिकता और सामाजिकता आज भी वही दीन-दुर्बल-पुरानी दिखायी देती है। जो बहुत प्राचीन काल में इस वंश के लोगों मे पायी जाती थी। आपस की फूट और ईर्ष्या हजारों वर्ष पहले इनके पूर्वजों के जीवन में जो काम कर रही थी, वह आज भी उनमें मौजूद है। संसार एक तरफ है और यहाँ के लोग दूसरी तरफ हैं। विश्व में किसी के साथ इस देश का सम्बन्ध और सम्पर्क नहीं है। सिकन्दर से लेकर बाबर तक कितने ही भयानक तूफान इस देश में आये। उनसे देश बार-बार उजड़ा और सभी बातों में इसका सर्वनाश हुआ। परन्तु यहाँ के लोगों ने किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझी। जीवन के इस सिद्धान्त की यहाँ पर आलोचना करने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार की बातें सही हैं अथवा गलत, इसका निर्णय तत्ववेत्ताओं के दृष्टिकोण से सम्बन्ध रखता है। लेकिन यहाँ पर हम इतना ही कह सकते हैं कि जीवन के जिस पहलु का अभाव ऐसे अवसरों पर

बार-बार खटकता है, उसके भीतर शक्तियों का सामन्जस्य छिपा रहता है और उसके ऊपर ही पूर्ण रूप से सार्वजनिक जीवन का विकास और विनाश निर्भर होता है।

बाबर इन दिनों में मध्य एशिया के फरगना[1] का राजा था। फरगना का राज्य जक्सतरत्तीस नदी के दोनों किनारों पर फैला हुआ था। वहाँ पर जिन लोगों की आवादी थी, उस समय वे लोग बड़े शक्तिशाली थे और उन लोगों की तलवारों से किसी समय यूरोप तथा एशिया के अनेक राज्य बरबाद हो गये थे। उन दिनों में इन लोगों ने अपने रहने के पुराने स्थानों को छोड़ दिया था और संसार में सब जगह इस जाति के लोग फैल गये थे। जिन लोगों के एटिला और एलारिक जैसे पराक्रमी वीरों ने संसार के बहुत से देशों को भयभीत कर दिया था उस जाति के लोगों में परस्पर संगठन था और उनमें वहादुरी भी थी। उनके इन गुणों से को नकारा नहीं जा सकता। यही लोग दो हजार की संख्या में भारतवर्ष में आये थे और दिल्ली पर इन्होंने अधिकार कर लिया था।

फरगना के बादशाह बाबर की और संग्रामसिंह के जीवन की अनेक बातें मिलती-जुलती हैं। संग्रामसिंह के बचपन का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। उन बातों को यहाँ पर फिर से लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही लिखना काफी है कि उसने लड़कपन से लेकर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठने के समय तक जीवन की भयानक कठिनाइयों का सामना किया था। वह जब छोटा था, भाइयों के साथ उसका झगड़ा हुआ था और उस झगड़े में अपने प्राण लेकर वह राज्य से भाग गया था। कहाँ गया और किस प्रकार उसने अपना जीवन निर्वाह किया, इसको लिखकर यहाँ पर विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है। राणा रायमल के मर जाने पर जब वह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा, उस समय से उसकी जिन्दगी के अच्छे दिन आरम्भ होते हैं।

बादशाह बाबर की जिन्दगी की शुरुआत भी बड़ी भयानक रही थी। सन् 1494 ईसवी में वह फरगना के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी। इसके चार बर्ष बाद, सोलह वर्ष की अवस्था में उसने अपने आस-पास के कई राजाओं के साथ युद्ध किया और दो वर्षों के बाद उसने समरकन्द पर अधिकार कर लिया। परन्तु उसके बाद वह फिर उसके अधिकार से निकल गया। इन दिनों में उसका जीवन बड़ी विचित्र गति से चल रहा था। पड़ौसी राज्यों के साथ उसके रोज के संघर्ष थे। उनमें कभी उसकी हार होती थी और कभी वह विजयी होता था। कभी पराजित होने पर अपना राज्य छोड़कर उसे दूर भाग जाना पड़ता था और उसके बाद अपनी शक्तियों का संगठन करके वह फिर शत्रु से युद्ध करता था। वह अपने जीवन के आरम्भ से साहसी था और अपनी सफलता पर विश्वास करता था। वह कभी घबराता न था।

इन दिनों में उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ गयी थी, इसलिए अपना राज्य छोड़कर वह हिन्दू-कुश की तरफ रवाना हुआ और सन् 1519 ईसवी में सिंध नदी के पास पहुँच गया। इस समय वह बहुत निर्बल अवस्था में था। काबुल और पंजाब के बीच में रहकर उसने किसी प्रकार सात वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में अपनी सफलता के नये-नये रास्ते वह खोजता रहा।इसके बाद बाबर ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी पर चढ़ाई की। उसके भाग्य ने उसका साथ दिया। इब्राहीम मारा गया। उसकी सेना युद्ध से भागकर तितर-बितर हो गयी। दिल्ली और आगरा के लोगों ने बाबर का स्वागत किया। अपनी सफलता को देखकर बाबर ने भगवान को धन्यवाद दिया।

---

1. फरगना को आजकल कोकन कहा जाता है। यह जक्सतरत्तीस नदी के किनारे पर बसा हुआ है।

दिल्ली विजय करने के बाद एक वर्ष तक बाबर ने दिल्ली में विश्राम किया। इन दिनों में उसने भारतवर्ष के राजाओं का अध्ययन किया। चित्तौड़ के सिंहासन पर उस समय राणा संग्रामसिंह था। वह स्वयं शूरवीर था और मेवाड़ राज्य की शक्तियाँ इन दिनों में विशाल हो चुकी थीं। लेकिन इस देश के राजाओं की फूट और ईर्ष्या उन दिनों में भी अपना काम कर रही थीं। बाबर ने भारत की इस राजनीतिक अवस्था का भली प्रकार अध्ययन किया और उसके बाद उसने राणा संग्रामसिंह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।

बाबर दिल्ली का राज्य प्राप्त करके बड़ी बुद्धिमानी के साथ सैनिक शक्तियों का संगठन करता रहा और उसके बाद पन्द्रह सौ सैनिकों की एक सेना लेकर संग्रामसिंह से युद्ध करने के लिए वह आगरा और सीकरी से रवाना हुआ। यह समाचार पाते ही राणा संग्रामसिंह ने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। राजस्थान के लगभग सभी राजा और मेवाड़ राज्य के सामन्त अपनी सेनायें लेकर चित्तौड़ में पहुँच गये। सब के साथ राणा संग्रामसिंह बाबर से युद्ध करने के लिए चित्तौड़ से आगे बढ़ा। कार्तिक महीने की पंचमी सम्वत् 1584 सन् 1528 ईसवी को राजपूत सेना ने बयाना पहुँच कर बाबर की सेना का रास्ता रोका और खनुआ नामक स्थान के मैदान में संग्रामसिंह की सेना ने बादशाह बाबर की फौज का सामना किया।[1] दोनों ओर से संग्राम आरम्भ हो गया। राजपूतों की विशाल सेना के द्वारा बाबर की फौज करीब-करीब सब काट डाली गयी। यह अवस्था बाबर के लिए भयंकर हो उठी लेकिन बाबर जरा भी हतोत्साहित न हुआ। उसकी सहायता के लिए एक दूसरी नयी फौज युद्ध के मैदान में पहुँच गयी। राजपूतों के साथ उसने भी युद्ध किया। बाबर की इस नयी फौज के भी बहुत से सैनिक मारे गये। यह देखकर अपने बचे हुए सिपाहियों के साथ बाबर उस स्थान को लौट गया, जहाँ पर उसने अपनी फौज का शिविर कायम किया था।

राजपूतों की शक्तिशाली सेना के सामने बाबर की फौज बुरी तरह से पराजित हुई। परन्तु इससे वह जरा भी भयभीत न हुआ। उसने अपने शिविर के आस-पास गहरी खाइयाँ खुदवा दीं और उनके किनारों पर शत्रु की रोक के लिए तोपें लगा कर उनको जंजीरों से बँधवा दिया। इसके बाद अपने शिविर में पन्द्रह रोज तक चुपचाप बैठा रहा। राजपूतों की विशाल सेना के द्वारा जिस प्रकार बाबर के सैनिक मारे गये और दो बार बाबर संग्रामसिंह के मुकाबले में पराजित हो चुका था, उसके कारण बाबर की सेना का साहस बिलकुल शिथिल पड़ गया। इस शिथिलता को दूर करने के लिए बाबर ने तरह-तरह के प्रयत्न किये, लेकिन उसके सैनिकों में युद्ध का उत्साह न पैदा हुआ। यह देखकर बाबर ने अपने सैनिकों के सामने एक ओजस्वी भाषण दिया। इसके बाद उसने अत्यन्त जोशीले शब्दों में अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए कहा - "तुम सब लोग कुरान को अपने हाथ में लेकर इस बात की अहद करो कि इस लड़ाई को हम या तो फतह करेंगे अथवा अपने आपको कुर्बान कर देंगे।"

बादशाह बाबर के मुँह से इन शब्दों को सुनकर उसके सभी सैनिक जोश में आ गये और युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। बाबर इस प्रकार के अवसर की प्रतीक्षा में था। जिस समय वह अपनी सेना को लेकर दो मील आगे बढ़ा, उसी समय राजपूतों की सेना ने सामने आकर युद्ध आरम्भ कर दिया। राजपूतों की शक्तियों का अनुमान लगा कर बाबर ने फिर युद्ध रोक दिया। चित्तौड़ की सेना फिर वापस चली गयी।

---

1. बाबरनामा नामक ग्रन्थ में इस युद्ध का समय 11 फरवरी सन् 1527 ईसवी लिखा गया है।

बाबर की सैनिक निर्बलता का राणा संग्रामसिंह ने कोई लाभ नहीं उठाया। नहीं तो उसने तातारी सेना का सर्वनाश करके बादशाह बाबर को आसानी के साथ भारत से बाहर निकाल दिया होता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। बाबर ने युद्ध बन्द करके राजपूतों को जीतने के लिए बहुत सी बातें सोच डाली। अन्त में उसने सन्धि करने के लिये अपना दूत राणा संग्रामसिंह के पास भेजा। शिलादित्य नामक एक तोमर राजपूत उन दिनों में राइसिन का एक सरदार था और मेवाड़ राज्य का सामन्त था। बाबर के साथ होने वाली सन्धि में वह मध्यस्थ बना। अनेक दिनों तक बाबर और संग्रामसिंह के बीच संधि की बातचीत चलती रही। अन्त में वह असफल हो गयी। उसके बाद फिर दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां होने लगीं। बाबर ने जिस सन्धि का प्रस्ताव किया था, उसकी शर्तों में यह भी तय हो गया था कि दिल्ली और उसकी अधीनता के समस्त इलाके बाबर के अधिकार में रहेंगे और बयाना के पास बहने वाली पीलीनदी मुगल और मेवाड़ राज्य की सीमा समझी जायेगी। इस सन्धि के अनुसार मुगल बादशाह निश्चित कर की रकम राणा को दिया करेगा। बाबर उस समय ऐसी परिस्थिति में था कि उसने सन्धि की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया और उसे इनकार करने का कोई मौका न था। लेकिन शिलादित्य के परामर्श के अनुसार संग्रामसिंह ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया। उसके फलस्वरूप दोनों तरफ से फिर युद्ध की तैयारियाँ हो गयीं। एक महीने तक अपने शिविर में रहकर और सन्धि के अस्वीकृत होने पर अपने शिविर को छोड़कर सेना के साथ युद्ध के लिए बाबर फिर रवाना हुआ। 16 मार्च को दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया।

इस बार के युद्ध में राजपूत अधिक संख्या में मारे गये। जिन शूरवीर सरदारों पर राणा का अधिक विश्वास था, उन सब का युद्ध में सर्वनाश हुआ। इसके बाद भी युद्ध की गति अनिश्चित रूप में चल रही थी। युद्ध की हार और जीत के सम्बन्ध में अभी तक कुछ कहा नहीं जा सकता था। राणा संग्रामसिंह के साहस और विश्वास में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी थी। मार-काट दोनों ओर से भीषण होती जा रही थी। इस भयानक समय में मेवाड़ राज्य का सामन्त शिलादित्य जिसके परामर्श से राणा ने सन्धि को अस्वीकार कर दिया था, अपनी सेना के साथ बाबर के साथ मिल गया। उसके इस देशद्रोह और विश्वासघात के कारण युद्ध की परिस्थिति बदल गयी और थोड़े ही समय में राजपूतों का भयानक रूप से संहार हुआ। राजस्थान के बहुत-से शूरवीर सैनिक उस समय मारे गये और राणा संग्रामसिंह के शरीर में बहुत-से भयानक घाव आये। अपनी उस जख्मी अवस्था में बची हुई सेना के साथ संग्रामसिंह पीछे हट गया और मेवाड़ के पर्वत की ओर जाते हुए उसने कहा, "मैं चित्तौड़ में लौटकर उस समय तक न जाऊंगा, जब तक मैं मुगल बादशाह को पराजित न कर लूंगा।"

बाबर के साथ युद्ध के अन्तिम समय में राणा संग्रामसिंह की पराजय हुई। उसके साथ ही डूँगरपुर के रावल उदयसिंह और उसके दो सौ वीर सैनिक, सलुम्बर के राजा रत्नसिंह और उसके तीन सौ चूँडावत सिपाही, मारवाड़ के राठौड़ राजकुमार रायमल और उसके मेड़ता निवासी दो साहसी योद्धा क्षेभसिंह और रत्नसिंह, सोनगरा सरदार रामदासराव, झला सरदार ओझा, परमार वंश के गोकुलदास, मेवाड़ के चौहान मानकचन्द और चन्द्रभान आदि सभी सूरमाओं का संहार हुआ। दो मुसलमान वीर जो राणा संग्रामसिंह की सहायता के लिए बाबर की सेना के साथ युद्ध करने आये थे, लड़ते हुए मारे गये। इनमें एक इब्राहीम लोदी था, जिसको बाबर ने दिल्ली में आकर पराजित किया था और दूसरा बहादुर हुसैन खाँ था। राजपूत सेना के जितने भी योद्धा मारे गये उनमें ये लोग प्रमुख थे।

युद्ध का अन्त हो गया। संग्रामसिंह युद्ध से हट कर मेवाड़ के पर्वत पर चला गया। यदि वह अभी जीवित रहता तो निश्चित रूप से वह अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कर लेता। लेकिन कदाचित् भगवान को यह स्वीकार न था। जिस समय वह पराजित हुआ, उसी वर्ष बसवा नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी इस अचानक मृत्यु के सम्बन्ध में सन्देह किया जाता है कि उसके मंत्रियों ने विष देकर उसकी हत्या की। परन्तु ऐसा सोचना और सन्देह करना स्वाभाविक और संगत नहीं मालूम होता।

वहु विवाह की प्रथा कई बातों में भयानक होती है। प्राचीन काल में राजस्थान के राजाओं में बहु विवाह की प्रथा थी। यह प्रथा संसार के दूसरे देशों में भी रही है और उसके कारण सदा भीषण दुर्घटनायें हुई हैं। पुत्रवती होने के कारण सभी रानियों की यह अभिलाषा होती है कि हमारे लड़के को राज्य का अधिकार मिलना चाहिए। प्रायः राजाओं के परिवारों में इससे भयानक कलह पैदा होती है और उसके दुष्परिणाम से उन परिवारों का सर्वनाश होता है।

राणा संग्रामसिंह के भी अनेक रानियाँ थीं। राणा के मरने के बाद सभी रानियाँ अपने लड़कों को राज्य सिंहासन पर बिठाने की कोशिश करने लगीं। एक रानी ने तो अपने लड़के को राज्याधिकारी बनाने के लिए यहाँ तक किया कि उसने बादशाह बाबर के साथ मेल कर लिया। उसका विश्वास था कि इस मेल के फलस्वरूप मेरे लड़के को चित्तौड़ के राज्य सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त होगा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने बाबर को प्रसन्न करने की चेष्टा की और इसके लिए उसने रणथम्भौर का प्रसिद्ध दुर्ग और विजय में पाये हुए मालवा राज्य के बादशाह का ताज भी बाबर को भेंट में देना तय किया।

राणा संग्रामसिंह का शरीर लम्बा था, वह स्वस्थ और शक्तिशाली था। उसका रंग गोरा था और नेत्र बड़े-बड़े थे। उसको देखते ही उसके शक्तिशाली होने का अनुमान होता था। युद्ध करते-करते उसके शरीर के कई अंग चोटग्रस्त हो गये थे। वह अत्यन्त साहसी और धैर्यवान था। पराजित शत्रु पर वह सदा रहम करता था और उसके साथ अपनी उदारता का परिचय देता था। रणथम्भौर के दुर्ग पर होने वाले युद्ध में उसने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। उसके इन अच्छे गुणों की प्रशंसा बाबर ने स्वयं अपने संस्मरण में की है। वह संग्रामसिंह की बहादुरी और उदारता की प्रशंसा किया करता था।

संग्रामसिंह के मरने पर सम्पूर्ण राजस्थान में शोक मनाया गया। मेवाड़ पर्वत पर जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी एक प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया गया। राणा के सात लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा और उससे छोटा-दोनों की छोटी आयु में ही मृत्यु हो गयी थी। इस दशा में उसका तीसरा लड़का उसकी मृत्यु के बाद राज्य का अधिकारी हुआ।

सम्वत् 1586 सन् 1530 ईसवी में राणा रत्नसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। धीरता और वीरता के अनेक गुणों में वह अपने पिता राणा संग्रामसिंह की तरह का था। सिंहासन पर बैठते ही उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मेवाड़ राज्य के सम्मान और उत्थान के लिए जब तक जीवित रहूँगा, कोशिश करूँगा। उसके इन शब्दों को सुनकर मेवाड़ राज्य के मंत्रियों और सरदारों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

सिंहासन पर बैठने के पहले रत्नसिंह के जो मनोभाव थे, वे बाद में कायम न रहे और वह धीरे-धीरे बदलने लगा। सिंहासन पर बैठने के पहले जब उसके दोनों बड़े भाइयों की मृत्यु नहीं हुई थी, उसने चुपके से सब की नजरों से छिपकर आमेर के राजा पृथ्वीराज की लड़की से विवाह कर लिया। उसके और उस लड़की के सिवा तीसरा कोई भी इस विवाह के रहस्य को नहीं जानता था। पृथ्वीराज के परिवार में किसी को इस विवाह का पता न था।

लड़की के बड़े होने पर पृथ्वीराज ने उसके विवाह की तैयारियाँ की और बूँदी के हाड़ा वंशीय राजा सूरजमल के साथ उसका विवाह कर दिया। इस विवाह से रत्नसिंह को बहुत आघात पहुँचा। उसने सूरजमल को जो उसका एक नजदीकी रिश्तेदार था और उसकी एक बहन राणा को ब्याही थी, अपना शत्रु मान लिया और उसको दण्ड देने के लिए वह अवसर की खोज में रहने लगा। कुछ दिनों में अहेरिया का उत्सव आया। राणा रत्नसिंह अपने सरदारों और सामन्तों को लेकर उस उत्सव को मनाने के लिए शिकार खेलने के उद्देश्य से जंगल की तरफ रवाना हुआ। बूँदी का राजा सूरजमल भी उसके साथ चला।

सब के साथ राणा एक भयानक जंगल में पहुँच गया और उसके बाद आगे बढ़कर वह एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ पर सूरजमल को छोड़कर उसके साथ का कोई दूसरा आदमी न पहुँचा। राणा रत्नसिंह के मन में सूरजमल के प्रति ईर्ष्या का भाव तो था ही, अवसर पाकर और तलवार निकाल कर उसने सूरजमल पर आक्रमण किया। तलवार के लगते ही सूरजमल अपने घोड़े से गिर गया और सम्हल कर उसने अपनी तलवार का वार राणा पर किया। दोनों में कुछ देर तक लड़ाई हुई। जो लोग चित्तौड़ से साथ गये थे, वे सब के सब उस समय उन दोनों के पास न थे। राणा रत्नसिंह लड़ता हुआ सूरजमल के द्वारा मारा गया।

रत्नसिंह ने चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठकर पाँच वर्ष तक मेवाड़ का राज्य किया और कई बातों में उसने अपने राज्य की उन्नति की। वह होनहार था और उसके द्वारा मेवाड़ राज्य की उन्नति के सम्बन्ध में राज्य के मन्त्रियों ने बड़ी-बड़ी आशायें की थीं। परन्तु अपने ही आचरण के कारण उसकी अकाल मृत्यु हुई। उसके शासन काल में मेवाड़ राज्य पर किसी शत्रु ने आक्रमण नहीं किया।

सम्वत् 1591 सन् 1535 ईसवी में विक्रमाजीत चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। राणा संग्रामसिंह और राणा रत्नसिंह में जितने गुण थे, विक्रमाजीत में उतने ही अवगुण थे। उसमें अयोग्यता थी, अदूरदर्शिता थी। उसके इस प्रकार के अवगुण सिंहासन पर बैठने के बाद इतने बढ़े कि राज्य के सभी मन्त्री और सरदार उससे असन्तुष्ट रहने लगे। राणा विक्रमाजीत ने भी मन्त्रियों और सरदारों की कुछ परवाह न की और शासन के सम्बन्ध में अपनी मनमानी करता रहा। राज्य के जिन आदमियों के साथ उसकी मैत्री का अधिक सम्बन्ध रहता, वे राज्य के छोटे आदमी थे और उनके अधिक सम्पर्क से राणा के सम्मान को आघात पहुँच रहा था। मन्त्रियों और सरदारों की अप्रसन्नता का यह भी एक बड़ा कारण था। उसके इस प्रकार के व्यवहारों से मंत्री और सरदार अपना अपमान अनुभव करते थे। इस प्रकार की बातों का परिणाम यह हुआ कि राणा के साथ सरदारों की कोई सहानुभूति न रह गयी।

दूसरे अनेक अवगुणों के साथ-साथ राणा विक्रमाजीत आलसी और अकर्मण्य भी था। राज्य का शासन ठीक न होने के कारण सम्पूर्ण राज्य में अराजकता फैल रही थी। पर्वत पर रहने वाले जंगली लोग राज्य के सिपाहियों की परवाह न करते थे और राज्य को वे लोग तरह-तरह की हानि पहुँचाने लगे। सरदार और मंत्री इस प्रकार के मामलों में खामोश हो रहे थे।

राणा विक्रमाजीत की इस अयोग्यता के कारण मेवाड़ राज्य निर्बल पड़ने लगा। इस प्रकार की निर्बलता और राज्य में फैली हुई अराजकता अच्छी नहीं होती। शत्रु लोग मेवाड़ राज्य की इन परिस्थितियों का जिन दिनों में दूर से अध्ययन कर रहे थे, गुजरात का बादशाह बहादुर अपने राज्य में बैठा हुआ चित्तौड़ से अपना पुराना बदला लेने की तैयारी कर रहा था। सीसोदिया वंश के राजा पृथ्वीराज ने गुजरात के बादशाह मुजफ्फर को पराजित किया

था और उसे कैद करके राजपूत चित्तौड़ ले गये थे। गुजरात के लोग अपने इस अपमान को भूले न थे। इसलिए गुजरात और मालवा में जितनी सेना थी, सब को लेकर बादशाह बहादुर ने राणा पर आक्रमण किया।

बादशाह बहादुर के द्वारा होने वाले आक्रमण का समाचार पाकर राणा विक्रमाजीत ने चित्तौड़ में युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना लेकर उसने बादशाह की फौज का सामना किया। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। अपनी अयोग्यता के कारण राणा विक्रमाजीत ने अपने सैनिकों की सहानुभूति को खो दिया था। उसका फल यह हुआ कि गुजरात के बादशाह के साथ युद्ध करता हुआ विक्रमाजीत संकट में पड़ गया। जिस स्थान पर यह युद्ध हो रहा था, वह बूँदी राज्य के अन्तर्गत लैचा नामक मुकाम का विस्तृत मैदान था।

राणा विक्रमाजीत बादशाह की फौज के सामने ठहर न सका। उसको पराजित करके बादशाह बहादुर ने अपनी फौज के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उस समय मेवाड़ राज्य के सरदारों और सामन्तों ने युद्ध की तैयारी की और अपनी सेनाओं को लेकर उन लोगों ने चित्तौड़ के बाहर गुजरात की फौज का सामना कियाा। दोनों ओर से घमासान संग्राम आरंभ हुआ।

पिछले पृष्ठों में राणा रायमल के शासन काल में सूरजमल की लड़ाई लिखी जा चुकी है। सूरजमल ने चित्तौड़ को प्राप्त करने के उद्देश्य से मुसलमान बादशाह की फौज लेकर यह युद्ध किया था। राणा रायमल के लड़के पृथ्वीराज ने उसको कई बार पराजित किया था, उस समय सूरजमल ने चित्तौड़ से निराश होकर मेवाड़-राज्य के बाहर देवल नगर बसाया था। आजकल सूरजमल का वंशधर देवल नगर का राजा था। चित्तौड़ पर बादशाह बहादुर के आक्रमण करने पर उसका खून खौला। चित्तौड़ का यह अपमान उसके पूर्वजों का अपमान था। अपनी सेना लेकर चित्तौड़ की रक्षा करने के लिए वह बादशाह बहादुर की फौज के सामने आया। उसके साथ-साथ बूँदी का राजकुमार अपने साथ पाँच सौ सैनिकों को लेकर चित्तौड़ पहुँच गया। सोनगरे , देवल और दूसरे स्थानों के राजपूत भी मेवाड़ राज्य की रक्षा करने के लिए युद्ध में आये। मुसलमान बादशाहों ने जितने आक्रमण अब तक चित्तौड़ पर किये थे, बादशाह बहादुर का आक्रमण उन सब में भयानक था। उसकी फौज में एक योरोपियन गोलन्दाज भी था। उसका नाम लाब्री खाँ था। उसी की सहायता से बादशाह बहादुर ने चित्तौड़ का विध्वंस किया।

चित्तौड़ के बाहर भयानक संग्राम हुआ। राजपूतों ने चित्तौड़ को बचाने के लिए कोई कसर न छोड़ी। लाब्री खाँ होशियार गोलन्दाज था। युद्ध स्थल के करीब बीका पहाड़ी के नीचे उसने एक विशाल सुरंग खोदी और उसमें बारूद भरकर उसमें आग लगा दी। आग लगते ही उस बारूद में भयानक आवाज हुई। जहाँ पर राजपूत खड़े हुए बादशाह की फौज के साथ युद्ध कर रहे थे, वहाँ पर बारूद से बहुत दूर तक की जमीन उड़ गयी। जिसके कारण राजपूत सेना के बहुत से सैनिक जलकर खाक हो गये। चित्तौड़ के दुर्ग के हिस्से टूट गये। राजपूत सेना में जो लोग बचे, वे इधर-उधर भागने लगे। बादशाह की फौज आगे बढ़ने लगी। इस समय दुर्गाराव ने अपने शक्तिशाली सैनिकों के साथ आगे बढ़कर भयानक मारकाट की। बादशाह की फौज एक साथ दुर्गाराव पर टूट पड़ी। जिस समय यह भीषण मारकाट हो रही थी, सीसोदिया वंश की रानी जवाहर बाई ने युद्ध में प्रवेश किया और उसने अपने भाले से बादशाह के बहुत से सैनिकों का संहार किया। अंत में वह मारी गयी। उसके मरने के बाद सूरजमल के वंशज बाघ जी ने अपने सैनिकों के साथ गुजरात की फौज के साथ भीषण युद्ध किया। लेकिन युद्ध की गति भयानक होती गयी। चित्तौड़ की तरफ से लड़ने वाले बहुत-से शूरवीर मारे गये। उसके बाद राजपूत सेना निर्बल पड़ने लगी।

चित्तौड़ के सामने इस समय भयानक संकट था। बादशाह बहादुर की फौज को रोक सकने का अब कोई उपाय मेवाड़ के राजपूतों के पास न था। चित्तौड़ का पतन होने में देर न थी। इस दशा में चित्तौड़ के दरबार में जो लोग बाकी रह गये थे, उनके परामर्श से चित्तौड़ में बड़ी तेजी के साथ जौहरव्रत की व्यवस्था की गयी। रानी कर्णवती तेरह हजार राजपूत बालाओं के साथ जोहरव्रत के लिए सुरंग में पहुँच गयी। उसके बाद सुरंग में तुरंत आग लगाई गयी और चित्तौड़ की तेरह हजार राजपूत ललनायें उस आग में जलकर राख हो गयीं।

इसी समय युद्ध में राजपूतों की पराजय हुई। बत्तीस हजार की संख्या में शूरवीर राजपूतों के मारे जाने पर चित्तौड़ का पतन हुआ और बादशाह बहादुर ने अपनी विजयी सेना के साथ चित्तौड़ में प्रवेश किया। पन्द्रह दिनों तक वहाँ रहकर उसने और उसकी फौज के सिपाहियों ने खुशियाँ मनायीं।

जिस समय बादशाह बहादुर की फौज से युद्ध करते हुए चित्तौड़ की रानी जवाहर बाई मारी गयी थी, रानी कर्णवती को चित्तौड़ के बचने की कोई आशा न रही थी। वह किसी प्रकार अपने छोटे बालक की रक्षा करना चाहती थी। इसलिये बहुत सोच समझकर उसने दिल्ली के बादशाह बाबर के लड़के हुमायूँ से सहायता लेने का विचार किया।

इन्हीं दिनों में रक्षा-बन्धन का त्यौहार था। राजस्थान में यह त्यौहार बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। हिन्दू स्त्रियाँ अपने भाइयों के हाथों में राखियाँ बाँधकर इस त्यौहार की खुशियाँ मनाती हैं। रानी कर्णवती ने दिल्ली में हुमायूँ के पास रक्षा-बन्धन के त्यौहार पर अपनी राखी भेजी। हुमायूँ ने उस राखी के बदले में बादशाह बहादुर से चित्तौड़ की रक्षा करके रानी कर्णवती की सहायता करने का निश्चय किया और इसी आधार पर अपनी एक फौज लेकर वह दिल्ली से चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ और जैसे ही वह चित्तौड़ के करीब पहुँचा, बादशाह बहादुर भयभीत होकर चित्तौड़ छोड़कर चला गया।[1]

राणा विक्रमाजीत हुमायूँ की सहायता से फिर चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उसने इन दिनों में अनेक प्रकार की विपदाओं का सामना किया परन्तु उसके जीवन में कोई परिवर्तन न हुआ। सिंहासन पर बैठते ही उसने फिर उसी प्रकार के अपने काम और व्यवहार आरम्भ कर दिये जिनसे पिछले दिनों में मेवाड़ राज्य के मन्त्री और सरदार रूठ कर उसके विरोधी बन गये थे। अब राणा विक्रमाजीत के सुधार की कोई आशा वहाँ के सरदारों के मन में न रह गयी थी।

इसी बीच में राणा विक्रमाजीत ने उस वृद्ध कर्मसिंह के साथ अपमानजनक व्यवहार चित्तौड़ के दरबार में किया, जिसने संग्रामसिंह की उस समय सहायता की थी, जब वह अपने भाई पृथ्वीराज से लड़कर और भयभीत होकर अपने पिता के राज्य से भाग गया था। बूढ़े कर्मसिंह के साथ राणा विक्रमाजीत का अनुचित व्यवहार देखकर दरबार के सरदारों ने बहुत बुरा माना और वे राणा विक्रमाजीत से इसका बदला लेने के लिए आपस में परामर्श करने लगे।

राजपूत देवता की भांति अपने राजा का सम्मान करना अपना धर्म समझते हैं। इस स्वाभाविक गुण के कारण चित्तौड़ के सरदार लोग राणा विक्रमाजीत के अनुचित कार्यों और

1. हुमायूँ के बारे में उपरोक्त विवरण के कोई प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। अतः यह ऐतिहासिक घटना नहीं है तथा सुनी-सुनाई बात लगती है।

अपमानजनक व्यवहारों को सहन करते रहे। परन्तु कर्मसिंह के साथ राणा का गंदा व्यवहार वे सहन न कर सके और आपस में सलाह करके राणा को सिंहासन से उतार देने का उन लोगों ने निश्चय किया। इस निर्णय के अनुसार चित्तौड़ के सरदारों ने पृथ्वीराज से उत्पन्न होने वाले बनवीर की खोज की और उसके पास पहुँचकर सरदारों ने चित्तौड़ का सब समाचार सुनाया। बनवीर को यह अच्छा न मालूम हुआ कि राणा विक्रमाजीत को सिंहासन से उतारा जाये और उसके बाद मुझे उस पर बिठाया जाये। परन्तु सरदारों के आग्रह को उसे स्वीकार करना पड़ा।

सरदार लोग बनवीर को चित्तौड़ ले आये और राणा विक्रमाजीत को सिंहासन से उतार कर बनवीर को उस सिंहासन पर बिठाया। उस समय मेवाड़ राज्य के उन सभी लोगों को प्रसन्नता हुई, जो राणा से असंतुष्ट थे।

□

अध्याय–19
विक्रमाजीत का वध, पन्ना धाय का त्याग व राणा उदयसिंह

चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठने के कुछ ही समय बाद बनवीर के मनोभावों में परिवर्तन होने लगा। उसे मालूम था कि राणा विक्रमाजीत अभी जीवित है। इस राज्य का वास्तव में वही अधिकारी है और उसके बाद राणा संग्रामसिंह का छह वर्ष का बालक उदयसिंह इस राज्य का उत्तराधिकारी है। राज्य के सरदारों के असंतोष से विक्रमाजीत इस सिंहासन से उतारा गया है। वह कभी भी इस सिंहासन पर फिर बैठ सकता है। यदि ऐसा कोई समय मेरे सामने पैदा हुआ और मुझे सिंहासन से हटना पड़ा तो वह मेरा एक असहनीय अपमान होगा। इस प्रकार के विचार बनवीर के अंतःकरण में सिंहासन पर बैठने के बाद बराबर उठने लगे।

असलियत यह थी कि बनवीर चित्तौड़ के राज्य पर सदा के लिये अपना अधिकार चाहता था। वह समझता था कि यदि विक्रमाजीत के लिए मैं सिंहासन से न भी उतारा गया तो संग्रामसिंह का छह वर्ष का बेटा कुछ वर्षों के बाद समर्थ हो जायेगा और उस दशा में वह स्वयं अपने पिता के इस सिंहासन पर बैठेगा। उस समय इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं रहेगा। इस प्रकार की भावनाओं से बनवीर निरंतर चिन्तित रहने लगा। उसके जीवन में विक्रमाजीत और उदयसिंह, दोनों ही काँटे थे। उसने इन कांटों को निर्मूल करने का निश्चय किया और समय की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन सायंकाल उदयसिंह भोजन करके सो गया था। उसका पालन करने वाली पन्ना धाय उसके पास बैठी थी। कुछ समय के बाद महलों में काम करने वाला बारी घबराया हुआ वहाँ आया। उसने पन्ना धाय से कहा–"बनवीर ने विक्रमाजीत को मार डाला।" बारी के मुँह से इस बात को सुनकर वह काँप उठी। उसने समझ लिया कि बनवीर का यह आक्रमण सीसोदिया वंश के लिए अच्छा नहीं है। बनवीर का यह आक्रमण यहीं खत्म न होगा। वह संग्रामसिंह के इस छोटे बालक उदयसिंह को भी निश्चित रूप से अपना शत्रु समझता है। विक्रमाजीत पर होने वाला आक्रमण उदयसिंह के सर्वनाश का संदेश है।

पन्ना धाय खीची वंश के राजपूत परिवार में पैदा हुई थी और जीवन भर उसने चित्तौड़ के महलों में रहकर सीसेदिया वंश की सेवा की थी। वह सदा से इस राजवंश की शुभचिंतक रही थी। उसने किसी भी दशा में छह वर्ष के बालक उदयसिंह के प्राणों को बचाने की चेष्टा की। फलों और तरकारियों के रखने का एक बड़ा झाबा उसे मिल गया।

तेजी के साथ उसने उसमें कपड़ा बिछाकर सोते हुए राजकुमार उदयसिंह को उसमें लेटा दिया और अनेक प्रकार के पत्तों से उस झाबे को ढँक दिया। इसके बाद उस झाबे को दुर्ग से बाहर ले जाने के लिए उसने उस बारी से कहा।

बारी ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। वह झाबे को सिर पर रख कर दुर्ग से बाहर निकल गया। उसके हटते ही पन्ना धाय ने उदयसिंह के स्थान पर अपने छोटे बालक को सुला दिया। बारी झाबे को लेकर वहाँ से चला गया। उसके थोड़ी ही देर बाद बनवीर वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथ में तलवार थी। उसको देखते ही पन्ना धाय का कलेजा धक-धक करने लगा।

इसी समय बनवीर ने पन्ना धाय की तरफ देखा और पूछा– "उदयसिंह कहाँ है ? पन्ना के मुख से कुछ न निकला। घबराहट के साथ उसने अपने सोते हुए बालक की तरफ संकेत किया। बनवीर ने उस बालक की तरफ देखा और बात की बात में उसने अपनी तलवार से उसके टुकड़े कर डाले। पन्ना धाय ने अपने बालक की हत्या का यह दृश्य अपने नेत्रों से देखा। उसका कलेजा अस्थिर हो रहा था, उसके प्राण काँप रहे थे। उसके नेत्रों से आसुँओं की धारा बह निकली। परन्तु उसके मुँह से किसी प्रकार आवाज न निकली। महल में रानियों और दूसरी दासियों को इस दुर्घटना का कोई समाचार उस समय नहीं मिला।

बनवीर वहाँ से चला गया। पन्ना धाय ने उसके जाने के बाद अपने बालक के मृत शरीर की तरफ एक बार देखा और बहते हुए आँसुओं को अपने आँचल से पोछती हुई वह धीरे-धीरे दुर्ग के बाहर निकली। चित्तौड़ के पश्चिमी तरफ बेड़स नदी बहती थी। उसके किनारे पर एक जनहीन स्थान पर रात के समय वह बारी (नाई) अपने निकट राजकुमार के झावा को रखे हुए चुपचाप खड़ा था। उदयसिंह अब भी सो रहा था। पन्ना धाय वहाँ पर आ गई और राजकुमार को सुरक्षित रखने के लिए बाघ जी के लड़के सिंहाराव के पास पहुँच कर प्रार्थना करते हुए उसने सब समाचार कहा। सिंहाराव ने धाय की बातों को सुनकर और घबराकर अपनी असमर्थता प्रकट की। पन्ना धाय वहाँ से निराश होकर दुर्गपुर की तरफ चली और वहाँ के रावल यशकरण के पास जाकर उसने अपनी विपदा सुनाई। परन्तु बनवीर के भय से वह भी राजकुमार को अपने यहाँ रखने का साहस न कर सका। इस समय पन्ना धाय के सामने बड़ा संकट था। रात का समय था और भय के कारण कोई भी राजकुमार को अपने यहाँ रखने के लिए राजी नहीं होता था। इस समय कुछ भीलों ने उसका साथ दिया। इस अवस्था में अरावली के भीषण पहाड़ी रास्तों को पार करती हुई और ईडर के कठिन रास्तों से होकर वह राजकुमार को लिए हुए कमलमीर के दुर्ग में पहुँची। दीप्रा के वणिक वंश में पैदा होने वाला आशाशाह नामक एक आदमी उस समय कमलमीर में राज्य करता था। पन्ना ने उससे मिलकर और उसकी गोद में राजकुमार को देकर नम्रता के साथ उसकी रक्षा करने के लिए उससे प्रार्थना की।

पन्ना धाय की बातों को सुनकर आशाशाह ने राजकुमार की रक्षा करने में भय का अनुभव किया। परन्तु अपनी माता के मुख से इसके सम्बन्ध में कुछ उपदेश भरी बातों को सुन कर वह राजकुमार को अपने यहाँ रखने के लिए तैयार हो गया। राजकुमार को इस प्रकार संरक्षण में देकर पन्ना धाय वहाँ से चली आई। आशाशाह ने राजकुमार को अपना भतीजा कहकर लोगों में जाहिर किया। बालक उदयसिंह उसके बाद वहीं रहने लगा। कुछ दिनों के बाद आशाशाह के यहाँ कई राजपूत गये। उन सरदारों ने राजकुमार उदयसिंह को देखा। उसे देखकर सरदारों को इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि वह आशाशाह का भतीजा है। वे सरदार कमलमीर के दुर्ग से चले गये। परन्तु उदयसिंह के सम्बन्ध में मेवाड़ के सरदारों और सामन्तों में एक अफवाह फैलने लगी। जो बातें लोगों में इधर-उधर फैली,

उनको सही-सही समझने के लिए मेवाड़-राज्य के कितने ही लोगों का कमलमीर के दुर्ग में आना आरम्भ हुआ। सलुम्बर के राजा सहीदास, कैलवा के राजा जग्गी और गोरखनाथ साँगा इत्यादि चूण्डावत कुल के अनेक सामन्त, कोठोरिया और वैदला के चौहान, बिजौली के परमार राजपूत, सांचोर के राजा पृथ्वीराज और जेंतावत लूनकरन आदि सभी उदयसिंह को देखने के लिए कमलमीर में आये। उस मौके पर पन्ना धाय और राजकुमार को झाबे में लाने वाला वारी भी वहाँ पर बुलाया गया।

सब की मौजूदगी में कमलमीर में आये हुए राजाओं और सामन्तों का एक दरबार हुआ। आशाशाह ने सबके सामने बताया कि राजकुमार उदयसिंह आश्रय पाने के लिए पन्ना धाय के द्वारा किस प्रकार उसके पास लाया गया। पन्ना धाय ने सबके सामने आशाशाह की बातों का समर्थन किया। संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह को जीवित पाकर सभी लोगों को अपार हर्ष हुआ। क्योंकि अब तक सबको यह मालूम था कि वनवीर ने राणा विक्रमाजीत और राजकुमार उदयसिंह को मार डाला है।

इसके बाद यह समाचार बड़ी तेजी के साथ मेवाड़ राज्य में फैल गया। वनवीर को भी मालूम हुआ कि राजकुमार उदयसिंह अभी जीवित है और वह मरा नहीं। उसे यह सब सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उदयसिंह के जीवित होने का रहस्य उसकी समझ में न आया। उसने अपनी समझ में विक्रमाजीत और उदयसिंह का संहार करके मेवाड़ का राज्य सदा के लिए सुरक्षित बना लिया था।

वनवीर का जन्म शीतल सेनी नामक दासी के गर्भ से हुआ था। इसलिए वह मेवाड़ राज्य का अधिकारी न था। राणा विक्रमाजीत चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठकर अयोग्य साबित हो चुका था और राणा संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह की अवस्था उस समय बहुत कम थी। मेवाड़ राज्य के सभी सरदार राणा विक्रमाजीत से बहुत असंतुष्ट थे और किसी प्रकार वे उसको चित्तौड़ के सिंहासन पर नहीं देखना चाहते थे। इसलिए इस विवशता में, यह सोच कर कि जब तक राजकुमार उदयसिंह समर्थ नहीं हो जाता, विक्रमाजीत के स्थान पर वनवीर को राज्याधिकारी बनाने के लिए सरदार लोग उसे चित्तौड़ ले आये थे। इस दशा में वनवीर चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा था।

सिंहासन का अधिकारी होने के बाद वनवीर ने जो कुछ किया था, उससे चित्तौड़ के मन्त्री और सरदार बहुत दुःखी थे। उन्हें क्या मालूम था कि जिस वनवीर को लाकर वे कुछ दिनों तक मेवाड़ के राज्य का कार्य सौंपेंगे, वही वनवीर सीसोदिया वंश का सर्वनाश करेगा। जिस समय चित्तौड़ के सरदारों को मालूम हुआ कि राणा संग्रामसिंह का बेटा उदयसिंह अभी जीवित है और वह कमलमीर दुर्ग में मौजूद है तो उन लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई और उदयसिंह को कमलमीर से लाने के लिए सरदार लोग चित्तौड़ से रवाना हुए।

जिस समय चित्तौड़ के सरदार कमलमीर पहुँचने के लिए अरावली पर्वत के पहाड़ी रास्ते से गुजर रहे थे, सामने पाँच सौ घोड़े और सामान से लदे हुए दस हजार बैल दिखाई दिये। पूछने पर मालूम हुआ कि एक हजार गहरवाल राजपूतों के संरक्षण में यह सब सामग्री कच्छ प्रदेश की तरफ से वनवीर की लड़की को देने के लिए जा रही है।

वनवीर का नाम सुनते ही चित्तौड़ के सरदारों के हृदय में आग लग गई। वे सबके सब एक साथ गहरवाल राजपूतों पर टूट पड़े और उनके संरक्षण में जाने वाली सम्पति पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। लूटी हुई सामग्री को लाकर सरदारों ने जालौर के सोनगरे सरदार की बेटी के साथ उदयसिंह का विवाह किया और विवाह का कार्य जालौर के अन्तर्गत वाली नामक स्थान पर सम्पन्न हुआ। इस विवाह में मेवाड़ राज्य के राजाओं

और सामन्तों के और भी अनेक राज्य और सामन्त शामिल हुए। लेकिन दो सरदार उसमें नहीं आये। उनमें एक का नाम था मालवजी और दूसरा सोलंकी राजपूत था।

इन दोनों सरदारों के सम्मलित न होने से चित्तौड़ के सरदार उन पर वहुत अप्रसन्न हुए और उनको इसका सवक सिखाने के लिए चित्तौड़ के सरदारों ने उन पर आक्रमण किया। जो सरदार विवाह में शामिल नहीं हुए थे, वे घबरा कर बनवीर की शरण में पहुँचे। बनवीर उनकी सहायता करने के लिये अपनी सेना लेकर रवाना हुआ। परन्तु वह चित्तौड़ के सरदारों से उन दोनों की रक्षा न कर सका। मालवजी मारा गया और सोलंकी राजपूत सरदार ने भागकर उदयसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली।

बनवीर अपनी सेना के साथ लौटकर चित्तौड़ पहुँच गया और उदयसिंह का विरोध करने की तैयारी करने लगा। उदयसिंह का विवाह करके चित्तौड़ के सरदार अपनी पूरी शक्ति के साथ चित्तौड़ लौटे। वहाँ पर बनवीर अपनी सेना लेकर उनसे मुकाबले के लिए पहुँचा। एक साधारण लड़ाई के बाद बनवीर की पराजय हुई। वह अपने परिवार के लोगों को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। वहाँ पर उसकी सन्तानों ने नागपुर के भोंसले वंश की स्थापना की।

संवत् 1597 सन् 1541-42 ईसवी में सरदारों ने उदयसिंह को चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया और वड़े समारोह के साथ उसका अभिषेक किया गया। सम्पूर्ण राज्य में खुशियाँ मनाई गईं। चित्तौड़ के सिंहासन पर राणा उदयसिंह के बैठने के कुछ दिनों के बाद मालूम हुआ कि उदयसिंह वहुत अकर्मण्य और अयोग्य है। उसमें एक राजपूत के गुणों का पूर्णरूप से अभाव था। उसमें विलासिता अधिक थी और रात दिन वह अपने महलों में पड़ा रहता था। उसकी इस दिनचर्या ने उसको आलसी और निकम्मा वना दिया।

उदयसिंह के इस प्रकार के जीवन को देखकर चित्तौड़ के सरदारों और मंत्रियों को बड़ी निराशा हुई। सबके सब चित्तौड़ के भविष्य की चिन्ता करने लगे। एक तरफ चित्तौड़ के राजदरबार की यह निराशा वढ़ रही थी और दूसरी तरफ उदयसिंह की विलासिता बढ़ती जाती थी।

चित्तौड़ के सिंहासन पर उदयसिंह के बैठने के पहले दिल्ली के वादशाह वावर का लड़का हुमायूँ दिल्ली के सिंहासन पर आसीन था। वह अपने पिता बाबर के विशाल राज्य का अधिकारी हुआ था। परन्तु दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद उसके जीवन में भयंकर संघर्ष पैदा हो गये थे। इस संघर्ष के कारण उसके भाई थे। वे सव अलग-अलग राज्यों के अधिकारी थे। परन्तु उनको अपने राज्यों पर संतोष न था और वे दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने की अभिलाषा से बादशाह हुमायूँ के साथ अनेक प्रकार के उपद्रव कर रहे थे। भाइयों के इन झगड़ों के कारण सिंहासन पर बैठने के बाद दस वर्ष तक वादशाह हुमायूँ ने भयानक संकटों का मुकावला किया। इन्हीं दिनों में पठान वादशाह शेरशाह ने अपनी प्रचंड सेना लेकर कन्नौज के विस्तृत मैदानों में हुमायूँ की फौज के साथ युद्ध किया और उसको पराजित करके शेरशाह ने दिल्ली के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

वादशाह हुमायूँ ने पराजित होने के बाद अपने परिवार के साथ दिल्ली छोड़ दिया। उसके साथ कुछ दास दासियों के अतिरिक्त दिल्ली के सैनिक भी थे। दिल्ली से भागने के बाद भी हुमायूँ सुरक्षित न हो सका। उसके शत्रु बराबर उसका पीछा कर रहे थे और हुमायूँ सबको अपने साथ लिए हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भाग रहा था। दिल्ली छोड़ कर वह आगरा चला गया और वहाँ से वह लाहौर की तरफ रवाना हुआ। लाहौर पहुँच कर भी

वह शान्ति से रह न सका। शत्रु उसका बराबर पीछा कर रहे थे। इसलिये अपने साथ के सब लोगों को लेकर वह सिंध के राज्य में पहुँचा। इन दिनों में उसके और उसके साथ के लोगों के खाने-पीने की कोई व्यवस्था न थी। उसके साथ उसकी बेगमें भी थीं। वे कई-कई दिनों तक भूखी रह कर बादशाह के साथ सफर करती थीं। कोई राजा हुमायूँ को शरण देने के लिए तैयार न था। हुमायूँ जहाँ पहुँचता था, वहाँ का राजा एक-दो दिन के बाद शेरशाह के डर से हुमायूँ को अपने यहाँ से निकाल देता था। इन दिनों में अपनी इस दुर्दशा के कारण हुमायूँ बहुत घबरा गया था। संकट के इन दिनों में अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसके पास कोई उपाय न था। उसके साथ इन दिनों में जो सैनिक थे इन विपदाओं के कारण उन सैनिकों ने भी उसका साथ छोड़ दिया था और भाग कर इधर-उधर चले गये थे। उसके साथ के कितने ही लोग भूख से तड़प-तड़पकर मर गये थे और कुछ लोगों ने हिन्दू राजाओं के यहाँ जाकर नौकरी कर ली थी।

इन दिनों हुमायूँ के जीवन पर भयंकर संकट था। वह किसी समय भारतवर्ष का बादशाह था और कुछ वर्षों के बाद उसके सामने इतने भीषण संकट आये कि उसका जिन्दा रहना असम्भव मालूम होने लगा। बहुत निराश अवस्था में हुमायूँ ने आश्रय पाने के लिये जैसलमेर और जोधपुर के राजा से प्रार्थना की। परन्तु दोनों ने इन्कार कर दिया। मुस्लिम तवारीखों में लिखा गया है कि आश्रय देने के बजाय जोधपुर के राजा मालदेव ने हुमायूँ को कैद करने की कोशिश की थी। तारीख फरिश्ता का यह उल्लेख कहाँ तक सही है, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि हिन्दू ग्रंथों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

इन दिनों में हुमायूँ की विपदायें चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। उसकी बेगमों को इन दिनों में जो मुसीबतें मिल रही थीं, उनको देखकर हुमायूँ कभी-कभी घबरा उठता था। बेगमों के संकटों को देखकर कभी-कभी उसका धैर्य छूट जाता था। जब वह दिल्ली के राजमहलों में रहने वाली बेगमों को जलती हुई रेतीली भूमि में भयानक कष्टों के साथ चलता हुआ देखता था, तो उसका धैर्य साथ न देता था। फिर भी बड़ी बुद्धिमानी और धीरता से उसने काम लिया। इन भयंकर संकटों के समय वह अपनी बेगमों को प्रायः समझाने की चेष्टा करता था। तवारीख फरिश्ता में हुमायूँ के संकटों का रोमांचकारी वर्णन किया गया है और उसमें लिखा गया है कि हुमायूँ की इन विपदाओं को देख कर अमरकोट के राजा सोढ़ा ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की और उसने हुमायूँ को अपने यहाँ आश्रय दिया।

भारतवर्ष की विशाल मरुभूमि के बीच में अमरकोट बसा हुआ है। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि इसी अमरकोट में शक लोगों ने भारत में आकर अपने रहने का स्थान बनाया था। इसी अमरकोट में सन् 1542 ईसवी में अकबर का जन्म हुआ। उसके पैदा होने के कुछ ही दिनों बाद अमरकोट के राजा सोढा का आश्रय छोड़कर हुमायूँ ईरान चला गया और भारत से निकल कर बारह वर्ष तक वह विभिन्न देशों में मारा-मारा फिरता रहा। कभी वह ईरान में होता, कभी अपने पूर्वजों के राज्य में पहुँच जाता। कभी कन्धार के पहाड़ी इलाकों में मुसीबत के दिनों को काटता हुआ वह घूमा करता और कभी कश्मीर में पहुँच जाता।

इन दिनों में भारत में पठानों का राज्य चल रहा था। उनके उत्तराधिकारियों में भी बहुत से आपसी झगड़े पैदा हो गये। यही कारण था कि थोड़े दिनों के भीतर दिल्ली के सिंहासन पर छह पठान बादशाह बैठे और वे अधिक समय तक राज्य सत्ता का भोग न कर सके। जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर सिकन्दर का अधिकार था और वह अपने भाइयों

के साथ भीषण झगड़ों में पड़ा हुआ था, हुमायूँ काश्मीर में आ गया था। उस समय उसने दिल्ली के आपसी झगड़ों को देखकर अपनी सेनाओं का संगठन किया और एक सेना लेकर उसने सिंध नदी को पार किया और सिकन्दर से युद्ध करने के लिए पहुँच गया। उस समय अकबर की अवस्था बारह वर्ष थी। पठान बादशाह की फौज से युद्ध करने के लिए हुमायूँ ने अपनी सेना देकर अकबर को रवाना किया। सरहिन्द नामक स्थान पर दोनों तरफ की फौजों का सामना हुआ और भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। उस लड़ाई में दोनों तरफ से बहुत-से आदमी मारे गये। अंत में अकबर की विजय हुई। हुमायूँ ने इस विजय के बाद अपनी फौज लेकर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ दिनों के बाद हुमायूँ के जीवन में एक दुर्घटना घटी। किसी समय वह अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों पर से गुजर रहा था, अचानक वह गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

हुमायूँ के मर जाने के बाद सन् 1555 ईसवी में अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इसके थोड़े ही दिनों बाद उसके शत्रुओं ने आक्रमण किया और दिल्ली तथा आगरा को शत्रुओं ने अपने अधिकार में कर लिया। इस दशा में अकबर पंजाब के किसी स्थान पर चला गया। इस अवसर पर बैरामखाँ ने उसकी बड़ी सहायता की। उसकी बुद्धिमता और बहादुरी से अकबर ने अपने खोये हुये अधिकार को प्राप्त किया और इस सिंहासन पर बैठने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में कालपी, चन्देरी, कालिन्जर, समस्त बुन्देलखण्ड और मालवा पर अकबर नें अधिकार कर लिया। इस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी।

अकबर ने थोड़े ही दिनों के बाद राजपूतों के साथ युद्ध करने का निर्णय किया और सब से पहले वह अपनी सेना लेकर मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। बादशाह हुमायूँ ने अपने दुर्भाग्य के दिनों में अन्यान्य के साथ-साथ जोधपुर के राजा मालदेव से भी आश्रय देने की प्रार्थना की थी। कुछ उन्हीं दिनों की शत्रुता का बदला लेने के लिए हुमायूँ का लड़का अकबर दिल्ली से रवाना हुआ।

मारवाड़ में मेड़ता नामक नगर उन दिनों में अधिक सम्पत्तिशाली था और धन-सम्पति के नाम पर मारवाड़ राज्य में उसकी दूसरी संख्या थी। अकबर ने वहाँ पहुँचकर उस नगर को विध्वंस किया। वहाँ के होने वाले विनाश को देखकर आमेर का राजा भारमल (बिहारीमल) घबरा उठा और अपने लड़के भगवानदास को लेकर उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के लिये उसने अपनी लड़की का विवाह अकबर के साथ कर दिया।

इसके बाद अकबर राजस्थान के दूसरे राज्यों पर आक्रमण करने वाला था। परन्तु इसी अवसर पर उसके उजबक सरदारों ने विद्रोह किया। इसीलिए उसने विद्रोही सरदारों का दमन करने की चेष्टा की और जब उसे उसमें सफलता मिल गयी तो अपनी विशाल सेना लेकर उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया।

जिस अवस्था में अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था, ठीक उस अवस्था में उसका पितामह बाबर अपने पूर्वजों के फरगना राज्य का अधिकारी हुआ था। उसके पहले बाबर ने भयंकर संघर्षों का सामना किया था और यही अवस्था अकबर के सिंहासन पर बैठने के पहले रही। दोनों ने अपने जीवन की शिक्षा कठोर विपदाओं के द्वारा पायी थी। जीवन के उन संघर्षों ने दोनों को शक्तिशाली और महान बना दिया। प्रकृति का यह सत्य विश्व के समस्त महान पुरुषों में देखने को मिलता है। प्रकृति के इस सत्य के द्वारा जिसके जीवन का निर्माण नहीं होता, वह निर्बल, अयोग्य और कायर रहा करता है। इस सत्य का

प्रमाण सम्पूर्ण विश्व का इतिहास है और संसार का प्रत्येक महान पुरुष अपने जीवन के तपस्वी दिनों का चित्र उपस्थित कर इस सत्य को स्वीकार करता है।

सिंहासन पर बैठने के समय अकबर और उदयसिंह की अवस्था भी एक ही थी। दोनों तेरह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठे थे। अकबर के जीवन की विपदायें उसके जन्म लेने के पहले से आरम्भ हुई थीं और उदयसिंह के जीवन में उनकी शुरुआत उसकी छह वर्ष की अवस्था में हुई थी। विद्वानों और इतिहासकारों के अनुसार अकबर और उदयसिंह - दोनों के जीवन निर्माण एक से होने चाहिए थे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उदयसिंह जब चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा, उस समय वह अकबर के जीवन के बिलकुल विपरीत साबित हुआ। अकबर ने सिंहासन पर बैठने के बाद अपनी योग्यता और महानता का परिचय दिया। परन्तु उदयसिंह ने उसके बिलकुल विपरीत अपनी अयोग्यता और कायरता का परिचय दिया। इन दोनों के जीवन चरित्रों का अध्ययन करने से ऊपर प्रकृति के जिस सत्य का उल्लेख किया गया है, उसमें संदेह पैदा होता है। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सही बात यह है कि उदयसिंह के जीवन-चरित्र के अध्ययन करने और उसको समझने में भूल की जाती है। सच बात यह है कि उदयसिंह ने अपने जीवन में न तो कठिनाइयों को देखा था और न कभी जीवन के संघर्षों का सामना करने की नौबत उसके जीवन में आयी थी। छह वर्ष तक वह चित्तौड़ के सुरक्षित दुर्ग में रहा था और उसके बाद बनवीर के आक्रमण से बचाने के लिए वह जैसलमेर के दुर्ग में पहुँचा दिया गया था वहाँ पर भी उसने एक राजभवन में ही अपना जीवन व्यतीत किया और उसके बाद अपने आप वह चित्तौड़ के सिंहासन पर पहुँच गया। जीवन की सरलता और कोमलता ने उसको कोमल और भीरू बना दिया था।

जक्सतरत्तीस नदी के तट पर बसे हुए अपने फरगना राज्य को छोड़कर और वहाँ से भाग कर काबुल होता हुआ बाबर भारत में पहुँचा था और दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर उसने जिस राज्य की नींव डाली थी, उसको साम्राज्य बना देने का कार्य अकबर ने किया। वह न केवल एक चतुर शासक था बल्कि दूसरे के हृदयों पर अधिकार करने का मंत्र भी वह जानता था। शासन की योग्यता के द्वारा उसने अपने छोटे-से राज्य को विस्तृत बनाया और जिनके राज्यों को लेकर उसने अपने राज्य में मिला लिया था, उनके हृदयों पर अपने उस मंत्र के द्वारा अधिकार किया था। इसी का यह परिणाम था कि जो हिन्दू राजा और नरेश उसके द्वारा पराजित हुए उन्होंने भी उसको जगद्‌गुरू दिल्लीश्वरो कह कर सम्बोधित किया था।

भट्ट ग्रंथों के अनुसार अकबर ने दो बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। लेकिन तवारीख फरिश्ता में अकबर के एक ही आक्रमण का वर्णन किया जाता है। भट्ट ग्रंथों के अनुसार चित्तौड़ के पहले आक्रमण में अकबर को सफलता नहीं मिली थी। चित्तौड़ के सरदारों और मेवाड़ राज्य के सामन्तों ने अपनी-अपनी सेनायें लेकर चित्तौड़ की रक्षा करने के लिए अकबर की फौज के साथ युद्ध किया था और मुगल बादशाह को पराजित किया था। उस युद्ध में राणा उदयसिंह की अविवाहिता एक उपपत्नी ने भी चित्तौड़ की सेना के साथ युद्ध-स्थान में जाकर दिल्ली की फौज पर आक्रमण किया था। उस मौके पर अकबर की फौज पीछे हट गयी थी और युद्ध बन्द हो गया था।

उसके बाद भट्ट ग्रन्थों के अनुसार अकबर ने अपनी पूरी तैयारी के साथ दूसरी बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उस समय उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष की थी। फरिश्ता इतिहास में केवल इसी युद्ध का वर्णन किया गया है। दिल्ली से मुगल सेना सन् 1567 ईसवी में चित्तौड़ की तरफ रवाना हुई और पण्डौली नामक स्थान से बस्सी जाने का जो मार्ग है, वहाँ पहुँचकर मुगल फौज ने अपनी छावनी डाली। जिस स्थान पर बादशाह की फौज

आकर रुकी थी, वहाँ पर संगमरमर का एक स्तम्भ बना हुआ है। यह 'अकबर का डेरा के नाम से प्रसिद्ध है।

भट्ट ग्रन्थों के अनुसार, आक्रमण के लिए आयी हुई मुगल बादशाह की फौज का समाचार सुनकर राणा उदयसिंह चित्तौड़ से भाग गया। लेकिन चित्तौड़ के सरदार इससे भयभीत न हुए और अकबर का मुकाबला करने के लिए उन लोगों ने चित्तौड़ में युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। मेवाड़ राज्य के सभी सामन्त और राजा अपनी सेनायें लेकर चित्तौड़ की तरफ रवाना हो गये। शूरवीर सहीदास चूँडावत वंश की सेना को लेकर पहुँच गया और वहाँ के सर्पद्वार पर उसने अपनी सेना लगा दी। मरेरिया के राजा दूदा की सेना भी चित्तौड़ की रक्षा के लिए आ गयी। बैदला और कटोरिया नामक नगरों के सामन्त भी अपने सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचे। विजोली के परमारों और सादड़ी के झाला नरेश की सेनायें भी युद्ध के लिए आ गयीं। इनके साथ-साथ मेवाड़-राज्य के अन्य सरदार और सामन्त भी युद्ध करने के लिए चित्तौड़ में आ गये। इनके अतिरिक्त और भी जो सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आये, उनमें देवल के राजा बाघ जी के वंशज जालौर नरेश सोनगरे का राव, ईश्वरदास राठौड़, करमचन्द कछवाहा और ग्वालियर के तोमर राजा के नाम प्रमुख हैं। इन सब राजाओं और सामन्तों ने अपनी सेनाओं के साथ चित्तौड़ आकर अकबर की फौज के साथ युद्ध करने की तैयारी की।

अकबर बादशाह की फौज ने जहाँ पर छावनी बनायी थी वहाँ से उसकी सेना चित्तौड़ की तरफ आगे बढ़ी और वह सिंह द्वार पर पहुँच गयी। राजपूतों की सेना ने उसी समय आगे बढ़कर उसका मुकाबला किया। दोनों ओर से तेजी के साथ मारकाट आरम्भ हो गयी। चूण्डावत वीर सरदार सहीदास ने मुगल सेना पर बाणों की वर्षा आरम्भ की।

थोड़ी देर के युद्ध के बाद मुगल सेना चित्तौड़ में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ने लगी। उस समय मुगलों की बन्दूकों की गोलियों से बहुत से राजपूत मारे गये। इसी समय सहीदास के सैनिकों का भयानक रूप से संहार हुआ। परन्तु सहीदास अपनी पूरी शक्ति के साथ मुगलों से युद्ध करता रहा। उसकी इस बहादुरी से राजपूतों में उत्साह की वृद्धि हुई और चित्तौड़ की रक्षा करने वाले सभी राजपूत सरदारों ने मुगल सेना के साथ भयानक मारकाट की। इन वीर सरदारों में सरदार जयमल और पत्ता के पराक्रम को देखकर एक बार मुगल सेना भयभीत हो उठी।

जयमल बदनौर का राजा था। मारवाड़ के शूरवीर सामन्तों में उसका नाम बहुत प्रसिद्ध था। उसका जन्म राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। पत्ता कैलवाड़ा का राजा था। वह चूँडावत वंश की शाखा में पैदा हुआ था। उसका गोत्र जगवत था। उस युद्ध में जयमल और पत्ता ने अपनी भयानक मारकाट के द्वारा जिस प्रकार शत्रुओं का संहार किया, उसकी प्रशंसा अकबर बादशाह ने स्वयं की और इन दोनों वीरों की प्रशंसा में आज तक राजस्थान में गाने गाये जाते हैं।

मेवाड़ के इतिहास में यह भयंकर संग्राम था। इस युद्ध में राजपूतों के साथ-साथ, चित्तौड़ के अन्तःपुर से निकलकर राजपूत वीरांगनाओं ने भी आक्रमणकारी मुगलों के साथ युद्ध किया था और अपने प्राणों की आहुतियाँ दी थीं।चित्तौड़ का यह संग्राम क्रमशः भयानक होता गया। सलुम्बर का राजा शूरवीर चँडावत सहीदास युद्ध करता हुआ मारा गया। उसके गिरते ही पत्ता ने आगे बढ़कर मुगलों की फौज को रोका और प्राणों का भय छोड़कर उसने शत्रुओं पर आक्रमण किया। उस समय पत्ता की अवस्था सोलह वर्ष की थी। चित्तौड़ के पहले युद्ध में उसका पिता मारा गया था। पत्ता की अवस्था छोटी होने के कारण

ही उसकी माँ अपने पति के साथ सती न हो सकी थी और अपने इकलौते पुत्र का पालन करने के लिए वह जीवित रही थी। इस चित्तौड़ पर विशाल मुगल सेना के आक्रमण करने पर विधवा माता ने अपने इकलौते बेटे पत्ता को युद्ध में भेजा था।

सहीदास के मारे जाने के बाद और युद्ध में पत्ता के आगे बढ़ते ही संग्राम की अवस्था भयंकर हो उठी। इसी अवसर पर चित्तौड़ के महलों से निकल कर रानियाँ और राजपूत बालायें युद्ध में गयी थीं और शत्रुओं के साथ मारकाट की थी। उस समय मेवाड़ राज्य के राजपूतों की अवस्था देखने के योग्य थी। वे अब जीवित रहकर चित्तौड़ का पतन देखना नहीं चाहते थे। उस भयंकर युद्ध में राजपूत रमणियाँ मारी गयीं। अगणित संख्या में राजपूतों का संहार हुआ। मुगलों की तोपों और बन्दूकों से राजपूतों का भीषण रूप से सर्वनाश हो रहा था। शत्रु की तोपों और बन्दूकों का मुकाबला करने के लिए राजपूतों के हाथों में धनुष बाण थे। इसी समय जयमल की छाती में शत्रु की एक गोली लगी। वह अपने घोड़े से गिर गया। अब राजपूतों की सेना निर्बल पड़ गयी और युद्ध में बचे हुए राजपूतों ने चित्तौड़ के बचने की आशा छोड़ दी। मुगल सेना का आक्रमण तेज होता जा रहा था। उसको रोकने के लिए आठ हजार राजपूत एक साथ आगे बढ़े, दोनों ओर के सैनिक और सरदार अधिक संख्या में इस समय मारे गये। राजपूत सेना इस समय बहुत कमजोर पड़ गयी। उसके बचे हुए थोड़े से राजपूत अब मुगल सेना को रोक न सके। उस समय अपनी विजयी सेना के साथ अकबर ने चित्तौड़ में प्रवेश किया। इस युद्ध में तीस हजार राजपूत मारे गये, उनमें सत्रह सौ मेवाड़ राज्य के सरदार, सामन्त और राणा वंश के निकटवर्ती सम्बन्धी थे। केवल ग्वालियर का तोमर राजा बच गया था। अन्तःपुर की रानियों, पाँच राजकुमारियों, दो बालकों और सामन्त सरदारों तथा सामन्तों की स्त्रियों ने युद्ध के समय जौहर व्रत में अपने प्राणों का बलिदान किया। वीर बालक पत्ता के मारे जाने पर युद्ध में उसकी विधवा माता और उसकी नव विवाहिता पत्नी ने अपने प्राणों को उत्सर्ग किया।

जयमल की मृत्यु अकबर के हाथ से हुई। जिस बन्दूक की गोली से उसने जयमल को मारा, उस बन्दूक का नाम अकबर ने संग्राम रखा। इसका वर्णन अबुलफजल ने अपनी लिखी हुई पुस्तक में किया है। इस युद्ध में जयमल और पत्ता की बहादुरी देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ था। उसने उन दोनों राजपूत वीरों की कीर्ति को कायम रखने के लिए दिल्ली में किले के सिंहद्वार पर एक ऊंचे चबूतरे के ऊपर दोनों की पाषाण मूर्तियाँ बनवा कर लगवाईं।

अकबर के साथ युद्ध आरम्भ होने के पहले ही उदयसिंह चित्तौड़ छोड़कर गोहिल लोगों के पास चला गया था। ये गोहिल लोग अरावली पर्वत के राजपिप्पली नामक जंगल में रहते थे। कठिनाइयों के साथ कुछ दिन बिताकर वह गुहिलोत नामक स्थान पर चला गया। वह स्थान अरावली पर्वत की शैलमाला के भीतर है। चित्तौड़ पर अधिकार पाने के पहले उदयसिंह के पूर्वज बप्पा रावल ने इसी स्थान के पास कुछ दिनों तक अज्ञातवास किया था। अकबर के द्वारा चित्तौड़ के विध्वंस होने से कई वर्ष पूर्व उसी पहाड़ के बीच में उदयसिंह ने एक विशाल झील बनवाई और अपने नाम पर उदय सागर उसका नाम रखा। इस पर्वत की तलहटी में कितनी ही नदियाँ टेढ़े-मेढ़े आकार में प्रवाहित होती हैं। इनमें से एक नदी की धारा को रोक कर उदयसिंह ने एक विशाल बाँध बनवाया और उसके ऊपर पहाड़ के शिखर पर उसने एक छोटा-सा महल बनवाया। उसने उस महल का नाम नौचौकी रखा। इसके बाद उस महल के आस-पास और भी कितने ही महल बन गये और फिर थोड़े ही दिनों में उस स्थान पर एक नगर तैयार हो गया। उदयसिंह ने अपने नाम पर उस नगर का नाम उदयपुर रखा, जो नगर मेवाड़ की राजधानी माना गया।

चित्तौड़ के पतन के चार वर्ष बाद गोगुण्दा नामक स्थान पर बयालीस वर्ष की अवस्था में उदयसिंह की मृत्यु हो गयी। राणा उदयसिंह के पच्चीस लड़के थे और सभी जीवित थे। वे सभी राणावत के नाम से प्रसिद्ध हुए और उन लोगों ने अपने वंश की अनेक शाखाओं, उपशाखाओं की प्रतिष्ठा की।

मरने के पहले राणा उदयसिंह ने अपने छोटे पुत्र जगमाल को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया था। उसका ऐसा करना राजस्थान की पुरानी नीति के अनुसार अन्यायपूर्ण था। उसके बेटों में इसी अन्याय के कारण झगड़े की शुरुआत हुई। राणा उदयसिंह ने सोनगरे सरदार की लड़की के साथ विवाह किया था। उस राजकुमारी से प्रतापसिंह का जन्म हुआ। प्रताप के मामा जालौर सरदार मेवाड़ के सिंहासन पर प्रताप को बिठाना चाहते थे। राणा उदयसिंह के निर्णय के अनुसार चित्तौड़ के सिंहासन पर जब जगमाल बैठा तो जालौर ने मेवाड़ राज्य के विख्यात चूँडावत कृष्णजी से बातचीत की। कृष्ण जी ने जालौर सरदरार के विचार का समर्थन किया और आवश्यकता पड़ने पर प्रताप के अधिकारों का समर्थन करने के लिए वचन दिया।

एक दिन जगमाल अपने प्रासाद के भोजनालय में उस आसन पर बैठा था, जिस पर प्रताप सिंह को बैठना चाहिये था। उसी समय ग्वालियर राज्य के भूतपूर्व नरेश को अच्छा न मालूम हुआ। इसलिए जगमाल को बैठे हुए आसन से खींचकर रावत कृष्ण ने कहा "महाराज, आप भूल कर रहे हैं। इस आसन पर बैठने का अधिकार केवल प्रतापसिंह को है।"

जगमाल ने कुछ उत्तर न दिया। इसी समय सलुम्बर नरेश ने प्रतापसिंह को लाकर चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया और तीन बार पृथ्वी को स्पर्श करके उसने मेवाड़ राज्य के राणा प्रताप के नाम का सम्बोधन किया। उपस्थित सरदारों और सामन्तों ने उसी समय रावत कृष्ण का समर्थन किया।

संक्षेप में अभिषेक के इस कार्य के समाप्त होने पर राणा प्रताप ने उपस्थित सरदारों और सामन्तों से कहाः "अहेरिया का उत्सव आ गया है। इसलिए हम सब लोग तैयार होकर शिकार के लिए चलें और इस उत्सव के कार्य को सम्पन्न करें।"

सभी लोगों ने राणा प्रताप की बात को स्वीकार किया।

□

अध्याय-20
महान महाराणा प्रताप

राणा प्रताप को मेवाड़ राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु उस अधिकार में नाम के सम्मान के सिवा और कुछ न था। न तो राजधानी थी, न राज्य के वैभव थे और न सेना एवम् सरदार उसके साथ थे। तीन बार के आक्रमणों से चित्तौड़ का सर्वनाश हो चुका था। जो कुछ बाकी था, दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने आक्रमण करके चित्तौड़ की शक्तियों का विध्वंस कर डाला था। इस प्रकार के विनाश के पश्चात् राणा प्रताप को मेवाड़ राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ था।

राज्य की इन दुर्बल परिस्थितियों में भी राणा प्रताप का हृदय निर्बल न पड़ा। उसमें स्वाभिमान था, राजपूती गौरव था और साहस तथा पुरुषार्थ था। राज्य का अधिकार प्राप्त करने के बाद वह चित्तौड़ के उद्धार का उपाय सोचने लगा। किसी प्रकार वह अपने पूर्वजों के गौरव की प्रतिष्ठा करना चाहता था। लेकिन इसके लिए उसके अधिकार में कोई साधन न थे।

बादशाह अकबर अत्यन्त दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। चित्तौड़ को पराजित करने के बाद और राज्य से उदयसिंह के चले जाने के पश्चात् भी वह चुपचाप न बैठा। उसने राजस्थान के एक-एक राज्य और नरेश को अपनी अधीनता में लाने का कार्य आरम्भ कर दिया था और उसके इस प्रयत्न के फलस्वरूप मारवाड़, आमेर, बीकानेर और बूँदी के राजा उसके प्रलोभन में आ गये। इन राज्यों ने न केवल मुगल सम्राट के सामने अपना मस्तक नीचा किया था, बल्कि जो राजपूत नरेश अकबर की अधीनता को मानने के लिए तैयार न थे, उनके साथ ये लोग लड़ने के लिए तैयार थे। इन सब बातों का कारण अकबर की राजनीतिक चाल थी।

अपने अभावों के साथ-साथ राणा प्रताप के सामने इतनी ही कठिनाई न थी, बल्कि इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह थी कि राणा प्रताप का सगा भाई सागर भी शत्रुओं के साथ मिल गया और अकबर बादशाह ने उसको अपनी तरफ से चित्तौड़ का अधिकारी बना दिया। राणा प्रताप के जीवन में इस समय ये सभी परिस्थितियाँ भयानक हो गयी थीं।

राणा प्रताप ने इन विरोधी परिस्थितियों की परवाह न की और वह चित्तौड़ के उद्धार का उपाय लगातार सोचता रहा। उसने धीरे-धीरे अपनी शक्तियों का संगठन आरम्भ किया। सबसे पहले उसने अपने जीवन की विलासिता का अंत कर दिया। सोने-चाँदी के बर्तन में भोजन करने का तरीका उसने मिटा दिया और उन बर्तन के स्थान पर भोजन करने में वृक्षों के पत्तों का प्रयोग आरम्भ कर दिया। सोने के समय कोमल शैया के स्थान पर

उसने कठोर भूमि का प्रयोग किया। विलासिता का यह परित्याग राणा प्रताप ने न केवल अपने जीवन में किया, वल्कि उसने परिवार और वंश वालों के लिए भी इस प्रकार के कुछ कठोर नियम बना दिये और आदेश दिया कि जब तक हम लोग चित्तौड़ को स्वतंत्र न करा लेंगे, सीसोदिया वंश का कोई भी व्यक्ति - स्त्री अथवा पुरुष सुख और विलासिता के जीवन से कोई सम्बन्ध न रखेगा।

चित्तौड़ की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राणा प्रताप ने अपने और अपने वंश वालों के लिए जो कठोर आदेश निकाले, उनका पालन पूर्ण रूप से होने लगा। इस समय के पहले जो युद्ध के बाजे सेना के आगे वजा करते थे, वे आदेश के अनुसार सेना के पीछे वजने लगे। राजपूतों ने अपनी दाढ़ी-मूंछों के वालों को बनवाना बंद कर दिया। भोजन के बर्तनों के स्थान पर वड़े-वड़े वृक्षों के पत्तों का प्रयोग होने लगा। भूमि पर सोना आरम्भ किया गया। उस समय के उन आदेशों की कितनी ही बातें आज तक राजस्थान के राजपूतों में पायी जाती हैं। वे लोग दाढ़ी मूंछों के वाल नहीं बनवाते और भोजन के समय अपने बर्तनों के नीचे किसी न किसी वृक्ष की पत्ती रख लेते हैं।

इन दिनों में मेवाड़-राज्य की जो अधोगति हो गयी थी, उसे देखकर प्रताप के हृदय में एक असहाय वेदना उठा करती थी और उसके कारण वह प्रायः कह उठताः "अच्छा होता यदि सीसोदिया वंश में उदयसिंह का जन्म न हुआ होता अथवा राणा संग्रामसिंह के वाद सीसोदियां वंश का कोई व्यक्ति चित्तौड़ के सिंहासन पर न वैठता।"

राणा संग्रामसिंह के शासन काल में मेवाड़ राज्य ने वड़ी उन्नति की थी। आमेर और मारवाड़ के राज्य मेवाड़ राज्य में शामिल हो गये थे और इन दोनों राज्यों के राजा उस समय इतने शक्तिशाली थे कि मारवाड़ के राजा ने दिल्ली के वादशाह के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की थी। चम्वल नदी के किनारे पर वसे हुए वहुत से छोटे-छोटे राज्यों ने अपनी शक्तियाँ वना ली थीं। इन सव उन्नतियों का कारण मेवाड़ राज्य पर राणा संग्रामसिंह का शासन था। उसने अपने साथ-साथ सभी राजपूत राजाओं और सामन्तों को उन्नति करने का अवसर दिया था। सम्पूर्ण भारतवर्ष में राणा संग्रामसिंह ने सम्मान प्राप्त किया था। यदि वादशाह वावर के साथ युद्ध करने के पश्चात् उसकी आकस्मिक मृत्यु न हुई होती तो उसके बाद इस देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ कदाचित इतनी पतित न होती, जितनी कि हुई। राणा संग्रामसिंह के बाद कोई योग्य शासक चित्तौड़ के सिंहासन पर न बैठा। राणा उदयसिंह ने अपने शासन-काल में मेवाड़ की वची हुई राजपूत मर्यादा का अंत कर दिया।

वादशाह अकवर की महान् शक्तियों का अध्ययन करने के बाद राणा प्रताप ने चित्तौड़ का उद्धार करने के सम्बन्ध में अपने सरदारों को बुलाकर परामर्श किया और किसी भी दशा में मुगलों की पराधीनता से चित्तौड़ को निकालने का उसने निर्णय किया। मेवाड़-राज्य के सामन्तों को प्रताप सिंह ने नयी-नयी जागीरें दीं और वादशाह अकवर के साथ युद्ध करने के लिए उसने कमलमीर[1] को केन्द्र बनाया। इन्हीं दिनों में उसने कमलमीर, गोगूण्दा और पहाड़ी दुर्गों की मरम्मत करायी। राजपूतों की उसने भर्ती आरम्भ की और वड़ी तेजी के साथ उसने अपनी शक्तियों का संगठन आरम्भ किया।

इन सव कार्यों के लिए धन और जन - दोनों का प्रतापसिंह के पास अभाव था। सवसे वड़े दुर्भाग्य की वात यह थी कि वादशाह अकवर के साथ युद्ध करके मेवाड़ राज्य के सभी शक्तिशाली सामन्त और सरदार मारे जा चुके थे और उसके बाद राज्य की परिस्थितियाँ वहुत दुर्वल अवस्था में चल रही थीं परन्तु साहसी प्रताप ने इन परिस्थितियों

1. कमलमीर के किले को अव कुम्भलगढ़ कहते हैं।

की परवाह न की और उसने अपने सरदारों के साथ बैठकर चित्तौड़ को स्वाधीन बनाने की प्रतिज्ञा की। अपने इस निर्णय के साथ उसने मेवाड़ राज्य में घोषणा की– 'जिनको हमारी अधीनता में रहना स्वीकार हो, वे सभी अपने परिवारों के साथ अपने घर द्वार छोड़कर इस पर्वत पर आ जाएं। जो लोग ऐसा न करेंगे, वे शत्रु समझे जायेंगे।"

इस घोषणा के होते ही मेवाड़-राज्य की प्रजा अपने-अपने स्थानों को छोड़कर परिवारों के साथ मेवाड़ के पर्वत की तरफ रवाना हुई और थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण मेवाड़ राज्य सूनसान दिखायी देने लगा। बनास और बड़स नदियों के द्वारा सींची जाने वाली राज्य की उपजाऊ भूमि बरबाद हो गयी और वहाँ की सम्पूर्ण खेती सूख गयी।

राणा प्रताप की उस घोषणा के कारण सम्पूर्ण मेवाड़ राज्य उजड़ गया और उसकी इस अवस्था के कारण मुगल साम्राज्य को इस राज्य से होने वाली सम्पूर्ण आमदनी मारी गयी। बादशाह अकबर को जब मेवाड़ की ये बातें मालूम हुई तो उसे बहुत क्रोध आया और वह प्रताप को इसका दंड देने की व्यवस्था करने लगा। उन दिनों में यूरोप का व्यवसाय मुगल-राज्य के साथ चल रहा था और व्यवसायी सम्पत्ति और सामग्री लेकर मेवाड़ राज्य के भीतर से होकर सूरत अथवा दूसरे बन्दरगाहों पर जाया करते थे। राणा प्रताप के सरदारों ने आक्रमण करके उन व्यवसायियों को लूटना आरम्भ कर दिया। इस लूट की सम्पत्ति और सामग्री से राणा के धन के अभाव की पूर्ति होने लगी।

इस प्रकार के समाचार भी मुगल सम्राट अकबर को मिलने लगे। राणा प्रताप का दमन करना अब उसके लिए अनिवार्य हो गया। लूट की सम्पत्ति और सामग्री से प्रताप ने अपनी आर्थिक अवस्था को कुछ सम्हाल लिया और उस धन से अपनी सेना में सैनिकों की संख्या बढ़ा ली। जो राजपूत उसके साथ आये, उनको उसने उत्तेजित करना आरम्भ किया और वे मुगलों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये।

इन्हीं दिनों में अकबर अपनी एक मुगल सेना लेकर अजमेर पहुँच गया। उसकी प्रचंड शक्ति को देखकर इन्हीं दिनों में मारवाड़ का राजा मालदेव और आमेर का राजा भगवानदास मुगलों की शरण में आ गये। राजा भगवानदास ने भेंट में बहुमूल्य सम्पत्ति और सामग्री देने के लिए अपने बेटे उदयसिंह को अकबर के पास भेजा। वह अजमेर के रास्ते में नागौर नामक स्थान पर बादशाह से मिला और पिता के द्वारा भेजी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति उसने अकबर को भेंट में दी। उससे प्रसन्न होकर अकबर ने मारवाड़ के राजा को राजा की उपाधि दी। इसके पहले वहाँ के राजा राव की उपाधि रखते थे। राजा भगवान दास ने जोधाबाई नामक अपनी बहिन का विवाह अकबर के साथ कर दिया।[1] जिन हिन्दू राजाओं ने अपनी लड़कियाँ और बहनें मुसलमान बादशाहों को दी थीं, उनमें भगवान दास सब से पहला था।

बादशाह अकबर ने उदयसिंह को जोधाबाई के विवाह के बदले में चार बड़े-बड़े इलाके दिये। उन चारों इलाकों की वार्षिक आय लगभग सोलह लाख रुपये की थी। इन चारों इलाकों में गोडवाड़ अथवा गद्वाड़ की आय नौ लाख, उज्जैन की ढ़ाई लाख, तेबलपुर की एक लाख बयासी हजार पाँच सौ और बदनोर की ढाई लाख रुपये थी। इन इलाकों के मिल जाने से मारवाड़ राज्य की आमदनी पहले से दुगुनी हो गयी। आमेर और मारवाड़ के

1. इसी जोधाबाई से सलीम (जहाँगीर) का जन्म हुआ। जोधाबाई का मकबरा आगरा के समीप सिकन्दरा में बना हुआ है। कुछ लोग इस बात में संदेह करते हैं और उनका कहना है कि राजपूत राजाओं ने मुसलमानों को अपनी लड़कियों के स्थान पर दासियाँ दी थीं।

राज्यों की देखा-देखी राजस्थान के दूसरे राजा लोग भी अकवर की शरण में आये और अपनी स्वतंत्रता को दे कर उन लोगों ने अकवर का आश्रय प्राप्त किया।

अकबर बादशाह ने जव राणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ कीं तो जो राजपूत राजा उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे सभी ने अकबर का साथ देने के लिये वचन दिया। इन राजाओं का साथ देने का कुछ और भी कारण था। जो राजा मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर चुके थे और अकवर से मिल गये थे, राणा प्रताप ने उनको पतित समझ कर न केवल उनसे सम्बन्ध उसने स्वयं तोड़ दिया था, वल्कि उनसे कोई सम्वन्ध न रखने के लिए उसने दूसरे राजपूतों को उत्तेजित किया। उस समय अवस्था यह थी कि राजस्थान के लगभग सभी राजपूत राजा मुगल साम्राज्य से भयभीत हो चुके थे और इसीलिए उन्होंने अकवर की अधीनता स्वीकार की थी। वूँदी का हाड़ा राजा किसी प्रकार अपनी मर्यादा को सुरक्षित रख सका था।

जातीयता और वंश का सम्वन्ध तोड़ देने के कारण जितने भी राजा अकवर के आश्रय में गये थे, सब के सब राणा प्रताप से रुष्ट हो गये। इन राजाओं में आमेर का कछवाहा राजा मानसिंह भी था। उसके पिता ने अपनी बहन का विवाह अकबर के साथ कर दिया था। इस प्रकार अकवर मानसिंह का फूफा हुआ। इसके वदले में अकबर ने मानसिंह को अपनी सेना में सेनापति का ऊंचा आसन दिया। राजपूत राजाओं को अकबर की अधीनता में लाने के लिए मानसिंह ने वहुत वड़ा काम किया था। उसकी सहायता से अकबर के साम्राज्य की बहुत वृद्धि हुई।

शोलापुर के युद्ध में विजयी होकर राजा मानसिंह अकवर बादशाह की राजधानी को लौट रहा था। रास्ते में प्रताप का अतिथि वनने के लिये उसके मन में विचार पैदा हुआ। उसने राणा प्रताप के पास इसका समाचार भेजा। राणा प्रताप कमलमीर में रहता था। प्रताप ने उदय सागर पहुँच कर उससे मिलने का प्रवन्ध किया और मानसिंह के भोजन की तैयारी वहीं पर की गयी। भोजन तैयार होने पर प्रताप के पुत्र राजकुमार अमरसिंह ने मानसिंह का स्वागत कर भोजन के लिए बुलाया। उसने आकर भोजन स्थल पर प्रताप को न देखा तो उसने अमरसिंह से पूछा। राजकुमार ने उत्तर देते हुए कहा कि सिर में पीड़ा के कारण पिता जी नहीं आ सकते। यह सुन कर उसने रोष पूर्ण स्वर में कहा– "मैं उस पीड़ा को समझता हूँ। उस शूल की अब कोई औषधि नहीं हो सकती।" राणा प्रताप ने उपस्थित होने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी, भीतर से मानसिंह की इस वात को सुन उसने सामने आकर आवेशपूर्ण शव्दों में कहा– "मैं उस राजपूत के साथ कभी भोजन नहीं कर सकता, जो अपनी वहन-बेटियों का विवाह एक तुर्क के साथ कर सकता है।" राणा के इस उत्तर को सुनकर मानसिंह ने अपना अपमान अनुभव किया। उसने भोजन नहीं किया। भोजन के स्थान से उठते हुए मानसिंह ने प्रतापसिंह की तरफ देख कर कहा - "आप के सम्मान की रक्षा करने के लिए ही मुझे अपनी बेटियाँ और वहनें तुर्क को देनी पड़ी हैं। अगर आप इसका लाभ नहीं उठाना चाहते तो इसका अर्थ यह है कि आप स्वयं खतरों को अपने ऊपर ला रहे हैं। यह मेवाड़ का राज्य अब आप का होकर न रहेगा।" यह कह कर वह अपने घोड़े पर बैठने लगा और उस समय प्रताप की तरफ देख कर उसने कहा– "अगर मैंने आपसे इस अपमान का बदला रणक्षेत्र में न लिया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं हैं।" उसकी इस बात का उत्तर देते हुए प्रतापसिंह ने कहा - "मैं हर्ष के साथ उसके लिए तैयार हूँ।"

जिस समय इस प्रकार की वातें राणा के साथ मानसिंह की हो रही थीं, उस समय उस स्थान पर खड़े किसी राजपूत सरदार ने कुछ असम्मानपूर्ण शव्दो में मानसिंह से कहा - "उस समय अपने फूफा अकबर को भी साथ में लेते आना। उसे लाना भूल न जाना।"

अत्यन्त अपमान के साथ मानसिंह ने इन अंतिम शब्दों को सुना और अपने घोड़े पर बैठकर वह तेजी के साथ चला गया।

जो स्थान मानसिंह के भोजन के लिए तैयार किया गया था, उसके चले जाने के वाद उसे खोद डाला गया और उस पर गंगाजल छिड़क दिया गया। जो पात्र मानसिंह को खाने और पीने के लिए दिये गये थे, उनको अपवित्र समझ कर नष्ट कर दिया गया। जिन लोगों ने मानसिंह को अपनी आँखों से देखा था, उन्होंने उसके जाने के वाद स्नान किया और अपने वस्त्रों को धोकर दूसरे कपड़े पहने।

मानसिंह ने राजधानी में पहुँच कर अकबर वादशाह से प्रतापसिंह के सम्वन्ध की सभी वातें कहीं। अकवर ने मानसिंह के अपमान का बदला लेने के लिए राणा प्रताप के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।

सलीम (जहाँगीर) अकवर का उत्तराधिकारी था। अकवर के निर्णय के अनुसार प्रताप से युद्ध करने के लिए सलीम ने अपनी विशाल सेना तैयार की और राजा मानसिंह तथा मोहव्वत खाँ को साथ में लेकर युद्ध के लिए रवाना हुआ। राणा प्रताप को मानसिंह के जाते ही यह मालूम हो गया कि अब मुगल फौज के आक्रमण में देर नहीं हो सकती। इसलिए अपने सरदारों को वुलाकर कमलमीर में उसने परामर्श किया और सम्राट अकवर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसने बाईस हजार राजपूतों को तैयार किया। इन दिनों में पहाड़ पर रहने वाले वहुत-से लड़ाकू भील प्रताप के साथी वन गये थे। इसलिए वे सव के सब इस समय युद्ध के लिए तैयार हो गये। अपनी इस सेना को लेकर राणा प्रताप अरावली पर्वत के सव से बड़े मार्ग पर पहुँच गया।

जिस स्थान पर जाकर अपनी सेना के साथ प्रताप मुगल फौज के आने का रास्ता देखने लगा, वह नवानगर और उदयपुर के पश्चिम दिशा में था। यह पहाड़ी स्थान घने जंगलों से घिरा हुआ था। उस विस्तृत स्थान पर कुछ छोटे-छोटे नाले व नदियाँ वह रही थीं। उदयपुर से उस स्थान के लिए जाने वाला मार्ग बहुत तंग, कठोर और भयानक था। मार्ग की चौड़ाई बहुत कम थी और उस स्थान से बहुत-से आदमियों का एक साथ निकलना वहुत मुश्किल था। वहाँ पर खड़े होकर देखने से पहाड़ी वृक्षों और जंगलों के सिवा कुछ दिखायी न देता था। इसी स्थान का नाम हल्दीघाटी है। उस हल्दीघाटी के ऊंचे शिखरों पर खड़े होकर राणा प्रताप के समस्त राजपूत और भील युद्ध के लिए तैयार हो गये। ऊंचे शिखरों पर एक ओर भील थे और दूसरी ओर राजपूत। उन सव के हाथों में धनुष-वाण थे।

हल्दीघाटी के उस भयंकर पहाड़ी स्थान पर खड़े होकर अपने शूरवीर सरदारों के साथ प्रताप शत्रुओं के आने का रास्ता देखने लगा। सम्वत् 1632 सन् 1576 ईसवी के जुलाई महीने में दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और भीषण रूप से युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ के सैनिकों और सरदारों ने जिस प्रकार की मार शुरू की, उससे दोनों ही तरफ के शूरवीर योद्धा घायल होकर जमीन पर गिरने लगे। वहुत समय तक भीषण मारकाट के बाद भी किसी प्रकार की निर्वलता किसी तरफ न आयी। अपने राजपूतों और भीलों के साथ मार-काट करता हुआ प्रताप आगे वढ़ने लगा। लेकिन मुगलों की विशाल सेना को पीछे हटाना और आगे वढ़ना अत्यन्त कठिन हो रहा था। बाणों की वर्षा समाप्त हो चुकी थी और दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे के समीप पहुँचकर तलवारों और भालों की भयानक मार कर रहे थे।

हल्दीघाटी के पहाड़ी मैदान में मारकाट करते हुए सैनिक कट-कट कर पृथ्वी पर गिर रहे थे। मुगलों का वढ़ता हुआ जोर देखकर प्रतापसिंह अपने घोड़े पर प्रचंड गति के साथ

शत्रु सेना के भीतर पहुँच गया और वह मानसिंह को खोजने लगा। इसी समय हाथी पर बैठा हुआ अकबर का लड़का सलीम सामने दिखाई पड़ा। उसने अपने चेतक घोड़े को आगे बढ़ाया और सलीम के ऊपर उसने जोरदार वार किया। उसकी तलवार से सलीम के कई अंगरक्षक मारे गये। प्रताप के वार का जवाब देते हुए सलीम ने भी राणा पर वार किया। प्रताप ने उससे बचकर फिर अपने घोड़े को बढ़ाया और सलीम पर जोरदार भाले का आघात किया। उस भाले से सलीम का लोहे की मोटी चद्दर से मढ़ा हुआ हौदा टकराया। शहजादा सलीम बच गया और पूरा आघात उसके हौदे को पहुँचा। उसी समय सलीम का महावत प्रताप की तलवार से मारा गया। उसके गिरते ही सलीम का हाथी पीछे की तरफ हटने लगा। यह देखकर प्रताप सलीम की तरफ आगे बढ़ा और उसके हाथी को घेर कर प्रताप ने सलीम को मारने की चेष्टा की।

इस समय युद्ध अत्यन्त भयानक हो उठा था। सलीम पर प्रताप का आक्रमण देखकर मुगल सेना आगे बढ़ी और उसके बहुत से सैनिक और सरदारों ने प्रताप पर आक्रमण किया। राणा प्रताप ने भी अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। उसकी शक्तिशाली तलवार से इस समय बहुत से शत्रु सैनिक मारे गये। लेकिन मुगल सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया। युद्ध में राजपूत अधिक मारे गये। प्रताप की सेना कमजोर पड़ने लगी। राणा शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ था और मुगलों ने जोरदार हमला उस पर किया था।

प्रताप के मस्तक पर मेवाड़ का मुकुट लगा था। उसी मुकुट को निशाना बनाकर शत्रु प्रताप पर मार कर रहे थे। राणा के आस-पास राजपूतों की संख्या बहुत कम हो गयी थी। इस बात को समझते हुए भी राणा ने निर्भीकता से काम लिया और अपनी तलवार से उसने लगातार शत्रुओं का संहार किया। परन्तु युद्ध की परिस्थिति बिगड़ती जा रही थी और कुछ देर के बाद शत्रु की विशाल सेना ने राणा प्रताप को चारों ओर से घेर लिया। उस समय राजपूत सरदार और सैनिक दूर पड़ गये थे। उन सब ने प्रताप को शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ देखा। मुगलों की सेना भयंकर मार-काट करती हुई आगे बढ़ रही थी। राजपूतों ने प्राणों का भय छोड़कर शत्रुओं पर मार की। उस समय बहुत से मुगल मारे गये। लेकिन राणा प्रताप शत्रुओं के बीच घिरता जा रहा था और मुगलों के जोर के कारण राजपूत प्रताप की तरफ बढ़ न पाते थे।

इस समय प्रताप बिलकुल शत्रुओं के बीच में था। उसके शरीर में बहुत-से जख्म हो गये थे और उनसे लगातार खून बह रहा था। रक्त से उसके कपड़े बिलकुल भीग गये थे। प्रताप ने अपनी इस परिस्थिति को अनुभव किया। उसको कुछ सोचने का मौका न था। उसी समय एक स्वर उसे सुनायी पड़ा– "राणा प्रताप की जय!" इसके बाद तुरन्त झाला का शूरवीर सामन्त मन्नाजी तेजी के साथ बढ़ता हुआ प्रताप के समीप पहुँच गया और बड़ी सावधानी के साथ राणा प्रताप के सिर पर रखे हुए राजमुकुट को उतार कर उसने अपने सिर पर रख लिया और तेजी के साथ वह प्रताप के आगे पहुँच गया। शत्रु इस रहस्य को समझ न सके। राजमुकुट पहने हुए मन्ना जी को प्रताप समझ कर वे लोग उसको मारने की चेष्टा में लगे रहे। मन्ना जी अपनी सेना के साथ शत्रुओं के सामने पहुँचकर भीषण मार-काट करने लगा।

इस समय मन्ना जी के आगे आते ही प्रताप पीछे हट गया और बाहर निकल कर क्षणभर उसने होते हुए युद्ध की तरफ देखा। उसके देखते-देखते शत्रुओं के बीच में मन्ना जी घिर गया और वह मारा गया। अपने नेत्रों से राणा प्रताप ने यह देखा और उसके बाद वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ पर्वत की तरफ आगे बढ़ा। कुछ दूर निकल जाने के बाद प्रताप ने देखा कि उसका पीछे करते हुए दो मुगल सैनिक तेजी के साथ आ रहे हैं। इनमें एक

मुलतानी और दूसरा खुरासानी था। प्रतापसिंह के आगे एक नदी पड़ गयी। प्रताप अपने घोड़े पर बैठा हुआ उसे पार करके निकल गया। अभी तक दोनों मुगल सैनिक नदी के किनारे पर थे और वे उसको पार करने की कोशिश कर रहे थे।

राणा प्रताप के साथ उसका शक्तिशाली चेतक घोड़ा भी जख्मी हुआ। इसलिए उसकी गति धीरे-धीरे कम हो रही थी। मुगल सैनिक नदी पार करके प्रताप का पीछा कर रहे थे, उसी समय पीछे की तरफ राजस्थानी बोली में उसे सुनायी पड़ा– "हो नीला घोड़ा रा असवार!"

प्रताप ने चौंक कर पीछे की तरफ देखा। उसी समय उसे मालूम हुआ कि पीछा करते हुए मेरा भाई शक्तिसिंह आ रहा है। शक्तिसिंह प्रताप से लड़कर मेवाड़ राज्य से चला गया था और बादशाह अकबर से मिल गया था। हल्दीघाटी के युद्ध में बादशाह की तरफ से वह भी सलीम के साथ युद्ध में आया था। जिस समय मुगल सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया और उसके बाद झाला के सामन्त मन्ना जी के आ जाने पर प्रताप युद्ध क्षेत्र से निकल कर चला आया था, शक्तिसिंह ने मुगल सेना के बीच से यह सब अपने नेत्रों से देखा। शत्रुओं के द्वारा राजपूतों की पराजय वह देख न सका। वह एक राजपूत था और उसके प्राणों में राजपूती स्वाभिमान था। उसने राणा प्रताप को युद्ध क्षेत्र से निकलते हुए देखा और यह भी देखा कि दो मुगल सैनिक राणा का पीछा कर रहे हैं। अब वह अपने आपको रोक न सका और युद्धक्षेत्र से निकल कर अपने घोड़े पर वह तेजी के साथ पीछा करने वाले दोनों मुगल सैनिकों की तरफ बढ़ा।

शत्रु से मिले हुए विरोधी भाई शक्तिसिंह को अपने पीछे आता हुआ देखकर राणा को शंका उत्पन्न हुई। वह समझ गया कि शक्तिसिंह अपने बैर का बदला लेने के लिए मेरे पीछे आ रहा है। राणा प्रताप के हृदय का स्वाभिमान जागृत हुआ। खड़े होकर साहस और क्रोध के साथ वह शक्तिसिंह के आने की प्रतीक्षा करने लगा। शक्तिसिंह के कुछ निकट पहुँचने पर राणा ने उसके मुखमण्डल पर उदासी और निराशा के भाव देखे। उसके मन का भाव बदलने लगा। इसी समय शक्तिसिंह निकट पहुँच कर प्रताप के चरणों पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। प्रतापसिंह ने शक्तिसिंह को उठाकर छाती से लगाया। कुछ देर तक दोनों के नेत्रों से आँसू बहते रहे।

इसी समय प्रताप ने अपने घोड़े की तरफ देखा। वह गिर गया था और उसके प्राण इस संसार से विदा हो चुके थे। प्रताप के हृदय में अपने घोड़े के लिए बहुत स्नेह था। उसके बल पर ही राणा ने मुगलों के साथ भयंकर युद्ध किया था और संग्राम के कई अवसरों पर चेतक ने राणा के प्राण बचाये थे। घोड़े के मर जाने पर राणा को अत्यन्त दुःख हुआ।

शक्तिसिंह ने राणा को अपना घोड़ा दे दिया। प्रतापसिंह के रवाना होने के पहले शक्तिसिंह ने राणा से कहा– "अवसर मिलने पर मैं चला आऊंगा और आपसे मिलूँगा।"शक्तिसिंह के मुँह से प्रताप ने इन शब्दों को सुना। इसके बाद वह चला गया। प्रतापसिंह का पीछा करते हुए जो मुगल सैनिक आ रहे थे, शक्तिसिंह ने उन दोनों को मार डाला था और प्रतापसिंह से मिलकर वह खुरासानी सैनिक के घोड़े पर बैठकर वहाँ से लौटा। युद्ध बन्द हो जाने के बाद सलीम प्रसन्नता के साथ अपनी विजयी सेना को लेकर राजधानी लौट गया।

शक्तिसिंह के पहुँचने पर सलीम को उस पर उस समय संदेह पैदा हुआ, जब शक्तिसिंह ने कहा कि प्रतापसिंह ने न केवल पीछा करने वाले दोनों मुगल सैनिकों को मार

डाला, बल्कि उसने मेरे घोड़े को भी खत्म कर दिया। इस दशा में मुझे खुरासानी सैनिक के घोड़े पर बैठकर यहाँ आना पड़ा। सलीम ने प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि अगर तुम सही-सही बात कह दोगे तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा। सलीम की इस बात पर शक्तिसिंह ने उत्तर दिया - "मेवाड़-राज्य का उत्तरदायित्व मेरे भाई के कंधों पर है। इस संकट के समय उसकी बिना सहायता किये हुए मैं कैसे रह सकता।" सलीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और शक्तिसिंह को चले जाने की उसने आज्ञा दी।[1]

उदयपुर पहुँचकर शक्तिसिंह ने अपने भाई प्रतापसिंह से भेंट की। उदयपुर पहुँचने के पहले रास्ते में शक्तिसिंह ने भिनसोर नामक दुर्ग पर आक्रमण किया और उसको अपने अधिकार में ले लिया था। उदयपुर पहुँचकर उस दुर्ग को भेंट में देते हुए शक्तिसिंह ने राणा का अभिवादन किया। प्रतापसिंह ने प्रसन्न होकर दुर्ग शक्तिसिंह को पुरस्कार में दे दिया। यह दुर्ग बहुत दिनों तक शक्तिसिंह के वंश वालों के अधिकार में रहा।

हल्दीघाटी के इस युद्ध में राणा प्रताप के बाईस हंजार राजपूतों में चौदह हजार राजपूत मारे गये और आठ हजार राजपूत बचकर उदयपुर वापस आये। इस युद्ध में राणा प्रताप के अत्यन्त निकटवर्ती पाँच सौ कुटुम्बी और सम्बन्धी, ग्वालियर का भूतपूर्व राजा रामशाह और साढ़े तीन सौ तोमर वीरों के साथ रामशाह का बेटा खाण्डेराव मारा गया। राणा प्रतापसिंह के प्राणों की रक्षा करके झाला के वीर सामन्त मन्ना जी ने अपने प्राणों की आहुति दी। इन महान बलिदानों के बाद भी मुगल सेना के बहुत बड़ी होने के कारण राणा प्रतापसिंह की पराजय हुई।

इन दिनों में उदयपुर को राणा प्रताप ने रहने का स्थान बनाया। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद शत्रुओं के आक्रमण करने पर राणा प्रताप ने कमलमीर में पहुँच कर छावनी बनायी। मुगल सेना के सेनापति को व शाहबाजखाँ ने उसके बाद कमलमीर के पहाड़ी स्थान को घेर लिया। उस समय राणा प्रताप ने कुछ दिनों तक उसका मुकाबला किया। इन्हीं दिनों में देवराज नाम के एक राजपूत ने प्रताप के साथ विश्वासघात किया। कमलमीर में नागन नाम का एक बड़ा कुआ था। कमलमीर के लोग उसी कुए का पानी पीते थे। यह रहस्य देवराज से शत्रुओं को मालूम हुआ। उस कुए का पानी किसी प्रकार विषाक्त बना दिया गया। इस दशा में राणा के सामने पानी का भयंकर संकट पैदा हो गया। इसलिए वह अपने परिवार और सैनिकों के साथ कमलमीर से चावण्ड नामक पहाड़ी दुर्ग पर चला गया।

कमलमीर पर आक्रमण करने पर राजा मानसिंह ने घरमेती और गोगुन्दा नामक दोनों पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार कर लिया। इसी अवसर पर सागर जी के बेटे मोहब्बत खाँ ने उदयपुर पर अधिकार किया। अमीशाह नाम के एक मुगल शहजादे ने चावण्ड और अगुणपानोर के बीच पहुँच कर भीलों के साथ ऐसा उत्पात किया, जिससे उनके साथ राणा प्रताप के जो सम्बन्ध थे, वे छिन्न-भिन्न हो गये। फरीद खाँ नाम के एक मुगल सेनापति ने चप्पन को घेर लिया और चावण्ड के दुर्ग तक जहाँ राणा प्रताप और उसके राजपूत पहुँच गये थे - आतंक पैदा कर दिया। राणा के रहने का स्थान चावण्ड शत्रुओं से घिर गया। मेवाड़ के जितने पहाड़ी स्थान और दुर्ग थे, सब के सब बादशाह की फौज के आतंक में आ गये। शत्रु के सैनिक बड़ी संख्या में प्रताप की खोज में रहने लगे। राणा अपने परिवार और राजपूतों के साथ पर्वत के घने जंगलों में छिपा रहता और मौका पाते ही वह शत्रुओं पर आक्रमण कर देता।

---

1. यह घटना उचित ऐतिहासिक स्रोतों के अभाव में पूर्णतः प्रामाणिक नहीं मानी जाती है तथा भाटों द्वारा गढ़ी हुई लगती है।

इन दिनों में राणा प्रताप के सामने भयानक कठिनाइयाँ पैदा हो गयी थीं। शत्रु की अनेक छोटी-छोटी सेनायें पहाड़ पर घूम रही थीं और वे प्रताप को कैद करने की पूरी कोशिश में थी। इस बीच में कई पहाड़ी स्थानों पर अचानक प्रताप ने बादशाह के सैनिकों पर आक्रमण किया और उनका संहार किया। अब बरसात के दिन आ गए। नदी और नाले पानी से खूब भर गये थे। सभी रास्ते बरसात के कारण चलने के योग्य न रहे। इस दशा में शत्रु सेना के आक्रमण बन्द हो गये। इसलिए राणा को कुछ विश्राम मिला।

जीवन की इन परिस्थितियों में राणा ने कई वर्ष व्यतीत किये। पर्वत के जितने भी पहाड़ी स्थान राणा और उसके परिवार को आश्रय दे सकते थे, वे सभी बादशाह के अधिकार में चले गये। इस अवस्था में प्रताप की कठिनाइयाँ अत्यन्त भयानक हो गयीं। उसकी इन विपदाओं का सब से बड़ा कारण उसका परिवार था। राणा को अपने जीवन की चिन्ता न थी। परन्तु परिवार के साथ में होने के कारण राणा का चित्त प्रत्येक समय चिन्तित और दुःखी रहा करता। उसके परिवार में छोटे-छोटे बच्चे थे। इस समय उनके सामने भयानक कष्ट था।

अपने परिवार के कारण ही राणा कई बार शत्रुओं के हाथों में पड़ते-पड़ते बचा था। एक बार तो अपने परिवार के साथ शत्रुओं के पंजे में पहुँच गया था, परन्तु गहिलोत वंश के विश्वासी सामन्तों ने उस समय उसकी बड़ी सहायता की थी। शत्रुओं ने राजपूतों को घेर लिया था और राणा के परिवार के बचने की कोई आशा न रही। उस समय उन भीलों ने राणा के परिवार के बच्चों को टोकरों में छिपा कर जावरा की खान में जाकर छिपा दिया था।

ये भील उन दिनों में राणा प्रताप के बड़े सहायक सिद्ध हुये। वे साहसी थे, लड़ने में शूरवीर थे और अत्यन्त विश्वासी थे। वे स्वयं भूखे रहते थे, लेकिन खाने की जो सामग्री वे इधर-उधर से एकत्रित करते थे, उसे वे राणा और उसके परिवार को खिला देते थे। जावरा और चावण्ड के निर्जन जंगलों के वृक्षों पर लोहे के बड़े-बड़े कीले अब तक गड़े हुए मिलते हैं। उन वृक्षों की इन्हीं कीलों में बेतों के बड़े-बड़े टोकरे टाँग कर और उनमें राणा के बच्चों को छिपाकर वे भील राणा की सहायता किया करते थे। उनके ऐसा करने से प्रताप के परिवार के छोटे बच्चों की रक्षा भीषण जंगली जानवरों से हो सकी थी। उन छोटे बच्चों के खाने-पीने का कोई साधन न था। इसलिए पहाड़ी जंगली स्थानों में जो फल मिलते थे, उन्हीं को खाकर वे बच्चे किसी प्रकार अपना पेट भर लेते थे, कभी-कभी इस प्रकार के भोजन से भी उन बच्चों को निराश होना पड़ता था। उनकी देखरेख जंगली जानवरों से भरे हुए उन पहाड़ी स्थानों पर भीलों के द्वारा होती थी।

बादशाह की सेना प्रतापसिंह की खोज में दौड़ते-दौड़ते थक गयी। परन्तु वह राणा को कैद न कर सकी। इन सब बातों को बादशाह अकबर ने खूब सुना था। प्रताप के इन दिनों का रहस्य जानने के लिए उसने एक बार छिपे तौर पर अपना एक विश्वासी सिपाही भेजा। वह किसी प्रकार छिपे तौर पर वहाँ पहुँचा, जहाँ प्रताप और उसके सभी सरदार एक घने जंगल के बीच वृक्ष के नीचे घास पर बैठे हुए भोजन कर रहे थे, खाने की चीजों में जंगली फल, पत्तियाँ और जड़े थीं। उस समय उन सबको एक साथ बैठकर खाते हुए बादशाह के सिपाही ने देखा कि राणा और उसके सरदार इस प्रकार की सामग्री उसी उत्साह,

महत्व और हर्ष के साथ खाकर प्रसन्न हैं, जिस प्रकार कोई राजप्रासाद में वने हुए भोजन के द्वारा प्रसन्न होता है। उसने सरदारों और राणा के मुखमण्डल पर किसी प्रकार की उदासी और चिन्ता नहीं देखी। उसने लौटकर राणा के जीवन की इन सब बातों का वर्णन बादशाह से किया।

अकबर ने अपने सिपाही के मुख से राणा प्रताप के इन दिनों का हाल सुना। उसका कठोर हृदय काँप उठा। प्रताप के प्रति उसके हृदय का मनुष्यत्व जागृत हुआ। उसने मन ही मन राणा की कठिनाइयों का अनुमान लगाया और अपने दरबार के अनेक लोगों से उसने राणा प्रताप के त्याग, तपस्या और बलिदान की प्रशंसा की। अकबर के प्रसिद्ध सामन्त खानखाना[1] ने अकबर के मुख से प्रताप की प्रशंसा सुनी। वह अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने उसी समय कहा– "इस संसार में सभी कुछ नाशवान हैं। राज्य और धन किसी भी समय नष्ट हो सकता है, लेकिन महान पुरुषों की ख्याति कभी नष्ट नहीं होती।"

भयानक से भयानक विपत्तियों के आने पर भी राणा प्रतापसिंह का उत्साह कभी शिथिल न पड़ा। परन्तु अपने परिवार और छोटे-छोटे बच्चों के जीवन में इस समय जो कठिनाई चल रही थी, उससे कभी-कभी वह भयभीत हो उठता था। प्रायः उसकी स्त्री और उसके बच्चों के खाने-पीने की कोई व्यवस्था न हो पाती थी, जो कन्द मूल फल खाकर वे अपने दिन काट रहे थे, जब उनका भी कोई सुभीता न हो पाता तो राणा का हृदय कभी-कभी अधीर हो उठता था। मुगल सैनिक इस प्रकार उसके पीछे पड़ गये थे कि भोजन तैयार होने पर कभी-कभी खाने का अवसर न मिलता था और अचानक शत्रुओं का आक्रमण हो जाने पर भोजन छोड़कर सव को भागना पड़ता था। एक दिन तो यहाँ तक हुआ कि पाँच बार भोजन पकाया गया और पाँचों बार शत्रुओं के आ जाने से सव को भागना पड़ता। भोजन वहीं का वहीं पड़ा रह गया।

एक दिन की घटना है। परिवार के लोगों के साथ एक पहाड़ी सूनसान स्थान पर राणा की कुछ बातें हो रही थीं। घास के बीजों को पीस कर प्रताप की रानी और उसकी पुत्र-वधू ने रोटियाँ बनायीं। वे काफी न थीं। इसलिए बनी हुई रोटियाँ आधी बच्चों को खाने के लिए दे दी गयीं और आधी इसलिए उठाकर रख दी गयीं कि वे भूखे होने पर बच्चे को फिर दी जावेंगी। इसी समय राणा को अपनी लड़की की चिल्लाहट सुनायी पड़ी। राणा ने दौड़कर देखा तो मालूम हुआ कि लड़की को खाने के लिए उसके हिस्से में जो रोटी मिली थी, उसका आधा भाग लड़की के हाथ से वनबिलाव लेकर भाग गया। जीवन की इस दुरवस्था को देखकर राणा का हृदय एक बार काँप उठा।[2] अधीर होकर उसने अनेक प्रकार की बातें सोच डाली। ऐसे संकटों के समय वह कह उठा–"उस राज्याधिकार को धिक्कार है, जिसके लिए जीवन में इस प्रकार के दृश्य देखने पड़े।"अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक पत्र के द्वारा राणा प्रताप ने अकवर से माँग की।

प्रतापसिंह का भेजा हुआ यह पत्र बादशाह अकवर को मिला। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अकबर की समझ में आया कि प्रताप का स्वाभिमान अब खत्म हो गया।

---

1. वैरामखां के लड़के मिर्जाखाँ को खानखाना का खिताव मिला था। इस खिताव से मनुष्य की ख्याति और प्रसिद्धि वढ़ती है।
2. यह घटना भाटों की ही रचना लगती है क्योंकि अन्य स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती। राणा प्रताप के कोई लड़की नहीं थी।

इसलिए इस प्रसन्नता में अकबर ने अनेक प्रकार के सार्वजनिक उत्सव किये। प्रताप के उस पत्र को बादशाह ने पृथ्वीराज नामक एक श्रेष्ठ राजपूत सरदार को दिखाया। पृथ्वीराज बीकानेर के राजा का छोटा भाई था और वह इन दिनों में अकबर बादशाह के यहाँ कैदी था। उसके कैदी होने का कारण यह था कि उसमें राजपूती स्वाभिमान था। दूसरे अन्य राजाओं और नरेशों की तरह वह भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न था इसलिए वह कैद किया गया था और बन्दी अवस्था में वह बादशाह के यहाँ जीवन व्यतीत कर रहा था।

अकबर ने प्रताप का वह पत्र बड़े अभिमान के साथ पृथ्वीराज को दिखाया। इसका कारण था। अकबर समझता था कि पृथ्वीराज भी अत्यन्त स्वाभिमानी है और उस स्वाभिमान के कारण ही वह कैदी बना है। इसलिए उसने पृथ्वीराज को वह पत्र पढ़ने को दिया। पृथ्वीराज सदा से राणा प्रताप का सम्मान करता था और राणा ने मुगल बादशाह के मुकाबले में जिस स्वाभिमान का प्रदर्शन किया था, पृथ्वीराज उसकी आराधना करता था। राजपूतों के पतन के दिनों में राणा प्रताप ने जिस राजपूती गौरव की रक्षा की है, उससे प्रसन्न होकर पृथ्वीराज बड़े स्वाभिमान के साथ बातें किया करता था।

पृथ्वीराज एक अच्छा कवि था और स्वाभाविक रूप से भावुक था। बादशाह के हाथ से उस पत्र को पाकर पृथ्वीराज ने पढ़ा। उसका मस्तक चकराने लगा। उसके हृदय में भीषण पीड़ा की अनुभूति हुई। अपनी बढ़ती हुई अधीरता को सम्हाल कर अपने स्वाभाविक स्वाभिमान के साथ निर्भीकता पूर्वक उसने बादशाह से कहा: "यह पत्रं प्रतापसिंह का नहीं है। मैं उसे भली प्रकार जानता हूँ। किसी शत्रु ने राणा प्रतापसिंह के यश के साथ यह जालसाजी की है और आपको धोखा दिया है। आपके सम्पूर्ण साम्राज्य को पाने के लालच में भी वह ऐसा नहीं कर सकता।"

पत्र पढ़ कर पृथ्वीराज ने ऊपर लिखे हुए शब्दों में बादशाह को उत्तर दिया और अकबर का आदेश लेकर दरबार के एक दूत के हाथ पृथ्वीराज ने अपना पत्र प्रताप के पास भेजा। उस पत्र का अभिप्राय - जैसा कि अकबर ने समझा - प्रताप की असलियत जानने की थी। परन्तु पृथ्वीराज ने अपने पत्र के द्वारा प्रताप को उसके उस स्वाभिमान का स्मरण कराया था, जिसके लिए उसने अपने परिवार और साथ के राजपूतों के साथ भयानक विपदाओं का सामना किया था। पृथ्वीराज ने यह पत्र राजस्थानी भाषा की कविता में लिखा था। वह पूरा पत्र कहीं पर भी प्राप्त होने की अवस्था में नहीं रहा। इसलिए उसका जो अंश पाया जाता है उसका अर्थ संक्षेप में इस प्रकार है–

"हिन्दुओं का सम्पूर्ण भरोसा एक हिन्दू पर ही निर्भर करता है। राणा ने सब कुछ छोड़ दिया है और इसी से आज भी राजपूतों का गौरव बहुत-कुछ सुरक्षित रह सका है। यदि प्रताप ने ऐसा न किया होता तो आज राजपूतों की बची हुई मर्यादा भी सुरक्षित न रह सकती थी। राजपूतों पर आज भयानक संकट है। हमारे घरों की स्त्रियों की मर्यादा छिन्न-भिन्न हो गयी है और बाजार में वह मर्यादा बेची जा रही है। उसका खरीददार अकेला अकबर है। बादशाह ने सीसोदिया वंश के एक स्वाभिमानी पुत्र को छोड़कर सब को मोल ले लिया है। परन्तु वह प्रताप को खरीद नहीं सका। वह राजपूत नहीं है, जो

नौरोजा के लिये अपनी मर्यादा का परित्याग कर सकता है। फिर भी कितने ही राजपूतों ने अपनी मर्यादा भंग कर दी है। इस विक्री में राजपूतों के वहुमूल्य पदार्थ विक चुके हैं। क्या अब चित्तौड़ का स्वाभिमान भी इस बाजार में विकेगा ? प्रताप ने अपना सर्वस्व त्याग किया है, क्या अब वह अपने स्वाभिमानी गौरव को बेचना चाहता है। जो अब तक विके हैं और जिनकी मर्यादा बाजार में खरीदी गयी है, वे साहसहीन थे - उन्होंने अपने आपको शक्तिहीन समझा था। इसलिए अनके जीवन का यह उपहास हुआ। क्या अब हमीर के वंश का भी यही दृश्य होने वाला है ? आज तक संसार राणा प्रताप के स्वाभिमान, पुरुषार्थ और साहस को देख कर चकित है। क्या संसार का वह आश्चर्य समाप्त होने वाला है ? इस जीवन में कुछ भी अनित्य नहीं है। सब का नाश होने वाला है। बाजार में जिसने राजपूतों के गौरव की खरीद की है, वह भी एक दिन मिटने वाला है। उस दशा में हमारे वंश का गौरव राणा प्रताप के द्वारा ही फिर सम्मान प्राप्त करेगा। उस दिन की प्रतीक्षा में राजस्थान के सम्पूर्ण राजपूतों की आँखें लगी हुई हैं।"

राठौर पृथ्वीराज की इस ओजस्वी कविता को पढ़कर प्रताप के अंतःस्थल में उत्साह की अटूट लहरें उठने लगी उसे एकाएक मालूम हुआ, मानो मेरे शरीर में दस हजार राजपूतों की शक्ति ने एक साथ प्रवेश किया है। वह तुरन्त अपने मन में कह उठा :"मैं कभी भी अपने स्वाभिमान को नष्ट न करूँगा।"

पृथ्वीराज का पत्र पढ़ने के वाद राणा प्रताप ने अपने स्वाभिमान की रक्षा करने का फिर से निर्णय कर लिया। परन्तु उसके सामने जो कठिनाईयाँ थीं, इतनी भयानक हो गयी थीं कि उनमें रह कर भविष्य का कोई कार्यक्रम वनाना और उनमें सफलता पाना दुस्साध्य मालूम हो रहा था। ऐसे समय पर क्या करना चाहिए यह वात वार-वार राणा सोचने लगा। वह किसी प्रकार अब मुगल वादशाह का आश्रय नहीं चाहता था। इसलिए अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए उसने पहाड़ी स्थानों को छोड़कर किसी दूरवर्ती स्थान पर चले जाने का विचार किया। उसने अपनी सभी तैयारियाँ की। उसके साथी सरदार भी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गये। सब के साथ प्रतापसिंह ने अरावली पर्वत के शिखर पर चढ़ना शुरू किया। चित्तौड़ के उद्धार की आशा अब उसके हृदय से जाती रही थी और वह सिंध नदी के किनारे पर बसे हुए सोगदी राज्य में चले जाने के लिए विवशतावश तैयार था। इसी समय मेवाड़ राज्य का युद्ध मंत्री भामाशाह राणा प्रतापसिंह से आ कर मिला और अपने जीवन-भर में जो सम्पत्ति उसने एकत्रित की थी, वह उसने प्रताप को ला कर सौंप दी। यह सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि उससे बारह वर्ष तक पच्चीस हजार सैनिकों का खर्च पूरा किया जा सकता था।

भामाशाह से इस सम्पत्ति को पाकर प्रताप की शक्तियाँ फिर जागृत हो उठीं। उसने पर्वत छोड़कर चले जाने का विचार छोड़ दिया और अपने सरदारों तथा सामन्तों के साथ बैठकर चित्तौड़ के उद्धार का फिर से नया कार्यक्रम बनाने के लिए विचार करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने राजपूतों की एक अच्छी सेना बना ली। इन दिनों में मुगल सेना को राणा प्रताप के किसी आक्रमण का भय न रह गया था। ऐसे मौके पर प्रतापसिंह ने मुगल सेनापति शहबाजखाँ पर एकाएक [illegible]। उसके सैनिक मारवाड़ की तरफ भाग

गये। उस समय देवीर नामक स्थान पर सेनापति शहबाजखाँ अपनी फौज के साथ मौजूद था। राणा प्रताप ने वहाँ पहुँचकर मुगल सेनाओं को घेर लिया।

देवीर के मैदानों में दोनों ओर की सेनाओं का भीषण संग्राम हुआ। अन्त में शहबाजखाँ प्रतापसिंह के हाथ से मारा गया। उसके वहुत से सैनिकों का राजूपतों ने संहार किया। शहबाज खाँ के मारे जाने पर मुगल सैनिक इधर-उधर भाग गये। वहाँ से थोड़ी दूर पर मुगलों की दूसरी सेना पड़ी हुई थी। अपने विजयी राजपूतों को लेकर प्रताप वहाँ पहुँचा और वहाँ पर मुगलों की जो सेना थी, भयानक रूप से उसका संहार किया।

मुगलों की इन दोनों सेनाओं के मारे जाने पर मुगलों में वहुत घवराहट पैदा हो गयी। राणा प्रताप पर आक्रमण करने के लिए एक तीसरी मुगल सेना वहाँ पर आ गयी। उसका सेनापति अब्दुल्ला खाँ था। यह पहले से कमलमीर में मौजूद था। राजपूतों ने अब्दुल्ला खाँ की फौज पर आक्रमण किया। सेनापति अब्दुल्ला मारा गया।

राणा प्रताप ने थोड़े दिनों के भीतर ही तीन मुगल सेनाओं का संहार किया और बत्तीस दुर्गों को मुगलों से छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। उन दुर्गों में जो मुसलमान सैनिक और उसके सेनापति थे, सभी मारे गये और सन् 1580 ईसवी में चित्तौड़, अजमेर और मण्डलगढ़ को छोड़ कर सम्पूर्ण मेवाड़ को राणा प्रताप ने जीत कर राजा मानसिंह का स्मरण किया, जिसके कारण उसको इन विपदाओं का सामना करना पड़ा। राजा मानसिंह को उसके देशद्रोह का दण्ड देने के लिए राणा प्रताप ने आमेर राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रसिद्ध नगर मालपुरा को लूट कर वर्बाद कर दिया। इसके वाद अपनी सेना के साथ प्रताप उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। उदयपुर में भी शत्रुओं का अधिकार हो गया था। परन्तु इस बीच में जब कई स्थानों पर मुगल सेनाओं की पराजय हुई और राणा प्रतापसिंह की राजपूत सेना आगे बढ़ी, तो उस समय उदयपुर से मुगल सेना बिना युद्ध किये चली गयी। इसके वाद अकबर ने राणा प्रताप के साथ युद्ध वन्द कर दिया।

राणा प्रतापसिंह का अब बुढ़ापा आ गया था। सम्पूर्ण जीवन युद्ध करके और भयानक कठिनाइयों का सामना करके जिस प्रकार राणा ने व्यतीत किया उसकी प्रशंसा कभी इस संसार से मिट न सकेगी। अपने जीवन में राणा ने जो प्रतिज्ञा की थी, अंत तक उसको निभाया। राजप्रासाद को छोड़कर पिछोला सरोवर के समीप प्रतापसिंह ने कुछ झोंपड़ियाँ बनवायी थीं कि जिनसे जाड़े की सर्दी में और बरसात के पानी में रक्षा हो सके। इन्हीं झोंपड़ियों में अपने परिवार को लेकर राणा ने जीवन व्यतीत किया। अब जीवन के अंतिम दिन थे। राणा ने चित्तौड़ के उद्धार की प्रतिज्ञा की थी। उसमें सफलता न मिली। परन्तु बादशाह की विशाल मुगल सेना को थोड़े से राजपूतों के द्वारा इतना छकाया कि अंत में अकबर को युद्ध बन्द कर देना पड़ा।

राणा के शौर्य, स्वाभिमान और सहनशक्ति से मेवाड़ का प्रत्येक राजपूत शूरवीर और त्यागी बन गया। युद्ध बन्द होने के पहले तक राणा ने बहादुरी के साथ मुगल बादशाह से मोर्चा लिया और कभी अपना मस्तक नीचा न किया। अब वृद्धावस्था के दिन थे। एक दिन अपनी झोंपड़ी में राणा थकान और बेबसी की दशा में लेटे हुए अपने सरदारों के साथ बातें

कर रहा था। अचानक उसके नेत्रों से आँसू गिरते हुए देखकर सरदारों ने इसका कारण पूछा। उनको उत्तर देते हुए राणा ने कहा– "अब मेरा अंतिम समय है। लेकिन एक ही कारण है जिससे मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं।"

इतना कहकर राणा ने सरदारों की तरफ देखा और फिर कहा– "आज लोग मेरे सामने प्रतिज्ञा करें कि अपने प्राणों के रहते हुए आप लोग मेवाड़ की भूमि पर शत्रुओं को अधिकार न करने देंगे। आपके मुँह से इस प्रकार का आश्वासन पाकर मैं सदा के लिए आँखें बन्द कर लूँगा। मेरा लड़का अमरसिंह अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा न कर सकेगा। इसको मैं जानता हूँ। वह शत्रुओं से अपनी मातृभूमि को सुरक्षित नहीं रख सकता। अमरसिंह स्वभाव से विलासी है। जो कष्टों का सामना नहीं कर सकता, वह अपने जीवन में कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। इतना कहने के बाद राणा का गला भर आया। कुछ रुककर उसने फिर कहना आरम्भ किया– "एक दिन इस झोंपड़ी में प्रवेश करने के समय अमरसिंह अपने सिर की पगड़ी उतारना भूल गया था। इसलिए झोंपड़ी के दरवाजे पर लगे हुए बाँस से टकराकर उसकी पगड़ी नीचे गिर गयी। अमरसिंह को यह देखकर बुरा लगा उसने दूसरे दिन मुझसे कहा, रहने के लिए ऐसा महल बनवा दीजिए, जिससे इस प्रकार का फिर कोई कष्ट न हो।"

यह कहते-कहते राणा गम्भीर हो उठा उसके बाद एक ठण्डी साँस लेकर प्रतापसिंह ने यह कहा–"मेरे मरने के बाद इन झोपड़ियों के स्थान पर राज महल बनेंगे और अमरसिंह उनमें रहा करेगा। राज महलों में रहने वाला जीवन के कठोर व्रत का पालन नहीं कर सकता। सुख की अभिलाषा रखने वाला कभी कोई महान कार्य करने के योग्य नहीं होता। मेवाड़-राज्य की मिली हुई स्वतंत्रता अमरसिंह के समय फिर चली जायेगी और जिस स्वतंत्रता के लिए मेवाड़ राज्य के अगणित शूरवीर राजपूतों ने अपने प्राणों का बलिदान किया, वह स्वतंत्रता फिर शत्रुओं के अधिकार में चली जायेगी। जिस सवतंत्रता के लिए अपने प्यारे राजपूत सैनिकों और सरदारों के साथ काँटों से भरे हुए पहाड़ी जंगलों में मैंने पूरे पच्चीस वर्ष बिताये हैं और मेरे परिवार के लोगों ने भूखे-प्यासे रहकर दिन काटे हैं, वह स्वाभिमान और गौरव मेरे मरने के बाद सुरक्षित न रहेगा, इस समय मेरे हृदयं की यही पीड़ा है।"

प्रतापसिंह के मुख से इन बातों को सुनकर सरदारों ने विश्वास दिलाते हुए राणा से कहा–"हम लोग बप्पा रावल के सिंहासन की शपथ खाकर आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम लोगों में जब तक एक भी जीवित रहेगा, मेवाड़ की भूमि पर शत्रुओं का अधिकार नहीं हो सकता। हम लोग शक्ति भर राजकुमार अमरसिंह को भी ऐसा कोई काम न करने देंगे, जिससे स्वर्ग में आपकी आत्मा को कष्ट पहुँचे। जब तक मेवाड़ राज्य की पूरी स्वतन्त्रता हम लोग प्राप्त न कर लेंगे, उस समय तक हम लोग इन्हीं झोंपड़ियों में रहेंगे।"

सरदारों के मुख से राणा प्रताप ने इन शब्दों को सुना और उसके बाद अपनी आँखें बन्द कर लीं। फिर राणा के नेत्र न खुले। सम्वत् 1653 सन् 1597 ईसवी में राणा प्रताप ने इस संसार को छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की।

परिशिष्ठ

राणा प्रताप की महानता

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में यशस्वी इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने सर्वप्रथम महाराणा प्रताप का ऐतिहासिक जीवन वृत्त लिखने का प्रयास किया था। इस वृत्तान्त में एक विदेशी होते हुए भी टॉड ने महाराणा के शौर्य, अदम्य साहस, उत्कृष्ट वीरता, त्याग, प्रतिज्ञा पालन एवं बलिदान का निष्पक्ष व उचित वर्णन किया है। साथ ही साथ मुगलों की साम्राज्यवादी नीति का सामना प्रताप ने किस वीरता से किया? इस पर प्रकाश डाला है। कुछ आलोचकों का ऐसा मानना है कि टॉड ने इस वृत्तान्त के लेखन में अतिशय श्रद्धा एवं भावुकता से काम लिया है।

महाराणा के जीवन पर बाद में 'वीर विनोद' के लेखक कवि राजा श्यामलदास, मुंशी देवी प्रसाद एवं गौ.ही.ओझा आदि इतिहासकारों ने अधिक तथ्यात्मक जीवनियां लिखने का कार्य किया।

गत दो-तीन दशकों में अन्य कुछ इतिहासकार आगे आए हैं जिन्होंने प्रताप के जीवन वृत्त पर कलम चलाई है। इन लेखकों ने जहां प्रताप के गुणों पर ध्यान केन्द्रित किया है, वहीं उन्होंने तथाकथित रूप से महाराणा के संघर्ष को 'हानिकारक' एवं 'नकारात्मक रूप' में भी दिखाने का प्रयास किया है। एक ओर ये लेखक प्रताप के वीरोचित गुणों व प्रतिज्ञा पालन पर मुग्ध हैं, वहीं मुगल साम्राज्य विरोधी संघर्ष को स्वतंत्रता व स्वाभिमान रक्षा हेतु लड़ा गया युद्ध बताते हैं। परन्तु जैसे ही मुगल बादशाह अकबर व महाराणा प्रताप की तुलना का अवसर आता है वहां ये लेखक प्रताप को अकबर के तथाकथित 'राष्ट्रीय एकता' के कार्य में बाधा डालने वाला एवं क्षुद्र तथा संकीर्ण उद्देश्यों हेतु लड़ने वाला योद्धा करार देते हैं। मानो इन लेखकों पर अकबर की राजनैतिक सफलताओं का एक सम्मोहन सा छा गया हो। ये लोग भूल गए कि इसी लेखनी से उन्होंने अभी प्रताप के गुणों को प्रकट किया था व प्रशंसा की थी। यह जो कुछ भी लिखा गया है, तर्क शून्य है एवं आंशिक सत्य है। मुगल आक्रमणों की आंधी में समाज को दिशा देकर एवं सुरक्षित निकाल कर स्वाभिमान की रक्षा के संघर्ष को जीवित रखने वाले प्रताप के बारे में इन लेखकों को अभी अधिक परिश्रम व शोध करना होगा।

महाराणा पर जो कुछ लिखा गया है उसमें टॉड तथा अन्य लेखकों द्वारा प्रताप के संघर्ष के उद्देश्य, उन्हें प्राप्त करने के प्रयास, विशिष्ट रणनीति, प्रताप की कूटनीतिक सफलताएं,

रक्षात्मक युद्धनीति व सबसे अधिक महत्व की बात 'अभिनव छापामार युद्ध प्रणाली' पर बहुत ही कम लिखा गया है।

इस परिशिष्ठ में महाराणा प्रताप के जीवन के इस सर्वथा अनछुए पक्ष पर कुछ लिखने का प्रयास किया गया है।

महाराणा प्रताप की दूरदर्शिता:- अकबर जैसे शक्तिशाली शत्रु से प्रताप जिस प्रकार बिना झुके एवं बिना टूटे जीवन भर संघर्ष करते एवं लोहा लेते रहे, यह बड़े महत्व की बात है। इस सफलता के पीछे उनकी प्रशासनिक सूझबूझ, दीर्घकालीन संघर्ष हेतु अग्रिम योजना तथा मेवाड़ की अर्थव्यवस्था को नियोजित करना आदि गुण हैं। प्रताप 1572 ई. से 1576 ई. के बीच चार वर्षों तक अपने श्रेष्ठ कूटनीतिक प्रयासों से संघर्ष को टालने में सफल रहे तथा इस समय का उपयोग मेवाड़ की अर्थव्यवस्था व अन्य व्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने में किया।

प्रताप के उद्देश्य:- जिस समय प्रताप का राज्याभिषेक हुआ, मेवाड़ चहुं ओर से संकटों से घिरा था। पूरा राजस्थान मुगल दासता स्वीकार कर चुका था। इधर मेवाड़ की भूमि, धन एवं जन सभी कम होते जा रहे थे तो उधर जगमाल जैसे स्वजन अकबर से जाकर मिल गए थे। मुगलों की 'फूट डालो राज करो' की नीति ने शेष कसर पूरी कर दी। राजपूतों की एकता समाप्त प्राय: थी। ऐसे में अब प्रताप के सामने तीन लक्ष्य रह गये थे-

1. अकबर जैसी शक्ति से लम्बी लड़ाई के लिए पर्याप्त तैयारी करना।
2. स्वाभिमान, स्वतंत्रता एवं कुल गौरव की रक्षा करना।
3. अब और अधिक विध्वंस से मेवाड़ के जन, धन व सैनिक शक्ति को बचाना।

प्रताप के सामने अकबर जैसा एक शक्तिशाली शत्रु था, जिसके पास असीम साधन थे। उसकी तुलना में छोटे से मेवाड़ राज्य के साधन नाममात्र के थे। महाराणा ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए फिर भी बड़ी सूझबूझ से योजना बनाई व प्रयास किये। लेखक की दृष्टि में आया है कि कई इतिहासकारों ने प्रताप को जिद्दी,समय के अनुसार न बदलने वाला, हठी एवं कमजोर मेवाड़ को मुसीबतों में फँसाने वाला शासक कहा है। किन्तु वास्तविकता इससे एकदम भिन्न है। उनके स्थान पर यदि मेवाड़ का शासक कोई और होता तो मेवाड़ की आन-बान की रक्षा करना और आने वाले सर्वनाश से मेवाड़ को बचा कर ले जाना बहुत ही कठिन कार्य होता। किन्तु हम यहां प्रताप को मझधार में से मातृभूमि की नाव को खे कर सफलता पूर्वक ले जाने वाला कुशल नाविक पाते हैं। शायद ईश्वर को यही स्वीकार था अन्यथा महाराणा के असफल होने पर मेवाड़ का नामोनिशान मिट जाता। अकबर के अटक प्रवास के समय, जहां वह उजबेगों से संघर्ष में फँस कर लंबे समय तक अपनी राजधानी से दूर रहा था, महाराणा ने पुनर्विजय कर तथा मृत्यु से पहले चित्तौड़ को छोड़कर शेष सभी किले जीतने में सफलता प्राप्त की ।

लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न :- यह राणा प्रताप की दूरदर्शिता थी कि मुगल साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को उन्होंने मातृभूमि की गुलामी के विरुद्ध संघर्ष के रूप में बदल

दिया और मेवाड़ के जन-जन को अपने साथ जोड़ने में सफलता पाई। संभवतया राजस्थान में अकेले प्रताप ही ऐसे राजपूत थे जिन्होंने अकबर के सभी शत्रुओं को इकट्ठा कर अपने हित के लिए लाभ उठाने का प्रयास किया। क्षात्र-धर्म, हिन्दु स्वाभिमान एवं राजपूतों की आन जैसे भावनात्मक बिन्दुओं पर राजपूतों, भीलों, किसानों तथा सामान्य जन का समर्थन पाने में वे सफल रहे। राणा प्रताप का संघर्ष संकीर्ण संप्रदाय की रक्षा का संघर्ष नहीं था, नहीं तो सैकड़ों पठान और उनके नेता हाकिम खाँ सूर तथा अन्य मुसलमान राणा के झंडे के नीचे लड़ाई नहीं करते। प्रताप के पक्ष में जोधपुर, डूंगरपुर, बूंदी, सिरोही एवं ईडर आदि राज्यों के कई विद्रोही सामंत सहयोगी बनकर खड़े हुये। यह उनके व्यक्तित्व और नीतियों की सफलता थी। 1572 ई. के समय जब प्रताप को मेवाड़ का मुकुट पहनाया गया था तब से ही अकबर की साम्राज्यवादी दृष्टि में प्रताप आ गये थे। यह प्रताप की कूटनीतिक सफलता थी कि 4-5 वर्षों के लंबे समय तक वे मुगल दबाव से बचे रहे। मानसिंह को अकबर ने दूत बना कर भेजा, यह कहानी सर्वविदित है। इतना ही नहीं अकबर ने तीन-चार बार और अपने दूतों को महाराणा के पास भेजा। लेकिन स्वाभिमानी प्रताप दूत-दलों एवं उनके साथ आये सेनापतियों एवं मुग़ल फौजों से नहीं डरे। अपितु उन्होंने निम्न चार कदम उठाए:-

1. मुग़ल प्रस्तावों का विरोध न करते हुए महाराणा ने बातचीत के लिए सिद्धता दिखाई।
2. संधि प्रस्तावों को लंबी बातचीतों के द्वारा परोक्ष रूप से टालते हुए चतुराई से युद्ध की तैयारी के लिए समय निकाला एवं आदर सम्मान यथोचित रूप में देकर शक करने का अवसर नहीं दिया।
3. यहां तक कि कुँवर अमरसिंह को मुग़ल दरबार में भेजने के लिए भी तैयार हो गए।
4. मानसिंह और भगवंत दास सेना लेकर मेवाड़ में घुस आये उनका भी बुरा राणा ने नहीं माना व उलझने से बचते रहे।

उपरोक्त सभी प्रयत्न महाराणा एक उद्देश्य से करते रहे, जिसके आधार पर आने वाले घोर संघर्ष के वर्षों में मेवाड़ सैनिक और आर्थिक दृष्टि से मजबूत होकर खड़ा रहा व मुग़लों की साम्राज्यवादी भूख का शिकार नहीं बना।

प्रताप की कूटनीति का एक और उदाहरण हमारे सामने आता है, जब वह संधि के किसी भी मुग़ल प्रस्ताव को ना नहीं करते हुये आत्मविश्वास और चतुराई के साथ अपनी तैयारी में लगे रहे। दूसरी ओर प्रताप मुग़ल विरोधी तत्वों से मित्रता बना कर अपने साथ मिलाने का प्रयत्न करते रहे। सिरोही के राव सुरताण का उदाहरण प्रताप की दूरदर्शिता प्रकट करता है क्योंकि उसके काम राजपूत जाति की मर्यादा के विपरीत थे फिर भी उसे अपना सहयोगी बनाने में वे सफल रहे। यहां तक कि अपने कुल में उसकी कन्या के विवाह की बात भी चलाने में नहीं हिचके।

एक और राजनैतिक दूरदर्शिता एवं कूटनीति की सफलता का उदाहरण हम प्रताप के व्यवहार में पाते हैं और यह था मेवाड़ के पड़ौसी राज्यों से यथासंभव झगड़ा मोल न लेना। यही कारण था कि अकबर द्वारा प्रताप को चारों ओर से घेरने का प्रयास असफल रहा।

महाराणा की राजनीति एक और ऊँचे स्तर को प्राप्त करती दिखाई देती है जबकि प्रताप राजस्थान के विभिन्न राज्यों से आने वाले कई विद्रोही सामन्तों को अपने यहां शरण देते दिखाई देते हैं। बूंदी से आया राजकुमार दूदा तथा डूंगरपुर के राजकुमार सहसमल इसके उदाहरण हैं।

महाराणा की कूटनीतिः- साधारणतया राजनीति की प्रसिद्ध मान्यता है कि "आक्रामकता ही बचाव का सर्वोच्च साधन है।" परंतु राणा प्रताप ने रूढ़िवादी राजनीतिज्ञ की तरह व्यवहार न करते हुए रक्षात्मक राजनीति को अपना आधार बनाया। यहाँ प्रताप मराठा इतिहास के नायक शिवाजी के पुरोगामी दिखाई देते हैं। उनकी कूटनीति निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझाई जा सकती है।

(i) मुगलों को आक्रमण का अवसर न देते हुए बातचीत का रास्ता हमेशा खुला रखने का आभास देते रहे।

(ii) समझौते की बातचीत को टालना व उससे प्राप्त समय का उपयोग मेवाड़ की सुरक्षा हेतु तैयारी के लिए करना। मुगल साम्राज्यवादी प्रयत्नों से प्रताड़ित तत्वों की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाना।

(iii) बातचीत के प्रयत्नों में यदि मुग़ल बादशाह दरबार में व्यक्तिशः महाराणा को उपस्थित होने की शर्त तथा मनसब स्वीकार करने की अनिवार्यता आदि की माँग करे तो दोष उसी पर डालना। इसमें राणा सफल भी रहे।

महाराणा की विलक्षण युद्धनीति-जैसा कि पहले लिखा जा चुका है राणा प्रताप की युद्धनीति मूलतः मेवाड़ की सुरक्षा से जुड़ी थी तथा यथाशक्ति रक्षात्मक युद्ध पर ही आधारित थी। इसी नीति पर चलते हुए राणा ने एक अभिनव कदम उठाया तथा चित्तौड़ की कमी को पूरा करते हुए कठिन पर्वतीय क्षेत्रों में कई किलों का निर्माण किया। ये सभी किले मेवाड़ के पर्वतीय प्रदेश में शत्रु के प्रवेश के संभावित रास्तों पर बताये गये। इसके दो उद्देश्य थे-

(i) पर्वतीय क्षेत्र में सुरक्षित स्थान लेना व अपने सैनिकों की रक्षा करना।

(ii) यदि शत्रु इस अंदरूनी क्षेत्र में आ जाये तो इन किलों की व्यूह रचना में फँसा कर उनका विनाश करना अथवा भागने को मजबूर करना। इन किलों में छप्पन क्षेत्र के किले तथा कुंभलगढ़, देसूरी, देवारी आदि क्षेत्रों के किले शामिल हैं।

छापामार युद्ध का सफल प्रयोग-विश्व इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जब अपरिमित शक्तिशाली शत्रु के सामने एक दृढ़ प्रतिज्ञ कौम अपने सीमित साधनों को लेकर छापामार युद्ध प्रणाली के आधार पर अपने से कई गुना शक्तिशाली शत्रु को हरा कर यशस्वी हुई है।

राजस्थान में शायद प्रताप ही एकमात्र राजपूत योद्धा हुए जिन्होंने इस विद्या का उपयोग किया। छापामार युद्ध को सफल बनाने के लिए निम्न बातें जरूरी थीं, जिनको प्रताप ने अंजाम दिया-

(i) मेवाड़ के पर्वतीय प्रदेश का सर्वेक्षण, क्षेत्र का तार्किक विभाजन तथा प्रसिद्ध मार्गों, दर्रों एवं घाटों का अध्ययन कर उनकी नाकेबंदी करना।

(ii) मुख्य बिन्दुओं पर छोटे-बड़े किलों का निर्माण।

(iii) पानी, भोजन व अन्य रसद सामग्री को प्राप्त करने की व्यवस्था एवं उनका भण्डारण करना।

(iv) सूचना तंत्र की व्यवस्था करना, जिससे शत्रु आगमन, उसकी चौकियों का निर्माण एवं उसके आक्रमणों आदि का पूर्वानुमान किया जा सके। इसके लिए योग्य गुप्तचरों की नियुक्ति करना।

(v) रक्षा रेखा (लाइन ऑफ डिफेन्स) दोहरी या तिहरी बनाना जिससे शत प्रतिशत सुरक्षा व शत्रु का नुकसान संभव हो।

(vi) महाराणा ने अपने प्रशासन और सैन्य संचालन को इस प्रकार बाँट दिया कि शत्रु के आक्रमण के समय कार्य चलता रहे व भगदड़ न मचे।

छापामार युद्ध तथा रक्षात्मक युद्ध की सफलता ही महाराणा की सफलता थी। जिसके कारण मुग़लों को मेवाड़ के जन और धन को बहुत बड़ी हानि पहुँचाने से रोके रखा। यह इस छापामार युद्ध की ही उपलब्धि थी कि मुगल सेनापति कुंभलगढ़, छप्पन के क्षेत्र तथा देसूरी आदि पर असफल आक्रमण करते और राणा उस समय मालवा या गुजरात में विजयी अभियान करते होते। राणा ने अपनी राजधानी चावन्ड को बनाया। यह भी उनकी रणनीति का उज्जवल प्रमाण है क्योंकि वह चारों ओर पर्वतमालाओं से घिरा क्षेत्र है। कोई भी शत्रु बिना हानि उठाये इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।

प्रताप के युग की धार्मिक स्थितिः-प्रताप के चरित्र पर और उनकी मान्यताओं पर जिद्दी और हठी प्रताप अथवा वीर दूरदर्शी एवं मातृभूमि के रक्षक प्रताप, दोनों ही दृष्टि से विचार करने के बाद। चाहे डॉ. गोपीनाथ शर्मा के विचार हों जिसमें प्रताप का राष्ट्रीय एकता के कार्य से अलग रहना एक भूल थी, कहा गया है, अथवा श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट द्वारा प्रताप को अपने आदर्शों पर सर्वस्व बलिदान करने वाला महापुरुष कहा गया हो। हमें वास्तविक निर्णय लेने से पहले तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर भी विचार करना चाहिए। भारतीय इतिहास का मध्यकाल भीषण धार्मिक कट्टरता व धर्मान्धता का युग था। अकबर जैसे उदार शासक ने भी अपना जीवन युद्धबन्दी हेमू का स्वयं वध करके व "गाज़ी" की उपाधि धारण करके प्रारम्भ किया था। ऐसे में यदि राणा प्रताप को जनता ने "हिन्दुवां सूर्य" कहा हो तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। मुसलमानों के भारत में प्रवेश के साथ ही धार्मिक प्रचार प्रसार का

बोलबाला रहा एवं इसके पीछे साम्राज्य विस्तार व नवीन प्रदेशों की विजय के उद्देश्य रहते थे। इससे पूर्व भारत में धार्मिक कट्टरता के उदाहरण विरले ही मिलते हैं। भारत उदारता, सहिष्णुता और भाईचारे का प्रतीक रहा है।

16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में धार्मिक कट्टरता के बीच अकबर एक उदार बादशाह की एवं धार्मिक समानता की नीति का प्रतीक बनकर उभरता है। इस सहिष्णुता के विकास का ज्ञान सिसोदिया वंश के योग्य उत्तराधिकारी प्रताप को भी होना स्वाभाविक था। दिल्ली और आगरा में जिस तरह शिया मुसलमान और अन्य गैर मुस्लिम लोग ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारे जा रहे थे, उस समय प्रताप जैसे एक धार्मिक समभाव रखने वाले योद्धा के बारे में 'हिन्दू संकीर्णता' का लेबल लगा देना उचित नहीं होगा। संपूर्ण राजस्थान में मुसलमानों को अपने धर्म पालन की पूर्ण स्वतंत्रता थी। प्रताप के चरित्र को बताने वाली यह घटना जिसमें अब्दुल रहीम खानखाना की स्त्रियों एवं बच्चों की पूरी हिफाजत किया जाना और सम्मान के साथ लौटाना एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस संबंध में अंत में यह कहना पर्याप्त होगा कि महाराणा अथवा उसके साथियों का इतिहास में ऐसा कोई भी काम नहीं मिलता जिसे धर्मान्धता, कट्टरता अथवा धार्मिक घृणा का उदाहरण कहा जा सके। महाराणा की आलोचना करने वाले इतिहासकारों को अकबर द्वारा 1568 ईसवी में चित्तौड़ में किये गये नरसंहार को नहीं भूलना चाहिए, जो केवल हिन्दू होने के कारण मार दिये गये थे।

अत: धार्मिक संकीर्णता संबंधी कोई भी इल्जाम महाराणा प्रताप पर नहीं लगाया जा सकता।

प्रताप का संघर्ष मूल रूप से न मुगल सम्राट के विरुद्ध था अथवा न ये इस्लाम के खिलाफ था। वास्तव में यह संघर्ष विदेशी दासता एवं साम्राज्यवादी शिंकजे के विरुद्ध था। जहाँ तक अकबर के साम्राज्य विस्तार के प्रयासों को प्रथम राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की कोशिश बताने का सवाल है भारतीय इतिहास में तो राष्ट्रीय और सामाजिक एकता के प्रयास तीसरी सदी ई.पू. में ही अशोक के द्वारा किये हुए मिलते हैं। दूसरी ओर अकबर को राष्ट्रीय एकता के लिए काम करने वाला शासक होने का श्रेय कैसे दिया जा सकता है जबकि वह दक्षिण भारत में अपनी नीतियों के साथ प्रवेश भी नहीं कर सका था। अत: इतिहास के लेखक व पाठक दोनों के लिए यह आवश्यक है कि प्रताप का स्थान इतिहास में निर्धारित करने से पहले वे तत्कालीन परिस्थितियों को समझें। घटनाओं एवं तथ्यों पर विचार करें व उनको समग्र दृष्टिकोण से देखा जाए। दो व्यक्तियों के नाते अकबर और प्रताप की तुलना हो सकती है परन्तु अकबर के साम्राज्यवाद उसके वंश एवं उसकी मुगल संस्कृति के परिपेक्ष में उसका मूल्यांकन करना ठीक होगा। दूसरी ओर प्रताप के आदर्श, मेवाड़ की परिस्थिति एवं महाराणा पर स्वाभिमान रक्षा की जिम्मेदारी को ध्यान में रखकर हमें प्रताप का मूल्यांकन करना होगा।

अंत में हम कहेंगे कि डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने ठीक ही मत व्यक्त किया है कि प्रताप भारत की तात्विक भावना के प्रतीक थे। यह भावना सदैव राष्ट्र की स्वतंत्रता और गौरव की रक्षा के संघर्ष में आगे रही है।

अकबर-प्रताप का अनिर्णित युद्ध तथा मेवाड़ का लम्बा संघर्ष

1. अकबर की असफलता का परिणाम

मुगल सेना को मेवाड़ में जो असफलता मिली उससे बादशाह अकबर निराश और परेशान हुआ। उसने मेवाड़ की समस्या को जितनी छोटी और आसान माना था, वह वैसी सिद्ध नहीं हुई। उसकी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। उसका अहंकार आहत हुआ।

यद्यपि हल्दीघाटी से बाहर निकल कर खुले मैदान में लड़ने के कारण प्रताप को अपने कई वीर एवं अनुभवी साथियों से हाथ धोना पड़ा, जिसका उसको अविस्मरणीय दुःख रहा, किन्तु इस युद्ध एवं जून-सितंबर के मुगल-अभियान की असफलता ने उसका आत्मविश्वास एवं मनोबल बढ़ा दिया। वह पहाड़ी इलाके में मुगल सेना को परास्त कर सकने की दृष्टि से पूरी तरह आश्वस्त हो गया और वह अधिक उत्साह और आशा के साथ मुगल विरोधी सैनिक एवं राजनैतिक-कूटनीतिक कार्यवाहियों में अग्रसर हो गया। भोमट इलाके में कोल्यारी के निकट कमलनाथ पर्वत पर स्थित आवरगढ़ में प्रताप ने अपनी अस्थायी राजधानी कायम की, जहां पर चावंड की भांति प्राचीन किले और भवनों के खंडहर आज भी दृष्टिगत होते हैं। मानसिंह के लौटते ही प्रताप ने गोगूंदा पर पुनः अधिकार कर के वहां मांडण कूंपावत को नियुक्त किया। वहां से उसने मजेरा गांव के निकट राणेराव के तालाब पर मुकाम किया, जहाँ से उसने मेवाड़ के मैदानी इलाके में सेना भेजकर कई स्थानों से मुगल थानेदारों को मार भगाया। उसके पश्चात वह कुम्भलगढ़ पहुंचा, जहां उसने महता नर्बद को किलेदार नियुक्त किया। इसी दौरान मेवाड़ में मुगल असफलता (जून-सितंबर) का लाभ उठाकर उसने मारवाड़, ईडर, बूंदी, सिरोही, जालोर, डूंगरपुर, बांसवाडा आदि राज्यों से सम्पर्क करके उनको एक साथ मिलकर मुगल-विरोधी कार्यवाहियां करने के लिये प्रोत्साहित किया। इस भांति प्रताप राजस्थान में एक अस्थायी मुगल विरोधी संगठन बनाने में सफल हो गया। मेवाड़ के परम्परागत अधीनस्थ सहयोगी बांसवाड़ा और डूंगरपुर राज्यों के शासकों, रावल प्रताप और रावल आसकरण को भी, जिन्होंने मुगल शक्ति से भयग्रस्त होकर हल्दीघाटी युद्ध के समय राणा प्रताप का साथ नहीं दिया था, प्रताप ने मुगल विरोधी कार्यवाहियों में मेवाड़ के साथ सहयोग करने के लिये बाध्य किया।

2. अकबर के नेतृत्व में मेवाड़ पर आक्रमण

सितंबर, 1576 ई. के मध्य में ख्वाजा साहब की बरसी पर अकबर अजमेर आया। वहां वह मेवाड़ सहित दक्षिणी राजपूताने को पूरी तरह अधीन करने की योजना बनाने लगा। गोगूंदा में मुगल सैनिकों की दुर्दशा के समाचार सुनकर उसने मानसिंह और आसफ खाँ को बुला भेजा। बादशाह ने बड़ी नाराजगी प्रकट की और मुगल सैनिकों की बदहाली के लिये उनको जिम्मेदार ठहराया, चूंकि उन्होंने रसद आदि के लिये राणा के प्रदेश में लूटपाट नहीं की। बादशाह ने दोनों का दरबार में आना बंद कर दिया। उसके विपरीत गाजी खाँ बदख्शी, मिहतर खाँ, अली मुराद उज्बेक, खंजरी तुर्क और बदायुनी आदि की पद-प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अकबर ने प्रताप द्वारा नये मुगल-विरोधी संधि-संगठन को तोड़ने और राणा प्रताप को पहाड़ी प्रदेश में चारों ओर से घेर कर दबोच लेने की राजनैतिक-सैनिक व्यूह-रचना तैयार की। उसने तरसुन खां, रायसिंह और सैयद हाशिम बरहा को जालोर और सिरोही पर आक्रमण हेतु भेजा। उन्होंने वहां के शासकों को मुगल अधीनता स्वीकार करने हेतु बाध्य किया। उसके बाद उसने हाशिम बरहा और रायसिंह को गुजरात की सीमा स्थित नाड़ोत में नियुक्त किया, जहां से वे उस इलाके की ओर राणा की गतिविधि पर नजर रख

सकं और उस ओर से राणा के बाहर निकलने का मार्ग बंद कर सके।

12 अक्टूबर, 1576 ई. के दिन अकबर स्वयं एक बड़ी सेना लेकर अजमेर से रवाना हुआ। उसका विचार था कि उसके जाने से मेवाड़ के लोग डर जावेंगे और राणा प्रताप को पकड़ना आसान हो जावेगा। वह मांडलगढ़ और मदारिया होता हुआ मोही नामक स्थान पर पहुँचा। रवाना होते समय अकबर ने भगवंतदास और मानसिंह को अग्रिम सैन्य-दल देकर गोगूंदा भेजा ताकि वहां कुतुबुद्दीन खाँ के साथ सहयोग करके प्रताप का पता लगावे और उसके बल को नष्ट करे। मोही पँहुचकर अकबर ने गोगूंदा आदेश भिजवाया कि कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ और भगवंतदास आदि तो गोगूंदा में रहकर अपनी कार्यवाही करें और कुल्तज खाँ अन्य अमीरों को साथ लेकर हज-यात्रीदल के साथ रहकर ईडर पहुँचे। वहां से वह हज यात्रियों को अहमदाबाद की ओर सुरक्षित पहुँचाने का प्रबंध करके ईडर का घेरा डाले और वहां के राजा नारायणदास का खात्मा करे। राणा प्रताप के ईडर के इलाके में होने का समाचार सुनकर मोही से अकबर ने मीर गयासुद्दीन और आसफखाँ आदि को ससैन्य ईडर पर आक्रमण करने के लिये अलग से रवाना किया।

उधर राणा प्रताप मुगल सेना के गोगूंदा और कुम्भलगढ़ की ओर कूच करने के समाचार सुनकर वहां से निकल कर ईडर के निकटवर्ती दक्षिणी पहाड़ी भाग में जा डटा था। जब मुगल सेना ईडर पहुँची तो नारायणदास पहाड़ी भाग की ओर जाकर राणा प्रताप से जा मिला। फिर भी ईडर आसानी से नहीं जीता जा सका। राजपूतों ने वीरता पूर्वक मुगल आक्रमण को रोका, जिसमें मुगल सेना के उमरखां और हसनबहादुर मारे गये। उसी समय प्रताप से सहायता प्राप्त करके नारायणदास पहाड़ों से निकला और मुगल सेना की अग्रिम पंक्ति पर अचानक हमला बोल दिया, जिससे बड़ी संख्या में मुगल सैनिक मारे गये। किन्तु लम्बी लड़ाई के बाद अंत में 23 फरवरी, 1577 ई. को ईडर पर मुगल सेना का अधिकार हो गया और नारायणदास पुनः पहाड़ों में प्रताप के पास चला गया।

अकबर मोही से रवाना होकर हल्दीघाटी के रास्ते से होकर उदयपुर पँहुचा। सम्भवतः वह मार्ग में गुलाब के फूलों वाले उस बाग में ठहरा, जहां प्रताप ने खमणोर के युद्ध से पूर्व मुकाम किया था। इसके कारण बाद में वह बगीचा बादशाही बाग के नाम से जाना गया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा तथा कतिपय अन्य इतिहास-लेखक अकबर का गोगूंदा पहुँचना लिखते हैं, जो सही नहीं है। वह सीधे उदयपुर पहुँचा, जहाँ वह लगभग दो माह रहा। बादशाह के उदयपुर पहुँचने पर कुतुबुद्दीन खाँ और राजा भगवंतदास गोगूंदा से बादशाह के पास चले आये, जहां वे प्रताप का पता लगाने में असफल रहे थे। बादशाह ने एक बार फिर अपने अनुभवी अधिकारियों की असफलता पर बड़ी नाराजगी जाहिर की और क्रोधवश उनकी ड्योढी बंद कर दी।

उदयपुर में रहते हुए अकबर ने पहाड़ी भाग में चारों और अपने सैनिक दल भेज कर लोगों को आतंकित किया, लूटपाट की और प्रताप की टोह लगाने का प्रयास किया। किन्तु सफलता हाथ नहीं लगी। मुगल सेना जिस ओर भी गई, लोग अपना स्थान छोड़कर घने वनीय भागों में चले गये। दो माह उदयपुर में रहकर भी अकबर को निराशा और असफलता ही हाथ लगी। अंत में हताश होकर अकबर उदयपुर से बांसवाड़ा होते हुए मालवा की ओर प्रस्थान करने की योजना बनाने लगा। उसने शाह फकरुद्दीन और जगन्नाथ कछवाहे को उदयपुर की रक्षा के लिये नियुक्त किया तथा सैयद अब्दुल्ला खाँ और राजा भगवंतदास को उदयपुर घाटी के प्रवेश मार्ग (देबारी) पर नियुक्त किया। उसके बाद वह बांसवाड़ा की ओर रवाना हुआ। अकबर ने उदयपुर विजय के प्रतीक स्वरूप सोने का

सिक्का ढलवा कर निकलवाया, जिस पर अंकित था- "सिक्का ढाला गया मुहम्मदाबाद उर्फ उदयपुर में, जो जीता जा चुका है।"

इसी दौरान अकबर ने रायसिंह को सिरोही पर आक्रमण करने हेतु आदेश दिया, जहां राव सुरताण देवड़ा ने अभी तक मुगल अधीनता स्वीकार नहीं की थी। रायसिंह ने सिरोही पर कब्जा करके सुरताण को आबू में जाकर घेरा। अन्ततः सुरताण ने अधीनता स्वीकार कर ली और मुगल दरबार में हाजिर हो गया। इसी प्रकार बूंदी पर अधिकार करने के लिये जाइनखान कोका को 30 मार्च, 1577 ई. को भेजा। राव सुरजण (दूदा का पिता) और भोज (दूदा का चाचा) अकबर के दरबार में उपस्थित हो गये, किन्तु दूदा ने मुगल सेना का मुकाबला किया। दूदा की हार हुई और वह पहाड़ी इलाके में प्रताप के पास चला गया परन्तु उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। अकबर ने भोज को बूंदी का राजा बना दिया।

इस भांति अकबर सात महीने के मेवाड़ विरोधी अभियान से असफल होकर 12 मई 1577 ई. को फतहपुर सीकरी लौटा।

अकबर के उदयपुर से प्रस्थान करते ही राणा प्रताप ने पुनः गोगूंदा क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। कुम्भलगढ़ अभी तक प्रताप का प्रधान केन्द्र था, तथापि इस समय तक उसने राजपरिवार तथा अन्य सामंतों एवं सहयोगियों के परिजनों के निवास हेतु तथा अस्थायी राजधानी की दृष्टि से भोमट के घने वनीय भाग में आवरगढ़-कमलनाथ पर्वत पर गढ़ एवं भवनों का निर्माण करवा लिया था। गोगूंदा पर होने वाले आक्रमणों के समय आवरगढ़ ही प्रधान रक्षा-स्थल रहता था। उदयपुर को छोड़कर मेवाड़ के शेष सम्पूर्ण पर्वतीय भाग पर पुनः अधिकार करके प्रताप मेवाड़ के मैदानी भाग में विभिन्न मुगल थानों पर धावा बोलने, उनको लूटने और 'जमीन फूंकने' की नीति के अन्तर्गत मैदानी इलाके की फसलों आदि को बर्बाद करने की कार्यवाही करने लगा, जिससे मुगल सेना का मेवाड़ के मैदानी इलाके में भी टिकना दूभर हो गया।

3. शाहबाज खाँ का प्रथम आक्रमण

जब अकबर को प्रताप की नवीन सफल सैनिक कार्यवाहियों का पता चला तो उसकी साम्राज्यी शक्ति की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। उसने पुनः अपने सर्वाधिक अनुभवी एवं योग्य सेनापतियों को मेवाड़ अभियान पर लगाया। इस बार मीरबक्शी शाहबाज खाँ को मुगल सेना का सर्वोच्च कमांडर नियुक्त कर भगवंतदास, मानसिंह, पयंद खाँ मुगल, सैयद कासिम, उलूगअसद तुर्कमान आदि को बड़ी सेना के साथ प्रताप की शक्ति को सम्पूर्णतः नष्ट करने के आदेश देकर अक्टूबर 1577 ई. में अजमेर से मेवाड़ की ओर रवाना किया। शाहबाज खाँ की सैनिक टुकड़ियां भोमट के घने वनीय भाग में प्रवेश कर गईं और गोगूंदा सहित विस्तृत इलाके पर छा गईं। प्रताप ने इस विशाल सेना का मुकाबला करना ठीक नहीं समझा। उसने सीधी झड़पों से बचने के आदेश देकर अपनी सैन्य टुकड़ियाँ चारों ओर घने सुरक्षित स्थलों में फैला दीं और स्वयं कुम्भलगढ़ के सुरक्षित दुर्ग में पहुंच गया। प्रताप की इस नीति के कारण मुगल सेना बिना अवरोध मेवाड़ के पश्चिमी पहाड़ी भाग में फैल गई, किन्तु उनके हाथ कुछ नहीं लगा।

शाहबाज खां ने कुम्भलगढ़ की तलहटी में स्थित केलवाड़ा गांव पर अधिकार कर कुम्भलगढ़ का घेरा डाला। इस पर दुर्ग में रसद पहुंचने के मार्ग बंद हो गये और अन्न एवं साधनों की कमी होने लगी। प्रताप ने राव अखयराज के पुत्र और अपने मामा भाण को किलेदार नियुक्त किया और स्वयं बहुत सी सेना के साथ किले से निकल गया

और राणपुर में जाकर ठहरा। इसी समय दुर्ग की अधिक समय तक रक्षा करना असंभव हो गया। इस पर शेष राजपूतों ने दुर्ग के द्वार खोल दिये और लड़ते हुए मारे गये। इनमें राव भाण सोनगरा भी मारा गया। 3 अप्रेल 1578 ई. को मुगल सेना का कुम्भलगढ़ पर अधिकार हो गया। इस दुर्ग पर किसी शत्रु-शक्ति की यह प्रथम विजय थी। किन्तु उसको प्रताप की स्थिति का कोई पता नहीं चला। अन्त में पहाड़ों में कई स्थानों पर मुगल सैन्यदल तैनात कर वह अकबर के उद्देश्य को पूरा किये बिना ही लगभग आठ महीने बाद फतहपुर सीकरी लौट गया।

ज्योंही शाहबाज खाँ लौटा, प्रताप ने पहाड़ी इलाके तथा मैदानी इलाके के सभी मुगल थानों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय 1578 ई. के सितंबर-अक्टूबर माह के लगभग भामाशाह और ताराचंद ने रामपुरा से निकलकर ससैन्य मालवा के बादशाही इलाके पर धावा बोला और वहां से पच्चीस लाख रुपये एवं दो हजार अशर्फियाँ दंडस्वरूप वसूल करके राणा के पास चूलिया मुकाम पर पहुंच कर भेंट की। इस बड़ी राशि से राणा को सैनिक एवं प्रशासनिक व्यय की व्यवस्था में बड़ी मदद मिली। भामाशाह की सैनिक एवं प्रशासनिक क्षमता को देखकर राणा प्रताप ने इसी समय महासानी रामा के स्थान पर भामाशाह को मेवाड़ राज्य का प्रधान नियुक्त किया।

अब तक प्रताप ने मेवाड़ के उत्तरी-पश्चिमी भाग भोमट के पहाड़ी प्रदेश को, जो गोगूंदा और कुम्भलगढ़ के निकट पड़ता था, अपनी सुरक्षात्मक सैनिक एवं प्रशासनिक कार्यवाही का क्षेत्र बना रखा था। शाहबाज खाँ द्वारा कुम्भलगढ़ विजय के बाद प्रताप ने मेवाड़ के दक्षिणी-पश्चिमी भाग छप्पन के पहाड़ी प्रदेश को अपनी गतिविधियों का क्षेत्र बनाना प्रारम्भ किया। यह इलाका सुरक्षा की दृष्टि से भी अधिक उपयोगी था। मेवाड़ के उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी दर्रों, देसूरी, हल्दीघाटी अथवा देबारी आदि मार्गों से प्रवेश कर छप्पन इलाके पर आक्रमण करने के लिये मुगल सेना को विस्तृत पहाड़ी प्रदेश को पार करना पड़ता था, इसलिये यह बहुत कठिन था। मालवा, गुजरात आदि की ओर से आक्रमण होने पर सुरक्षा की दृष्टि से छप्पन इलाके से निकल कर एवं घने वनीय पहाड़ों में होकर शीघ्र ही आसानी से भोमट इलाके में पँहुचना प्रताप के लिये सरल था जो मुगल सेना के लिये अत्यन्त कठिन था। 1579 ई. के लगभग प्रताप ने चांवड को अपनी स्थायी राजधानी बनाया, जो आगामी 36 वर्षों तक मेवाड़ की राजधानी रही।

4. शाहबाज खाँ का दूसरा आक्रमण

राणा प्रताप की आक्रामक-सुरक्षात्मक कार्यवाहियों एवं उसके द्वारा मुगल सैन्य-दलों पर अनवरत आक्रमणों से क्षुब्ध होकर बादशाह अकबर ने 15 दिसंबर 1578 ई. को पुनः शाहबाज खाँ को बहुत सा खज़ाना एवं गाजी खाँ बदख्शी, मुहम्मद हुसैन, सैयद तैमूर बदख्शी, मीरजादा अली खाँ आदि अनुभवी योद्धाओं को साथ देकर मेवाड़ की ओर भेजा और यह कहा कि यदि तुम उसका दमन किये बिना लौट आये तो तुम्हारे सिर उड़ा दिये जावेंगे। शाहबाज खाँ ने बड़ी भारी सेना लेकर मेवाड़ में प्रवेश किया और राणा की तलाश में पहाड़ों में फिरता रहा। राणा की तलाश में दौड़धूप करने और मेवाड़ के राजपूतों-भीलों के आकस्मिक आक्रमणों से त्रस्त एवं भयग्रस्त रहने के कारण मुगल सैन्य-दल को कभी चैन नहीं मिला। अन्त में असफल एवं निराश होकर वह पुनः विभिन्न स्थानों पर मुगल सैन्य दल नियुक्त करके लगभग छः-सात महीने बाद 1579 ई. के मध्य में मेवाड़ से वापस मुगल दरबार लौट गया।

शाहबाज खाँ के लौटते ही प्रताप ने पुनः शाही स्थानों पर हमले शुरू कर दिये। उसने सारे मेवाड़ में यह आज्ञा जारी करवा दी कि पहाड़ी प्रदेश को छोड़कर मैदानी भाग में

कोई खेती नहीं करेगा। जो किसान एक बिस्वा जमीन पर भी खेती करके मुगल सरकार को हासिल देगा उसका सिर उड़ा दिया जायेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि सारा मैदानी प्रदेश उजाड़ हो गया, सर्वत्र घास उग आई, रास्तों पर कंटीले बबूल खड़े हो गये और बस्तियों में जंगली जानवर बसने लगे। कर्नल जेम्स टाड ने लिखा है कि इस नीति से प्रताप ने राजपूताने के इस बगीचे को विजेताओं के लिये निरुपयोगी वन दिया।

इसी समय 1579 ई. के जुलाई माह में राणा प्रताप ने अवसर देखकर दिवेर के दर्रे पर कायम मुगल थाने पर हमला किया। युद्ध में राणा प्रताप की तलवार से बहलोल खाँ घोड़े सहित मारा गया। कुंवर अमरसिंह के बर्छे से बादशाह अकबर का काका थानेदार सुल्तान खाँ मारा गया। इस युद्ध में भामाशाह ने बड़ी वीरता का परिचय दिया। दिवेर से शाही सैनिक भाग गये और इस पर्वतीय प्रदेश के मार्ग पर प्रताप का कब्जा हो गया। अब प्रताप 1576-1579 ई. के तीन वर्षों के संकट-काल एवं मुगल-दबाव से उबर कर मुगल सैन्य दलों पर अपना दबाव बढ़ाने लगा था। वस्तुतः मेवाड़-मुगल संघर्ष में दिवेर का युद्ध एक परिवर्तनकारी बिन्दु (Turning point) था और प्रताप की दिवेर-विजय उसकी 1586-87 ई. की मेवाड़ की संपूर्ण विजय का प्रथम सोपान था।

प्रताप ने डूंगरपुर के राव आसकरण और बांसवाड़ा के रावल प्रतापसिंह को पुनः अधीन किया, जिन्होंने बादशाह अकबर के आक्रमण के समय अक्टूबर 1576 ई. में मुगल अधीनता स्वीकार कर ली थी। वागड़ प्रदेश के उक्त दोनों राज्य मेवाड़ के नवीन राजनैतिक केन्द्र छप्पन प्रदेश की सीमा पर ही स्थित थे, इसलिए भी प्रताप के लिये उनको अपने प्रभाव में रखना आवश्यक था। 1578-1579 ई. के दौरान प्रताप ने रावत भाण सारंगदेवोत को सेना सहित वागड़ की ओर भेजा। सोम नदी पर लड़ाई हुई। इस युद्ध में वागड़िया चौहानों ने बड़ी वीरता दिखाई। रावत भाण बुरी तरह घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहान हार कर भाग गये और डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा के शासकों ने राणा प्रताप की अधीनता स्वीकार कर ली। इससे मेवाड़ का दक्षिण-पश्चिमी सीमा वाला प्रदेश अधिक सुरक्षित एवं सुदृढ़ हो गया और चावंड को स्थायी राजधानी बनाना सरल हो गया।

5. शाहबाज खाँ का तीसरा आक्रमण

मेवाड़ की शक्ति को कुचलने में विशाल साम्राज्यी सेना और साधनों की बार-बार असफलता से अकबर दुःखी हो गया। अतएव एक बार फिर शाहबाज खाँ की क्षमता और साहस पर भरोसा करके उसको तीसरी बार 9 नवंबर, 1579 ई. को सांभर मुकाम से ससैन्य मेवाड़ की ओर भेजा। उसने इस बार मालवा प्रदेश की ओर से मेवाड़ के जहाजपुर परगने से मांडलगढ़ और भैंसरोड़गढ़ होते हुए दक्षिण-पूर्वी दिशा से मेवाड़ के पर्वतीय भाग में प्रवेश किया। किन्तु उसके आक्रमण का कोई वांछित परिणाम नहीं निकला एवं पूर्व की कार्यवाहियों एवं घटनाओं की पुनरावृत्ति से अधिक कुछ नहीं हुआ । शाहबाज खाँ को पहिले की भांति मेवाड़ी सैनिकों के आकस्मिक धावों और लूटमार का शिकार होना पड़ा। शाहबाज खाँ ने मुगल थाने वापस कायम किये। किन्तु उसको राणा प्रताप के स्थान का पता नहीं मिला। इस समय ताराचंद मालवा से दण्ड वसूल करने रामपुरा गया हुआ था। शाहबाज खाँ ने उसको घेर लिया। ताराचंद जख्मी होकर निकल भागा और बस्सी में शरण ली, जहां रावत साईदास ने उसको पनाह दी।

तीसरी बार भी शाहबाज खाँ बुरी तरह असफल रहा। बादशाह अकबर ने उससे अजमेर की सूबेदारी ले ली और उसका बड़ा अपमान हुआ।

खानखाना का आक्रमण

अकबर ने बैरामखां के पुत्र मिर्जा अब्दुर्रहीम खाँ (खानखाना) को रणथंम्भौर की जागीर देकर अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया। खानखाना ने मेवाड़ की ओर ध्यान दिया तथा मैदानी भाग के शाही थाने पुनः सुदृढ़ कराये। वह स्वयं ससैन्य बेसेरपुर (शेरपुर) पहुंचा। उस समय कुंवर अमरसिंह ने गोगूंदा में मुगल सैन्य-टुकड़ी को पराजित करके वहां अपना मुकाम बना रखा था। खानखाना का शेरपुर पहुंचने के समाचार सुनकर कुंवर ने अचानक खानखाना के शिविर पर धावा बोल दिया। मुगल सेना के लिये यह धावा अप्रत्याशित था। उससे मुगल सेना तितर-बितर हो गई। अमरसिंह को लूट के माल के साथ मिर्जा खाँ का परिवार भी असहाय अवस्था में मिल गया, जिसको बंदी बना लिया गया। जब प्रताप के पास इस बात की सूचना पहुंची तो प्रताप ने मिर्जा खाँ की स्त्रियों एवं बच्चों को ससम्मान एवं सुरक्षित वापस लौटाने के आदेश कुंवर को भिजवाये। कुंवर ने उनको बहिन-बेटियों की तरह आदर एवं स्नेह देकर खानखाना के पास वापस भेज दिया। खानखाना राणा की उदारता एवं महानता से बड़ा प्रभावित हुआ। उसके हृदय में प्रताप के प्रति श्रद्धा-भावना उत्पन्न हो गई, जो सदैव बनी रही।

लगभग एक वर्ष की अवधि के बाद 1581 ई. के मध्य में रहीम खानखाना को शाहजादा सलीम का अभिभावक नियुक्त किया गया, जिससे व अजमेर की सूबेदारी छोड़कर मुगल दरबार में लौट गया।

जगन्नाथ कछवाहा का आक्रमण (दिसम्बर 1584 ई.)

1580 ई. के बाद से 1584 ई. तक राणा प्रताप को पर्वतीय भाग में अपनी सैनिक स्थिति को सुदृढ़ करने, इस भाग में कुम्भलगढ़, गोगूंदा एवं उदयपुर सहित सभी मुगल थाने उठाने तथा अपनी प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था में व्यापक सुधार करने का अवसर मिल गया। प्रताप के सन्मुख अकबर की मजबूरियां स्पष्ट थीं। प्रताप का मनोबल और आत्मविश्वास ऊंचा था, जबकि मेवाड़ के मामले में बार-बार मुँह की खाने से अकबर में निराशा की भावना घर कर गई थी। अकबर की आकांक्षा के विपरीत परिणाम निकल रहे थे। इस अवधि में अजमेर सूबे में कमजोर मुगल स्थिति को देखते हुए प्रताप ने मेवाड़ के मैदानी भाग में भी चित्तौड़ एवं मांडलगढ़ तक आक्रमण करके अधिकांश मुगल थानों को नष्ट कर दिया और अपने सैनिक दल नियत कर अपने शासन की पुनर्स्थापना की दृष्टि से आवश्यक कार्यवाहियां की। चार वर्ष की शांति-अवधि का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मेवाड़ की पर्वतीय घाटियों में कृषि लहलहाने लगी और गोड़वाड़, सिरोही, आबू , मालवा और गुजरात की ओर मेवाड़ के वाणिज्य एवं व्यवसाय के मार्ग खुल गये, मेवाड़ के आर्थिक एवं सैनिक बल में बड़ी वृद्धि हुई और राजधानी चावंड इस क्षेत्र की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रधान केन्द्र बनने लगा।

जगन्नाथ कछवाहे की मेवाड़ पर चढाई

प्रताप को कुचलना संभव नही होने पर भी अकबर को यह कदापि मंजूर नहीं था कि उदयपुर परगना एवं चित्तौड़ आदि महत्वपूर्ण दुर्ग मुगल आधिपत्य से निकल जाये। अतएव अवसर देखकर एक बार फिर 5 दिसम्बर, 1584 ई. को राणा प्रताप के विरुद्ध सशक्त कार्यवाही करने हेतु जगन्नाथ कछवाहा को बक्शी जाफरबेग और सैयद राजू के साथ बड़ी सेना देकर भेजा। उस समय राणा प्रताप मांडलगढ़ के निकटवर्ती इलाके में सक्रिय था और मांडलगढ़ के पतन के आसार हो गये थे। जगन्नाथ कछवाहा और सैयद राजू की सेनाएं मांडलगढ़ की रक्षार्थ पहुंची। राणा प्रताप अपनी रणनीति के अनुसार मुगल सेना से सीधी लड़ाई लड़ने के बजाय वापस पर्वतीय भाग में लौट गया। जगन्नाथ ने राजू को मांडलगढ़

की रक्षार्थ छोड़कर, तेजी के साथ पश्चिमी मेवाड़ की पहाड़ियों में चावंड की ओर वढ़ने के लिये प्रवेश किया तो जगन्नाथ का ध्यान वंटाने और उसको चावंड की ओर वढ़ने से रोकने के लिये प्रताप ने पहाड़ी भाग से निकलकर मांडलगढ़ क्षेत्र में मुगल सैनिकों पर हमले किये। जव सैयद राजू ने पीछा करने का प्रयास किया तो प्रताप लड़ने के वजाय चित्तौड़ की ओर निकल गया। प्रताप के मांडलगढ़ की ओर होने के समाचार पाकर जगन्नाथ पहाड़ी क्षेत्र से वापस वाहर निकल आया। इसी वीच प्रताप पुनः चावंड पहुंच गया। मुगल सेना के चावंड पर आसन्न आक्रमण की संभावना को देखते हुए उसने वड़ी मुगल सेना के साथ सीधे मुकावले से वचने के लिये राजपरिवार आदि को भोमट के उत्तरी पश्चिमी घने वनीय भाग में आवरगढ़ की ओर पहुंचा कर चावंड खाली कर दिया और अपने सैन्य-दलों को विभिन्न पहाड़ों पर चारों ओर जमा दिया। वर्षा ऋतु समाप्त होते ही सितंवर के प्रारम्भ में जाफर वेग, सैयद राजू, वजीर जमील, सैफुल्लाह मुहम्मद, शेर विहारी आदि सेनानायकों को लेकर जगन्नाथ कछवाहा पुनः पहाड़ी क्षेत्र में घुसा और 18 सितंवर, 1585 ई. को उसने चावंड को घेर लिया। किन्तु कस्वा खाली था और प्रताप वहां नहीं था। खीज कर जगन्नाथ ने राणा के महलों को लूटा और वहां का सारा सामान असवाव उठा ले गया। पहाड़ों के गुप्त स्थानों से निकल कर प्रताप के सैन्य दलों के आक्रमणों से वचने के लिये जगन्नाथ ने लौटने का दूसरा मार्ग पकड़ा और वह डूंगरपुर की ओर से निकल कर अजमेर चला गया। इसके संवंध में अवुलफजल लिखता है कि मुगल सेना प्रताप के आक्रमण से वच गई, क्योंकि वह दूसरे मार्ग से लौटी। इस भांति कछवाहा जगन्नाथ और सैयद राजू की सेनाओं के आक्रमण का भी वही निराशाजनक परिणाम निकला जो पहिले के मुगल आक्रमणों का हुआ था। पहाड़ी भाग में वड़ी संख्या में मुगल सैनिक मारे गये और उनको भारी मात्रा में रसद एवं शस्त्रों से हाथ धोना पड़ा।

प्रताप की विजय एवं नई नीति (1586-88)

जगन्नाथ कछवाहा की असफलता के वाद अकवर ने हार मान ली और उसने एक तरह से मेवाड़-समस्या से मुंह मोड़ लिया। उसने प्रताप को अपने हाल पर छोड़ दिया। 1585 ई. के वाद मेवाड़ पर मुगल आक्रमण वंद हो गये।

अकवर को तेरह वर्षों (1598 ई.) तक लाहौर में अपनी राजधानी रखकर, उस इलाके में ही रहना पड़ा। अपनी इस साम्राज्यी कार्यवाही में पूर्णतः व्यस्त रहने, अपने अधिकांश वड़े सैन्य अधिकारियों को इस क्षेत्र की सैनिक कार्यवाहियों में संलग्न रखने तथा मेवाड़ पर होने वाले निरर्थक जन-धन के व्यय से वचने के लिये अकवर ने अपनी प्रधान सेना वहां से हटा ली और मेवाड़ पर आक्रमण वंद कर दिये।

जव राणा प्रताप को अकवर द्वारा अपनी वड़ी सेना लेकर कावुल की ओर प्रस्थान करने के समाचार मिले तो उसने अपनी नई रणनीति निश्चित की। प्रताप को यह ज्ञात ही था कि अकवर अपने वार-वार के आक्रमणों की निष्फलता के कारण मेवाड़ विजय के सम्वंध में हताश हो चुका था और अव जवकि वह सुदूर उत्तर-पश्चिम के अभियान में संपूर्ण शक्ति के साथ लग रहा था और मेवाड़ को अधीन करने वाले आक्रमण वंद हो गये थे, तो प्रताप ने भी मुगल प्रदेशों पर आक्रमणों का सिलसिला वंद कर दिया। प्रताप ने मुगल-सत्ता को कोई वड़ी चुनौती दिये विना केवल अपने राज्य के उन मैदानी इलाकों को पुनः अपने अधिकार में लाने का उद्देश्य रखा, जो उसके पिता के काल में मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत थे। अकवर की साम्राज्यी भावना और अंहकारी को देखते हुए यह निश्चित था कि वह अवसर देखकर अपनी असफलता का मलाल अपने मन से हटाने के लिये पुनः मेवाड़

पर आक्रमण करेगा। वह ऐसा कब करेगा, यह उसके साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी समस्या के परिणामों पर निर्भर करेगा। अतएव प्रताप ने निर्णय किया कि-

1. अकबर को आक्रमण का बहाना उपलब्ध न कराएगा।

2. वह उत्तर की ओर से गुजरात और मालवा की ओर जाने वाले मार्गों को खुला रखेगा तथा मुगल काफिलों अथवा सैन्य-दलों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचावेगा। यही कारण है कि मुगल सत्ता के साथ तत्काल टकराहट से बचे रहने की दृष्टि से अजमेर से मालवा के मार्ग में पड़ने वाले चित्तौड़गढ़ एवं मांडलगढ़ क्षेत्र को प्रताप ने मुगलाधीन छोड़ दिया।

3. मेवाड़ राज्य के शेष मुगलाधीन इलाकों को मुगल अधीनता से स्वतंत्र करना।

4. सम्पूर्ण मेवाड़ में कृषि, व्यवसाय, उद्योग-धन्धों को तेजी के साथ व्यवस्थित करना, जिससे मेवाड़ राज्य की तीव्र आर्थिक उन्नति हो सके और खुशहाली फैल सके।

5. सुदृढ़ सैन्य व्यवस्था करना, ताकि मुगल सेना के साथ भविष्य में होने वाले युद्ध में वह अधिक क्षमता और सफलता के साथ टक्कर ले सके। सेना के प्रशिक्षण आदि पर ध्यान देना।

राणा प्रताप ने 1588 ई. के मध्य तक दो वर्षों के भीतर मेवाड़ का सम्पूर्ण पश्चिमी भाग और चित्तौड़गढ़ एवं मांडलगढ़ का क्षेत्र छोड़कर अधिकांश पूर्वी भाग अपने अधीन कर लिया। 1586-1587 ई. के दौरान प्रताप ने अधिकांशतः पहाड़ी भाग के सभी स्थानों से मुगल सैनिकों का सफाया करने और सुव्यवस्था करने की कार्यवाही की। 1587 ई. में वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद प्रताप ने अक्टूबर के प्रारम्भ में अपनी सेना का एक बड़ा दल कुंवर अमरसिंह के नेतृत्व में पूर्व की ओर रवाना किया, जिसने उदयपुर, देबारी, मोही, मदारिया, दिवेर, मांडल, जहाजपुर आदि स्थानों से मुगल थाने उठाकर सर्वत्र मेवाड़ राज्य की व्यवस्था कायम कर दी। इसके साथ-साथ मेवाड़ का संपूर्ण पश्चिमी मैदानी भाग स्वंतंत्र करा लिया गया। इस भांति प्रताप ने लगभग छत्तीस मुगल थानों पर अधिकार कर लिया और मुगल सैनिक या तो लड़कर मारे गये अथवा जान बचाकर भाग निकले। प्रताप ने नवीन व्यवस्था में एक ओर कुम्भलगढ़ से लेकर सराड़ा एवं छप्पन तक तथा दूसरी ओर गोड़वाड़ (देसूरी) से लेकर आसींद एवं भैसरोड़गढ़ तक सभी पर्वतीय नाकों पर अपनी सुदृढ़ सैनिक व्यवस्था कायम कर दी। जब अकबर को 1589 ई. के प्रारंभ में लाहौर में राणा प्रताप की इन विजयों के समाचार मिले तो वह जहर के घूंट पीकर रह गया।

इस भांति चौदह वर्षीय शान्ति-काल 1585-1600 ई. शुरू हुआ, जो राणा प्रताप के देहान्त 1597 ई. के तीन साल बाद तक कायम रहा। 1598 ई. में अकबर लाहोर से फतहपुर सीकरी लौटा और उसके बाद ही 1599 ई. में प्रताप के उत्तराधिकारी राणा अमरसिंह को अधीन करने के लिये उसने पुनः मेवाड़ विरोधी सैनिक अभियान शुरू करने का निश्चय किया। बादशाह अकबर अपने जीवन काल में (अकबर की मृत्यु 1605 में हुई) मेवाड़ को अधीन करने का मंसूबा पूरा नहीं कर सका।

सैनिक व प्रशासनिक सुधार

गाँवों में पंचायतें पुनः काम करने लगीं। जागीर-व्यवस्था पहिले की भांति मैदानी इलाके में पुनः जीवित हो गई, जो जिला प्रशासन की सैनिक एवं आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में सहयोग करने लगी। सभी बड़ी जागीरें उन राजपूत वंशी खांपों, चूंडावतों, झालाओं, राठौड़ों, चौहानों, पंवारों, आदि को वापस बहाल कर दी गईं, जो पहिले उनके कब्जे में थी। इस प्रकार झाला राजराणा देदा को बड़ी सादड़ी, चूंडावत रावत जैतसिंह को सलूंबर, राठौड़

ठाकुर मुकुंददास को बदनोर, चूंडावत रावत मेघसिंह को बेगूं, पंवार राव शुभकरण को बिजोलिया आदि बहाल हुए। कुछ को राणा प्रताप ने नये पट्टे दिये। बदनोर के कुंवर राठोड़ मनमनदास को देलवाड़ा, रावत भाणसिंह सारंगदेवोत को बाठरड़ा, सिसोदिया रावत कर्णसिंह (चित्तौड़ के शाके में शहीद सुप्रसिद्ध पत्ता का पुत्र) को आमेट और भ्राता शक्तिसिंह के पुत्र रावत भाणसिंह को भी डर की नवीन जागीरें प्रदान की गई। इस भांति मेवाड़ में जागीरों को पूरी तरह पुनर्व्यवस्थित कर दिया गया।

मेवाड़ की सेना का पुनर्गठन किया गया। जागीरदारों को पुनः पूर्ववत् अपनी जागीरों की आय से अपनी-अपनी जमीयतें रखने का दायित्व दिया गया और सैन्य व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण किया गया। किन्तु यह विकेन्द्रीकरण पूर्णतः केन्द्रीय योजना एवं व्यवस्था के अनुसार रहा। यद्यपि युद्ध बंद था किन्तु सैनिक व्यवस्था युद्ध की तैयारी के स्वरुप की थी। जागीरदारों की जमीयतें और भील सैनिक अलग-अलग पर्वतीय नाकों, दर्रों तथा सामरिक महत्व के स्थानों पर नियुक्त रहे। युद्धकाल में प्रताप ने जिस केन्द्रीय सेना का गठन किया था, उसको विघटित नहीं किया, अपितु उसको नया स्वरूप एवं प्रशिक्षण प्रदान करके बड़े युद्ध के लिये सक्षम बनाया गया।

राजधानी चावंड की सुरक्षा

गुंजरात, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और मालवा से सटा हुआ मेवाड़ का घना पर्वतीय एवं वनीय क्षेत्र छप्पन इलाका सुरक्षात्मक युद्ध-प्रणाली के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। प्रताप द्वारा इस भू-क्षेत्र को अपनी राजनैतिक एवं सैनिक गतिविधियों का केन्द्र बनाने के कारण सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण परिणाम निकले। मुगल सेना के मेवाड़ के पर्वतीय भाग पर उत्तरी-पूर्वी एवं पूर्वी भाग से आक्रमण निरर्थक हो गये, क्योंकि चावंड की ओर कुम्भलगढ़ एवं गोगूंदा की ओर से बढ़ने पर लगभग 80-90 मील की दूरी तथा उदयपुर की ओर से बढ़ने पर 60-70 मील की दूरी पूरी करने के लिये वनीय एवं पहाड़ी भाग में से होकर जाना पड़ता था जिसका खतरा मुगल सैनिक उठाने से डरते थे। पहाड़ी भागों में राजपूतों एवं भीलों के आकस्मिक आक्रमणों से निस्संदेह मुगल सैनिक एवं अधिकारी अत्यधिक आतंकित रहते थे। यही कारण है कि प्रत्येक आक्रमणकारी मुगल सेना कुछ ही महीनों में पहाड़ी भाग से निकलकर लौट जाती थी और पीछे जो सैन्यदल कतिपय गढ़नुमा स्थानों पर मुगल आधिपत्य के प्रतीक के रूप में नियुक्त किये जाते थे, वे स्वयं को किलों में कैद कर लेते थे और राणा के सैनिकों के आगमन की सूचना पाकर प्रायः बिना लड़े ही भाग जाते थे। जब शाहबाज खाँ ने 1579 ई. में और जगन्नाथ कछवाहा ने 1585 ई. में दक्षिण की ओर से चावंड पर आक्रमण किया तो रक्षात्मक कार्यवाही की दृष्टि से राजधानी को कुछ दिनों के लिये उत्तर-पश्चिम के भोमट क्षेत्र में स्थानांतरित करना आसान हो गया। भयग्रस्त मुगल सेनाओं के लिये उस ओर बढ़ना नितांत असंभव था और चावंड में अधिक दिनों तक ठहरना भी कठिन था। अतएव वे दुर्दशाग्रस्त होकर वापस लौटी। जैसा कि स्पष्ट, है, इन सेनाओं द्वारा इस प्रकार के खतरे उठाने के पीछे अकबर का यह उद्देश्य रहता था कि वे प्रताप को जिन्दा या मुर्दा पकड़ लावें, क्योंकि प्रताप के जीवित रहते, मेवाड़ को अधीन करना असंभव था। अकबर प्रताप के विरुद्ध केवल एक बड़ी सैनिक कार्यवाही नहीं कर सका, वह थी मेवाड़ के सारे पहाड़ी इलाके का एक साथ चारों ओर से घेरा डालकर सभी ओर से आक्रमण करना और सभी ओर से मार्ग बन्द कर देना। किन्तु लगभग 300 मील की परिधि वाले इस भू-क्षेत्र को घेर कर सैनिक कार्यवाही करने का अर्थ था कई लाख सैनिकों का एक साथ उपयोग। यह अकबर के लिये दुष्कर कार्य था और उसने कभी उस पर गंभीरता से विचार नहीं किया।

छप्पन के पहाड़ी इलाके में पानी की वहुतायत है, जहां जलाशय, वावड़ियाँ, कुंड और नदी-नाले बड़ी संख्या में हैं। पहाड़ों के वीच की घाटियों की भूमि में चावल, गेहूं, मक्का आदि अनाज, आम तथा अन्य फल पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते हैं। अतएव चावंड को राजधानी बनाने से वहां हजारों लोगों के खाने पीने के प्रवंध में राणा प्रताप को अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। युद्ध-काल में भी कम ज्यादा मालवा एंव गुजरात की ओर व्यापार हो जाता था। अंतएव दीर्घकालीन संघर्ष में इस स्थान का चयन बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ।

इस भांति प्रताप के शेष शांतिपूर्ण जीवनकाल में मेवाड़ ने सभी क्षेत्रों में उन्नति की और जव 1600 ई. में अकवर ने पुनः मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध शुरू किया, उस समय मेवाड़ पूरी तरह धनधान्य पूर्ण एवं खुशहाल था और जो संपत्ति और साधन अर्जित किये गये, उनके सहारे राणा अमरसिंह आगामी पन्द्रह वर्षों तक मुगल सेना से लड़ता रहा।

महाराणा प्रताप की यह सफलता निस्संदेह मानव इतिहास का एक अनूठा उदाहरण है। प्रताप के अदम्य सफल संघर्ष ने देश पर व्यापक प्रभाव डाला और मुगल दरवार में तथा उसके बाहर उसकी सराहना हुई। तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने प्रताप की वीरता और साहस की प्रशंसा में वहुत कुछ लिखा है।

पर्वत और प्रताप

1576 से 1585 ई. के दस वर्षीय युद्ध-काल के दौरान वार-वार हुए मुगल आक्रमणों के कारण राणा प्रताप और उसके परिवार को उदयपुर, कुम्भलगढ़ और गोगूंदा के राजमहलों का निवास छोड़ना पड़ा और अरावली पहाड़ों में सुरक्षात्मक युद्ध को जारी रखने के लिये बराबर निवास बदलने पड़े और नई-नई राजधानियां वनानी पड़ी। महलों के सुख एवं वैभव से परिपूर्ण एवं अभ्यस्त जीवन को छोड़कर पहाड़ों और वनों के अभावों और कठिनाईयों एवं संकटों से पूर्ण जीवन को अपनाना पड़ा। राजपरिवार की महिलाएं एवं वच्चे प्रायः भय एवं आशंका से त्रस्त रहते थे तथा उनको आक्रमणों के समय निवास बदलने पर पथरीले पहाड़ों पर उतरना, चढ़ना और घने जंगलों में चलना पड़ता था। संकट के समय यात्रा करते हुए मार्ग में अस्थायी तौर पर वनाए गये शिविरों, कच्चे मकानों अथवा झोंपड़ियों तथा कभी-कभी कन्दराओं में भी रहना पड़ता था। भोजन के प्रवन्ध में भी यदा-कदा कठिनाईयां उत्पन्न होना स्वाभाविक था। राणा के राजपरिवार, सामंतों एवं अधिकारियों आदि परिवारों तथा सहचरों सभी ने इन सव वातों को साहस एवं धैर्य के साथ सहा और उनका सामना किया।टॉड ने लिखा– "प्रताप का धैर्य अडिग रहा।"

किन्तु कुछ ऐसे अवसर आए, जव अपने अधिक प्रिय व्यक्तियों के कष्टों ने उसको कुछ विचलित कर दिया। उन पहाड़ी कंदराओं में भी उसकी प्रियतमा रानी सुरक्षित नहीं थी और हर प्रकार के सुख-साधनों में पलने के अधिकारी उसके वच्चे भोजन के लिये उसके चारों तरफ रोते रहते थे, क्योंकि अत्याचारी मुगल बड़ी दृढ़ता के साथ उनका पीछा करते थे। पांच बार ऐ हुआ कि उन्हें भोजन कर लेने तक का समय नहीं मिल सका और उन्हें वना बनाया भोजन छोड़ देना पड़ा। एक समय उसकी रानी और पुत्रवधू ने जंगली अन्न के आटे की कुछ रोटियां बनाई तथा प्रत्येक के भाग में एक-एक रोटी आई, आधी तत्काल खाने के लिये और बाकी अगली वार भोजन के लिये। विचारों में डूवा प्रताप उन्हीं के साथ वैठा हुआ था कि उसकी पत्नी की हृदयभेदी चीत्कार ने उसको चौंका दिया। एक जंगली विलाव झपट कर उसकी पुत्री की रोटी उठा ले गया था, जिस पर भूखी कन्या चिल्लाने लगी। तव तक प्रताप का धैर्य कदापि विचलित नहीं हुआ था। परन्तु भोजन के लिये अपने वच्चों की चिल्लाहट ने उसको हताश कर दिया और उसकी दृढ़ता स्थिर नहीं रह सकी। ऐसी स्थिति में राज्य करना उसने शाप के तुल्य समझा और अकबर को अपनी कठिनाईयां कम करने के

लिये लिखा। टॉड के इस कथन के साथ पृथ्वीराज राठौड़ और प्रताप के मध्य पत्र-व्यवहार वाली जनश्रुति जुड़ गई।

जनश्रुति के अनुसार प्रताप ने अपने उत्तर में पृथ्वीराज को तीन दोहे लिख कर भेजे जिनका आशय था कि 'प्रताप के मुख से तो अकबर तुर्क ही कहलाएगा, सूर्योदय पूर्व में ही होगा, प्रताप की तलवार यवनों के सिरों पर ही होगी। तुम (पृथ्वीराज) सहर्ष अपनी मूंछों पर ताव दो।' इस पर पृथ्वीराज ने प्रताप की प्रशंसा में एक गीत लिखा।

इसी प्रकार की एक अन्य जनश्रुति प्रचलित हुई। प्रताप जब भीषण आर्थिक संकट और अभावों से घबरा गया तो उसने मेवाड़ त्याग कर सिंध की ओर चले जाने का निर्णय किया। उस समय भामाशाह बड़ी धन-राशि एवं अशर्फिया ले कर उपस्थित हुआ, जो उसके परिवार की संगृहित संपत्ति थी और उसने वह धन राणा प्रताप को भेंट किया। इतनी बड़ी धन-राशि को प्राप्त कर प्रताप ने देश-त्याग का विचार छोड़ दिया। ये कथाएँ कपोलकल्पित हैं और मात्र राणा प्रताप के साहस, सहनशीलता और धैर्य की पराकाष्ठा दर्शाने की दृष्टि से कल्पित की गई हैं। इतिहासकार गौही ओझा ने लिखा है "इस प्रकार का सम्पूर्ण कथन कपोलकल्पना मात्र है, क्योंकि महाराणा को कभी ऐसी कोई आपत्ति नहीं पड़ी थी। उत्तर में कुम्भलगढ़ से लगाकर दक्षिण में ऋषभदेव से परे तक लगभग 90 मील लम्बा और पूर्व में देबारी से लगाकर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक 70 मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश, जो एक के पीछे एक पर्वत श्रेणियों से भरा हुआ है, महाराणा के अधिकार में था। महाराणा तथा सरदारों की स्त्रियाँ एवं बाल-बच्चे आदि इसी सुरक्षित प्रदेश में रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनके लिये अन्न आदि लाने के लिये गोड़वाड़, सिरोही, ईडर और मालवा की तरफ के मार्ग खुले हुए थे। उक्त पहाड़ी प्रदेश में जल तथा फल वाले वृक्षों की बहुतायत होने के अतिरिक्त बीच-बीच में कई जगह समान भूमि आ गई है, वहाँ सैकड़ों गांव आबाद हैं। वहां कई ऐसे पहाड़ी किले तथा गढ़ भी बने हुए हैं और पहाड़ियों पर हजारों भील बसते हैं। वहां मक्का, चना, चावल आदि अन्न अधिकता से उत्पन्न होते हैं और गाय, भैंस आदि जानवरों की बहुतायत के कारण घी, दूध आदि पदार्थ आसानी से पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। ऐसे देश का सहारा होने से ही महाराणा अपनी स्वतंत्रता को स्थिर रख सका। वह अपने सरदारों के साथ विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में निडर रहता था, और उसके स्वामिभक्त एवं वीर प्रकृति के हजारों भील, जो बंदरों की तरह पहाड़ लांघने में कुशल होते थे, शत्रु सेना के हलचल की 40-50 मील दूर तक की सूचना 7-8 घंटों में उसके पास पहुंचा देते थे, जिससे वह शत्रु पर कहां हमला करना ठीक होगा यह सोच कर अपने राजपूतों सहित पहाड़ों की ओर से घात लगाये रहता और मौका पाते ही उन पर टूट पड़ता था। इसी से अकबर की सेना ने पहाड़ो में दूर तक प्रवेश करने का एक बार भी साहस नहीं किया।

राणा प्रताप यदि ऐसी विपत्ति में होता तो अबुलफजल अथवा अन्य फारसी तवारीख लेखक उसके संम्बन्ध में अवश्य बढ़ा-चढ़ा कर लिखते और महाराणा द्वारा अकबर की अधीनता स्वीकार करने हेतु पत्र लिखने वाली बात अबुलफजल से कभी छिपी नहीं रहती।

वस्तुस्थिति यह है कि प्रताप के परिवार तथा सरदारों आदि के परिवारों को खाने-पीने की दृष्टि से कभी कोई अभाव नहीं रहा तथा उनके सुरक्षित निवास का भी पूरा प्रबन्ध रहा। मेवाड़ के पर्वतीय भोमट एवं छप्पन इलाके के घने दुर्गम स्थलों में यत्र-तत्र आज भी प्राचीन भवन एवं किलों के खंडहर मिलते हैं जो राणा प्रताप के परिवार तथा स्त्रियों-बच्चों के समय-समय पर निवास-स्थल रहे। ऐस स्थलों में धोलिया, मचीन, रोहिड़ा, ढोलान, उबेश्वर, आवरगढ़ (कमलनाथ) प्रधान हैं। ऊंचे शिखर पर स्थित आवरगढ़ के भवनों के विस्तृत खंडहर चावंड की भांति विशाल हैं और पहाड़ के निचले भाग से ऊपरी

भाग तक किले की भांति बने हुए हैं। आवरगढ़ वस्तुतः कुम्भलगढ़ एवं गोगूंदा छोड़ने के बाद कुछ समय तक प्रताप की राजधानी रहा। आवरगढ़ के विशाल एवं विस्तृत पर्वत की चढ़ाई लगभग चार मील है और उसका बारह मील का घेरा है, जिसके चारों ओर परकोटा बना हुआ था। उसके भीतर हजारों लोग एक साथ रह सकते थे। पहाड़ पर छोटा तालाब एवं कुएं हैं तथा उस पर आम, आंवला, अरेड़ी, कारवा, कणज आदि पेड़ों की बहुतायत है। कोल्यारी गांव इससे तीन मील की दूरी पर है, जहां प्रताप ने हल्दीघाटी युद्ध के बाद अपने घायल सैनिकों का इलाज कराया था। उस समय प्रताप ने इस पर्वत को संकटकाल में रक्षा-स्थल के रूप में चुन लिया था।

अरावली के पर्वतों की विशेषता उनके शिखरों पर मिलने वाली बड़ी-बड़ी कन्दराएं हैं, जो विभिन्न नामों से पुकारी जाती हैं, जैसे मायरा की गुफा, मचीन की गुफा, जावर की गुफा आदि। पहाड़ों के शिखरों पर स्थित ये कंदराएं ही प्रताप के सैन्य दलों के गुप्त निवास का काम करती थीं, जिनमें 200 से 500 व्यक्ति एक साथ रह सकते थे और जिनसे निकल कर एवं नीचे उतर कर वे मुगल सेना पर आकस्मिक धावा बोलते थे। उनका पीछा करना एवं उनकी टोह पाना शत्रु सेना के लिये कठिन था। इन्हीं कंदराओं में राजकीय धन, शस्त्रास्त्रों आदि के भंडार सुरक्षित रहते थे। आपातकाल में ये कंदराएं स्त्रियों एवं बाल-बच्चों के लिये निवास का काम करती थीं। विशेष बात यह है कि लगभग सभी कंदराओं में वर्ष भर जल बहता रहता है। अतः ये कन्दराएं आत्मनिर्भर थीं।

प्रताप ने सामरिक आधार पर जो आर्थिक प्रबंध किया, उससे प्रताप को कभी भी भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा हो, ऐसा नहीं लगता। जिस भांति वह निरंतर मुगल सेना का सफलतापूर्वक सामना करता रहा और अंत में जिस प्रकार उसने तेजी से संपूर्ण मेवाड़ विजय कर लिया, उससे यही प्रकट होता है। मुगल सेना, मुगल थानों और काफिलों की लूट-पाट और अजमेर, मालवा और गुजरात के इलाकों में समय-समय पर आक्रमण करके धन प्राप्त करना– उन दिनों में प्रताप के लिये आय के अतिरिक्त साधन थे।

अतएव राणा प्रताप को पहाड़ों एवं वनों में निरंतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागने वाले, घासफूस की झोंपड़ी में रहने वाले तथा अन्न और रोटी के लिये मोहताज रहने वाले भगौड़े सेनापति के रूप में चित्रित करना सर्वथा गलत एवं बेबुनियाद है और ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत है

महाराणा की अद्भुत सफलता के कारण

अपने साधन सम्पन्न शत्रु के विरुद्ध राणा प्रताप की सफलता और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा निस्संदेह ही इतिहास की एक अनूठी एवं अतुलनीय घटना है। समूचे घटनाक्रम पर विचार करने से राणा प्रताप की सफलता एवं विजय के कई कारण स्पष्ट होते हैं-

(1) राणा प्रताप का उच्च नैतिक चरित्र, दृढ़-मनोबल, अटूट आत्मविश्वास एवं अटल निश्चय; उसके उच्च आदर्श और नीतियां और अपने उदेश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उसका सर्वस्व त्याग एवं सम्पूर्ण समर्पण।

(2) अरावली पर्वतमाला का दुर्गम भू-क्षेत्र, जिसने प्रताप के लिये अविजेय प्राकृतिक दुर्ग का काम किया और जिसमें बहुतायत से उपलब्ध पानी, अन्न और फलों ने जन-जीवन को सुरक्षित रखा।

(3) राणा प्रताप की प्रशासनिक कुशलता, जिसके कारण वह संकटकाल में दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में अपने प्रंशासन के सभी अंगों को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रख सका और आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करता रहा।

(4) राणा प्रताप की दूरदर्शितापूर्ण रणनीति एवं कूटनीति, उसका चतुर तालमेल तथा दक्ष सैन्य संगठन एवं संचालन, जिनके कारण वह विशाल सेना के आक्रमणों एवं मुगल शक्ति के तमाम प्रकार के दबावों, धमकियों एवं कूटनीतिक चालों का सामना कर सका तथ अपनी सेना की अल्प संख्या और सीमित साधनों के बावजूद मुगल शक्ति को परास्त करने में उसके नेतृत्व कर सका।

(5) मुगल बादशाह को अपने सम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रधानतः बिहार एवं बंगाल तथा उत्तर-पश्चिमी सीमांत भाग में विद्रोहों एवं उपद्रवों को दबाने के लिये निरंतर अपनी सेनाओं का उपयोग करना पड़ा। इन कठिनाइयों के कारण अकबर को बराबर मेवाड़ से सेनाएं वापस बुलानी पड़ी। इसके कारण प्रताप को राहत मिलती रही और अपनी सैन्यशक्ति को पुनर्व्यवस्थित करने के लिये समय मिलता रहा।

स्वर्गवास से पूर्व सफलताएं

1588 ई. के अंत तक चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ के किलों तथा अजमेर को उनको जोड़ने वाले अंतर्वर्ती क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रायः सारे मेवाड़ प्रदेश को वापस ले लेने के बाद प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम आठ वर्ष शांतिपूर्वक चावंड में राज्य करते हुए बिताये। चित्तौड़गढ़ एवं मांडलगढ़ पर अधिकार करने का विचार छोड़ रखा। इसके कारण थे:- 1.) वे अजमेर के निकट और मालवा की ओर जाने वाले मार्ग में स्थित थे 2.) इन किलों को मुगलों से छीनने के लिये विशेष बड़ी तोपें और बड़ी सुसज्जित सेना की आवश्यकता होती तथा अकबर के लिये इस प्रकार की कार्यवाही सीधी चुनौती होती जिससे प्रताप द्वारा वांछित शांति और अनाक्रमण की स्थिति का बना रहना संभव नहीं होता। 3.) इन किलों के विजय के लिये तथा जीतने के बाद उनकी रक्षा के लिये उसके लिये बड़े धन का व्यय और बड़ी संख्या में सैनिकों का बलिदान जरूरी होता, जो प्रताप नहीं चाहता था। 4.) उसने अपने पिता द्वारा शासित मेवाड़ का अधिकांश प्रदेश हस्तगत कर लिया था और वह मेवाड़ की स्वतंत्रता और अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु अनिवार्य भावी युद्ध के लिये अपनी स्थिति को अधिकाधिक सुदृढ़ करना चाहता था। इसलिये वह इस दुस्साहसपूर्ण कार्यवाही से बचा रहा। प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में चावंड को व्यवस्थित राजधानी का स्वरूप प्रदान करने, उदयपुर नगर को बसाने, पर्वतीय इलाके के भीतर और बाहर प्रशासनिक एवं सैनिक व्यवस्था में सुधार करने और उनको अधिक सुदृढ़ बनाने तथा राज्य के लोगों की समृद्धि के लिये उत्पादन, उद्योग-धंधों और व्यापार की अभिवृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया।

19 जनवरी,1597 ई. को इस अप्रतिम योद्धा ने 57 वर्ष की आयु में चावंड के सीधे सादे राजमहलों में अंतिम सांस ली। ऐसा माना जाता है कि बाघ का शिकार करते समय एक बड़े धनुष की प्रत्यंचा खींचने के प्रयत्न में प्रताप के शरीर को ऐसा झटका लगा कि उसकी आंतें आहत हो गईं, जिससे कुछ दिन पीड़ित रहने के बाद उसका देहान्त हो गया। चावंड से ढ़ाई किलोमीटर दूर बंडोली गांव के निकट बहने वाले नाले के किनारे उसका दाह-संस्कार किया गया, जहां उसकी स्मारक-छतरी विद्यमान है। स्मारक-स्थल पर अब एक तालाब बांध दिया गया है और पुराने स्मारक का जीर्णोद्धार करके एक नई छतरी बना दी गई है।

राणा प्रताप की मृत्यु से मेवाड़ के लोग शोकसंतप्त हो गये। मेवाड़ के बाहर के प्रदेशों में भी इस उत्कृष्ट मानव के दिवंगत होने पर लोगों ने शोक प्रकट किया। कहा जाता है कि लाहोर में जब अकबर के पास प्रताप के देहावसान का समाचार पहुंचा तो वह भी एक बार अपने अदम्य प्रतिद्वंदी की मृत्यु पर उदास हो गया और शोक प्रकट किये बिना नहीं रह सका।

1. प्रताप व इतिहासकार

भारतीय इतिहास के विख्यात स्वातन्त्र्य योद्धा महाराणा प्रताप का ऐतिहासिक मूल्यांकन इतिहासकारों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है, जिससे प्रताप के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत सामने आये हैं। एक बात में लगभग सभी इतिहासकार एक मत हैं कि महाराणा प्रताप इतिहास में अटल प्रतिज्ञापालक, अदम्य स्वाभिमानी एवं स्वतंत्रता-प्रेमी तथा महान त्यागी एवं बलिदानी योद्धा हो गया है।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा का मत है- "यह स्वीकार्य है कि अकबर एक महान् और उदारचेता सम्राट् था, जिसने देश को राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकताबद्ध करने की आदर्श नीति का अनुसरण किया। प्रताप का एकता से अलग रहना उस महान् कार्य पर एक प्रकार का बड़ा आघात था। उस सीमा तक प्रताप की नीति उसके देश के लिए हानिकारक थी। यदि उस समय प्रताप मुगल-व्यवस्था में शरीक हो जाता तो वह अपने देश को विनाश और बरबादी से बचा सकता था। उसका दीर्घकालीन संघर्ष उस दिन को आने से नहीं रोक सका जबकि उसके पुत्र अमरसिंह के काल में मेवाड़ मुगल साम्राज्य के अधीन हो गया। यदि मेवाड़ को वही अवसर पहले मिला होता तो उसका पिछड़ापन मिट गया होता।" आश्चर्य की बात यह है कि उपरोक्त मत प्रकट करने के साथ-साथ डॉ. शर्मा यह भी कहते हैं- "किन्तु प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास में स्वतंत्रता के एक महान् सैनिक के रुप में अमर रहेगा जिसने संघर्ष के इस नैतिक स्वरूप पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और भौतिक लाभ अथवा हानि की चिन्ता किए बिना लड़ता रहा। उसने हिन्दुओं के गौरव को कायम रखा। जब तक यह जाति जीवित है, वह इस बात के लिये चिरस्मरणीय रहेगा कि उसने एक विदेशी के विरुद्ध संघर्ष में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। स्वन्त्रता के एक महान् योद्धा के रूप में आज भी वह करोड़ों लोगों के लिये आदर्श व आशा का स्रोत बना हुआ है।"

डॉ. गोपीनाथ शर्मा के इन परस्पर विरोधी तर्कों से पूर्ण मत के अनुयायी कई और विद्वान् भी हैं। डॉ. रघुबीरसिंह के मतानुसार "स्वाधीन भारत के इस नये वातावरण में तत्कालीन ऐतिहासिक धारणाओं का राष्टीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की संकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति में हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण अभाव स्पष्ट हो जाता है।" इसी बात को बदलकर श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट इस भांति कहते हैं- "आदर्श चाहे कितना संकीर्ण हो, उसमें आस्था रखकर उसके लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले कभी नहीं मरते।" डॉ. श्रीवास्तव कहते हैं कि भूतकाल में वर्तमान युग की धारणाओं और विचारों को पढ़ने से यह भ्रांति उत्पन्न हुई है। उनका कहना है कि प्रताप के तथाकथित असहयोग के लिए प्रताप की अपेक्षा अकबर अधिक दोषी था जो प्रताप के मुगल दरबार में हाजिरी देने की बात पर अधिक अडिग रहा। अकबर की हठ के कारण युद्ध चलता रहा और अमरसिंह के काल में जहांगीर द्वारा मेवाड़ के राणा को मुगल दरबार में हाजिर होने से मुक्त रखने की शर्त स्वीकार करने पर ही शांति हुई। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के तर्क को भ्रमपूर्ण बताते हुए उन्होंने कहा है कि 1615 ई. में अमरसिंह को जहांगीर से सम्मानपूर्ण सन्धि की जो शर्तें मिली, वे प्रताप के 22 वर्षों और उसके बाद अमरसिंह के 18 वर्षों के लम्बे संघर्ष के कारण ही मिली। यह सम्मान आमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, डूंगरपुर आदि राज्यों को नहीं मिला। डॉ. श्रीवास्तव ने यह भी लिखा है कि प्रताप के पक्ष के सम्बन्ध में आधुनिक इतिहासकारों की समझ सही नहीं है। वह 1572-76 ई. के दौरान इस शर्त पर अधीनता स्वीकार करने को तैयार था कि उसको मुगल दरबार में हाजिरी देने से मुक्त रखा जाये। श्रीवास्तव कहते हैं- "प्रताप को अकबर महान् के

विरुद्ध सफल संघर्ष के कारण भारतवर्ष की प्रधान तात्विक भावना, का प्रतीक माना गया है, जो सर्वथा उचित है। यह भावना देश के परम्परागत गौरव की रक्षा करती है और इस गौरव पर आंच लाने वाली हर बात के विरुद्ध संघर्ष करती है।" किन्तु इतना लिखने के पश्चात् डॉ. श्रीवास्तव यह भी कहते हैं कि प्रताप में अकबर के समान रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता और राजनैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव था। महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में प्रकट किये गये विभिन्न इतिहासकारों के मत पर विचार करने तथा प्रताप के आदर्श और सिद्धान्तों के संबंध में चर्चा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम तत्कालीन परिस्थितियों तथा प्रचलित धारणाओं एवं सामाजिक वातावरण पर गौर करें जो उस समय व्याप्त थे। विशेष बात यह है कि भारत में धार्मिक कट्टरता और अत्याचार का काल इस्लाम के प्रवेश से प्रारम्भ होता है, जो भारत में प्रविष्ट होने के समय तक अपने क्रांतिकारी स्वरूप को छोड़कर विकृतिपूर्ण बन चुका था। इस्लाम के आगमन के पूर्व और बाद में भी मूल भारतीय सांस्कृतिक परंपरा उदारता, सहिष्णुता और समन्वय की रही।

2. अकबर तथा इस्लाम में कट्टरता

इन परिस्थितियों में निस्सन्देह ही मुगल साम्राज्य के निर्माता अकबर को इस बात का श्रेय जाता है कि उसने अपनी दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझबूझ और साहस से नवीन नीतियों का सूत्रपात किया जो भारतीय भावना और परम्परा के अनुरूप थी। यह भी हकीकत है कि उस (13 वीं से 16 वीं ई.शती के मध्य) काल में भारत जिस धार्मिक और सामाजिक क्रांति की हलचल से गुजर रहा था अकबर की धार्मिक नीतियों के निर्माण पर भारी असर पड़ा और उसके कारण कट्टरपंथियों के विरुद्ध संघर्ष में उसका अकबर को बड़ा बल मिला। अकबर के उदारतापूर्ण दृष्टिकोण और व्यवहार से धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं समन्वय की प्रवृतियों को बड़ा बल दिया। अकबर की इस नीति ने साम्राज्यी सत्ता को वह उदारवादी स्वरूप प्रदान किया, जो उसके पूर्व की सल्तनतों को प्राप्त नहीं हुआ था, जिनकी सत्ता भारत पर विदेशी जुए के समान ही रही।

भारत में अकबर ने अपने सम्राज्य का प्रारम्भ स्वयं युद्धबन्दी हेमू का वध करके और "गाजी" की उपाधि धारण करके शुरू किया। जानी मुबारक अपने उदारतावादी विचारों के कारण अत्याचार का शिकार हुआ। मीर हब्शी, खिज्र खाँ, मिर्जा मुकीम और याकूब जैसे उदारतावादी अथवा शिया धर्म को मानने वाले लोग मार डाले गये। बदायुनी लिखता है कि न केवल गैरमुसलमानों बल्कि सभी विरोधी मतावलंबियों को भी ढूंढ कर मार डालने का रिवाज था। अब्दुलनबी ने काजी की शिकायत पर एक ब्राह्मण का इस्लाम की निन्दा करने के दोष के कारण वध कर दिया। लाहोर के गवर्नर हुसेन खाँ ने, जो 1576 ई. में मरा, हिन्दुओं के लिये अपनी बाहों पर विभिन्न रंगों के पेबेन्द लगाने, घोड़ों पर सवारी नहीं करने देने जैसे अपमानजनक नियम लागू कर रखे थे। अबुलफजल और बदायुनी आदि समकालीन लेखक इस बात के साक्षी हैं कि 1593 ई. तक कई हिन्दू बलात् मुसलमान बनाये गये थे। 1572-73 ई. में जब कांगड़ा विजय किया गया तो नगरकोट के मन्दिर की देवी का छत्र तीरों से छेद दिया गया, 200 गायों का वध किया गया और उनका रक्त मन्दिर की दीवारों पर छिड़का गया।

3. प्रताप की धार्मिक उदारता

मेवाड़ के राणा इस बात में विश्वास रखते थे कि मेवाड़ राज्य के असली शासक एकलिंग महादेव हैं। राणा उनके दीवान हैं और उनके लिये राज्य करते हैं। मेवाड़ राज्य के इस सैद्धान्तिक धार्मिक स्वरूप का राज्य की व्यावहारिक धर्म-समभाव नीति पर कोई संकीर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। यही कारण था कि प्रताप को हकीम खां सूर का सहयोग और जालोर के ताजखां की मित्रता

मिली। प्रताप द्वारा अब्दुल रहीम खानखाना की स्त्रियों एवं बच्चों की पूरी हिफाज़त और सम्मान के साथ वापस लौटाने की बात इतिहास प्रसिद्ध है। प्रताप के दरबार में नासिरदी जैसा उच्च कोटि का चित्रकार फला-फूला था। प्रताप अथवा उसके अनुयायियों का एक भी ऐसा कृत्य इतिहास में नहीं मिलता,जिससे धर्मान्धता और कट्टरता प्रकट होती हो।

अकबर की मृत्यु के बाद ही असहिष्णुता और कट्टरता ने पुनः सिर उठाया और औरंगजेब के काल तक पुनः भीषण स्थिति पैदा हो गई। डॉ श्रीवास्तव लिखते हैं- "यदि अकबर की धर्म-समभाव और सभी समुदायों को समानता प्रदान करने की नीति आगे सम्पूर्ण मुगलकाल में कायम रहती तो आने वाली पीढ़ी अवश्य प्रताप को दोषी ठहराती। किन्तु जहांगीर ने आधे मन से उसका पालन किया। शाहजहां ने अकबर से पहिले की स्थिति की ओर लौटने की प्रवृत्ति दिखाई और औरंगजेब ने तो अकबर की नीति को समूल उखाड़ कर कट्टर पंथी इस्लामिक राज्य कायम कर दिया। मनुष्य जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु होती है उसकी आत्मा की स्वतन्त्रता, उसके विश्वासों और विचारों की स्वतन्त्रता। उस पर जब प्रहार होता है तो वीर और साहसी लोग प्राणार्पण करके भी मुकाबला करते हैं और जो लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं,वे पराधीन हो जाते हैं। प्रताप ने जो निर्णय लिया और निश्चय किया उसको अन्तिम दम तक निभाया। इतिहास साक्षी है कि प्रताप का निर्णय गलत नहीं था।

4. महाराणा व मुगल साम्राज्यवाद

मुगल भी तुर्कों और पठानो की भांति विदेशी जाति के लोग थे, जिन्होंने आक्रमण करके उत्तरी एवं मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। अकबर ने पठान शक्ति के ह्रास, पठानों व हिन्दुओं के वैमनस्य और राजपूत एवं अन्य हिन्दू शक्तियों के ग्रह-कलह का अपनी दूरदर्शिता एवं कूटनीतिज्ञता से लाभ उठाकर मुगल शक्ति को बलवान बना लिया था। प्रताप अन्य राजपूत राजाओं की भांति मुगलों की दासता स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। राजस्थान के राजपूत और प्रधानतः मेवाड़ के राजपूत विदेशी सत्ता के साथ निरंतर संघर्ष करते रहे थे और विदेशी शासन के अस्थायी स्वरूप और शासन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही करते रहे थे। प्रताप को अपने वंश के गौरवपूर्ण इतिहास का अहसास था और महाराणा कुम्भा और सांगा जैसे पूर्वजों की परम्परा और आदर्श उसके सम्मुख थे। मेवाड़ को सांगा और प्रताप के बीच के काल में तथा उससे पूर्व अलाउद्दीन खिलजी के समय विदेशी जाति के प्रभुत्व का संकट देखना पड़ा था, मेवाड़ के शासक यां तो लड़ते रहे या उन्होंने सम्मानजनक सुलह आदि अवश्य करली, किन्तु दासता स्वीकार नहीं की।महाराणा ने सुलह या सम्मानजनक संधि का सदा प्रयत्न किया।यही कारण था कि प्रताप ने अकबर द्वारा प्रेषित चार-चार दूतमंडलों का पूरा स्वागत किया और तीसरे राजदूतमंडल के साथ प्रताप ने अपने कुंवर अमरसिंह के साथ मेवाड़ का दूतमंडल भी आगरा भेजा। किन्तु अकबर प्रताप को भी उसी स्थिति में अधीन बनाना चाहता था, जिसमें कि अन्य राजपूत राजा थे। उससे स्थिति का अर्थ था मेवाड़ का महाराणा मुगल दरबार में हाजिर होकर सिजदा करे, मनसबदार बनकर मुगल साम्राज्य के विस्तार एवं दृढ़ता के लिये अपनी शक्ति एवं सेनाओं का उपयोग करे और मेवाड़ को मुगल सम्राज्य की जागीर भूमि के रूप में स्वीकार करे।

5. अकबर के साम्राज्य का स्वरूप- 'संघीय नहीं'

फारसी तवारीखों, राजस्थान के प्राचीन साहित्य, तत्कालीन राजपूत धारणाओं एवं परम्पराओं तथा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने से डॉ. त्रिपाठी का यह मत सही प्रतीत नहीं होता है कि अन्य राजपूत राजाओं ने ईमानदारी, विश्वास और विवेक से तथाकथित "मुगल साम्राज्यी संघ" में शरीक होना स्वीकार किया। डॉ. त्रिपाठी Mughal

Imperial Confederaton के स्वरूप को कितना ही महत्त्व दें वह भारतीय परम्पराओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप "राज्य संघ" नहीं था। अकबर के साम्राज्य का आधार केन्द्रीय निरंकुश राज्य सत्ता, स्वेच्छाचारी शासन और उसमें सम्मिलित विभिन्न राज्यों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता का पूर्ण समर्पण था। बीकानेर राजघराने से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक महत्व का समकालीन ग्रंथ 'दलपतविलास' मुगल दरबार में सेवारत राजपूत राजाओं की असहाय एवं अपमानजनक स्थिति की वास्तविकता को प्रकट करता है। लगभग सभी राजपूत राजा मनसबदार बनाकर अपनी सेनाओं सहित अपने राज्यों से दूर मुगल अभियानों में भेज दिये जाते थे। उनके राज्यों के भीतर और मुगल दरबार में निरंतर ऐसे षड़यन्त्र चलते रहते थे, जिससे राजपूत राज्यों की आन्तरिक स्वायत्तता नाम मात्र की रहती थी। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यों की घटनाएं यह भी प्रकट करती हैं कि जब कोई भी राजपूत राजा थोड़ा बहुत स्वाभिमानी रुख अपनाने की चेष्टा करता, तो उसके लिये अपना राज्य खोने का खतरा पैदा हो जाता था। यह कथन सही नहीं है कि राजपूताने के राजाओं ने मुगल अधीनता विश्वास एवं खुशी से स्वीकार की, अपितु आंतरिक गृहकलह, शक्तिहीनता और राज्य पर अपने अधिकार को बचाने की दृष्टि से राजपूत राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार की। अकबर ने भी उनकी स्थिति का लाभ उठाकर अपनी भेदनीति एवं सैन्य-शक्ति से उन्हें झुका दिया। राजपूतों के ग्रह-कलह एवं अकबर की प्रलोभन नीति के कारण राजपूत सरदारों तथा राजाओं में मुगल दरबार में जाने की होड़ लग गई।

अकबर ने राजपूत भावनाओं तथा उनके स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए अपनी राजपूत कूटनीति निर्धारित की। एक ओर अकबर के अधीन राजपूत राजाओं के पास उनके राज्य रहने दिये और उनके धार्मिक विश्वासों का आदर किया, दूसरी ओर उनमें दरबारी प्रलोभनों के लिये तथा बादशाह का कृपा-पात्र बनने के लिए गौरवविहीन प्रतिस्पर्द्धा पैदा की। अंत में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अकबर की कुटिल राजनीति ने राजपूत संघ को छिन्न भिन्न कर दिया, राजपूत जाति को पंगु व स्वाभिमान शून्य बना दिया। बस एक प्रताप ही बच पाया।

6. क्षत्रिय धर्म की रक्षा हेतु संघर्ष

राजस्थानी साहित्य ने महाराणा प्रताप को एक आदर्शवीर के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने प्रताप को क्षत्रियत्व के रक्षक के रूप में देखा है। भारत की क्षत्रिय जाति की सदा से कुछ आदर्श परम्पराएं रहीं, जिनकी राजस्थान के राजपूतों में मान्यता रही और वे उनका पालन करते रहे। वंश गौरव एवं आत्मसम्मान की रक्षा, विदेशी दासता के विरुद्ध एकता और संघर्ष, स्वतन्त्रता-संघर्ष में सर्वस्व त्याग और बलिदान, प्रतिज्ञा-पालन, चारित्रिक-उच्चता, शरणागत को अभयदान आदि बातें क्षत्रियत्व के सिद्धान्त की मुख्य आधार थीं।

प्रताप के समकालीन राजस्थानी कवियों ने प्रताप को सच्चा क्षत्रिय और क्षात्र-धर्म का रक्षक माना है। जबकि अकबराधीन राजपूत राजाओं को उन्होंने अपने क्षुद्र स्वार्थों, नैतिक पतन और विलासिता के कारण पराधीनता स्वीकार करने के लिये कोसा है। डॉ. त्रिपाठी, डॉ. शर्मा, डॉ. रघुवीरसिंह आदि का यह मत भ्रामक है कि प्रताप के आदर्शों में मात्र सिसोदिया लोगों के गौरव की रक्षा की ही भावना रही। उनका यह मत तत्कालीन विचारकों के मत से मेल नहीं खाता, जिन्होंने प्रताप के संघर्ष को न केवल मेवाड़ की स्वतन्त्रता और सिसोदिया वंश की आन-बान की रक्षा का संघर्ष माना है बल्कि प्रताप को विदेशी मुगलों के खिलाफ देश की रक्षा के लिये लड़ने वाले, क्षात्र धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष करने वाले तथा स्वाभिमान और स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने वाले योद्धा के रूप में देखा है। यही कारण है कि एक ओर ग्वालियर का तंवर राजा रामसाह और उसके परिजन तथा पठान हकीम खाँ सूर जैसे योद्धा प्रताप के पक्ष में युद्ध करते हुए मारे गये, विभिन्न खांपों के राजपूत प्रताप

की सेना में एकत्रित हुए, सारे राजस्थान से स्वतन्त्रताप्रिय राजपूत, चारण आदि मेवाड़ में आए है और इतना ही नहीं, प्रताप के इस संघर्ष में मध्यकालीन युद्धों में सामान्यतः निष्क्रिय और उदास रहने वाली जनता तमाम प्रकार का त्याग करके प्रताप को अटूट और अदम्य वफादारी के साथ सहयोग प्रदान करती है, तो दूसरी ओर अकबर के अधीन हो गये राजपूतों एवं अन्य लोगों में भी प्रताप के संघर्ष के प्रति हमदर्दी और प्रशंसा की भावना मिलती है।

मुगल-विरोधी दीर्घकालीन संघर्ष में प्रताप ने अन्त में जो सफलता प्राप्त की, वह भी इतिहास का एक अनूठा उदाहरण है। अकबर की सम्पूर्ण शक्ति और कूटनीति प्रताप को कुचलने में असफल रही और अन्ततः हल्दीघाटी-युद्ध के दस वर्ष बाद 1586 ई. में अकबर ने निराश होकर मेवाड़ को स्वतन्त्र छोड़ दिया।

7. प्रताप और अकबर

हम आज आधुनिक राष्टीय प्रजातन्त्रीय युग में रह रहे हैं। आज से लगभग चार सौ वर्ष पुरानी घटनाओं और कार्य-कलापों में हम वर्तमान युग की मान्यताओं के दर्शन नहीं कर सकते और यदि ऐसा करते हैं तो हम इतिहास के साथ न्याय नहीं करेंगे। डॉ. रघुबीरसिंह जब यह कहते हैं कि राष्टीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की संकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मकता की नीति में रचनात्मकता का अभाव दृष्टिगत होता है, अथवा जब डॉ..श्रीवास्तव यह कहते हैं कि अकबर के मुकाबले में *प्रताप में रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता और राजनैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव था,* तो उनकी यह मान्यता ऐतिहासिक सन्दर्भ को भुला देती है। प्रताप के कार्यों को युग के सन्दर्भ में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने एक विशिष्ट आदर्श, प्रयोजन और उद्देश्य को लेकर संघर्ष किया। वह आदर्श केवल मेवाड़ तथा सिसोदिया वंश की सीमाओं में बंधने वाला आदर्श नहीं था अपितु उसका स्वरूप व्यापक था और उसमें मूल मानवीय भावनाओं और उच्च नैतिक मूल्यों का समावेश था। प्रताप भूतकाल की ऐतिहासिक घटनाओं से अवगत था और उस काल का राजनैतिक वातावरण भी उसके सन्मुख स्पष्ट था। वह अकबर के साथ समझौते की सीमा तक जाना चाहता था, किन्तु भविष्य भी उसके सन्मुख झांक रहा था। वह उदारता, सहिष्णुता, नैतिकता और चारित्रिक उच्चता की दृष्टि से आदर्श व्यक्ति था। इन गुणों में वह अकबर से बढ़ा-चढ़ा था। उस काल में यदि बादशाह अकबर विशाल सल्तनत, सैनिक शक्ति और वैभवशालिता (Temporal power) में अपना सानी नहीं रखता था तो चरित्र की उज्ज्वलता और नैतिक आदर्शों की उच्चता (Spiritval qualitier) में राणा प्रताप के समकक्ष कोई नहीं था। अकबर उदारता एवं सहिष्णुता के वातावरण के निर्माण की दृष्टि से चेष्टा कर रहा था, किन्तु अकबर जिस घेरे में बन्द था वहां क्या ये मूल्य स्थायी रह सकते थे। प्रताप का विरोध नकारात्मक नहीं था बल्कि उसका संघर्ष स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और आत्मगौरव के मूल्यों की रक्षार्थ रचनात्मक संघर्ष था। उसने अकबर की उदारता और सहिष्णुता की नीतियों पर कभी आघात नहीं किया और उसने स्वयं कभी अनुदार और कट्टर व्यक्ति की भांति व्यवहार नहीं किया। उसका संघर्ष रक्षात्मक था, उन बातों के लिये, जो अकबर की निरंकुश सत्ता स्वीकार नहीं करना चाहती थी। अकबर की निरंकुश सत्ता में भावी विघटन और कट्टरता के बीज छिपे हुए थे, जो आगे जाकर पुनः फूटे। भारतवर्ष की एकता सदैव अनेकता में एकता (Unity in Diversity) की मान्यता में रही। अकबर ने राजपूताने के राजाओं से जो संधि की, उसमें उसकी यह मान्यता नहीं रही। उसने राजपूताने में फूट के बीज बोये, राज्यों को कमजोर किया और उनके परंपरागत गौरव एवं विशिष्टताओं पर आघात किया, अन्यथा अकबर और प्रताप के बीच सम्मानजनक संधि असम्भव नहीं होती।

प्रताप की प्रशासनिक योग्यता

1. महाराणा के प्रशासनिक गुणों की उपेक्षा

इतिहास लेखकों द्वारा राणा प्रताप के प्रशासनिक कोशल, सूझ-बूझ एवं दूरदर्शिता पर गहराई से विचार करना महत्वपूर्ण नहीं समझा गया है। जब एक बार एक पक्षीय दृष्टिकोण अपनाकर इतिहासकार यह मंतव्य प्रकट कर देते हैं कि "राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की संकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति में हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण अभाव था" अथवा यह कि "आदर्श ऊंचा न हो तो प्रताप की जैसी वीरता और दृढ़ता भी फलदायक नहीं हो सकती" अथवा यह कि "यद्यपि प्रताप एक महान् योद्धा था और जिसकी उस युग को आवश्यकता थी, फिर भी प्रताप ने अकबर की महत्ती नीति का विरोध करके भूल की। प्रताप की नीति देश के लिये हानिकारक सिद्ध हुई और उससे उसके देश मेवाड़ का विनाश और बरबादी हुई," अथवा यह कि यद्यपि प्रताप के राज्य की भूमि, भौतिक साधन और जनशक्ति अकबर से अत्यन्त कम थी किन्तु वह साहस, वीरता और चरित्र की दृढ़ता, देशभक्ति, सैनिक-प्रतिभा और नेतृत्व के गुणों में अकबर के बराबर था, फिर भी प्रताप में रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता, राजनैतिक अन्तर्दृष्टिऔर राजनीतिज्ञता का अभाव था, तो स्वाभाविक रूप से उन्होंने यह भी निर्णय कर लिया कि राणा प्रताप एक जुझारू लड़ाका,अदम्य वीर, अटल प्रतिज्ञापालक और अपनी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाला अटूट योद्धा अवश्य था, किन्तु शासकीय गुणों का उसमें सर्वथा अभाव रहा।

2. सत्य तथा वास्तविकता

यदि हम सत्य का सहारा लेवें और तथ्यों को सामने रखें तो पाएंगे कि-

(क) महाराणा प्रताप के विरुद्ध दस वर्षों के काल में अकबर द्वारा संपूर्ण शक्ति लगाकर प्रताप को पकड़ने और उसकी शक्ति को नष्ट करने के बार-बार प्रयास किये गये, यहां तक कि मेवाड़ के घने पर्वतीय एवं वनीय भाग में अनुभवी राजपूत योद्धाओं सहित मुगल सेना भेजी गई, किन्तु हर बार उसे मुंह की खानी पड़ी।

प्रताप ने मेवाड़ के पर्वतीय भू-भाग की किलेबंदी, पर्वतों में प्रवेश के सभी मार्गों की नाकेबंदी तथा पहाड़ों में सुरक्षा एवं आक्रमण सम्बन्धी सैनय- व्यवस्था इतनी दक्षता के साथ की, कि जब भी मुगल सेना ने पर्वतीय भाग में प्रवेश करके आक्रमण किये उसको अंत में असफल होने के साथ सदैव जन-धन की हानि उठानी पड़ी। परिणामस्वरूप अकबर ने हार मानकर 1586 ई. में मेवाड़ को स्वतंत्र छोड़ दिया।

(ख) जब अकबर ने मेवाड़ विरोधी सैनिक अभियान बंद कर दिया तब प्रताप ने अपनी सैनिक कार्यवाही द्वारा कुछ ही महिनों में मेवाड़ राज्य के मैदानी भाग से मुगल थाने उठा दिये एवं चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ के सिवाय मेवाड़ राज्य का मुगल विजित अधिकांश मैदानी भू-भाग वापस जीत लिया और पुनः अपना शासन-प्रबंध कायम कर दिया।

(ग) प्रताप ने दीर्घकालीन युद्ध-काल के दौरान घने पर्वतीय भू-भाग छप्पन क्षेत्र में चावंड कस्बे को स्थायी राजधानी बनाया, जहां से उसने सैनिक अभियान संचालित किये, अपने शासन का प्रबंध किया, वहां भवन निर्माण कराये और वहां उसके दरबार में साहित्य, कला एवं संस्कृति की उन्नति को प्रोत्साहन मिला।

ये तथ्य इस बात को दर्शाते हैं कि राणा प्रताप संघर्ष-काल में केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागता नहीं रहा और केवल लड़ता ही नहीं रहा, जैसा कि सामान्यतः लिखा गया है, अपितु दीर्घकालीन संघर्ष-काल में प्रताप के प्रतिभाशाली , योग्य एवं कुशल शासक

होने के गुण प्रकट हुए, जिसने संकटकाल में अपने राज्य-प्रशासन को स्थायी एवं सुदृढ़ स्वरूप प्रदान किया।

3. संकट के समय योग्य शासन नीति

महाराणा प्रताप के राज्यारोहण के दो वर्ष पूर्व 1570 ई. में अकबर के नागोर दरबार तक राजपूताना की लगभग सभी बड़ी शक्तियां अकबर के अधीन हो गई थीं। गुजरात विजय के बाद अकबर ने मेवाड़ के दक्षिणी भाग में स्थित शेष छोटी राजपूत शक्तियों को विजय करके मेवाड़ के पर्वतीय भाग को घेर लेने का निश्चय किया ताकि यदि प्रताप मुगल अधीनता स्वीकार न करे तो मुगल सुनाएं चारों ओर से मेवाड़ के पर्वतीय भाग में प्रविष्ट होकर प्रताप को पराजित कर सके। अकबर एक सीमा तक मेवाड़ को अकेला कर घेरने में अवश्य सफल हुआ, किन्तु उसकी प्रबल सैन्य शक्ति और कूटनीति प्रताप को पराजित करने और झुकाने में सफल नहीं हुई।

दूर दृष्टि रखते हुए मुगल आक्रमणों से उत्पन्न होने वाले संकट से निपटने के लिए महाराणा प्रताप ने सामरिक आधार पर एक संकटकालीन प्रशासनिक योजना बनाई। यह प्रताप की अपनी मौलिक उपलब्धि थी। प्रताप ने प्रशासन के पुराने ढाँचे को बदल कर नवीन आवश्यकताओं के अनुसार एक ऐसे नवीन ढाँचे का निर्माण किया, जिसके द्वारा वह अपनी सीमित जनशक्ति और साधनों के बल पर मुगल आक्रमणों से मेवाड़ की रक्षा कर सका। प्रताप ने एक लचीले एवं विकेन्द्रित प्रशासनिक प्रबंध को जन्म दिया, जिसमें संकटकाल में समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना आसान रहा। 1578-79 में कुम्भलगढ़-पतन के बाद के दौरान उसका केन्द्रीय प्रशासनिक स्थल राजधानी प्रधानतः भोमट प्रदेश के घने दुर्गम भाग में स्थित आवरगढ़ में रहा। किन्तु केन्द्रीय प्रशासन की व्यवस्था सदैव तत्काल स्थानांतरित किए जाने की स्थिति में रखी गई। मुगल सैन्य दल क निकट आने पर राजनधानी को तत्काल खाली करके अधिक घने वनीय भाग में ले जाया गया। राजपरिवार, सामंतों और अधिकारियों की स्त्रियों और बच्चों को उसके साथ सुरक्षित पहुँचाया जाता था। यही कारण है कि उस घने वनीय भाग में आज भी यत्र-तत्र छोटे-बड़े खंडहर दृष्टिगत होते हैं। 1579 ई. के लगभग चावंड में राजधानी कायम करने के बाद भी यह व्यवस्था चलती रही। शाहबाज खाँ के तीसरे आक्रमण (1579 ई.) और जगन्नाथ कछवाहा के आक्रमण (1584 ई.) के समय चावंड को इसी भांति खाली किया गया। इस प्रकार की व्यवस्थित एवं सुरक्षित कार्यवाहियाँ एक कुशल नेतृत्व ही कर सकता था यह प्रताप ने सिद्ध कर दिखाया।

दीर्घकालीन युद्ध की आवश्यकता के अनुसार पर्वतीय भाग को जिलों में विभाजित करके प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त किये गये, जिनको सैनिक एवं असैनिक दोनों कर्त्तव्यों के अधिकार दिये गये थे। उनको अपने क्षेत्र के आंतरिक प्रशासन और शत्रु के आकस्मिक आक्रमणों से निपटने के लिये तुरंत निर्णय लेने पड़ते थे। वे अपने क्षेत्र में सामरिक स्थलों एवं प्रवेशमार्गों के नाकों पर सैन्यदल रखने, गुप्त स्थानों, कंदराओं आदि में राजकीय धन-संपति, शस्त्रास्त्र आदि सुरक्षित रखने के लिये उत्तरदायी होते थे।

निस्संदेह ही अरावली पर्वतमाला में रहने वाली आदिवासी भील जाति ने प्रताप की अनेक समस्याओं को हल करने में बड़ा सहयोग दिया। राजपूत परिवारों के स्त्री-वच्चों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व इन लोगों ने इतनी खूबी से निभाया कि एक बार भी ऐसा अवसर नहीं आया जबकि कोई स्त्री-बच्चे मुगल सैनिकों के हाथों में पड़े हों। इस भांति रसद आदि लाने-ले जाने, संदेशवाहन और गुप्तचर विभाग के कार्य-संचालन में भील लोगों ने बड़ा सहयोग दिया। वे पहाड़ों के गुप्त और विकट मार्गों से परिचित थे और बिना थके मीलों

तक पहाड़ों की चढ़ाईयां पार कर लेते थे। किलकारी मारकर अथवा ढोल बजाकर संकेतों द्वारा वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक संदेश पहुँचा देते थे।

मुगल आक्रमणों के बावजूद प्रताप ने कृषि-पैदावार की ऐसी व्यवस्था रखी जिससे उसके हजारों सैनिक कभी भी खाद्य-सामग्री के अभाव में नहीं रहे। जब कभी मुगल सेना का अभियान होता, घाटियों में बसने वाले लोग बड़े पर्वतों के घने भागों में चले जाते जिनमें घुसना मुगलों के लिए सस्ती मौत को बुलावा देना होता था। यह प्रताप के प्रशासनिक कुशलता का ही परिणाम था कि 300 मील की परिधि वाले छोटे पर्वतीय घेरे में मुगल सेनाओं के अनवरत आक्रमण-प्रवाहों एवं विध्वंस के बीच भी उसका शासन जीवित रहा।

4. सैन्य प्रशासन में परिवर्तन

परंपरागत जागीरदारी प्रथा के अनुसार राज्य की ओर से जागीरदारों को राज्य की सैनिक सेवा की एवज में जागीरें दी जाती थीं। तदनुसार जागीरदार जागीरों की आय से अपने यहां निश्चित घुड़सवार और पैदल सिपाहियों की सेना का प्रबंध करते थे। जागीरदारों की सैनिक टुकड़ियों से मिलकर ही राज्य की प्रधान सेना का निर्माण होता था। यद्यपि पर्वतीय भाग में राणा प्रताप ने नये पट्टे देकर जागीरों की पुनर्व्यवस्था के प्रयास किये किन्तु पर्याप्त उपजाऊ भूमि के अभाव में पुरानी व्यवस्था का कारगर होना संभव नहीं था। अतएव प्रताप ने राज्य की केन्द्रीय सेना के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया, जिसने युद्ध-काल के दौरान प्रधान सेना का कार्य किया। ग्वालियर का राजा रामसाह तंवर, उसके पुत्र और उसके राजपूत सैनिक, हकीम खाँ सूर और उसके अफगान सैनिक, केन्द्रीय सेना के ही अंग रहे। इस भांति केन्द्रीय सेना का गठन किया गया।

प्रताप के सैन्य संगठन की दूसरी विशेषता थी, उसकी विकेन्द्रित व्यवस्था। मेवाड़ की सेना कई टुकड़ियों में विभाजित की जाकर देश के महत्वपूर्ण सामरिक स्थानों पर तैनात की गई। जैसा पूर्व में कहा गया है, प्रताप ने 300 मील की परिधि वाले मेवाड़ के पर्वतीय भू-भाग के चारों ओर के प्रवेश मार्गों के सभी नाकों पर अपनी दक्ष आक्रमणकारी सैन्य टुकड़ियां कायम कर रखी थीं। प्रत्येक टुकड़ी का एक सेनानायक होता था, जिसके मातहत चुनिंदा घुड़सवार और पैदल सिपाही तथा सहयोगी भील सैनिक होते थे। सभी सैन्य दल केन्द्रीय आदेशों के अनुसार कार्य करते थे। भील समुदाय की तीव्र संचार-व्यवस्था के माध्यम से वे कुछ ही घंटों में केन्द्रीय सेनाध्यक्ष को अपने क्षेत्र की नवीनतम गतिविधि की सूचना पहुंचा देते और आवश्यक आदेश प्राप्त कर लेते थे। इस भांति सम्पूर्ण पर्वतीय भू-भाग की विकेन्द्रित सैन्य व्यवस्था के बीच पूरा समन्वय एवं तालमेल रहता था। ये सैन्य टुकड़ियां मुगल सेना द्वारा पर्वतीय भाग में प्रवेश करने के समय ऊपरी पहाड़ी भाग से धावा मारकर उनका रास्ता रोकती, उनको हानि पहुंचाती और आगे बढ़ने की गति में अवरोध पैदा करती। मुगल सेना के बड़ी तादाद में होने पर वे ऊपरी पहाड़ों में पीछे हट कर आगे बढ़ती हुई मुगल सेना पर छुटपुट आक्रमण करके जन-धन की हानि पहुंचाती और आतंकित करती रहती थीं।

छापामार युद्ध-प्रणाली

हल्दीघाटी-युद्ध के बाद छापामार युद्ध-प्रणाली का उपयोग किया गया। इस प्रणाली के अनुसार मुगल सेना का सीधा मुकाबला नहीं किया जाता था। सैनिक टुकड़ी गुप्त स्थान से निकलकर तेजी के साथ मुगल थानों अथवा हमलावर सेनाओं पर यकायक हमला करती, मुगल सैनिकों को मारकर और रसद, शस्त्र आदि लूट कर तेजी के साथ वापस गायब हो जाती थी। प्रताप की छापामार युद्ध-प्रणाली से मुगल सेना सदा आतंकित रही। गोगूंदा से

जिस दुर्दशा के साथ मानसिंह मेवाड़ से लौटा, सर्वविदित है। मेवाड़ में मुगल थाने कभी भी सुरक्षित एवं स्थायी नहीं रहे। मुगल सेना का रसद-मार्ग सदैव असुरक्षित रहा। प्रताप ने "जमीन फूंको" नीति का अनुसरण किया। जिस भू-भाग पर मुगल सैनिक आधिपत्य जमा लेते वहां के लोग अपना माल-असबाब लेकर पर्वतों में चले जाते, साथ में कृषि आदि बरबाद करके जाते और कुछ भी उपयोगी सामान शत्रु के लिये नहीं छोड़ते थे।

प्रताप के सैनिक साधारण वेशभूषा वाले होते थे और तीव्र गति और यकायक आक्रमण में प्रवीण होते थे। उनका साधारण भोजन प्रायः वे कपड़े में लपेट कर कमर पर बांध कर रखते थे, जिससे तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये प्रस्थान करने में सरलता रहती थी। प्रताप की सैन्य-व्यवस्था सदा इतनी सुसंगठित रही कि शत्रु कभी भी चैन से नहीं रहा। इतना ही नहीं समय-समय पर मेवाड़ के बाहर, गुजरात, मालवा, आमेर आदि प्रदेशों के इलाकों में यकायक धावा मार कर मुगल सेना को नुकसान पहुंचाकर और लूटमार करके सुरक्षित लौट आते थे। शस्त्रास्त्रों का निर्माण, अश्वशालाओं की व्यवस्था, सैनिकों का प्रशिक्षण, सेनाओं के लिए खाद्य सामग्री तथा अन्य वस्तुओं की समुचित व्यवस्था, सैनिको का अनुशासन, विभिन्न सैन्य-टुकड़ियों के बीच समन्वय और केन्द्रीय संचालन आदि सभी कार्य बड़े सुनियोजित प्रकार से चले, जिसके परिणामस्वरूप प्रताप को सफलता मिली और धन-जन की कम से कम हानि हुई।

5. शत्रु इलाके की लूट व कर वसूलना

प्रताप की रक्षात्मक युद्ध-व्यवस्था में समय-समय पर मुगल प्रदेशों पर धावे करने की नीति शामिल थी, जिसका प्रयोजन मुगलों को जन-धन की हानि पहुंचाने और मेवाड़ की सेना के लिए रसद, शस्त्रास्त्र आदि प्राप्त करने के अतिरिक्त मेवाड़ पर आक्रमण करने वाली शत्रु-सेनाओं का ध्यान बंटाना और उनके आक्रमण में शिथिलता पैदा करना था। जब मुगल सैनिक कुम्भलगढ़, गोगून्दा आदि स्थानों मे उलझे होते, उस समय प्रताप और उसकी टुकड़ियां मालवा, गुजरात आदि इलाकों की ओर धावा मारती होती थीं। महाराणा प्रताप का चावंड को मेवाड़ की राजधानी बनाना उसके उत्तम रणनीतिज्ञ और प्रशासक होने का प्रमाण है। चावंड की उपजाऊ घाटी चारों ओर से घनी, विशाल एवं विस्तृत पर्वतमालाओं से घिरी हुई है।

यह ध्यान देने की बात है कि चावंड को राजधानी बनाने से अकबर की मेवाड़ को घेरकर अकेला करने की नीति और भी असफल हो गई, यहां रहने से प्रताप के लिये सिरोही, ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, गुजरात, मालवा आदि प्रदेशों से निकट सम्पर्क बना रहा। इन प्रदेशों के मुगल विरोधी तत्वों का सहयोग प्राप्त करना आसान हो गया, यहां तक कि इन प्रदेशों के मुगलाधीन राजपूत शासकों से भी समय-समय पर मदद प्राप्त करना संभव हुआ-।

6. महाराणा का आर्थिक प्रबन्ध

राज्य का मैदानी भाग मुगल अधीनता में चले जाने के कारण कृषि एवं व्यापार से होने वाली आय का अधिकांश भाग हाथ से जाता रहा। चारों ओर से मुगल-राज्य प्रभावित क्षेत्रों से घिर जाने के कारण पर्वतीय भूभाग में व्यापार और व्यापार से होने वाली आय लगभग बन्द हो गयी। मैदानी भाग हाथ से निकल जाने के कारण मेवाड़ की बड़ी-बड़ी जागीरें समाप्त हो गई, जो उस काल की सामंती प्रथा के अनुसार राज्य की सैन्य-व्यवस्था का मुख्य साधन थी। जागीरदार स्वजनों के साथ पहाड़ों में चले आये। जिनको अपने भरण-पोषण के लिये पहाड़ों में यत्र-तत्र नई जागीरें दी गई। अतएव प्रताप को केन्द्रीय स्तर पर राज्य की सेना का गठन करना पड़ा, जिसका व्यय राज्य के कोष से किया गया। इस

भांति पुरानी आय के साधन भी वन्द हो गये और राज्य पर व्यय का भार वढ़ गया। ऐसे संकट में यदि प्रशासन और सैनिक वर्ग पर होने वाले व्यय के लिये आय की निश्चित व्यवस्था नहीं की जाती और आय के नवीन स्रोत नहीं प्राप्त किये जाते तो प्रताप के लिए सुरक्षात्मक युद्ध जारी रखना कठिन हो जाता और संभवतः मेवाड़ के कई एक जागीरदार और राजपूत सैनिक सरदार भी मुगल सेवा के लिये दिल्ली की राह पकड़ते। किन्तु राणा प्रताप और मेवाड़ का सामंतवर्ग एक ओर अपने उद्देश्यों पर एकतावद्ध और दृढ़ रहा और उनके लिये अभावों से जूझने के लिये तत्पर रहा, दूसरी ओर राज्य के लिये आय की निश्चित योजना वनाई गई। राज्य की संपूर्ण आर्थिक गतिविधियों का मुख्य आधार और केन्द्र बिन्दु सैन्य व्यवस्था का सुचारू संचालन रखा गया। कृषि उत्पादन और व्यापार सम्वंधी नवीन प्रवंध किए गए। मैदानी भाग से आये सामंती सैनिक वर्ग और कृषक वर्ग सारे पर्वतीय भू-भाग में फैल गये। उन्होंने आदिवासी भील समुदाय से मिलकर कृषि के लिये पर्वतों की घाटियों और समतल भू-भागों में नवीन भूमि तैयार की और नये-नये खेत खड़े किये, जिनसे खाद्यान्न की कमी नहीं रही। जन-जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, सेना के लिये शस्त्रास्त्रों के निर्माण आदि की पूरी व्यवस्था की गई। अनवरत युद्ध-स्थिति के वावजूद राज्य की ओर से मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों की ओर व्यापारिक मार्ग सुरक्षित करने की व्यवस्था की गई। इतना ही नहीं छापामार-युद्ध-प्रणाली के अनुसार मुगल सैनिक टुकड़ियों, काफिलों एवं मुगल थानों पर अचानक आक्रमण करके शस्त्रास्त्र, धन, रसद आदि लूट कर लाने की दृष्टि से योजनावद्ध कार्यवाहियां की गई, इस तरह आय वढाई गई।

राज्य के सेनापतियों द्वारा अवसर देखकर मालवा, गुजरात और मालपुरा आदि क्षेत्रों से धावा मारकर प्रर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त किया गया। प्रसिद्ध है कि प्रताप के प्रधान (दीवान भामाशाह) ने चूलिया स्थान पर वि.सं. 1635 (1578 ई.) में पच्चीस लाख रूपये तथा वीस हजार अशर्फियां भेंट की। भामाशाह ने यह धन मालवा पर धावा मारकर प्राप्त किया था।

नवीन आर्थिक प्रबन्ध के परिणाम

1586 ई. में प्रताप के सफल सैनिक अभियान सिद्ध करते हैं कि प्रताप की आर्थिक योजना पूरी तरह सफल रही और ऐसा नहीं प्रतीत होता कि उसको कभी किसी भीषण आर्थिक संकट के दवाव में आना पड़ा। वस्तुतः संपूर्ण युद्धकाल के दौरान कृषि एवं वाणिज्य की कुशल व्यवस्था के कारण हजारों सैनिकों तथा नागरिकों को दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं निरतंर प्राप्त होती रहीं। पहाड़ी स्थानों में जगह-जगह कृषि की व्यवस्था से भू-भाग को आवाद करने में सहायता मिली। शांति होने पर उपज तथा आय के साधन वढ़ते गये। कतिपय ऐसी कथाएं प्रचलित रही हैं, जैसे कि राजपरिवार को भी खाने के लिए पर्याप्त अन्न उपलब्ध नहीं होता था, धन के अभाव से निराश होकर प्रताप द्वारा मेवाड़ छोड़कर जाने का निर्णय करना पड़ा था अथवा प्रताप द्वारा अकवर की अधीनता स्वीकार करने के लिए अकवर को पत्र लिखा गया था, इन कथाओं में ऐतिहासिक सत्य नहीं है। वे केवल प्रताप के कठिन पर्वतीय जीवन और वीरतापूर्ण संघर्ष को दर्शाने हेतु दंतकथाओं के रूप में प्रचलित हुई।

सामंत वर्ग और सैनिक समुदाय का सहयोग

युवावस्था के काल में प्रताप न केवल आदिवासी समुदाय का प्रिय पात्र वना, अपितु वह स्वतंत्रताप्रिय और स्वाभिमानी सामंतवर्ग एवं सैनिक समुदाय का चहेता वन गया था। एक ओर उसकी सरलता, सादगी, उच्चचरित्र और सद्‌व्यवहार ने उसको

सर्वप्रिय बनाया, तो उसके साथ उसके द्वारा युवावस्था के दौरान पर्वतीय भूभाग के युद्धों में प्रदर्शित युद्धकौशल, वीरता, दृढ़ साहस और सैन्य-नेतृत्व की प्रतिभा तथा सामान्यजनों को आकर्षित कर उनका सहयोग प्राप्त करने की उसकी क्षमता ने सैनिक वर्ग को न केवल प्रभावित किया अपितु उनमें नवीन उत्साह, आशा और आत्मविश्वास का संचार किया। 1572 ई. में गोगूंदा में मेवाड़ राज्य के उत्तराधिकार की समस्या का जिस प्रकार से किसी कलह के बिना, शांतिपूर्ण ढंग से समाधान हो गया तथा जिस भांति प्रताप को वड़े एकतावद्ध और उल्लासपूर्ण वातावरण में गद्दीनशीन किया गया और उस समय पूरी दृढ़ता एवं जोश के साथ मेवाड़ की स्वतंत्रता कायम रखने की प्रतिज्ञा की गई, उसका प्रधान कारण बत्तीस वर्षीय प्रताप की सैनिक नेतृत्व की क्षमता, जन-संगठन की अपूर्व प्रतिभा तथा दृढ़ साहस और वीरता के गुण थे।

प्रताप की सफलता में उसकी प्रशासनिक क्षमता और उपयुक्त आर्थिक योजना का जितना योगदान रहा, उनसे भी बढकर संघर्ष में पर्वतवासियों, प्रधानतः आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी रही। वस्तुतः प्रताप ने अपने नेतृत्व के गुणों से सामान्यजनों एवं आदिवासियों को आंदोलित करके संघर्ष का सक्रिय भागीदार बना दिया और मेवाड़ के मुगल विरोधी युद्ध को मेवाड़ की संपूर्ण जनता के स्वतंत्रता-संघर्ष का स्वरूप दे दिया। मध्यकालीन युग में यह एक आश्चर्यजनक एवं असंभव को संभव बनाने वाली घटना थी।

युद्ध-कार्य में जनता की भागीदारी

जनता ने राज्य की युद्ध-योजना और राज आज्ञा के अनुसार कृषि के कार्य, वस्तु-उत्पादन, वाणिज्य आदि के कार्य छापामार युद्ध कार्य शत्रु के साथ संपूर्णतः एवं उसको त्रस्त करने के कार्य आदि सभी कार्यवाहियों में अनुशासनवद्ध ढंग से सक्रिय भागीदारी निभाई। शत्रु को रसद नहीं मिली, वह पहाड़ों और वनों में मार्ग ढूंढने के लिये भटकता रहा, उसको राह दिखाने वाला नही मिला और आकस्मिक धावों की मार से लुटता रहा एवं त्रस्त होता रहा, यही प्रायः मुगल सैनिकों का हश्र रहा। प्रताप की स्वयं की सरलता, सादगी,त्याग एवं बलिदान के उदाहरण ने सभी को समान रूप से प्रेरित किया और सामंतों, सैनिकों, आदिवासियों एवं अन्य सामान्यजनों के मध्य अभूतपूर्व स्नेह, विश्वास, समानता और सहयोग का वातावरण बना दिया।

7. कला व संस्कृति में योगदान

प्रताप के सम्बन्ध में यह मान्यता रही है कि लगातार युद्ध करते रहने और कठिन पर्वतीय जीवन विताने के कारण प्रताप को कला और संस्कृति की उन्नति की ओर ध्यान देने का समय और अवसर नहीं मिला, अतएव इस दिशा में उसका कोई योगदान नहीं रहा। किन्तु अद्यतन शोध ने इस मान्यता को असत्य सिद्ध कर दिया है। यह ज्ञातव्य है कि प्रताप के लिये 1572 से 1576 ई. का काल संघर्ष के लिये तैयारी का काल रहा, 1576 से 1586 ई. के मध्य का काल अनवरत युद्धों का काल रहा तथा 1586 से 1597 ई. तक का अर्थात उसके देहान्त होने तक का काल अपेक्षाकृत शांति का काल रहा।

(I) निर्माण कार्य

1579 ई. के लगभग प्रताप ने छप्पन के घने पहाड़ी क्षेत्र में चावंड ग्राम को अपनी राजधानी बनाया और इस सुरक्षित स्थल से उसने अपनी संपूर्ण कार्यवाहियाँ संचालित की। 1586 ई. के बाद जब मुगल सेना के आक्रमण बन्द हुए तो इसी केन्द्र से उसने अपने राज्य के मैदानी भू-भाग पर पुनः अधिकार स्थापित किया। प्रारम्भ में चावंड में उसने चामुंडा देवी का मंदिर निर्मित करवाया। धीरे-धीरे चावंड की छोटी पहाड़ी पर विशाल राजप्रासाद बनवाये, सामंतों की हवेलियां और सैनिकों के लिये गृह बनवाये। चावंड में उपलब्ध

खंडहर यह बताते हैं कि संपूर्ण निर्माण किलेनुमा था, खंडहरों में आज भी तलघर दृष्टव्य हैं। इसी प्रकार के प्रतापकालीन भवनों के खंडहर आवरगढ़-कमलनाथ, उभयेश्वर, कमोल, ढोलाण आदि कई पर्वतीय स्थानों पर देखने को मिलते हैं। 1615 ई. में राणा अमरसिंह और बादशाह जहांगीर के मध्य संधि होने के बाद उदयपुर को मेवाड़ की राजधानी बनाया गया। उसके बाद चावंड के भवन उपेक्षित रहकर खंडहर होते गये। यहां के सुन्दर गवाक्ष, द्वारों की डेलियां, चौपाडों के खम्भे, छज्जे आदी उखाड़कर लोग मनमाने तौर पर अपने भवनों में लगाते रहे, निकटवर्ती सराड़ा ग्राम की कचहरी में भी इन अवशेषों का उपयोग किया गया है, जो वहां देखे जा सकते हैं। उसी काल में 1593 ई. के लगभग भामाशाह ने जावरमाता का मंदिर बनवाया तथा सादड़ी गोड़वाड़ में ताराचंद द्वारा बरादरी और बावड़ी बनाये गये, जो आज भी दृष्टव्य हैं।

(ii) विद्या, साहित्य एवं कला को प्रोत्साहन

इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रताप के शासन काल में भवन-निर्माण के अतिरिक्त अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहन मिला, जिनके प्रमाण अब सामने आ रहे हैं। प्रताप के काल में चक्रपाणि मिश्र नामक संस्कृत भाषा का विद्वान लेखक हुआ, जिसके तीन ग्रंथ राज्याभिषेक-पद्धति, मुहूर्तमाला एवं विश्ववल्लभ प्रकाश में आये हैं। ये ग्रंथ क्रमशः गद्दीनशीनी की शास्त्रीय पद्धति, ज्योतिष शास्त्र और उद्यान-विज्ञान के विषयों से सम्बन्धित हैं। इसी समय जीवंधर ने 'अमरसार' संस्कृत ग्रंथ की रचना की। प्रताप के राज्यकाल में गोड़वाड़ इलाके के सादड़ी ग्राम में, जहां प्रताप की ओर से भामाशाह का भाई ताराचंद प्रशासक नियुक्त था उसकी प्रेरणा से 1598 ई. में हेमरत्न सूरी द्वारा "गोरा बादल कथा पद्मनी चउपई" काव्य-ग्रंथ की रचना की गई। उस काल में चावंड में निसारदी (नसीरूद्दीन) नामक चित्रकार हुआ, जिसके 1605 ई. के रागमाला के चित्र प्रकाश में आये हैं। निसारदी की चित्रशैली चावंड-चित्रशैली के नाम से प्रसिद्ध हुई है। मेवाड़ चित्रशैली को समृद्ध करने में इस शैली का बड़ा योगदान रहा।

1586 ई. के बाद कृषि और व्यापार में भारी उन्नति हुई उसके साथ-साथ स्थापत्यकला, चित्रकला, साहित्य-सृजन आदि प्रवृत्तियों को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

8. धर्म-समभाव की राज्यनीति

(i) प्रताप की धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता

उनकी मान्यता थी कि उनके पूर्वजों को मेवाड़ का राज्य एकलिंग [illegible] प्रदान किया था। यह राज्य एकलिंगजी का है और महाराणा उनके दीवान के तौ[illegible] करते हैं। अतएव भगवान एकलिंग की पूजा-अर्चना करना महाराणा[illegible] था। किन्तु उससे मेवाड़ के महाराणाओं में कभी भी धार्[illegible] भेदभाव की भावनाएं उत्पन्न नहीं हुईं। उन्होंने सभी धर्मों क[illegible] और राज्य की ओर से समय-समय पर उनको आवश्यक [illegible] प्रकार के धर्म मानने वालों को न केवल अपने विश्वास [illegible] आचरण की स्वतंत्रता थी, अपितु उनको राज्य-प्रशासन के [illegible] भेदभाव दिया जाता था। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन आदि [illegible] धर्मावलंबियों को भी समान अधिकार और दायित्व मिले हुए थे [illegible] मेवाड़ के शासक दिल्ली के मुसलमान सुल्तानों से लड़ते आये थे [illegible] तीन शताब्दियों से मालवा और गुजरात के मुसलमान बादशाहों से [illegible] चलते रहे और यदाकदा मुसलमान शासकों की ओर से की गई

कट्टरता का सामना भी करना पड़ा। फिर भी उसके कारण मेवाड़ के शासकों में धार्मिक आधार पर प्रतिशोध अथवा असहिष्णुता की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हुई। इस राजनीति के अन्तर्गत कभी सीमावर्ती हिन्दू राजाओं से तो कभी मुसलमान वादशाहों से युद्ध हुए। आवश्यकता पड़ने पर एक मुसलमान वादशाह के विरुद्ध युद्ध हेतु दूसरे मुसलमान वादशाह से मैत्री-संधि भी की। 1519 ई. में गागरोन के युद्ध में राणा सांगा ने मालवा के सुल्तान महमूद को कैद किया तो राणा ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया । 1562 ई. में महाराणा उदयसिंह ने अकवर के आक्रमण के भय से भाग कर आये मालवा के सुल्तान वाजवहादुर को चित्तौड़ में शरण प्रदान की। राणा ने गुजरात से भाग कर आए शहजादे वहादुर शाह को शरण दी।

अन्त में यही कहना उचित होगा कि धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता की नीति का अनुसरण करना मुगल वादशाह अकवर के लिये अपने साम्राज्य के स्थायित्व एव विस्तार के लिये एक राजनैतिक आवश्यकता थी, किन्तु राणा प्रताप के लिये ऐसा करना अपने वंश की उज्जवल धरोहर को कायम रखना और आदर्श नीतियों का पालन करना था। इस तुलना में प्रताप का पलड़ा भारी रहता है। ऊपर दी गई घटनाएं साक्षी हैं।

महाराणा प्रताप तथा कर्मवीर भामाशाह

विदेशी गुलामी को अस्वीकार कर प्रताप ने सभी प्रकार के ऐश्वर्य, प्रलोभन और सुख की जिन्दगी को छोड़ा और अपने परिजनों सहित जीवन-पर्यन्त पहाड़ों एवं जंगलों में संकट झेलते हुए एवं अत्यन्त साधारण जीवन जीते हुए आजादी के लिये संघर्ष किया। महाराणा प्रताप के प्रधान भामाशाह ने अपने शासक का अनुसरण किया और अपने परिजनों सहित सभी सुख-साधनों को स्वतंत्रता के संघर्ष में होम दिया। मेवाड़ के इस स्वतंत्रता-संघर्ष में भामाशाह एक साहसी एवं कुशल योद्धा, एक सुविज्ञ एवं चतुर प्रशासक तथा सक्षम एवं दूरदर्शी व्यवस्थापक के रूप में उभरा। यदि प्रताप के जीवन-आदर्शों एवं संघर्ष ने भारत के जन-जन को स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने एवं सर्वस्व बलिदान करने के लिये प्रेरित किया तो उनमें देशभक्ति की भावना पैदा की तथा देश के लिये स्वयं को, अपने परिजनों को तथा अपने साधनों को अर्पित करने के लिये प्रेरणा दी। यही कारण है कि महाराष्ट्र और गुजरात से लेकर बंगाल और आसाम तक तथा कश्मीर से लेकर केरल तक राष्ट्रीय साहित्य में महाराणा प्रताप के साथ-साथ भामाशाह का स्मरण एक वीर योद्धा के साथ-साथ दानवीर एवं बलिदानी देशभक्त के रूप में किया गया है।

भामाशाह का वंश परिचय

ऐसी मान्यता है कि भामाशाह ने कावड़िया गोत्र के ओसवाल कुल में जन्म लिया। उसके पिता का नाम भारमल था, इसकी स्पष्ट जानकारी प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। समकालीन कवि हेमरत्न सूरि कृत "गौरा बादल कथा पदन्नी चउपई" ग्रंथ की प्रशक्ति में उल्लेख मिलता है-

पृथ्वी परगटा राणा प्रताप। प्रतपइ दि दिन अधिक प्रताप ॥

तस मन्त्रीसर बुद्धि निधान। कावड़िया कुल तिलक निधान ॥

सामि धरमि धुरि भामुसाह वयरी वंस विधुंसण राह ॥

विदुर वायक्क कृत "भामाबावनी" में उल्लेख है कि भामाशाह श्वेताम्बर जैन की नृमन-गच्छ शाखा को मानने वाला था। पृथ्वीराज के कुल में भारमल उत्पन्न हुआ, जिससे कावड़िया शाखा निकली। भारमल के जसवंत, करुण, कलियाण, भामाशाह, ताराचन्द, नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

प्राप्त जानकारी के अनुसार भामाशाह के पूर्वज अलवर क्षेत्र में रहते थे। इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के काल तक भामशाह के पूर्वज मेवाड़ क्षेत्र में आ बसे थे। वि. स. 1616 में उसका पिता भारमल चित्तौड़ में मौजूद था। उससे पूर्व महाराणा संग्रामसिंह द्वारा भारमल को रणथम्भौर का किलेदार नियुक्त किये जाने का प्राचीन पट्टावलियों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इनसे यह जानकारी भी मिलती है कि भारमल प्रारम्भ में तपागच्छ सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसका परिवार धनी और सम्पन्न था। महाराणा का विश्वस्त दरबारी होने के कारण ही महाराणा संग्रामसिंह द्वारा उसको कुंवर विक्रमादित्य एवं उदयसिंह की सुरक्षा का उत्तरदायित्व देकर रणथम्भौर किले का किलेदार बनाया गया था।

जानकारी मिलती है कि महाराणा उदयसिंह ने अपनी गद्दीनशीनी के बाद भारमल परिवार की विशिष्ट सेवाओं के कारण भारमल को एक लाख का पट्टा देकर प्रतिष्ठित किया था। ऐसी मान्यता है कि चित्तौड़ की तलहटी में पाडनपोल के पास भारमल की हस्तिशाला थी और ऊपर महलों के सामने तोपखाने के निकट उसकी हवेली थी। जनश्रुति के आधार पर यह मान्तया भी चली आयी है कि उदयपुर के महलों के निकट गोकुल चन्द्रमाजी के

मन्दिर के पास भामाशाह का निवास था, जो दीवानजी की पोल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उदयपुर से कुछ मील दूर स्थित सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल जावर में मोतीबाजार के निकट भामाशाह की हवेली होने तथा जावरमाता के विशाल मन्दिर का भामाशाह द्वारा निर्माण किये जाने की मान्यता भी रही है।

जन्म व मेवाड़ के प्रधान पद पर नियुक्ति

भामाशाह का जन्म सोमवार, आषाढ़ शुक्ला 10, वि. सं. 1604 (28 जून, 1547 ई.) को हुआ माना जाता है। इसके अनुसार भामाशाह प्रताप से सात वर्ष छोटा था। भामाशाह के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अब तक कोई जानकारी नहीं मिली है। 1572 ई. में महाराणा प्रताप के गद्दीनशीन होने के समय भामाशाह पच्चीस वर्ष का नवयुवक था। उस समय तक सम्भवतः उसके पिता भारमल का देहावसान हो चुका था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारमल अपनी सेवाओं और स्वामिभक्ति के कारण महाराणा उदयसिंह का विश्वासपात्र प्रमुख राजकीय व्यक्ति हो गया था। किन्तु उसको दीवान पद मिल गया हो, ऐसी जानकारी नहीं मिलती। वस्तुतः इस परिवार में यह पद भामाशाह को पहली बार मिला, जो निःसन्देह ही उसके पिता भारमल द्वारा मेवाड़ राज्य को अर्पित की गई उपयोगी सेवाओं के फलस्वरूप तथा नवयुवक भामाशाह की वीरता एवं प्रशासनिक क्षमता के कारण प्राप्त हुआ। ज्ञातव्य है कि चितौड़ पतन (1568 ई.) के बाद भामाशाह का परिवार भी महाराणा उदयसिंह एवं उनके सहयोगियों के साथ मेवाड़ की स्वतंत्रता का संघर्ष जारी रखने हेतु पर्वतीय इलाके में चला गया था।

प्रताप ने जब नई व्यवस्थाएं एवं परिवर्तन किये, उस समय भामाशाह द्वारा सैन्य-अभियानों में प्रदर्शित-कुशल नेतृत्व तथा राज्य के लिये धन की व्यवस्था करने सम्बन्धी कार्यवाही एवं क्षमता को देखकर 1578 ई. के लगभग राणा प्रताप ने भामाशाह को पूर्व प्रधान रामा महासाणी के स्थान पर राज्य के प्रशासनिक सर्वोच्च पद, दीवान (प्रधान) का उत्तरदायित्व दिया। उस समय तक भामाशाह की आयु तीस वर्ष से अधिक हो चुकी थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भामाशाह के सम्बन्ध में महाराणा प्रताप का निर्णय सर्वथा सही एवं दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध हुआ।

हल्दीघाटी-युद्ध में वीरता

हल्दीघाटी के इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध में भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द के मौजूद होने का स्पष्ट उल्लेख तवारीखों में मिलता है। वे दोनों महाराणा प्रताप की सेना के दाहिने भाग में राणा के साथ थे। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब राणा प्रताप के नेतृत्व में सेना के दाहिने पक्ष, जिसमें राजा रामसाह तंवर और भामाशाह एवं ताराचंद आदि थे, ने मुगल सेना के बायें पक्ष को छिन्न-भिन्न कर दिया था और मुगल सैनिक भाग कर मध्यवर्ती भाग में मिल गये थे। हल्दीघाटी-युद्ध में मुगल सेना की ओर से लड़ने वालों में "मुन्तखाब उत तवारीख" इतिहास-ग्रन्थ का लेखक मौलवी अल बदायुनी भी था। उसने लिखा कि मेवाडी सेना के हरावल के जबर्दस्त आक्रमण ने मुगल सेना को 6 कोस तक खदेड़ दिया था और उससे राणा की जीत लगभग निश्चित हो गई थी। भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने उस युद्ध में जो युद्धकौशल, वीरता और शौर्य-प्रदर्शन किया, उसके कारण ही बाद में उनको राज्य-के शासन की बड़ी जिम्मेदारियां दी गईं।

सैनिक व आर्थिक प्रबन्ध की योग्यता

हल्दीघाटी-युद्ध के बाद प्रताप ने मुगलों से लड़ने के लिए दीर्घकालीन छापामार-युद्ध का प्रारम्भ किया, जो लगभग 10 वर्षो (1576-1585) तक चला। प्रताप के कृतित्व की यह चिरस्मरणीय सफलता थी कि उसने न केवल तत्कालीन विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली

बादशाह अकबर के मेवाड़ को अधीन बनाने के प्रयासों को निष्फल कर दिया, अपितु उसने मुगल आधिपत्य से मेवाड़ के उस मैदानी इलाके को पुनः जीत लिया, जिसको अकबर ने 1568 ई. में चितौड़ पर विजय प्राप्त करने के वाद अपने अधीन कर लिया था। प्रताप के इस दीर्घकालीन छापामार-युद्ध की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ भामाशाह का नाम जुड़ा हुआ है। वह मेवाड़ी सेना के एक भाग का सेनापति रहा। भामाशाह अपनी सैन्य टुकड़ी लेकर मुगल थानों, काफिलों एवं मुगल सैन्य टुकड़ियों पर हमला करके मुगल जन-धन को वर्वाद करता था और धन एव शस्त्रास्त्र लूटकर लाता था। इसी भांति उसने कई वार शाही इलाकों पर आक्रमण किये और वहां से लूट कर मेवाड़ के स्वतंत्रता-संघर्ष के लिए धन और साधन प्राप्त किये। ये आक्रमण गुजरात, मालवा, मालपुरा, और मेवाड़ की सरहद पर स्थित अन्य मुगल इलाकों में किये जाते थे। जव मुगल सेनापति कछवाहा मानसिंह मेवाड़ में मुगल थाने कायम कर रहा था, उस समय प्रताप के ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह के साथ भामाशाह मालपुरा से धन प्राप्त करने में लगा हुआ था। वि. स. 1635 (1578 ई.) में मुगल सेनापति शाहवाज खाँ द्वारा कुम्भलगढ़ फतह करने के कुछ समय वाद ही भामाशाह के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने मालवा पर जो आकस्मिक धावा किया और मेवाड़ के लिए धन और साधन प्राप्त किये, वह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। प्रसिद्ध है कि चूलिया में महाराणा प्रताप को भामाशाह ने पच्चीस लाख रूपये तथा वीस हजार अशर्फियां भेंट की थी। इसके संवंध में यह कथा प्रचलित है कि जव प्रताप लड़ते-लड़ते साधनों के अभाव के कारण निराश हो गया तो उसने मेवाड़ छोड़ कर चले जाने का निश्चय किया, उस समय भामाशाह ने अपनी संपूर्ण पैतृक-संपति लाकर राणा को अर्पित कर दी। किन्तु यह निश्चित है कि भामाशाह ने यह धन मालवा के इलाके पर धावा करके प्राप्त किया था जो उसने लाकर राणा को दिया।

महाराणा प्रताप को अपने दीर्घकालीन संघर्ष की वड़ी सफलता 1587 ई. में मिली, जव चित्तौड़ और मांडलगढ़ को छोड़कर शेष मेवाड़ के हिस्सों पर उसका पुनःअधिकार हो गया। इस विजय अभियान में उसके प्रधान भामाशाह की प्रधान भूमिका रही। कवि दौलतविजय ने अपने ग्रंथ "खुमाणरासो" में उल्लेख किया है कि महाराणा अमरसिंह के काल में भामाशाह ने अहमदावाद पर जवरदस्त धावा मारा और वहां से दो करोड़ का धन लेकर आया। ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन के आधार पर यह आक्रमण महाराणा प्रताप के राज्यकाल में ही भामाशाह द्वारा धन एकत्रित करने हेतु किये गये अभियानों में से एक होना चाहिये। भामाशाह की मृत्यु महाराणा प्रताप के देहावसान के तीन वर्ष वाद ही हो गई थी।

भामाशाह के मेवाड़ के प्रधान पद पर आसीन होने पर सैन्य-व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था से संवंधित गतिविधियों में उसकी प्रमुख भूमिका को देखते हुए इस वात का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था, आर्थिक प्रवन्ध, युद्धनीति, सैन्य-संगठन आक्रमणों की योजना आदि तैयार करने में भामाशाह का महाराणा प्रताप के सहयोगी एवं सलाहकार के रूप में प्रमुख योगदान रहा होगा।

भामाशाह की स्वामिभक्ति

भामाशाह की स्वामिभक्ति को प्रकट करने वाली एक अन्य ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मिलता है। वादशाह अकवर अपने साम्राज्य की सुदृढ़ता एवं विस्तार के लिए भेद-नीति का सहारा लेकर राजपूत राजाओं एवं योद्धाओं को एक दूसरे के विरुद्ध करके तथा राजपूत राज्यों के भीतर वान्धवों एवं रिश्तेदारों के वीच पारस्परिक कलह पैदा करके अपने दरवार में उच्च पद, मनसव आदि देने का प्रलोभन देता था। जब अकबर की महाराणा प्रताप को परास्त करने की सभी कोशिशें नाकामयाब हो गई तो उसने प्रताप के प्रधान भामाशाह को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। इस उदेश्य से अकबर ने अपने

चतुर कूटनीतिज्ञ सेनापति अब्दुर्रहीम खानखाना को भामाशाह से मुलाकात करने का आदेश दिया।

दोनो की यह भेंट मालवा में हुई, जहां भामाशाह उस समय मौजूद था। खानखाना द्वारा दिये गये प्रलोभनों का वलिदानी वीरवर भामाशाह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह प्रलोभन उस सयम दिया गया जवकि महाराणा प्रताप और उसके सहयोगी भीषण आर्थिक संकट और सैनिक दवाव के वीच जीवन और मृत्यु का संघर्ष कर रहे थे। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के प्रलोभन को ठुकराकर भामाशाह ने स्वतंत्रता और स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए संकटों, कठिनाईयों और अभावों से जूझते रहने की स्थिति को अपनाना श्रेयस्कर समझा। यह वात भामाशाह की स्वामिभक्ति का उज्जवल प्रमाण है।

भामाशाह ने महाराणा प्रताप तथा उनके वाद महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में जिस वीरता, कार्यकुशलता और राज्य-भक्ति के साथ प्रधान का कार्य किया, उससे भामाशाह और उसके परिवार को जो प्रतिष्ठा और विश्वास मिला, उसके कारण भामाशाह के वाद महाराणा अमरसिंह ने उसके पुत्र जीवाशाह को मेवाड़ का प्रधान वनाया, जो वादशाह जहांगीर के साथ की गई सन्धि के समय कुंवर कर्णसिंह के साथ वादशाह के पास गया था। जीवाशाह की मृत्यु के वाद उसके पुत्र अक्षयराज को मेवाड़ का प्रधान वनाया गया। भामाशाह और उसके परिजनों द्वारा अर्पित त्यागपूर्ण सेवाओं के कारण समाज में उनको जो सम्मान मिला, वह वाद के काल में भी कायम रहा।

महाराणा को अमूल्य सहयोग

कर्मवीर भामाशाह के कृतित्व एवं देन की प्रशंसा करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि भामाशाह का नाम मेवाड़ के उद्धारक के रूप में प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ वीरविनोद के लेखक श्यामलदास ने लिखा है- "भामाशाह वड़ी जुअरत का आदमी था। वह महाराणा प्रतापसिंह के शुरू के समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के ढाई-तीन वर्ष तक प्रधान रहा। इसने वड़ी-वड़ी लड़ाईयों में हजारों आदमियों का खर्चा चलाया। इसने मरने से एक दिन पहले अपनी स्त्री को एक वही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़ के खजाने का कुल हाल लिखा है। जिस वक्त तकलीफ हो, यह महाराणा को नजर करना । इस खैरख्वाह प्रधान की इस वही के लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलता रहा। जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल अनहिलवाड़ा, के सोलंकी राजाओं के प्रधान रहे और जिन्होंने आवू पर्वत पर जैन मन्दिर वनवाये, वैसा ही पराक्रमी और नामी भामाशाह को भी जानना चाहिये।

निःसन्देह ही भामाशाह की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाये, अपर्याप्त होगा। वह एक सच्चा देशभक्त,त्यागी और वलिदानी पुरूष था। वह प्रताप की तरह आन-वान का पक्का था। वह कठिन से कठिन संकटों में अविचलित एवं दृढ़ रहने वाला योद्धा था। उसका उदात्त नैतिक चरित्र, उसकी स्वामिभक्ति और देश-रक्षा के लिये सर्वस्व समर्पणकारी भावना, उसका अदम्य साहस और शौर्य, सैन्य संचालन की दृष्टि से उसका उच्च कौशल और शासन-व्यवस्था में निपुणता के गुणों के कारण भामाशाह महाराणा प्रताप का अतिप्रिय और सर्वाधिक विश्वासपात्र सहयोगी वन गया।

भामाशाह का देहावसान वि. सं. 1656 माघ शुक्ला 11 (27 जनवरी, 1600 ई.) को हुआ, जव वह सिर्फ 52 वर्ष का था।

भारतीय इतिहास में महाराणा प्रताप का स्थान

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

राणा प्रताप जब सिंहासन पर बैठे उस समय मेवाड़ का मैदानी भाग तथा उसकी परंपरागत राजधानी चितौड़गढ़ मुगल साम्राज्य के अधीन थी और उसके पास केवल 300 मील की परिधि वाला पहाड़ी भू-क्षेत्र ही बचा था। 1568 ई. के चितौड़ के शाके में मेवाड़ के अधिकांश नामी सूरमा राजपूत सरदार खेत रहे, इसके फलस्वरूप प्रताप के पास इने गिने पुराने अनुभवी योद्धा बचे थे, शेष नई पीढ़ी के सरदार थे, जिनके पास राजनीति और रणनीति का अनुभव नहीं था तथा अकबर द्वारा चितौड़ के भीषण नरसंहार के बाद उनकी संख्या भी बहुत कम थी और व्यवस्थित सैन्य संगठन भी नहीं था। चितौड़ छूटने के कारण राज्य का कोष खाली था और आय के साधन कम हो गये थे। पहाड़ी भाग में कृषि, उद्योग एवं व्यापार बहुत सीमित था। उस समय समूचे पर्वतीय भाग में रक्षात्मक ढ़ंग के एक सव्यवस्थित प्रशासन की भी कमी थी। 1576 से 1585 ई. के दौरान मेवाड़ पर छः बार मुगल सेना के आक्रमण हुए। 1576 ई. में हल्दीघाटी युद्ध की असफलता से क्षुब्ध होकर उसी वर्ष स्वयं बादशाह अकबर अपने प्रधान सेनापतियों को साथ लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया और दो माह उदयपुर में रहा। उसके बाद 1580 ई. तक प्रतिवर्ष आक्रमण होते रहे। 1584 ई. में फिर मुगल सेना चढ़ आई। इन आक्रमणों में अकबर द्वारा सबसे योग्य सेनापतियों, सैनिकों तथा भरपूर धन एवं शस्त्रास्त्रों का उपयोग किया गया।

अकबर ने प्रताप को जीवित पकड़ने अथवा मारने का दृड़ संकल्प कर रखा था। इन स्थितियों में साधारण व्यक्ति भयभीत एवं आतंकित होकर अपने जीवन की रक्षा के लिए जंगलों और पहाड़ों में एक भगौड़े की भांति मारा-मारा फिरता, उसकी सूझ-बूझ मारी जाती तथा शक्ति नष्ट हो जाती और अन्ततः वह या तो मर मिटता या आत्म-समर्पण कर देता अथवा पकड़ा जाता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसके विपरीत 19 जनवरी, 1597 ई. को जब प्रताप ने अंतिम सांस ली, उस समय न केवल मेवाड़ की स्वतंत्रता अक्षुण्ण थी, अपितु प्रताप ने चित्तौड़गढ़ एवं मांडलगढ़ के कुछ क्षेत्र को छोड़कर 1568 ई. में मुगलों द्वारा अधीन कर लिया गया मेवाड़ का शेष मैदानी भाग वापिस अपने अधिकार में ले लिया था प्रशासनिक, सैनिक एवं आर्थिक दृष्टि से मेवाड़ एक सुदृढ़ एवं समृद्ध राज्य बन चुका था।

प्रताप का व्यक्तित्व

मुगल साम्राज्य विरोधी स्वतंत्रता की लड़ाई में प्रताप के चरित्र एवं व्यक्तित्व के सनातन महत्व के वे गुण एवं मूल्य उजागर हुए जो किसी भी राष्ट्र एवं समाज के लिये गौरव की बात होते हैं। स्वतंत्रता संघर्ष में उसने अपना सर्वस्व होम दिया। महलों के सुख-वैभव को त्याग कर उसने पर्वतीय एवं वनीय भाग के कष्टमय एवं सादगी के जीवन को अपना लिया, जिसमें उसके परिवार तथा सरदार और अधिकारीवर्ग आदि सभी ने उसका अविचल रूप से साथ दिया। प्रताप की निः स्वार्थपरता, त्याग एवं बलिदान की भावना ने संघर्षरत लोगों को सभी प्रकार के कष्टों एवं अभावों का किसी भी प्रकार के मानसिक क्लेश अथवा विरोध के बिना, सामना करने का पाठ पढ़ाया। लोगों में निजी स्वार्थ एवं हित-साधन को त्याग कर सामूहिक हितों के लिये कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। प्रताप का सादगीपूर्ण जीवन, उदारतापूर्ण व्यवहार, सभी के प्रति उसकी कर्त्तव्य- भावना, सामान्यजन के कष्टों एवं हितों को सर्वोपरि महत्व देने की उसकी प्रवृति, ये सब बातें उसके साथियों, सहयोगियों एवं आम लोगों के लिये आदर्श बन गयी। उसने जाति, धर्म, सम्प्रदाय की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर सच्चे राजधर्म का पालन किया।

आज से चार सौ वर्ष पहिले जन-नेतृत्व की दृष्टि से राणा प्रताप की उपलब्धि निः संदेह इतिहास की एक अनूठी प्रेरणास्पद घटना है। प्रताप का यह संघर्ष, मूलतः तत्कालीन भारतीय समाज के राजनैतिक नेतृत्व के स्वार्थपरतापूर्ण, भोगवादी एवं पतित मनोवृत्ति के खिलाफ संघर्ष भी था जो उनको अपना स्वाभिमान और स्वतंत्रता का समर्पण करके सुख, वैभव एव ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये पराधीनता और दासता स्वीकार करने के लिये अग्रसर कर रही थी। स्पष्ट है कि, प्रताप पर उन लुभावने प्रलोभनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

2. महाराणा का सर्व धर्म–समभाव

उस समय जबकि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नवीन नीति के बावजूद मुगलाधीन प्रदेशों में धार्मिक कट्टरता और अत्याचार की कतिपय घटनाएं यत्र-तत्र हो रही थीं, राणा प्रताप ने सभी धर्मों का समान रूप से आदर करने की अपनी मूल नीति नहीं छोड़ी। उसके राज्य में अथवा उसके लोगों द्वारा किया गया एक भी ऐसा कृत्य नहीं मिलता, जिसमें धार्मिक असहिष्णुता की गंध आती हो। उसके प्रशासन, सेना, दरबार अथवा संरक्षण में सभी जातियों, धर्मों एवं संप्रदायों के योग्य लोगों को उचित पद एवं उत्तरदायित्व मिले हुए थे। पठान हकीम खाँ सूर उसकी सेना का विश्वसनीय उच्चाधिकारी था, जिसको हल्दीघाटी की लड़ाई में मेवाड़ की सेना के हरावल भाग में रहने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व दिया गया था और जिसने युद्ध के दौरान राणा प्रताप की रक्षा करने और उसको युद्ध मैदान से बाहर निकलवाने में बड़ी अह भूमिका अदा की और स्वयं लड़ता हुआ मारा गया। उसी भांति निसारदी नामक चित्रकार को चावंड राजधानी में राणा प्रताप और राणा अमरसिंह का संरक्षण मिला, जिसके रागमाला के चित्र चावंड- चित्रशैली के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। राणा प्रताप ने इसी प्रकार जैन, वैष्णव, शैव आदि विभिन्न मतावलंबियों, आदिवासी, भील-मीणों को अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में उचित उत्तरदायित्व दिये।

राणा प्रताप शैव मतावलंबी थीं। सिसोदिया राजवंश की मान्यता के अनुसार मेवाड़ के असली शासक स्वामी भगवान एकलिंग शिव थे और राणा उनके दीवान के तौर पर मेवाड़ का शासन करते थे। इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन रीति-व्यवहार के अनुसार राणा का दैनिक जीवन धार्मिक कृत्यों से पूर्ण होता था और राज्यारोहण आदि के कार्य हिन्दू-धर्म-विधि से किये जाते थे, किन्तु उससे राणा की धर्म समभाव राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

महाराणा की सैनिक सफलताएं

राणा प्रताप गहन सूझ-बूझ और दूरदर्शिता रखता था। प्रताप ने पर्वतीय भू-भाग की संपूर्ण जन-शक्ति और कारोबार को सामरिक आवश्यकता के आधार पर ढाला। उसने असैनिक जातियों के लोगों ब्राहमणों, जैनियों आदि को भी सैनिक कार्यों में लगाया। पहाड़ी भाग के मूल निवासी बहुसंख्यक भीलों एवं मीणों का उसने कई प्रकार से उपयोग किया। पहाड़ी भाग के सभी गुप्त स्थानों, कंदराओं आदि की उनको जानकारी थी। प्रताप ने उनकी इन विशेषताओं का बड़ी खूबी के साथ अपनी रणनीति की योजना में उपयोग किया। पहाड़ों में गुप्त स्थानों से निकलकर मुगल सेना पर अचानक हमला करके तीव्रगति से वापस लौट जाने की छापामार-युद्ध-प्रणाली में आदिवासी लोग विशेष उपयोगी सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त राजपरिवार तथा अन्य परिवारों की स्त्रियों एवं बच्चों की सुरक्षा करने, संकटकाल में उनको अन्य सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने, भारी सामान पहाड़ों पर चढ़ाने, शत्रु की गतिविधि की तेजी से पूर्व सूचना देने, राज्यादेश, संदेश एवं सूचनाएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने, गुप्तचरों का कार्य करने, कंदराओं आदि में धन एवं शस्त्रास्त्रों की सुरक्षा करने आदि विभिन्न प्रकार के कार्यों में इन लोगों को सफलतापूर्वक लगाया गया।

मेवाड़ के पर्वतीय भाग में छापामार-युद्ध-प्रणाली का सफल संचालन प्रताप की विशिष्ट उपलब्धि रही। लगभग 300 मील की परिधि वाले मेवाड़ के पर्वतीय भू-भाग को सुरक्षा की दृष्टि से उसने एक दुर्ग का रूप दे दिया। इस भू-भाग के सभी प्रवेश मार्गों के नाकों पर शत्रु के प्रवेश को रोकने के लिये हमलावर सैन्य-दल कायम किये। भीतर के प्रधान मार्गों के ऊपर पहाड़ी कंदराओं एवं गुप्त स्थानों में सर्वत्र छापामार सैन्य-टुकड़ियां नियुक्त कीं, जिनकी आकस्मिक एव तीव्र हमलावर कार्यवाहियों के कारण मुगल सेनापति सदैव भयभीत रहते थे तथा अधिक भीतरी भाग में प्रवेश से कतराते थे। इसी कारण अकबर ने बार-बार अपने सेनापतियों को उलाहने दिये और उसको भारी जन एवं धन की हानि उठाने के कारण मेवाड़ पर हमले बंद करने पड़े। यह राणा प्रताप की रणनीति एवं सैनिक नेतृत्व की बड़ी सफलता रही।

राणा प्रताप की कूटनीति

अपनी सुनियोजित रणनीति के साथ प्रताप ने चतुर कूटनीति का भी उपयोग किया। प्रारंभिक काल में वह अपनी चतुराई से लगभग तीन वर्षों वक सुलह-वार्ता चलाकर युद्ध को टालने में सफल रहा। उसके पश्चात् 1576-1577 ई. के दौरान वह राजस्थान में मुगल विरोधी पठान एवं राजपूत शक्तियों के बीच तालमेल कायम करने और उनके द्वारा अलग-अलग स्थानों पर एक साथ लड़ाई के मोर्चे खोलने में कामयाब हो गया, इसके कारण प्रताप को अकेला पटकने और मेवाड़ को चारों ओर से घेरने में. अकबर को बड़ी कठिनाई हुई और उसको पूरी कामयाबी कभी नहीं मिली। प्रताप ने विद्रोही राजपूत शक्तियों से निरंतर संपर्क रखा और उनको प्रोत्साहित किया। अपनी सुरक्षात्मक सैनिक कार्यवाहियों में वह सीमावर्ती राजपूत राज्यों से समय-समय पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग एवं सहायता प्राप्त करने में कामयाव रहा। इस भांति उसकी कूटनीतिक कार्यवाहियाँ उसकी रणनीति के संचालन में बड़ी सहायक सिद्ध हुईं।

कई इतिहासकारों ने राणा प्रताप को अकबर के साथ संधि नहीं करने और उसके "ंघीय" साम्राज्य में शरीक नहीं होने के लिये कोसा है। किन्तु यह बात उचित नहीं है। जैसा कि अन्यत्र विवेचित किया गया है, राणा प्रताप के लिये बादशाह अकबर के साथ युद्ध करना सभी दृष्टियों से असंभव नहीं तो अत्यंत दुष्कर था और जबकि उसके सभी परंपरागत सहयोगी बादशाह अकबर की अधीनता में जा चुके थे, उस स्थिति में अकबर के साथ शत्रुता जारी रखना और भी संकटकारी था। अतएव उसने शेष मेवाड़ को युद्ध एवं विनाश से बचाने के लिये समझौते हेतु निरन्तर प्रयास किये और अकबर के चार दूतमंडलों को कटुता दिखाये बिना सौजन्यतापूर्वक स्वागत किया।

राणा प्रताप ने अकबर के भारत को एकताबद्ध करने के काम में असहयोग करके भूल की अथवा नहीं इसके सम्बन्ध में बड़ा विवाद है। इसका कारण समकालीन साहित्य को संपूर्ण रूप से नहीं देखना और आधुनिक युग के विचारों एवं मान्यताओं की नजर से भूतकाल की घटनाओं को देखना है। वस्तुत: जिस असहयोग की बात की जाती है, उसके लिये प्रताप के बनिस्पत अक़बर अधिक दोषी था जो बराबर इस बात पर अड़ा रहा कि प्रताप स्वयं मुगल दरबार में आकर हाजिरी दे। प्रताप ने चार दूतमंडलों से भेंट के समय केवल इसी बात पर जोर दिया कि मेवाड़ के राणा को मुगल दरबार में हाजिर रहने से मुक्त रखा जाये। अकबर की हठ के कारण युद्ध हुआ, जिसका अंत राणा अमरसिंह के काल में जाकर तभी हुआ, जब जहांगीर ने मेवाड़ की इस महत्वपूर्ण शर्त को स्वीकार किया। अवश्य, बाद की पीढ़ियां राणा प्रताप को प्रतिक्रियावादी एवं भारत की एकता के मार्ग का कांटा स्वीकार कर लेती, यदि अकबर की धर्मनिरपेक्ष नीति और इस देश की सभी जातियों एवं

धर्मों के लोगों को समान अवसर एवं समान सम्मान देने की नीति आगे भी मुगलकाल में कायम रहती। दुर्भाग्य से जहांगीर ने अकबर की नीतियों का आधे मन से पालन किया, शाहजहां ने वास अकबर से पूर्व के काल की प्रवृत्ति दिखाई और औरंगजेब ने तो उसको सम्पूर्णतः उलट कर इस्लाम धर्म की सर्वोच्चता और हिन्दू-धर्म के दमन पर आधारित इस्लामिक राज्य कायम कर दिया।

वस्तुतः जब मुगल बादशाहों ने धार्मिक कट्टरता की नीति अपनानी शुरू की तब प्रताप के संघर्ष को एक अनोखा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्व प्राप्त हो गया। श्री एकलिंग के राजघराने के साथ अपने वंश का संबंध जोड़कर अपने को गौरवान्वित किया। राणा प्रतापजी का यह दीवान अब "हिन्दुआ सूरज" भी कहलाने लगा। शिवाजी जैसे वीर ने प्रताप धर्मान्धता तथा अत्याचार के विरोध का प्रतीक बन गया। प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि आखिर राणा प्रताप के पुत्र राणा अमरसिंह के काल में मेवाड़ को मुगल अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। यदि राणा प्रताप स्वयं ही 1572 ई. में ऐसा कर लेता तो मेवाड़ भारी बलिदानों से बच जाता। किन्तु इस तर्क में कोई दम नहीं हैं, क्योंकि 1615 ई. में जिन सम्मानजनक शर्तों पर जहांगीर ने अमरसिंह के साथ संधि की, वह राणा प्रताप द्वारा दीर्घकाल तक कठोर संघर्ष करने और स्वयं अमरसिंह द्वारा अठारह वर्षों तक लड़ते रहने के कारण ही संभव हुई।

स्वतंत्रता संघर्ष की जलती मशाल पुंज

राणा प्रताप का यह स्वतंत्रता- संघर्ष भारत की आने वाली पीढ़ियों के लिये प्रकाश बन गया। प्रधानतः अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय स्वतंत्रता- संघर्ष में राणा प्रताप के उच्च आदर्श, महान् चरित्र, अदम्य संघर्ष और सर्वस्व त्याग एवं बलिदान के उदाहरण ने लाखों भारतवासियों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। उस काल में जनता में स्वतंत्रता के प्रति चेतना पैदा करने हेतु देश की विभिन्न भाषाओं में राणा प्रताप के सम्बंध में काव्य, कहानियां, नाटक, एवं उपन्यास लिखे गये। चितौड़गढ़ एवं हल्दीघाटी भारतीय स्वतंत्रता के सैनिकों के लिए पूजा के पावन स्थल बन गये, जहां की मिट्टी को सिर पर चढ़ा कर वे स्वयं को धन्य मानते थे और उसको अपने घर में पूजा -स्थल पर रखते थे।

भारतीय इतिहास में वही केन्द्रीय राज्य अथवा साम्राज्य अधिक काल तक टिके रह सके, जिन्होंने निरंकुश केन्द्रीय शासन के बजाय विकेन्द्रित शासन-प्रणाली एवं प्रादेशिक स्वायत्तता को महत्व दिया। अकबर की निरंकुश शासन प्रणाली में इन बातों का अभाव था, अतएव उसके द्वारा स्थापित "राष्ट्रीय एकता" का चिरस्थायी रहना संभव नहीं था। गहराई से देखा जाये तो प्रताप मूलतः "राष्ट्रीय एकता" की अन्य विचारधारा का प्रतिपादन कर रहा था जो केन्द्रीय हस्तक्षेप, दासता और नौकरी की स्थितियों के विपरीत केन्द्राधीन स्वतंत्र राज्यों के परिसंघ की पक्षधर थी, जिसके अन्तर्गत उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता और राजनैतिक गरिमा एवं स्वाभिमान सुरक्षित होते।

ऐतिहासिक महत्व

राणा प्रताप की देन एवं ऐतिहासिक महत्व के सम्बंध में दो भिन्न प्रकार के विचार चले आते हैं। प्रथम ऐसे विचारक हैं जो प्रताप को हिन्दू-धर्म एवं सिसोदिया-वंश के गौरव की रक्षा करने वाला योद्धा मानते हैं। इस प्रकार की धारणा से ही यह भ्रामक मान्यता पैदा हुई है कि प्रताप का संघर्ष इस्लाम धर्म विरोधी था और यह कि प्रताप और अकबर के बीच का युद्ध हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच का धार्मिक युद्ध था। इस प्रकार के विश्लेषण से प्रताप केवल संकीर्ण हितों और क्षुद्र मूल्यों के लिये लड़ने वाले योद्धा के रूप में ही सामने आता है। किन्तु ऐतिहासिक सत्य यह नहीं है। प्रताप को इस तरह प्रस्तुत करना उसको

बौना बनाना एवं उसकी महानता को कम करना है। प्रताप का वास्तविक स्वरूप विदेशी शक्ति एवं निरंकुश सत्ता की दासता के विरुद्ध विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोगों का व्यापक संगठन बनाकर संघर्ष करने वाले योद्धा का स्वरूप है।

वस्तुतः किसी भी ऐतिहासिक पुरुष का सही मूल्यांकन उसके काल के विचारों, विश्वासों एवं मान्यताओं की रोशनी में ही किया जाता है। आधुनिक काल की राष्ट्र-सम्बंधी धारणा मध्ययुग की तत्संबंधी धारणाओं से सर्वथा भिन्न है। उस दृष्टि से अकबर के उदार एवं हितकारी प्रयत्नों को "राष्ट्रीय एकता" स्थापित करने का उदेश्य मान लेना सही नहीं होगा। उस काल में धार्मिक कट्टरता से पूर्ण विदेशी राज्यसत्ता के स्थान पर धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता से पूर्ण राज्यसत्ता कायम करना निस्संदेह अपने आपमें बड़ा साहसपूर्ण एवं उपकारी कार्य था, किन्तु उसके पीछे अकबर का मूल उदेश्य भारत में अपने शासन की जड़ें जमाना और अपने वंशीय राज्य को स्थायी, विस्तृत एवं सुदृढ़ बनाना था, जो उससे पूर्वगामी विदेशी शक्तियां अपनी अदूरदर्शी एवं असहिष्णुतापूर्ण नीतियों के कारण नहीं कर सकी थीं। यह तथ्य तत्कालीन विभिन्न फारसी तवारीखों के अध्ययन से भी प्रकट हो जाता है। इस वास्तविकता को मान लेने से अकबर द्वारा भातीय इतिहास में किये गये उदार कार्यों का महत्व कम नहीं हो जाता और न अकबर के इस ऐतिहासिक महत्व के कारण प्रताप द्वारा अकबर की विदेशी एवं निरंकुश सत्ता की दासता के विरुद्ध किये गये महान् स्वातंत्र्य-संघर्ष का महत्व कम हो जाता है।

अन्त में हम यह कह सकतें हैं कि राणा प्रताप विदेशी निरंकुश सत्ता की दासता के विरुद्ध स्वातंत्र्य संघर्ष में सर्वस्व होम करने वाला अमर सेनानी, विभिन्न जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता की नीति कार पालन करने वाला उदार शासक, स्वयं के सुख-चैन और हितों का त्याग का स्वदेश के हित के लिये भीषण अभावों एवं कष्टों का सामन करने वाला तपस्वी, अपने चरित्र, नैतिकता और त्याग के बल पर सामान्य जन का विश्वास हासिल कर उनका संगठन करने वाला सफल जननायक था।

महाराणा प्रताप व उनकी महानता

आज इस बात को लेकर बड़ी बहस की जा रही है कि राणा प्रताप को अपने युग का महान् व्यक्ति स्वीकार किया जाये या नहीं। प्रताप के आदर्शों, नीतियों, कार्यकलापों, उपलब्धियों आदि के सम्बन्ध में हमने विस्तृत विवेचना की है, जो उसके व्यक्तित्त्व की महानता को प्रकट करती है। प्रताप की एक भूल पर विशेष जोर दिया जाता है कि उसने अकबर के साथ नहीं मिलकर साम्राज्यी एकता के महान् कार्य में बाधा डाली। यदि हम स्पष्ट रूप से इस हकीकत को देख लें कि मुगल शासन के साथ मेवाड़ के असहयोग के लिए राणा प्रताप की स्वातंत्र्य-चेष्टा नहीं, अपितु बादशाह अकबर का अहंकार, उच्च प्रतिष्ठा की भावना और निरंकुश शासन की लिप्सा उत्तरदायी थी, तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। एक प्राचीन गौरवशाली राजवंश के शासक की लिप्सा उत्तरदायी थी, तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। एक प्राचीन गौरवशाली राजवंश के शासक की भावनाओं और आकांक्षाओं की उपेक्षा करके एवं उनको तुच्छ मान करके उसको अपनी बात मनाने के लिए बाध्य करने का अकबर का हठ, एक ऐसे ऐतिहासिक समझौते के मार्ग में रोड़ा बना, जिसके सम्पन्न होने पर भारतीय इतिहास के लिये बड़े सुपरिणाम हो सकते थे। महाराणा प्रताप ने सिद्धान्तों के आधार पर एक अत्यंत बलशाली शत्रु के अनवरत सैनिक आक्रमणों से उत्पन्न सभी प्रकार की विषम परिस्थितियों से निपटने के लिए दीर्घकाल के लिये जो सुव्यवस्थित प्रशासन आर्थिक-प्रबन्ध एवं सैन्य-संगठन किया, जिसके कारण उसने सफल युद्ध का संचालन करते हुए अपराजेय रहकर शत्रु की तमाम कार्यवाहियों को असफल कर दिया। यह उपलब्धि

किसी साधारण शासक के बस की बात नहीं थी। नकारात्मक दृष्टिकोण के बजाय प्रताप ने सदैव सकारात्मक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया। उदार एवं धर्म समभाव की राज्यनीति का पालन मेवाड़ में अधिक उत्तम रीति से हुआ। संकट काल के चलते हुए भी मेवाड़ में साहित्य-सृजन, ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल फलते-फूलते रहे, यह प्रताप की गौरवपूर्ण उपलब्धि थी। प्रताप का व्यक्तित्व धीर और गंभीर था। उसमें स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता के दुर्गुण नहीं दिखाई पड़ते। श्रेष्ठ आदर्शों एव नीतियों, उज्ज्वल चरित्र एवं व्यवहार तथा उच्च नैतिकता के गुणों से सम्पन्न प्रताप अपने युग का एक महान् आदर्श व्यक्ति था, जिसका कोई सानी नहीं था।

□

अध्याय- 21
महाराणा अमर सिंह व मुगल बादशाह

राणा प्रतापसिंह के सत्रह लड़के थे। अमरसिंह सबसे बड़ा था। इसलिए प्रतापसिंह के मरने के बाद सम्वत् 1652 सन् 1596 ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा। आठ वर्ष की आयु से लेकर प्रताप के मरने के समय तक अमरसिंह अपने पिता के पास रहा और जीवन के भयानक संकटों में उसने अपने दिन बिताये थे। इस समय उसके कई लड़के थे। प्रतापसिंह के मरने के आठ वर्ष बाद तक बादशाह अकबर जिन्दा रहा। उसके बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी। अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय तक उसने सफलता पूर्वक शासन किया। अपनी बुद्धिमानी और राजनीति के द्वारा उसने अपने राज्य को बहुत विस्तृत बना लिया था। यूरोप के बादशाहों में फ्रांस का चौथा हेनरी, स्पेन का पाँचवा चार्ल्स और इंगलैण्ड की रानी एलिजाबेथ को अकबर की समानता दी जाती है। रानी एलिजाबेथ और बादशाह अकबर में पत्र व्यहार भी होते थे। हेनरी और एलिजाबेथ के मन्त्रियों की तरह अकबर के मन्त्री भी सुयोग्य और राजनीतिज्ञ थे। फ्राँस के राजमन्त्री सूली की तरह मुगल साम्राज्य का मन्त्री बहराम खाँ समझदार और बहादुर था। उसी की योग्यता के द्वारा मुगल साम्राज्य की बहुत वृद्धि हुई। अकबर की उन्नति के इस प्रकार कई कारण थे।

राजा मानसिंह बादशाह अकबर से मिलकर और सभी प्रकार मुगल साम्राज्य की सहायता करके अकबर का दाहिना हाथ बन गया था। बादशाह की सेना में वह एक प्रसिद्ध सेनापति था और राजपूत राजाओं को अकबर की अधीनता में लाने के लिए उसने बहुत बड़ा काम किया। अपने इन कार्यों के द्वारा वह बादशाह का अत्यन्त विश्वास पात्र बन गया था। उसी के कारनामों के कारण राणा प्रताप के साथ युद्ध बन्द कर देने के बाद सम्राट अकब्र और राजा मानसिंह के बीच जीवन का एक संघर्ष पैदा हुआ। राजा मानसिंह की जो बहन मानबाई सलीम को ब्याही थी, उससे लड़का पैदा हुआ और उसका नाम खुसरो था। वह मानसिंह का भान्जा था। मानसिंह अपने भान्जे को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने की कोशिश में था। उसकी इस कोशिश का रहस्य अकबर को मालूम हो गया। अकबर को इससे बहुत आघात पहुँचा और उसने मानसिंह को किसी प्रकार मार डालने का निश्चय किया। उसने माजूम बनवाई और उस माजूम के आधे हिस्से में उसने विष मिलवा दिया। होनी को कोई नहीं जानता। अकबर ने विष मिली हुई माजूम खिलाकर मानसिंह को मार डालने की बात सोची थी। परन्तु इसका उलटा हुआ। संयोग से विष मिली हुई माजूम अकबर स्वयं खा गया। जिससे मानसिंह तो बच गया लेकिन अकबर की मृत्यु हो गयी।[1]

1. इस घटना की पुष्टि अन्य सांक्ष्यों से नहीं होती है। केवल बूंदी के भट्ट कवियों के साहित्य में यह घटना दी गई है।

सिंहासन पर बैठकर अमरसिंह ने अपने राज्य की उन्नति के कई कार्य किये। खेतों में सुधार करवाया। भूमि के अनुसार उन पर कर लगाया गया। जिन सामन्त और सरदारों ने राणा प्रताप की सहायता करके कठिनाइयों का सामना किया था, उनको नयी-नयी जागीरें दी गयीं। इन दिनों में अमरसिंह के सामने जीवन का कोई संघर्ष न था। वह शांति और विश्राम से अपना जीवन बिता रहा था। पिछोला झींल के किनारे प्रताप ने रहने के लिए झोंपड़ियाँ बनवाई थीं, अमरसिंह ने वहाँ पर अपने लिए एक छोटा-सा राजमहल बनवाया।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठे हुए अभी चार वर्ष भी न बीते थे कि जहाँगीर ने अपने घरेलू झगड़ों को दूर किया और अमरसिंह पर आक्रमण करने की बात वह सोचने लगा। उसे मालूम था कि अमरसिंह शांतिपूर्वक बैठा हुआ है। उसके पास युद्ध की कोई तैयारी नहीं है। इस प्रकार का अवसर पाकर दिल्ली की मुगल सेना मेवाड़ की तरफ रवाना हुई। इस समाचार के मिलते ही अमरसिंह घबरा उठा। उसने इस प्रकार के आक्रमण का कोई अनुमान न किया था। अपने महल में रहकर वह संतोष का जीवन बिता रहा था। इन दिनों में उसकी विलासिता बढ़ गयी थी। शांति और संतोष के दिनों में अकर्मण्यता का पैदा होना स्वाभाविक होता है। अमरसिंह आलसी हो गया था। अनेक खुशामदी लोगों के पास रहने और उनकी झूठी प्रशंसाओं को सुनते-सुनते वह इस प्रकार की बातों को सुनने का अभ्यासी हो गया था।

मुगल सेना के आक्रमण का समाचार सुनकर अमरसिंह संकट में पड़ गया। इस समय क्या करना चाहिए, इसका वह कुछ निर्णय न कर सका। जो खुशामदी लोग उसके पास रहा करते थे, वे अमरसिंह को उसकी निर्बल शक्तियों का आभास करा कर उत्साहहीन करने लगे। अमरसिंह को स्वयं अपने चारों ओर निर्बलता दिखायी देने लगी।

आक्रमण के लिए आने वाली मुगल सेना का समाचार पाकर मेवाड़ के सरदार अमरसिंह के पास पहुँचे। वह जिस महल में रहा करता था और जिसको उसने स्वयं बनवाया था, उसका नाम उसने 'अमर-महल' रखा था। उसी अमर-महल में चित्तौड़ के सरदार एकत्रित हुए। उन्होंने देखा कि अमरसिंह के पास मुगलों के होने वाले आक्रमण को रोकने के लिए कोई तैयारी नहीं है। अमरसिंह को शांत देखकर सरदारों ने मुगल सेना के आक्रमण की बात कही। परन्तु अमरसिंह ने उसके सम्बन्ध में कुछ सही उत्तर न दिया।

अमरसिंह की यह अवस्था देखकर सरदारों को बड़ा असंतोष हुआ। इसी समय सलुम्बर सरदार ने उत्तेजना पैदा करने वाली बातें अमरसिंह से कहीं और अपने असंतोष में उसने यह भी कहा कि आप राणा प्रतापसिंह के बड़े लड़के हैं। आप सीसोदिया वंश के वंशज हैं। इस वंश ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए किस प्रकार के बलिदान किये हैं, वह बहुत कुछ आपने अपने नेत्रों से देखा है। आक्रमण करने के लिए मुगल सेना सिर पर आ गयी है। ऐसे संकट के समय आपका चुपचाप बैठे रहना हम सबके निकट भय और असंतोष पैदा कर रहा है। आपको तुरंत युद्ध की तैयारी करनी चाहिए।

अमरसिंह इन बातों को चुपचाप सुनता रहा। यह देखकर सलुम्बर सरदार को बहुत क्रोध आया। उसने दाहिना हाथ पकड़कर अमरसिंह को सिंहासन के नीचे की तरफ खींचा और कहा "सरदारों, राणा प्रतापसिंह के पुत्र को घोड़े पर बिठाकर मेवाड़ के कलंक की रक्षा करो।"

सलुम्बर सरदार के इस व्यवहार से अमरसिंह ने अपना अपमान अनुभव किया। परन्तु सलुम्बर सरदार ने उसकी कुछ भी परवाह न की। पास खड़े हुये अन्य सरदार लोग यह सब देखते रहे। सबके आग्रह करने पर अमरसिंह सिंहासन से उतरा और घोड़े पर

सवार हुआ। सभी सरदार अमरसिंह के साथ उस स्थान से रवाना हुए और पर्वत के नीचे की तरफ चलने लगे। रास्ते में सरदारों के साथ बहुत-सी बातें हुईं। उनको सुनकर अमरसिंह में उत्साह पैदा हुआ। सरदारों के मुँह से उसने सुना कि जिस गौरव की रक्षा करने के लिए राणा प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम दिनों तक भीषण संकटों का सामना किया था, आज उस गौरव को नष्ट करने के लिए फिर मुगल सेना ने आक्रमण किया है। सरदारों ने कहा, हम लोग जब तक जीवित हैं, उस गौरव को कभी भी नष्ट न होने देंगे।”

अमरसिंह की समझ में सब बातें आ गयीं। उसने प्रसन्न होकर और उत्साह में आकर सरदारों के साथ परामर्श किया। उसने समझा कि हम लोगों के पास विशाल सेना नहीं है, परन्तु जितने भी राजपूत और शूरवीर हैं अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्राणों का बलिदान देने को तैयार हैं। अमरसिंह के हृदय में उत्साह की वृद्धि हुई। अपनी राजपूत सेना को लेकर वह तेजी के साथ शत्रुओं से युद्ध करने के लिए रवाना हुआ।

मुगल सेना देवीर नामक स्थान पर मौजूद थी। राजपूत सेना ने वहां पहुँचकर एक साथ भयानक आक्रमण किया। खानखाना का भाई मुगल सेना का सेनापति था। देवेरा पर्वत के पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ और भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ से बहुत देर तक युद्ध होता रहा। उस मारकाट में दोनों सेनाओं के बहुत से आदमी मारे गये। सायंकाल का समय हो रहा था। राजपूत सरदारों ने इस समय भयानक मारकाट की। उससे बहुतेरे शूरवीर मुगल मारे गये। दिल्ली की सेना पीछे हटकर भागने लगी और थोड़ी ही देर में युद्ध समाप्त हो गया। सम्वत् 1664 सन् 1608 ईसवी को इस संग्राम में राजपूतों की विजय हुई। इस युद्ध में राजपूत सेना के कर्ण ने अपनी वहादुरी का परिचय दिया। वह राणा का चाचा था और उसी से कर्णावत गोत्र की उत्पत्ति हुई।

इस युद्ध में पराजित होने के कारण दिल्ली में बहुत असंतोष पैदा हुआ। बादशाह जहाँगीर ने इस पराजय की आशा न की थी। इसलिए एक वर्ष के बाद सम्वत् 1665 के बसन्त में युद्ध की दिल्ली में फिर तैयारी की गयी और एक विशाल मुगल सेना को लेकर अब्दुल्ला नामक सेनापति मेवाड़ की तरफ चला। इस आक्रमण का समाचार राणा अमरसिंह को मिला। उसी समय उसने अपने सरदारों को बुलाकर एकत्रित किया और युद्ध की तैयारी करके वह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। रणपुर नाम के पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ और मार-काट आरम्भ हो गयी।

दोनों तरफ से बहुत समय तक भीषण युद्ध हुआ। अन्त में राजपूतों के आगे बढ़ने से मुगल सेना पीछे हटने लगी। उस समय राजपूतों ने मुगलों पर भयानक आक्रमण किया। उसके फलस्वरूप लगभग सम्पूर्ण मुगल सेना मारी गयी। जो मुगल सैनिक बाकी बचे, वे युद्ध से भाग गये।[1]

देवीर और रणपुर के युद्धों में मुगलों की भयानक पराजय हुई। इस हार से दिल्ली में अनेक प्रकार की चिन्तायें होने लगीं। बादशाह जहाँगीर चिन्तित होकर तरह-तरह की बातें सोचने लगा। उसने किसी प्रकार अमरसिंह को नीचा दिखाने के लिए अपने मंत्रियों से परामर्श किया। उसने सागर जी नामक राजपूत को राणा बनाकर चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया। इस सागर जी के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। वह राणा प्रताप का भाई

1. इस लड़ाई में राजपूतों की तरफ से जो सरदार मारे गये, उनमें प्रमुख इस प्रकार हैं—देवगढ़ के ठाकुर दूध संगावत, नारायण दास, सूरजमल, यशकरण, शक्तावत सरदार, भानुसिंह का पुत्र पूर्णमल, राठौड़ हरिदास, सादड़ी का राजा झाला, कटिरदास कछवाहा, बेदला का चौहान केशवदास, मुकुन्ददास राठौड़ और जयमाल

था और बहुत पहले अकबर से मिल गया था। बादशाह जहाँगीर ने स्वयं सागर जी का अभिषेक किया और उसे चित्तौड़ का राजा घोषित किया।

चित्तौड़ के सिंहासन पर सागर जी को बिठाकर बादशाह जहाँगीर ने समझा था कि मेवाड़ के राजपूत सागर जी को अपना राजा मान लेंगे और इस प्रकार मेवाड़ राज्य मुगलों की अधीनता में आ जायेगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेवाड़ की प्रजा पहले से ही इस बात को जानती थी कि सागर जी मुगलों से मिल गया है। इसलिए समस्त मेवाड़ के लोग सागर जी से घृणा करते थे। चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठने से सागर जी से मेवाड़ के लोग और भी अधिक घृणा करने लगे। अभिषेक के उत्सव में राज्य का कोई भी आदमी शामिल न हुआ। चित्तौड़ में रहकर सागर जी ने स्वयं इस बात को समझा कि यहाँ के लोग मुझको पापी और अपराधी समझते है।

इस प्रकार के वातावरण में सागर जी ने चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठकर सात वर्ष तक राज्य किया। परन्तु उसको स्वयं इस दशा पर संतोष और सुख न था। इससे पहले, जब वह चित्तौड़ का राणा नहीं बना था और मुगल दरबार में रहता था तो वह प्रसन्न था। चित्तौड़ में आकर और सिंहासन पर बैठकर प्रजा की घृणा के कारण वह रात-दिन असंतुष्ट रहने लगा। मनुष्य अपने जीवन में सबसे पहले सम्मान चाहता है जहाँ पर वह रहता है, यदि वहाँ के लोग उससे घृणा करते हैं तो उसके सारे वैभव उसको अपने अपमान के रूप में दिखायी देते हैं।

चित्तौड़ में रहकर सागर जी ने भली प्रकार इस बात को समझा कि यहाँ के लोग अमर सिंह को ही अपना राजा मानते हैं। इस दशा में नाम के लिए यहाँ शासन करना मेरे लिए सिवा अपमान के और कुछ नहीं है। इस प्रकार की रात-दिन बहुत-सी बातें सोचकर सागर जी ने अमरसिंह को बुलाया और चित्तौड़ का राज्याधिकार उसे सौंप दिया।

सागर जी अपने अपमानित जीवन से बहुत दुःखी हो गया था। इसलिए वह चित्तौड़ से निकल कर कंधार के पहाड़ पर चला गया और वहाँ वह एकान्त जीवन बिताने लगा। परन्तु वहाँ पर भी उसको शान्ति न मिली। उसकी इस दशा में दिल्ली के बादशाह ने उसको अपने दरबार में बुलाया और बादशाह जहाँगीर ने स्वयं उसका बहुत तिरस्कार किया। उस अपमान से सागर जी बहुत दुःखी हुआ। अब उसको अपना जीवन भार मालूम होने लगा। इसलिए बादशाह जहाँगीर के सामने सागर जी ने तलवार से अपने प्राणों का अन्त कर लिया।

सागर जी के द्वारा अमरसिंह को चित्तौड़ का सिंहासन मिल गया। परन्तु उससे उसको प्रसन्नता न हुई। वह जानता था कि शक्तिशाली मुगल सम्राट की शत्रुता के कारण मैं इस सिंहासन पर सकुशल अधिक समय तक न रहने पाऊंगा। उसे दिल्ली की सेना से प्रत्येक समय भय बना रहता। यद्यपि चित्तौड़ को प्राप्त करने के बाद राणा अमरसिंह ने मेवाड़ राज्य के अस्सी दुर्गों और नगरों को अपने अधिकार में कर लिया था। इन दुर्गों में अन्तला नाम का दुर्ग प्राप्त करने में राणा अमरसिंह के दो श्रेष्ठ सामन्तों में भयानक संघर्ष हुआ था। राणा की सेना में जो राजपूत सरदार थे, वे राजपूतों की बहुत-सी शाखाओं और उपशाखाओं में विभाजित थे। उनमें चँड़ावत और शक्तावत नाम की दो राजपूत शाखायें इन दिनों में शक्तिशाली हो रही थीं। दोनों राणा के दरबार में श्रेष्ठता चाहती थीं। इसी प्रधानता को प्राप्त करने के सम्बन्ध में चूड़ावत और शक्तावत सरदारों में उस समय संघर्ष पैदा हुआ, जब दिल्ली के मुगल सिंहासन पर जहाँगीर बादशाह था और वह दो बार अमरसिंह की राजपूत सेना से पराजित हो जाने के कारण तीसरे आक्रमण की तैयारी कर रहा था।

राणा अमरसिंह की सेना में इस बात का झगड़ा उठा कि हारावल का अधिकारी कौन है। इस हरावल को चूँडावत सरदार अपने लिए चाहता था और शक्तावत सरदार अपने लिए चाहता था। इस बात को लेकर दोनों राजपूत सरदारों में झगड़ा होने लगा। हरावल का अभिप्राय सेना के आगे का भाग है। सरदारों में जो सब से श्रेष्ठ होता था उसी को हरावल का अधिकारी माना जाता था। यह अधिकार सेना में श्रेष्ठता का परिचय देता था।

इस विवाद का तथा उसके परिणाम स्वरूप चूँडावतों और शक्तावतो के प्रमुख सरदारारें के मारे जाने की घटना का विस्तृत वर्णन अध्याय-8 मे दिया जा चुका है।

यहाँ पर शक्तावत लोगों के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। राणा उदयसिंह के पच्चीस लड़के थे, उनमें शक्तिसिंह दूसरा था। वह बचपन से ही तेजस्वी और निर्भीक था। उसकी छोटी अवस्था में ज्योतिषियों ने राणा उदयसिंह से कहा था कि तुम्हारा यह लड़का मेवाड़ के लिए कलंक होगा। शक्तिसिंह उस समय से राणा को खटकने लगा था। एक समय राणा ने उसको मार डालने का प्रयत्न किया था। परन्तु उस समय सलुम्बर सरदार ने राणा से शक्तिसिंह की रक्षा की थी। एक समय शिकार खेलते हुए प्रतापसिंह और शक्तिसिंह में झगड़ा हो गया और उसके कारण जंगल में दोनों भाई एक दूसरे के प्राणघातक हो गये। उस समय मेवाड़ राज्य के एक वृद्ध मन्त्री ने उन दोनों को रोकने की कोशिश की। लेकिन जब उसे सफलता न मिली तो वृद्ध मन्त्री ने तलवार मार कर वहीं पर अपने प्राण दे दिए। मन्त्री की इस प्रकार मृत्यु से झगड़ा तो रुक गया, परन्तु प्रतापसिंह ने मेवाड़ राज्य छोड़कर चले जाने के लिए शक्तिसिंह को आदेश दिया। शक्तिसिंह उसी समय मेवाड़ राज्य से निकलकर चला गया और दिल्ली के मुगलों से मिलकर वह बादशाह अकबर के यहाँ रहने लगा।

प्रतापसिंह ने उस मन्त्री का अंतिम संस्कार किया और उसके लड़के को जीवन-निर्वाह के लिए एक जागीर दे दी। शक्तिसिंह अकबर के यहाँ जाकर रहने लगा और हल्दीघाटी के युद्ध में अंतिम समय उसने खुरासानी तथा मुलतानी सैनिकों से अपने भाई प्रतापसिंह की रक्षा की। उसके बाद दोनों फिर स्नेहपूर्वक रहने लगे।

शक्तिसिंह के सत्रह पुत्र हुए। उनमें परस्पर स्नेह और बन्धुत्व का भाव न था। शक्तिसिंह अपने परिवार के साथ भिनसोर के दुर्ग में रहा करता था। वहाँ पर उसके लड़कों में झगड़ा पैदा हुआ और उस झगड़े के कारण एक भाई अचलसिंह अपने छोटे पन्द्रह भाइयों के साथ वहाँ से ईडर राज्य की तरफ चला गया। उन दिनों में ईडर राज्य राठौड़ों के अधिकार में था। उस राज्य में पहुँचने के पहले ही रास्ते में अचलसिंह की गर्भवती स्त्री से एक बालक पैदा हुआ। उसका नाम आशा रखा गया।

इसके पश्चात् अचलसिंह सब को लेकर ईडर राज्य पहुँचा। वहाँ के राजा ने बड़े सम्मान के साथ उसको अपने यहाँ स्थान दिया। शक्तिसिंह के लड़कों ने शक्तावत गोत्र की प्रतिष्ठा की। जिस समय अमरसिंह ने बादशाह जहाँगीर से लड़ने के लिए सेना का संगठन करना शुरू किया था, उस समय शक्तिसिंह के लड़के ईडर से बुला लिए गये और वे उदयपुर में आकर रहने लगे।

इन्हीं शक्तावत लोगों के साथ चँडावत सरदार का विवाद पैदा हुआ था और उस विवाद के फलस्वरूप अन्तला दुर्ग पर जो मुसलमानों के अधिकार में था, विजय हुई। जो शक्तावत लोग अन्तला दुर्ग पर अधिकार करने गये थे, शक्तिसिंह का लड़का बल्ल उनका सरदार था और उसने दुर्ग को प्राप्त करने के लिए अपने प्राण दे दिये। शक्तावत वंश

धीरे-धीरे इतना विशाल हो गया कि शक्तिसिंह के तीन-चार पीढ़ी बाद मेवाड़ के राणा ने आवश्यकता के समय दस हजार शक्तावत वीरों को युद्ध में भेजा था।

राणा अमरसिंह से लगातार पराजित होने के बाद भी बादशाह जहाँगीर के उत्साह में कोई कमी न आयी। वह राजपूतों के अहंकार को नष्ट करने की बात बराबर सोचता रहा। इसके कुछ ही समय बाद मुगलों की एक बड़ी फौज तैयार हुई और राणा अमरसिंह पर आक्रमण करने के लिए वह भेजी गयी। उस फौज का सेनापति जहाँगीर का लड़का परवेज था। यह सेना अजमेर में जाकर रुकी। बादशाह जहांगीर ने उस समय परवेज को अपने पास बुला कर उत्साह पैदा करने वाली बहुत-सी बातें कहीं और समझाया– "तुम इस हमले में अपनी कोई ताकत उठा न रखना। मुझे उम्मीद है कि तुमको कामयाबी हासिल होगी। लेकिन अगर राणा अमरसिंह अथवा उसका लड़का कर्ण तुम्हारे पास आए तो तुम खातिरदारी का व्यवहार उसके साथ करना और उस अदब-कायदे को भूल न जाना ज़ो एक बादशाह की तरफ से दूसरे बादशाह के लिये जरूरी होता है। इस बात का भी ख्याल रखना कि दुश्मन के मुल्क को तुम्हारी फौज के सिपाहियों से किसी किस्म का नुकसान न पहुँचे।"

मुगल सेना के आने का समाचार पाकर अमरसिंह ने युद्ध की तैयारी की और अपने सामन्तों तथा सरदारों के साथ वह मुगल सेना का मुकाबला करने के लिये रवाना हुआ। अरावली के एक पहाड़ी रास्ते पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ और खामनोर नामक स्थान पर युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों तरफ से भयानक मारकाट हुई। अन्त में मुगलों की विशाल सेना लगतार पीछे हटने लगी। बादशाह के बहुत-से आदमी मारे गये। इसके बाद दिल्ली की फौज अजमेर की तरफ चली गयी।

बादशाह जहाँगीर ने अपने लड़के परवेज के साथ मुगल सेना भेज कर यह आशा की थी कि इस लड़ाई में मुगलों की जीत होगी। परन्तु उसका उलटा हुआ। अबुल फ़जल ने मुगल सेना की हार को मंजूर करते हुए लिखा है– "शाहजादा परवेज लड़ाई से भागने के बाद एक ऐसे पहाड़ी मुकाम पर पहुँच गया, जो उसके लिये बहुत खतरनाक साबित हुआ। उस हालत में शाहजादा परवेज वहाँ से निकल कर किसी तरह अपनी जान बचा सका।"

परवेज की सेना के हार जाने के बाद बादशाह ने दूसरी फौज तैयार की और अपने पोते महावत खाँ को उसका सेनापति बना कर राजपूतों से लड़ने के लिये भेजा। महावत खाँ बहुत बहादुर था और उसने कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी। लगातार राजपूतों से हार होने के कारण बादशाह ने महावत खाँ को अपनी फौज के साथ रवाना किया।

महावत खाँ ने राजपूतों की सेना के साथ युद्ध किया लेकिन आखिर में उसकी सेना की पराजय हुई। परवेज का बेटा महावत खाँ इस लड़ाई में मारा गया। बादशाह की फौज ने भाग कर दिल्ली में हाल बताया। उसे सुन कर जहाँगीर जरा भी निराश न हुआ। उसके पास न तो धन की कमी थी और न फौज की। एक फौज के हार जाने पर वह दूसरी फौज को राजपूतों से लड़ने के लिए भेज देता था।

मुगलों से लगातार युद्ध करके राणा अमरसिंह की शक्तियाँ अब क्षीण हो गयी थीं। उसके पास सैनिकों की अब बहुत कमी थी। शूरवीर सरदार और सामन्त अधिक संख्या में मारे जा चुके थे। लेकिन राणा अमरसिंह ने किसी प्रकार अपनी निर्बलता को अनुभव नहीं किया। उसने सिंहासन पर बैठने के बाद और राणा प्रतापसिंह की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की शक्तिशाली मुगल सेना के साथ सत्रह युद्ध किये और प्रत्येक युद्ध में उसने शत्रु की सेना को पराजित किया।

लगातार युद्धों में पराजित होकर बादशाह जहाँगीर ने एक शक्तिशाली सेना अपने बहादुर बेटे खुर्रम के अधिकार में भेजी। यही खुर्रम बाद में शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। वह युद्ध में लड़ाकू और समझदार था। खुर्रम की फौज के पहुँचते ही मेवाड़ राज्य में घबराहट पैदा हुई। राजपूत इन दिनों में अपनी सैनिक निर्बलता को भली भांति अनुभव करते थे। लड़ाई के अस्त्र-शस्त्रों की भी बहुत कमी थी। बहुत समय से लगातार युद्ध करते हुए अगणित राजपूत अब तक युद्ध में मारे जा चुके थे और जो बाकी रह गये थे, वे बहुत थक गये थे। लगातार युद्धों के कारण मेवाड़ के राजपूतों के साहस निर्बल पड़ रहे थे। परन्तु जो सरदार और सामन्त अभी जीवित थे, वे युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। धन की कमी को किसी प्रकार पूरा किया और मेवाड़ के राजपूतों को एकत्रित करके युद्ध की तैयारी की गयी।

राजपूत सेना युद्ध करने के लिए मैदान में आ गयी। दोनों तरफ से सैनिक आगे बढ़े और भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। शाहजादा खुर्रम के साथ जो मुगल सेना आयी थी, वह बहुत बड़ी थी। उसके सामने राजपूतों की सेना कुछ भी न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक युद्ध करने के बाद राजपूत मारे गये और अन्त में अमरसिंह की पराजय हुई। इसके बाद मेवाड़ और दिल्ली– दोनों राज्यों के बीच के जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन हुए और वे परिवर्तन कैसे हुए, इस बात को बहुत सही-सही जानने के लिए बादशाह जहाँगीर की लिखी हुई पंक्तियों का यहाँ पर उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है, जिनको उसने स्वयं अपनी लेखनी से अपने रोजनामचे में लिखा था।

"अपनी हुकूमत के आठवें साल हिजरी 1022 सन् 1613 ईसवी में मैंने ख्याल किया कि अजमेर की तरफ रवाना होने के पहले मैं अपने लड़के खुर्रम को भेज दूँगा। सफर का इन्तजाम हो जाने के बाद कई तरह के कीमती खिलत, एक हाथी, एक घोड़ा, एक तलवार और एक ढाल मैंने उसको दी। जो फौज उसकी मातहती में थी, उसके अलावा बारह हजार सवार ज्यादा उसको दिये और अजीम खाँ को उसका सिपहसालार बनाकर उसके मातहत लोगों को इनाम दिये।"

'हिजरी 1023 सन् 1614 ईसवी को मैं अपने तख्त पर था और यह साल मेरी हुकूमत का नवाँ वर्ष था कि मेरे लड़के ने आलमगुमान हाथी के साथ दूसरे अठारह हाथी और कुछ आदमी जिनमें कुछ औरतें भी थीं और जो लड़ाई के वक्त गिरफ्तार की गयी थी, मेरी नजर में भेजे। दूसरे दिन उस आलमगुमान हाथी पर बैठ कर मैं शहर में घूमने के लिए गया। उस मौके पर बहुत-सी अशर्फियाँ लुटाई गयीं।"

"इसके बाद मुझे खुशखबरी मिली कि राणा अमरसिंह ने सुलह का पैगाम भेजा है और वह मेरी मातहती मंजूर करने के लिए खुशी से तैयार है। मेरे खुशकिस्मत लड़के ने राणा के राज्य में अपनी फौज के बहुत-से नाके कायम कर दिये हैं और उन नाकों पर अपने ही आदमी इन्तजाम कर रहे हैं। मुल्क की आबहवा खराब है और तमाम राज्य बंजर पड़ा हुआ है। वहां पहुँचने में भी परेशानी होती है। इस वजह से कुल मुल्क को कब्जे में लाना नामुमकिन मालूम हुआ। लेकिन मेरी फौज ने मौसमों की कुछ परवाह न करके तमाम मेवाड़ को अपने काबू में कर लिया। वहाँ के कुछ राजपूतों और दीगर लोगों की औरतों के साथ उनके लड़के भी कैद किये गये। राणा इन बातों से बहुत नाउम्मीद हो गया और यह ख्याल करके कि अगर इसी तरह की हालत कायम रही तो या तो मुल्क छोड़ना पड़ेगा या कैद में जाना होगा, बहुत आजिज होकर सुलह की दरख्वास्त की। अपने दो सरदारों को खुर्रम के पास भेज कर राणा ने कहला भेजा कि अगर मुझे माफ किया जाये तो जिस तरीके से दूसरे हिन्दू राजा मातहती में हैं, मैं भी उसके लिये तैयार हूँ और इसके लिये अपने लड़के कर्ण को

दरबार में भेज सकता हूँ। मेरा बेटा दरबार में रहेगा, बुढापे के सबब से मैं खुद वहाँ नहीं रह सकता। इसके लिए मैं माफी चाहता हूँ।"

"मेरी हुकूमत के जमाने में चित्तौड़ मातहत हुआ, इसके लिए मुझे बड़ी खुशी है और हुक्म दिया कि मेवाड़ के पुराने मुश्तहक महरूम नहीं रहेंगे। इस बात का मुझको कामिल यकीन है कि राणा अमरसिंह और उसके बुजुर्गों को अपनी ताकत का पूरा इतकाद था। उनको पहाड़ी लोगों की ताकत का पूरा यकीन था, वे अपनी कौम के नाम पर मगरूर थे, वे हिन्दुस्तान के दूसरे राजाओं को राजा नहीं समझते थे, उन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था। ऐसी हालत में इस अच्छे मौके को हाथ से जाने देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। इसलिए फौरन अपने लड़के को इख्तियारात देकर भेजा और राणा को माफी दी। साथ ही एक फरमान भेज कर राणा को लिख दिया कि आप मेरे साथ बिना किसी फिक्र के रहेंगे। उस फरमान पर मैंने अपना पंजा भी लगा दिया। मैंने अपने लड़के को ताकीद कर दी कि उस मुअज्जिज राणा की मंशा और ख्वाहिश के मुआफिक सब बातें काम में लाई जावें।"

"मेरे लड़के ने यह फरमान और एक चिट्ठी सूपकर्ण और हरिदास के जरिये से वहाँ भेजी और इन दोनों सरदारों के साथ शुक्रउल्ला व सुन्दरदास को भी रवाना किया। उसने राणा को कहला भेजा कि बादशाह के इस दस्तखती परवाने को कबूल करें। बाद इसके कुछ तारीख को राणा साहब का शाहजादे के पास आना करार पाया।"

"शिकार खेलने के लिए जब मैं अजमेर गया, उस वक्त शहजादे खुर्रम का मुहम्मद बेग नामी नौकर मेरे पास आया। उसने खुर्रम की दस्तखती एक चिट्ठी देकर मुझसे कहा कि राणा ने शाहजादा साहब से मुलाकात की थी।"

"इस खबर को सुनते ही मैंने मुहम्मद बेग को एक हाथी, एक घोड़ा और एक तलवार इनाम में दी और उसको जुलफिकार-खाँ की पदवी दी।"

"सुलतान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह और राजकुमार कर्ण की मुलाकात और बेगम नूरजहाँ का कर्ण को इज्जत के साथ ओहदा देने का बयान।"

"राणा अमरसिंह ने तारीख 26 इकशम्बा के रोज बादशाहत के दूसरे मातहत राजाओं की तरह इज्जत और लियाकत के साथ शाहजादा से मुलाकात की। मुलाकात के वक्त राणा साहब ने शाहजादा खुर्रम को एक बेशकीमती पदमराग, बहुत-से हथियार, बड़ी कीमत के हाथी और नौ घोड़े खिराज में दिये। शाहजादा ने भी उसको हलीमियत और इज्जत से कबूल किया। ,राणा ने शाहजादे के घुटनों को पकड़ कर माफी चाही। खुर्रम ने भी अच्छी तरह से उनको समझा-बुझाकर दिलासा दिया और एक हाथी, कई घोड़े और एक तलवार व खिलअत भी उनको दी। राणा साहब के साथ में जो राजपूत थे; उनके लिये भी एक सौ बीस खिलत, पचास घोड़े और रत्नों से जड़े हुए बारह सरपेंच (कलंगी) भेजे गये। अगरचे इन लोगों में सौ आदमियों से ज्यादा इनाम पाने के लायक नहीं थे तो भी यह सब सामान उनमें बाँट दिया गया। इन राजा लोगों में एक रिवाज चला आता है कि बाप-बेटे दोनों एक साथ हम लोगों की मुलाकात को नहीं आते। राणा ने भी इस रिवाज के मुताबिक काम किया। वे अपने लड़के को साथ नहीं लाये। उस दिन सुलतान खुर्रम ने अमरसिंह को रुखसत कर दिया। उस वक्त उसने वलीअहद कर्ण के भेज देने का अहद पैमान हो लिया। वक्त पर कर्ण आया। हाथी, तलवार और दूसरे हथियारों के सिवा तरह-तरह के खिलत उसको दिये गये। उस दिन ही शाहजादे के साथ वह मुझसे मुलाकात करने के लिए आया।"

"सुलतान खुर्रम ने मुझसे मुलाकात करके कहा कि अगर हुजूर हुक्म दें तो राजकुमार कर्ण आप की कदमबोसी हासिल करे। मैंने उसको लाने का हुक्म दिया। वह आजजी और अदब के साथ आया। बादजाँ सुलतान खुर्रम की सिफारिश से मैंने उसको अपनी दाहिनी तरफ बिठा लिया और एक उमदा खिलत दी। राजकुमार इसलिए शरमाया कि वह सख्त पहाड़ी मुल्कों में रहने के सबब दरबार के कायदों से महज नावाकिफ और ऐश आरामों के सामानों से बिलकुल महरूम था। दरबार शाही के दबदबे को उसने कभी नहीं देखा था। वह बहुत कम बोलता और हम लोगों के साथ बहुत कम मिलना चाहता था। राजकुमार कर्ण के दिल में अपना यकीन कराने के लिए मैं रोज-रोज उसको अपनी कोशिश और अपनी मुहब्बत का एक नमूना दिखाता था। उसके मुकर्रर होने से एक दिन बाद मैंने उसको जवाहरात से जड़ी हुई एक छुरी और तीसरे दिन एक ईराकी घोड़ा दिया। इसी दिन मैं उसको बेगम नूरजहाँ के पास ले गया। नूरजहाँ ने भी राजकुमार को सजा-सजाया हाथी, घोड़ा, तलवार और बहुत से जवाहरात इनाम में दिये।"

"इस ही दिन मैंने भी उसको मोतियों का एक हार और दूसरे दिन हाथी बतौर इनाम में दिया। मेरी जियादा ख्वाहिश थी कि शहजादे को नफीस और उम्दा-उम्दा सामान दिया जावे। जिस वक्त मुझको कोई खूबसूरत और उम्दा तोहफा मिलता, मैं फौरन राजकुमार को दे देता। एक बार मैंने उसको तीन बाज और तीन तुरा जानवर दिये। वह जानवर यहाँ तक पोस मान गये थे कि हाथ बढ़ाते ही हाथ पर आकर बैठ जाते थे। एक सजोबा और दो कीमती अंगूठियाँ भी उसको दी गयीं और इसी महीने की पिछली तारीख को मैंने गलीचे, खूबसूरत जरी के काम की आराम कुर्सियाँ, अतर की शीशियाँ, तिलाई बरतन और दो गुजराती बैल दिये।"

"दसवाँ साल। इस वक्त कर्ण को उसकी जागीर में जाने के लिए छुट्टी दी। रुखसत के वक्त एक हाथी, एक घोड़ा और एक मोतियों का हार जिसकी कीमत पचास हजार रुपये थी, दिया। उस बार कर्ण जितने दिन तक मेरे गेरबार में रहा, उतने अरसे में उसको जितना सामान मेरे यहाँ से मिला, उसकी कीमत दस लाख से ज्यादा होगी, उसमें उस इनाम और सामान की कीमत नहीं लगाई गयी है जो शाहजादे खुर्रम ने राजकुमार को दिया था। मैंने मुबारक खाँ को कर्ण के साथ रवाना किया और उसकी मारफत राणा साहब को एक हाथी व घोड़े वगैरह और कुछ पोशीदा खबरें भी भेजीं।"

"हिजरी सन् 1024 सफर महीने की आठवीं तारीख को शाहजादे कर्ण के लिए पाँच हजारी मनसबदारी दी गयी। इस वक्त मैंने उसको एक कंठा भी इनाम में दिया था जिसमें पन्ने लगे हुए थे।"

"बाद इसके मुहर्रम की 24 तारीख को (सन् 1615 ईसवी) कुमार कर्ण का लड़का जगतसिंह जिसकी उम्र बारह वर्ष की थी, दरबार में आया। उसने अदब के साथ आदाब बजा लाकर अपने वालिद और दादा की अर्जी पेश की। उसके आली खानदान में पैदा होने का सबूत साफ-साफ उसके चेहरे से जाहिर हो रहा था। उसके साथ बर्ताव मेहरबानी से किया गया, मैं तरह-तरह की बख्शीशें देकर उसको खुश करने लगा।"

"सावन के दसवें दिन जगतसिंह मेरी इजाजत लेकर अपने मुल्क को गये। वक्त रुखसत तक मैंने उसको बीस हजार रुपये, एक घोड़ा, हाथी और तरह-तरह के खिलत दिये। राजकुमार कर्ण के उस्ताद हरिदास झाला को पाँच हजार रुपये, एक घोड़ा और खिलत तथा उसी की मारफत राणा के पास सोने की छः मूर्तिया भेजीं।"

"तारीख 28 रवि-उल-अव्वल। आज मेरी सतनत का ग्यारहवाँ साल है। मेरे हुक्म से राणा साहब और उनके लड़के कर्ण की दो मूर्तियाँ बनायी गयीं, ये मूर्तियाँ संगमरमर की बनी थी। जिस दिन वह दोनों मूर्तियाँ तैयार करके मेरे पास लाई गयीं, उसी दिन की तारीख उन पर खुदवा कर उन्हें आगरा के बाग में फरोकश करने का हुक्म दिया।"

"मेरी सलतनत के ग्यारहवें वर्ष में एतमादखाँ ने मुझको लिख भेजा कि सुलतान खुर्रम राणा जी के मुल्क में गये। वहाँ पर राणा और उनके लड़के ने सात हाथी, सत्ताईस घोड़े, जवाहरात और तिलाई गहने वगैरह नजराने में दिये थे। नजराने में सुलतान खुर्रम ने सिर्फ तीन घोड़े लेकर बाकी सब सामान फेर दिया। उस दिन यह बात भी करार पाई कि राजकुमार कर्ण मय पन्द्रह सौ राजपूतों के मैदान जंग में शाहजादा खुर्रम के पास रहें।"

"अपनी सलतनत के तेरहवें वर्ष में जिस वक्त मेरा दरबार सिंदला में लगा हुआ था, वहीं पर राजकुमार कर्ण ने आकर मुझसे मुलाकात की। मुझको मुल्क दक्खन में जो फतह और कामयाबी हासिल हुई थी, उसके लिए खुशी जाहिर कर कर्णसिंह ने सौ मोहर, एक हजार रुपये तरह-तरह के नजराने और इक्कीस हजार रुपये के सोने चाँदी के जेवरात व बहुत से हाथी, घोड़े मुझको दिये। हाथी, घोड़ों को वापिस करके बाकी सब नजराना मैंने ले लिया, दूसरे दिन मैंने उसको खिलत देकर फतेहपुर से लौट जाने का हुक्म दिया। वक्त रुख्सत के उसको एक हाथी, एक घोड़ा, तलवार व कटार और उसके बाप के लिए एक उमदा घोड़ा यह सामान दिया।'

"चौदहवाँ साल। तारीख 17 रवि-उल-अव्वल हिजरी सन् 1029 को मैंने अमरसिंह के बहिश्त नशीन होने की खबर पायी। राणा का बेटा भीमसिंह और पोता जगतसिंह यह खबर लेकर मेरे पास आये थे। उनको मैंने तरह-तरह के खिलत दिये और राजा किशोरीदास की मारफत एक चिट्ठी जिसमें तसल्ली दी गयी थी, कितने ही उमदा घोड़े, तख्तनशीन होने का जरूरी सामान रवाना करके कर्णसिंह को राणा का खिताब दिया। बादजाँ 7वीं सव्वाल को बिहारीदास वर्मन की मारफत एक फरमान् जिस पर मेरा पंजा लगा हुआ था, रवाना करके कहला भेजा कि उनका लड़का मुकर्रिर फौज को साथ लेकर मेरे पास हाजिर हो।"

बादशाह जहाँगीर की यहाँ पर लिखी हुई पंक्तियों की एक पक्षीय आलोचना स्वयं मेवाड़-राज्य के गौरव को कम कर सकती है। इसलिए निष्पक्ष भाव से उन पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। शाहजादा खुर्रम के मुकाबिले में राजपूतों की पराजय के कारण अमरसिंह को दिल्ली के मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इतना लिख देने से मेवाड़ के राजपूतों का यथार्थ गौरव व्यक्त न हो सकता था और न राणा अमरसिंह के उस साहस और धैर्य का अनुमान किया जा सकता था, जिसके द्वारा उसने राणा प्रताप के मरने के बाद मेवाड़-राज्य के गौरव को कायम् रखा था। जहाँगीर के उल्लेख से मेवाड़ का यह गौरव साफ साफ हमारे सामने आ जाता है, जो इन दिनों में मुग़ल बादशाह के निकट कायम हुआ। इस परतंत्रता के बावजूद भी जहाँगीर ने अमरसिंह को वह सम्मान दिया, जो इसके पहले मुगलों से मेवाड़ को कभी न मिला था। इस सम्मान में जितना ही हम मेवाड़ के राजपूतों का शौर्य, स्वाभिमान, बलिदान और साहस अनुभव करते हैं, उतना ही हमें जहाँगीर के श्रेष्ठ चरित्र, उदार भाव, वड़प्पन और निष्पक्ष भाव को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमरसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर बादशाह को प्रसन्नता हुई परंतु उस प्रसन्नता में उसका अहम्भाव, अभिमान और अमरसिंह के प्रति अपमान का भाव न था। उसने अपनी लेखनी के द्वारा मेवाड़ के गौरव को स्वीकार किया। बहुत समय तक राजपूतों ने जिस प्रकार स्वाभिमान के साथ मुगलों से युद्ध किया था और भयंकर कष्टों के जीवन में भी कभी मस्तक नीचा करने का विचार न किया, अमरसिंह और

उसके पूर्वजों के इन गुणों की उसने खूब प्रशंसा की और उनके इस क्षत्रियोचित कार्य को
बधाई दी। उसने निष्पक्ष भाव से अमरसिंह और उसके पूर्वजों के उस श्रेष्ठ उद्देश्य को
स्वीकार किया, जिसके लिए उनको मुगलों के साथ इतने दिनों तक युद्ध करना पड़ा था।
अधीनता स्वीकार करने के लिए पैगाम भेजने पर जहाँगीर ने अमरसिंह के साथ न्यायपूर्ण
व्यवहार किया, यह पैगाम उसने उसी समय भेजा, जब उसके सामने दो ही बातें रह गयी थीं,
वह या तो गिरफ्तार हो सकता था अथवा देश छोड़कर कहीं जा सकता था। अमरसिंह के
सामने इन दो बातों को छोड़कर, तीसरी कोई बात न थी। ऐसे समय पर बादशाह जहाँगीर
ने अनेक प्रशंसाओं के साथ राजपूतों के गौरव को स्वीकार किया। 'वह उसकी उदारता थी
कि उसने अपने दरबार में अमरसिंह की उपस्थिति को क्षमा कर दिया। मुगलों ने राणा के
प्रिय आलमगुमान हाथी को पकड़ कर बादशाह को भेंट किया था और जहाँगीर उस पर बैठ
कर अपनी राजधानी में घूमने निकला था, विजय की खुशी में उसका ऐसा करना, सार्वजनिव
उत्सवों की उपेक्षा कहीं श्रेष्ठ था। जहाँगीर ने अपने लड़के को राणा के पास भेजने के समय
हिदायत दी थी कि वह राणा के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करे, जैसा कि एक
बादशाह का दूसरे बादशाह के साथ होना चाहिए। उसका यह व्यवहार इस बात का ज्वलन्त
प्रमाण है कि वह मनुष्य का सम्मान करना जानता था और उसकी यह लोकप्रियता किसी भी
मनुष्य के हृदय पर प्रभाव डालती है। उसकी यह उदारता उसको अमिट सम्मान पाने का
अधिकारी बनाती है। राजपूतों के राजा के प्रभुत्व को स्वीकार करना उसकी श्रेष्ठता का
प्रमाण है, मेवाड़ के उत्तराधिकारी के जाने पर उसने उसको अन्य उपस्थित राजाओं से
अधिक सम्मान देते हुए अपनी दाहिनी तरफ स्थान दिया। उसने कर्ण के संकोच और
लज्जा-भाव का जो उल्लेख किया है, उससे मालूम होता है कि वह कर्ण की तरफ से सफाई
दे रहा है। बालक जगतसिंह के दरबार में आने पर उसके व्यवहार में बादशाह ने एक सुन्दर
शिष्टाचार को अनुभव किया और उसकी प्रशंसा की।

राणा अमरसिंह ने अंत तक अपनी योग्यता और बहादुरी का प्रमाण दिया। वह प्रसिद्ध सीसोदिया वंश में पैदा हुए राणा प्रताप का लड़का था। पिता के बाद उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सिंहासन पर बैठ कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। मेवाड़ राज्य में जितने भी राजा हुए, अमरसिंह उन सभी में योग्य और श्रेष्ठ था।

□

अध्याय–22
महाराणा कर्णसिंह, जगतसिंह और राजसिंह

अमरसिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का कर्ण अपने पिता के राज सिंहासन पर सम्वत् 1677 सन् 1621 ईसवी में बैठा। इसके पहले से ही मेवाड़ राज्य लगातार युद्धों के कारण शक्तिहीन हो गया था। कनकसेन की सौराष्ट्र में स्थापना में लेकर इस समय तक पन्द्रह सौ वर्षों का लम्बा समय बीत चुका है। इस बीच में बप्पा रावल के वंश में होने वाले राजाओं पर जिस प्रकार की विपत्तियाँ आयीं और उन विपदाओं के कारण मेवाड़ के राजाओं को समय-समय पर अपना राज्य और देश छोड़ कर पहाड़ों, जंगलों और निर्जन स्थानों में रह कर जीवन बिताना पड़ा, इसके वर्णन पिछले परिच्छेदों में किये जा चुके हैं।राणा अमरसिंह के बाद असके पुत्र कर्ण के शासन काल में मेवाड़ राज्य ने जिस प्रकार करवट बदली और उसके फलस्वरूप उस राज्य में जो परिवर्तन हुए, इस परिच्छेद में उन पर प्रकाश डाला जायेगा।

राणा कर्ण का जीवन साहस और चरित्र से भरा हुआ था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अपने राज्य की गिरी हुई परिस्थितियों का अध्ययन किया। राज्य सभी प्रकार से दीन-दुर्बल हो चुका था। शूरवीर लगातार लड़ाई के कारण मारे जा चुके थे और सम्पत्ति का राज्य में पूर्णरूप से अभाव था। न तो सरकारी खजाने में रुपया था और न राज्य की प्रजा के पास कुछ रह गया था। कर्ण ने इस अभाव को दूर करने की कोशिश की। प्रजा को सभी प्रकार की सुविधायें दी गयी, जिससे वह खेती के व्यवसाय से अपनी आर्थिक उन्नति कर सके। राणा कर्ण को इतने से ही संतोष न हुआ। इन सुविधाओं के द्वारा राज्य और प्रजा की गरीबी को दूर करने के लिए बहुत समय की आवश्यकता थी और कर्ण उस अभाव को जल्दी पूरा करने की चेष्टा में था। इसके लिए उसने अपने साथ सवारों की एक सेना तैयार की और उसे अपने साथ लेकर सूरत में पहुँच गया। वहाँ उसने लूट-मार की और अपने साथ लूट की एक अच्छी सम्पति लेकर वह लौट आया। इस सम्पत्ति की सहायता से राणा कर्ण ने राज्य के आर्थिक अभाव को बहुत-कुछ पूरा किया और उससे प्रजा को भी सहायता मिली।

मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर राणा कर्ण ने अपने राज्य की उन्नति की। उसकी सेना में उसका छोटा भाई भीम सेनापति था। भीम जन्म से ही साहसी और तेजस्वी था। जहाँगीर का बेटा खुर्रम उसका बड़ा आदर करता था और इसी आदर के कारण दोनों में बहुत मित्रता बढ़ गयी थी। शाहजादा ख़ुर्रम ने अपने पिता जहाँगीर से भीम की प्रशंसा की थी और लड़के की सिफारिश के कारण जहाँगीर ने भीम को राजा की उपाधि देकर बनास

नदी के करीब का एक इलाका दे दिया था। टोडा उस इलाके की राजधानी थी। भीम ने अपने उस पाये हुए इलाके का निर्माण अपनी मर्जी के अनुसार किया और रहने के लिए वहाँ पर उसने एक प्रसिद्ध राजमहल बनवाया। उस राजमहल में बहुत समय तक उसके वंश के लोग रहते रहे और आज भी उस राज-प्रासाद के खण्डहर अपने नगर के प्राचीन गौरव का परिचय देते हैं। यद्यपि उस नगर की दशा अब अच्छी नहीं है।

शाहजादा खुर्रम की प्रशंसा के कारण बादशाह जहाँगीर ने भीम को अपना एक इलाका देकर अपनी उदारता का परिचय दिया था और आशा की थी कि भीम भविष्य में उसके इस अनुग्रह में बँध कर रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वह जहाँगीर के किसी बन्धन में न था। लेकिन खुर्रम के साथ उसका बन्धुत्व और मित्रता का भाव पूर्ण रूप से कायम रहा।

भीम शाहजादा खुर्रम से प्रेम करता था। परन्तु वह खुर्रम के बड़े भाई परवेज के साथ ईर्ष्या रखता था। उसका कारण था। परवेज मेवाड़ के राजपूतों से घृणा करता था और उस घृणा को सहन करने के लिए भीम किसी प्रकार तैयार न था। राणा अमरसिंह ने जब मुगलों की अधीनता स्वीकार की थी, उसके पहले और खुर्रम के आक्रमण के पूर्व परवेज ने एक मुगल सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया था और उस समय मुगल सेना ने मेवाड़-राज्य का बुरी तरह विनाश किया था। भीम मेवाड़ का वह विनाश और विध्वंश भूला नहीं था।

शाहजादा परवेज बादशाह जहांगीर का उत्तराधिकारी था और शाहजादा खुर्रम का बड़ा भाई था। जहाँगीर के बाद मुंगल सिंहासन का वही अधिकारी था। भीम की अभिलाषा कुछ और थी। वह परवेज के स्थान पर शाहजादा खुर्रम को मुगल सिंहासन पर बिठाने का समर्थक था। खुर्रम के साथ उसकी मित्रता थी ही। इस विषय में भी दोनों में परामर्श हुआ। भीम किसी भी प्रकार परवेज को दिल्ली के सिंहासन पर नहीं देखना चाहता था। इसलिए उसने अपनी सेना लेकर परवेज पर आक्रमण किया। दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ। अंत में मुगल सेना की पराजय हुई और परवेज मारा गया।

बादशाह जहाँगीर को अभी तक भीम पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। परवेज के साथ उसकी इस लड़ाई से जहाँगीर को उस पर अविश्वास हो गया। शाहजादा खुर्रम के साथ उसकी जो मित्रता थी, बादशाह जहाँगीर से वह छिपी न थी। अब उसे यह भी मालूम हो गया कि परवेज के साथ भीम की लड़ाई का कारण शाहजादा खुर्रम है। इस बात से जहाँगीर और खुर्रम के बीच कटुता पैदा हो गयी। भीम के द्वारा परवेज का मारा जाना जहाँगीर को सहन नहीं हुआ। इसलिए उसने भीम के साथ युद्ध करने का निर्णय किया और अपनी सेना लेकर वह रवाना हुआ।

शाहजादा खुर्रम–जो सिंहासन पर बैठने के बाद शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ–जोधाबाई (जगत गोसाई) से उत्पन्न हुआ था और जोधाबाई राठौड़ राजपूतों के वंश में उत्पन्न हुई थी। मारवाड़ के राठौड़ वंश का गजसिंह शाहजादा खुर्रम का नाना था। गजसिंह परवेज के स्थान पर खुर्रम को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाना चाहता था और छिपे तौर पर वह अपनी इसी कोशिश में लगा था। भीमसिंह से लड़ने के लिए मुगलों की जो सेना रवाना हुई, जयपुर का राजा उसका सेनापति था। मुगल सेना के आने का समाचार पाकर भीम ने उसके साथ युद्ध करने के लिएं गजसिंह के पास सन्देश भेजा।

मुगल सेना के साथ भीम ने युद्ध किया। मुगल सेना का मुकाबला करने के लिए उसके पास सेना काफी न थी। इसलिए उसकी पराजय हुई और वह स्वयं युद्ध में मारा

गया। शाहजादा खुर्रम महावत खाँ के साथ भीम के मारे जाने पर उदयपुर चला गया। वहाँ पर राणा कर्ण ने सम्मानपूर्वक उसके रहने की व्यवस्था कर दी और कुछ दिनों के वाद उसके रहने के लिए एक अच्छा-सा महल बनवा दिया।

शाहजादा खुर्रम बहुत दिनों तक उस महल में बना रहा। उसके बाद वह ईरान की तरफ चला गया।[1] सम्वत् 1648 सन् 1592 में राणा कर्ण की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का जगतसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। राणा जगतसिंह के शासनकाल में मेवाड़ राज्य के आठ वर्ष बड़ी शान्ति के साथ व्यतीत हुए। कर्ण के मर जाने के थोड़े ही दिनों बाद बादशाह जहाँगीर की भी मृत्यु हो गयी। शाहजादा खुर्रम उस समय सूरत में था। राणा जगतसिंह ने अनेक राजपूतों के साथ अपने भाई के द्वारा बादशाह जहाँगीर के मरने का संदेश सूरत में शाहजादा खुर्रम के पास भेजा। उस सन्देश को पाकर खुर्रम सूरत से उदयपुर चला आया। उसके आने पर मेवाड़ राज्य के बहुत के सामन्त और सरदार उदयपुर आकर सुलतान खुर्रम से मिले।

उदयपुर में सभी लोग महल के भीतर एकत्रित हुए। उस समय राणा जगतसिंह ने सबसे पहले शाहजादा खुर्रम का शाहजहाँ कहकर अभिवादन किया। इसके बाद खुर्रम उदयपुर से दिल्ली चला गया। जाने के बाद उसने राणा जगतसिंह को अपने राज्य के पाँच इलाके दिये और एक कीमती मणि भेंट में देकर चित्तौड़ के टूटे हुए दुर्गों की मरम्मत कराने का आदेश दिया।

मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठकर राणा जगतसिंह ने छब्बीस वर्ष तक शासन किया। उसके राज्य का यह समय बड़ी शान्ति के साथ व्यतीत हुआ। इन दिनों में किसी प्रकार का कोई उत्पात राज्य में पैदा नहीं हुआ। ग्रन्थों में शान्ति के इन दिनों का कोई विशेष वर्णन नहीं पाया जाता। राणा ने अपने शासन के इन दिनों में राज्य की अनेक प्रकार से उन्नति की थी। सुदृढ़ विशाल महलों का निर्माण हुआ था। शत्रुओं के आक्रमणों से जो स्थान नष्ट हो गये थे और उनमें से जिनका निर्माण अभी तक नहीं हुआ था, राणा जगतसिंह ने बड़ी खूबसूरती और मजबूती के साथ उनका निर्माण कराया।

अपनी आवश्यकतानुसार राणा जगतसिंह ने कितने ही नये स्थानों की प्रतिष्ठा कराई। उनमें जगनिवास और जगमन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं। पिछोला झील के निकट इन दोनों स्थानों का निर्माण कराया गया। उनके सभी स्थानों में संगमरमर लगवाया गया। इन्हें तैयार कराने में बहुत सी सम्पत्ति खर्च की गयी थी। उनकी दीवारों में अद्भुत और आकर्षक चित्रकारी की गई थी।

राणा जगतसिंह ने बड़ी कुशलता के साथ शासन किया था। मुसलमानी हमले से राज्य का जो विनाश हुआ था, सभी तरह से उसकी पूर्ति की। उसके इस प्रकार के कार्यों और गुणों की प्रशंसा कई विदेशी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में की है। उसके कार्यों को लिखने के लिये संक्षेप में इतना ही उल्लेख करना काफी होगा कि दीर्घकाल तक बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से जो मेवाड़ राज्य श्मशान बन गया था, उसने फिर से नया जीवन प्राप्त किया।

राणा जगतसिंह ने मारवाड़ के राजा की लड़की से विवाह किया था। उस लड़की से दो लड़के पैदा हुए। उनमें जो बड़ा था, वही पिता के मरने के बाद सम्वत् 1710 सन् 1654 ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके पिता के शासनकाल में मेवाड़ राज्य में

---

1. कुछ इतिहासकारों का कहना है कि शाहजादा खुर्रम राणा के वनवाये हुए उस महल से कुछ दिनों बाद गोलकुण्डा चला गया था।

जो शांति कायम हुई थी, वह छिन्न-भिन्न हो गयी। इधर बहुत दिनों से मेवाड़ और दिल्ली राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों में जो मैत्रीपूर्ण व्यवहार चल रहा था, वह एक साथ समाप्त हो गया।

दोनों राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों में शत्रुता पैदा होने का मुख्य कारण बादशाह शाहजहाँ का वृद्ध हो जाना था। उसके चार लड़के थे। पिता के वृद्ध होते ही चारों लड़कों में राज्याधिकार के लिए झगड़ा पैदा हो गया। यह झगड़ा ही आगे चलकर दोनों राज्यों के हिन्दुओं और मुसलमानों की शत्रुता का मुख्य कारण बना। शाहजहाँ के जीवन काल में ही उसके चारों लड़कों की आपस में शत्रुता बढ़ गयी थी। इन लड़कों ने एक-दूसरे को पराजित करने के लिए राजस्थान के राजाओं से सहायता माँगी और चारों ने सहायता देने के लिए राजसिंह को मजबूर किया।

राजसिंह ने शाहजहाँ के पुत्रों की माँगों को सुना। परन्तु उसने दारा शिकोह की सहायता की। दारा शिकोह अपने भाइयों में सबसे बड़ा था। अपने पिता के राज्य का वही उत्तराधिकारी था। नैतिक दृष्टि से शाहजहाँ के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बैठने का अधिकार दारा को ही मिलना चाहिये था। लेकिन औरंगजेब दारा शिकोह के इस अधिकार को मानने के लिए किसी भी दशा में तैयार न था। ऐसी अवस्था में राणा राजसिंह ने दारा की सहायता करना ही अपने लिए मुनासिब समझा और दारा के पक्ष का समर्थन किया।

राजस्थान के दूसरे राजाओं ने राजसिंह के निर्णय का समर्थन किया और वे सब राजसिंह से मिल कर दारा की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। दारा औरंगजेब के द्वारा युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। राणा राजसिंह और राजस्थान के दूसरे राजाओं ने दारा की तरफ से औरंगजेब के साथ फतेहाबाद के विस्तृत मैदान में युद्ध किया। उस युद्ध में दारा और उसके सहायकों की पराजय हुई और औरंगजेब विजयी हुआ।

जिन राजपूत राजाओं ने दारा की सहायता की थी अथवा दारा के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की थी, वे सबके सब औरंगजेब के दुश्मन बन गये। तैमूर के वंशज बाबर ने जिस बुद्धिमानी के साथ भारत में अपना राज्य कायम किया था और अकबर ने जिस लोकप्रियता तथा राजनीति के द्वारा मुगल साम्राज्य का विस्तार किया था, औरंगजेब ने उसकी परवाह न की। अकबर की नीति, जहाँगीर और शाहजहाँ तक कायम रही। दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर दोनों ने अकबर के कायम किये हुए विशाल साम्राज्य को कमजोर नहीं होने दिया। बादशाह अकबर ने हिन्दू मुसलमान का भेद नहीं माना था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी ऐसा ही किया। परन्तु औरंगजेब ने सिंहासन पर बैठने के पहले ही अपनी जिन्दगी में ऐसा रास्ता अख्तियार किया कि जो हिन्दू और मुसलमान बहुत दिनों से एक दूसरे के मित्र बनकर चल रहे थे, वे एक दूसरे के शत्रु बन गये।

जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में मेवाड़ और दिल्ली राज्यों की यह अवस्था न थी। प्रजा से लेकर राज परिवारों और बादशाह के महलों तक हिन्दू मुसलमान का कोई फर्क न था। इन दोनों बादशाहों की इस नीति का कारण यह था कि दोनों ही मारवाड़ के राजपूत वंश में जन्म लेने वाली माताओं से पैदा हुए थे। औरंगजेब की परिस्थिति दूसरी थी। उसकी माता तातार देश की लड़की थी। जहाँगीर और शाहजहाँ की रगों में उनकी हिन्दू माताओं का खून प्रवाहित हुआ था। परन्तु औरंगजेब के जीवन में सब-कुछ तातारी माता से प्राप्त हुआ था। इसका प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन में रहा और उसके शासन काल में राज्य के हिन्दू-मुसलमान कभी एक होकर न रह सके।

भारतवर्ष में औरंगजेब के समकालीन अनेक हिन्दू राजा थे और सभी तेजस्वी एवम् साहसी थे। सम्पूर्ण राजस्थान अनेक राज्यों में बँटा हुआ था और प्रत्येक राज्य में पराक्रमी राजा का शासन था। आमेर का राजा जयसिंह, मारवाड़ का जसवंतसिंह, बूँदी और कोटा के राजा हाड़ा, बीकानेर का राठौड़, ओरछा और दतिया के राजा लोग–सभी शक्तिशाली एवम् योग्य थे।औरंगजेब ने अयोग्यता से इन सभी राजाओं से ईर्ष्या पैदा कर ली थी। इसके फलस्वरूप कटुता बढ़ी और वह कटुता स्वयं उसके लिए भी अच्छी नहीं साबित हुई।

औरंगजेब में एक प्रधान दोष यह था कि वह किसी का विश्वास नहीं करता था। जिनको वह अपना शुभचिंतक और मित्र समझता था, उनसे भी वह अपनी बातों को छिपाकर रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उस पर अविश्वास करने वालों की संख्या बढ़ गयी और उसका अपना कोई नहीं रह गया। उसने हिन्दुओं के साथ निर्दयी व्यवहार किये थे, उनके लिए भयानक दण्ड की व्यवस्था की थी और तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन के लिए हिन्दुओं को मजबूर किया था। इन सब कारणों से हिन्दू प्रजा उसका राज्य छोड़कर भाग गयी। न्याय के अभाव में उसके राज्य में अराजकता बढ़ गयी थी। अधिक संख्या में हिन्दुओं के भाग जाने से राज्य के नगर, ग्राम और बाजार बहुत कुछ सूने हो गये थे। कृषकों के चले जाने से खेती के व्यवसाय को बहुत आघात पहुँचा था। सरकारी खजाने में धन का अभाव हो गया था। चारों तरफ अशान्ति बढ़ गयी थी। इसी अशान्ति और अराजकता ने शिवाजी को प्रोत्साहित किया और उसने मराठों का एक संगठन बनाकर औरंगजेब के शासन काल में मुगलों के साथ युद्ध किया।

राणा प्रतापसिंह के बाद मेवाड़ राज्य की वीरता छिन्न-भिन्न हो गयी थी। राणा राजसिंह ने अपने शासनकाल में उसको फिर से सजीव बनाया। उसमें साहस, शौर्य और स्वाभिमान था। राणा का पद पाने के बाद उसने अपने पूर्वजों के गौरव में वृद्धि की। राज्य के सरदार और सामन्त उसका सम्मान करते थे और भविष्य के सम्बन्ध में राज्य के लिए बड़ी-बड़ी आशायें रखते थे। सरदारों और सामन्तों के साथ राणा राजसिंह का सम्मानपूर्ण व्यवहार था।

मारवाड़ के कुछ राठौर राजपूत मारवाड़ को छोड़ कर रूपनगर चले गये थे। यह नगर मुगलों के शासन में था। इसलिए जो राजपूत रूपनगर गये थे, उनको मुगलों की अधीनता में रहना पड़ा। औरंगजेब के सिंहासन पर बैठने के दिनों में रूपनगर के सामन्त की एक लड़की थी। प्रभावती उसका नाम था। उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया था। वह अपने रूप सौन्दर्य के लिए उन दिनों में बहुत प्रसिद्ध हो रही थी। बादशाह औरंगजेब ने भी उसकी प्रशंसा सुनी थी। उसके मन में प्रभावती को प्राप्त करने की एक उत्कट अभिलाषा पैदा हुई। उसको अपने बादशाह होने का गर्व था। उसका विश्वास था कि प्रभावती मेरे साथ अपने विवाह को सौभाग्य समझेगी।

औरंगजेब के हृदय में प्रभावती के प्रति लालसा बढ़ती गयी। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसने दो हजार घुड़सवार सैनिकों की एक छोटी-सी सेना तैयार की और उसे उसने इस उद्देश्य से रूपनगर की तरफ रवाना कर दिया कि उसकी उस सेना का अधिकारी रूपनगर के सामन्त के पास जाकर कहे कि वह अपनी लड़की प्रभावती का विवाह मेरे साथ कर दे। औरंगजेब की यह सेना रूपनगर पहुँच गयी। उसके अधिकारी ने राठौढ़ सामन्त से बादशाह औरंगजेब का संदेश कहा। उसे सुनकर वह आश्चर्यचकित हो उठा। उसने उस समय बादशाह के इस प्रस्ताव का कोई उत्तर न दिया। उसकी लड़की प्रभावती ने भी सुना और जाना कि बादशाह औरंगजेब की एक सेना आयी है और उसने बादशाह के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव पिताजी के सामने रखा है।

प्रभावती ने राठौड़ राजवंश में जन्म लिया था। उसके अन्तरतम में राजपूत कन्या होने का स्वाभिमान था। बादशाह के प्रस्ताव को सुनकर उसके हृदय में आग लग गयी। वह अपने पिता की कमजोरियों को जानती थी और समझती थी कि शक्तिशाली मुगल सम्राट का विरोध करने के लिए मेरे पिता में न शक्ति है और न साहस है। इस दशा में उसकी चिन्तायें बढ़ने लगीं। इन्हीं दिनों में उसका ध्यान राणा राजसिंह की तरफ गया। उसके सामने और कोई रास्ता न था। वह समझती थी कि बादशाह से मेरी रक्षा करने में दूसरा कोई समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार की बहुत-सी बातें सोच समझकर उसने अपने विश्वासी पुरोहित को राणा राजसिंह के पास भेजा। उसने वहाँ पहुँच कर प्रभावती का पत्र राणा के हाथ में दिया। उस पत्र को पढ़ कर राजसिंह कुछ देर के लिए चुप हो गया और उसके बाद प्रभावती की सहायता करने का विचार उसके मन में पैदा हुआ।

औरंगजेब की सेना रूपनगर में पहुँच चुकी थी और वह राठौड़ सामन्त का निर्णय सुनने के लिए वहाँ पर रुकी हुई थी। राणा राजसिंह राजपूतों की एक छोटी-सी सेना लेकर रूपनगर की तरफ रवाना हुआ। रूपनगर अरावली पर्वत के नीचे एक भूमि पर बसा हुआ था। राजसिंह अपने राजपूतों के साथ वहाँ पहुँचा और उसने मुगल सैनिकों पर आक्रमण किया, दोनों तरफ से कुछ समय तक युद्ध हुआ। अंत में मुगल सैनिकों की हार हुई। उनमें से बहुत से मारे गये और जो बचे, वे रूपनगर से चले गये। राणा राजसिंह-रूपनगर से उनको भगाकर लौट आया। मेवाड़ के लोगों ने जब रूपनगर का यह समाचार सुना तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई और सभी लोगों ने अपने राणा की प्रशंसा की।

बादशाह के सैनिकों के लौट जाने के पश्चात् कुछ ही दिनों में रूपनगर में अफवाह उड़ने लगी कि पन्द्रह दिनों के भीतर बादशाह की एक बड़ी फौज फिर आवेगी और वह जबरदस्ती प्रभावती को अपने साथ ले जायेगी। बादशाह उसके साथ विवाह करेगा। यह अफवाह प्रभावती के पिता ने सुनी। उसने प्रभावती से बातचीत की और उसने अपनी लड़की का विवाह राणा राजसिंह के साथ करने का निर्णय किया। प्रभावती ने पिता की इस बात को स्वीकार कर लिया। इसके बाद राठौर सामन्त की तरफ से एक आदमी इसी उद्देश्य के लिए उदयपुर भेजा गया।

रूपनगर के आदमी ने उदयपुर पहुँचकर अपने सामन्त राजा का पत्र राणा को दिया। उसे पढ़कर राणा ने अपने दरबार के सामन्तों और सरदारों के साथ परामर्श किया। सभी ने राणा को राठौड़ सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस विषय में कुछ देर तक राणा ने उनके साथ बातचीत की। बादशाह औरंगजेब की शक्तिशाली सेना का और उसके विशाल साम्राज्य की शक्तियों का प्रश्न उठाकर राणा ने सरदारों और सामन्तों से विवाद किया। अंत में सबके परामर्श से राणा राजसिंह ने राठौड़ सामन्त के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। वह स्वीकृति राणा की तरफ से रूपनगर के राठौड़ सामन्त के पास भेज दी गयी।

चूँड़ावत सरदार के साथ विचार विमर्श करके राणा राजसिंह ने प्रभावती के साथ विवाह की तैयारी की। वह उदयपुर के कुछ राजपूतों को लेकर रूपनगर की तरफ विवाह के लिए रवाना हुआ और चूँड़ावत सरदार उदयपुर की शक्तिशाली सेना लेकर चला। उसके साथ पन्द्रह सौ शूरवीर राजपूत घोड़ों पर थे। राणा राजसिंह सीधा रूपनगर की तरफ गया और चूँड़ावत सरदार पूर्व की तरफ रवाना हुआ। सरदार सैनिकों की मिलकर जो सेना रवाना हुई, उसके कुल सैनिकों की संख्या पचास हजार थी।

राजपूतों की यह विशाल सेना उदयपुर से चलकर उस रास्ते पर पहुँच गयी, जो आगरा से रूपनगर की तरफ जाता था। उस रास्ते पर पहुँचकर चूँड़ावत सरदार ने अपनी सेना का मुकाम किया। इसके बाद बादशाह के आने वाले लश्कर का पता लगाने के लिए कुछ राजपूत रवाना हुए। उन्होंने लौटकर बताया कि मुगल बादशाह की एक बड़ी फौज आ रही है और उस फौज के आगे बादशाह हाथी पर बैठा हुआ आ रहा है। उसी समय चूँड़ावत सरदार ने राजपूतों को तैयार हो जाने के लिए आदेश दिया।

कुछ समय के पश्चात् जहाँ पर राजपूतों की सेना पड़ी थी,बादशाह का लश्कर आ गया। रास्ते में राजपूत सेना की मौजूदगी का समाचार पाकर बादशाह के आदमी आगे बढ़े और उन्होंने लौटकर बादशाह को बताया कि मेवाड़ के चूँड़ावत सरदार की सेना पड़ी हुई है और वह सेना रास्ता रोक रही है। बादशाह ने अपनी फौज के निकल जाने के लिए रास्ता चाहा। लेकिन चूँडावत सरदार ने रास्ता देने से इन्कार कर दिया। बादशाह ने चूँड़ावत सरदार को यह भी बताया कि हम सबको रूननगर जाना है। उदयपुर और मेवाड़ से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।

चूँड़ावत सरदार के रास्ता न देने पर बादशाह औरंगजेब ने अपनी फौज को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। राजपूत सेना इसके लिए पहले से ही तैयार थी। मुगल सेना के आगे बढ़ते ही युद्ध आरम्भ हो गया। वह युद्ध कई दिन तक चलता रहा। कोई निर्णय न हुआ। दोनों पक्ष के बहुत-से आदमी मारे गये। लेकिन कोई पक्ष निर्वल न पड़ रहा था। युद्ध की यह दशा देखकर औरंगजेब बहुत चिन्तित हुआ। उसने विवाह के लिए जो दिन और समय निश्चित किया था, वह निकला जा रहा था। लेकिन रास्ते में होने वाला यह युद्ध जल्दी समाप्त होता हुआ दिखायी न दे रहा था।

यह देखकर औरंगजेब वहुत चिन्तित हुआ। उसने अपना दूत भेजकर चूँड़ावत सरदार से बातचीत की। उसका उद्देश्य इस समय किसी प्रकार रूपनगर पहुँचने से था। रास्ते में होने वाले इस युद्ध का उसे कुछ पता न था। युद्ध के तीसरे दिन मुगल सेना का जोर बढ़ा। राजपूतों ने शक्ति भर उसका मुकाबला किया। इन तीन दिनों में राजपूत अधिक संख्या में मारे गये। बादशाह की फौज बहुत बड़ी थी। पचास हजार सैनिकों के द्वारा उसको पराजित करना वहुत कठिन था। इस बात को चूँड़ावत सरदार भी जानता था। वह तो राणा राजसिंह के परामर्श के अनुसार बादशाह को रास्ते में उतने समय तक रोकना चाहता था, जितने समय में राणा राजसिंह प्रभावती से व्याह करके उदयपुर चला जाये और उसके बाद रूपनगर पहुँचने पर बादशाह औरंगजेब को प्रभावती न मिले।

तीसरे दिन के भयंकर युद्ध में बादशाह के साथ चूँड़ावत सरदार की बातचीत हुई। बादशाह ने मुगल सेना के निकल जाने के लिए रास्ता माँगा। चूँड़ावत सरदार ने समझ लिया कि मुगल सेना को रोकने के लिए जितने समय की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति हो चुकी है और रूपनगर वहाँ से काफी दूर है। बादशाह की फौज के पहुँचने के पहले ही राजसिंह प्रभावती को लेकर उदयपुर चला जायेगा। उसने बादशाह को उत्तर देते हुए कहा– "मैं रास्ता देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन आप शपथपूर्वक मेरी एक छोटी-सी बात को मंजूर करें।"

बादशाह किसी भी सूरत में रूपनगर पहुँचना चाहता था। रास्ते में एक घड़ी की देर उसको असहनीय हो रही थी। उसने चूँड़ावत सरदार की बात को सुना और खुशी के साथ उसकी माँग को मंजूर करने का वादा किया। इसके बाद चूँड़ावत सरदार ने कहा: "दस वर्ष तक उदयपुर में आप कोई आक्रमण न करेंगे। आपके इस वादे पर मैं अपनी सेना लेकर चला जाऊंगा और आपके साथ युद्ध न करूँगा।"

बादशाह ने चूँड़ावत सरदार की माँग को मंजूर कर लिया। उसके बाद चूँड़ावत सरदार अपनी सेना के साथ रास्ते से हट गया। बादशाह की फौज आगे बढ़कर रूपनगर की तरफ रवाना हुई। वहाँ से रूपनगर पहुँचने के लिए तीन दिन का रास्ता बाकी था। बादशाह की फौज चली गयी। चूँडावत सरदार अपनी सेना के साथ उदयपुर की तरफ लौट रहा था, वह घोड़े पर था। उसके शरीर में बहुत से भयानक जख्म थे। उनसे लगातार खून बह रहा था। रास्ते में उसकी हालत बिगड़ने लगी। उसे जैसे ही घोड़े से उतारा गया, उसकी मृत्यु हो गयी।

राणा राजसिंह ने पूर्णिमा के दिन रूपनगर पहुँचकर प्रभावती के साथ विवाह किया और उसके बाद उदयपुर लौट गया। वहाँ पहुँचने पर चूँड़ावत सरदार की मृत्यु का समाचार सुना और यह भी सुना कि बादशाह औरंगजेब ने दस वर्ष तक कोई आक्रमण न करने का वादा करने के बाद रूपनगर जाने का मार्ग प्राप्त किया था। राणा को प्रभावती के साथ विवाह करने की जितनी प्रसन्नता हुई, उससे अधिक वेदना चूँड़ावत सरदार के मरने से हुई।

जयपुर के राजा जयसिंह और मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह ने भी मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार की थी। लेकिन इन दोनों राजाओं के हृदयों में राजपूतों का स्वाभिमान था। इसलिए मुगलों की अधीनता में रहते हुए भी दोनों राणा राजसिंह से प्रेम करते थे और मेवाड़ राज्य के शुभचिन्तक थे। इन दिनों में राजसिंह और औरंगजेब के बीच शत्रुता की आग सुलग रही थी। इसमें जयसिंह और जसवंतसिंह राणा राजसिंह के पक्षपाती थे और छिपे तौर पर उसकी सहायता करते थे, इस बात को औरंगजेब भली प्रकार जानता था।

औरंगजेब बहुत दिनों तक जयसिंह और जसवंतसिंह से जलता रहा। उसने खुले तौर पर इन दोनों के साथ शत्रुता का कोई व्यवहार न किया। लेकिन अवसर पाकर उसने उन दोनों को विष खिला दिया, उससे उन दोनों की मृत्यु हो गयी। मारवाड़ के राजा जसवंतसिंह के कई लड़के थे। उनमें अजित सब से बड़ा था। पिता के मरने के समय अजित की अवस्था छोटी थी। उसका पालन-पोषण करने के उद्देश्य से उसकी माता अपने पति के साथ सती नहीं हुई थी। वह अपने इस बड़े लड़के को मारवाड़ के सिंहासन पर बिठाना चाहती थी और उसकी छोटी अवस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध स्वयं सम्हालना चाहती थी।

इन्हीं दिनों में अजित की माता को अपने प्यारे पुत्र अजित के सम्बन्ध में बादशाह औरंगजेब से भय उत्पन्न हुआ। इसलिए वह अपने बालक की रक्षा का उपाय सोचने लगी। उसको राणा राजसिंह के आश्रय के सिवा और कुछ दिखायी न पड़ा। इसके लिए उसने अपना दूत राणा के पास भेजा। राणा ने अजित की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और जसवंतसिंह के लड़कों को मेवाड़ भेज देने के लिए उसकी माता के पास संदेश भेजा। राणा का यह संदेश मिलते ही अजित की माँ ने दो हजार सैनिकों के संरक्षण में अजित को मारवाड़ से रवाना किया।

जिस समय मारवाड़ के सैनिक अपने साथ अजित सिंह को लेकर उदयपुर जा रहे थे, उसी समय कूट गिरि के एक तंग रास्ते से दो हजार मुगल सैनिकों ने तेजी के साथ आक्रमण किया। उस रास्ते पर दोनों ओर के सैनिकों में कुछ समय तक युद्ध हुआ। उस पहाड़ी रास्ते में बहुत से मुगल सैनिक मारे गये और मारवाड़ के सैनिक अजित को लेकर उदयपुर की तरफ आगे बढ़ गये। इसके पश्चात् मुगलों ने उनका पीछा नहीं किया। राणा राजसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अजित सिंह को अपने यहाँ रखा और कैलवाड़ा नाम का

एक स्थान उसको रहने के लियें दे दिया। दुर्गादास नाम का एक साहसी राजपूत राजकुमार अजित की रक्षा करने के लिए नियुक्त हुआ।

अजित की माता ने अपने पुत्र अजित को राजसिंह के आश्रय में भेज दिया था। लेकिन बादशाह औरंगजेब पर वह जल रही थी। इसलिए उससे बदला लेने के लिए वह तरह-तरह की बातें सोचने लगी। मारवाड़ के सामन्त और सरदार जसवंतसिंह की विधवा रानी के पास एकत्रित हुए और वे औरंगजेब से बदला लेने के प्रश्न पर परामर्श करते रहे।

इन दिनों में औरंगजेब राणा राजसिंह से बहुत अप्रसन्न था और राजसिंह भी उसकी अनीति को देखकर बहुत सावधानी से काम ले रहा था। अपने साम्राज्य में वह हिन्दुओं के साथ जैसा निन्दनीय व्यवहार कर रहा था, उससे राणा राजसिंह बहुत अप्रसन्न था। इस बीच में उसने औरंगजेब को एक लम्बा पत्र लिखकर भेजा और उसमें उसके सारे कारनामों का उल्लेख किया, जो मुगल साम्राज्य में हिन्दुओं के विरुद्ध चल रहे थे।

अपना यह पत्र राजसिंह ने मुगल बादशाह के पास भेज दिया और उसके परिणाम की वह प्रतीक्षा करने लगा। बादशाह ने उस पत्र को पढ़ा। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। इस बीच में राणा राजसिंह ने कई ऐसे कार्य किए थे, जिनको सहन करने के लिए अब औरंगजेब किसी प्रकार तैयार न था। राजसिंह ने प्रभावती के साथ विवाह किया था। औरंगजेब के लिये उसकी यह पहली चुनौती थी। इसके बाद उसने अजितसिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया और इसके पश्चात् उसने इस प्रकार का एक पत्र भेजा। यह तीनों बातें औरंगजेब के लिए असहनीय हो उठी। क्रोध में आकर उसने राजसिंह पर आक्रमण करने का निश्चय किया और अपनी फौज को तैयार होने के लिए उसने हुक्म दिया। मुगल सेना में युद्ध की तैयारियां शुरू हो गयीं।

औरंगजेब अपनी शक्तिशाली सेना लेकर राजसिंह पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। उसके जितने प्रसिद्ध सेनापति थे, बादशाह के हुक्म से अपनी बड़ी से बड़ी फौज तैयार करने में लग गये। बंगाल से शहजादा अकबर और काबुल से अजीम बुलाया गया। औरंगजेब का उत्तराधिकारी शाहजादा मुअज्जम दक्षिम में शिवाजी के साथ युद्ध कर रहा था। औरंगजेब का हुक्म पाकर अपनी फौज के साथ वह लौटकर आ गया और राजसिंह पर आक्रमण करने के लिए तैयार होने लगा।

औरंगजेब अपनी विशाल और शक्तिशाली सेना लेकर मेवाड़-राज्य की तरफ रवाना हुआ। मुगल सेना के आने की खबर मिलते ही राणा राजसिंह ने अपने सामन्तों और सरदारों को बुलाकर युद्ध के लिए तुरन्त तैयार होने का आदेश दिया। इस मौके पर बहुत-सी प्रजा अपने-अपने स्थानों को छोड़कर अरावली पर्वत के पहाड़ी स्थानों पर चली गयी। प्रजा के चले जाने से मेवाड़ के बहुत से स्थान सुनसान हो गये। इस प्रकार के सभी स्थानों पर मुगल सेना ने अधिकार कर लिया और चित्तौड़, मांडलगढ़, मन्दसौर, जीरन नामक नगरों के साथ-साथ अनेक दुर्ग भी इस समय बादशाह के अधिकार में चले गये और उन पर मुगलों का शासन शुरू हो गया। इसके बाद औरंगजेब ने राजसिंह को गिरफ्तार करने के लिए अपनी फौज को हुक्म दिया। मुगल सेना राणा की खोज में आगे बढ़ी।

मुगलों के साथ युद्ध करने के लिए राजसिंह अपनी राजपूत सेना के साथ तैयार हो चुका था। बादशाह से युद्ध करने के लिए अनेक पहाड़ी जातियों के लोग अपने धनुष-बाणों के साथ राणा की सेना मे आ गये। दोनों तरफ से युद्ध के लिए जोरदार तैयारियाँ की गयीं। इसके बाद दोनों सेनायें एक दूसरे के सामने बढ़ने लगी। राणा ने अपनी सम्पूर्ण सेना को तीन भागों में विभाजित किया और उनको अलग-अलग सेनापतियों के अधिकार में दे

दिया। ये तीनों सेनायें एक दूसरे से दूर होकर युद्ध के लिए तैयार हुईं। राजसिंह के बड़े पुत्र जयसिंह ने अपनी सेना को अरावली के ऊपर रखा। राजकुमार भीमसिंह ने पश्चिम की तरफ से लड़ने के लिए अपना मोर्चा कायम किया और राणा राजसिंह अपनी सेना के साथ एक पहाड़ी स्थान के बीच में पहुँचकर शत्रुओं का रास्ता देखने लगा। इस प्रकार राणा की तीन सेनायें शत्रुओं से युद्ध के लिए तीन अलग-अलग स्थानों पर तैयार हो गयी।

बादशाह औरंगजेब देवारी नामक स्थान पर अपनी सेना के साथ उस समय मौजूद था। उसने अपने लड़के अकबर को पचास हजार मुगल सैनिक देकर आक्रमण करने के लिए उदयपुर की तरफ भेजा। शाहजादा अकबर की मुगल सेना रास्ते के ग्रामों को उजाड़ती हुई उदयपुर की तरफ बढ़ी। रास्ते में लगभग सभी स्थान प्रजा से खाली उसको मिले। उन स्थानों पर रहने वाले होने वाले विनाश से घबराकर पहाड़ पर चले गये थे। यह बात अकबर को मालूम थी।

शाहजादा अकबर की मुगल सेना का मुकाबला करने के लिए राजकुमार जयसिंह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और जहाँ पर अकबर ने अपनी फौज का मुकाम किया था, बड़ी तेजी के साथ पहुँचकर जयसिंह ने आक्रमण किया, उस समय मुगलों में कुछ नमाज पढ़ रहे थे और कुछ लोग शतरंज खेल रहे थे। उस समय राजपूतों ने भयानक रूप से मुगलों का संहार किया। उस भीषण अवस्था में मुगल सैनिक भागने की कोशिश करने लगे। लेकिन वह स्थान चारों तरफ से घिरा हुआ था। इसलिए उनको भागने का रास्ता न मिला। उस समय औरंगजेब अपनी फौज के साथ देवारी नामक स्थान में था। अकबर ने वहाँ जाकर दूसरी फौज अपनी सहायता के लिए लाने की कोशिश की। परन्तु जयसिंह ने उसका रास्ता रोक कर घेर लिया, जिससे अकबर भयानक संकट में पड़ गया।

अकबर को भागने का जब कोई और रास्ता न मिला तो उसने गोगुण्दा के रास्ते से मारवाड़-राज्य के खेतों में गुजरते हुए निकल जाने का इरादा किया था। लेकिन इसमें भी उसको सफलता नहीं मिली। सामन्त लोग अपनी सेनाओं के साथ अकबर के निकलने का रास्ता घेरे हुए थे। पीछे की तरफ जयसिंह और उसकी सेना थी। अकबर चारों तरफ से घिरा हुआ था। अपने निकलने का कोई रास्ता उसे दिखायी न पड़ा। इस दशा में उसको कई दिन बीत गये। निराश होकर उसने जयसिंह से प्रार्थना की और वादा किया कि आज के बाद सारी लड़ाईयाँ खत्म हो जाएंगी। इसके बाद जयसिंह ने उसके प्राणों की रक्षा की। अकबर वहाँ से निकलकर चला गया।[1]

जिस पहाड़ी स्थान पर युद्ध करने के लिए दोनों तरफ की सेनायें एकत्रित हुई थी वह अत्यंत भयानक था। अकबर और दिलेर खाँ के पराजित होने के बाद राणा राजसिंह ने बादशाह औरंगजेब पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। राजपूतों ने उस समय बड़ी बहादुरी से काम लिया। जिस राठौर वंश का नाश करने की औरंगजेब ने चेष्टा की थी, इस युद्ध में उसी राठौड़ वंश के राजपूत सैनिक उसके लिए प्राण घातक साबित हुये। युद्ध में आये हुये राठौड़ सैनिकों को जसवंतसिंह की मृत्यु याद थी। उसका बदला लेने के लिये राठौड़ सैनिक इस समय भयानक रूप से औरंगजेब की फौज के साथ मारकाट कर रहे थे। औरंगजेब एकाएक संकट में पड़ गया। यह देखकर मुगल सेना आगे बढ़ी

1. प्रसिद्ध लेखक अर्म ने लिखा है कि औरंगजेब स्वयं अपने इस आक्रमण के समय राजपूतों के बीच फंस गया था और बड़ी मुश्किल से उसको छुटकारा मिला था। जिस पहाड़ी स्थान पर युद्ध करे के लिए वह

और उसके गोलंदाजों ने तोपों की मार आरम्भ कर दी। उससे थोड़े ही समय में बहुत से राजपूत मारे गये। लेकिन राजसिंह के उत्साह में किसी प्रकार की कमी न आयी।

देवारी के संग्राम में बहुत समय तक भीषण मारकाट हुई। राजपूतों की तलवारों से मुगल सेना के गोलंदाज मारे गये। इसी समय तेजी के साथ राजपूत सेना मुगलों के बीच में घुस गयी और उसके सैनिकों ने अपनी तलवारों से जो मारकाट की, उससे मुगल सेना पीछे हटने लगी और थोड़ी ही देर में औरंगजेब अपनी बची हुई सेना को लेकर वहाँ से भागा। उसकी तोपें और युद्ध का बहुत सा सामान जो मुगलों के शिविर में मौजूद था, राजपूतों ने पहुँचकर अपने अधिकार में कर लिया। बादशाह के बहुत से हाथी राजपूतों के कब्जे में आ गये। यह संग्राम सम्वत् 1737 सन् 1681 के मार्च महीने में हुआ था। इस युद्ध में राजसिंह की विजय हुई।

युद्ध से भागने के बाद भी औरंगजेब का हृदय पराजित न हुआ। अपनी पराजय का बदला लेने के लिए अपनी सेना के साथ वह चित्तौड़ के निकट रुका और राणा पर आक्रमण करने के लिए कोई योजना बना रहा था, उस समय जयमल के वंशज श्यामलदास ने अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच कर आक्रमण किया। औरंगजेब उस समय घबरा गया और वह अपने लड़के अकबर और अजीम को युद्ध के लिए वहाँ छोड़कर अजमेर की तरफ चला गया और वहाँ से उसने अपने दोनों लड़कों की सहायता के लिए एक बड़ी सेना भेजी।

अजमेर से औरंगजेब ने एक नयी सेना खाँ रोहेला नाम के सेनापति के साथ श्यामलदाल से युद्ध करने के लिए भेजी। श्यामलदास को जब मालूम हुआ तो वह अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा और पुर मंडल नामक स्थान पर उसने शत्रु सेना पर आक्रमण किया। कुछ देर युद्ध करने के बाद मुगलों के साथ की सेना अजमेर की तरफ भाग गयी।

राजकुमार भीम अपनी सेना के साथ अभी तक अपने स्थान पर मौजूद था। उसने गुर्जर राज्य पर आक्रमण किया और ईडर नामक नगर को बरबाद किया। हुसैन नामक वहाँ पर एक मुसलमान बादशाह था। उसे और उसकी सेना को भीम ने वहाँ से निकाल दिया। इसके बाद पट्टन नगर में पहुँचकर राजपूतों ने लूट-मार की और उसके बाद कई एक दूसरे स्थानों का विध्वंस किया।

राणा राजसिंह की सेना में दयालदास नाम का एक अत्यन्त बहादुर आदमी था। मुगलों से लड़कर उसकी तबीयत अभी तक भरी न थी। सवारों की एक सेना लेकर वह रवाना हुआ और नर्मदा तथा बेड़च नदी के किनारे तक फैले हुए मालवा राज्य पर आक्रमण करके उसको लूटा और उसके बाद सारंगपुर, देवास, सरोज, माण्डू, उज्जैन और चन्देरी नगरों को पराजित किया।

दयालदास ने इन नगरों की मुस्लिम सेना का सहार किया और कई स्थानों पर पहुँचकर लूट मार की। वहाँ के रहने वाले अपने घरों को छोड़ कर चले गये। राजपूतों ने उनके मकानों में आग लगा दी। दयालदास मुसलमानों से बहुत दिनों से चिढ़ा हुआ था और उसके द्वारा हिन्दुओं के जो नुकसान हुये थे, उनको वह भूला न था। आज उसने जी-भर मुसलमानों से बदला लिया। उसने मालवा राज्य को श्मशान के रूप में परिणत कर दिया।

मालवा से चल कर अपनी सेना के साथ दयालदास राजकुमार जयसिंह के पास पहुँचा। उस समय बादशाह का लड़का अजीम अपनी फौज के साथ चित्तौड़ के करीब था। दयालदास और जयसिंह ने अजीम पर आक्रमण किया। अजीम पराजित हो कर अपने कुछ सैनिकों के साथ रणथम्भौर भाग गया। राजपूतों ने उसका पीछा किया और उसके बहुत-से आदमियों का संहार किया।

इसके वाद राजकुमार भीम ने अपनी सेना लेकर अकवर की फौज पर हमला किया। कुछ समय तक दोनों तरफ से भीषण युद्ध हुआ। इसमें भी अकवर की हार हुई। लगातार मुगलों की पराजय से शाहजादा अकवर ववरा गया और उसने राणा से मिल कर मित्रता कायम करने की चेष्टा की। राजपूत सामन्तों ने औरंगजेव को हटाकर उसके सिंहासन पर अकवर को विठाने का इरादा किया। इसकी तैयारियाँ आरम्भ हो गयीं।

यह समाचार औरंगजेव ने सुना। वह ववरा गया। इस समय उसकी दशा वहुत दुर्वल हो गयी थी। इन दिनों में राजपूतों के साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें कई स्थानों पर मुगलों का वुरी तरह संहार हुआ था। उसने दूरदर्शिता से काम लिया था और अपने पुत्र अकवर के नाम एक पत्र लिख कर भेज दिया। वादशाह का वह पत्र ऐसे ढंग से भेजा गया था कि वह अकवर को न मिल कर दुर्गादास को मिला। मुगल सिंहासन पर अकवर को विठाने की जो योजना चल रही थी, उसकी जिम्मेदारी वहुत-कुछ दुर्गादास पर ही थी। पत्र को पढ़ कर दुर्गादास का विश्वास अकवर से हट गया। वह पत्र कुछ ऐसा लिखा हुआ था कि जिससे दुर्गादास को मालूम हुआ कि अकवर स्वयं सिहासन पर वैठने के वहाने राजपूतों के साथ कोई षड़यंत्र पैदा करने की कोशिश में है। इसीलिए अकवर को सिंहासन पर विठाने की जो योजना शुरू की गयी थी, वह खत्म कर दी गयी। औरंगजेव की चालाकी सफल हुई। अकवर अत्यन्त दुःखी और निराश हो कर इसके वाद फारस देश की तरफ चला गया।

औरंगजेव की दशा इन दिनों में वहुत निर्वल हो गयी थी। वह अव राजपूतों के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। इसलिए वीकानेर के श्यामसिंह नाम के एक राजपूत को वीच में डालकर औरंगजेव ने राणा राजसिंह के साथ संधि की। परन्तु उस होने वाली संधि के पहले ही सम्वत 1737 सन् 1681 ईसवीं में राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी। सिंहासन पर वैठने के वाद उसने लगातार युद्ध किये थे और उसके शरीर में वहुत-से जख्म हो गये थे। उन्हीं के कारण उसकी मृत्यु हुई।

राणा राजसिंह ने अपने शासनकाल में राज्य के वैभव के लिए वहुत से काम किये। गोमती नामक पहाड़ी नदी की धारा को रोक कर उसने एक वहुत वड़ी झील वनवाई और अपने नाम के आधार पर राजसमन्द उसका नाम रखा। यह झील वहुत गहरी है और उसका घेरा लगभग वारह मील का है। यह झील संगमरमर से वनवायी गयी। उसकी सीढ़ियाँ भी संगमरमर की वनी हैं। उस झील के दक्षिण की तरफ राणा ने एक नगर वसाया था और उसका नाम राजनगर रखा। उसने संगमरमर का एक मंदिर भी वनवाया था। उसको वनवाने में अट्ठानवे लाख रूपये खर्च किये गये थे। इस मंदिर के निर्माण में आर्थिक सहायता सामन्तों, सरदारों और प्रजा ने भी की थी।

राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी और राजपूतों से लड़ते-लड़ते औरंगजेव की शक्तियाँ शिथिल पड़ गयीं। हमारा विश्वास है कि मुगलों के वाद औरंगजेव के साथ राजपूतों की समानता करते हुये पाठक मेवाड़ के राजा की प्रशंसा करेंगे। यद्यपि औरंगजेव के साथ राजसिंह की समता करना किसी प्रकार ठीक नहीं मालूम होता। नैतिकता और मनुष्यता के नाम पर दोनों पर दूसरे के प्रतिकूल थे। राजसिंह जितना ही उदार और न्यायप्रिय था, औरंगजेव उतना ही अनुदार और पक्षपात से भरा हुआ, स्वार्थी था। एशिया महाद्वीप के राजसिंहासन पर आज तक जितने भी वादशाह वैठे हैं, उन सव से अधिक औरंगजेव ने अपने जीवन में अपराध किये थे। उसने अपने राज्य में सद्भावना से अधिक पक्षपात को स्थान दिया था, लेकिन उसके फलस्वरूप राज्य की तरफ से उसके साथ कभी विश्वासघात नहीं किया गया। औरंगजेव ने अपने राज्य की

सबसे बड़ी फौज लेकर राणा राजसिंह पर आक्रमण किया था और उस आक्रमण में शाहजादा अकबर जब राजपूतों के घेरे में आ गया था, जिससे उसके बचने का कोई मौका न रहा था, उस समय राणा राजसिंह के लड़के जयसिंह ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया और उसको सुरक्षित अवस्था में औरंगजेब के पास पहुँच जाने का मौका दिया। अपनी रक्षा के लिए पूरी शक्ति रखने की दशा में भी शत्रु के साथ उसने इतनी उदारता दिखाई, यह राजपूतों का ही काम था। इसके बाद औरंगजेब ने जो कुछ राणा के विरुद्ध किया, वह पूर्ण रूप से अनैतिक था। शत्रु के आक्रमण करने पर बुद्धिमान सैनिक और सेनापति की हैसियत से अपने देश की रक्षा करने में वह प्रत्येक अवस्था में प्रशंसा का अधिकारी है। शत्रु के भीषण आक्रमण के समय युद्धों के संकटों का सामना करते हुये राज्य की मर्यादा की रक्षा करने में एक बहादुर राजपूत की हैसियत से वह अद्वितीय था। एक शूरवीर में जो योग्यता, नैतिकता और न्याय परायणता होनी चाहिए, वह सब राणा राजसिंह के जीवन में था। वह केवल युद्ध में शूरवीर ही न था, बल्कि उसने राजसमन्द के नाम से जो एक विशाल झील बनवाई और राजनगर नाम का जो नगर बसाया उसके निर्माण कार्य से उसकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ कि संसार का कोई भी न्यायप्रिय मनुष्य अवश्य ही राणा राजसिंह की प्रशंसा करेगा।

□

अध्याय–23
महाराणा जयसिंह तथा दिल्ली में सैयद बन्धुओं का जाल

राणा राजसिंह की मत्यु के पश्चात् उसका दूसरा लड़का जयसिंह सम्वत् 1737 सन् 1681 ईसवी में मेवाड़ के राज-सिंहासन पर वैठा। जयसिंह के जीवन की उस घटना का यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है, जो राजस्थान के राजवंश में प्रचलित वहु-विवाह की प्रथा के प्रति संकेत करती है और उसके कारण होने वाले दुष्परिणाम को सब के सामने रखती है। जयसिंह के पैदा होने के कुछ दिन पहले राणा राजसिंह की दूसरी रानी से एक लड़का पैदा हुआ था, उसका नाम भीम था। राणा का प्रेम आरम्भ से ही जयसिंह के साथ अधिक था। दोनों लड़कों के बड़े हो जाने पर राणा को इस वात का ख्याल पैदा हुआ कि इन दोनों में आगे चल कर राज्याधिकार के लिए झगड़ा पैदा होगा। राणा के ऐसा सोचने का कारण यह था कि वह जयसिंह को अपना उत्तराधिकारी वनाना चाहता था। लेकिन अवस्था में वड़ा होने के कारण राज्य का अधिकारी भीम था।

वहुत दिनों तक इसके सम्वन्ध में अनेक चिंताओं में रहकर एक दिन राणा राजसिंह ने अपने वड़े पुत्र भीम को वुलाकर और अपनी तलवार की तरफ संकेत करके कहाः "तुम इस तलवार को ले लो और उससे अपने छोटे भाई जयसिंह को मार डालो क्योंकि उसके जिन्दा रहने से राज्य में भयानक उत्पात होंगे।" भीम अपने पिता का आशय समझ गया। उसने नम्रता के साथ उत्तर देते हुए कहाः "पिताजी, आप विलकुल चिन्ता न करें। मैं आपके सिंहासन को स्पर्श करके कहता हूँ कि मैं आज से अपने राज्याधिकार को छोटे भाई जयसिंह को देता हूँ और आपके सामने शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैंने अपने अधिकार को आज से छोड़ दिया। इस समय के वाद मैं आपके राज्य में कहीं पर पानी पीऊं तो मैं आपका लड़का नहीं।" यह कह कर अपने नौकरों के साथ भीम उदयपुर से चला गया।

गर्मी के दिन थे। उदयपुर से चल कर भीम ने अपने नौकरों और चाकरों के साथ देवारी के पहाड़ी मार्ग में प्रवेश किया और दोपहर की तेज धूप में कुछ देर विश्राम करने के उद्देश्य से एक घने वृक्ष की छाया में वह ठहरा। उस समय उसने घूम कर एक वार अपनी जननी जन्मभूमि उदयपुर की तरफ देखा। उसके वाद साथ के एक नौकर ने चाँदी के लोटे में सामने के झरने से ठन्डा पानी लाकर पीने को दिया। भीम ने उसे हाथ में लेकर पीना चाहा। लेकिन उसी समय उसे अपनी शपथ और प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया। वह तुरन्त पानी को जमीन पर फेंककर चलने के लिए तैयार हो गया। वहाँ से चलकर भीम अपने

पिता का राज्य पारकर बादशाह के बेटे बहादुरशाह के पास पहुँचा। बादशाह ने उसका बड़े सम्मान के साथ स्वागत किया और अपने यहाँ तीन हजार सवार सेना का उसको सरदार बना दिया। साथ ही जीवन-निर्वाह के लिए अपने राज्य के बारह जिले उसको दे दिये।

लेकिन कुछ समय में मुगल सेनापति के साथ झगड़ा होने के कारण भीम को बादशाह ने सिंध नदी के पार भेज दिया। काबुल में पहुँचने के बाद कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी।

राणा राजसिंह के मरने के पहले उसके साथ सन्धि की शुरूआत हुई थी। उसकी बहुत-सी बातों का निर्णय भी हो गया था। परन्तु सन्धि-पत्र पर दस्तखत होने के पहले ही राणा राजसिंह की मृत्यु हो गयी। इसलिए वह सन्धि अधूरी रह गयी थी। राणा के मर जाने के बाद राज्य का अधिकारी हो जाने पर और सिंहासन पर बैठने के उपरान्त जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब के साथ सन्धि कर ली। यह सन्धि बादशाह के लड़के शाहजादा अजीम और सेनापति दिलेर खाँ के द्वारा औरंगजेब और राणा जयसिंह के बीच हुई। राणा राजसिंह के विरुद्ध औरंगजेब ने एक विशाल सेना लेकर आक्रमण किया था। उस युद्ध में अरावली पर्वत के कठिन स्थानों में बादशाह की फौज संकट में पड़ गयी थी। उस समय जयसिंह ने दिलेर खाँ और बादशाह के लड़के के साथ अत्यन्त उदारता का व्यवहार किया, जैसा पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है।

दिलेर खाँ जयसिंह की उस उदारता को भूला न था। सन्धि के समय उदयपुर में मेवाड़ और दिल्ली राज्यों के बहुत से आदमियों का जमाव हुआ था। उसमें दस हजार सैनिक सवारों और चालीस हजार पैदल सिपाहियों के अतिरिक्त अरावली पर्वत पर रहने वाले अगणित संख्या में भील और दूसरी लड़ाकू जातियों के लोग एकत्रित हुए। इस प्रकार एक लाख से अधिक एकत्रित जन समूह ने राणा जयसिंह की जय-जयकार के नारे लगाने शुरू किये। उस समय शाहजादा अजीम के मन में भय उत्पन्न हुआ परन्तु दिलेर खाँ के दिल में जयसिंह की तरफ से किसी प्रकार की आशंका न थी। सन्धि का काम समाप्त हुआ। मेवाड़ राज्य की तरफ से बादशाह को तीन जिले दिये गये और यह तय हुआ कि सन्धि के बाद राणा जयसिंह को लाल रंग के डेरे और छत्र के प्रयोग का अधिकार न रहेगा।

सन्धि का काम सम्पन्न हो जाने के बाद भी उदयपुर में राणा के असीम सैनिकों का एक चित्र देखकर अजीम के मन में जो सन्देह पैदा हुआ था, वह बराबर बना रहा और उस संदेह को दूर करने के लिए मुगल सेनापति दिलेर खाँ ने उदयपुर से विदा होने के समय राणा जयसिंह से कहा: "आपके सरदार और सामन्त स्वाभाविक रूप से कठोर हैं। इस सन्धि का महत्व हमारे और आपके बीच जो कुछ हो सकता है, उसे दूसरे लोग नहीं समझ सकते। आपको इस बात का स्मरण रखने की आवश्यकता है कि यह सन्धि जो इस समय सम्पन्न हुई है, उस मित्रता की परिचायक है, जो आपके पिता और मेरे बीच में कायम हुई थी।"

दिलेर खाँ का उद्देश्य दोनों राज्यों के प्रति सराहनीय था परन्तु अपनी चेष्टा में वह सफल न हुआ। राज सिंहासन पर बैठने के चार-पाँच वर्ष बाद जयसिंह को अपनी तलवार का विश्वास करना पड़ा। मुगलों के भीषण आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए राणा को फिर पर्वतों का आश्रय लेना पड़ा और अनेक बार युद्ध करने पड़े। इन लड़ाइयों में राणा को बहुत बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इन कठिनाइयों का सामना करने के बाद भी जयसिंह ने कुछ ऐसे काम किये, जो उसकी योग्यता का परिचय देते हैं। उसने जयसमन्द नाम की

एक बहुत बड़ी झील का निर्माण पहाड़ पर करवाया। भट्ट ग्रन्थों में लिखा गया है कि उस समय इस देश में जितनी झीलें थीं, जयसिंह की बनवाई हुई यह झील उनमें सबसे बड़ी और दर्शनीय थी। इसका घेरा पन्द्रह कोस से अधिक है। इस झील से यहाँ की खेती को बहुत लाभ पहुँचा और कृषकों ने उसका लाभ उठा कर अपनी आर्थिक उन्नति की। इस झील के समीप राणा जयसिंह ने अपनी रानी कमला देवी के लिए एक प्रसिद्ध महल बनवाया था।

राणा जयसिंह में एक बहुत बड़ी कमजोरी थी। उसमें विलासिता की भावना थी और उस विलासिता ने उसे स्त्री-परायण बना दिया था। उसकी इस आदत के कारण उसके सम्मान को भयानक रूप से आघात पहुँचा। जयसिंह की बहुत-सी रानियाँ थीं। उन रानियों में अमरसिंह की माँ सबसे बड़ी थी। इसलिए उससे पैदा हुआ लड़का अमरसिंह राणा जयसिंह का उत्तराधिकारी था। उसकी माता बूँदी राज्य के हाड़ा वंश में पैदा हुई थी। राणा जयसिंह अपनी रानियों में कमला देवी से अधिक प्रेम करता था। इन सब बातों के कारण राणा जयसिंह के परिवार में ईर्ष्या-भाव की वृद्धि हुई और उस ईर्ष्या ने राणा के परिवार में शत्रुता पैदा कर दी इसके फलस्वरूप राणा जयसिंह के गौरव को धक्का ही नहीं पहुँचा, बल्कि परिवार की इस बढ़ती हुई शत्रुता के कारण मेवाड़-राज्य की मर्यादा का विनाश आरम्भ हुआ। इस विनाश का कारण राजस्थान के राजाओं में प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा थी।

राणा जयसिंह ने अपने परिवार में बढ़ती हुई कलह की परवाह न की। वह अपनी रानी कमला देवी से इतना स्नेह करता था कि उसके बदले में वह अपने जीवन में सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार था, यही हुआ भी। राणा अपने अन्तःकरण की अशान्ति को दबा न सका और अपनी सभी रानियों को छोड़कर अपनी छोटी रानी कमला देवी के साथ कहीं अन्यत्र जाने का विचार किया। उसने अपनी राजधानी का उत्तरदायित्व अमरसिंह को सौंपा और अमरसिंह को पांचौली नामक मन्त्री के संरक्षण में देकर अपनी रानी कमला देवी के साथ जयपुर का रास्ता लिया। वहाँ के एक नगर में पहुँचकर वह एकान्त जीवन व्यतीत करने लगा। परन्तु वहाँ पर भी वह अधिक समय रह न सका और अपने लड़के के उपद्रवों के कारण उसे अपने नगर में फिर लौट आना पड़ा। अमरसिंह और मन्त्री पांचौली में झगड़ा पैदा हुआ। अमरसिंह का व्यवहार राज्य के हित के लिए अच्छा न था। मन्त्री ने उसको रास्ते पर लाने की कोशिश की। परन्तु उसको सफलता न मिली। मन्त्री के साथ अमरसिंह के बढ़ते हुए विरोध को सुन कर और अनेक प्रकार की आशंकायें करके राणा जयसिंह को उदयपुर में लौटकर आ जाना पड़ा। राणा के उदयपुर से चले जाने के बाद अमरसिंह बिलकुल स्वतन्त्र हो गया और बिना किसी अंकुश के मनमानी करने लग गया। उसकी इस अनुचित स्वतन्त्रता में उसकी माँ सहायक होती थी।

राणा जयसिंह के उदयपुर लौट आने पर अमरसिंह ने अपनी माता से परामर्श किया और उसकी सलाह से वह अपने मामा हाड़ा राजा के पास बूंदी पहुँचा और वहाँ से दस हजार सैनिक सवारों की सेना लेकर वह उदयपुर आ गया। राणा जयसिंह का विध्वंसकारी विरोध आरम्भ हुआ। राणा जयसिंह से मेवाड़ राज्य के सरदार और सामन्त प्रसन्न न थे। वे सभी राणा को अत्यन्त विलासी और आलसी समझते थे। इसलिए उन लोगों ने राणा का साथ न दिया। जीवन की यह परिस्थिति राणा के लिए अत्यन्त संकटपूर्ण बन गयी। इसके फलस्वरूप राणा उदयपुर से निकल कर गडवाड़ राज्य चला गया और वहाँ के सामन्त राजा को उसने अमरसिंह के पास भेजा। उसने पिता और पुत्र की बढ़ती हुई शत्रुता को मिटाने की कोशिश की। परन्तु वह सफल न हुआ। उदयपुर के सरदारों की सहायता पाकर वह

बहुत निडर हो गया था और पिता की मौजूदगी में वह सिंहासन का अधिकार अपने हाथों में ले लेना चाहता था। राज्य के खजाने पर अपना अधिकार करने के लिए अपनी सेना के साथ वह कमलमीर की तरफ चला। कमलमीर दिप्रा नाम के सरदार के हाथ में था। वह समझदार, शूरवीर और दूरदर्शी था। उसने अमरसिंह की विशाल सेना की परवाह न की और उसने अमरसिंह को किसी प्रकार सफल न होने दिया।

इस प्रकार के कुछ और भी कारणों से अमरसिंह की शक्तियाँ क्षीण पड़ने लगीं। उनसे विवश होकर अमरसिंह ने अपने पिता के साथ सन्धि कर ली। राणा जयसिंह ने बीस वर्ष तक राज्य किया। उसके मरने पर उसका बड़ा लड़का अमरसिंह सम्वत् 1756 सन् 1700 ईसवी में सिंहासन पर बैठा। पिता के जीवन काल में वह अपने व्यवहारों के कारण अनेक प्रकार की हानियाँ उठा चुका था। जिनसे वह अपनी शक्तियों का संचय न कर सका। फिर भी वह समझदार और दूरदर्शी था। उन दिनों में मुगल राज्य में आपसी झगड़े बढ़ गये थे। उनको देखकर अमरसिंह ने मुगल राज्य के अधिकारी शाहआलम के साथ सन्धि कर ली।[1]

बादशाह बाबर ने भारतवर्ष में मुगलों के राज्य की प्रतिष्ठा की थी और अकबर ने उसको विस्तार देकर लगभग सम्पूर्ण भारत में अपना साम्राज्य कायम कर लिया था। जिस नीति से अकबर को अपने राज्य को बढ़ाने में सफलता मिली थी, औरंगजेब ने जीवन-भर बिल्कुल उसके प्रतिकूल काम किया। वह स्वाभाविक रूप से हिन्दुओं का और हिन्दू धर्म का विरोधी था। अपने इस स्वभाव के कारण ही वह उन हिन्दू राजाओं के साथ भी अच्छा व्यवहार न कर सका, जो अकबर के समय से मुगल साम्राज्य के समर्थक बने थे। वह मुस्लिम धर्म का प्रबल पक्षपाती था। अपने कठोर शासन के द्वारा उसने हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया था।

बादशाह अकबर के समय मुगल साम्राज्य में मुसलमानों को धार्मिक मामलों में बराबर के अधिकार थे। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय तक हिन्दुओं के इस प्रकार के अधिकार बराबर कायम रहे। औरंगजेब ने हिन्दुओं के इन अधिकारों को नष्ट कर दिया था। उसने उन लोगों पर जजिया (टैक्स) कर की तरह के कठोर कर लगाये थे, जिन लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया था। उसके समय में इस्लाम धर्म की धूम थी। जो हिन्दू अपनी किसी भी दशा में इस्लाम को मंजूर कर लेता था, वह बादशाह औरंगजेब की हमदर्दी को प्राप्त करने का सहज ही अधिकारी बन जाता था। औरंगजेब का समस्त शासन इस प्रकार के पक्षपात से सदा डूबा रहा। मुगल साम्राज्य के पतन की शुरुआत यहीं से हुई और इसी पक्षपात ने उस विशाल साम्राज्य को सब प्रकार से कमजोर बना दिया।

सीसोदिया वंश की एक छोटी शाखा में रावगोपाल नामक एक राजपूत पैदा हुआ था। वह चम्बल नदी के किनारे पर बसे हुए रामपुर के इलाके का एक सामन्त राजा था। वह अपनी सेना के साथ दक्षिण की लड़ाई में गया था और जाने के समय उसने रामपुर का शासन अपने लड़के को सौंप दिया था। उसके लड़के ने उसके साथ विद्रोह किया। इस अवस्था में रावगोपाल ने अपने लड़के के विरुद्ध मुगल बादशाह के यहाँ मुकदमा दायर किया। रावगोपाल का लड़का अपराधी था। उस अपराध से बचने के लिए उसके सामने

---

1. इस सन्धि में राणा अमरसिंह ने जो शर्तें पेश की थीं और वे मंजूर हुई थीं, उनका महत्वपूर्ण अंश संक्षेप में इस प्रकार है: (1) चित्तौड़ की प्रतिष्ठा का अधिकार राणा को होगा। (2) गो हत्या न की जाये। (3) शाहजहाँ के समय में जो जिले मेवाड़ राज्य में शामिल थे, वे राणा के अधिकार में रहेंगे। (4) धार्मिक बातों में हिन्दुओं को पूरी स्वतन्त्रता रहेगी।

कोई रास्ता न था। इसलिए उसने हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म मंजूर कर लिया। उसके ऐसा करने से बादशाह औरंगजेब ने उसके पिता रावगोपाल के चलाये हुए मुकदमे को खारिज कर दिया। इसके साथ-साथ बादशाह ने रावगोपाल का राज्य भी उसके लड़के को दे दिया।

रावगोपाल को इस अन्याय से बहुत कष्ट पहुँचा। उसने अपनी छोटी-सी सेना लेकर अपने लड़के पर आक्रमण किया। परन्तु उसके लड़के को बादशाह की मदद मिलने के कारण रावगोपाल को सफलता न मिली। उस दशा में रावगोपाल ने राणा अमरसिंह के पास जाकर आश्रय लिया। औरंगजेब ने जब सुना कि राणा अमरसिंह ने रावगोपाल को अपने यहाँ आश्रय दिया है तो वह अमरसिंह से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने उसको मुगल-राज्य का एक विद्रोही मान लिया।

बादशाह औरंगजेब ने एक मुगल सेना देकर शाहजादा अजीम को राणा अमरसिंह के विरुद्ध मालवा भेज दिया। अमरसिंह को जब मालूम हुआ तो उसने अजीम के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की और उसकी सहायता के लिए मालवा का राजा युद्ध-क्षेत्र में गया। अजीम उस समय नर्वदा नदी के दूसरी तरफ था। वहाँ पर महाराष्ट्र लोगों ने मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रखा था। उस बगावत को शांत करने के लिए औरंगजेब ने राजा जयसिंह को एक मुगल सेना के साथ अजीम की सहायता के लिए भेजा।

उन दिनों में मुगलों का शासन डाँवाडोल हो रहा था। साम्राज्य में चारों तरफ मुगलों के विरुद्ध विद्रोह हो रहे थे और कितने ही छोटे-छोटे राजा मुगलों से स्वतंत्र होने के लिए कोशिश कर रहे थे। दक्षिण में औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी ने विद्रोह कर रखा था। साम्राज्य की इस निर्बल अवस्था में औरंगजेब के लड़कों और भतीजों ने उसके विरुद्ध बगावत की। इससे औरंगजेब की कठिनाईयाँ भयानक हो उठीं। वह घबराकर अपने नाम पर बसाये हुए औरंगाबाद नामक नगर में चला गया और वहाँ पर सन् 1707 ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरते ही उसके लड़कों और भतीजों में सिंहासन पर बैठने के लिए भयानक झगड़ा पैदा हुआ।

मुगल साम्राज्य की इस बगावत में औरंगजेब के दूसरे पुत्र अजीम ने साम्राज्य का अधिकार अपने हाथों में लिया। यह देखकर उसके बड़े भाई शाहजादा मुअज्जम ने अपनी सेना लेकर अजीम पर आक्रमण किया। अजीम दतिया और कोटा के राजपूतों की सहायता लेकर मुअज्जम से लड़ने के लिए आगरा पहुँचा। मेवाड़, मारवाड़ और राजस्थान के सभी पश्चिमी राजा मुअज्जम के साथ लड़ने के लिए आये थे। जाजौ नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। दतिया और कोटा के राजाओं और अपने लड़के बेदारबख्त के साथ अजीम मारा गया। उसके पश्चात् शाहजादा मुअज्जम शाहआलम बहादुरशाह के नाम से मुगल सिंहासन पर बैठा।

मुअज्जम के कुछ स्वाभाविक गुणों ने राजपूतों को अपनी ओर आकर्षित किया था। वह हिन्दुओं के साथ पक्षपातहीन व्यवहार करता था। एक विशेषता यह भी थी कि उसका जन्म एक राजपूत स्त्री से हुआ था। शाहजहाँ के बाद मुगल सिंहासन पर यदि मुअज्जम बैठा होता तो राजस्थान के राजाओं के साथ मुगल-साम्राज्य की शत्रुता न बढ़ती और मुगलों का शासन बहुत जल्दी कमजोर न पड़ जाता। परन्तु शाहजहाँ के बाद औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने अपने जीवनकाल में हिन्दुओं के साथ जिस प्रकार घृणित और पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया, उसके फलस्वरूप मुगलों के साथ राजपूतों के जो सम्बन्ध सुदृढ़ और सहानुभूतिपूर्ण बहुत दिनों से चले आ रहे थे, वे ढीले पड़ गये और उत्तरोत्तर वे कमजोर पड़ते गये।

शाहआलम ने बादशाह बनने के बाद राजपूतों से टूटते हुए सम्बन्धों को फिर से जोड़ने की चेष्टा की। परन्तु इसके सम्बन्ध में उसकी सभी कोशिशें बेकार हो गयीं। इन्हीं दिनों में छोटे भाई कामबख्श के साथ बादशाह का भयानक झगड़ा हुआ। कामबख्श ने अपने आपको भारत के दक्षिणी मुगल राज्य का बादशाह घोषित किया। शाहआलम अपने छोटे भाई के इस अन्यायपूर्ण कार्य का कुछ प्रतिकार करना चाहता था, परन्तु उसी बीच मुगल शासन के विरुद्ध सिक्खों का विद्रोह बढ़ा। बादशाह के लिए यह विद्रोह अधिक भयानक मालूम हुआ और उसने सब से पहले सिक्खों का दमन करने की बात सोची। उन दिनों में सिक्खों का संगठन जोर पकड़ रहा था और उनकी भाषा में सिक्ख का अर्थ शिष्य होता है। आक्सस नदी के किनारे शाकद्विपी जित वंश में इन सिक्खों के पूर्वजों का जन्म हुआ था। पाँचवीं शताब्दी के मध्यकाल में सिक्खों के पूर्वज भारत के पश्चिमी भाग में आकर बसे। गुरू नानक से जिन लोगों ने दीक्षा पायी, वे सभी सिक्खों के नाम से विख्यात हुए। वे इन दिनों में मुगलों के शासन से अलग होकर अपने आप को स्वतंत्र बनाने की चेष्टा में थे।

विद्रोही सिक्खों का दमन करने के लिए बादशाह शाहआलम पंजाब की तरफ रवाना हुआ। जिस समय वह सिक्खों के विरुद्ध युद्ध पर जाने की तैयारी कर रहा था, आमेर और मारवाड़ के राजाओं ने जाकर उससे भेंट की और बिना कुछ उसको जाहिर किये दोनों हिन्दू राजा वहाँ से लौट आये। इतिहासकारों का अनुमान है कि उस समय ये दोनों हिन्दू राजा विद्रोही सिक्खों का अनुकरण करके मुगलों की अधीनता से छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे।

बादशाह शाहआलम के नेत्रों से इन हिन्दू राजाओं की भावना छिपी न थी। उसने अपने लड़के के द्वारा उनके इन भावों को बदलने की चेष्टा की। परन्तु उसमें उसको सफलता न मिली। आमेर और मारवाड़ के राजा शाहआलम के यहाँ से लौटकर उदयपुर में राणा अमरसिंह के पास पहुँचे और उस समय उन तीनों के बीच संधि हुई। उसमें निश्चय हुआ कि आज से हम लोगों में से कोई भी मुगल बादशाह के साथ सामाजिक अथवा राजनीतिक तथा किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखे। इस संधि के द्वारा उन तीनों राजाओं में सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिष्ठा हुई, जो पिछले दिनों में भंग कर दिये गये थे। इस संधि के द्वारा जो सम्बन्ध राजपूतों के मुगलों के साथ बाकी रह गये थे, वे निर्जीव पड़ गये और मुगलों की अधीनता से राजपूतों को छुटकारा प्राप्त करने का रास्ता मिला। परंतु इन्हीं दिनों में संगठित मराठों ने राजस्थान में प्रवेश किया और उनको छिन्न-भिन्न कर डाला।

रामपुर के राजा रावगोपाल का लड़का रतनसिंह अपने पिता से विद्रोही होकर मुसलमान हो गया था और उस दशा में औरंगजेब ने रतनसिंह की सहायता करके उसके पिता का राज्य उसको सौंप दिया था। रावगोपाल इसके बाद राणा अमरसिंह की शरण में गया था। राणा ने उसकी सहायता का वादा किया और अपनी सेना के साथ उसने रतनसिंह के विरुद्ध रामपुर पर आक्रमण किया। मुसलमान हो जाने के बाद रतनसिंह का नाम राजमुस्लिमखाँ हो गया। राजमुस्लिमखाँ ने राणा की सेना का मुकाबला किया और राणा को पराजित किया।

राणा की पराजय का समाचार बादशाह ने दूत से सुना। उसने यह भी सुना कि पराजित होने के बाद अपना राज्य छोड़कर राणा ने पर्वत पर जाकर रहने का निर्णय किया है। इन समाचारों से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने समाचार लाने वाले दूत को इनाम और इकराम दिये। इसके कुछ दिनों के बाद बादशाह को यह भी मालूम हुआ कि राणा की तरफ से साँवलदास नामक एक सरदार ने फिरोजखाँ पर आक्रमण किया। फिरोजखाँ अपना राज्य छोड़कर अजमेर भाग गया। इस लड़ाई में साँवलदास का लड़का

जयमल मारा गया। मारवाड़ का शूरवीर दुर्गादास उदयपुर चला आया था। मारवाड़ के राजा से असंतुष्ट होने के कारण उसे ऐसा करना पड़ा था। राणा ने उदयपुर में उसे सम्मानपूर्ण स्थान दिया था और उसके जीवन-निर्वाह के लिये पाँच सौ रुपये रोजाना के हिसाव से उसको दिये जाने की व्यवस्था कर दी थी।

दुर्गादास जैसे शूरवीरों का कोई लाभ उदयपुर को मिलने के पहले ही शाहआलम वहादुरशाह की मृत्यु हो गयी। राज्य के विरोधियों के द्वारा सन् 1712 ईसवी में वादशाह शाहआलम को विष देकर उसके प्राणों का अन्त किया गया। वादशाह शाहआलम चरित्रवान आदमी था। लेकिन उसको अपने पिता के अपराधों का फल भोगना पड़ा। औरंगजेव के अत्याचारों से मुगल साम्राज्य में वहुत अशान्ति पैदा हो गयी और चारों तरफ अधीनस्थ राजाओं ने स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह कर रखा था।

वादशाह शाहआलम के मरने के वाद मुगल राज्य की परिस्थिति एक साथ भयानक हो उठी। राज्य के उत्तराधिकारियों में झगड़े पैदा हो गये। इन्हीं दिनों में गंगा-यमुना के वीच के वेरा नगर से दो सैयद वन्धुओं ने आकर मुगल राज्य में अपना आधिपत्य जमाया और शासन व्यवस्था को व्यापार वना कर दोनों भाइयों ने मुगलों के राज्याधिकार के सा एक खेल आरम्भ कर दिया। जिसके द्वारा दोनों सैयद वन्धुओं का स्वार्थ-साधन होता, वह मुगल सिंहासन का अधिकारी हो जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि राजसिंहासन पर वैठने के लिए मुगलों में जो परिपाटी चली आ रही थी,[1] उसका कोई महत्व न रहा। इस प्रकार मुगलों का सिंहासन और उस पर वैठने का अधिकारी हुसैन अली और अब्दुल्ला खाँ - दोनों सैयद वन्धुओं के निर्णय पर चलने लगे। मुगल शासन की यह अवस्था उस समय शुरू हुई जब उदयपुर में राजस्थान के तीन राजाओं ने मुगल वादशाह के विरुद्ध संधि की थी और वे तीनों जिन दिनों मुगल राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये तैयार थे। दोनों सैयद वन्धुओं ने फर्रूखसियर को मुगलों के राजसिंहासन पर विठाया और सम्पूर्ण राज्य में अपने आतंक का विस्तार कर दिया। इसके फलस्वरूप राजपूतों में जो अराजकता पैदा हो रही थी, उसकी आग प्रज्ज्वलित हो उठी।

वहुत दिनों से मुगल शासकों के अत्याचारों को सहते हुए राजपूत जिस शांति और सन्तोष से काम ले रहे थे, वह अव कायम न रह सकी। इधर मुगल राज्य में सैयद वन्धुओं की जो मनमानी चल रही थी, उसने राजपूतों को खुलकर विद्रोह करने का निमंत्रण दिया। राजस्थान में स्थान-स्थान पर मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें वनवाई गयी थीं और उन मस्जिदों में मुगल लोग दीवानी और फौजदारी के मुकदमे निपटाते थे। मोहम्मद साहव के आदेशों का प्रचार होता था। राजस्थान की इन परिस्थितियों को सहन करने के लिए राजपूत लोग अव तैयार न थे। उन्होंने मुल्ला और काजी लोगों के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया। उसका फल यह हुआ कि राजस्थान में मस्जिदों के अस्तित्व नष्ट होने लगे। इसके पहले मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के समस्त अधिकारों को छीन कर मुसलमानों को दे दिया था। इन दिनों में राजपूतों ने और विशेष रूप से राठौरों ने उन अधिकारों को मुसलमानों के हाथों से छीन लिया। मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने इन दिनों में मुगलों को अपने यहाँ पूर्ण रूप से पराजित किया और उनको मारवाड़ से निकाल दिया। उदयपुर में जो संधि हुई थी; उसके

1. सैयद हुसैन अली अमीरुलउमरा के नाम से और उसका भाई अब्दुल्ला खाँ कुतवुल मुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वादशाह फर्रुखसियर ने गुप्त रूप से हुसैन अली के विरुद्ध अजितसिंह के पास जो पत्र भेजा था, उसकी जानकारी दोनों सैयद वन्धुओं को न थी। असलिए वे वादशाह की तरफ से अजितसिंह को दवाना चाहते थे।

अनुसार तीनों राजाओं ने साँभर झील को अपने-अपने राज्यों की सीमा मान ली और उससे होने वाली आमदनी को तीनों आपस में बाँट लेते थे।

राजपूतों की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बादशाह फर्रूखसियर ने विरोध करने का निश्चय किया और इसके लिए अलीरुलउमरा एक मुगल सेना के साथ अजितसिंह से युद्ध करने के लिए मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। उसी अवसर पर बादशाह फर्रूखसियर ने छिपे तौर पर एक पत्र अजितसिंह के पास भेजा और उसमें लिखा कि हमारे सेनापति सैयद को उसके हमले का पूरा फल मिलना चाहिए। बादशाह फर्रूखसियर ने जो इस प्रकार का पत्र अजितसिंह के पास भेजा था, उसका कारण यह था कि वह दोनों सैयद वन्धुओं से वहुत दवा हुआ था और अपने आपको नाम का बादशाह समझता था। उसके इस पत्र का कोई लाभ उसको न हुआ। मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने मुगल सेनापति अमीरुलउमरा के साथ संधि कर ली और एक निश्चित कर देने के साथ-साथ अपनी लड़की का विवाह बादशाह के साथ करने का वादा कर लिया।

इस विवाह के होने के कुछ दिन पहले बादशाह फर्रूखसियर की पीठ में एक फोड़ा निकला। वह धीरे-धीरे बढ़ गया। हकीमों और जर्राहों की बहुत चिकित्सा के बाद भी उसमें कुछ लाभ न पहुँचा। एक तरफ बादशाह को उस फोड़े का कष्ट था, जो दिन पर दिन भयानक होता जा रहा था और दूसरी तरफ उसके विवाह के जो दिन करीब आ रहे थे। इलाज करते-करते और भी कुछ दिन बीत गये। विवाह का जो दिन नियत हुआ था, वह दिन भी निकल गया, लेकिन बादशाह का फोड़ा ठीक न हुआ।

उन दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यवसाय करने के लिए आयी थी और उस कम्पनी के अंग्रेज सूरत में मौजूद थे। उन अंग्रेजों में हेमिल्टन नाम का एक डाक्टर भी था। उसने जब बादशाह को बीमार सुना तो वह देखने गया। फोड़े की हालत देखकर उसने घबराये हुए बादशाह को अनेक तरह की बातें समझाईं और अपनी चिकित्सा करने का उसने इरादा जाहिर किया। बादशाह की आज्ञा पाकर उस अंग्रेज डाक्टर ने फोड़े की चिकित्सा आरम्भ की। उसके इलाज से थोड़े ही दिनों में फोड़ा अच्छा हो गया।

स्वस्थ होने के बाद बादशाह फर्रूखसियर ने डाक्टर हेमिल्टन को इनाम देने का इरादा किया। बादशाह के इस इरादे को सुनकर डाक्टर हेमिल्टन ने कहा कि "मुझे इस चिकित्सा के बदले बादशाह का लिखा हुआ वह फरमान मिलना चाहिए, जिससे हमारी कम्पनी को इस राज्य में रहने का अधिकार मिले और हमारे मुल्क इंगलैण्ड से आने वाले माल पर जो चुंगी ली जाती है, वह माफ कर दी जाये।"

बादशाह डाक्टर हेमिल्टन की इस माँग को सुनकर -जिसमें किसी प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना न थी और उसके एक-एक अक्षर से देशभक्ति की महत्वपूर्ण शिक्षा मिलती थी- बहुत प्रभावित हुआ और उसने डाक्टर की माँग को स्वीकार किया। स्वस्थ हो जाने के पश्चात् बादशाह ने मारवाड़ की राजकुमारी के साथ अपना विवाह किया।

फर्रूखसियर दोनों सैयद वन्धुओं से बहुत असन्तुष्ट था। कुछ और न कर सकने की अवस्था में उसने औरंगजेब के पुराने मन्त्री इनायतउल्ला खाँ को अपना मन्त्री मुकर्रर किया। इनायतउल्ला खाँ ने अपने इस पद पर आते ही हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किये और जजिया टैक्स उसने फिर से कायम किया। बादशाह औरंगजेब के समय में यह टैक्स हिन्दुओं पर लगाया गया था। उसका एक संशोधित रूप इनायतउल्ला खाँ ने अपने मन्त्री काल में फिर से हिन्दुओं में आरम्भ किया। इसके सिवा और भी अनेक प्रकार के भीषण अत्याचार उस समय हिन्दुओं के साथ आरम्भ किये गये।

इसी परिच्छेद में पहले लिखा जा चुका है कि मुगल बादशाह के विरुद्ध जिन तीन राजाओं ने उदयपुर में संधि की थी, उसमें मारवाड़ का राजा अजितसिंह भी था। उस संधि में यह शर्त थी कि हममें से कोई मुगल बादशाह के साथ सामाजिक अथवा राजनीतिक - किसी प्रकार का सम्बन्ध न करेगा। संधि की उस शर्त को तोड़ कर अजितसिंह ने मुगल बादशाह फर्रूखसियर की अधीनता स्वीकार की और उसके साथ अपनी लड़की का विवाह किया। उसके इस कार्य ने राणा अमरसिंह से उसको फिर से अलग कर दिया।

जिन दिनों राजस्थान के कितने ही राजा मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे, दिल्ली के करीब रहने वाले जाटों ने भी विद्रोह किया और वे लोग स्वतन्त्र हो गये। ये जाट लोग जिट वंश की एक शाखा में पैदा हुए थे और चम्बल नदी के पश्चिम की तरफ रहा करते थे। मुगल साम्राज्य की बढ़ती हुई कमजोरियों को देख कर जाटों ने संगठित रूप से मुगल बादशाह के विरुद्ध अपनी स्वाधीनता का झण्डा उठाया और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। मुगलों की शक्तियाँ अपनी पराधीनता में जाटों को रख न सकी।

मारवाड़ के राजा अजितसिंह ने जिन दिनों में मुगल बादशाह के साथ संधि की थी, उसके थोड़े ही दिनों के पश्चात राणा अमरसिंह की मृत्यु हो गयी। वह एक स्वाभिमानी और उन्नतिशील राजा था। जिन दिनों में चारों ओर से मुगल साम्राज्य पर आक्रमण हो रहे थे और उसकी अधीनता में पड़े हुये राजा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये चेष्टा कर रहे थे, राणा अमरसिंह बड़ी बुद्धिमानी के साथ मेवाड़ राज्य की उन्नति में लगा हुआ था। उसने अपने जीवन में कितने ही ऐसे कार्य किये थे, जिनके द्वारा वह सर्व प्रशंसा का अधिकारी हुआ।

□

अध्याय—24
महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय और जगतसिंह

सन् 1716 ईसवी में राणा अमरसिंह की मृत्यु हुई। उसने अपने जीवन में अंत तक मेवाड़ राज्य को उन्नत और सम्मानपूर्ण बनाने की चेष्टा की थी। उसके बाद संग्रामसिंह मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर बैठा। लगभग इन दिनों में मुगल साम्राज्य का अंतिम बादशाह मोहम्मदशाह सिंहासन पर बैठा था। सन् 1716 से 1734 ईसवी तक - संग्रामसिंह के शासनकाल में विशाल मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

बादशाह फर्रूखसियर का थोड़े दिनों का शासन अपने अंतिम दिनों में चल रहा था। वह मुगल-सिंहासन पर था। परन्तु सैयद बन्धुओं के हाथों में वह कठपुतली हो रहा था। शासन में न तो उसका कुछ अधिकार था और न सम्मान था। उसने सैयद बन्धुओं के आधिपत्य को खत्म करने के लिए अनेक प्रयास किये थे, परन्तु किसी में उसको सफलता न मिली। उसने इनायत उल्ला को अपना मंत्री इसलिए मुकर्रर किया था कि उसकी सहायता से दोनों सैयद बन्धुओं का प्रभाव नष्ट हो जायगा परन्तु ऐसा न हुआ। इनायतउल्ला ने मन्त्री होने के पश्चात जजिया जैसे कर लगा कर हिन्दुओं के साथ जो असंगत और अन्यायपूर्ण व्यवहार किया, उससे बादशाह के साथ राजपूतों की जो सहानुभूति बाकी रह गयी थी, वह भी नष्ट हो गयी।

जब बादशाह को अपने किसी प्रयत्न में सफलता न मिली तो उसने हैदराबाद राज्य की प्रतिष्ठा करने वाले निजामुल-मुल्क को अपनी सहायता के लिए बुलाया। इसके पहले निजामुल-मुल्क मुरादाबाद का सूबेदार था। वह शासन-सम्बन्धी कार्यों में बहुत चतुर था। इसीलिए बादशाह ने सैयद बन्धुओं से राहत प्राप्त करने के लिए उसको बुलाया और मालवा का राज्य उसे देने का वादा किया।

सैयद बन्धुओं को निजामुल-मुल्क के बुलाये जाने की खबर मिल गयी। उन्होंने मराठों की दस हजार सेना लेकर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया और फर्रूखसियर को सिंहासन से उतार दिया। उस समय आमेर और बूँदी के दो राजाओं के अतिरिक्त बादशाह का कोई सहायक न था। उस संकट के समय इन दोनों राजाओं ने बादशाह को जो परामर्श दिया, उस पर अमल करने की बादशाह की हिम्मत न पड़ी। इसलिए दोनों हिन्दू राजा उसको छोड़कर चले गये।

बादशाह फर्रूखसियर बहुत कमजोर तबीयत का आदमी था। सैयद बन्धुओं से घबरा कर वह जनानखाने में अपनी बेगमों के साथ रहने लगा। उस हालत में सैयद बन्धुओं ने बादशाह के पास संदेश भेजा कि "तुम राजपूतों का विश्वास छोड़ दो और हमारे सेनापति

को अपने दुर्ग का अधिकार दे दो। तुम्हारे ऐसा करने से हम तुम्हारे साथ फिर कोई अत्याचार न करेंगे।" बादशाह को मजबूर होकर इस आज्ञा का पालन करना पड़ा। उसके हाथ से दुर्ग निकल गया और वहाँ पर वजीर और अजितसिंह को छोड़ कर अन्य कोई उसका सहायक न रह गया। इनके बाद बाहर इस बात का पता किसी को न चला कि महलों में क्या हो रहा है।

अमीरुलउमरा अपनी दस हजार मराठा सेना के साथ बाहर इन्तजार कर रहा था। फर्रुखसियर के स्थान पर रफीउशदरजात दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इस समय मुगल-राज्य की जो हालत चल रही थी, उससे घबरा कर नये बादशाह ने अजितसिंह और दूसरे राजाओं को खुश करने का विचार किया। इसके लिए उसने जजिया टैक्स जो हिन्दुओं पर लगाया था, हटा लिया। दूसरी तरफ सैयद बंधुओं ने राजपूतों को खुश करने की चेष्टा की और इनायत उल्ला को मन्त्री के पद से हटा कर राजा रत्नचन्द को मुगल-राज्य का मन्त्री बनाया।

तीन महीने तक शासन करने के बाद रफीउशदरजात की मृत्यु हो गयी। उसके बाद दो अन्य बादशाह वहाँ सिंहासन पर बैठे और चन्द दिनों की बादशाहत का सुख उठा कर संसार से चले गये। इसके बाद बहादुरशाह का बड़ा लड़का रोशन अख्तर मोहम्मद शाह के नाम से सन् 1720 ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने तीस वर्ष तक शासन किया। उसके समय में सम्पूर्ण साम्राज्य में भयानक विद्रोह खड़े हुये और मुगलों का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इन्हीं दिनों में मराठों और पहाड़ी अफगानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया और बहुत-से गाँव और नगरों को लूट कर भीषण उत्पात मचाया।

इन दिनों में मुगल-राज्य की हालत खराब हो गयी थी। स्थान-स्थान पर उपद्रव हो रहे थे। सैयद बन्धुओं के अत्याचारों से राज्य का विध्वंस हो रहा था। इन दोनों बन्धुओं से जो लोग मित्रता रखते थे, उनमें निजामुल-मुल्क उनसे अधिक अप्रसन्न हुआ। निजामुल-मुल्क एक चतुर सेनापति था। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मालवा-राज्य की उन्नति की थी। इसलिये सैयद बन्धुओं को उससे शंका पैदा हो रही थी। निजामुल-मुल्क के अप्रसन्न होने के कारण सैयद बन्धुओं को भय अधिक हो गया। वे दोनों भाई जब से दिल्ली आये थे, मुगल शासकों को कठपुतली की तरह नचा रहे थे। उनकी भयानक राजनीति के कारण मुगलों का राज्य नष्ट होता जा रहा था। मुगल वंश में इस समय ऐसा कोई न था, जो इन भाइयों की राजनीति से मुगल-राज्य की रक्षा कर सकता।

सैयद बन्धुओं ने अपनी राजनीति के द्वारा मुगल-सिंहासन का अधिकार अपने हाथ में ले रखा था। वे किसी ऐसे व्यक्ति को सिंहासन पर नहीं बैठने देना चाहते थे, जो राज्याधिकार पाने के बाद उन दोनों का विरोध कर सके। इसलिए दोनों भाइयों के द्वारा अब तक मुगल सिंहासन पर ऐसे ही लोग बादशाह बना कर बिठाये गये, जो दोनों भाइयों के इशारों पर काम करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि एक अच्छे बादशाह के अभाव में मुगल-साम्राज्य की सारी शक्तियाँ नष्ट हो गयीं और जो राजा उसकी अधीनता में थे, वे सभी विद्रोह करके स्वतन्त्र हो गये। शासन में अच्छा प्रबन्ध और न्याय न होने के कारण प्रजा बहुत दुःखी थी और अधिकारियों के प्रति अपनी सहानुभूति नष्ट कर चुकी थी। निजामुल-मुल्क ने भी अपनी आजादी की आवाज उठायी और असीरगढ़ तथा बुरहानपुर के किलों पर अधिकार कर लिया। निजाम की इस बढ़ती हुई ताकत को देखकर सैयद बन्धु घबरा उठे और अपनी सहायता के लिए उन्होंने राजपूत सामन्तों से प्रार्थना की। इस पर कोटा और नरवर के दोनों राजकुमार निजाम के विरुद्ध सेनायें लेकर रवाना हुए और नर्वदा नदी के किनारे पर पहुँच गये। उस लड़ाई में निजाम की विजय हुई और कोटा का राजकुमार मारा गया।

हैदराबाद राज्य जिस समय स्वतन्त्र हुआ, उसके साथ ही अयोध्या का राज्य भी आजाद हो गया। उस समय सैयद खाँ वहाँ का नवाब था। पहले वह बयाना दुर्ग का सरदार था। सैयद भाइयों के विरुद्ध मोहम्मदशाह ने उसको दिल्ली से बुलाया था। वादशह की आज्ञा पाकर सहादत खाँ ने अमीरुल उमरा को मारने की चेष्टा की और हैदर खाँ ने उसका संहार किया। इस खबर को पाते ही कि अमीरुल उमरा मारा गया, मोहम्मदशाह ने उसके भाई अब्दुल्ला खाँ को कैद करने की कोशिश की। इस पर उसके वजीर ने बगावत की और दिल्ली के सिंहासन पर इब्राहीम को बिठाकर वह मोहम्मदशाह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। कुछ देर के संग्राम में दिल्ली के सेनापति शआदत खाँ ने वजीर को गिरफ्तार कर मोहम्मदशाह के सामने उपस्थित किया और बादशाह की आज्ञा से उसको फाँसी की सजा दी गयी।

सेनापति शआदतखाँ की इस बहादुरी से मोहम्मद शाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसको बहादुर जंग की पदवी दी और उसे अयोध्या का राजा बना दिया। इस सफलता के उपलक्ष में हिन्दू राजा बादशाह को बधाई देने के लिए गये। बादशाह ने आमेर और जोधपुर के राजाओं को अपने राज्य के कुछ इलाके इनाम में दिये। गिरधरदास ने मराठों को युद्ध करके पीछे हटाया था। इसलिए बादशाह ने उसको पुरस्कार में मालवा का राज्य दिया और निजाम को अपना वजीर बनाने के लिए हैदराबाद से बुलाया। गिरधरदास, रत्नचन्द्र के दीवान जुबीलराम नागर नामक ब्राह्मण का लड़का था। इसी सिलसिले में बादशाह ने जयसिंह को आगरा एवं अजितसिंह को गुजरात और अजमेर दिया।

मुगल-साम्राज्य के इन विगड़े हुए दिनों में राजस्थान के सभी राजा और नरेश अपने राज्यों के निर्माण में लगे थे। परन्तु मेवाड़ राज्य में इस प्रकार का कोई भी कार्य न हो रहा था। इन दिनों में आमेर का राज्य जमुना नदी के किनारे तक फैल गया था और मेवाड़ के राजा अजयसिंह ने अजमेर के किले पर अपना झंडा फहरा कर और गुजरात के राज्य को तहस-नहस करके अपनी सेना राजस्थान की मरुभूमि तक पहुँचा दी थी।

इस प्रकार उन दिनों में राजस्थान के सभी राजा अपनी उन्नति में लगे थे और अपने-अपने राज्यों की सीमा का विस्तार कर रहे थे। परन्तु मेवाड़ के राणा का इस तरफ बिल्कुल ध्यान न था। मेवाड़ के सीसोदिया वंश में पूर्वजों के सिद्धान्तों की सदा रक्षा हुई थी और आज भी हो रही थी।

मेवाड़ के राणा के अनेक कार्य उसके सिद्धान्तवादी होने का प्रमाण देते हैं। यहाँ पर एक छोटा-सा उदाहरण लिख कर उसको स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है। शक्तावत सरदार जैतसिंह ने राठौड़ो के हाथों से ईडर देश छीनकर कोलीवाड़ा के पहाड़ी भागों तक सम्पूर्ण भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था और उसके बाद वह आगे बढ़ना चाहता था। यह समाचार राणा को मिला। उसी समय अपनी सेना के साथ लौटकर उदयपुर आने के लिये शक्तावत सरदार को राणा की ओर से आदेश भेजा गया।

इस प्रकार का आदेश शक्तावत सरदार जैतसिंह को जैसे ही मिला, वह अपनी सेना के साथ उदयपुर आ गया। मेवाड़ के सामन्त राजाओं को इन दिनों में अपना दुर्ग बनाने के लिए अधिकार न था। इसलिए कि प्रत्येक सरदार राजा को राज्य की तरफ से जो इलाका मिलता था, वह तीन वर्ष के लिये होता था। इन दिनों में अरावली पर्वत के ऊंचे पहाड़ी स्थान मेवाड़-राज्य के लिये दुर्गों का काम करते थे और राज्य की सीमाओं पर जो दुर्ग बने हुए थे, शत्रुओं के आक्रमण करने पर उन्हीं दुर्गों का युद्ध के समय प्रयोग होता था। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था चल रही थी।

मुगल-राज्य के कमजोर पड़ जाने के बाद मेवाड़-राज्य के इन नियमों में परिवर्तन होने लगा। मराठों और पठानों ने अपनी शक्तियाँ मजबूत बना कर जब मेवाड़-राज्य में प्रवेश करना आरम्भ किया तो मेवाड़ के सरदारों ने अपने राज्य की रक्षा के लिये नये-नये दुर्गों का निर्माण किया।

राणा संग्रामसिंह ने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर अठारह वर्ष तक राज्य किया। उसके शासनकाल में राज्य के गौरव को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचा। शत्रुओं ने मेवाड़-राज्य के जिन नगरों पर अधिकार कर लिया था, संग्रामसिंह ने उनको लेकर अपने राज्य में मिला लिया। बिहारीदास पांचौली को अपना मंत्री बनाकर राणा संग्रामसिंह ने अपनी योग्यता और दूरदर्शिता का परिचय दिया। बिहारीदास पाँचौली की तरह का योग्य मंत्री कदाचित पहले कभी मेवाड़ राज्य के दरबार में नहीं रहा था। अपनी योग्यता और प्रतिभा के द्वारा बिहारीदास ने उस राज्य में बहुत समय तक रह कर मन्त्री के पद पर कार्य किया।

राणा संग्रामसिंह का चरित्र उज्जवल और श्रेष्ठ था, प्रजा के अधिकारों को सुरक्षित रखने में उसने बड़ी ख्याति पाई थी। इसके अलावा वह न्यायप्रिय था और अपने वचनों को पूरा करना वह खूब जानता था। शासन में वह जितना ही चतुर था, व्यवहार में वह उतना ही कुशल माना जाता था। राणा संग्रामसिंह के लोकप्रिय व्यवहार के सम्बन्ध में बहुत सी बातें राजस्थान की पुरानी पुस्तकों में पायी जाती हैं और उनमें से अधिकाँश राजस्थान के लोगों के द्वारा आज तक कही जाती हैं। उन घटनाओं को - जिनके द्वारा राणा संग्रामसिंह की व्यावहारिकता और लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है - विस्तार के कारण यहाँ पर लिखा नहीं जा सकता। इसलिये संग्रामसिंह के उज्ज्वल चरित्र के संबंध में यहाँ पर इतना ही लिखना काफी है कि राज्य की प्रजा उसके प्रति सदा आस्था रखती थी और सरदार तथा सामन्त हमेशा विश्वासपूर्वक मेवाड़-राज्य के लिये प्राण देने को तैयार रहते थे।

राज्य की रक्षा करने के लिये राणा संग्रामसिंह को अठारह बार शत्रुओं के साथ युद्ध करना पड़ा था। उसके मरने के पश्चात् मेवाड़ राज्य में मराठों का प्रवेश आरम्भ हुआ और सीसोदिया वंश के उस प्राचीन राज्य में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुये।'राणा संग्रामसिंह के चार लड़के थे। जगतसिंह सबसे बड़ा था। यह नाम पहले भी आ चुका है। इसलिये प्राचीन ग्रंथों में इसका जगतसिंह दूसरा नाम देकर लिखा गया है। संग्रामसिंह की मृत्यु हो जाने पर जगतसिंह संवत् 1790 सन 1734 ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।

इन दिनों मुगल राज्य की अवस्था लगातार निर्बल होती जा रही थी। स्थान-स्थान पर विद्रोह पैदा हो रहे थे और उनको दमन करने की शक्ति मुगल बादशाह में न रह गयी थी। एक प्रकार से देश में भीषण क्रान्तिकारी आंधी चल रही थी। उस समय जगतसिंह के लिए यह बहुत आवश्यक था कि वह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों को देख कर किसी शक्ति का निर्माण करे। इसलिये उसने राजस्थान के दो अन्य राजाओं के साथ मिलकर एक संधि की।

इस प्रकार की एक सन्धि राजस्थान के तीन राजाओं में भी उदयपुर में हो चुकी थी। उसको मारवाड़ के राजा उदयसिंह ने भंग किया था और स्वीकृत बातों के विरुद्ध आचरण किया था। इस बार की संधि में वह अजितसिंह फिर शामिल हुआ और अपराध को स्वीकार करते हुए भविष्य में संधि के अनुसार आचरण करने का उसने वादा किया। दूसरे दोनों राजाओं ने एक बार फिर अजितसिंह का विश्वास किया और तीनों ने मिलकर निश्चित शर्तों को शपथपूर्वक स्वीकार किया कि हममें से कोई भी मुसलमानों के साथ किसी प्रकार

का सम्बन्ध कायम न करेगा। इस प्रकार की शपथ लेने के बाद तीनों राजाओं ने - जिनमें राणा संग्रामसिंह का बड़ा लड़का जगतसिंह भी शामिल था - मेवाड़ के अन्तर्गत हुरड़ा नामक नगर में संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

संधि के पश्चात् उन तीनों राजाओं ने मुगलों के साथ युद्ध करने का निश्चय किया और उसकी तैयारियाँ होने लगीं। बरसात के दिन समीप आ गये थे, इसलिये उनके बीतने की प्रतीक्षा होने लगी। बरसात के दिन पूरी तौर पर बीतने भी न पाये थे कि मुगल बादशाह के कमजोर पड़ने पर आमेर और मारवाड़ के दोनों राजाओं ने अपनी शक्तियों को मजबूत बनाकर उन्नति की थी और अब वे दोनों मेवाड़ राज्य से किसी बात में अपने आप को कमजोर नहीं समझते थे। मेवाड़ का राजा जगतसिंह पहले की परिस्थितियों के अनुसार अपना गौरव अधिक समझता था। इस प्रकार की धारणाओं के कारण उन तीनों राजाओं में कोई भी अपने को निर्बल और छोटा नहीं समझता था। उस संधि के शिथिल होने का यही कारण हुआ और समय को देखकर उस संधि के द्वारा जो संगठन किया गया था, छिन्न-भिन्न हो गया।

निजामुल-मुल्क ने मुगलों की अधीनता से अपने राज्य को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बना लिया था। ऐसी दशा में मुगलों का सेनापति मुवारिज खाँ एक मुगल फौज लेकर निजामुल-मुल्क से लड़ने के लिये रवाना हुआ। निजामुल-मुल्क बहुत चालाक आदमी था। उसने मुगल सेना में फूट पैदा करने की कोशिश की, परन्तु इसमें उसको कामयाबी न मिली। इसलिए उसको मुगल-सेना के साथ युद्ध करना पड़ा। उस संग्राम में मुगल-सेना की पराजय हुई। निजामुल-मुल्क ने सेनापति मुवारिज खाँ का सिर काट कर बादशाह के पास भेजा और यह कहला भेजा कि बादशाह के साथ बगावत करने के कारण इसको पराजित करके और उसका सिर काट कर भेजा है। बादशाह मुहम्मदशाह ने अपनी कमजोरी में निजामुल मुल्क की इस बात को सुना और उसने उसको बर्दाश्त किया।

निजामुल-मुल्क बड़ी बुद्धिमानी के साथ इन दिनों में अपने राज्य को मजबूत बनाने में लगा हुआ था। उसे मुगल बादशाह से किसी प्रकार का डर न था। उसने अनेक प्रकार की बातें सोच कर राजपूतों के साथ मित्रता बढ़ायी और मालवा तथा गुजरात राज्यों के सम्बन्ध में बाजीराव को उकसाया। बाजीराव अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और उसने मालवा को घेर लिया। दयराम वहादुर उन दिनों में मालवा का अधिकारी था और वह मालवा के राजा गिरधारीसिंह का भतीजा था। बाजीराव के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया और मालवा मराठों के अधिकार में चला गया। ठीक यही अवस्था गुजरात की भी हुई। इसके पहले इस राज्य को राठौरों ने बादशाह से पाया था। परन्तु उनके द्वारा शर्तों के पूरा न होने पर अमरसिंह के लड़के अभयसिंह ने उस राज्य पर आक्रमण किया और उसके अधिकारी बुलन्द खाँ को निकाल दिया। इस अवसर का लाभ उठाकर राठौरों के जीते हुए गुर्जर राज्य पर मराठों ने अधिकार कर लिया। अभयसिंह ने इस तरफ अधिक ध्यान न दिया। अब उसके अधिकार में गुर्जर राज्य के केवल उत्तरी इलाके रह गये थे।

जिन दिनों में भारत के दक्षिण में और राजस्थान में इस प्रकार के संघर्ष हो रहे थे, बंगाल, विहार और उड़ीसा में शुजाउद्दौला अपने सहकारी अलीवर्दी खाँ के साथ शासन कर रहा था और अयोध्या का राज्य सआदत खाँ के लड़के सफदरगंज के अधिकार में था। यह राज्य सआदत खाँ को मुगल बादशाह की मर्जी से मिला था। परन्तु इसके बदले में उसने मुगल बादशाह के साथ विश्वासघात किया।

मालवा और गुजरात में अपने अधिकारों को मजबूत बनाकर मराठों ने दूसरे स्थानों पर अधिकार करने का इरादा किया। वे टिड्डी दल के समान नर्मदा नदी के पार उतर कर उत्तरी भाग के स्थानों और नगरों पर आक्रमण करने लगे। उनके अत्याचारों को देखकर किसानों और मजदूरों ने अपने हाथों में हथियार लिए। जिन लोगों के आक्रमण उन दिनों में हो रहे थे, उनमें बाजीराव के मराठा प्रमुख थे। इन लोगों ने कमजोर राजपूत राज्यों को लूटने और बरबाद करने का काम आरम्भ किया और कुछ स्थानों में वे आबाद भी हो गये। उनका संगठन मजबूत था। राष्ट्रीयता के आधार पर उन मराठों ने अपना संगठन किया था।

सन् 1735 ईसवी में मराठों का वह दल चम्बल नदी को पार करके दिल्ली में पहुँच गया और दिल्ली में भयानक उत्पात आरम्भ किया। उनके अत्याचारों से घबरा कर मुगल बादशाह ने मराठों को चौथ अर्थात् साम्राज्य की आमदनी का चौथाई भाग देना मन्जूर किया और इस प्रकार उसने अपनी जान बचाई।

मुगल बादशाह की इस कायरता को देखकर निजाम भयभीत हो उठा। वह सोचने लगा कि दिल्ली के बाद मराठा लोग निजाम राज्य पर आक्रमण करेंगे। इसलिए उसने मालवा से मराठों को निकाल देने का इरादा किया। उसको इस बात का विश्वास हो रहा था कि यदि मराठों ने मालवा में अपना शासन मजबूत बना लिया तो फिर उनको वहाँ से निकालना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

इस प्रकार निर्णय करके निजाम ने अपनी सेना लेकर मालवा पर आक्रमण किया और बाजीराव को पराजित किया। इसी अवसर पर उसे समाचार मिला कि हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिये बादशाह नादिरशाह की शक्तिशाली सेना आ रही है। यह सुनते ही निजामुल-मुल्क अनेक प्रकार की चिन्ताओं में पड़ गया। वह मालवा में मराठों को छोड़कर अपने राज्य में लौट आया।

मुगल राज्य की शक्तियों का इन दिनों में अन्त हो चुका था। शत्रुओं का सामना करने की अब उसमें कोई शक्ति बाकी न रह गयी थी। काबुल को अपने अधिकार में लेकर विजयी सेना के साथ नादिरशाह ने हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश किया। उसके इस आक्रमण के समय राजस्थान के राजा चुप होकर बैठ गये। मुगल बादशाहत निर्बल हो चुकी थी और मुल्क के सभी राजा और नवाब अपनी-अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे थे। सभी के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न था। देश के सार्वजनिक हितों की तरफ किसी का ध्यान न था।

नादिरशाह के होने वाले आक्रमण का समाचार सुनकर निजाम भयभीत हो रहा था। सआदत खाँ इन दिनों में मुगल बादशाह का मंत्री था। जिन राजपूतों के बल पर मुगल-राज्य का विस्तार हुआ था, अब उनसे मुगलों को कोई आशा न रह गयी थी। जिन हिन्दु राजाओं ने मुगल शासन के गौरव को बढ़ाने के लिए अपना खून बहाया था, वे इस समय बादशाह के संकट को दूर से देख रहे थे।

निजाम अपनी सेना के साथ मुगल सेनापति के नेतृत्व में युद्ध के लिए रवाना हुआ। बादशाह की तरफ से अमीरुल-उमरा मुगलों की एक बड़ी सेना लेकर आगे बढ़ा। सन् 1740 ईसवी में करनाल के मैदान में इन सेनाओं ने नादिरशाह की फौज के साथ युद्ध किया। भीषण संग्राम के बाद मुगलों की पराजय हुई। अमीरुल-उमरा मारा गया। सआदतखाँ गिरफ्तार हो गया और मोहम्मद शाह तथा उसका राज्य नादिरशाह के अधिकार में आ गया। अमीरुल-उमरा के मारे जाने पर निजाम को नादिरशाह ने अमीरुल-उमरा का अधिकार दिया। सआदतखाँ को निजाम की इस राजनीतिक सफलता से बड़ी ईर्ष्या पैदा

हुई। उसने निजाम के विरुद्ध नादिरशाह को भड़काया और कहा कि दिल्ली के खजाने में अपरिमित सम्पत्ति है। निजाम जिस रकम को देने का वादा करके संधि करना चाहता है, इतनी सम्पति तो वह स्वयं अपने पास से दे सकता है। सआदतखाँ की इस वात से नादिरशाह का लोभ बढ़ गया। निजाम के द्वारा जो संधि होने जा रही थी, वह टूट गयी। नादिरशाह ने दिल्ली के खजाने की कुंजी मांगी। इसके बाद नादिरशाह के सैनिक खुशी मनाते हुए वादशाह मोहम्मद शाह को पराधीन अवस्था में अपने कैम्पों के सामने से लेकर गुजरे। विजयी नादिरशाह 8 मार्च सन् 1740 ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने अपना सिक्का चलाया। उस सिक्के में लिखा गया :

संसार के बादशाहों का बादशाह,

युग का शहशांह बादशाह नादिरशाह।

मुगलों के खजाने में जो बहुत दिनों की एकत्रित सम्पत्ति थी, वह आपसी झगड़ों में और उसके सम्बन्ध में अनेक मौकों पर राजाओं तथा सामन्तों को प्रसन्न करने के लिए इनामों के देने में निर्दयता के साथ खर्च की गयी थी। फिर भी, नकदी रुपयों के साथ सोना और जवाहरात मिलाकर चालीस करोड़ रुपये मुगलों के खजाने से नादिरशाह के अधिकार में आ गये। इनके सिवा राज्य की बहुत-सी कीमती चीजें और बहुमूल्य साजो-सामान उसके हाथ लगा। लेकिन इस अपरिमित सम्पत्ति ने नादिरशाह की भूख को मिटाने और उसको तृप्त करने के बजाय उसके क्रोध को भड़का दिया। उसने दो करोड़ पचास लाख रुपये की और माँग की और इसके लिए मुगल-राज्य में सर्वनाश आरम्भ कर दिया। राज्य के नेक और भले आदमियों को अपनी रक्षा का कोई मार्ग दिखाई न पड़ा और उन लोगों ने अपनी और परिवार की इज्जत बचाने के लिए आत्म-हत्या करके उस सर्वनाश से छुटकारा पाया। इसी मौके पर नादिरशाह को मालूम हुआ कि उसके साथ के कुछ ईरानी आदमी मारे गये हैं, वह भयानक रूप से उत्तेजित हो उठा। एक बड़ी मस्जिद पर चढ़कर उसने अपनी फौज के सिपाहियों को कत्ले-आम का हुक्म दिया। उसके फलस्वरूप, लाखों मनुष्य काट-काट कर फेंक दिये गये। इस नरसंहार के साथ-साथ नादिरशाह की फौज ने भयानक रूप से शहर को लूटा। गलियों और आम रास्तों में बरसाती पानी की तरह खून बहने लगा। पूरे शहर में आग लगा दी गयी। मकानों की जलती हुई होली में वेशुमार स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े जलकर खाक हो गये। इस भयानक नर-संहार के समय अगर कोई वात जरा भी संतोष की हो सकती थी तो यही थी कि जब नादिरशाह ने मुगल बादशाह के मंत्री सआदतखाँ को जो इस सर्वनाश का कारण बना, उस सम्पत्ति की फेहरिस्त के पेश करने की आज्ञा दी, जो उसके और उसके बादशाह के अधिकार में थी और निजाम ने जो ढ़ाई करोड़ रुपये उसको देने का निर्णय किया था, वह रकम भी अपने पास से दाखिल करने के लिये नादिरशाह ने सआदतखाँ को हुक्म दिया। सआदतखाँ की नीचता और कृतघ्नता उसका दुर्भाग्य बनकर उसके सिर पर मंडराने लगी। उसकी जो कृतघ्नता मुगल साम्राज्य के सर्वनाश का कारण बनी थी, वही उसके विनाश की भी कारण हो गयी। कोई किसी का विनाश नहीं करता। मनुष्य स्वयं अपना सर्वनाश करता है।

नादिरशाह की आज्ञाओं को सुनते ही सआदतखाँ के होश उड़ गये। उसकी रक्षा का अब कोई उपाय न रह गया था। उसने विष खाकर अत्मा हत्या की। उसके दीवान राजा मजलिसराय ने भी जहर खाकर अपनी जिन्दगी को खत्म किया। इसके बाद नयी संधि की गयी और उसके अनुसार समस्त पश्चिमी सूबे काबुल, ठट्टा, सिंध और मुलतान मोहम्मदशाह की तरफ से नादिरशाह को दिये गये और इन सूबों को अपने राज्य में मिलाकर और मुगलों की राजधानी दिल्ली को श्मशान बनाकर वह ईरान लौट गया।

नादिरशाह की फौज के सिपाहियों के द्वारा जो नरसंहार हुआ था, उसका उल्लेख कई ग्रंथों में पाया जाता है। हाजिन नाम के एक मुसलमान ने सर्वनाश के इस दृश्य को तथा अपनी आखों देखी हुई घटनाओं को एक पुस्तक में लिखा है। उसमें उसने वताया है कि नादिरशाह के अत्याचार वहुत वढ़ जाने पर हिन्दुस्तान के लोगों ने उसके साथ मार-काट की थी और उसमें नादिरशाह के सात हजार ईरानी आदमी मारे गये थे। दूसरी पुस्तकों में यह संख्या कुछ और ही पायी जाती है। लेकिन उसमें हाजिन का ग्रंथ इसलिए प्रामाणिक माना जाता है कि उस संहार को उसने स्वयं देखा था।

इस सर्वनाश के समय जव नादिरशाह वड़े वाजार की रकमुद्धौला नामक एक मस्जिद में वैठा हुआ था, मोहम्मदशाह ने वहाँ पहुँचकर अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए नादिरशाह से प्रार्थना की कि 'मेरी रैयत की जाँ वख्शी करवाई जावे।' नादिरनामा नाम के एक ऐतिहासिक ग्रंथ में लिखा है कि नादिरशाह के हुक्म से शहर में दिन-भर कत्लेआम होता रहा और उसमें वेशुमार आदमियों की जानें ली गयीं। एक ऐतिहासिक ग्रंथ में लिखा है कि नादिरशाह की फौज के द्वारा जो लोग मारे गये, उनकी संख्या एक लाख पचास हजार से कम नहीं हो सकती।

इस कत्लेआम के समय नादिरशाह के सिपाहियों ने अपने हाथों में तलवारें लिए हुए शहर के घरों में जाकर लूट-मार की थी। प्रत्येक मकान से रोने और चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं। घर के आदमियों को तलवारों से काटकर जो सम्पत्ति मिलती थी, सिपाही उसको लूट लेते थे और घर के किसी आदमी को जिन्दा न छोड़ते थे। इस प्रकार का हाहाकर सम्पूर्ण शहर में एक साथ आरंभ हुआ। अत्याचार का यह दृश्य देखकर वसंतराय नामक मुगल राज्य के एक हाकिम ने जव अपने परिवार को वचाने का कोई उपाय न पाया तो उसने स्वयं अपने परिवार को मार डाला और अपनी भी हत्या कर ली। मलिकयार खाँ नामक एक प्रसिद्ध मुसलमान ने तलवार से अपने प्राणों का अन्त किया। न जाने कितने परिवारों में शर्वत की तरह विष-पान किया गया और प्राणों की आहुतियाँ दी गयीं। राज्य का एक वहुत वड़ा हाकिम पकड़ा गया और एक प्रसिद्ध चौराहे पर खड़ा करके वहुत देर तक उसको कोड़े लगवाये गये।

इस प्रकार के अत्याचारों की कोई सीमा न रही और वहाँ का कोई भी मनुष्य इस अत्याचार और संहार से अपने आपको वचा न सका। राज्य के कर्मचारियों, अधिकारियों और हाकिमों पर इतना अधिक अत्याचार हुआ था कि वे मरने से भी अधिक वुरी अवस्था में पहुँच गये थे। वादशाह के फर्राशखाने में आग लगा दी गयी, जिससे उसका एक करोड़ रुपये का कीमती सामान जल गया। इस प्रकार नादिरशाह के जुल्म और सितम से सारा शहर श्मशान वन गया था।

इस विनाश के वाद वहाँ की हालत वहुत खराव हो गयी थी। खाने-पीने की चीजों का विल्कुल अभाव हो गया। लोगों के पास खाने के लिए जो अनाज था, वह आग में जल गया था। रुपये के दो सेर मोटे चावल खाने के लिए मिलते थे। उस नर-संहार के समय और उसके वाद शहर की सफाई न होने के कारण भयानक वीमारियाँ पैदा हुईं और उन वीमारियों में वचे हुए लोग वुरी तरह से मरे। जो लोग भाग कर कहीं जा सकते थे, वे चले गये। फैली हुई वीमारियों में इतनी अधिक संख्या में लोग एक साथ वीमार पड़े कि उनकी देखभाल करने वाला कोई न था। यह अत्याचार, संहार और सर्वनाश राज्य में वहुत दूर तक हुआ था और सव मिलाकर पाँच लाख से अधिक आदमी नादिरशाह के आक्रमण के फलस्वरूप मारे गये और मरे।

पाँच अप्रैल को बादशाह के दफ्तर से नादिरशाह की मोहर बाहर लायी गई और शान्ति की स्थापना के लिए उस मोहर को लगाकर राजाओं के पास पत्र भेजे गये। मेवाड़, मारवाड़, आमेर, नागौर, सितारा और दूसरे देशी राजाओं के साथ-साथ पेशवा बाजीराव के पास भी जो फरमान भेजे गये, उनमें लिखा गया : "हमारे प्यारे भाई मोहम्मदशाह के साथ हमारी सुलह और दोस्ती हो गयी है। अब हम दोनों एक-दूसरे के मददगार बन गये हैं। भाई मोहम्मदशाह को फिर से बादशाहत हासिल हुई है। अब दूसरे मुल्कों को जीतने के लिए हम इस मुल्क को छोड़ रहे हैं। आप लोगों का फर्ज है कि आपके बुजुर्ग जिस तरह तैमूर खानदान के पिछले बादशाहों के साये में रहते थे और उनको इज्जत देते थे, आप लोग भी भाई मोहम्मदशाह के साथ उसी तरह का रिश्ता रखिये और उन पर यकीन करिये। उनको इज्जत दीजिये और उनके खैरख्वाह बनिये। खुदा न करे, अगर आप लोगों की बगावत की कोई खबर मेरे कानों में पहुँची तो मैं इस दुनिया से आप लोगों की हस्ती को मिटा दूँगा।"

देश की इन दुर्घटनाओं में राजस्थान के राजाओं की कोई विशेष हानि नहीं हुई। इस्लामी राज्य के छः सौ वर्ष इस देश में बीत चुके थे और उसके कितने ही तूफान राजपूतों के सामने आये थे। उन सबका मुकाबला करते हुए मेवाड़, मारवाड़ और आमेर की तरह के कई राज्य अब तक अपना अस्तित्व कायम किये हुये थे। मोहम्मद गजनवी के आक्रमण के दिनो में मेवाड़-राज्य की जो सीमा थी, आज सात सौ वर्षों के बाद भी उस राज्य का वह विस्तार बना हुआ था। यद्यपि उस राज्य के कई हिस्से दूसरों के अधिकर में चले गये थे, परन्तु उस राज्य का प्राचीन और प्रमुख भाग अब भी सुरक्षित था और इन दिनों में भी मेवाड़ राज्य की लम्बाई एक सौ चालीस मील और चौड़ाई एक सौ तीस मील थी। राज्य के इस विस्तार में दस हजार से अधिक नगर और ग्राम थे। मराठों के हमलों और अत्याचारों का प्रभाव इस राज्य पर क्या पड़ा, एवम् लगभग अर्द्ध शताब्दी में किस प्रकार के परिवर्तन इस राज्य में हुए, उनको हम नीचे लिखने की चेष्टा करेंगे।

सन् 1735 ईसवी में मोहम्मदशाह ने मराठों को चौथ देना मंजूर किया था, उसी समय से राजस्थान के राजाओं में मराठों का प्रभुत्व कायम हो गया था। राजस्थान के जो राजा मुगलों की अधीनता में थे, वे सभी मोहम्मदशाह के बाद मराठों को कर के रूप में निश्चित रकम देने लगे। मराठों ने इसके बाद राजस्थान में लगातार अपना आधिपत्य बढ़ाया। उनके इस बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर राजपूत चिंतित हुए और वहाँ के राजाओं ने मिलकर फिर से एक नयी संधि की।

राणा जगतसिंह इन दिनों में मेवाड़ के सिंहासन पर था। उसने मारवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार विजयसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। इसके पहले से मारवाड़ और आमेर के राजाओं में जो वैमनस्य चला आ रहा था, उसको दूर करके दोनों में मेल करा दिया गया। इस प्रकार उदयपुर में बैठकर इन राजाओं ने अपनी एकता को मजबूत बनाने की चेष्टा की। उन दिनों में राजस्थान के राजाओं और राजकुमारों ने जो पत्र राणा जगतसिंह के पास भेजे थे, उनको पढ़ने से साफ मालूम होता है कि वे लोग भविष्य में आने वाली विपदाओं से परिचित हो चुके थे और उनके प्रतिकार के लिए ही उन लोगों ने पत्र लिखकर राणा जगतसिंह के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया था।[1] जिन राजाओं में यह एकता कायम हुई थी, वह अधिक समय नहीं चल सकी और सामाजिक विवादों के कारण थोड़े ही दिनों में वह छिन्न-भिन्न हो गी।

---

1. जिन राजाओं और राजकुमारों ने राणा जगतसिंह के पास पत्र भेजकर राणा के प्रति अपनी श्रद्धा और आस्था प्रकट की थी उनके पत्रों को टाड साहब ने अपनी पुस्तक में ज्यों का त्यों दिया है। — अनुवादक

मालवा पर अधिकार करके मराठों ने चौथ लेना आरम्भ कर दिया। उसके बाद अपनी सेना के साथ बाजीराव मेवाड़ में पहुँचा। राणा ने उसके साथ युद्ध करने का विचार नहीं किया। वह स्वयं बाजीराव से मिलने भी नहीं गया। मेवाड़ के प्रधानमन्त्री बिहारीदास ने सलुम्बर सरदार को साथ लेकर बाजीराव से मुलाकात की। मेवाड़ की तरफ से मराठों के साथ संधि हुई और उसमें रा ने बाजीराव को चौथ देना मंजूर किया। इस चौथ में एक लाख साठ हजार रुपये वार्षिक राणा ने देना आरम्भ किया, जिसको होलकर, सिंधिया और पवाँर बराबर के हिस्सों में बाँट लेते थे। मेवाड़ की तरफ से चौथ की यह रकम दस वर्ष तक बराबर मराठों को दी गयी।

मेवाड़ के राणा ने अपनी लड़की का विवाह आमेर के राजा के लड़के के साथ किया था। उस समय आमेर के राजा ने वादा किया था कि इस लड़की से जो लड़का पैदा होगा, उसको बड़े पुत्र के अधिकार प्राप्त होंगे। कुछ समय के बाद उस लड़की से माधवसिंह नाम का बालक उत्पन्न हुआ। नादिरशाह के आक्रमण के दो वर्ष बाद सवाई जयसिंह की मृत्यु हो गयी इसलिए उसका बड़ा लड़का ईश्वरीसिंह आमेर के सिंहासन पर बैठा। उस समय वहाँ के कुछ लोगों ने पहले किये गये वादे के अनुसार माधवसिंह को उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की। परन्तु उस समय उन्हें कोई सफलता नहीं मिली और ईश्वरीसिंह को सिंहासन पर बैठे हुए पाँच वर्ष बीत गये। इन दिनों में दुर्रानियों के साथ युद्ध करने के लिए सवाई ईश्वरीसिंह अपनी सेना के साथ शतद्रु के किनारे पहुँचा।[1] अपने भाँजे माधवसिंह के अधिकारों को दिलाने के लिए राणा ने ईश्वरीसिंह के साथ जाकर युद्ध किया। उसमें राणा की पराजय हुई। कोटा और बूँदी के हाड़ा लोगों ने राणा की सहायता की थी, इसलिए उनसे बदला लेने के लिए अप्पाजी सिंधिया की सहायता लेकर ईश्वरीसिंह ने उन पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में सिंधिया का एक हाथ कट गया और उस युद्ध का कोई नतीजा न निकला।

ईश्वरीसिंह के पराजित होने के बाद राणा जगतसिंह को बहुत ग्लानि महसूस हुई। उसने मल्हारराव होलकर के साथ निर्णय किया कि अगर वह ईश्वरीसिंह को सिंहासन से उतार देगा तो इसके बदले में मेवाड़ राज्य की तरफ से उसे चौंसठ लाख रुपये दिये जायेंगे। इस निर्णय के अनुसार मल्हारराव और राणा के बीच एक इकरारनामा हो गया। ईश्वरीसिंह ने जब यह समाचार सुना तो वह घबरा उठा और अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर विष खाकर वह मर गया। उसके मरने के बाद माधवसिंह आमेर के सिंहासन पर बिठाया गया।

राणा को अपने इकरारनामे के अनुसार चौंसठ लाख रुपये देने पड़े। इस सम्पत्ति से मराठों की शक्तियाँ बढ़ गयीं और राजपूतों का पतन उसी समय से आरम्भ हुआ। अठारह वर्ष तक राज्य करने के बाद सम्वत् 1808 सन् 1752 ईसवी में राणा जगतसिंह की मृत्यु हो गयी।

☐

---

1. कन्धार को जीतने के समय नादिरशाह ने अहमद खाँ अब्दाली नाम के एक अफगान को कैद किया था। अब्दाली उसके वंश का गौत्र है। अहमदखाँ तेजस्वी और शूरवीर था। नादिरशाह ने कैद करने के बाद उसको छोड़ दिया और उसको एक इलाका दे दिया। नादिरशाह जब मारा गया तो अहमदखाँ ने उनके राज्य पर अधिकार कर लिया और सन् 1747 ईसवी के अक्टूबर में वह कन्धार का बादशाह बन गया। ईश्वरीसिंह उसी से लड़ने के लिए शतद्रु नदी के किनारे गया था। अहमदखाँ ने अपना गोत्र अब्दाली से बदलकर दुर्रानी कर लिया था।

अध्याय-25
महाराणा अरिसिंह तथा मराठों के अत्याचार

राणा जगतसिंह की मृत्यु के बाद प्रतापसिंह दूसरा सन् 1752 ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उदयपुर के राणा प्रतापसिंह की तरह यह न शूरवीर था और न प्रतापी था। यद्यपि दोनों का नाम एक ही था। इसके शासन काल में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। उसने तीन वर्ष तक राज्य किया। इन दिनों में लगातार मराठों के उत्पात उसके राज्य में होते रहे। उसका विवाह आमेर के राजा जयसिंह की लड़की के साथ हुआ था। उससे राजसिंह नाम का एक लड़का पैदा हुआ। यही राजसिंह उसके पश्चात् मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।

इस राजसिंह के पहले मेवाड़ के सिंहासन पर इसी नाम से एक राजा बैठ चुका था। परन्तु उसका-सा बल और प्रताप इस दूसरे राजसिंह में न था। इसने सात वर्ष तक राज्य किया। इसके शासन काल में सात बार मराठों के आक्रमण हुए। उनके कारण मेवाड़ का राज्य सभी प्रकार से निर्बल हो गया और आर्थिक अवस्था राज्य की इतनी खराब हो गयी कि राणा को स्वयं अपने एक ब्राह्मण मन्त्री से धन लेकर काम चलाना पड़ा। इस राणा का विवाह राठौर वंश की राजकुमारी के साथ हुआ था। राजसिंह के मरने के बाद अरिसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा और सम्वत् 1818 सन् 1762 ईसवी में उसने मेवाड़ राज्य की बागडोर अपने हाथों में ली।

राणा अरिसिंह भी वास्तव में मेवाड़-राज्य के लिए योग्य राजा न था। उसका स्वभाव और व्यवहार आरंभ से ही उसकी अयोग्यता का परिचय देने लगा था और उसकी निर्बलता के ही कारण राज्य में अनेक प्रकार के उत्पात पैदा हुए। उन उत्पातों के कारण राज्य की अवस्था भयानक रूप से बिगड़ गयी। इसके पहले मराठों के उपद्रव और आक्रमण हुए थे। लेकिन राज्य का पतन इसके शासन काल में जितना अधिक हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ था। अरिसिंह के शासन काल में भीतरी और बाहरी आक्रमणों ने राज्य को बुरी तरह से निर्बल बनाया। प्रजा की शक्तियाँ सभी प्रकार से क्षत-विक्षत हो गयी। मेवाड़ राज्य की इस बढ़ती हुई कमजोरी को देखकर मराठों के विभिन्न दलों ने राज्य पर अपने हमले आरंभ किये। उन हमलों के दिनों में राज्य के सरदारों की एकता नष्ट हो गयी थी और राज्य की रक्षा के लिये आक्रमणकारी मराठों से सहायता माँगी गई। सरदारों के विद्रोह को दबाने की शक्ति राणा अरिसिंह में न रह गयी थी। इसलिए उसकी तरफ से मल्हारराव होलकर से सहायता माँगी गयी। इसके परिणाम स्वरूप मेवाड़ राज्य के बहुत से इलाकों पर मल्हारराव

होलकर का अधिकार हो गया, राज्य के सरदारों के विद्रोह का मराठों ने अनुचित लाभ उठाया और होलकर ने सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लेने की चेष्टा की।

मनुष्य के जीवन में किसी के उपकारों का प्रभाव अमिट होता है और मनुष्य अपनी कृतज्ञता के द्वारा सदा उसको स्वीकार करता रहता है। परन्तु राजनीति में उपकारों को भुला देना और कृतघ्न बन जाना आश्चर्यजनक नहीं होता। राजनीति में इस प्रकार के अपराध को पाप नहीं कहा जाता। आमेर के सिंहासन पर जिस माधवसिंह को बिठाने के लिए मेवाड़ के राणा ने अपनी कोई शक्ति उठा न रखी थी, उसी माधवसिंह ने अपने मामा राणा के समस्त उपकारों को भुला कर मेवाड़ का श्रेष्ठ नगर-रामपुर का इलाका मल्हारराव होलकर को दे दिया।[1] मेवाड़ राज्य के साथ बाजीराव की जो संधि हुई थी, उसमें मेवाड़ के राणा ने कर देना स्वीकार किया था। उस कर को वसूल करने का कार्य होलकर को सौंपा गया था। होलकर ने निश्चित नियमों को तोड़कर कर वसूल करने का कार्य आरम्भ किया, जिससे वह संधि टूट गयी।[2]

संधि के विरुद्ध मराठों के व्यवहार करने से जो कर मेवाड़-राज्य को अदा करना चाहिये था, उसकी अदायगी न हुई। इसलिए मल्हारराव होलकर ने सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। इन दिनों में मेवाड़ के सरदारों का विद्रोह राणा के साथ चल रहा था। इसलिए राणा ने विवश होकर होलकर के साथ संधि कर ली और उस संधि के अनुसार इक्यावन लाख रुपये होलकर को दिये।

इन दिनों में मेवाड़-राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत निर्बल हो गयी थीं। ऐसे समय पर इस इक्यावन लाख की अदायगी राज्य के लिए भयानक हो उठी। इन्हीं दिनों में मेवाड़ राज्य में प्रकृति का प्रकोप आरंभ हुआ और भीषण दुर्भिक्ष के कारण राज्य में खाने पीने की समस्या अत्यंत भयानक हो उठी। इसके चार वर्षों के पश्चात् मेवाड़ राज्य में आपसी झगड़े आरम्भ हुए जिनसे राज्य की अवस्था और भी अधिक भयानक हो गयी।

मेवाड़ के राणा अरिसिंह के विरुद्ध राज्य के सरदारों ने विद्रोह किया। विद्रोह का कारण क्या था, यह साफ-साफ समझ में नहीं आता। इसके सम्बन्ध में कई प्रकार के उल्लेख पाये जाते हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि मराठों के आक्रमणों को न रोक सकने के कारण राणा सरदारों की आँखों में अयोग्य साबित हुआ। इसलिए वे राणा को सिंहासन से उतार देना चाहते थे और इसीलिए उन लोगों ने विद्रोह किया। कुछ अधिकारियों का कहना है कि सामन्तों की स्वार्थपरता के कारण यह विद्रोह उत्पन्न हुआ था। इसके सम्बन्ध में कहने वालों का अनुमान है कि राणा अरिसिंह ने अपने भतीजे राजसिंह को मारकर सिंहासन पर अधिकार किया था। कुछ लोगों का कहना यह है कि अरिसिंह राज्याधिकारी होने के पहले मेवाड़ राज्य का एक साधारण सामन्त था और राज्य की तरफ से उसको जो इलाका मिला था, उसकी आमदनी तीस हजार रुपये वार्षिक थी। उस समय कितने ही सामन्त उससे ऊँची श्रेणी के माने जाते थे। इस दशा में अरिसिंह के सिंहासन पर बैठने से और राज्याधिकारी हो जाने के बाद मेवाड़ के कई सामन्तों और सरदारों का उसके साथ ईर्ष्या भाव बढ़ गया था। इस प्रकार सामन्तों और सरदारों के विद्रोह के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत पाये जाते हैं। इन मतों में सही क्या है, निश्चित रूप से यह नहीं लिखा जा सकता।

---

1. सन् 1752 की यह घटना है। इस घटना के बाद रामपुर इलाके के कुछ गाँव मेवाड़ राज्य में रह गये थे। रामपुर के झगड़े का उल्लेख पहले किया जा चुका है।
2. बाजीराव के साथ जो संधि हुई थी, उसमें निश्चय हुआ था कि मेवाड़ पर आज के बाद मराठों के आक्रमण न होंगे। परन्तु मराठों ने स्वयं इस शर्त को भंग किया।

विद्रोह का कुछ तो कारण जरूर रहा होगा। लेकिन यदि राणा अरिसिंह दूरदर्शी और सुयोग्य शासक होता तो सामन्तों तथा सरदारों के विद्रोह करने की नौवत न आती। परन्तु उसमें योग्यता का भी वहुत अभाव था, इसीलिए उसके विरुद्ध सामन्तों और सरदारों ने विद्रोह किया।

मनुष्य के अनुचित व्यवहारों के कारण उसके विरोधियों की संख्या वढ़ती है। राणा अरिसिंह ने अपने रूखे स्वभाव के कारण अपने सरदारों को और राज्य के शक्तिशाली व्यक्तियों को अपना शत्रु बना लिया था। उसने मेवाड़ के प्रधान सरदार सादड़ी के राजा को उसके पद से अलग कर दिया था। जिस झाला सरदार ने हल्दीघाटी के भयानक युद्ध क्षेत्र में प्रताप के प्राणों की रक्षा करके अपने प्राण उत्सर्ग किये थे, राणा अरिसिंह ने उसके प्रति भी कृतज्ञ बने रहने की कोशिश नहीं की। उसने इस प्रकार के अनुचित व्यवहार दूसरे लोगों के साथ भी किये थे। देवगढ़ के राजा यशवंत सिंह के साथ भी उसने इसी प्रकार का असम्मानपूर्ण व्यवहार किया। यशवंतसिंह ने प्रतापी चूँडा वंश में जन्म लिया था। अरिसिंह के अनुचित व्यवहारों के कारण यशवंत सिंह भी उससे बहुत अप्रसन्न था और राणा को उसके अनुचित व्यवहारों का वदला देने के लिए वह समय और संयोग की प्रतीक्षा में था।

इस प्रकार के कितने ही कारण थे, जिनसे मेवाड़ के सामन्त और सरदार राणा अरिसिंह को सिंहासन से उतारने की चेष्टा कर रहे थे। इन्हीं दिनों में 'यह अफवाह फैल गयी कि राणा अरिसिंह जिस सिंहासन पर बैठा है, उसका वास्तव में अधिकारी रत्नसिंह है। इस रत्नसिंह के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की वातें मेवाड़ राज्य में कही जाने लगी और लोगों ने इस बात पर विश्वास किया कि रत्नसिंह राजसिंह का वेटा है और वह गोगुंदा सरदार की लड़की से पैदा हुआ है। यह लड़की राजसिंह को ब्याही गयी थी। इस वात के सत्य और असत्य होने का कोई भी निर्णय वहाँ के लोगों के सामने नहीं आया। हुआ यह कि विरोधी सामन्तों और सरदारों ने राणा को पदच्युत करने के लिए रत्नसिंह का आश्रय लिया। मेवाड़ के प्रधान सोलह सरदारों में से पाँच राणा के पक्ष में रह गये और वाकी ने रत्नसिंह के अधिकारों का समर्थन किया। इन सरदारों में प्रसिद्ध सालुम्बर सरदार प्रमुख रूप से रत्नसिंह का समर्थक था। परन्तु कुछ दिनों के वाद वह राणा के पक्षपाती सरदरों से मिल गया।

दिप्रा वंश के बसंतपाल के पूर्वज वारहवीं शताब्दी में दिल्ली से समरसिंह के साथ मेवाड़ में आये थे और इसके पहले उसके पूर्वज पृथ्वीराज के मंत्रिमंडल में रह चुके थे। जो सरदार रत्नसिंह के पक्ष में थे, उनमें वसंतपाल भी एक था, जो कमलमीर में रहता था। वहीं पर विरोधी सरदारों और सामन्तों ने रत्नसिंह को मेवाड़ के सिंहासन पर बिठाने के लिए एक योजना का निर्माण किया और अरिसिंह को सिंहासन से उतारने के लिए उन विरोधी सरदारों ने सिंधिया से सहायता लेने का निर्णय किया और इस सहायता की कीमत में एक करोड़ पच्चीस लाख रुपये उन लोगों ने सिंधिया को देना मंजूर किया। मेवाड़ के सरदारों की इन राजनीतिक भूलों ने उस राज्य को पतन के निकट पहुँचा दिया।

इन दिनों में कोटा का सरदार जालिमसिंह राजस्थान के राजाओं में वड़ी प्रसिद्धि पा रहा था। उसने मेवाड़ के इस आपसी विद्रोह को सुना। यहाँ पर जालिमसिंह के सम्वन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि जिस समय राणा जगतसिंह ने माधवसिंह को आमेर के सिंहासन पर विठाने के लिए ईश्वरीसिंह के साथ युद्ध किया था, उन दिनों में जालिमसिंह का पिता कोटा का राजा था। 'उससे बदला लेने के लिए सिंधिया के साथ मिलकर ईश्वरीसिंह ने कोटा राज्य पर आक्रमण किया। उस मौके पर जालिमसिंह ने मराठों की सेना का सामना किया था। उसके वाद जालिमसिंह कोटा छोड़कर मेवाड़ के राणा के पास चला आया था और राणा ने उसको अपने राज्य में एक सरदार का पद देकर उसका सम्मान

किया। साथ ही छत्रखैरी का इलाका देकर उसकी सहाय्रता की थी।

जालिमसिंह योग्य और दूरदर्शी राजपूत था। उसके परामर्श से राणा ने मराठों से सहायता लेने का निश्चय किया और इसके लिए राघूपागेवाला और दौलामिया नाम के दो मराठा नेता अपनी सेनाओं के साथ बुलाये गये। इस बीच में राणा ने राज्य के प्राचीन पंचोलियों को मन्त्री के पद से पृथक करके उग्रजी मेहता को राज्य के प्रवंध का भार दे दिया। ये घटनायें सम्वत् 1824 सन् 1768 ईसवी में मेवाड़ के राज्य में घट रही.थीं। माधव जी सिंधिया इन दिनो में उज्जैन में था। उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए मेवाड़ के दोनों विरोधी दलों ने कोशिश की। सवसे पहले रत्नसिंह उसके पास पहुँचा और सिंधिया के साथ कुछ बातों का निर्णय करके उसने शिप्रा नदी के किनारे अपने सहायक आदमियों को लेकर मुकाम किया। इस दशा में राणा सिंधिया की सहायता प्राप्त न कर सका।

राणा अरिसिंह रत्नसिंह की सेना का सामना करने के लिए रवाना हुआ।सालुम्वर का सरदार शाहपुर और बनेड़ा के दोनों राजा और जालिमसिंह एवम् दोनों मराठा नेताओं ने उस समय राणा की सहायता की। रत्नसिंह की सहायता में माधवजी सिंधिया की सेना मौजूद थी। राणा अरिसिंह ने सवको लेकर सिंधिया की सेना पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। मेवाड़ के राजपूतों ने उस समय अपनी वहादुरी का परिचय दिया और उन लोगों ने वड़ी तेजी के साथ शत्रुओं का संहार किया। उस युद्ध में रत्नसिंह की पराजय हुई और वह सिंधिया की सेना के साथ उज्जैन की तरफ भागा और सिंधिया की सेना ने उज्जैन की तरफ दूर जाकर अपनी छावनी डाली।

इसके वाद माधवजी सिंधिया ने अवसर पाकर एक ऐसे समय पर अपनी सेना के साथ राजपूतों पर आक्रमण किया, जवकि मेवाड़ की तरफ से आयी हुई सेना युद्ध के लिए तैयार न थी। उस समय सालुम्बर का सरदार, शाहपुरा और बनेड़ा के दोनों राजा मारे गये। मराठा सेनापति दौलामिया, सादड़ी का उत्तराधिकारी राजकुमार और कई अन्य शूरवीर भयानक रूप से घायल हुए। जालिमसिंह का घोड़ा मारा गया और वह स्वयं भीषण रूप से जख्मी हुआ। वह कैद कर लिया गया। उसके साथ प्रसिद्ध अम्वाजी के पिता त्रयंवकराव ने अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। राजपूतों की पराजित सेना उदयपुर की तरफ चली गयी।

उज्जैन के करीब होने वाले युद्ध में मेवाड़ का जो सालुम्वर का सरदार मारा गया, भीमसिंह उसका चाचा और उत्तराधिकारी था। भीमसिंह राणा की सेना का सेनापति बनाया गया और उदयपुर की रक्षा का भार उसको सौंपा गया। लेकिन उस विपद काल में जिसके द्वारा उदयपुर की रक्षा हुई, उसका नाम अमरचंद वरवा था। अमरचन्द वरवा का जन्म वैश्य कुल में हुआ था। इसके पहले वह मेवाड़ का मन्त्री था। वह अत्यन्त बुद्धिमान और राज्य के कार्य में दूरदर्शी था। स्वर्गीय राणा के समय मेवाड़ में होने वाले उपद्रवों को रोकने में उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया था। राणा अरिसिंह ने उसके साथ भी शत्रुता पैदा कर ली थी और उसको मन्त्री पद से हटा दिया था। यह आघात अमरचन्द के हृदय में कम अपमानपूर्ण न था। मन्त्री पद से उसके पृथक हो जाने के बाद धीरे-धीरे दस वर्ष बीत गये। इन दिनों में मेवाड़ में बहुत से परिवर्तन हो गये।

राणा अरिसिंह की अयोग्यता उसके पतन का रास्ती बनाती जाती थी। जिन सरदारों ने उसको छोड़कर रत्नसिंह के पक्ष का समर्थन किया था, उनके स्थानों पर राणा ने जिन आदमियों को नियुक्त किया, वे अयोग्य और राणा के झूंठे प्रशंसक थे। वे राज्य की तरफ से

वेतन पाते थे। इसके सिवा जो सरदार राज्य से अलग हो गये थे, इन वेतन पाने वाले आदमियों ने उन सरदारों के इलाकों पर अधिकार कर लिया था। राणा अरिसिंह ने अपनी अयोग्यता और निर्बलता के कारण उनके अनुचित अधिकारों को सहन किया था। लेकिन इसका प्रभाव राज्य की प्रजा पर अच्छा न पड़ा और उसके फलस्वरूप समस्त राज्य में असंतोष बढ़ता जा रहा था। इस असंतोष ने राज्य की निर्बलता को बढ़ाने का काम किया। असंतुष्ट सरदार राज्य की इस दुरवस्था को दूर से देख रहे थे।

अमरचन्द बरवा के नेत्रों से राज्य का होने वाला यह पतन छिपा न था। अपने मन्त्री काल में उसने राज्य के हित के लिए बड़े प्रयत्न किये थे और अपने अथक परिश्रम से उसने राज्य के बहुत से अच्छे कामों का निर्माण किया था। वह मन्त्री पद से अलग कर दिया गया था। राणा अरिसिंह की तरफ से उसकी योग्यता का उसे यह पुरस्कार मिला था। अपमानित होकर उसने दस वर्ष से अधिक दिन व्यतीत किये। इन दिनों में मेवाड़ के पतन की पीड़ा उसको मिलने वाले अपमान से भी अधिक भयानक और असह्य हो रही थी। इन दिनों में राज्य का वह कोई अधिकारी न था। परन्तु वह राज्य की रक्षा के उपाय एकान्त में बैठकर सोचा करता था। मेवाड़ की इस बढ़ती हुई विपदा को देखते हुए उसने बहुत कुछ सोच डाला। उसने देखा कि उदयपुर के चारों तरफ रक्षा के लिए कोई खाई नहीं है। उदयपुर के दक्षिण की तरफ कुछ दूरी पर एकलिंगगढ़ नाम का एक ऊँचा पहाड़ था। उदयपुर का वह एक प्रमुख द्वार था। इसलिए उसको सुरक्षित बनाने के लिए राणा ने कुछ कार्य आरम्भ किया। उस स्थान की जमीन पहाड़ी होने के कारण ऊँची और अत्यन्त असुविधाजनक थी। इसलिए राणा अरिसिंह को अपनी योजना के अनुसार उसमें सफलता न मिल रही थी।

राणा एक दिन उस पहाड़ी स्थान पर गया, जहाँ पर उदयपुर को सुरक्षित बनाने के लिए उसने कार्य आरम्भ किया था। अचानक अमरचंद से उसकी भेंट हुई। राणा उसकी योग्यता को जानता था। उसने अमरचंद से परामर्श किया और उससे पूछा कि इसको बनवाने में कितना रुपया खर्च होगा और कितना समय लगेगा?

राणा अरिसिंह की इस बात को सुनकर अमरचंद ने सहज ही उत्तर दिया – "जो लोग कार्य करेंगे, उनके खाने पीने के लिये कुछ चाहिये और कुछ थोड़े दिनों का समय चाहिए।"

राणा अमरचंद के उत्तर से वह बहुत प्रसन्न हुआ। जो कार्य उसके लिए भयानक था और जिसके लिए वह बहुत बड़ी सम्पत्ति की आवश्यकता समझता था, उसके लिए अमरचंद के मुख से इतना सीधा–सादा उत्तर सुनकर वह संतुष्ट हुआ और उसने उसी समय उसके निर्माण का कार्य अमरचंद बरवा को सौंप दिया। अमरचंद ने उसको स्वीकार करते हुये कहा कि इस कार्य सम्पादन में कोई भी संशय और मतभेद पैदा न करेगा। यदि यह अधिकार मुझे मिल सकता है तो इसके निर्माण के उत्तरदायित्व को मैं अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ। राणा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। अमरचंद ने उस कार्य को आरम्भ करवा दिया और उदयपुर से एकलिंगगढ़ तक एक रास्ता तैयार करवा दिया। इसके बाद थोड़े ही दिनों में इस कार्य को समाप्त करके अमरचंद ने उस पहाड़ के ऊपर से तोप छोड़कर राणा अरिसिंह का अभिवादन किया।

माधवजी सिंधिया की सेना ने उत्तर-दक्षिण और पूर्व की तरफ से उदयपुर को घेर लिया। पश्चिम की तरफ उदयसागर का विस्तृत जल था और पहाड़ी घने वृक्षों से वह दिशा परिपूर्ण थी। इसीलिए उदयपुर के पश्चिम का रास्ता शत्रु सेना से खाली रहा। इसलिए उदयपुर के लोग इसी रास्ते से बाहर आते-जाते और नावों पर बैठकर उदयसागर को पार

करते। इस समय राणा के सामने भयंकर संकट था। राज्य के लगभग सभी सरदार शत्रु से मिल गये थे। सिंधी सेना के अतिरिक्त दूसरा कोई भी राणा की सहायता करने वाला न था। लेकिन वह सिंधी सेना भी राणा से विद्रोह कर रही थी। राणा और मेवाड़ राज्य की दुरवस्था देखकर सिंधी सेना अपने वेतन के सम्बन्ध में निराश हो रही थी और किसी प्रकार लड़-झगड़कर वह राणा से अपना वेतन वसूल करना चाहती थी।

राणा के पास धन का अभाव था। वेतन न दे सकने के कारण कई मौकों पर सिंधी सेना के द्वारा उसको अपना अपमान सहन करना पड़ा। वह अब अपनी रक्षा करने में निराश और असहाय हो रहा था। जिस सिंधी सेना का उसको कुछ बल-भरोसा था, उसका विद्रोह बढ़ता जा रहा था। इस निराश अवस्था के समय राणा को अपने और राज्य की रक्षा का कोई उपाय सूझ न पड़ा। रघुदेव नाम का एक व्यक्ति उसका दूध भाई था।[1] वह झाला सरदार का उत्तराधिकारी होकर उसके मंत्री का कार्य कर रहा था। इस संकट के समय उसने राणा को सलाह दी कि "आप उदयपुर छोड़ कर मंडलगढ़ चले जायें।" राणा को इस सलाह पर संतोष न हुआ। उसने सालुम्बर सरदार से परामर्श किया और उसने राणा को अमरचंद को बुलाने की सलाह दी। बुलाये जाने पर अमरचंद ने आकर कहा – "इस समय राज्य के सामने भीषण संकट है। इन संकटों का सामना करने के लिए मैं सहज ही साहस नहीं करता। यह बात जरूर है कि आज के पहले भी अनेक मौकों पर मेवाड़ को भयानक संकटों का सामना करना पड़ा है और उन दिनों में मुझे सफलता मिली है। लेकिन आज की परिस्थितियाँ पहले की अपेक्षा बहुत भिन्न हैं। मेरे स्वभाव में भी एक दोष है और वह यह है कि मैं जो सही समझता हूँ, वही करता हूँ। किसी के अयोग्य परामर्श अथवा आदेश का मैं पालन नहीं कर पाता। मैं अपने इस अपराध को स्वयं स्वीकार करता हूँ। मेवाड़ राज्य में इस समय धन का अभाव है। सरदार शत्रुओं से मिल गये हैं। सेना विद्रोह कर रही है। राज्य के सामने खाने-पीने का भी संकट है। ऐसी दशा में इन संकटों का मुकाबला करना आसान नहीं है। फिर भी जो कुछ कर सकता हूँ, उसके लिए तैयार हूँ। लेकिन उसी अवस्था में जब कि मेरे कार्यों में बाधा और अविश्वास न उत्पन्न किया जाये। इस संकट के समय मैं जो उचित समझूँगा, करूँगा।"

राणा के सामने और कोई उपाय न था। उसने अमरचंद की बातों को स्वीकार किया और भगवान एकलिंग की शपथ लेकर अमरचंद को आश्वासन देते हुए उसने कहा – "मैं किसी प्रकार का अविश्वास न करूँगा। यदि आप रानी का रत्नहार और नथ भी माँगेंगे तो उसको देने में इन्कार न करूँगा। आप इसका विश्वास रखें।"

जिस समय अमरचंद के साथ राणा की ये बातें हो रही थीं, रघुदेव भी वहाँ पर बैठा था। उसने ऐसे मौके पर राणा को जो सलाह दी थी, उसका विरोध करते हुए अमरचन्द ने रघुदेव से अनेक बातें ऐसी कहीं, जिनको सुनकर उसने अपना तिरस्कार अनुभव किया।

इसके बाद, अमरचंद ने सिंधी सेना के प्रधान को बुलाकर कहा–"आप लोग मेरे साथ आइए। आप लोगों के वेतन के जो रुपये बाकी हैं, उनको अदा करने का मैं अभी उपाय करता हूँ।

परन्तु जिस कार्य के लिए आपको यह वेतन दिया जा रहा है, उसमें सफलता न मिलने से मैं अपराधी बनूँगा।" अमरचंद ने यह कह कर वेतन के बाकी रुपये अदा करने के लिये सिंधी सेना से दूसरे दिन का वादा किया।

---

1 एक ही माता के दूध को पीकर पलने वाले दूध भाई कहलाते हैं। यद्यपि उनके जन्म का सम्बन्ध अलग-अलग माता-पिता से होता है।

सिंधी सेना के सैनिकों का जो वेतन बाकी था, सबका हिसाब लगाया गया और अमरचंद ने उनके बाकी वेतन को अदा करने के लिए इंतजाम किया। मेवाड़-राज्य के खजाने में जो भी सम्पत्ति थी, उसको अमरचन्द ने अपने अधिकार में लेने की कोशिश की। खजाने के अधिकारियों को जब यह समाचार मिला तो वे सब अपने स्थानों से भाग गये। इसलिए कि अमरचंद ने उनसे खजाने की चाबियाँ माँगी थी। इस दशा में खजाने के ताले और मजबूत दरवाजे तोड़े गये और सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात मिला कर जितनी भी सम्पत्ति खजाने में मौजूद थी, उसके द्वारा सिंधी सेना का बाकी वेतन अदा किया गया। उसी सम्पत्ति से युद्ध के अस्त्र-शस्त्र खरीदे गये। गोला, गोली और बारूद एकत्रित किया गया। खाने-पीने की सामग्री का प्रबंध बहुत बड़ी तादाद में किया गया। इस प्रकार खजाने की सम्पत्ति का उपयोग करके अमरचन्द ने छः महीने तक शत्रु सेना को आगे नहीं बढ़ने दिया।

रत्नसिंह ने इन दिनों में उदयपुर के कितने ही स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इसके पहले उसने सिंधिया की सहायता लेने के समय एक निश्चित और लंबी रकम देने का वादा किया था। उस रकम की अदायगी वह न कर सका। इस दशा में मराठों ने—जो अभी तक रत्नसिंह की सहायता कर रहे थे—अमरचन्द के साथ संधि करने की कोशिश की और उन लोगों ने संधि की शर्तों में अमरचन्द से सत्तर लाख रुपये की माँग की। साथ ही वादा किया कि इस संधि के बाद हम लोग रत्नसिंह की सहायता न करके वापस चले जायेंगे।

अमरचन्द ने सिंधिया के साथ संधि करना मंजूर किया। संधि का पत्र लिखा गया और दोनों तरफ से उस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर भी हो गये। इसी अवसर पर सिंधिया को अमरचन्द की कमजोरियाँ मालूम हुईं। उसे विश्वास हो गया कि ऐसे अवसर पर अमरचन्द से और भी रुपया लिया जा सकता है। इसीलिए उसने संधि-पत्र के सत्तर लाख रुपये के अतिरिक्त बीस लाख रुपयों की और माँग की। सिंधिया की इस नयी माँग से अमरचन्द बहुत क्रोधित हुआ। उसने लिखे गये संधि-पत्र को फाड़ डाला और उसके टुकड़ों को सिंधिया के पास भेज दिया। इस प्रकार जो संधि हुई थी, वह खत्म हो गयी।

अमरचन्द सिंधिया से निराश होकर अपनी रक्षा के नये-नये उपाय सोचने लगा। वह विपदकाल में साहस से काम लेना जानता था। उसने राज्य के योग्य और शूरवीरों के साथ परामर्श किया। उसे इस समय इस बात का यकीन हो गया कि आपत्तियों के दिनों में ही मनुष्य के पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। सिंधी सेना के बाकी वेतन की अदायगी हो चुकी थी। इसलिए उस सेना की शुभकामनायें फिर मेवाड़-राज्य के साथ हो गयी थीं। जो राजपूत और सरदार राणा के विरोधी और विद्रोही थे, अमरचन्द ने उनको मिलाने के लिये बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। वह स्वयं साहसी था और दूसरों को अपना बनाना जानता था। उसके बोलने और समझाने का दूसरों पर जादू की तरह प्रभाव पड़ता था। उसमें चरित्र का बल था। उसमें योग्यता और दूरदर्शिता थी। राज्य की जो सम्पत्ति उसके अधिकार में आयी थी, उसका उपयोग उसने राज्य की प्रजा के हित के लिए किया। जिनके द्वारा राज्य की रक्षा हो सकती थी, उनको प्रसन्न करने के लिए उसने राज्य की सम्पत्ति को पानी की तरह खर्च किया और समस्त प्रजा में सुख तथा संतोष पैदा करने के लिए उसने उस संपत्ति का अच्छा उपयोग किया। राज्य के खजाने में अब तक जो बहुमूल्य हीरे और जवाहरात बेकार पड़े थे, उनको बेचकर अमरचन्द ने खाने के अनाजों का संग्रह किया। राणा अरिसिंह की अयोग्यता के कारण राज्य में अनाज का बड़ा अभाव हो गया था और वह इतना महँगा बिक रहा था कि जिससे बहुत बड़ी संख्या में राज्य के परिवार बहुत दिनों से पेट-भर भोजन न कर सकते थे। प्रजा की यह तबाही राणा और राज्य के लिए अभिशाप हो गयी थी।

अमरचन्द ने राज्य की इस अवस्था को बदलने की तुरंत चेष्टा की। राज्य का जो खजाना अब तक बाकी था, उससे जितना भी अनाज मिल सका, खरीदा गया और राज्य के प्रत्येक बाजार में उसको भेजकर उसको अधिक से अधिक सस्ता बिकवाने की कोशिश की गई। इस बात की चेष्टा की गयी कि कोई भी व्यापारी अनुचित लाभ उठाने की अभिलाषा न करे। सम्पूर्ण राज्य में ढोल पिटवा कर इस बात की मुनादी की गयी कि राज्य की रक्षा के लिए लड़ने वाले किसी भी आदमी को उसके प्रार्थना करने पर छः महीने के खाने-पीने की सामग्री दी जायेगी, जिससे उसका परिवार सुख और संतोष के साथ रह सके।

अमरचन्द की इन कोशिशों के फलस्वरूप राज्य की दुरावस्था में बड़ा परिवर्तन हुआ। मेवाड़ के जो शूरवीर राणा के विद्रोही हो रहे थे, उनमें से बहुत से राणा के दरबार में पहुँचे और उन सभी ने अपनी शुभकामनायें बड़ी नम्रता के साथ राणा और राज्य के प्रति प्रकट कीं। सरदार आदिल बेग ने कहा – "हम सब लोग मेवाड़ में रहते हैं। हमने राज्य का नमक खाया है, सभी प्रकार की सुविधाओं का भोग किया है। हम सब का कर्त्तव्य है कि ऐसे समय पर जब शत्रुओं का राज्य पर आक्रमण होने वाला है, राज्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दें। इसलिए हम सब शपथपूर्वक इस बात को स्वीकार करते हैं कि भयानक से भयानक संकटों के समय में भी राणा का साथ नहीं छोड़ेंगे। मेवाड़-राज्य हमारी जन्मभूमि है। इस राज्य की रक्षा के लिए बलिदान होना ही हमारा धर्म है। हम लोगों को अब वेतन की आवश्यकता नहीं है। आज हमारे घरों में खाने-पीने की कमी नहीं है। यदि ऐसा समय आया जब उसका अभाव होगा तो हम लोग अपने हाथों में तलवारें लेकर शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे और अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए हँसते हुए अपने प्राणों को उत्सर्ग करेंगे।"

मेवाड़ राज्य के सरदार आदिल बेग की इस प्रकार की बातों का कारण अमरचन्द का प्रभाव था।[1] दरबार में राणा मौजूद था। आदिलबेग की बातों को सुनकर उसके नेत्र खुल गये। इस समय राजपूतों और सिंधी लोगों का उत्साह असीम लहरें मार रहा था। मंत्री अमरचन्द ने राज्य की परिस्थितियाँ ही बदल दीं और उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की निर्बल शक्तियाँ सजग और सबल हो उठीं। मेवाड़ दरबार का यह नव-जागरण सिंधिया से छिपा न रहा। उसके मन में अनेक प्रकार की शंकायें पैदा होने लगीं। इसी बीच में सिंधिया की सेना जो कुछ आगे बढ़ आयी थी, उसको पीछे हटाने के लिए राजपूतों ने आक्रमण किया। समय को देखकर सिंधिया ने संधि का फिर से प्रस्ताव किया। अमरचन्द इन दिनों मेवाड़ राज्य को पहले की तरह निर्बल नहीं समझता था। सिंधिया के द्वारा आने वाले प्रस्ताव का उत्तर देते हुए उसने कहला भेजा कि इधर छः महीने तक सिंधिया के द्वारा जो अवरोध किया गया है, उसकी क्षति को काटकर संधि की जा सकती है। सिंधिया को अमरचन्द की यह बात स्वीकार करनी पड़ी और अंत में अमरचन्द द्वारा क्षति के पैसे काट कर तिरसठ लाख पचास हजार रुपये मंजूर करने पर सिंधिया को संधि करनी पड़ी।

अमरचन्द ने राज्य के खजाने का सोना, रत्न और जवाहरात देकर संधि के रुपयों में तैंतीस लाख अदा कर दिये और बाकी रुपयों के लिए उसने जावद, जीरण, नीमच और मोरवण इत्यादि ग्रामों को गिरवी में देते हुए सिंधिया के इस प्रकार अधिकार में दे दिये कि उनकी आमदनी दोनों राज्यों के कर्मचारी वसूल करेंगे और वर्ष में एक बार उनका हिसाब हो जाया करेगा। इस तरह संधि होकर सिंधिया की शत्रुता का अंत हुआ।

---

1. सरदार आदिलवेद के बेटे का नाम मिर्जा अब्दुल रहीमबेग था। राणा ने मेवाड़-राज्य की तरफ से उसको जागीर दी थी।

सम्वत् 1825 से लेकर सम्वत् 1831 तक इस संधि के अनुसार कार्य चलता रहा। अंत में सिंधिया के कर्मचारियों ने राणा के कर्मचारियों को उन स्थानों से निकाल दिया, जो स्थान सिंधिया के पास गिरवी रखे गये थे। इस दशा में उन गाँवों का समस्त इलाका मेवाड़ के अधिकार से निकल गया। लेकिन सिंधिया की शक्तियाँ भी बहुत समय तक कायम न रहीं और इसीलिये जो इलाके मेवाड़ के राज्य से निकल गये थे, राणा के फिर अधिकार में आ गये। परन्तु थोड़े दिनों के बाद वे फिर शत्रुओं के हाथ में चले गये।

सम्वत् 1831 में मराठों में आपस में मतभेद पैदा हुआ। उनके सरदारों ने अपनी स्वाधीनता के लिये विद्रोही कोशिशें आरंभ की। इस प्रकार की परिस्थितियों में सिंधिया ने मोरवण नामक गाँव होलकर को दे दिया और होलकर ने उसको अपने अधिकार में लेकर एक वर्ष के बाद राणा से उसके राज्य के निम्बाहेड़ा नामक इलाके की माँग की।

किसी भी अवस्था में अमरचन्द ने रत्नसिंह को असफल बना दिया। वह उदयपुर को छोड़कर मराठों की सेना के साथ चला गया। लेकिन जाने के पहले उसने उदयपुर के कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया था और कितने ही नगर और ग्राम उसके कब्जे में आ गये थे। परन्तु उन पर उसका अधिकार बहुत दिनों तक न रहा। राजनगर, रायपुर और अन्तला पर मेवाड़ के राणा का फिर से अधिकार हो गया। जो सरदार अरिसिंह से विद्रोह करके रत्नसिंह के साथ हो गये थे, वे सब अब उसके साथ न रह सके और कई सरदार उसे छोड़कर उदयपुर चले आये। राणा ने उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उनकी जागीरें उनको दे दीं। अब रत्नसिंह की आशायें बिल्कुल निर्बल हो गयी थीं। मंत्री और मेवाड़ के सोलह श्रेष्ठ सरदारों में जो उसके साथ रह गये थे, उनमें देवगढ़, भिण्डी और आमैता के तीन सरदार थे। कुछ दिनों के बाद ये तीनों सरदार भी राणा की तरफ आ गये।

जिन दिनों में रत्नसिंह कमलमीर में रहने लगा था, राणा अरिसिंह ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को गोडवाड़ का अधिकार दे दिया था। राणा को यह आशंका हुई थी कि रत्नसिंह कमलमीर में रहकर गोडवाड़ पर अधिकार कर लेगा। गोडवाड़ मारवाड़ के सभी इलाकों में अधिक उपजाऊ है। गोडवाल को देकर राणा ने विजयसिंह के साथ एक इकरारनामे की लिखा-पढ़ी की थी।

बसन्त का आहेरिया उत्सव राजपूतों का एक पुराना उत्सव है। यह उत्सव मेवाड़ के लिये कई बार अनर्थकारी साबित हुआ है। इस राज्य के तीन राणा इस उत्सव में अपने प्राणों का नाश कर चुके थे। फिर भी इस उत्सव के महत्व को कोई आघात नहीं पहुँचा था। राणा अरिसिंह भी इस उत्सव में भाग लेने के लिये गया था और जब वह वापस आने लगा तो रास्ते में हाड़ा राजकुमार अजित ने उस पर अपने भाले का वार किया। उस भाले से जख्मी होने के बाद इन्दुगढ़ के एक सरदार ने तलवार से राणा का सिर अलग कर दिया। अजीत के इस अनुचित कार्य से उसका पिता बहुत अप्रसन्न हुआ और सभी हाड़ा सरदारों ने इस कार्य के लिये अजित की निंदा की।

राणा अरिसिंह के इस प्रकार मारे जाने के कुछ कारण थे। यह पहले लिखा जा चुका है कि अरिसिंह से उसके सरदार आरंभ से ही मतभेद रखते थे। जिस सालुम्बर सरदार के पिता ने मेवाड़ राज्य के हित के लिए उज्जैन के युद्ध में अपनी जान दे दी थी, राणा अरिसिंह ने उसका भयानक रूप से अपमान किया था और राज्य से निकल जाने के लिए उसे आदेश दिया था। उस सरदार के विनयावनत होने पर भी राणा ने किसी प्रकार दया न की थी, बल्कि अपनी आज्ञा को अधिक कठोर बनाकर चूँडावत सरदार से कहा था– "यदि तुम मेरा आदेश पूरा न करोगे तो मैं तुम्हारा सिर कटवा दूँगा।" चूँडावत सरदार को विवश हो कर

राणा के आदेश का पालन करना पड़ा। राज्य से जाने के समय उसने राणा से कहा था–"आपकी आज्ञा से मैं जा रहा हूँ लेकिन इसका फल आपको और आपके परिवार को अच्छा न मिलेगा।"

राणा के मारे जाने के सम्बन्ध में कई प्रकार के अनुमान लगाये जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि मेवाड़ की सीमा पर विलौना नाम का एक ग्राम है। बूँदी के राजा ने उस ग्राम पर अधिकार कर लिया था। यह घटना भी झगड़े का एक कारण बनी। इस प्रकार के अनुमानों में राणा के वध का सही कारण क्या है, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। परन्तु जो अनुमान लगाये जाते हैं, उन्हीं में से किसी के कारण राणा अरिसिंह की हत्या की गयी।

राणा के मारे जाने पर उसके साथ के सभी सरदार उसका साथ छोड़कर चले गये। केवल उसकी एक छोटी रानी रह गयी। उसने चिता बनवाकर उसमें आग लगवाई और राणा का मृत शरीर गोद में लेकर वह भस्मीभूत हो गयी। राणा अरिसिंह के दो लड़के थे। बड़ा लड़का हमीर और उससे छोटा भीमसिंह था। सम्वत् 1828 सन् 1772 ईसवी में हमीर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। गुहिलोत वंश में हमीर नाम का पहले भी एक शूरवीर पुरुष हो चुका था। लेकिन उन दिनों का आज न तो मेवाड़ था और न आज का यह हमीर, वह हमीर था। इन दिनों में मेवाड़ की अवस्था बहुत गिर चुकी थी। सिंहासन पर बैठने के समय हमीर की अवस्था बारह वर्ष की थी। इसलिए राज्य का प्रबंध राजमाता के हाथ में रहा।

राणा अरिसिंह के दिनों में ही मेवाड़ का पूर्ण रूप से पतन हो चुका था। उसके मरने के बाद जो शक्तियाँ बाकी रह गयी थीं, वे छिन्न-भिन्न हो गयीं। इन दिनो में कोई भी प्रतापी पुरुष मेवाड़ में न था, मराठों के उत्पात अब तक बराबर चल रहे थे, राज्य के सिंहासन पर एक बालक था और उसकी छोटी अवस्था के कारण राज्य का शासन एक स्त्री के हाथ में था। इन सभी बातों के कारण मेवाड़ राज्य इन दिनों में अनाथ हो रहा था। एक महान शक्ति के अभाव में पतन के सभी द्वार खुल गये। चूँडावत और शक्तावत सरदारों का विरोध इस राज्य में बहुत दिनों से चला आ रहा था। राज्य के इन पतन के दिनों में भी वे अपनी-अपनी प्रधानता के लिए एक दूसरे का खून बहाने के लिए तैयार हो गये।

राज्य के लिए इतनी ही बात दुर्भाग्य की न थी। जितनी भी समस्यायें थीं, वे सब एक साथ आकर मेवाड़ राज्य को मिटाने में लगी थीं। सालुम्बर सरदार का अपमान राणा अरिसिंह ने किया था। इसीलिए अपने उस अपमान का बदला लेने के लिए सालुम्बर सरदार ने अपनी कमर कसी और स्वर्गीय राणा अरिसिंह की विधवा रानी के विरुद्ध उसने अपना विद्रोह आरंभ किया। इस विद्रोह ने सभी प्रकार से मेवाड़ राज्य को मिट्टी में मिला दिया। राज्य की शक्तियाँ समाप्त हो गयीं और अनाथ अवस्था में मेवाड़ निवासियों के दिन व्यतीत होने लगे।

अमरचन्द ने जिन सिंधी लोगों का वेतन मेवाड़ के खजाने के द्वारा अदा किया था उन्हीं सिंधी लोगों ने मेवाड़ राज्य को निर्बल पाकर उसकी राजधानी पर आक्रमण किया और अपने बाकी वेतन के अदा करने की माँग की। राजधानी की रक्षा का भार सालुम्बर सरदार के ऊपर था। सिंधी लोगों ने उस सरदार के साथ भयानक अत्याचार आरंभ किये।सालुम्बर सरदार के वेतन न दे सकने पर सिंधी लोगों ने भयानक अत्याचार किये और जलते हुए लोहे पर बिठाने एवम् उसको दंड देने की वे व्यवस्था करने लगे।[1] ऐसे समय पर अमरचन्द

1. अपराधी को दंड देने के लिए राजपूत लोहे की एक चद्दर को गरम करते थे और उसी पर बिठाकर वे लोग अपराधी को दंड देते थे।

बूँदी से लौटकर आया। उसके आते ही सालुम्वर सरदार के साथ सिंधी लोगों के अत्याचार समाप्त हो गये।

राज्य में जो गड़बड़ी चल रही थी, अमरचंद से वह छिपी न थी। वह समझता था कि इस समय चारों तरफ विपदायें राज्य को घेरे हैं। उसने संकट के दिनों में कुमार हमीर के जीवन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। अमरचन्द एक योग्य और चरित्रवान आदमी था लेकिन संसार के बहुत से मनुष्य किसी अच्छे आदमी के बढ़ते हुए यश और वैभव को देख नहीं सकते। अमरचंद ने भयानक संकट के दिनों में जिस प्रकार मेवाड़ राज्य की रक्षा और सहायता की थी, उसमें उसकी प्रशंसा करने के स्थान पर बहुत से मेवाड़ के लोग उसके साथ ईर्ष्या करते थे। हमीर के बालक होने के कारण राज्य का शासन जिस राजमाता के हाथों में था, उसके विचारों को भी राज्य के लोगों ने अमरचन्द के प्रति दूषित बना दिया था। इस प्रकार की सभी बातों को अमरचन्द जानता था।

अच्छे से अच्छे आदमी के साथ भी ईर्ष्या करने वाले मनुष्य पैदा हो जाते हैं और एक नेक आदमी के द्वारा जिन लोगों का अहित होता है, वही उसके विरोधी बन जाते हैं। अमरचन्द अच्छे काम कर सकता था, परन्तु वह दूसरों को प्रसन्न नहीं कर सकता था। उसने अपने पास की समस्त सम्पत्ति की एक सूची तैयार की और उसे उसने राजमाता के पास भेज दिया। बहुमूल्य मोती, सोना, चाँदी और हीरे जवाहरात के साथ अमरचन्द ने सूची बना कर अपने वस्त्रों को भी राजमाता के पास भेजा। राजमाता ने उसकी भेजी हुई बहुमूल्य सामग्री और सूची को देखकर आश्चर्य किया और अमरचन्द को सब-कुछ लौटा देने की चेष्टा की। परन्तु प्रयोग में लाये गये वस्त्रों को वापस लेकर शेष सब-कुछ अमरचन्द ने राजमाता के अधिकार में दे दिया। उसने ऐसा राजमाता के हृदय को विश्वासपूर्ण बनाये रखने के लिए किया और उसका प्रभाव उस समय राजमाता पर पड़ा भी। परन्तु वह कुछ ही दिनों के बाद बदल गया। इसमें राजमाता का अधिक अपराध न था। उसकी कमजोरी अवश्य थी। वास्तव में वह रामप्यारी नाम की एक स्त्री से प्रभावित थी और उस स्त्री का संबंध एक चरित्रहीन आदमी के साथ थां। जो लोग वहाँ पर अमरचन्द के विरोधी थे, उनके साथ उस आदमी का सम्बन्ध था। वह आदमी रामप्यारी को जितना पाठ पढ़ाता था, रामप्यारी उसी के अनुसार राजमाता को सोलह दूना बत्तीस पाठ पढ़ाया करती थी। रामप्यारी से सम्बन्ध रखने वाला वह व्यक्ति राणा का एक कर्मचारी था। सही बात यह है कि राजमाता उस कर्मचारी के हाथ की कठपुतली हो रही थी।

अमरचन्द रात दिन राज्य की और नवयुवक हमीर के सम्मान की रक्षा का उपाय सोचा करता था। लेकिन इन बातों की चिंता करने वाला उन दिनों में मेवाड़ में दूसरा कोई न था। अमरचन्द के इस अच्छे कार्य में सहायकों की अपेक्षा विरोधियों का प्रभाव राजमाता पर अधिक काम कर रहा था और इस विरोध का सिलसिला उस चरित्रहीन कर्मचारी के द्वारा जारी होता था। अमरचन्द को इन सब बातों की खबर थी, परन्तु वह दरबार और महल की इन भीतरी बातों में नहीं पड़ना चाहता था। वह समझता था कि राज्य के सिर पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं और उनसे मेवाड़ की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।

दूसरी बार अमरचंद के मंत्री होने के पूर्व मेवाड़ राज्य के जो लोग राणा अरिसिंह की अयोग्यता और निर्बलता का लाभ उठा रहे थे, वे सभी अमरचंद के विरोधी थे और राज्य की बिगड़ती हुई परिस्थितियों से विवश होकर जब राणा ने अमरचंद को फिर से मंत्री बनाया तो विरोधियों ने विद्रोही वातावरण उत्पन्न किया था। परन्तु राज्य के शुभचिंतक होने के कारण अमरचंद ने उसकी कुछ परवाह न की। अरिसिंह की मृत्यु के बाद बालक हमीर के सिंहासन पर बैठने और सत्ता राजमाता के हाथों में आने पर उन विरोधियों को फिर से

एक बार अवसर मिला। इन सब बातों को समझते और जानते हुए भी अमरचंद राज्य के हितों की रक्षा में प्रत्येक समय रहा करता था। राजमाता की अवस्था इन दिनों में बड़ी विचित्र थी। उसे अमरचन्द के विरुद्ध जो कोई भड़का देता, उसी पर वह विश्वास कर लेती। उसको अपनी भलाई और बुराई के समझने का ज्ञान न रहा।

एक दिन रामप्यारी अमरचन्द के सामने आयी और उसने राजमाता की तरफ से कुछ ऐसी बातें अमरचन्द से कहीं, जो उसके सम्मान के सर्वथा विरुद्ध थीं। अमरचन्द ने उसे डाँट दिया। रामप्यारी वहाँ से लौट गयी और राजमाता के पास जाकर उसने अनेक झूठी बातें कहीं। राजमाता उन बातों को सुनकर क्रोध में आकर सालुम्बर सरदार के पास जाने को तैयार हुई। रामप्यारी के चले जाने पर अमरचन्द को कुछ आशंका मालूम हुई थी। वह अपने स्थान से उठकर चला गया और जाते हुए उसने रास्ते में राजमाता को पालकी पर जाते हुए देखा। अमरचंद ने नौकरों को राजमाता को राजमहल ले जाने का आदेश दिया। महल के पास पहुँचने पर अमरचन्द ने बड़ी नम्रता के साथ राजमाता से कहा – "आपने इस समय अपने महल से निकल कर अच्छा नहीं किया। राणा को मरे हुए अभी छः महीने भी नहीं बीते। आपको अभी अपने महल से निकल कर कहीं जाना न चाहिए। ऐसा करना आपके प्रसिद्ध वंश के नियमों के विरुद्ध हैं। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। मैं आपको समझाने की सामर्थ्य नहीं रखता। मैं आपका और आपके राज्य का शुभचिंतक हूँ। आपके राज्य पर संकट आने वाले हैं, मैं उनका सामना करने की चिन्ता में हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस कार्य में आप सहायता करेंगी।"

अमरचन्द ने इस प्रकार बहुत-सी बातें नम्रता के साथ कही। लेकिन अमरचन्द का राजमाता पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने अमरचन्द को अपना विरोधी और शत्रु समझा और जो लोग उसकी झूठी प्रशंसा किया करते थे, उन्हीं पर वह विश्वास करती थी। अमरचन्द पर राजमाता का अविश्वास बढ़ता गया और उसी अविश्वास के फलस्वरूप उसने विष खिलवाकर मंत्री अमरचंद के प्राणों का संहार किया। इन दिनों में मेवाड़ राज्य के सम्मान की रक्षा करने वाला यही एक अमरचन्द था। वह चरित्रवान था और अपने देश की रक्षा करने के लिए प्रत्येक समय चिंतित रहता था। उसकी योग्यता और बुद्धिमता में कोई कमी न थी। उसमें लोकहित की अटूट भावना थी। इस प्रकार का योग्य और चरित्रवान व्यक्ति किसी भी देश के लिए आराध्य हो सकता था। मेवाड़ का दुर्भाग्य समीप आ गया था। इसीलिए वह राज्य ऐसे व्यक्ति का सम्मान न कर सका। पतन के दिनों में मनुष्य की बुद्धि की कीमत मानी जाती है। जब किसी परिवार, देश और राज्य का विनाश होने वाला होता है तो उस परिवार, देश और राज्य में अच्छे आदमियों के लिए स्थान नहीं रह जाता और वहाँ पर अयोग्य आदमियों का सम्मान बढ़ जाता है। इसीलिए उस राज्य में अमरचंद के त्याग और बलिदान का आदर उसके जीवन में न हुआ। विष देकर उसके प्राण लिए गए। उसने अपनी जिंदगी में राज्य के लिए अपना सर्वस्व दान कर दिया था। मरने पर उसके अंतिम संस्कार के लिए भी पैसों का अभाव था। प्रसिद्ध मेवाड़ राज्य का प्रधानमंत्री होने के बाद भी उसकी मृत्यु एक दीन-दरिद्र की-सी हुई। अमरचन्द के जीवन का यह पीड़ामय दृश्य मेवाड़ राज्य के सर्वनाश का कारण बना।

राजमाता ने अमरचन्द को अपना शत्रु समझा था। इसलिए उसका अन्त करके वह निरंकुश जीवन व्यतीत करना चाहती थी। उसे न मालूम था कि अमरचन्द के मरते ही राज्य में क्या होने वाला है। बड़ी बुद्धिमानी के साथ अमरचन्द ने शत्रुओं से मेवाड़ राज्य को सुरक्षित बना रखा था और मराठों के षड़यंत्रों से राज्य को बचाने में उसने सफलता प्राप्त की थी।उसके मरने के बाद सम्वत् 1831 सन् 1775 ईसवी में बेगू सरदार ने राज्य पर

आक्रमण किया। उसको रोकने के लिए मेवाड़ में अव कोई शूरवीर न था। इसलिए राजमाता को उस सिंधिया से सहायता माँगनी पड़ी जो बहुत दिनों से मेवाड़ के विरुद्ध अवसर की ताक में था। वेगू एक मेघावत सरदार था। मेघावत वंश चूँडावत गोत्र की एक प्रधान शाखा है।

सिंधिया की मराठा सेना ने मेवाड़ का पक्ष लेकर बेगू सरदार पर आक्रमण किया और उस सरदार ने मेवाड़ राज्य के जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उसने सरदार को हटा कर अपना अधिकार कर लिया और बेगू सरदार पर विद्रोह करने के अपराध में बारह लाख रुपये का जुर्माना किया। जुर्माने की इस सम्पत्ति को सिंधिया ने अपने हिस्से में रखा और रतनगढ़, खेड़ी, सिंगौली के प्रसिद्ध स्थान अपने जामाता वीर जी प्रताप को देकर इर्निया., जाठ, बिचूर और नदोई इत्यादि राज्य के अनेक प्रसिद्ध स्थान होलकर को दे दिये। इन इलाकों की वार्षिक आमदनी छः लाख रुपये थी। मराठों ने मेवाड़ राज्य के इतने ही इलाकों पर अधिकार नहीं किया बल्कि सम्वत् 1830-31 और 36 में युद्ध की सहायता की कीमत में अत्याधिक संपत्ति की मांग मेवाड़ राज्य से की और उस संपत्ति की अदायगी न होने के कारण मराठों ने मेवाड़ राज्य के कई प्रसिद्ध इलाकों पर अधिकार कर लिया। राज्य के इन सर्वनाश के दिनों में अठारह वर्ष की अवस्था में सम्वत् 1834 सन् 1778 ईसवी में हमीर की मृत्यु हो गयी।

मेवाड़ के राजाओं से भिन्न-भिन्न अवसरों पर मराठों ने जिस प्रकार रुपये लिये, वे इस प्रकार हैं :–

छियासठ लाख रुपये सम्वत् 1808 सन् 1752 ईसवी में राणा जगतसिंह से होलकर ने लिए।

इक्यावन लाख रुपये सम्वत् 1820 सन् 1768 ईसवी में राणा अरिसिंह से माधव जी सिंधिया ने लिए।

चौसठ लाख रुपये सम्वत् 1826 सन् 1870 ईसवी में राणा अरिसिंह से माधव जी सिंधिया ने लिए।

इस प्रकार तीन बार में मेवाड़ के राजाओं से मराठों ने जो सम्पत्ति वसूल की, वह सब मिलाकर एक करोड़ इक्यासी लाख रुपये थी। इस नकद सम्पत्ति के सिवा सम्वत् 1808 से लेकर सम्वत् 1831 तक मेवाड़ राज्य के जितने इलाकों पर मराठों ने अधिकार कर लिया, उनकी वार्षिक आमदनी अट्ठाईस लाख, पचास हजार रुपये थी। मराठों के अधिकार में गये हुए इलाकों में रामपुरा, भनपुरा, जावद, जीरण, नीमच, नीम्बाहेड़ा, रतनगढ़, खेड़ी, सिंगौली, इर्निया, जाठ, बिचूर और नदोई प्रमुख थे।

□

अध्याय—26
महाराणा भीमसिंह

राणा हमीर की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई भीमसिंह आठ वर्ष की अवस्था में सम्वत् 1834 सन्1778 ईसवी में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। चालीस वर्षों में जो चार राजकुमार इस राज्य के अधिकारी बने, भीम उनमें चौथा था। उसने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर पचास वर्ष तक राज्य किया। इस अर्द्ध शताब्दी में जो अनर्थ और उत्पाद इस राज्य में पैदा हुए, उनके द्वारा इस राज्य की शेष शक्तियाँ भी छिन्न-भिन्न हो गयीं।

भीमसिंह बाल्यावस्था में राज्य का अधिकारी हुआ था। वयस्क हो जाने के बाद भी बहुत समय तक उसको अपनी माता की अधीनता में रहना पड़ा। वह जन्म से ही अयोग्य और उत्साहहीन था। उसमें स्वयं समझने और विचार करने की शक्ति न थी। इसलिए दूसरे लोग आसानी से उसको अपने अधिकार में कर लेते थे। इन दिनों में विद्रोही रत्नसिंह का बहुत पतन हो चुका था और उसका जो कुछ प्रभाव बाकी रह गया था, उसमें कुछ शक्ति न थी। इसीलिए भट्ट ग्रंथों में आगे उसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

मेवाड़ राज्य में चूँडावत और शक्तावत वंशों का पारस्परिक विरोध बहुत दिनों से चला आ रहा था। इस राज्य में ये दोनों वंश अत्यन्त प्रभावशाली थे। लेकिन अपनी-अपनी प्रधानता के लिए दोनों वंशों के सरदार एक दूसरे से वैमनस्य रखते थे। चूँडावत लोगों ने राणा पर प्रभाव डालकर अपनी प्रधानता कायम कर रखी थी। इन दिनों में राणा की निर्बलता के कारण दोनों वंशों के सरदारों का विरोध अधिक बढ़ गया था और सम्वत् 1840 सन् 1784 ईसवी में चूँडावत सरदार ने शक्तावत सरदारों के विरुद्ध आधिपत्य आरम्भ किये। राज्य में उनको प्रधानता मिली। उस प्रधानता का उन्होंने दुरूपयोग किया और शक्तावत वंश के लोगों को मिटाने की कोशिश की।

कोरावाड का अर्जुनसिंह और आमेर का प्रताप सिंह सालुम्बर सरदार का निकटवर्ती सम्बन्धी था।[1] (संदर्भ) चूँडावत सालुम्बर सरदार ने अर्जुनसिंह और प्रतापसिंह के साथ शक्तावत सरदार मोहकम के भींडर दुर्ग को घेर लिया और उसके आस-पास तोपें लगवा दीं। चन्दावत सरदार का यह आक्रमण अकस्मात हुआ।

शक्तावत वंश की एक छोटी शाखा में संग्रामसिंह नाम का एक व्यक्ति हुआ, वह वीर और साहसी था। उसके द्वारा मेवाड़-राज्य में कई अच्छे कार्य हुए। भींडर दुर्ग के

1. जगवत वंश में प्रतापसिंह का जन्म हुआ था। मराठों के साथ युद्ध करते हुए वह मारा गया।

घेरे जाने के कुछ पूर्व पुरावत सरदार के साथ संग्राम सिंह का एक झगड़ा पैदा हुआ। लाना नामक उस सरदार का एक दुर्ग था। संग्रामसिंह ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इसी बीच में भी डर का दुर्ग घेरा जा चुका था। शक्तावत वंश के साथ संग्राम सिंह का सम्बंध था। इसलिए उसने उसके बदले में कोरावाड पर आक्रमण किया। अर्जुनसिंह वहाँ का अधिकारी था। संग्राम सिंह ने वहाँ के बहुत से पशुओं को अपने अधिकार में ले लिया। उसी मौके पर अर्जुनसिंह के पुत्र सालिमसिंह ने उसके साथ युद्ध किया और वह संग्रामसिंह के भाले से मारा गया। पुत्र के मारे जाने का समाचार अर्जुनसिंह ने सुना, उसने अपने सिर का साफा फेंककर प्रतिज्ञा की कि 'जब तक संग्रामसिंह से मैं अपने बेटे के मारे जाने का बदला न ले लूँगा अपने सिर पर साफा न बाँधूगा।" इसके बाद वह कोरावाड की तरफ रवाना हुआ। संग्रामसिंह अपने को शत्रुओं से सुरक्षित समझता था। इसका परिवार वहीं पर रहा करता था।

अर्जुनसिंह अपनी सेना के साथ शिवगढ़ पहुँचा। वहाँ के दुर्ग मे लालजी के सिवा और कोई शूरवीर न था। बुढ़ापे में पहुँचकर उसने अपनी अवस्था के सत्तर वर्ष पूरे किये थे। उसका शरीर शिथिल और निर्बल हो गया था। उसके पास लड़ने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी। फिर भी वह अपने हाथों में तलवार और ढाल लेकर निकला और अपने थोड़े से आदमियों की शक्ति का सहारा लेकर उसने युद्ध किया। लड़ते हुए वह मारा गया। अर्जुनसिंह ने संग्रामसिंह के परिवार और बच्चों का सर्वनाश किया। लालजी की वृद्धा स्त्री उसके मृत शरीर को लेकर सती हुई।

कोरावाड के अधिकारी अर्जुनसिंह के द्वारा होने वाले इस सर्वनाश का परिणाम मेवाड़ राज्य पर अच्छा नही पड़ा। आपसी फूट पहले से चली आ रही थी। उसने इन दिनों में भयानक रूप धारण किया और राज्य का अपहरण करने में उस फूट ने मराठों को एक अच्छा अवसर दिया। शिवगढ़ के सर्वनाश के बाद चँडावत और शक्तावत वंश की शत्रुता भयानक हो उठी। चूँडावत वंश के लोगों को राणा के यहाँ प्रधानता मिली थी और उस वंश के सालुम्बर सरदार को राज्य की रक्षा का अधिकारी बनाया गया। मेवाड़ में इन दिनों राजपूत वीरों का अभाव था। शताब्दियों से शत्रुओं के आक्रमणों का सामना करते-करते वे सभी अपने प्राणों की आहुतियाँ दे चुके थे। जो बाकी रह गये थे, उनको और उनकी संतानों को राज्य के वर्तमान राणा की अकर्मण्यता ने भीरू बना दिया था। इसलिए राज्य की रक्षा के लिए किराये पर सिंधी सेना रखी गयी थी और चित्तौड़ तथा उदयपुर के बीच का समस्त श्रेष्ठ इलाका उसको दे दिया गया था। चूँडावत मंत्री भीमसिंह इन दिनों में मेवाड़ का मंत्री था और उसने सिंधी सेना को सुविधायें देकर उनको अपने अनुकूल बना रखा था। इस भीमसिंह ने अपनी कुटिल राजनीति से राज्य को और भी अधिक मिट्टी में मिलाने का काम किया था। उसने अपने अधिकारों का दुरूपयोग किया था और राज्य की सम्पत्ति को पानी की तरह बहाकर उसने बर्बाद किया। राणा भीम के पास सम्पत्ति का उस समय इतना अभाव था कि उसने अपना विवाह जब ईडर राज्य में किया था तो उसके खर्च के लिए उसको कर्ज लेना पड़ा था। लेकिन राज्य की इस दुरवस्था के दिनों में भी मंत्री भीम ने अपनी लड़की के विवाह में दस लाख रुपये से अधिक खर्च किये। राणा भीमसिंह की अयोग्यता का यह परिणाम था कि उसका मंत्री राज्य में मनमानी कर रहा था और राणा तथा राजमाता की उपेक्षा करने में उसे कुछ भी भय न होता था।

राजमाता मंत्री भीम के असद् व्यवहार को अधिक समय तक सहन न कर सकी। उसने शक्तावंश के श्रेष्ठ जनों को बुलाकर अपने राज्य में प्रतिष्ठा दी और भीण्डर तथा लावा

के सामन्तों को वुलाकर उनका सम्मान किया। राजमाता ने चूँडावत मंत्री को हटाकर राज्य का वह पद किसी योग्य शक्तावत को देने का निश्चय किया। परन्तु चूँडावत लोगों ने राज्य में अपना इतना अधिकार कायम कर लिया था कि राणा और राजमाता का आदेश कुछ महत्त्व न रखता था। शक्तावतों में स्वयं इतना वल और पराक्रम न था कि वे चूँडावत लोगों को पराजित करके उनके प्रभुत्व को अपने अधिकार में ले सकते। ऐसी दशा में कोटा सरदार जालिमसिंह से सहायता माँगी गयी। जालिमसिंह से सहायता माँगने के कुछ और कारण भी थे। वह चूँडावत लोगों से पहले से ही अप्रसन्न था और शक्तावत वंश के लोगों के साथ उसके वैवाहिक सम्वन्ध थे। इसलिए जालिमसिंह ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस समय शक्तावत लोगों के सामने दो कार्य प्रमुख थे। एक तो चूँडावत लोगों का दमन करना और दूसरा कमलमीर से विद्रोही रत्नसिंह को निकाल देना। चूँडावत लोगों ने सिंधी सेना को मिलाकर राज्य में षड़यंत्रों का एक जाल फैला दिया था और उस जाल से राणा को निकाल सकना आसान न था। इसलिए उस जाल को छिन्न-भिन्न कर देना शक्तावत लोगों का उस समय प्रधान कार्य था।

मेवाड़ की इस दुरवस्था के दिनों में मारवाड़ और जयपुर के राजाओं ने मिलकर एक शक्ति का निर्माण किया और माधवजी सिंधिया के वढ़ते हुये प्रभुत्व को नष्ट करने का काम किया था। लालसोट नामक मैदान में मारवाड़ और जयपुर की संगठित सेना ने माधवजी सिंधिया को वुरी तरह पराजित किया और जो इलाके सिंधिया के अधिकार में चले गये थे, उन पर राजपूतों ने फिर से अपना अधिकार कर लिया। इसका प्रभाव मेवाड़ राज्य पर भी पड़ा और वहाँ के राणा ने भी अपने उन इलाकों पर अधिकार करने की चेष्टा की, जो मेवाड़ के थे और जिन पर सिंधिया ने अधिकार कर लिया था। मालदास मेहता और उसका सहकारी मौजीराम–दोनों ही राणा के यहाँ सुयोग्य अधिकारी थे। उनके द्वारा निम्वाहेड़ा और उसके निकटवर्ती दुर्गों पर सवसे पहले अधिकार किया गया। मराठों ने घवराकर जावद नामक स्थान पर एकत्रित होकर सामना करने की कोशिश की, परन्तु वे राजपूतों का सामना न कर सके। जावद का अधिकारी शिवाजी नाना पराजित होकर राजपूतों से क्षमा माँगकर अपने सामान और आदमियों के साथ भाग गया। इसी वीच में वेगू-सरदार मेघसिंह के पुत्र ने वेगू-सिंगौली और दूसरे स्थानों से मराठों को निकाल दिया और चूँडावत लोगों ने भी मराठों से रामपुर राज्य वापस प्राप्त कर लिया।[1]

इन दिनों में राजपूतों ने लगातार मराठों को पराजित किया और मेवाड़ तथा मारवाड़ की सीमा पर प्रवाहित होने वाली रिरकिया नामक नदी के किनारे चई नामक स्थान पर एकत्रित होकर वे मराठों के दूसरे इलाकों पर अधिकार करने के लिए वढ़ने लगे। यह देखकर होलकर राज्य की रानी अहिल्या वाई सिंधिया से मिल गयी और तुलाजी राव सिंधिया तथा श्री भाई पाँच हजार सवारों की सेना को लेकर पराजित शिवाजी नाना की सहायता के लिये मन्दसोर की तरफ रवाना हुए। वहाँ पर राजपूतों के साथ शिवाजी नाना युद्ध कर रहा था। इसी अवसर पर मराठों की एक दूसरी सेना ने वहाँ पहुँचकर राजपूतों पर अचानक आक्रमण किया। माघ शुक्ल चौथ, मंगलवार सम्वत् 1844 सन् 1788 ईसवी को दोनों ओर से घमासन युद्ध हुआ। उसमें राजपूतों की पराजय हुई और राणा का मंत्री अपने वहुत से सैनिकों के साथ मारा गया। कानोढ और सादडी के सरदार घायल हो गये।सादड़ी का सरदार घायल अवस्था में ही कैद हो गया और दो वर्ष तक वन्दी अवस्था में रहने के वाद अपने अधिकृत राज्य के चार नगरों को देकर उसने मुक्ति पायी। माधवजी सिंधिया के

1. मेघजी वेगू का सरदार था। उसने चूँन्डावत वंश में जन्म लिया था, उसके वंश के लोग मेघावत वंश के

जिन स्थानों पर राजपूतों ने अधिकार कर लिया था, जावद को छोड़कर बाकी पर फिर मराठों ने अपना अधिकार कर लिया। दीपचन्द ने बड़ी बहादुरी के साथ एक महीने तक जावद की रक्षा की।

इन दिनों में चन्दावत लोगों को छोड़कर बाकी सभी सरदार राणा के साथ मिल गये। राजमाता और मेवाड़ के नवीन मंत्री सोमजी ने चूँडावतों का दमन करने की चेष्टा की। इन परिस्थितियों में चूँडावत सालुम्बर सरदार राणा से क्षमा माँगने के लिये उदयपुर आया और वह चापलूसी करने लगा। उसने कहा–"मैं राज्य के मंत्री सोमजी के साथ मिलकर काम करना चाहता हूँ।" परन्तु उसकी इस बात में सच्चाई न थी। वह किसी प्रकार मन्त्री सोमजी का वध करना चाहता था और इसके लिये वह भीतर ही भीतर षड़यंत्र की रचना कर रहा था। एक दिन कोरावाड का सरदार अर्जुन सिंह और भदेसर का सामन्त सरदारसिंह–दोनों एक साथ मंत्री सोमजी के सामने पहुँचे और बड़े आवेश के साथ कहा–"आपको हमारी जागीर को जब्त करने का क्या अधिकार था?" इसके साथ ही सरदारसिंह ने अपनी तलवार का भीषण वार मन्त्री पर किया। यह देखकर सोमजी के दोनों भाई उसकी रक्षा के लिये दौड़ पड़े। अर्जुनसिंह ने आगे बढ़कर उनका सामना किया। अन्त में दोनों आक्रमणकारी सालुम्बर सरदार के साथ चितौड़ चले गये। राणा भीम में आक्रमणकारियों को दंड देने का सामर्थ्य न था। मन्त्री सोमजी के मारे जाने पर उसके भाई शिवदास और सतीदास राज्य के मन्त्री बनाये गये।

शिवदास और सतीदास ने मन्त्री पद पाने के बाद शक्तावत लोगों की सहायता से कई बार चूँडावत लोगों के साथ युद्ध किया। उन लड़ाइयों में मंत्रियों को अकोला में होने वाले युद्ध में केवल विजय प्राप्त हुई। इस लड़ाई में कोरावाड़ का सरदार अर्जुनसिंह चूँडावत लोगों का सेनापति बना। अकोला के युद्ध के थोड़े ही दिनों बाद खैरीद नामक स्थान पर युद्ध हुआ। उसमें शक्तावत फिर पराजित हुए।

मेवाड़ राज्य में आपसी झगड़ों के कारण प्रजा के सामने भयानक कठिनाइयाँ पैदा हो गयी थीं। उन दिनों में जो पक्ष विजयी होता था, वह उन्मत्त होकर प्रजा का सर्वनाश करता था। इन विद्रोहों को दबाने की शक्ति राणा में न थी। इसलिये सम्पूर्ण राज्य में अराजकता बढ़ती जाती थी। विद्रोही सैकड़ों और सहस्त्रों की संख्या में तलवारें लिये हुए राज्य में चारों ओर घूम रहे थे और प्रजा का सभी प्रकार विनाश कर रहे थे। कृषकों से लेकर सभी प्रकार के व्यवसायी भयानक संकट का सामना कर रहे थे। चोरों, लुटेरों और डाकुओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी थी। जो अपराध पहले कभी मेवाड़ में सुनने को न मिलते थे, इन दिनों में उनकी अधिकता के कारण प्रत्येक समय प्रजा की सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और जिन्दगी खतरे में थी। चूण्दावत लोगों के अत्याचारों से राज्य में चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मच गयी। राज्य की तरफ से कोई प्रबन्ध न होने के कारण लोग अपने-अपने घर-द्वार छोड़कर भागने लगे। राज्य के जो स्थान सदा मनुष्यों से भरे रहते थे, वे सूनसान दिखायी देने लगे। जो लोग खेती करते थे, वे इस बढ़ती हुई अराजकता के कारण सदा अनिश्चित रहते थे। ठीक यही अवस्था राज्य के दूसरे व्यवसायों की हो गयी थी। गरीबों और मजदूरों की अवस्था अत्यन्त भयानक हो गयी थी। राज्य के इस आन्तरिक विद्रोह के कारण कुछ ही वर्षों में मेवाड़ की आबादी घटकर आधी रह गयी। व्यवसाय नष्ट हो गया था और बेकारों की संख्या बढ़ती जाती थी। खेती का काम नष्ट हो गया था और जुलाहों का बुना हुआ कपड़ा, जो चारों तरफ बिक्री के लिये जाता था, खत्म हो गया था। राज्य की अवस्था शोचनीय हो गयी थी। प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर राणा स्वयं अपनी रक्षा कर सकने में असमर्थ हो रहा था। उसकी अवस्था बहुत दयनीय हो गयी थी, उसको अपनी रक्षा की आवश्यकता

थी। राणा की इस असमर्थता के कारण शासन का डर लोगों के दिलों से मिट गया था। बढ़ती हुई चोरी, बदमाशी और डकैती से लोगों को अपनी रक्षा की जरूरत थी। इसलिए जो राजपूत शक्तिशाली थे, उन्होंने भयभीत प्रजा की रक्षा करने का व्यवसाय आरम्भ किया। वे घोड़ों पर चढ़कर और अपने हाथों में तलवार तथा भाला लेकर निकलते और लुटेरों से प्रजा की रक्षा करते। उस दशा में लोग अपने ही राज्य में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते और अपने साथ की सामग्री की वे रक्षा कर सकते। दुरवस्था सम्पूर्ण राज्य में फैल गयी। शासन ढ़ीला पड़ जाने के कारण रक्षक राजपूतों का व्यवसाय बढ़ने लगा और प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति एवम् परिवार सहायता का अनिश्चित मूल्य देकर सहायता प्राप्त करने लगा। राज्य की यह दुरवस्था अत्यन्त भयानक हो उठी और लुटेरे मराठों के गिरोह मेवाड़-राज्य में आकर लूट-मार करने लगे। उस सयम मेवाड़ की जो शोचनीय दशा हो गयी थी, उसका वर्णन करना असंभव है।

राज्य की इस दुरवस्था का कारण एकमात्र चूँडावत लोग थे। उनके दमन की कोई व्यवस्था न हो सकने पर राणा और उसके मन्त्रियों ने प्राचीन राजधानी से विद्रोही चूँडावत लोगों को निकाल देने के लिए, सिंधिया से प्रार्थना की। जिस सिंधिया ने रत्नसिंह की सहायता करके मेवाड़ राज्य का सर्वनाश किया था, आज राणा को अपनी असमर्थता में उससे सहायता के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। इसके लिए जालिमसिंह ने राणा को परामर्श दिया था। सिंधिया उन दिनों में पुष्कर के तट पर अपनी सेना के साथ था और अपनी सेना को युद्ध की शिक्षा देने के लिए उसने डिवोइन नामक एक फ्रांसीसी सरदार को अपने यहाँ नियुक्त किया। उसकी शिक्षा पाकर सिंधिया की सेना इन दिनों में अधिक शक्तिशाली हो गयी थी और मेड़ता तथा पट्टन में उसके उत्पात फिर से बढ़ गये थे, राठौर राजपूतों ने पूरी शक्ति लगाकर उनका मुकाबला किया, लेकिन उनको सफलता न मिली और वे पराजित हुए। राठौर राजपूतों को जीतने के कारण सिंधिया की शक्तियाँ फिर से भयानक हो उठीं।

जालिमसिंह उन दिनों में कोटा का सरदार था। वह किसी प्रकार मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था। शूरवीर और राजनीतिकज्ञ होने के साथ-साथ वह दूरदर्शी था। निर्बल राणा को असमर्थ बनाकर वह मेवाड़ का राज्याधिकार लेने के लिए अनेक प्रकार के षड़यंत्रों की रचना करने लगा। मारवाड़ और जयपुर के राजाओं का उसे कोई भय न था। उसने मारवाड़ के प्रसिद्ध सामन्तों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लिया।

अपनी आशा को पूरा करने के लिए जालिमसिंह अवसर की प्रतीक्षा में था। परिस्थितियाँ स्वयं मनुष्य को निर्बल और सबल बनाने का काम करती हैं। अपनी बढ़ती हुई कमजोरियों में राणा ने अपनी सेना का अधिकार जालिमसिंह को सौंप दिया। इस समय और सुयोग का लाभ उठाने के लिए जालिमसिंह ने राजनीतिक चालों से काम लिया। राणा ने सेना का जो कार्य जालिमसिंह को सौंपा था, उसके लिए धन की आवश्यकता थी। इस धन का प्रबंध करने के लिए जालिमसिंह ने समझा कि राज्य की कुछ जागीरों पर चूँडावत लोगों ने जबरदस्ती अधिकार कर लिया है, इसलिए उन जागीरों के बदले में चूँडावत लोगों से चौंसठ लाख रुपये वसूल किये जा सकते हैं। इसके लिए उसने सिंधीया की सहायता लेने का विचार किया और निर्णय किया कि चूँण्डावत लोगों से जो यह धन वसूल किया जायेगा, उसका तीन भाग सिंधिया को और बाकी रुपये मेवाड़-राज्य के आवश्यक कार्यों में खर्च किये जाएंगे।

अपने कार्य की सिद्धि के लिए जालिमसिंह ने एक योजना बनाकर सिंधिया की सहायता प्राप्त की और अम्बाजी इंगले के सेनापतित्व में मराठों की एक सेना लेकर वह चितौड़ की तरफ रवाना हुआ। दोनों सेनाओं ने चितौड़ की तरफ बढ़ते हुए रास्ते में खेती

को बड़ी हानि पहुँचाई। जो स्थान सुन्दर और सम्पन्न थे, उनको लूट लिया। इस अत्याचार में जालिमसिंह ने अपने नाम को सार्थक कर दिया। जालिमसिंह ने हमीरगढ़ पर आक्रमण किया, डेढ़ महीने तक लगातार वहाँ पर युद्ध होता रहा। जालिमसिंह के पास युद्ध की तोपें थी, उसने उस युद्ध में अपनी तोपों का प्रयोग किया। इसलिए हमीरगढ़ के कुओं मे विष ड़ाल दिया गया। इसलिए धीरजसिंह के सैनिकों ने विवश होकर अपने दुर्ग का द्वार खोल दिया। जालिमसिंह ने उस पर अधिकार कर लिया और आस-पास के दूसरे दुर्गों पर कब्जा करके मराठा सेना के साथ चितौड़ की तरफ बढ़ा। रास्ते में चूँडावत लोगों का बुसी नामक इलाका था। जालिमसिंह ने उस पर आक्रमण किया और उस पर भी उसने अधिकार कर लिया। सिंधिया की सेना इन दिनों में मारवाड़ की सहायक थी। चितौड़ में जालिमसिंह की सेनाओं के पहुँचते ही सिंधिया भी अपनी सेना के साथ उसकी सहायता करने के लिए वहाँ पर आ पहुँचा।

माधव जी सिंधिया की राणा से मिलने की अभिलाषा थी। इसलिए उसने अपना यह इरादा जालिमसिंह से प्रकट किया। वह राणा को लाने के लिए उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। राजधानी से कुछ व्याघ्रमेरु नामक पहाड़ी स्थान पर राणा और माधवजी सिंधिया की मुलाकात हुई। सिंधिया ने राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। इस समय सिंधिया और जालिमसिंह चितौड़ छोड़कर उदयपुर की तरफ चले आये और अम्बाजी अकेला अपनी सेना के साथ चितौड़ में रह गया। जालिमसिंह ने से इंगले से सहायता ली। लेकिन वे दोनों ही एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते थे। अम्बाजी ने अवसर पाकर विद्रोही चूँडावत सरदार के साथ मेल करने की चेष्टा की और जालिमसिंह का उद्देश्य उसे जाहिर कर देने का निश्चय किया। इसी आधार पर चूँडावत सरदार भीमसिंह के साथ जो राणा का विद्रोही था—अम्बाजी की गुप्त बातचीत हुई और जालिमसिंह की योजना को समझ कर चूँडावत सरदार भीमसिंह ने राणा के प्रति आत्म-समर्पण करना और बीस लाख रुपये देना स्वीकार किया, इस शर्त पर कि यदि राणा अपने यहाँ से जालिम सिंह को निकाल दे।

ज़ालिमसिंह अम्बाजी को अपना मित्र समझता था। उज्जैन के युद्ध में त्रयम्बकजी ने उसकी बड़ी मदद की थी। परन्तु राजनीति में इस प्रकार की मित्रता बहुत बड़ा मूल्य नहीं रखती। स्वार्थों का संघर्ष होते ही इस प्रकार की मित्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है। जालिमसिंह स्वभावंतः राजनीतिज्ञ था। वह अपने हितों को बहुत दूर से देखा करता था। ठीक यही अवस्था अम्बा जी की भी थी। दोनों ही अपने-अपने स्वार्थों को बहुत दूर से देख रहे थे। इसीलिए न तो जालिमसिंह ने कभी अम्बाजी से जाहिर किया था कि मेवाड़ के सम्बन्ध में उसका भीतरी इरादा क्या है और न अम्बाजी ने जालिमसिंह को इस बात को समझने का मौका दिया कि वह राणा की सहायता के नाम पर क्या लाभ उठा सकता है। दोनों ही परिस्थितियों का फायदा उठाना चाहते थे।

राणा के साथ चितौड़ में जालिमसिंह के आने पर अम्बाजी ने चूँडावत भीमसिंह का प्रस्ताव उपस्थित किया और कहा कि विद्रोही सरदार राणा के सामने आत्म-समर्पण करके अपने अपराध के बदले में बीस लाख रुपये देने को तैयार है, इस शर्त पर कि जालिमसिंह मेवाड़ से निकाल दिया जाये। अम्बाजी के मुख से सरदार भीमसिंह का प्रस्ताव सुनकर जालिमसिंह ने कहा—"यदि मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार की आपत्ति की जाती है तो मैं मेवाड़ छोड़कर कोटा जाने के लिए तैयार हूँ, यदि मेरा चला जाना राणा जी को स्वीकार है।"

अम्बाजी ने जालिमसिंह के उत्तर को ध्यानपूर्वक सुना। उसने कहा : "आपका यह उत्तर सुनने में बड़ा सुन्दर मालूम होता है। लेकिन इस पर वही लोग विश्वास करेंगे, जो आपको जानते नहीं हैं।" इसके बाद अम्बाजी ने प्रश्न करते हुए, जालिमसिंह से पूछा—"क्या

वास्तव में आप चले जाने के लिए तैयार हैं?" "निश्चित रूप से," जालिमसिंह के इस उत्तर को सुनकर अम्बाजी ने उसको कुछ सोचने-समझने का मौका न दिया और वह तुरन्त अपने घोड़े पर बैठकर सिंधिया के पास उसके खेमे में चला गया।

जालिमसिंह सिंधिया पर विश्वास करता था और समझता था कि वह अम्बाजी के द्वारा पहुँचे हुए इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा। इसका कारण यह था कि सिंधिया ने यहाँ आने के पहले उससे वादा किया था कि वह मेवाड़ के इस मामले में सहायता के लिए अपनी एक सेना देगा जो मेवाड़ राज्य से चूँण्डावतों को निकाल देगी और राज्य में शान्ति कायम करेगी। इस कार्य के लिये राणा की तरफ से सिंधिया को एक निश्चित रकम दी जायेगी। जालिमसिंह समझता था कि इसी वादे पर सिंधिया की सेना चूँण्डावतों के विरुद्ध यहाँ पर आई है। अगर इस समय सिंधिया इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो उसके साथ जो मैंने शर्तें तय की थीं, उनका उत्तरदायित्व किस पर होगा? इसलिए उसका विश्वास था कि सिंधिया अम्बाजी के इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करेगा। वह यह भी समझता था कि यदि सिंधिया ने इसे स्वीकार भी कर लिया तो राणा की तरफ से उसका विरोध होगा। क्योंकि राणा मेरे बल और पराक्रम से प्रभावित हैं और वह समझता है कि मेरे बिना राज्य की इस बढ़ती हुई अशान्ति में दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता था।

जालिमसिंह इस प्रकार की जितनी भी बातें सोच रहा था, अम्बा जी उनको पहले ही समझता था और उसने उनका उपाय भी सोच-समझ लिया था।[1] सिंधिया के पास पहुँच कर अम्बाजी ने उस प्रस्ताव को उसके सामने पेश किया और उस समय राणा के वादे की रकम माँगने पर अम्बाजी ने पूरे रुपये की एक हुंडी सिंधिया को दे दी।[2] सिंधिया पूना जल्दी पहुँचना चाहता था। चितौड़ से आने के पहले उसने अम्बाजी को अपना अधिकार बनाया और उसके अधिकारी में वह अपनी एक सेना भी छोड़ गया, जिससे वह मेवाड़ में पहले बचे हुए रुपयों को वसूल कर सके।

माधवजी सिंधिया पूना चला गया। अम्बाजी ने लौटकर जालिम सिंह से कहा : "सभी ने आपके इरादे को स्वीकार कर लिया है।" इसी समय राणा के कर्मचारी ने आकर उससे कहा : "आपकी विदाई की भेंट तैयार है।" यह सुनते ही जालिमसिंह के हृदय को एक आघात पहुँचा। लेकिन उसने किसी को अपनी इस दशा को समझने का अवसर न दिया और वह चितौड़ से चला गया। उसके बाद सालुम्बर सरदार चितौड़ के दुर्ग से निकल कर बाहर आया और राणा के चरणों को स्पर्श करके उसने क्षमा माँगी।

बिना किसी युद्ध के चूँण्डावतों का दमन करने में अम्बाजी को सफलता मिली। राज्य में फैली हुई अशान्ति और अराजकता अपने आप कम हो गई और उसका श्रेय अम्बाजी को मिला। वह जालिमसिंह का मित्र होने की अपेक्षा अपना मित्र अधिक था और यह उसी की राजनीति थी कि उसने चूँण्डावतों को नियंत्रण में लाकर जालिमसिंह के स्थान पर मेवाड़-राज्य में अपना प्रभुत्व कायम किया। अब वह पूरे मेवाड़-राज्य का अधिकारी बन बैठा। इसके पहले जब जालिमसिंह मेवाड़ को छोड़कर जा रहा था, अम्बाजी राणा के मंत्री शिवदास और सतीदास के पास गया और दोनों मंत्रियों से वादा करके उसने राज्य की अशांति को दूर करने का भार अपने ऊपर लिया। अनेक उत्तरदायित्वों को लेकर अम्बा जी ने मेवाड़ में अपना स्थान सर्वोच्च बना लिया।

---

1. चित्तौड़ से चन्दावतों को निकाल कर राज्य में शांति कायम करने के लिए राणा ने सिंधिया को बीस लाख रुपये देने का वादा किया था।
2. दक्षिण में अम्बाजी की जो रियासत थी, उसके नाम पर उसने अपनी तरफ से बीस लाख रुपये की एक

अम्बा जी ने मेवाड़ में रहकर आठ वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में उसने राज्य की सम्पत्ति को चूसकर बारह लाख रुपये अपने अधिकार में कर लिए। चूँडावतों के शान्त हो जाने से राज्य के समस्त उपद्रव खत्म हो गये। मेवाड़ राज्य के प्रबन्ध में सिंधिया ने निम्नलिखित कई आदेश अम्बाजी को दिये थे–

(1) विद्रोही रत्नसिंह ने कमलमीर में अधिकार कर रखा है, उसको वहाँ से निकाल दिया जाये।

(2) मारवाड़ के राजा से गोडवाड़ (गोद्वार) लेकर मेवाड़ में मिला लिया जाये।

(3) विद्रोहियों और सिंधी सेना ने राज्य के जिन इलाकों पर कब्जा कर रखा है, उनको उनसे छीन लिया जाये और समस्त अधिकार राणा को दिए जाये।

(4) बूँदी के राजकुमार के द्वारा अरिसिंह का वध होने के कारण जो झगड़ा पैदा हुआ है, उसका अन्त किया जाये,

सिंधिया को जो बीस लाख रुपये दिये गये थे, वे इस प्रकार वसूल किये गये – चूँण्डावतों की जागीर से बारह लाख रुपये और शक्तावतों से शेष आठ लाख रुपये। इस प्रकार उन बीस लाख रुपयों की पूर्ति हुई। राणा ने अम्बाजी से वादा किया था कि राज्य के सभी कार्य हो जाने पर सेना के खर्च के साथ-साथ साठ लाख रुपये राज्य की तरफ से अम्बाजी को अधिक दिये जायेंगे। इस निर्णय के अनुसार दो वर्ष के भीतर कमलमीर से रत्नसिंह को निकाल दिया गया। विद्रोही चूँण्डावत सरदार से जिहाजपुर और अन्य सरदारों से उनके इलाके छीनकर राणा के अधिकार में दे दिये गये।[1]

मेवाड़-राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में अम्बाजी और राणा के बीच जो कुछ निर्णय हुआ था, उसके अनुसार अम्बा जी ने कुछ कार्य किया। लेकिन राज्य की कई एक समस्यायें अभी तक ज्यों-की-त्यों बनी हुई थीं। गोडवाड़ का इलाका अभी तक मारवाड़-राज्य में शामिल था, बूँदी और मेवाड़ का झगड़ा ज्यों-का-त्यों था और मराठों ने जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उनका भी अभी तक कोई निर्णय न हुआ था। इस प्रकार के कितने ही काम बाकी थे। अम्बाजी ने मेवाड़ राज्य के सूबेदार होने की घोषणा कर दी थी।

राज्य के सभी प्रबन्ध अम्बाजी के अनुसार हो रहे थे। चूँण्डावत लोगों को राज्य के दरबार में पुराने अधिकार प्राप्त हो गये थे। इसलिए मंत्री शिवदास और सतीदास को उनसे भय पैदा हो गया। उनके भाई मंत्री सोमजी का जिस प्रकार वध किया था, उसकी स्मृति उनको दिन-रात भयभीत कर रही थी। धीरे-धीरे उन दोनों को इस बात का विश्वास होने लगा कि चूँडावत लोग हम दोनों के प्राण लेने की चेष्टा कर रहे हैं।

दोनों मंत्रियों ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर अम्बाजी से प्रार्थना की कि मेवाड़ में विशेष प्रबंध करने के लिए एक सेना की आवश्यकता है। मंत्रियों ने इस आवश्यकता को भली प्रकार समझाया, जिसको अम्बाजी ने स्वीकार कर लिया और जो सेना मंत्रियों की प्रार्थना के अनुसार रखी गयी, उसके खर्च के लिए आठ लाख रुपये वार्षिक आमदनी की जागीरें दी गयी।

राणा अपने राज्य में नाम के लिए राजा था। कुल अधिकार अम्बाजी के हाथों में थे। राज्य की आर्थिक अवस्था इन दिनों में बहुत खराब हो गयी थी। सम्वत् 1851 में राणा ने जयपुर के राजकुमार के साथ अपनी बहन का विवाह किया। उसके खर्च के लिए

---

1. चन्दावतों से जो बारह लाख रुपये वसूल किये गये, उनके विवरण इस प्रकार हैं—तीन लाख रुपये सलुम्बर से, तीन लाख रुपये देवगढ़ से, दो लाख रुपये सिंगिनगढ़ के मंत्रियों से, कोशीतल से एक लाख, आमेट से दो लाख, कोरावड़ से एक लाख। इस प्रकार बारह लाख रुपये वसूल किये गये।

राणा को पाँच लाख रुपये कर्ज लेने पड़े। उसके दूसरे वर्ष राजमाता की मृत्यु हो गयी। राणा के बालक पैदा हुआ और उदयसागर का बाँध टूट जाने से जल की वृद्धि से मेवाड़ की बहुत हानि हुई। राज्य की बहुत सी खेती नष्ट हो गयी।

सिंधिया ने सम्वत् 1851 में अम्बाजी को मेवाड़ राज्य का अधिकारी बनाया और अम्बाजी ने अपनी तरफ से मेवाड़ का प्रबंध करने के लिए गणेशपंत नामक मराठा को मुकर्रर किया। सवाई और श्री जी मेहता नाम के राणा के दो कर्मचारी थे, जो राज्य में अधिकारी माने गये। वे दोनों गणेशपंत के साथ मिल गये और तीनों ने प्रजा के साथ अत्याचार आरंभ किया। अम्बाजी को जब यह मालूम हुआ तो उसने गणेशपंत को हटा कर उसके स्थान पर रायचन्द को मुकर्रर किया। रायचन्द राज्य में कुछ प्रवन्ध न कर सका। प्रजा से लेकर राणा के कर्मचारियों तक किसी के ऊपर उसका प्रभाव न पड़ा। लोगों में शासन का जो भय था, वह उस समय बिल्कुल ढीला पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में फिर से उपद्रव और उत्पात आरम्भ हो गये। राज्य की शांति मिटने लगी और दुराचारियों ने प्रजा को लूटना आरम्भ कर दिया।

राज्य की यह दुरावस्था देखकर मराठों, रुहेलों और दूसरे लोगों के दल मेवाड़-राज्य में घूमने लगे। उनको रोकने के लिए राज्य की तरफ से कोई व्यवस्था न थी। इसलिये उन दलों ने निर्भीक होकर राणा की प्रजा को लूटना शुरू कर दिया। चँण्डावत लोग इधर बहुत दिनों से चुपचाप थे। अवसर पाकर वे सिंधिया से मिल गये और मेवाड़-राज्य में लूटमार करके भयानक अत्याचार करने लगे। राणा को राज्य की ये सभी बातें मालूम थीं। कुछ दिनों तक चुपचाप रह कर उसने चूँण्डावत लोगों के अत्याचार लगातार देखे और अन्त में विवश होकर उसने आदेश दिया कि चूँण्डावत लोगों को राज्य की तरफ से जो जागीरें दी गयी हैं, वे जब्त कर ली जाये।

राणा का यह आदेश मिलने पर राज्य की सेना ने कोरावाड को अपने कब्जे में कर लिया और सलुम्बर के दुर्ग पर आक्रमण करके उसके विध्वंस के लिए तोपें लगा दी। सिंधी लोग उन दिनों में वहीं रहते थे। राणा की सेना के आक्रमण करने पर वे लोग सालुम्बर को छोड़कर चले गये और देवगढ़ में जाकर आश्रय प्राप्त किया।

मेवाड़ की सेना के आक्रमण करने पर चूँडावत लोग घबरा उठे। उन्होंने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर अम्बाजी के पास दूत भेजा और दस लाख रुपये देने के वादे पर सहायता के लिए उससे प्रार्थना की। अम्बाजी बहुत लोभी आदमी था। उसने चूँडावतों को सहायता देना स्वीकार कर लिया। उसने शिवदास और सतीदास को मन्त्री के पदों से हटाकर चूँण्डावत लोगों के पक्ष का समर्थन किया। सलुम्बर सरदार को राणा के दरबार में फिर वही स्थान प्राप्त हुआ। श्रीजी मेहता को राज्य में मंत्री बनाया गया।

चूँण्डावत लोगों ने अम्बाजी की सहायता प्राप्त करते ही शक्तावत लोगों के विरुद्ध अत्याचार आरम्भ किया और मौका पाते ही आक्रमण करके उन लोगों ने शक्तावत लोगों को पराजित किया। इसके साथ-साथ होता और सायमारी नामक शक्तावतों की जागीरों से दस लाख रुपये वसूल करके चूँण्डावत लोगों ने अम्बाजी को दिये।

माधव जी सिंधिया की इन्हीं दिनों में मृत्यु हो गयी। उसका भतीजा दौलतराव उसके सिंहासन पर बैठा। दौलतराव ने सिंहासन पर बैठने के बाद सिंधिया की विधवा पत्नियों के साथ अत्याचार करना आरम्भ किया। उसने शैनवी सरदारों को मरवा डाला। सिंधिया के लड़के के नाबालिग होने के कारण अम्बा जी को लाभ उठाने का बहुत मौका था। लेकिन कुछ लोगों ने सिंधिया की विधवा रानियों का पक्ष लिया और उन लोगों ने अम्बाजी के

साथ उन रानियों की तरफ से युद्ध किया। उन लोगों में लखवादादा, खीची का राजा दुर्जनसाल और दतिया का राजा प्रमुख था। इन सभी लोगों ने सिंधिया की विधवा रानियों की सहायता की। लखवादादा ने मेवाड़ के राणा को इस आशय का एक गुप्त पत्र भेजकर अनुरोध किया कि आप किसी भी दशा में अम्बाजी को राज्य में अधिकारी न मानें और जो लोग उसकी तरफ से राज्य में प्रबन्ध करते हैं, उनको राज्य से निकाल दें।

इसके पहले जिन शैनवी[1] सरदारों को मार डाला गया था, वे सब लखवादादा के पक्ष में थे। मेवाड़-राज्य में उनकी बहुत सी जमीन थी। अम्बा जी ने गणेशपंत को लिखा कि मेवाड़ की जो जमीन शैनवी ब्राह्मणों के अधिकार में है, वह सब उनसे ले लो। अम्बा जी के इस आदेश को पाकर गणेशपंत ने राणा के मंत्री और सरदारों को बुलाकर परामर्श किया। मन्त्री और सरदार उसकी हाँ में हाँ मिलाते रहे। लेकिन वे वास्तव में गणेशपंत के समर्थक न थे।

राणा के मंत्री और सरदारों ने गणेशपंत को धोखे में रखा। इसी अवसर पर उन लोगों ने शैनवी ब्राह्मणों के पास गणेशपंत पर आक्रमण करने का संदेश भेजा। इस सन्देश को पाते ही एक सेना लेकर शैनवी लोग रवाना हुए। उनका सामना करने के लिए गणेशपंत अपनी सेना के साथ जावद की तरफ चला। साला नाम के स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। युद्ध में गणेशपंत की पराजय हुई। उसकी सेना के आदमी अपने प्राण बचाकर भागे। गणेशपंत के अधिकार में जो युद्ध की सामग्री थी, तोपों और बन्दूकों के साथ वह सब शैनवी लोगों को मिली।

इस लड़ाई में गणेशपंत की बहुत हानि हुई। वह युद्ध स्थल से चित्तौड़ की तरफ भागा। चूँडावत लोगों ने उसको रोक कर फिर से उसे युद्ध करने के लिए तैयार किया और सहायता देने का वादा किया। नाना गणेशपंत ने उन लोगों का विश्वास करके युद्ध की फिर से तैयारी की और अपनी सेना को एकत्रित करके उसने शैनवी लोगों के साथ फिर युद्ध किया। चूँण्डावत लोगों ने गणेशपंत की सहायता न की और वह दूसरी बार भी पराजित होकर हमीरगढ़ की तरफ चला गया। जिन चूँण्डावतों ने सहायता देने के लिए नाना गणेशपंत से वादा किया था, उन्होंने उसके शत्रुओं से मिल कर और उनके पन्द्रह हजार सैनिकों को लेकर हमीरगढ़ को घेर लिया। नाना गणेशपंत ने अपनी रक्षा के लिए बड़े साहस के साथ नौ बार उनसे युद्ध किया। परन्तु किसी में उसको विजय न मिली। हमीरगढ़ के राजा धीरजसिंह के दो लड़के इन युद्धों को मारे गये।

नाना गणेशपंत की पराजय के समाचार जब अम्बा जी को मिले तो उसने गुलाबराव कदम नाम के सेनापति के साथ अपने कुछ सैनिक सवारों को भेजा। उन दिनों में नाना गणेशपंत शत्रुओं के बीच में घिरा हुआ था। अम्बा जी की भेजी हुई सेना की सहायता से वह शत्रुओं के घेरे से निकल सका और अपने बचे हुए सैनिकों के साथ वह अजमेर की तरफ चला गया। उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद मूसामूसी नामक स्थान पर शत्रुओं ने उसे फिर घेर लिया। नाना गणेशपंत को उनके साथ फिर युद्ध करना पड़ा। चूँण्डावत लोगों ने इस लड़ाई में भयानक मारकाट की। गणेशपंत की सेना पीछे हटने लगी। इसी समय बड़े जोर की आवाज सुनायी पड़ी – "भागो ! भागो !" इस आवाज को सुनते ही दोनों तरफ के सैनिक आश्चर्यचकित हो उठे। इसी समय फिर सुनायी पड़ा– "मिल गयी ! मिल गयी !"

---

1. मराठा ब्राह्मण तीन भागों में विभाजित हैं–शैनवी, पूर्वा और माहरत। लखवादादा, वल्लभा, सांतिहा, जीवदादा, शिवानी नाना, लालजी पंडित और जसवन्त सिंह भाऊ मेवाड़ की उस भूमि को अधिकारा में रखते थे, जो राणा की तरफ से उनके पास गिरवी रखी गयी थी।

इस प्रकार की आवाजों को सुनकर चूँण्डावत लोग भयभीत हो उठे। उन्हें विश्वास हो गया कि हमारी सेना शत्रुओं से मिल गयी। इस प्रकार का विश्वास करते ही चूँण्डावत लोग युद्ध से भागने लगे। नाना गणेशपंत की सेना ने भागते हुए चूँण्डावतों का पीछा किया और उस भगदड़ में बहुत से चूँण्डावत लोग तलवारों से काट डाले गये। इसी समय सिंधिया सेना का एक अधिकारी चन्दन भी मारा गया। बहुत से सैनिक और अधिकारी घायल हुए। भागते हुए चूँण्डावत राजपूत शाहपुरा पहुँचे। देवगढ़ के राजपूतों ने उनको अपने यहाँ आश्रय दिया।

इस युद्ध में नाना गणेशपंत ने राजनीतिक चाल से विजय प्राप्त की और चूँण्डावत राजपूत धोखे में आकर मारे गये। विजयी होने के बाद भी गणेशपंत मेवाड़ पर अपना प्रभुत्व कायम न कर पाया। राजपूत सरदारों ने पंत को अयोग्य और निर्बल समझ लिया था। इसीलिये वे सभी उसके आधिपत्य से स्वतन्त्र होने के लिए चेष्टाएं करने लगे।

इसी बीच में एक बात और हुई। मेवाड़ में प्रधानता प्राप्त करने के लिये अम्बा जी और लखवादादा में झगड़ा पैदा हो गया। अम्बा जी ने मेवाड़ राज्य का सर्वनाश करने में कुछ उठा न रखा था। लखवादादा ने उसका विरोध करना आरम्भ किया। मेवाड़ के सरदार इस झगड़े और विरोध में नाना गणेशपंत के विरुद्ध उसके साथी बने। जिस समय नाना गणेशपंत की सहायक सेना हमीरगढ़ में मौजूद थी, लखवादादा ने अपनी सेना लेकर हमीरगढ़ को घेर लिया और उसके दुर्ग को गिराने के लिए तोपों की वर्षा आरम्भ कर दी। लगातार तोपों की मार से दुर्ग का एक हिस्सा गिर गया और दुर्ग में पहुँचने का रास्ता खुल गया। लखवादादा की सेना ने उसी रास्ते से उसमें प्रवेश करने का इरादा किया। इसी समय बालाराव इंगले, बापू सिन्दा और यशवंतराव सिन्दा की सेनायें नाना पन्त की सेना की सहायता करने के लिए हमीरगढ़ पहुँच गई। कोटा के जालिमसिंह ने भी उसकी सहायता करने के लिए अपना एक गोलंदाज भेजा था। अम्बा जी का लड़का उसकी सहायक सेना का सेनापति था। इन नई सेनाओं के आ जाने के कारण लखवादादा ने हमीरगढ़ से सेना हटा ली और चित्तौड़ की सीमा पर मुकाम किया। नाना गणेशपंत हमीरगढ़ को छोड़कर नई आने वाली सेनाओं से घोसुन्दा नामक स्थान पर जाकर मिला। दोनों विरोधी सेनाओं की तोपें बनास नदी के दोनों किनारों पर लग गयी और दोनों सेनाएं युद्ध प्रारम्भ होने का रास्ता देखने लगी।इसी मौके पर नाना गणेशपंत और बालाराव इंगले में सेना के वेतन के सम्बन्ध में एक झगड़ा पैदा हो गया। उस झगड़े का कोई निर्णय नहीं हुआ और गणेशपंत उस स्थान को छोड़कर सिंगनेर नामक स्थान की तरफ चला गया। उस झगड़े का कोई विशेष प्रभाव उन दोनों सेनाओं पर नहीं पड़ा। मराठों का संगठन इतना दुर्बल नहीं था कि वह किसी भी आपसी झगड़े के कारण छिन्न-भिन्न हो सके और उसका लाभ वे लोग शत्रु को उठाने दें। मराठों का आपसी झगड़ा आपस तक ही सीमित रहता था और शत्रुओं से मुकाबले में वे फिर एक हो जाते थे।

नाना गणेशपंत के उस स्थान से हट जाने के बाद युद्ध में रुकावट पड़ गयी। बालाराव इंगले युद्ध नहीं करना चाहता था। इसके सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणायें पायी जाती हैं। एक तो यह कि गोगुलछप्रा की लड़ाई में लखवादादा ने बालाराव इंगले की सहायता की थी और उसके प्राणों की रक्षा की थी। लखवादादा का यह उपकार बालाराव के सिर पर था। इसलिए वह बालाराव से युद्ध नहीं करना चाहता था। दूसरी धारणा यह है कि बालाराव इंगले के पास धन का अभाव था और उसे अपनी सेना का वेतन देना था। इसी समस्या को लेकर बालाराव और गणेशपंत में विरोध पैदा हुआ था। लखवादादा ने

बालाराव को धन देकर उसकी सहायता करने का वादा किया था इसलिए वालाराव युद्ध से इंकार कर रहा था।

अम्बाजी ने नाना गणेशपंत की सहायता करने के लिये अपनी एक सेना देकर सदरलैंड नामक एक अंग्रेज को भेजा। लेकिन नानापंत को इस सेना की सहायता न मिल सकी। उस दशा में उसने जार्ज थॉमस नामक एक अंग्रेज सेनापति से सहायता माँगी और उसके बाद नाना गणेशपंत युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनों ओर की सेनाऐं बनास नदी के दक्षिण की तरफ युद्ध के लिए खड़ी होकर समय की प्रतीक्षा करने लगी। इसको उस अवस्था में बरसात के छः सप्ताह बीत गये। राणा और उसके सरदार अभी तक लखवादादा के पक्ष में थे। लेकिन अब वे दोनों के पक्ष की वातें करने लगे। इसलिए कि दोनों दलों की तरफ से उनको इन दिनों में सम्मान मिल रहा था।

बनास नदी के किनारे पर दोनों सेनाऐं युद्ध के लिये तैयार थीं और दोनों की शक्तियाँ इस समय लगभग बराबर थीं। नाना गणेशपंत इस समय कोई बाहरी सेना की सहायता प्राप्त न कर सके इसलिए खींची का राजा दुर्जनसाल मेवाड़ के सरदारों और पाँच सौ सवारों को लिए नानापंत के शिविर के इधर-उधर घूमने लगा। परन्तु उसको अपने उद्देश्य में सफलता न मिली और जार्ज थामस शाहपुरा से एक सेना के साथ गणेशपंत की छावनी में पहुँच गया और कुछ समय के वाद लखवादादा को घेरने के उद्देश्य से वह अपनी छावनी से निकला। इस युद्ध के शुरू होने के पहले ही वहाँ पर एक भयानक आँधी आयी और बहुत तेजी के साथ वृष्टि हुई। इस भीषण आँधी और वृष्टि के कारण थामस की सेना अस्त व्यस्त हो गयी, उसके रहने का स्थान शाहपुरा कई स्थानों पर नष्ट हो गया और वहाँ के दुर्ग का फाटक टूटकर चकनाचूर हो गया।[1]

शत्रु-सेना के तितर-बितर हो जाने पर लखवादादा ने सवाड़ के सरदारों की सहायता से शत्रु सेना का पीछा किया और युद्ध की बहुत-सी सामग्री के साथ उसकी पन्द्रह तोपों पर अधिकार कर लिया।आज के पहले शाहपुरा के राजा ने सेना और रसद से गणेशपंत की सहायता की थी। परन्तु इस अवसर पर उसने उसकी किसी प्रकार सहायता न की। इस दशा में नाना गणेशपंत सिंगनोर की तरफ भागा। इस भागने की अवस्था में उसकी सेना की बड़ी हानि हुई। उसके वहुत से सैनिक मारे गये। मेवाड़ के सरदारों ने नाना गणेशपंत को भयानक क्षति पहुँचायी। इसलिए नाना गणेशपंत मेवाड़ के सरदारों से बहुत अप्रसन्न हुआ और उनसे बदला लेने का निश्चय किया।

बरसात बीत चुकी थी। रास्ते साफ हो चुके थे। गणेशपंत लखवादादा से युद्ध करने के लिए तैयारी करने लगा। इन दिनों में उसके क्रोध का ठिकाना न था। उसने चारों तरफ लूट-मार और मनुष्यों का वध आरम्भ किया। अरावली पहाड़ की तलहटी में चूँण्डावत लोगों की जो जागीरें थीं उनको घेरकर गणेशपंत ने भयानक अत्याचार आरम्भ किया। कितने ही गांवों में आग लगा दी गई, जिससे सैकड़ों और सहस्त्रों घर जल कर राख हो गये। उनमें रहने वाले मनुष्य कीड़ों और पंतगों की तरह मरे। भीषण रूप से लोग लूटे गये। जो लोग अपने घर-द्वार छोड़कर भागे, वे रास्ते में घेरकर मारे गये। बड़ी निर्दयता के साथ कर लगाया गया और लोगों से रुपये वसूल किये गये। जार्ज थामस ने

1. सम्वत् 1956 सन् 1800 ईसवी में यह घटना घटी थी। लखवादादा ने जिहाजपुर का अपना इलाका शाहपुरा के राजा को दे दिया था इसके संबंध में पुराने उल्लेखों से पता चलता है कि राणा ने छिपे तौर पर शाहपुरा के राजा से दो लाख रुपये लेकर अपनी मंजूरी दी थी। इसके लिए लखवादादा और मेवाड़ के सरदार लोग वहुत नाराज हुए।

देवगढ़ और अमेर पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को कर देने के लिये मजबूर किया। उसने कारवीतल और लुसानी के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। लुसानी के रहने वालों ने उसके अत्याचारों का मुकावला किया। इसलिए सेनापति थामस ने उस नगर का भयानक रूप से विनाश किया। इस प्रकार के अत्याचार नाना गणेशपंत अम्वा जी की सहायता के बल पर कर रहा था।

सिंधिया को जव अम्बाजी के द्वारा होने वाले इन अत्याचारों के समाचार मिले तो उसने मेवाड़ राज्य से उसको अलग करके उसके स्थान पर लखवादादा को नियुक्त किया।[1]

अम्बाजी के पदच्युत होने पर नाना गणेशपंत की सभी आशायें मिट्टी में मिल गयीं। उसने जितने स्थानों पर अधिकार कर लिया था, उन सवको उसने लौटा दिया। सिंधिया के इस कार्य का लाभ मेवाड़ को न हुआ वल्कि उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा। इसलिए कि उस समय से सिंधिया मेवाड़ को अपना एक अधीन राज्य समझने लगा। लखवादादा सिंधिया के आदेश से मेवाड़ का अधिकारी मुकर्रर हुआ। वह एक वड़ी सेना के साथ मेवाड़ की तरफ चला। अग्रजी मेहता फिर से मेवाड़ के मंत्री वनाया गया और चूँडावत लोगों ने अपने पहले के पदों को पाकर राणा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। यह पहले लिखा जा चुका है कि लखवादादा ने अपना इलाका जिहाजपुर शाहपुरा के राजा को दे दिया था। लखवादादा ने उससे जिहाजपुर वापस ले लिया। उस इलाके में छत्तीस ग्राम थे। इन ग्रामों को गिरवी रखकर लखवादादा ने छः लाख रुपये एकत्रित करने की चेष्टा की। ये रकम जालिमसिंह ने अदा की और जिहाजपुर इलाके के सभी ग्रामों पर उसने अधिकार कर लिया।

लखवादादा की रुपये की भूख अव वढ़ गयी थी। छः लाख रुपये पाने के वाद भी उसकी भूख मिटी नहीं। उसने चौवीस लाख रुपये की एक दूसरी माँग की। उसकी यह माँग राणा से थी और उसके न दे सकने पर उसने राज्य से इस लम्वी रकम को वसूल करने का निश्चय किया। इस समय वह पहले का लखवादादा न था। शक्तियों के वढ़ जाने पर मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता। लखवादादा के अधिकार में इस समय मराठों की एक वड़ी सेना थी। मेवाड़ राज्य से चौवीस लाख रुपये वसूल करने के लिए उसने अपनी सेना को आज्ञा दी। मराठे सैनिक राज्य में चारों तरफ दौड़ पड़े और वहाँ पर जैसे जो रकम मिली, उसे वसूल करके चौवीस लाख रुपये जमा किये गये। इन दिनों में लखवादादा की शक्तियाँ महान हो रही थीं। उसके पास अव रुपये का कोई अभाव न था। उसने यशवंतराव भाऊ नामक मराठा को अपनी तरफ से मेवाड़ राज्य का अधिकारी वनाया और उसको मेवाड़ में छोड़कर जयपुर की तरफ चला गया। भाऊ ने मेवाड़ राज्य का प्रवंध अपने अनुसार शुरू किया।

अग्रजी मेहता राणा का मन्त्री था और मौजीराम उपमंत्री के स्थान पर काम रहा था। राज्य की दुरवस्था देखकर दोनों ही वहुत चिंतित हो रहे थे। इन दिनों में यूरोप के कई दल भारत में आ गये थे। उनकी शासन प्रणाली का प्रभाव इस देश के राजाओं पर पड़ रहा था। मन्त्री अग्रजी मेहता के मनोभावों पर भी उनका असर पड़ा। उसने भी मेवाड़ राज्य में उनका अनुकरण करने की चेष्टा की और उसने यह भी सोच डाला कि उनकी सहायता लेकर

1. वालोवा तातिया और वकसी नारायण-राव दोनों ही सिंधिया के मंत्री थे और दोनों ही शैनवी व्राह्मण मराठा थे। लखवादादा के साथ उनका वंशगत समवन्ध था। इसका लाभ लखवादादा को मिला और इसलिए वह सिंधिया के द्वारा अम्वाजी के स्थान पर नियुक्त किया गया।

राज्य का प्रबन्ध शान्तिपूर्वक चलाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए अधिक धन की जरूरत थी और आर्थिक मामलों में देश की अवस्था बड़ी भयानक हो गयी थी। इस दशा में उसने राज्य के सरदारों को बुलाकर इस विषय में गंभीरता के साथ परामर्श किया।

राज्य के सरदारों ने एकत्रित होकर अग्रजी की बातें सुनी। उन लोगों ने यूरोप से आये हुए लोगों के प्रभुत्व को अपनाने का समर्थन नहीं किया और इसी उद्देश्य से उन लोगों ने मन्त्री अग्रजी को कैद कर लिया। उसके स्थान पर सतीदास को फिर मन्त्री बनाया गया। उसका भाई शिवदास चन्दावत लोगों के भय से कोटा चला गया था। उसे वहाँ से बुलवाया गया।

सन् 1802 ईसवी में मराठा शासन के सम्बन्ध में जो एक लाख पचास हजार आदमी एकत्रित हुए थे, उन्होंने होलकर से उसका राज्याधिकार छीन लिया और उसकी राजधानी में हाथियों और घोड़ों के अतिरिक्त जो भी युद्ध की सामग्री और सम्पत्ति मौजूद थी, उस पर अधिकार कर लिया। होलकर के मेवाड़ की तरफ भागने पर सिंधिया की सेना ने उसका पीछा किया। सदाशिवराव और बालाराव सिंधिया की सेना के प्रधान थे। मेवाड़ की तरफ भागते हुए होलकर ने रतलाम का दुर्ग लूट लिया और शक्तावत लोगों के स्थान भींडर दुर्ग को घेर कर उसने रुपये की सहायता माँगी। शक्तावत लोग होलकर की इस माँग से घबरा उठे। सिंधिया की सेना अब भी होलकर का पीछा कर रही थी। इसलिए होलकर भींडर को छोड़ कर नाथद्वारा चला गया।[1] वहाँ के पुरोहित और पुजारी से उसने तीन लाख रुपये वूसल किये। यह रकम उसने नाथद्वारा के लोगों से बड़ी निर्दयता के साथ वसूल की।

नाथद्वारा का प्रधान पुजारी दामोदर जी था। होलकर के इस आक्रमण से भयभीत होकर उसने वहाँ की देव मूर्ति को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाने का इरादा किया और इस विषय में उसनें कोटारियों के सरदार से परामर्श किया। निश्चय हुआ कि इसके लिए उदयपुर से अच्छा दूसरा कोई स्थान नहीं हो सकता। इसलिए पुजारी दामोदर जी अपनी देवमूर्ति को वहाँ ले जाने के लिए तैयार हुआ। उसकी रक्षा करने के लिए बीस सवारों के साथ कोटारियों का सरदार साथ चला और पुजारी को वहाँ पहुँचा कर अपने सवारों के साथ जब वह लौट रहा था तो रास्ते में होलकर की सेना के सिपाहियों ने कठोर स्वर में उससे कहा, "आप लोग अपने घोड़े हम लोगों को दे दें। अगर ऐसा न करेंगे तो उसका नतीजा बुरा होगा।"

इस बात को सुनकर कोटारियों का सरदार क्रोध के साथ बोला, "हम लोग राजपूत हैं। इस प्रकार प्राण रहते हुए हम लोग अपने घोड़े नहीं दे सकते।"

उस सरदार ने होलकर के सैनिकों की कुछ परवाह न की। फलस्वरूप मराठा सैनिकों ने आक्रमण किया। सरदार ने अपने थोड़े-से आदमियों के द्वारा कुछ देर तक युद्ध किया और अन्त में वह मारा गया। उसके मारे जाने पर नाथद्वारा का कोई रक्षक न रह गया। होलकर ने वहाँ के पुजारी से और वहाँ के निवासियों से तीन लाख रुपये वसूल किये।

पुजारी दामोदर उदयपुर पहुँचा। परन्तु वहाँ पर उसकी तबीयत न लगी। राणा की हालत को देखकर उसने वहाँ पर रहना अपने लिए सुरक्षित न समझा। इसलिए छः महीने के बाद वह गसियर नामक एक पहाड़ी स्थान पर चला गया और वहाँ की पहाड़ी दीवारों के बीच एक मंदिर बनाकर अपनी देव मूर्ति के साथ वह रहने लगा।

---

1. उदयपुर से पच्चीस मील उत्तर की तरफ नाथद्वारा बसा हुआ है। इस स्थान का वर्णन आगे विस्तार से साथ किया जाएगा।

सिंधिया की सेना अब भी होलकर का पीछा कर रही थी। नाथद्वारा की सम्पत्ति लूटकर और बनैडा तथा शाहपुरा से बहुत-सा धन लेकर होलकर अजमेर में पहुँचा और वहाँ से वह जयपुर की तरफ चला गया। मेवाड़ में पहुँच कर सिंधिया की सेना ने जब होलकर को वहाँ न पाया तो उसने उसका पीछा करना छोड़ दिया और सिंधिया के सरदारों ने राणा से तीन लाख रुपये की माँग की। इस समय राणा की अवस्था बहुत खराब थी। इस रकम को अदा करने के लिए उसमें सामर्थ्य न थी। परन्तु बिना रुपये दिये हुए छुटकारा न मिल सकता था। इसलिए राणा भीमसिंह ने अपनी व्यक्तिगत और रानियों की बहुमूल्य सामग्री तथा उनके आभूषण तीन लाख रुपये की अदायगी में दे दिये। इतना सब पा जाने के बाद भी सिंधिया के सरदारों को सन्तोष न हुआ। इसलिए यशवंत राय भाऊ के परामर्श से उन सरदारों ने राणा से और भी रुपये अदा करने की माँग की। ये रकम राणा के न दे सकने पर राज्य की प्रजा से कठोर अत्याचारों के साथ वसूल की गयी। जो लोग रुपये न दे सके, उनको कैद किया गया और उनके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।

सम्वत् 1856 सन् 1803 ईसवी में सिंधिया की सेना के द्वारा मेवाड़ राज्य में अकथनीय अत्याचार हुए। उन्हीं दिनों में सिंधिया के द्वारा लखवादादा का अपमान किया गया, जिससे सलुम्बर-दुर्ग में पहुँच कर उसकी मृत्यु हो गयी। लखवादादा के मर जाने के बाद उसके स्थान पर अम्बा जी का भाई बालाराव नियुक्त किया गया। शक्तावत लोगों ने बालाराव के साथ मेल कर लिया। सतीदास भी उससे मिल गया। इस मेल के परिणाम स्वरूप, चूँण्डावत लोगों पर अत्याचार आरम्भ हुए। उन्हें राज्य के कार्यों से अलग किया गया। जालिमसिंह पहले से ही चूँण्डावतों को अपना शत्रु समझता था। इसलिए जब उन पर अत्याचार हुए तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। जालिमसिंह भी इन विद्रोही लोगों से मिल गया और राणा का मन्त्री देवीचन्द कैद कर लिया गया। क्योंकि चूँन्डावतों के द्वारा वह राणा का मन्त्री बना था।

मेवाड़ राज्य में चूँन्डावतों की जो जागीरें थीं, बालाराव इंगले ने उनको भयानक रूप से लूटा और उनमें रहने वालों पर भीषण अत्याचार किये। प्रजा के घरों पर आग लगा दी गयी। इसके बाद बालाराव अपनी सेना के साथ राणा के महल की तरफ चला और मन्त्री के सहकारी मौजीराम की उसने माँग की। राणा ने मौजीराम को देने से इन्कार कर दिया इस पर बालाराव ने अपने सैनिकों को राणा के महलों में प्रवेश करने का आदेश दिया।

उदयपुर के लोग बालाराव के इस अत्याचार को अब सहन न कर सके। इसी समय मौजीराम का आदेश पाकर वे सब अपने हाथों में तलवारें लेकर बालाराव के सैनिकों पर टूट पड़े। बहुत-से आदमी मारे गये। नाना गणेश पंत, जमाल कर और ऊदाजी कुँवर कैद कर लिए गये। बालाराव इंगले ने छिपकर भागने की चेष्टा की। लेकिन वह भी पकड़ कर कैद कर लिया गया। मराठा सरदारों के कैद हो जाने पर चूँन्डावत लोग अपने स्थानों से निकले और वे पर्वत के ऊपर स्थान पर पहुँचे, जहाँ सिंधिया की सेना ने अपना शिविर बनाया था। चूँण्डावतों ने वहाँ की समस्त मराठा सम्पत्ति और सामग्री पर अधिकार कर लिया। हियर्स नामक एक अंग्रेज सेनापति मराठों की सहायता करने के लिए आया था। उसने उदयपुर में सिंधिया की सेना की यह दशा देखकर अपने वापस चले जाने का प्रबन्ध किया। वह तुरन्त भयभीत होकर वहाँ से तेजी के साथ लौट गया।

बालाराव इंगले की गिरफ्तारी का समाचार जालिमसिंह को मिला। उसने बालाराव को कैद से छुड़ाने का निश्चय किया। भीण्डर और लावा के सरदारों के साथ अपनी सेना को लेकर चैजाघाट नामक पहाड़ी रास्ते की तरफ वह आगे बढ़ा। यदि राणा ने कैद करके इन विद्रोही शत्रुओं को मरवा डाला होता तो उसका यह कार्य कभी किसी प्रकार अनुचित

और अन्यायपूर्ण न होता। यह बात जरूर है कि उसके ऐसा करने से सम्पूर्ण मराठे उसके शत्रु बन जाते। परन्तु राणा की उससे कोई विशेष हानि न होती। जालिमसिंह की सेना के आने का समाचार पाकर राणा की तरफ से सिंधी, अरबी और गोसई इत्यादि अनेक जातियों के आदमियों को लेकर और छः हजार सैनिकों की सेना लेकर जयसिंह अपनी शक्तिशाली खींची सेना के साथ युद्ध करने के लिये रवाना हुआ। उसके साथ राणा और उसकी सेना भी थी। मेवाड़ की ये सेनायें चैजाघाट के रास्ते पर पहुँच गयी। वहां पर दोनों में पाँच दिनों तक भयानक युद्ध हुआ। मराठों के लगातार गोले बरसाने पर भी राणा की सेना युद्ध में डटी रही। छठे दिन राणा की पराजय हुई और उसके बाद ही उसने बालाराव इंगले को कैद से छोड़ दिया। इस युद्ध के बदले में सम्पूर्ण जिहाजपुर का इलाका और उसका दुर्ग जालिमसिंह ने ले लिया। उसके बाद भी मराठों ने युद्ध का खर्च राणा से माँगा। इसके पहले ही मराठों ने मेवाड़ को लूट कर और समय-समय पर अगणित सम्पत्ति लेकर राणा को ऐसी दुरावस्था में पहुंचा दिया था कि इस समय जो रकम उससे माँगी गयी, उसकी अदायगी का कोई उपाय राणा के पास न था। इस दशा में वह रकम मेवाड़ के निवासियों से बड़ी निर्दयता के साथ वसूल की गयी।

संवत 1860 और 1804 ईसवी में होलकर ने निराश होकर दक्षिण छोड़ दिया। इंदौर के युद्ध में पराजित होकर भागने पर होलकर ने भींदर के सरदार से रुपये माँगे थे, जिसमें भींडर का सरदार अप्रसन्न हुआ था और उसने उसको एक पैसा न दिया था। अतः इस समय होलकर ने भींडर पर आक्रमण किया और उसके सरदार से उसने दो लाख रुपये वसूल किये। इसके बाद वह उदयपुर की तरफ रवाना हुआ। यह समाचार पाते ही राणा घबरा उठा और संधि के लिए उसने अजितसिंह नाम के एक राजपूत को भेजा। अजितसिंह ने होलकर की सेना में पहुँचकर बातचीत की और संधि के नाम पर लालजी मराठा ने चालीस लाख रुपये माँगे। राणा ने इस माँग को सुना। रुपये के नाम पर देने के लिए कुछ न था। लेकिन इन्कार वह किस बल पर करता। अपनी विवश अवस्था में बिना कुछ सोचे समझे उसने उस माँग को मंजूर कर लिया। इन रुपयों का प्रबंध कहाँ से किया जाएगा, इस बात का निर्णय राणा स्वयं कुछ न कर सका। उसका खजाना खाली था। मराठों को रुपया देते-देते राज्य की प्रजा दीन और दरिद्र हो चुकी थी। इस दशा में इन चालीस लाख रुपयों का प्रबन्ध कहाँ से होगा, राणा की समझ में यह न आया। परन्तु इस रकम को बिना अदा किये किसी प्रकार छुटकारा न मिल सकता था, इसलिए उसने अपने मंत्रियों, सरदारों और राज्य के अधिकारियों के साथ परामर्श किया। किसी भी दशा में राज्य के निवासियों से रुपये लेने का कार्य आरम्भ किया गया, राणा के पास जो कुछ रह गया था, उसे लेकर, रानियों के आभूषणों को बेचकर और प्रजा से मिले हुए रुपयों को मिलाकर बारह लाख रुपये जमा किये गये। परन्तु अभी बहुत बड़ी रकम बाकी थी। उसकी कोई व्यवस्था न हो सकी। इसलिए बारह लाख रुपये होलकर के पास पहुँचाये गये। बाकी रुपयों की अदायगी के लिए राज परिवार और नगर के प्रमुख कितने ही व्यक्ति होलकर के अधिकार में गिरवी रखे गए और निश्चय हुआ कि जब तक बाकी रुपया अदा न हो जाएगा, गिरवी में रखे गये आदमी होलकर के कैम्प में बराबर मौजूद रहेंगे।

इसके बाद होलकर की मराठा सेना ने लावा और बिदनौर के दुर्गों पर आक्रमण करके उनको अपने अधिकार में ले लिया और जब वहाँ के सरदारों ने होलकर की माँगी हुई रकम अदा की तो उनके दुर्ग छोड़ दिये गये।

होलकर की रुपये की भूख बराबर बढ़ती जा रही थी। उसकी सेना ने देवगढ़ के दुर्ग पर आक्रमण किया और वहाँ के सरदार से होलकर ने साढ़े चार लाख रुपये वसूल

किये। इस तरह आठ महीने तक लगातार होलकर ने मेवाड़ राज्य के भिन्न-भिन्न इलाकों और उनके दुर्गों पर हमले करके अगणित रुपये वसूल किये। किसी एक स्थान पर आक्रमण करके और रुपये वसूल करके वह तुरन्त किसी दूसरे राज्य पर आक्रमण करने का कार्यक्रम बना लेता था। उन दिनों में मेवाड़ के इन राज्यों की दशा बहुत दयनीय हो रही थी।

राणा पर होलकर के जो रुपये बाकी रह गये थे, उनके बदले में राणा के कितने ही प्रमुख व्यक्तियों के साथ अजितसिंह भी गिरवी में रखा गया था और उस रुपये को मेवाड़ में एकत्रित करने के लिए बलराम सेठ उदयपुर में रह गया था। राज्य से रुपये वसूल करने की कोई सूरत बाकी न रह गयी थी, फिर भी लोगों से रुपये लिए जाने का कार्य राज्य के अधिकारियों के द्वारा होता रहा।

होलकर अपनी सेना के साथ मेवाड़ के राज्यों को लूटकर शाहपुरा में पहुँचा। इसी समय सिंधिया की सेना मेवाड़ पहुँच गयी। इन दिनों में अंग्रेजों की शक्तियाँ भारत में शक्तिशाली हो रही थीं। सिंधिया और होलकर–दोनों को अंग्रेजों से भय उत्पन्न हुआ। इसी उद्देश्य से दोनों ने एक दूसरे से मुलाकात की और इस बात पर वे परामर्श करने लगे कि अंग्रेजों की इस बढ़ती हुई शक्ति का किस प्रकार सामना किया जाये।

इन्हीं दिनों में अंग्रेजों की सेना से मराठो को पराजित होना पड़ा। इसलिए सिंधिया और होलकर को अंग्रेजों से अधिक भय उत्पन्न हो गया। दोनों ने आपस में परामर्श करके अंग्रेजों से लड़ने की तैयारी की। सन् 1805 ईसवी के वर्षाकालीन दिनों में होलकर और सिंधिया के सैनिक विदनौर के मैदानों में एकत्रित हुए और अंग्रेजी सेना को पराजित करने के लिये अनेक प्रकार के मंसूबे बाँधने लगे, इसमें कुछ दिन बीत गये।

राजस्थान के और विशेषकर मेवाड़ के राज्यों को लूटने के लिए होलकर और सिंधिया ने अपनी सेनाओं को अत्यन्त विशाल बना रखा था। लूट की रकमों से सेनाओं को वेतन अदा किये जाते थे। इधर कुछ दिनों से लूट का काम बन्द हो गया और वे लुटेरे मराठे अंग्रेजों से चिन्तित हो उठे थे। एक तरफ वे लोग अंग्रेजों से लड़ने की तैयारी कर रहे थे और दूसरी तरफ लूट की जो सम्पत्ति होलकर और सिंधिया के पास थी, वह खर्च हो चुकी थी। इसलिए सैनिकों के वेतन बाकी पड़े थे। उनकी अदायगी न हो सकने की अवस्था में मराठा सैनिक अपने राजाओं से विद्रोह करने के लिए तैयार थे। सिंधिया और होलकर ने अपने सैनिकों से केवल लूटमार का काम लिया था। इसलिए सैनिकों के आचरण में अनुशासन का अभाव हो गया। वेतन न पाने की दशा में मराठा सैनिक निरंकुश हो गये। सिंधिया और होलकर को फिर अपनी लूटमार की नीति अपनानी पड़ी। उनके झुण्ड के झुण्ड आसपास के देहातों में जाते और भयानक अत्याचार करके वे लोग ग्रामीण लोगों से रुपये वसूल करते।

मराठों के ये अत्याचार अत्यन्त भयानक हो उठे। जिन लोगों के पास धन होता, उनके मकानों में मराठा सैनिक आग लगा देते और उनसे भागने वालों को अपनी तलवारों से मार डालते। उनके इन अत्याचारों से मेवाड़ राज्य के गाँव और नगर श्मशान बन गये। मेवाड़ राज्य की यह दुरवस्था दस वर्ष तक बराबर चलती रही। भारत में अब तक अनेक अवसरों पर भीषण अत्याचार हुए थे परन्तु मराठों के इन अत्याचारों के सामने वे सब इस देश के लोगों को भूल गये थे।[1] मराठों के इन अत्याचारों को रोकने के लिए उन दिनों में किसी राजपूत में शक्ति न रह गई थी।

---

1. भारत के राजाओं में जिन लोगों ने अंग्रेजों की सहायता की थी उनमें गोहुद, ग्वालियर, राधोगढ़ और बहादुरगढ़ के राजा प्रमुख थे। भूपाल के नवाब ने भी अंग्रेजों की सहायता की थी।

अंग्रेजों के साथ युद्ध करने के लिये मराठा लोग अपनी सभी प्रकार की तैयारियों में लगे थे। उनकी इस होने वाले युद्ध से सभी प्रकार की आशंकायें थीं। इसलिये मराठों ने अपनी संपत्ति, सामग्री और अपने परिवार के लोगों को मेवाड़ के दुर्गों में छिपाना शुरू किया। चूंन्डावतों का प्रधान सरदार सिंह सिंधिया की सभा में राणा का प्रतिनिधि बनाया गया। अम्बाजी सिंधिया का फिर से मन्त्री बना।[1] आज से पहले मेवाड़ के राणा ने अम्बाजी के विरुद्ध लखवादादा की सहायता की थी। अम्बाजी इस बात को भूला न था। सिंधिया का मन्त्री पद पाने के बाद उसके हृदय में राणा के विरुद्ध द्वेष की आग प्रज्ज्वलित हुई। उसने राणा से बदला लेने का निश्चय किया और मेवाड़ राज्य को कई भागों में विभाजित करके उन पर उसने मराठों का अधिकार कायम करा देने की चेष्टा की।

शक्तावत सरदार संग्रामसिंह ने जब अम्बाजी के इस कार्यक्रम को सुना तो उसने रुकावट डालने का निश्चय किया। इन दिनों में देश की राजनीतिक स्थिति को देखकर मेवाड़ के प्रति होलकर के हृदय में सहानुभूति पैदा हो गयी थी। संग्रामसिंह ने अपने उस कार्य में होलकर से सहायता लेने का इरादा किया।

सिंधिया की स्त्री बायजाबाई बड़ी समझदार और दूरदर्शी थीं। उसका विवाह राजपूतों के शत्रु सिंधिया के साथ हुआ था। परन्तु वह राजपूतों के गौरव के साथ-साथ समय की गति को पहचानती थी। प्रसिद्ध शूरजीराव की वह लड़की थी। मेवाड़ के सम्बन्ध में अम्बाजी का इरादा और कार्यक्रम बायजाबाई को मालूम हुआ। उसने तुरन्त अम्बाजी का विरोध करने की सोची। वह मेवाड़ राज्य के सम्बन्ध में इस प्रकार की कूटनीति नहीं देखना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि प्रसिद्ध मेवाड़ राज्य का इस प्रकार सर्वनाश किया जाये। इसके लिए उसने मेवाड़ की पारस्परिक फूट को दूर करने की कोशिश की। जो चूँन्डावत और शक्तावत सरदार बहुत पहले से एक, दूसरे के विरोधी चल रहे थे, वे एक दूसरे से मिल गये और दोनों ही वंश के राजपूत सरदारों ने अम्बाजी की योजना को असफल बनाने की प्रतिज्ञा की।

चूँन्डावतों का प्रधान सरदारसिंह पहले से ही सिंधिया के राज-दरबार में था। अम्बाजी का उद्देश्य जानकर उसने उनसे घृणा की और सिंधिया का दरबार छोड़कर वह मेवाड़ के संगठन में आकर मिल गया और अम्बाजी को विफल बनाने के लिए जो तैयारी हो रही थी उसमें उसने भाग लेना आरम्भ कर दिया।

चूँन्डावतों और शक्तावतों का मेल आज मेवाड़ के लिए एक बड़े भाग्य की बात थी। इन दोनों वंशों के राजपूत सरदारों की पारस्परिक शत्रुता के कारण प्रसिद्ध मेवाड़ राज्य का पतन हुआ था। राजस्थान में जो मेवाड़ राज्य किसी समय उन्नति के शिखर पर था, वही मेवाड़ आज विशाल राजस्थान में सब से अधिक पतित और गिरी हुई अवस्था में था। इसके बहुत से कारणों में चूँन्डावतों और शक्तावतों की पारस्परिक शत्रुता भी एक प्रधान कारण थी। राज्य की अंतिम दुरवस्था के दिनों में वे दोनों वंश एक हो गये और उनके सरदार लोग पंचौली किशनदास के साथ मिल गये। सरदारों ने होलकर से पूछा– "क्या आपने मेवाड़ के टुकड़े-टुकड़े करके बेचने का अधिकार अम्बाजी को दिया है ?"

इस प्रश्न को सुनकर सरदारों को उत्तर देते हुए होलकर ने गम्भीरता के साथ कहा : "नहीं मैं ऐसा कभी न होने दूंगा। मैं आप सबके सामने शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेवाड़ की

1. अम्बाजी, बापू चितनवीस, माधव हजूरिया और अन्ना जी भास्कर सिंधिया के इन दिनों मंत्री थे।

यह दुरावस्था मैं कभी देख न सकूँगा। मैं आप सबको सलाह दूँगा कि इस संकट के समय एक होकर राज्य की रक्षा का उपाय करें।"

होलकर के मुख से इस प्रकार की बात को सुनकर मेवाड़ के सरदारों को बहुत संतोष मिला। होलकर ने इतना ही नहीं कहा, बल्कि मेवाड़ के इन सरदारों को लेकर वह सिंधिया के पास गया और राणा की प्रशंसा करते हुये उसने सिंधिया से कहा–"राणा ने राजस्थान के एक श्रेष्ठ वंश में जन्म लिया है। यहाँ के सभी राजपूत राणा को सम्मान देते हैं। इस दशा में राणा के साथ शत्रुता रखना हम लोगों का कर्त्तव्य नहीं है। मेवाड़ राज्य की आज जो अधोगति है, क्या उसमें हम लोगों का कुछ कर्त्तव्य नहीं है? उस राज्य की भूमि का भोग बहुत समय से हमारे पूर्वज करते चले आ रहे हैं। मुनासिब तो यही था कि इस संकट के समय हम सब लोग उस राज्य की सम्पूर्ण बंधक भूमि को लौटा देते। इस कर्त्तव्य पालन के समय क्या उचित है कि हम सबके देखते-देखते उस राज्य को बहुत से टुकड़ों में बाँट दिया जाये? यदि ऐसा है तो हम लोगों को लज्जा मालूम होनी चाहिये। ऐसे अवसर पर मैं साफ यह कह देना चाहता हूँ कि आपकी जो तबीयत हो, करें। परन्तु मैं तो शपथ खा चुका हूँ कि राणा के पक्ष को छोड़कर मैं कभी दूसरे पक्ष में न जाऊँगा। इस विषय में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मेवाड़ के इन संकट के दिनों में मैंने नीम्बाहेड़ा नामक अधिकार किया हुआ इलाका राणा को दे दिया है। ऐसा करके मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।"

होलकर अपनी इन बातों को कहकर चुप हो गया। सिंधिया चुपचाप सुनता रहा। उसने कुछ कहा नहीं। सिंधिया होलकर की कही हुई बातों को अभी सोच रहा था, उसी समय होलकर ने फिर कहा, "आप इस समय की परिस्थितियों पर ध्यान दें। यदि आज राणा हम लोगों का साथ छोड़कर अलग हो जाये तो हम लोगों के सामने कितना बड़ा संकट पैदा हो सकता है। अंग्रेजों के साथ जो युद्ध होने को है, उसके किसी प्रकार दिन कट रहे हैं। यदि लड़ाई शुरू होती है तो हम लोग अपनी सम्पत्ति और परिवार के लोगों को कहाँ रखेंगे? इस संकट के समय राणा के दुर्ग ही हमारे लिये सुरक्षित हो सकते हैं। राणा के साथ शत्रुता पैदा करके हम किस प्रकार उन दुर्गों का लाभ उठा सकते हैं इस समय हमें यह न भूलना चाहिए कि राणा की शत्रुता हमारी विपदाओं को पहाड़ बना देगी।"

होलकर की इस बातों को सुनकर सिंधिया के मन की आशंकायें दूर हो गयीं और वर्तमान परिस्थितियों का अनुमान लगाकर वह एक बार प्रसन्न हो उठा। होलकर के शब्दों ने सिंधिया को प्रभावित किया और सिंधिया ने मेवाड़ के दूतों को बुलाकर अपने यहाँ सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

सिंधिया और होलकर के कैम्पों में दस कोस का फासला था। इन्हीं दिनों में वहाँ पर कई दिनों तक भीषण वर्षा हुई। इसलिए आने-जाने के रास्ते कुछ समय के लिए बंद हो गये। इन्हीं वर्षा के दिनों में होलकर किसी समय में अपने कैम्प में बैठा था। एक कर्मचारी ने आकर उसके हाथ में एक समाचार-पत्र दिया। होलकर ने तुरन्त तत्परता के साथ उसे पढ़ा और फिर गम्भीर होकर उसने अपने कर्मचारियों से कहा–"राणा के दूतों को अभी बुलाकर मेरे पास ले आओ।" होलकर के अचानक आवेश में आ जाने का कारण यह था कि समाचार-पत्र से उसे मालूम हुआ कि राणा का भैरव बक्श नामक एक दूत मराठों को मेवाड़ से निकालने के सम्बन्ध में अंग्रेजों के लार्ड लेक के साथ टोंक में परामर्श कर रहा था। इस को पढ़ते ही वह क्रोध में आ गया।

किशनदास और मेवाड़ के दूसरे दूतों ने आकर होलकर के कैम्प में प्रवेश किया। होलकर का क्रोध अभी ज्यों का त्यों वना था। उसने उस पत्र को किशनदास की तरफ फेंक कर कहा- "मेवाड़ वालों का हमारे साथ क्या यह विश्वासघात नहीं है? तुम्हारे राणा के लिए मैंने सब कुछ छोड़ा है, सिंधिया के भय की कुछ परवाह न की है। अंग्रेजों के साथ युद्ध करने के लिए जो तैयारियाँ हो रही हैं, उनमें समस्त हिन्दू-जाति को संगठित हो जाना चाहिए। ऐसे समय में अलग होकर तुम्हारे राणा ने अंग्रेजों के साथ संधि करने का निर्णय किया है। किसी समय सबसे राणा ने कहा था कि- 'हम दिल्ली की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते।' राणा का यह स्वाभिमान आज कहाँ है?"

इस समय पंचौली किशनदास ने शांत होने के लिये होलकर को संकेत किया। परन्तु अलीकूर तातिया नामक मंत्री ने अपने स्वामी होलकर से कहा- "महाराज आपने इन राजपूतों का व्यवहार अपने नेत्रों से देखा। ये लोग सिंधिया के साथ आपको लड़ाना चाहते हैं। इसलिए आपको इन राजपूतों का समर्थन छोड़कर सिंधिया से मिल जाना चाहिए और शूरजी राव के स्थान पर अम्बाजी को मेवाड़ का सूबेदार बनाना चाहिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं सिंधिया के पास मालवा चला जाऊँगा।"

अलीकूर तातिया की बातें भाऊ भास्कर को छोड़कर वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों ने पसन्द की। होलकर को भी उसका परामर्श मानना पड़ा। उसने शूरजी राव को सूबेदारी से बर्खास्त कर दिया और अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह उत्तर की तरफ रवाना हुआ। वहाँ पर अंग्रेजी सेना के साथ लड़कर वह पराजित हुआ और पंजाब तक अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। अंत में होलकर को लार्ड लेक के साथ संधि करनी पड़ी।

अंग्रेजों के साथ राणा का सम्पर्क और व्यवहार मालूम करके होलकर बहुत अप्रसन्न हुआ। लेकिन इस समय उसने मेवाड़ के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। मेवाड़ छोड़ने के समय उसने सिंधिया से कहा था - "अम्बाजी द्वारा मेवाड़ राज्य की कोई हानि न होगी, इसकी मैंने प्रतिज्ञा की है। इसलिये ऐसा कोई कार्य न हो, जो मेरी प्रतिज्ञा के विरुद्ध समझा जाये और यदि हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर होगा।

होलकर की कही हुई बातों का प्रभाव सिंधिया पर पड़ा। लेकिन होलकर के संकट में पड़ते ही सिंधिया ने उसकी कही हुई बातों की परवाह न की और मेवाड़ से सोलह लाख रुपये वसूल करने के लिए उसे सदाशिव राव को रवाना कर दिया। सिंधिया ने उसके साथ एक मजबूत और विश्वस्त सेना भी भेजी। सन् 1805 ईसवी के जून मे वह सेना मेवाड़ की तरफ बढ़ी। सदाशिव राव को दो काम सौंपे गये। पहला कार्य यह था कि जैसे भी हो सके, मेवाड़ से सोलह लाख रुपये वसूल किये जाये और दूसरा कार्य यह था कि उदयपुर से जयपुर की सेना हटा दी जाये। राणा की बेटी कृष्णकुमारी के साथ जयपुर के राजा का विवाह होना निश्चित हुआ था और इसीलिए जयपुर की सेना इन दिनों में उदयपुर गयी थी।

कृष्णकुमारी अपनी सुन्दरता और योग्यता के लिए राजस्थान में प्रसिद्ध हो रही थी। उसके पिता राणा ने उसका विवाह जयपुर के राजा के साथ तय किया था। उसके बाद नरवर के राजा मानसिंह ने कृष्णकुमारी के साथ विवाह करने का इरादा किया। जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ कृष्णकुमारी का विवाह न हो सके इसके लिए राजा मानसिंह ने अपनी तीन हजार सैनिकों की सेना उदयपुर भेज दी।

जयपुर की सेना उदयपुर में पहले ही आ चुकी थी। कृष्णकुमारी का विवाह जगतसिंह के साथ रोकने के लिए मानसिंह ने झूंठी बातों का प्रचार करना आरम्भ किया।

सिंधिया ने मारवाड़ के राजा मानसिंह का पक्ष लिया और इसके लिए उसने सदाशिव राव को आदेश दिया था कि उदयपुर से जयपुर की सेना निकाल दी जाये। सिंधिया ने राणा को एक धमकी भी दी थी तथा उसके लिए संदेश भेजा था कि यदि वह मेरी बातों को न मानेगा और अपनी लड़की का विवाह जयपुर के राजा के साथ करेगा तो मैं किसी प्रकार उस विवाह को होने न दूँगा।

कृष्णकुमारी का विवाह जगतसिलस्ंह के साथ न हो, इसके लिये विरोधियों की तरफ से अनेक प्रवर के उपाय किये गये। राजा मानसिंह ने चूँन्डावत लोगों को मिलाकर अपने पक्ष में कर लिया था और उनके सरदार अजितसिंह को रिश्वत दी थी। जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ सिंधिया की अप्रसन्नता का एक कारण था। कुछ समय पहले सिंधिया ने जगतसिंह से रुपये माँगे थे और जगतसिंह ने रुपये देने से साफ-साफ इन्कार कर दिया था। इस अप्रसन्नता के कारण सिंधिया ने मानसिंह का पक्ष समर्थन करके कृष्णकुमारी के विवाह में जगतसिंह का विरोध किया और अपनी आठ हजार सेना को लेकर वह उदयपुर पहुँच गया। नगर से कुछ दूरी पर उसने अपने डेरे डाले।

राणा भीमसिंह के सामने इस समय भयानक संकट था। उदयपुर से जयपुर की सेना को वापस भेज देने के सिवा अब उसके सामने कोई उपाय न था। उसने यही किया। जयपुर की आयी हुई सेना उदयपुर से चली गयी। राजा जगतसिंह ने सेना के लौट जाने पर अपना अपमान अनुभव किया और राणा से इसका बदला लेने के लिये उसने अपनी सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया। राजा जगतसिंह के साथ उस समय जितनी बड़ी सेना थी, उतनी जयपुर में कदाचित कभी न रही थी।

राजा जगतसिंह की सेना के आक्रमण का समाचार सुनकर राजा मानसिंह उससे युद्ध करने को तैयार हुआ और अपनी सेना लेकर वह मेवाड़ की तरफ चल पड़ा। परन्तु इसी समय उसके राज्य मारवाड़ में कुछ घरेलू झगड़े पैदा हो गये, जिनसे मानसिंह बड़ी मजबूरी में पड़ गया। इस प्रकार के विवाद और घ्ररेलू झगड़े मारवाड़ में बहुत पहले से चल रहे थे। वहाँ के इन भीतरी झगड़ों के कारण मारवाड़ की युद्ध सम्बन्धी योग्यता निर्बल पड़ गयी थी। मानसिंह युद्ध के लिए रवाना हो गया था। उसके चले जाने पर विरोधी सरदारों ने अपने साथ के एक सरदार को कल्पित राजा बनाया और एक सेना का संगठन करके वे लोग मानसिंह के शत्रुओं से मिल जाने को रवाना हुये। जयपुर के राजा जगतसिंह ने एक लाख बीस हजार सैनिकों की सेना लेकर चढ़ाई की थी। मानसिंह के पास जो सेना थी, वह लगभग इसकी आधी थी। परवतसर नामक स्थान पर जयपुर और मारवाड़ की सेनाओं का मुकाबला हुआ। युद्ध आरम्भ होने के कुछ समय बाद मानसिंह की सेना के बहुत से सैनिक और सरदार मारवाड़ के कल्पित राजा की तरफ चले गये। राजा मानसिंह की शक्तियाँ इस समय युद्ध में बहुत क्षीण पड़ गयीं। वह युद्ध से अलग जाकर खड़ा हो गया। उस समय शत्रुओं के आक्रमण करने पर उसके सामन्तों और सरदारों ने उसकी रक्षा की। वहाँ से हटकर शत्रु-सेना ने जोधपुर को घेर लिया। वहाँ पर छः महीने युद्ध हुआ। अंत में जोधपुर शत्रुओं के अधिकार में चला गया और वहाँ पर लूट आरम्भ हुई। इन शत्रुओं में मारवाड़ के जो विरोधी सरदार अपनी सेना के साथ आकर मिल गये थे, वह जोधपुर की यह अवस्था न देख सके। यहाँ पर कछवाहों और राठौरों का प्रश्न पैदा हो गया। जयपुर के लोग कछवाहा राजपूत थे और मारवाड़ के राठौर थे। इस प्रश्न ने जयपुर की सेना से कल्पित राजा के सरदारों और सैनिकों को अलग कर दिया और अब दोनों सेनाओं में मारकाट आरम्भ हो गयी।

जोधपुर में जो सम्पत्ति और सामग्री लूटी गयी थी, जगतसिंह ने सब की सब जयपुर भेज दी थी। मारवाड़ की विद्रोही सेना इस बात को सहन न कर सकी और उसने रास्ते में ही आक्रमण करके उस सम्पत्ति और सामग्री को लूट लिया। इस विद्रोही सेना के साथ मारकाट में जयपुर के बहुत-से सैनिक मारे गये और जगतसिंह स्वयं युद्ध से भाग गया।

जगतसिंह युद्ध से भागकर जयपुर चला गया। मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए उसने बहुत से सैनिकों की भर्ती की थी। वे युद्ध में काम न आ सके। उसकी पराजय का वह कारण हुआ। जयपुर पहुँच कर वह भयानक संकट में पड़ गया। जिन अगणित जनों को उसने अपनी सेना में भर्ती किया था, उनके वेतन वह न दे सका और इसका परिणाम उसके लिए भयानक हो उठा। मारवाड़ में मानसिंह के विरुद्ध जो विद्रोही पैदा हो गये थे, वे अब कमजोर पड़ने लगे।

अमीर ख़ाँ शुरू में मानसिंह के शत्रुओं के साथ था। उसके बाद वह राजा मानसिंह से मिल गया और मारवाड़ के कल्पित राजा का विनाश करके वह मानसिंह को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। अमीर खाँ न केवल राजनीतिज्ञ था, बल्कि वह धूर्त और कूटनीतिज्ञ भी था। वह जिसको मिटाना चाहता था, उसके साथ वह अपने हृदय का गहरा स्नेह प्रकट करता था। अपनी इसी आदत के अनुसार अमीर खाँ ने उस कल्पित राजा के साथ व्यवहार आरम्भ किया। एक मस्जिद में दोनों ने बैठकर मित्रता की गाँठ बाँधी। मानसिंह का विद्रोही मारवाड़ का वह कल्पित राजा अमीर खाँ की चालों को समझ न सका। उसकी मित्रता को पाकर वह बहुत प्रसन्न हो उठा और अपने यहाँ नाच और गाना शुरू कराके अपने सुख सौभाग्य का अनुभव करने लगा। इसी अवसर पर, जब वह कल्पित राजा अपने यहाँ नाच-गाने में मस्त हो रहा था, अमीर खाँ ने उस पर आक्रमण किया और बड़ी निर्दयता के साथ उसने उन सब का संहार किया। उस कल्पित राजा के मिट जाने से मारवाड़ में मानसिंह के जो विरोध हो रहे थे, सब समाप्त हो गये।

राणा की लड़की कृष्ण कुमारी ने सोलहवें वर्ष में प्रवेश किया। वह अत्यन्त रूपवती गुणवती, स्वस्थ और सुशील थी। उसकी प्रशंसा दूर-दूर तक फैल रही थी। उसके मन और शरीर की यह अच्छाईयाँ उसके लिए दुर्भाग्य बन गयीं। इस प्रकार की घटनायें और भी कभी-कभी संसार के सामने आयी हैं। रोम की प्रसिद्ध वर्जीनिया को भी अपनी सुन्दरता और श्रेष्ठता के कारण प्राण देने पड़े थे[1] और यूनान की महान सुन्दरी इफीजीनिया को अपने अटूट रूप और सौन्दर्य के कारण प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा था।[2]

अमीर खाँ ने विश्वासघात के द्वारा मारवाड़ के कल्पित राठौर राजा का संहार किया। उसके बाद वह उदयपुर आया। राणा के दरबार में बड़े सम्मान के साथ वह लिया गया। समय पाकर अजितसिंह ने कृष्ण कुमारी के विवाह के सम्बन्ध में उससे परामर्श किया। अमीर खाँ ने अजितसिंह को साफ-साफ बताया कि राणा को अपनी लड़की कृष्णकुमारी का विवाह मानसिंह के साथ करना पड़ेगा और यदि वह ऐसा नहीं करता तो कृष्ण कुमारी को अपने प्राणों का अन्त करना पड़ेगा।

---

1. वर्जीनिया रोम के विख्यात व्यूसियस की लड़की थी। एपियस क्लडियस नाम के एक चरित्रहीन व्यक्ति ने वर्जीनिया को उसके माता-पिता से बलपूर्वक छीनकर ले जाने की कोशिश की थी। उसका पिता जब अपनी लड़की की रक्षा करने में असमर्थ हुआ तो उसने अपने हाथों से उसको मारकर उस नराधम से उसकी रक्षा की। यह घटना 449 वर्ष पहले हुई थी।
2. इफीजीनिया यूनान के एगेमेनन की लड़की थी। एलिस नाम के टापू में यूनान वालों का जब जंगी जहाज रुक गया तो डियाना देवी को प्रसन्न करने के लिए एगेमेनन ने उस देवी के सामने अपनी बेटी की बलि चढ़ाई थी। यूनान के पुराने ग्रन्थों में कुछ मतभेद के साथ इस घटना का समर्थन मिलता है।

अजितसिंह और अमीर खाँ का परामर्श राणा भीमसिंह ने भी सुना। उसका हृदय काँप उठा। उसकी समझ में न आया कि इस संकट के समय किसका आश्रय लिया जा सकता है। वह मानसिंह के साथ अपनी बेटी का ब्याह करने के लिए किसी भी दशा में तैयार न था और न वह अपनी प्यारी-दुलारी लड़की के प्राणों का नाश ही अपने नेत्रों से देखना चाहता था।

राणा के सामने भयानक संकट था। उसने अपने जीवन में बड़े-से-बड़े संकट देखे थे। लेकिन इस समय उन सब को वह भूल गया था। इस समय क्या करना चाहिये, यह उसकी समझ में न आया। राणा इस बात को समझता था कि अमीर खाँ की बातों में सत्य है और यदि वैसा न किया गया तो मेवाड़ में भयानक से भयानक दृश्य उपस्थित होंगे। इस समस्या को लेकर राणा ने अपने महल में बैठकर सरदारों और परिवार वालों के साथ कई बार परामर्श किया। परन्तु किसी फैसले का निर्णय न हुआ। बहुत सोचने और समझने के बाद अन्त में जो तय हुआ, उसमें राणा ने इस बात को स्वीकार किया कि वह कार्य किसी स्त्री के द्वारा ही होना चाहिए इसको मान लेने के बाद भी किसी की समझ में यह न आया कि एक स्त्री इस कठोर कार्य में कहाँ तक सफल हो सकती है।

बहुत सोचने-विचारने के बाद निश्चय हुआ कि राणा के परिवार के दौलत सिंह से इस संकट के समय सहायता ली जाये। उस परामर्श के समय दौलत सिंह राणा के पास बैठा था। सीसोदिया वंश का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए जिस कठोर कार्य का निर्णय हुआ, उसका उत्तरदायित्व दौलतसिंह पर रखा गया लेकिन उस कार्य को सम्हालने में दौलतसिंह ने काँपते हुए स्वर में असमर्थता प्रकट की। उसके नेत्रों से आँसू बह उठे। उसने इन्कार करते हुए कहा : "मेरी तलवार कृष्ण कुमारी के प्राणों का संहार न कर सकेगी। मैं अपने वंश और देश के प्रति इस प्रकार लज्जापूर्ण कार्य नहीं कर सकता।"

दौलत सिंह के इन्कार करने पर यह कार्य जवानदास को सौंपा गया। जवानदास भीमसिंह के स्वर्गीय पिता की उपपत्नी से उत्पन्न हुआ था। उसके बुलाए जाने पर उसने इस कार्य को स्वीकार कर लिया। लेकिन जिस समय कृष्णकुमारी वहाँ पर बुलाई गयी, उसको सामने देखकर जवानदास की आँखें नीची हो गयी और उसकी तलवार हाथ से फिसल गयी। खिले हुए फूल के समान कृष्णकुमारी के मुखमंडल को देखकर वह काँप उठा और बिना कुछ कहे हुए वह उस स्थान से चुपके से चला गया। कृष्णकुमारी को यह रहस्य कुछ मालूम न था। लेकिन वह किसी से छिपा न रह सका। राजमहल में सभी को राणा का निर्णय मालूम हो गया। कृष्णकुमारी की माता ने उसके प्राणों को बचाने का प्रयास किया। परन्तु उसको सफलता न मिली, वह निराश हो गयी।

पूर्व निर्णय के अनुसार, एक स्त्री ने विष तैयार करके राणा के नाम से राजकुमारी कृष्णकुमारी को दिया। सब-कुछ जानते और समझते हुए भी कृष्णकुमारी ने विष का प्याला अपने हाथ में ले लिया। उसके चेहरे पर किसी प्रकार का कोई परिवर्तन न हुआ और सहज स्वभाव से वह प्याले को अपने मुख से लगाकर विष को पी गयी। उसकी माँ वहीं पर खड़ी होकर यह सब देख रही थी। उसके नेत्रों में आँसू देखकर राजकुमारी ने कहा—"माँ, तुम क्यों रंज करती हो। मुझे मृत्यु से कोई भय नहीं है। भय क्यों हो? क्या मैं तुम्हारी बेटी नहीं हूँ? राजपूत वंश में जन्म लेकर मृत्यु का भय करना कैसा? हम सबका जन्म ही बलिदान होने के लिये होता है, फिर उसका भय क्यों हो? मैं अब तक जीती रही, क्या यह कम आश्चर्य की बात है?"

इसी समय विष का दूसरा प्याला तैयार किया गया। राजकुमारी ने उसे लेकर बिना किसी भय के उसको पी लिया और प्याला खाली कर दिया। प्याला हाथ में लेते हुए उसके शरीर का एक भी रोम काँपा नहीं। उसके मुख पर किसी प्रकार की घबराहट पैदा नहीं हुई।

राजकुमारी के आस-पास एक अपूर्व दृश्य था। दो बार विष का प्याला कृष्णकुमारी पर असफल हो चुका था। तीसरी बार उस विष को अधिक भयानक बनाया गया। अफीम के साथ कुसुम्बे को मिलाकर विष तैयार किया गया। जिस समय वह प्याले में भरा जा रहा था, राजकुमारी समझ गयी कि यह मेरे जीवन का अंतिम प्याला है। प्याला सामने आते ही मधुर मुस्कान के साथ उसने अपने हाथ में उसे ले लिया और अपने आस-पास के दृश्य पर एक बार दृष्टिपात करते हुए—मानो वह संसार से विदा हो रही थी— प्याले को उसने मुख से लगाया और पीकर उसने फिर किसी की तरफ नहीं देखा। राजकुमारी लेट गयी और सदा के लिए सो कर वह संसार से विदा हो गयी!

कृष्णकुमारी की इस प्रकार की मृत्यु के बाद उसकी माता अधिक दिनों तक जीवित नहीं रही। अपनी बेटी के शोक में उसने भोजन छोड़ दिया और उन सभी बातों का परित्याग कर दिया, जो मनुष्य को जिन्दा रखती है। इस दशा में कुछ ही दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

अमीर खाँ ने जिस समय अजितसिंह से यह समाचार सुना, उसने उसको बहुत धिक्कारा और कहा—"क्या यह कार्य शूरवीर राजपूतों के योग्य था? सीसोदिया वंश में इस प्रकार का लज्जापूर्ण कार्य कभी नहीं हुआ था। इस समाचार को मुझसे कहते हुए तुमको लज्जा नहीं मालूम हुई?"

राजकुमारी की मृत्यु के चार दिन बाद शक्तावत संग्रामसिंह राजधानी में आया। वह अजितसिंह का विरोधी था। संग्रामसिंह स्वभाव से ही बहादुर और स्वाभिमानी था। उसको न तो अपने राजा का भय था और न शत्रुओं की तलवारों का। निर्भीकता के साथ वह उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर अजितसिंह बैठा हुआ था। उसको देखते ही आवेश में आकर उसने कहा—"नीच? सीसोदिया वंश को कलंकित किसने किया? राजस्थान के जिस वंश ने अपनी पवित्रता को बनाये रखने के लिए भयानक संकटों का सामना करते हुए सैंकड़ों वर्ष बिताये थे, उसके माथे पर यह कलंक का टीका किसने लगाया? राजकुमारी का वध करके आज इस वंश ने जो अपराध किया है, उसके जीवन से इसको कभी मिटाया नहीं जा सकता। अपनी इस कायरता के कारण यह वंश भविष्य में कभी भी अपना मस्तक ऊँचा न कर सकेगा। यह ऐसा पाप हुआ है, जिसकी समानता के लिए दूसरा कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इस वंश के मिटने का समय अब समीप आ गया है। बप्पा रावल के वंश की सम्पूर्ण कीर्ति इस पाप के साथ-साथ मिट चुकी है। यह अपराध इस वंश के सर्वनाश का सूचक है!" क्रोध के आवेश में जिस समय संग्रामसिंह इस प्रकार की बातें कह रहा था, राणा अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ मुख पर रखे हुए चुपचाप सुन रहा था। संग्रामसिंह ने फिर कहा—"नराधम, तेरा यह कार्य सीसोदिया वंश के माथे पर अटल कलंक है। इससे सम्पूर्ण राजपूत जाति का नाम तेरी मृत्यु के साथ-साथ मिट जायेगा। क्या सोचकर तूने राणा से यह अधर्म कराया, किस भय ने ऐसा करने के लिए तुझे विवश किया था? जिस शत्रु का भय था; उसका आक्रमण होने क्यों नहीं दिया? अच्छा होता, यदि इस प्रकार के किसी आक्रमण से इस वंश के एक-एक बच्चे का सर्वनाश हुआ होता और इतिहास के पन्नों में हमारे पूर्वज बप्पा रावल का नाम अमिट अक्षरों में लिखा जाता। तूने इस वंश के लोगों को राजपूतों की मौत मरने क्यों नहीं दिया—उस प्रकार, जैसे हमारे पूर्वज अब तक मरे हैं? उन सबने संकटों का सामना करके अपने प्राणों का बलिदान देकर अपनी श्रेष्ठता और

कीर्ति को अमर बनाया था। जीवन की अटूट कीर्ति उनको ऐसे ही न मिल गयी थी। हमारे पूर्वजों ने कभी किसी शक्तिशाली के सामने अपना मस्तक नीचा नहीं किया था। संसार की शक्तियाँ एक तरफ थीं और सीसोदिया वंश की शक्ति दूसरी तरफ थी, इस वंश ने बड़ी-से-बड़ी शक्तियों के साथ युद्ध किया था और शत्रुओं का संहार करते हुए अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। चित्तौड़ की कीर्ति को तू भूल गया है। मैं किसको सम्बोधित करके ये बातें कह रहा हूँ। एक राजपूत को? नहीं, उसको जो राजपूत जाति का कलंक है। यदि हमारी बहू-बेटियों और बहनों पर कोई विपत्ति आयी थी तो अपने हाथ में तलवार लेकर तूने शत्रु का सामना क्यों न किया था? यदि तूने ऐसा किया होता तो तेरा नाम भविष्य में प्रसिद्ध होता और तेरी इस बहादुरी से बप्पा रावल को स्वर्ग में सुख प्राप्त होता। परन्तु तूने कुछ न किया, उसके द्वारा इस वंश की सम्पूर्ण योग्यता और श्रेष्ठता को मिटा कर तूने सदा के लिए इस वंश को निर्लज्ज बना दिया। आज संसार क्या कहेगा ? यही न कि दुष्टों और दुराचारियों के भय से बप्पा रावल के वंशज राणा भीमसिंह ने अपनी युवा राजकुमारी को विष देकर अपनी कायरता का परिचय दिया। तूने आने वाली विपत्ति की प्रतीक्षा न की। तेरे भय ने तेरे जीवन के समस्त गुणों का नाश कर दिया। तेरी बुद्धि नष्ट हो गयी है और इसीलिये तूने यह घृणित कार्य किया। हमारे वंश के सर्वनाश का समय अब निकट आ गया है।"

विश्वासघातक अजितसिंह संग्रामसिंह की बातों को चुपचाप सुनता रहा। उसने किसी बात का उत्तर न दिया। लड़के और लड़कियाँ—सब मिलाकर राणा के पिच्यानवे संतानें हुई थी। लेकिन एक पुत्र को छोड़कर—जो कृष्णकुमारी का भाई था—सबकी मृत्यु हो गयी थीं। उसकी दो लड़कियों के अभी कुछ दिन पूर्व विवाह हुये थे। एक जैसलमेर में तथा दूसरी बीकानेर के राजा को ब्याही गयी थी। उनसे जो लड़के हुये, वे राजस्थान की प्रणाली के अनुसार नाना के सिंहासन के अधिकारी न हो सके।

संग्रामसिंह ने अजितसिंह को शाप दिया था, वह पूरा हुआ। राजकुमारी की मृत्यु के बाद एक महीना भी न बीता था, उसकी स्त्री की मृत्यु हो गयी और दो पुत्रों की मृत्यु हुई। इस विनाश से अजितसिंह का जीवन सूना हो गया। संसार में उसे अन्धकार दिखायी दे रहा था। जिन्दगी-भर के पापों का फल उसको बुढ़ापे में मिला। उसने सम्पूर्ण जीवन में जो अपराध किये थे, वे सब उसके सामने आये। अब बुढ़ापे में उसको वैराग्य सूझा। भगवान का भक्त बन कर उसने अपने पापों का प्रायश्चित करना आरम्भ किया।

अमीर खाँ जन्म से ही धूर्त और विश्वासघाती था। वह होलकर का सामन्त था। वह किसी का साथी न था। जिससे उसका स्वार्थ-साधन होता, उसी से वह मिल जाता था। अपने स्वार्थों के ही कारण होलकर को छोड़कर वह अंग्रेजों से मिल गया था और इसके लिए उसने अंग्रेजों से सिरौंज, टोंक, रामपुरा और नीम्बोहेड़ा आदि अनेक स्थान पाये थे।

सन् 1806 ईसवी में बसंत ऋतु में अंग्रेजों का दूत मेवाड़ में आया। सम्पूर्ण मेवाड़-राज्य उजड़ चुका था। उसके शूरवीर मारे जा चुके थे, उसकी समस्त सम्पत्ति लूटी जा चुकी थी और अच्छे-अच्छे मकानों तथा महलों के स्थानों पर खंडहर दिखायी देते थे। सम्पूर्ण राज्य जंगल हो गया था, राज्य का व्यवसाय और वाणिज्य मिट गया था। कृषक दरिद्र हो गये थे। मराठा सेनाओं ने राज्य को लूटकर सभी प्रकार से बर्बाद कर दिया था। जिस अम्बाजी ने निर्दयता के साथ मेवाड़ का विनाश किया था, उसको उसके पापों का बदला खूब मिला। अभिमान में आकर उसने अपने राजा सिंधिया को धोखा देकर ग्वालियर में अपनी स्वतंत्रता का झंडा खड़ा किया। सिंधिया ने उसके अपराधों की सजा उसको दी। उसने उसके हाथों-पाँवों की उँगलियाँ जलवा दीं और उसका समस्त धन छीन

लिया। अम्बा जी ने तलवार मारकर आत्महत्या करने की चेष्टा की। अम्बा जी के खजाने से सिंधिया ने पचपन लाख रुपये निकाल कर अपने अधिकार में कर लिए। इसके बाद अम्बाजी फिर मेवाड़ में सिंधिया की तरफ से सूबेदार बनाकर भेजा गया। परन्तु थोड़े दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने पर उसकी समस्त सम्पत्ति पर उसके मित्र जालिमसिंह ने अपना अधिकार कर लिया।

राणा के मन्त्री सतीदास ने सत्तर हजार रुपये देकर यशवंतराव भाऊ से कमलमीर का दुर्ग ले लिया। सन् 1809 ईसवी में अमीर खाँ ने अपनी सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया और राणा से ग्यारह लाख रुपये माँगे। राणा की अवस्था इस रकम को दे सकने के योग्य न थी। फिर भी विवश अवस्था में उसने नौ लाख रुपये देना मंजूर किया। परन्तु वह दे न सका। इसलिए अमीर खाँ ने राज्य में भयानक अत्याचार शुरू किये और उन अत्याचारों में राणा का मन्त्री किशनदास घायल हुआ।[1]

सम्वत् 1867 सन् 1811 ईसवी में बापू सिंधिया ने सूबेदार बनकर मेवाड़ में प्रवेश किया। उसके साथ उसकी एक सेना थी। अमीर खाँ की सेना उस समय मेवाड़ में लूट मार कर रही थी। मेवाड़ को अब दोनों सेनाओं ने लूटना शुरू किया। इन लुटेरों को वहाँ पर कोई रोकने वाला न था। राज्य की प्रजा के सामने इन दिनो में जो भयानक कष्ट थे, वे लिखे नहीं जा सकते। अमीर खाँ के पठानों और बापू सिंधिया के मराठों ने मेवाड़ राज्य में भीषण अत्याचार किये। इन अत्याचारों से राज्य का अंतिम विनाश हुआ, कृषि का जो व्यवसाय बाकी रह गया था, उसका भी नाश हो गया। नगरों का विध्वंस हो गया। राज्य के लोग अपने परिवार के साथ घर-द्वार छोड़कर भाग गये, सरदारों का पतन हो गया, राणा और उसके परिवार के जीवन में साधारण सुविधायें भी न रह गयीं। ऐसी दशा में सिंधिया के बाकी कर को अदा करने की धृष्टतापूर्ण माँग बापू सिंधिया ने राणा से की और उसके बदले में राज्य के सरदारों, कृषकों और व्यवसायियों को अजमेर में ले जाकर कैद में रखा। वहाँ पर उनमें से बहुतों की मृत्यु हो गयी और बाकी लोगों को सिंधिया की कैद से उस समय छुटकारा मिला, जब सन् 1817 ईसवी में अंग्रेजों की संधि हुई।

□

1. अपनी उस विपदा के समय किशनदास बहुत दिनों तक टॉड साहब के साथ रहा। राणा से भेंट के समय टॉड साहब की बातों को किशनदास की अनुवाद करके राणा को समझाता था। किशनदास के मरने पर मेवाड़ के लोगों ने बहुत दुःख प्रकट किया था।

अध्याय—27

अंग्रेजों के साथ राणा की संधि व राज्य में सुधार

दूसरी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक राणा के वंश का इतिहास लिखा जा चुका है और उसके सौभाग्य एवम् दुर्भाग्य की सभी घटनाओं पर गम्भीरता के साथ प्रकाश डाला जा चुका है। पारसियों, भीलों, तातारियों और मराठों ने समय-समय पर लगातार आक्रमणों के द्वारा जिस प्रकार इस प्रसिद्ध वंश और उसके राज्य को क्षत-विक्षत करके श्मशान बना देने का काम किया, उसको स्पष्ट रूप से लिखा जा चुका है। मेवाड़ की उजड़ी हुई अवस्था में मराठों की लूट आरम्भ हुई और उनकी अमानुषिक निष्ठुरता ने उस राज्य के जीवन में केवल हड्डियाँ और पसलियाँ बाकी रखीं। इन दिनों में पश्चिमी देशों के व्यवसायी कम्पनियाँ बना-बनाकर व्यवसाय के लिए इस देश में आ चुके थे। अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी भी उनमें से एक थी। इस कम्पनी के अंग्रेजों ने बड़ी राजनीति से काम लिया। राजस्थान के प्रसिद्ध राज्य मेवाड़ के संकटों में उन लोगों ने अपनी उदारता प्रकट की।

देश में घरेलू विद्रोह की भीषण आग जल रही थी। अंग्रेजों को विद्रोह के इन दिनों में अपना अस्तित्व कायम करने का अवसर मिला। धीरे-धीरे उनकी शक्तियाँ मजबूत बन गयी। पीड़ित प्रजा और राजाओं को मिलाकर एक बड़ी शक्ति अंग्रेजों ने अपने पक्ष में की। देशी राज्यों की शक्तियाँ पहले से ही छिन्न-भिन्न थीं, मराठों को छोड़कर अन्य किसी जाति में संगठन न था। विरोधी शक्तियों के मुकाबले अंग्रेजों ने देशी राज्यों को मिलाकर एक महान शक्ति का निर्माण किया। अंग्रेजों की तरफ से एक घोषणा की गयी कि आततायियों और लुटेरों को रोकने के लिए इस देश में एक ऐसा संगठन किया जायेगा, जिसके द्वारा निर्बल राज्यों की रक्षा हो सके और कोई शक्तिशाली आक्रमण करके उसको लूट न सके। उस समय जितने निर्बल नागरिक रोज लूटे और मारे जा रहे थे, इस घोषणा को सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने एक बार सुख और संतोष की साँस ली! घोषणा के अनुसार दिल्ली में एक सभा की गयी। जयपुर के अतिरिक्त शेष राजाओं के प्रतिनिधियों ने उसमें भाग लिया और उस उद्देश्य को स्वीकार किया। उस सभा को सफलता मिली और उसके द्वारा इस देश के राजाओं की बागडोर अंग्रेजों के हाथों में पहुँच गयी। एक संधि पत्र लिखा गया, उसमें इस बात को स्वीकार किया गया कि राजपूत अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखें, लुटेरे शत्रुओं से अंग्रेज सरकार उनकी रक्षा करेगी और इस कार्य के लिए देशी राज्य अंग्रेजों

को एक निश्चित कर अदा करेंगे।[1] रायपुर, राजनगर आदि जिन दुर्गों पर विद्रोही सरदारों ने राणा के विरुद्ध अधिकार कर लिया था, उनको लेकर राणा के अधिकार में दे दिया और एक विशाल दुर्ग पर अंग्रेजों ने अपना अधिकार कर लिया। कमलमीर के दुर्ग में रहने वाली सेना का बहुत दिनों से वेतन बाकी था, उसको देकर अंग्रेजों ने उस पर भी अपना अधिकार कर लिया।

कमलमीर के उत्तर में जिहाजपुर था। वहाँ से एजेण्ट की हैसियत से मैं राणा के दरबार के लिए रवाना हुआ। उदयपुर वहाँ से एक सौ चालीस मील था। इस लंबी यात्रा में मुझे केवल दो नगर मिले। वहाँ मनुष्यों की आबादी बहुत कम थी, उनकी घनी आबादी उजड़ गयी थी। सम्पूर्ण रास्ता मनुष्यों से खाली था। चारों तरफ वृक्ष दिखायी देते थे। चुतर्दिक फैले हुए जंगलों को देखकर मालूम होता था कि यहाँ पर मनुष्यों की आबादी नहीं है। स्थान-स्थान पर जंगली जानवर घूमते हुए दिखाई देते थे। राज-मार्ग नष्ट हो गये थे और वे सब जंगली रास्ते बन गये थे। राजस्थान में भीलवाड़ा एक प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर था। दस वर्ष पहले यहाँ पर छः हजार अच्छे घर थे और उनमें लोग अपने परिवारों के साथ रहते थे। भीलवाड़ा से होकर मैं गुजरा। उसकी गलियाँ सूनसान थीं। एक भी आदमी वहाँ पर न मिला। एक मंदिर में बैठे हुए कुत्ते ने मुझे देखा, वह मुझे देखते ही अपरिचित समझ कर भागा।

मैं अपने लश्कर के साथ उदयपुर के करीब नाथद्वारा में ठहरा। वहाँ पर राणा का एक प्रतिनिधि मुझे मिला और वहाँ से लौटकर जाने के मौके पर मैंने कमलमीर दुर्ग प्राप्त किया। उसके बाद राणा का पुत्र जवानसिंह सामन्तों, सिपाहियों और बहुत से राज्य के अधिकारियों को साथ में लेकर स्वागत के लिये आया और हम सब को राजधानी में ले

---

1. इन दिनों में ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ राणा भीमसिंह ने जो संधि की थी, उसका सारांश इस प्रकार है—(1) अंग्रेजों और राणा भीमसिंह के बीच इस संधि के द्वारा जो मित्रता कायम हो रही है, वह सदा के लिये है। एक का मित्र और शत्रु, दूसरे का भी मित्र और शत्रु होगा। (2) राणा के राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अंग्रेज सरकार पूरी चेष्टा करेगी और उस पर कोई आक्रमण नहीं कर सकेगा। (3) उदयपुर के राणा को अंग्रेज सरकार की अधीनता में और समस्त कार्य करने पड़ेंगे। राज्य के सामंतों और सरदारों से राणा का कोई सम्बन्ध न रहेगा। (4) बिना अंग्रेज सरकार की स्वीकृति के राणा को किसी राजा के साथ संधि अथवा राजनीतिक सम्बन्ध कायम करने का अधिकार न होगा। (5) राणा को स्वयं किसी पर आक्रमण करने का अधिकार न होगा। यदि किसी के साथ इस प्रकार की परिस्थिति पैदा हो तो उसका निर्णय अंग्रेज सरकार करेगी। (6) पाँच वर्ष तक राणा अपनी आमदनी का एक चौथाई भाग अंग्रेज सरकार को अदा करेगा और उसके बाद आमदनी का 3/8 भाग राणा को सदा देना पड़ेगा। राणा से दूसरा कोई कर न ले सकेगा। इसका उत्तरदायित्व अंग्रेज सरकार पर होगा। (7) मेवाड़ राज्य के जो इलाके दूसरे राजाओं ने छीनकर अपने अधिकार में कर रखे हैं, राणा का इरादा उनको वापस लेने का है। लेकिन इस समय अंग्रेज सरकार इस प्रकार के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। उदयपुर का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें अंग्रेज सरकार सहायता करेगी। अंग्रेजों की सहायता से जो इलाके राणा को वापस मिल जायेंगे, राणा को उनकी आमदनी का 3/8 भाग देना पड़ेगा। (8) आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज सरकार राणा की सेना ले सकेगी। (9) मेवाड़-राज्य में अंग्रेजों का नहीं, राणा का प्रभुत्व रहेगा।

   यह संधि पत्र 16 जनवरी, सन् 1818 ईसवी को दिल्ली में लिखा गया। इस पर अंग्रेजों की तरफ से मिस्टर चार्ल्स मेटकॉफ और राणा की तरफ से अजितसिंह ने हस्ताक्षर किये और अपने-अपने राज्यों की तरफ से मोहरें लगायीं।

   टॉड साहब ने इन्हीं दिनों में लार्ड हेस्टिंग्ज से पश्चिमी राज्यों के पोलिटिकिल एजेण्ट होने का पद प्राप्त किया। साथ ही वह राणा के दरबार का एजेण्ट भी बनाया गया। सन् 1817 और 1818 ईसवी के युद्धों में टॉड साहब के अधिकार में एक अंग्रेजी सेना थी। उसको लेकर टॉड ने होलकर और बूँदी के राजाओं के साथ युद्ध किया था और कोटा राजा से संधि की थी।

गया। उदयपुर से एक कोस की दूरी पर हम सब का स्वागत करने के लिये एक स्थान सजाया गया था। वहाँ पर शतरंजियाँ बिछी थीं और उनके ऊपर बड़ी खूबसूरती के साथ गलीचे बिछाये गये थे। वहाँ पर सबसे पहले मैंने राजकुमार जवानसिंह को देखा। उसका सुन्दर बदन, शिष्टाचार, स्वाभिमान, विनम्रभाव और अच्छा व्यवहार देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। इसके पहले भी मैंने एक बार उसे देखा था। उस समय वह छोटा था। उसके आज के व्यवहारों के प्रति मैंने उस समय उसको देखकर कल्पना नहीं की थी।

सूरजद्वार से होकर मैंने उदयपुर में प्रवेश किया। रास्ते में दोनों तरफ सुन्दर वृक्ष लगे हुये थे। वहाँ का दृश्य देखकर इस बात का सहज ही आभास होता था कि जहाँ से हम लोग गुजर रहे हैं, पूरी तरह से वीरान हो चुका है। जहाँ से हम लोग चल रहे थे, रामप्यारी का महल भी वहीं पर था। रामप्यारी का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह महल राजपूताना के अन्यान्य महलों के समान कई मंजिलों का बना था। उसकी सुन्दरता और श्रेष्ठता प्रशंसा के योग्य थी। उसका निर्माण अन्य महलों के समान हुआ था। आस-पास की ऊँची दीवारों पर अद्‌भुत नक्काशी का काम था और महल के भीतर मनोहर कमरे और दालानें थीं। बीच में खुला हुआ दीवानखाना था। वहीं पर हम लोगों के स्वागत की तैयारियाँ थीं। बाद में हमें रहने के लिए यही महल मिल गया था। इस महल के एक भाग में हम लोगों के खाने के लिए भोजन बना था। उस भोजन में मीठी, नमकीन बहुत-सी चीजें थीं। खाने के पदार्थों में अनेक प्रकार के फल भी थे। वहाँ पर एक हजार रुपये की एक थैली भी रखी थी। रुपये उन लोगों में बाँटे जाने के लिए थे, जिन्होंने हम सब के आने का पहले पहल समाचार राणा को दिया था। इस प्रकार का पुरस्कार देना राजपूतों की एक पुरानी प्रथा के अनुसार था। राणा से भेंट के लिए दूसरा दिन निश्चित हुआ। लेकिन उसी दिन शाम को चार बजे राणा के आदमियों से समाचार मिला कि राणा ने आप से मिलने का प्रबन्ध आज ही किया है।

इस समाचार के बाद कुछ समय में लोगों की भीड़ दिखायी पड़ने लगी। भीड़ के लोग दूर से हम लोगों की तरफ देख रहे थे। राजभवन में जाने के लिए हम लोग अपने स्थान से रवाना हुए। आगे बढ़ते हुए हम लोगों ने लोगों को नारे लगाते हुए सुना – "जय जय फिरंगी राज!" राज्य के भाट लोग मेरे नाम का प्रयोग अपनी कविताओं में करके जोर के साथ कवितायें कह रहे थे और स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, उनके द्वारा हम सब के स्वागत की खुशी मनायी जा रही थी, स्वागत में हम लोगों ने स्त्रियों को राजस्थानी भाषा में गाना गाते हुये सुना। जिस मार्ग से हम लोग जा रहे थे, वह दर्शकों की भीड़ से भरा हुआ था। राजभवन के समीप आ जाने पर हम लोगों ने हाथी और घोड़ों से उतर कर पैदल चलना शुरू किया और कुछ ही देर में राजभवन में प्रवेश किया। वहाँ पर ऊँचे और विस्तृत चबूतरे बने हुए थे जिनमें हाथी और घोड़े अपना खेल दिखा रहे थे।

राजभवन की बनावट अत्यन्त सुन्दर और सुदृढ़ है, उसमें संगमरमर और दूसरे मजबूत पत्थर लगे हुए हैं। जमीन से उसकी ऊँचाई एक सौ फीट है। राजभवन के प्रत्येक पार्श्व में आठ कोने के बुर्जों पर गुम्बज बने हुये हैं। पर्वत के ऊपर होने के कारण वे बहुत ऊँचे मालूम होते हैं। बुर्ज के ऊपर चढ़ कर देखने से पर्वत के सभी दृश्य साफ-साफ दिखायी देते हैं। भवन के बाहर-बड़े द्वार पर सिंधी सिपाहियों का पहरा था। राजभवन से दीवानखाने तक दोनों तरफ राजपूत सशस्त्र खड़े हुए थे। राजभवन के भीतर एक गणेश दरवाजा है, उस द्वार से होकर दीवानखाने जाना पड़ता है। पत्थरों से बनी हुई दीवानखाने की सीढ़ियों को हम लोगों ने पार किया। आगे बढ़ने पर हमको चोपदार मिले, जो किसी के आगमन की सूचना राणा को देते थे। उनके दलानों को पारकर दीवानखाने में जाना पड़ता

है। दीवानखाने के द्वार पर पहुँचते ही हम लोगों के आने की सूचना वहीं से खड़े हुए भालेदार ने दी। उसी समय राणा ने सिंहासन से उठकर हमारी तरफ कदम बढ़ाये। राणा के उठते ही सरदारों ने भी खड़े होकर हम लोगों का स्वागत किया। यहाँ की सजावट किसी प्रकार दिल्ली दरबार से कम न थी। सिंहासन के सामने ही हम लोगों को स्थान मिला। यह वही स्थान था, जो इस दरबार में किसी पेशवा को दिया गया था। इस दरबार का स्थान सूर्य महल के नाम से प्रसिद्ध है। राणा के बैठने का सिंहासन बहुत ही कीमती और सुदृढ़ बना हुआ है। दरबार के प्रधान सोलह सरदार राणा के दाहिने और बांये बैठते हैं। उनके नीचे एक तरफ राजकुमार जवानसिंह के बैठने का स्थान है। राणा के सामने राज्य के मन्त्री का स्थान है। राणा के पीछे की तरफ राज्य के प्रधान अधिकारी और विश्वासी लोग बैठते हैं। हम सब के पहुँचने पर राणा को जो प्रसन्नता हो रही थी, उसे हम लोगों ने सहज ही अनुभव किया। राणा ने कुछ देर तक अपने संकटों की बातें कहीं। उनकी बातों को सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मन ही मन राणा की सहायता करने का संकल्प किया। राणा की बातों को सुनकर मैंने कहा –

"हमारे गवर्नर-जनरल को आपके वंश की श्रेष्ठता मालूम है। आपके संकटों के साथ हम सब को पूरी सहानुभूति है। हमारे गवर्नर जनरल का इरादा है कि आपके संकटों को प्रत्येक अवस्था में दूर किया जाये और हम लोग आपकी सहायता करके गौरव की वृद्धि करें।"

बातें हो जाने के बाद राणा ने हमको और हमारे साथ के लोगों को भेंट में बहुमूल्य चीजें दीं। हमें राणा ने एक सजा हुआ हाथी, एक श्रेष्ठ घोड़ा, जवाहरात जड़े हुए आभूषण, मोतियों की एक माला, एक कीमती शाल और कुछ अन्य वस्त्र दिये। इसके बाद राणा से विदा होकर हम लोग अपने ठहरने के स्थान पर चले आये। हमारे लौटकर आ जाने के बाद राणा के साथ राज्य के मन्त्री और सरदार लोग हम लोगों से मिलने के लिए हमारे स्थान पर आये। मैं अपने स्थान से चलकर कुछ दूरी पर स्वागत के लिए गया और राणा के सम्मान में मैंने सेना से सलामी करायी। राणा के बैठने के लिये मैंने पहले से ही एक ऊँचे स्थान की व्यवस्था की थी। उसी पर राणा को मैंने बिठाया। राणा ने उस समय बहुत सी बातें की। अन्त में मैंने राणा को एक हाथी, दो घोड़े, उसकी कीमती झूलें और कुछ चीजें भेंट में दीं। इनके सिवा मैंने बहुमूल्य रत्न भी राणा को भेंट में दिये। राजकुमार उमराव सिंह बीमार होने के कारण राणा के साथ नहीं आया था। मैंने उसके लिए एक उत्तम घोड़ा और कुछ कीमती चीजें भेंट में देते हुए राणा के सामने रखी। राणा का बेटा जवानसिंह राणा के साथ आया था। मैंने उसको भेंट में एक घोड़ा और कुछ कीमती सामान दिया। जो कर्मचारी राणा के साथ आये थे, मैंने उनको भी भेंट में रुपये दिये। उस समय राणा के सम्मान में मैंने बीस हजार रुपये खर्च किये।

राणा की उदारता और महानता में कोई अन्तर नहीं है। राज्य के मंत्रियों में किशनदास बहुत समझदार और विचारशील था। उसने राज्य का सदा हित करना अपना कर्त्तव्य समझा था। परन्तु उस समय उसकी मृत्यु हो चुकी थी। राज्य के पतन के दिनों में बहुत से सरदार राणा के विरोधी हो गये थे। परन्तु अंग्रेजों के साथ संधि होने के कुछ दिन बाद विरोधी सरदारों में परिवर्तन हुआ और उनमें से कितने ही आकर राणा से मिल गये। अंग्रेजों की सहायता से अनेक कार्य राज्य की उन्नति के लिए किये गये। मराठों के अत्याचारों से राज्य के जो लोग भाग कर चले गये थे, उनको वापस बुलाने का राणा ने इरादा किया। परन्तु इसमें दो बाधायें भयानक थीं। एक तो यह कि जो लोग राज्य छोड़कर चले गये थे, वे दूसरे राज्यों में जाकर बस गये थे और उन्होंने अपने सम्बन्ध वहाँ के लोगों

के साथ कायम कर लिये थे। अब आसानी से उन सम्बन्धों को तोड़ा नहीं जा सकता था। फिर भी राणा ने इस आशय की एक विज्ञप्ति लिखकर प्रकाशित की कि मेवाड़ के जो लोग शत्रुओं के अत्याचारों से राज्य छोड़कर भाग गये हैं, उनको लौटकर अपने स्थानों पर आ जाना चाहिये। इसका उत्तर उन लोगों ने, जो राज्य छोड़कर चले गये थे अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में दिया। उन्होंने कहा –"शत्रुओं के अत्याचारों तथा देशद्रोहियों के पाखन्डों से हम अपना बपौती का अधिकार नहीं छोड़ देंगे।"

भागे हुए लोगों के लिए राणा की घोषणा हो चुकी थी। अपनी मातृभूमि में लौटकर आने के लिए लोगों को अपार आनन्द का अनुभव होने लगा। अपने घरों का सामान छकड़ों पर लादकर लोग मेवाड़ की तरफ रवाना हुए। इस समय उनके मन में प्रसन्नता का ठिकाना न था। रास्ते में चलते हुए वे सब मिलकर गाना गा रहे थे। मेवाड़ में पहुँच कर लोगों ने अपने-अपने घरों में प्रवेश किया। अंग्रेजों के साथ संधि होने के आठ महीने बाद मेवाड़ के तीन सौ नगर और ग्राम मनुष्यों से आबाद हो गये। जो जमीन बहुत दिनों से बेकार पड़ी थी, उसमें फिर से खेती का काम आरम्भ हुआ। जो नगर और ग्राम सूनसान हो गये थे, उनमें फिर मनुष्यों का कोलाहल सुनायी पड़ने लगा। निर्जन हो जाने के कारण जहाँ पर जंगली पशुओं ने अपने रहने के लिए स्थान बना लिए थे, अब फिर से वहाँ पर मनुष्यों की चहल-पहल दिखायी पड़ने लगी।

अंग्रेजों के साथ संधि करने के बाद राणा को बहुत बड़ी राहत मिली थी। इसीलिए अपने मंत्रियों के परामर्श से उसने उन लोगों को पास बुलाने की घोषणा की थी, जो अत्याचारों के दिनों में राज्य से भाग गये थे। वे लोग बड़े सुख तथा स्वाभिमान के साथ लौट कर आ गये। उनके आ जाने से उजड़े हुए घर, ग्राम और नगर बहुत कुछ बस गये लेकिन राज्य के लिये इतना ही काफी नहीं था। जो लोग लौटकर आये थे उनके पास कोई कार्य, व्यवसाय न था। राणा के पास उनकी सहायता के लिए सम्पत्ति न थी। राज्य में फैले हुए अत्याचारों के दिनों में भी जिन लोगों ने किसी प्रकार अपने धन की रक्षा कर ली थी, राणा ने उन लोगों से इस समय ऋण माँगा और विवश अवस्था में राज्य के इन लोगों से छत्तीस प्रतिशत सूद पर राणा को कर्ज लेना पड़ा।

राणा के ऊपर पहले से ही कर्ज का भार था, वह अब और भी अधिक कर्जी हो गया। इन दिनों में बाहरी व्यापारियों ने कर्ज देने का व्यापार मेवाड़ में शुरू किया और राज्य में स्थान-स्थान पर उसकी शाखायें कायम हो गयीं। लेकिन यह बहुत दिनों तक नहीं चला। राज्य में इन व्यवसायियों के विरुद्ध प्रबन्ध हुआ और जो व्यवस्था की गयी, उससे बाहरी व्यवसायियों का आतंक समाप्त हो गया। अपने व्यवसाय को नष्ट करके भीलवाड़ा उजड़ चुका था। लेकिन इन दिनों में उसने फिर उन्नति की और जिस भीलवाड़ा में पहले छः सौ दुकानें थीं, वहाँ पर बारह सौ दुकानें खुल गयीं। उसके टूटे-फूटे मकानों की मरम्मत हो गयी और उसका बाजार रोजाना उन्नति करने लगा।

राज्य की इस उन्नति में अनेक बाधायें भी पड़ी। स्वार्थों के कारण व्यवसायी लोग आपस में द्वेष करने लगे। चूँन्डावतों और शक्तावतों का पिछले दिनों में मेल भी हो गया था, लेकिन उनके बीच में कलुषित व्यवहारों ने इन दिनों में फिर से उग्र रूप धारण किया। राज्य के जिन शुभचिंतकों ने उनमें एकता कायम रखने की कोशिश की थी, वे निराश हो गये। शक्तावत सरदार जोरावर सिंह ने तो यहाँ तक कह डाला कि भेड़िया और बकरी का एक घाट पानी पीना संभव हो सकता है, परन्तु चूँन्डावत और शक्तावत लोगों का मेल के साथ रह सकना संभव नहीं हो सकता।

अंग्रेजों के साथ राणा की संधि हो चुकी थी, परन्तु सामन्तों और सरदारों के साथ राणा के क्या सम्बन्ध रहेंगे, इसका निर्णय अभी तक बाकी था। इसके लिए राणा ने सब सामन्तों और सरदारों की एक सभा की और इसके सम्बन्ध में लिखी गयी पत्रिका विचार और निर्णय के लिए सब के सामने उपस्थित की गयी। बड़ी उलझनों और आलोचनाओं के बाद जो निर्णय हुआ, उस पर राणा तथा सामन्तों और सरदारों के हस्ताक्षर हो गये। राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप से आरम्भ हुई। जो सरदार राज्य से निकाले गये थे, उनको बुलाया गया और जिन सरदारों ने विद्रोह कर रखा था, उनका दमन किया गया। व्यवसाय की उन्नति के सब साधन जुटाए गये, विद्रोही सरदारों ने राज्य के जिन इलाकों पर अधिकार कर लिया था, उन पर फिर से अपना अधिकार करने के लिए राणा ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और उसमें राणा को सफलता भी मिली। इस सिलसिले में कुछ घटनाओं का यहाँ पर संक्षेप में उल्लेख करना आवश्यक है।

मेवाड़ में अरझा नाम का एक दुर्ग है। पूरावत गोत्र के सरदारों ने इस दुर्ग को राणा के अधिकार से जबरदस्ती ले लिया था। पन्द्रह वर्षों के बाद शक्तावतों ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया और राणा को दस हजार रुपये देकर उन लोगों ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया। इन दिनों में उस दुर्ग को शक्तावत लोगों से ले लेना जरूरी समझा गया। जब शक्तावत लोगों ने सुना कि राणा का इरादा इस दुर्ग को भी लेने का है तो वे लोग बहुत चिंतित हो उठे। शक्तावतों और चूँन्डावतों पर मेवाड़ का गौरव निर्भर करता है। इस विद्रोह की आशंका होने से राणा को भी बड़ी चिंता हुई। लेकिन अरझा दुर्ग के सम्बन्ध में बड़ी बुद्धिमानी के साथ निर्णय किया गया, जिससे राणा और शक्तावतों के बीच पैदा होने वाला विद्रोह दब गया। इस दुर्ग के सम्बन्ध में जिन सरदारों के विद्रोही होने की संभावना थी, उनमें दो प्रमुख थे और उनमें एक का नाम जैतसिंह था। राठौर वंश की मैड़तिया शाखा में इसका जन्म हुआ था। बादशाह अकबर के साथ युद्ध करने वाले शूरवीर जयमल ने भी इस शाखा में जन्म लिया था।

राणा के साथ जैतसिंह का विरोध जब शांत न हो रहा था तो राणा ने उसका निर्णय मुझे सौंप दिया था। मैंने उसे सभी प्रकार समझाने की कोशिश की और उसमें मुझे सफलता मिली। मैंने उसका विरोध समाप्त कर दिया और जैतसिंह ने अधिकारों को खत्म करते हुए राणा के नाम जो कुछ लिखा, उसे उसने मेरे हाथों में दे दिया।

भदेश्वर के सरदार हमीर का वर्णन पहले किया जा चुका है। चूँन्डावत गोत्र में उसने जन्म लिया था। मेवाड़राज्य में वह दूसरी श्रेणी का सरदार था, राणा के प्रधानमन्त्री सोमजी को जिस सरदार ने मार डाला था, हमीर उसी का बेटा था। जिन सरदारों ने मेवाड़राज्य के साथ विद्रोह किया था, हमीर उनमें प्रधान था। उसकी जागीर की आमदनी तीस हजार रुपये से अधिक न थी। लेकिन अपने बल-पौरुष के द्वारा उसने अपनी आमदनी अस्सी हजार रुपये वार्षिक की बना रखी थी। उसने राणा पर अपना अनुचित प्रभाव कायम कर रखा था। लावा का शक्तावत सरदार उसका अभिन्न मित्र था। खैरोदा का दुर्ग भी उस समय उसी के अधिकार में था। दोनों का स्वभाव एक-सा था और दोनों ने अपनी कुटिल राजनीति से राणा को प्रभावित कर लिया था। अन्य विद्रोही सरदारों की जागीरें जब राणा ने वापस ले ली थीं, उन दिनों में भी लावा सरदार और हमीर अनाधिकृत रूप से अपनी जागीरों का भोग कर रहे थे।

इस दशा में कुछ दिनों के बाद राणा ने लावा के सरदार को हिदायत दी कि "जब तक आप खैरोदा का दुर्ग और बलपूर्वक अधिकार में रखी हुई जागीर राज्य को वापस

नहीं देते, आपको राज-दरबार में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।" इससे हमीर जल उठा और आवेश में आकर उसने इस प्रकार की कड़वी बातें कहीं, जो किसी प्रकार उसको न कहनी चाहिए थी। राणा ने उसके दमन का कार्य मुझे सौंप दिया। मैं इसके लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक बार राणा की आज्ञा से राज्य के सैनिक उस दुर्ग पर अपना कब्जा करने गये तो दुर्ग के अधिकारी ने अपमान के साथ उनको दुर्ग के बाहर से लौटा दिया। यह जानकार मुझे बहुत बुरा लगा और विवश होकर मुझे हमीर के साथ कठोर व्यवहार करना पड़ा और राज दरबार में बैठे हुए हमीर को सबके सामने जाहिर किया कि जो दुर्ग तुम्हारे अधिकार में था, उसे लेकर राज्य में मिला लिया गया है। मेरी इस बात को सुनकर राणा ने सामन्तों और सरदारों को संतोष देने के लिए कुछ बातें कहीं और अपनी निर्भीकता भी प्रकट की। हमीर के अशिष्ट व्यवहारों के कारण अन्त में राणा ने उसको राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। परन्तु इसके सम्बन्ध में कुछ बातों के बाद निर्णय हुआ कि हमीर के अधिकार से सम्पूर्ण इलाका जब्त करके राज्य में उस समय तक के लिए मिला लिया जाये, जब तक बलपूर्वक अधिकार में लाये हुए राज्य के ग्रामों से वह अपना अधिकार वापस न ले ले।

इस प्रकार के निर्णय से हमीर बहुत निराश और दुःखी हुआ। उसी रात वह उदयपुर छोड़कर चला गया और अपने अधिकार की समस्त भूमि उसने राणा को दे दी। साथ ही उसने भदेश्वर का दुर्ग भी राणा को दे दिया।

इसी प्रकार आमली दुर्ग की भी घटना है। इस दुर्ग की सम्पूर्ण भूमि आमेर के सरदार के अधिकारों में सत्ताईस वर्षों से थीं और अर्द्ध शताब्दी से वहाँ के लोग उसकी भूमि पर अधिकार किये चले आ रहे थे। वे लोग जगवत शाखा में पैदा हुए थे और मेवाड़ के सौलह सरदारों में माने जाते थे। बदनोर के सरदार के बाद उन्हीं लोगों का स्थान है। इस आमली दुर्ग का अधिकार भी राणा ने अंग्रेजों की सहायता से प्राप्त किया।

मेवाड़राज्य में भूमि का मालिक किसान माना जाता है। इस अधिकार को वहाँ के किसान बपौती कहते हैं। किसानों की भूमि पर कभी कोई दखल नहीं दे सकता और न उन पर कोई कर लगाया जाता है। किसानों के इस अधिकार के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ घटनाओं को सामने लाना आवश्यक है। किसी समय मण्डोर नगर में मारवाड़ की राजधानी थी। गुहिलोत राजकुमार का विवाह किसी समय मारवाड़ की राजकुमारी के साथ हुआ। राजपूतों की प्रथा के अनुसार कन्या के पिता को जामाता की माँग को पूरी करना पड़ता था। इस प्रथा के अनेक दुष्परिणाम राजस्थान में देखे गये हैं। गुहिलोत राजकुमार ने लड़की के पिता से दस हजार जाटों की माँग की। ये जाट मारवाड़ राज्य में खेती करते थे। लड़की के पिता ने जामाता के मांगने पर दस हजार जाटों को मेवाड़ जाने की आज्ञा दी। राजा के इस आदेश को सुनकर जाट लोग घबरा उठे। वे जाने के लिए तैयार न थे।

अन्त में जाटों ने आपस में परामर्श करके निर्णय किया और अपने राजा से उन लोगों ने प्रार्थना की —"क्या हम लोग अपना बपौती छोड़कर एक अपरिचित राज्य में चले जायेंगे? अगर आप चाहें तो हमारा संहार करा सकते हैं। लेकिन हम लोग अपना यह अधिकार छोड़कर कहीं जा नहीं सकते।" इस विरोध में मारवाड़ के राजा को उन सभी जाटों के लिए जिन्हें जामाता की माँग पर मेवाड़ भेजा जा रहा था—उनकी जमीनें सदा के लिए लिख देनी पड़ी। अपने इस अधिकार को प्राप्त करके जाटों ने जाना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार की घटनाओं से साबित होता है कि राजस्थान में भूमि पर पूर्ण रूप से किसानों का अधिकार है। राजा कर वसूल करता है। मेवाड़ में इस कर के लेने की व्यवस्था आवश्यक है, अनाज के ऊपर मेवाड़ में दो तरह का कर लिया जाता है। ये दोनों कर कंकूट और भुट्टाई या बंटाई के नाम से प्रसिद्ध हैं। गन्ना, पोस्त, सरसों, सन, तम्बाकू, रुई, नील और फूलों पर दो रुपये प्रति बीघा से लेकर छः रुपये तक कर लिया जाता है। खेतों में अनाज के काटे जाने के पहले राज कर्मचारी अनुमान के आधार पर जो कर लगा देते हैं, उसको कंकूट कहते हैं। खेत का स्वामी कृषक यदि चाहे और समझे कि उस पर कर अधिक लगा लिया गया है, तो उसके विरुद्ध वह राजा के यहाँ प्रार्थना पत्र दे सकता है। भुट्टाई कर के लिए भी वह राजा को प्रार्थना पत्र दे सकता है। खलिहान में अनाज तैयार हो जाने पर और पैदावार ठीक-ठीक मालूम हो जाने पर राज कर्मचारियों के द्वारा जो कर लगाया जाता है, उसे भुट्टाई कहते हैं।

यहाँ पर भुट्टाई अथवा बटाई की प्रथा पुरानी है। इस रीति के अनुसार जौ, गेहूँ और इस तरह की दूसरी चीजों पर पैदावार का तृतीयाँश अथवा दो पंचमांश राजा को मिलता है और कभी-कभी आधा भी कंकूट और भुट्टाई की रीतियों के अनुसार, बाजार भाव से कर जोड़कर निश्चित किया जाता है।

इन करों के लगाने में राज कर्मचारी आम तौर पर किसानों के साथ बेईमानी करते हैं। वे किसानों से रिश्वत लेते हैं और रिश्वत लेकर वे किसानों की पैदावार कम दिखाते हैं। रिश्वत न पाने पर वे पैदावार को अधिक जाहिर करते हैं। ऐसा करने से किसानों पर लगने वाला कर बढ़ जाता है। एक कर्मचारी के बाद दूसरा आता है और वह भी रिश्वत लेता है। किसानों का सम्बन्ध एक ही कर्मचारी से नहीं रहता। रिश्वत देकर एक कर्मचारी की सहायता प्राप्त कर लेने के बाद किसान अपनी दी हुई रिश्वत का लाभ नहीं उठा पाता। दूसरा कर्मचारी आकर उससे रिश्वत पाने की आशा करता है। न पाने पर वह किसान के विरुद्ध रिपोर्ट करता है कि उसके खेतों की पैदावार राज्य के कागजों में कम दिखाई गई है। कर के सम्बन्ध की यह व्यवस्था किसानों के लिये बड़ी घातक है। सन् 1818 ईसवी में मेवाड़राज्य में सुधार आरम्भ हुए। उनकी शुरुआत अंग्रेजों की संधि के बाद से हुई। सन् 1821 ईसवी के अंतिम दिनों में राज्य के तीन इलाकों की मनुष्य गणना की गयी। उनके सत्ताईस गाँवों में से केवल छः गाँवों में मनुष्यों की आबादी थी और उनमें सब मिला कर केवल तीन सौ उनहत्तर मनुष्य पहले रहते थे। इनमें भी तीन चौथाई आमली दुर्ग के थे। लेकिन नवीन गणना के अनुसार उन छः गाँवों में नौ सौ छब्बीस मनुष्य रहते हुए पाये गये। तीन वर्षों में उनकी आबादी बढ़कर तीन गुनी हो गयी। इसके साथ-साथ वहाँ की खेती और दूसरे व्यवसायों में भी उन्नति हुई। चौगुनी भूमि में खेती का काम होने लगा। अंग्रेजों से संधि के बाद राज्य ने तेजी के साथ सभी प्रकार की उन्नति की। कमलमीर, रायपुर, राजनगर, सादड़ी और कुनेडा मराठों से लेकर, कोटा से जिहाजपुर लेकर विद्रोही सरदारों से बहुत-सी भूमि और पहाड़ी लोगों से मैरवाड़ा लेकर राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार जो नगर और ग्राम फिर से राज्य में मिलाये गये, उनकी संख्या कुछ ही दिनों में एक हजार तक पहुँच गयी।

सन् 1818 ईसवी से 1822 ईसवी तक मेवाड़ से जो कर वसूल हुआ, उसकी फेहरिस्त नीचे लिखी गई है। उसके द्वारा मेवाड़ की होने वाली उन्नति का अनुमान आसानी के साथ किया जा सकता है :

रबी की फसल से	सन् 1818 ई. का	40,000 रुपये
रबी की फसल से	सन् 1819 ई. का	4,51,281 रुपये
रबी की फसल से	सन् 1820 ई. का	6,59,100 रुपये
रबी की फसल से	सन् 1821 ई. का	10,18,478 रुपये
रबी की फसल से	सन् 1822 ई. का	9,36,640 रुपये

अंग्रेजों के साथ संधि होने के पहले मेवाड़ की क्या दशा थी, इस पर पहले लिखा जा चुका है। संधि के बाद पहले की दशा में परिवर्तन हुआ और राज्य में सभी प्रकार की शांति और सुविधा बढ़ी, जिनसे उन्नति आरम्भ हुई। सन् 1818 से 1822 ईसवी तक राज्य के पाँच प्रमुख नगरों की मनुष्य-गणना का हिसाब नीचे लिखा जाता है। उससे मालूम होता है कि संधि के पहले क्या हालत थी और उसके बाद चार वर्षों में किस प्रकार मनुष्यों की संख्या बढ़ी :

नगर	सन् 1818 ई. में	घरों की संख्या	सन् 1822 ई. में	घरों की संख्या
उदयपुर	सन् 1818 ई. में	3,500	सन् 1822 ई. में	10,00
भीलवाड़ा	सन् 1818 ई. में	9, 000	सन् 1822 ई. में	27,00
पुरा	सन् 1818 ई. में	200	सन् 1822 ई. में	1,200
मंडल	सन् 1818 ई. में	80	सन् 1822 ई. में	400
गोसुन्द	सन् 1818 ई. में	60	सन् 1822 ई. में	250

इस तालिका में जो घर दिखाये गये हैं, वे सब मनुष्यों से भरे हुये थे। यह बढ़ती हुई आबादी इस बात का प्रमाण है कि संधि के पहले लोगों के जीवन में जो अशांति और दुरवस्था थी, वह संधि के बाद दूर हो गयी। इन दिनों में राज्य की खेती ने जो उन्नति की थी, उसे ऊपर लिखा जा चुका है। व्यावसायिक उन्नति का विवरण नीचे दिया जाता है :

सन् 1818 ई. में वाणिज्य कर	बहुत साधारण
सन् 1819 ई. में वाणिज्य कर	96,683 रुपये
सन् 1820 ई. में वाणिज्य कर	1,65,108 रुपये
सन् 1821 ई. में वाणिज्य कर	2,20,000 रुपये
सन् 1822 ई. में वाणिज्य कर	2,15,000 रुपये

ऊपर लिखे गये विवरण इस बात के प्रमाण हैं कि अंग्रेजों से संधि के बाद मेवाड़-राज्य ने उन्नति की। इस राज्य की आर्थिक आय का साधन उसकी खानें थीं। करीब आधी शताब्दी से उन खानों के द्वारा राज्य को तीन लाख रुपये वार्षिक से अधिक की आमदनी होती थी।[1]

इस प्रकार की परिस्थितियों के कारण राज्य का भीषण रूप से पतन हुआ। आर्थिक पतन के नाम पर राज्य की गरीबी भयानक हो उठी। ऐसी दशा में जबकि राज्य के सभी व्यवसाय नष्ट हो चुके थे, खानों के खुदवाने का काम बिल्कुल असंभव था। इसीलिए अरसे से राज्य में वह कार्य बन्द रहा और अब तक बन्द है। खानों की जमीन पर बहुत दूरी तक पानी भरा हुआ है और अब वे नष्ट हो चुकी हैं। एक बार इसके लिये चेष्टा की गयी थी। लेकिन उससे लाभ होने की आशा न होने के कारण उस कार्य को बन्द कर देना पड़ा।

☐

---

1. सन् 1618 ईसवी में जावर की टीन खान से 2,22,000 रुपये और दुरिबाड़ा से 8,000 रुपये की आमदनी हुई थी। इन खानों में टीन के साथ-साथ चाँदी भी निकली थी।

अध्याय—28
मेवाड़ में धार्मिक जीवन, उत्सव व त्यौंहार

भारत का प्रधान और पुराना धर्म सनातन धर्म है। उस धर्म के सभी रीति-रिवाज पौराणिक कथाओं के आधार पर चलते हैं। हिन्दुओं के शास्त्रों में जो धार्मिक आदेश दिये गये हैं, उनका समन्वय कथाओं के रूप में पुराणों में किया गया है। इन कथाओं की आलोचना करना हमारा यहाँ पर उद्देश्य नहीं है। इसलिये उनके सम्बन्ध में यहाँ पर इतना ही लिखना आवश्यक है कि धर्म के नाम पर जो रीति और रिवाज इस देश में प्रचलित हैं, उनको पुराणों से प्रेरणा मिलती है। राजस्थान में इन पुराणों का अधिक प्रभाव है। इस देश में और विशेषकर राजस्थान के राज्यों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुये हैं। उनके पुराने अस्तित्व मिट गये हैं। वड़ी-वड़ी राजधानियाँ वर्वाद हो गयी हैं, विशाल नगर वीरान हो गये हैं और उनमें रहने वाले मनुष्यों के जीवन में अगणित परिवर्तन हुए हैं। परन्तु उनके प्रचलित रिवाजों और व्यवहारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

हिन्दुओं के धार्मिक मूल ग्रन्थ वेद हैं परन्तु उनके धार्मिक विश्वासों को प्राचीनकाल से लेकर अब तक पुराणों से प्रेरणा मिली है। राजपूत इन पुराणों को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। राजस्थान में महादेव की पूजा होती है। राजपूत महादेव को ही अपना आराध्य देवता मानते हैं। वे लोग महादेव को एकलिंग भगवान के नाम से भी पुकारते हैं। मेवाड़ में एकलिंग के जितने भी मंदिर हैं, उनमें आराध्य देव की मूर्ति के आगे धातु की वनी हुई वृषभ की मूर्ति पायी जाती है। गुहिलोत वंश के राजा एकलिंग को अपना भगवान मानते हैं और उसी की पूजा करते हैं।

उदयपुर से तीन कोस उत्तर की तरफ एक पहाड़ी मार्ग के वीच में भगवान एकलिंग का प्रसिद्ध मंदिर है। एकलिंग के पुजारियों को गोस्वामी कहा जाता है। ये लोग अपना विवाह नहीं करते। उनके शिष्य उत्तराधिकारी होते हैं। शैवपुजारी अपने शरीर में भस्म लगाते हैं और गेरुए वस्त्र पहनते हैं। मरने पर ये लोग जलाये नहीं जाते वल्कि इनके मृत शरीर को समाधि दी जाती है।

बोलचाल की भाषा में गोस्वामियों को (गोसाई) कहा जाता है। मेवाड़ में बहुत से ऐसे गोसाईं लोग पाये जाते हैं, जो केवल पुजारी ही नहीं होते, वल्कि वे दूसरा व्यवसाय भी करते हैं।

इन गोसाईं लोगों ने मेवाड़ में राजा की तरफ से सदा सम्मान प्राप्त किया है। बहुत से राजकर्मचारी वहाँ पर गोसाईं देखे गये हैं। लोग अपने मठों और आश्रमों में रहा करते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए राज्य की तरफ से उनको भूमि दी जाती है। कुछ लोग भिक्षा

संघर्ष का वर्णन कविचन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में बड़े विस्तार के साथ किया है। उस ग्रन्थ में लिखा है कि पृथ्वीराज के द्वारा संयोगिता का अपहरण होने पर दिल्ली और कन्नौज की सेनाओं में पाँच दिनों तक भीषण युद्ध हुआ। इस संग्राम में भारत के प्रसिद्ध वीरों के मारे जाने पर यह देश निर्वल पड़ गया। इस अवसर का लाभ उठाकर शहाबुद्दीन गौरी ने भारत पर आक्रमण किया। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत की स्वाधीनता नष्ट हो गयी।

महमूद के आने के पहले से और इस समय तक भारत का शासन चार प्रधान राज्यों में विभाजित था। (1) दिल्ली में तोमर और चौहानों का राज्य, (2) कन्नौज में राठौड़ों का राज्य (3) मेवाड़ में गहिलोतों का राज्य (4) अनहिलवाड़ा पट्टन में चावड़ा और सोलंकियों का राज्य।

उन दिनों में सम्पूर्ण भारतवर्ष इन चार राज्यों में विभाजित था और उनमें से प्रत्येक राजा की अधीनता में बहुत से छोटे-छोटे राजा शासन करते थे। बड़े राजा की अधीनता में जो छोटे-छोटे राज्य थे, उनमें जागीरदारी प्रथा चलती थी।

दिल्ली और कन्नौज दोनों स्वतन्त्र राज्य थे और दोनों एक, दूसरे से बहुत दूर न थे। इन दोनों राज्यों के बीच काली नदी वहती थी। यूनानी लोगों ने इस नदी का नाम कालिन्दी लिखा है। काली नदी से सिन्धु नदी के पश्चिमी किनारे तक और हिमालय पहाड़ के नीचे से मारवाड़ और अरावली पहाड़ तक दिल्ली का विशाल राज्य फैला हुआ था। इस राज्य में चौहानों के एक सौ आठ सूबे थे। उन पर बहुत से अधीन राजा शासन करते थे। इस विशाल राज्य का स्वामी अनंगपाल तोमर था। पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली का राज्य अनंगपाल से पाया था।[1]

कन्नौज़ का राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में काशी और चम्बल नदी को पार करके बुन्देलखण्ड तक फैला था। दक्षिण में यह राज्य मेवाड़ की उत्तरी सीमा तक पहुँच गया था और पश्चिम में उसकी सीमा अनहिलवाड़ा तक थी।

भट्ट ग्रन्थों को पढ़ने से मालूम होता है कि इस देश के राजा सदा एक दूसरे के साथ लड़ते रहे हैं। गुहिलोतों और चौहानों में मित्रता और चौहानों तथा राठौड़ों में शत्रुता का भाव हमेशा से चला आ रहा है। राठौड़ों और तोमर राजपूतों की शत्रुता से इस देश को बहुत क्षति पहुँची है। वैवाहिक सम्बन्धों के कारण उनके कुछ संघर्ष कुछ दिनों के लिये शान्त हो गये थे, परन्तु उनके आन्तरिक वैमनस्य कभी मिट नहीं सके। यह फूट इस देश के विनाश की सदा कारण रही है। इस बात का प्रमाण यहाँ के प्राचीन इतिहास देते हैं।

महमूद गजनवी के पश्चात् यदि किसी यात्री ने यूरोप के बाद गजनी होकर दिल्ली, कन्नौज और अनहिलवाड़ा की यात्रा की होती तो वह निश्चित रूप से राजपूतों की सभ्यता और योग्यता को स्वीकार करता। उसे स्वीकार करना पड़ता कि राजपूत लोग जीवन की अन्य बातों में किसी से कम न थे। पश्चिमी देशों की भाँति इस देश के राज्यों में भी शासन की व्यवस्था जागीरदारी प्रथा के द्वारा होती थी। लेकिन उनकी आपस की फूट ने उन्हें आपस में लड़ाकर निर्वल बना दिया था। बाहरी आक्रमणकारियों ने उनकी इस निर्वलता का सदा लाभ उठाया और शहाबुद्दीन गौरी ने दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान के साथ युद्ध करके उसको पराजित किया। इस पराजय का कारण राजपूत राजाओं की फूट थी।

शहाबुद्दीन गौरी ने पृथ्वीराज को जीतकर दिल्ली पर अधिकार किया, उसके बाद उसने कन्नौज के राजा जयचन्द पर आक्रमण किया। जयचन्द इसके पहले पृथ्वीराज के साथ

1. पृथ्वीराज चौहान अनंगपाल की लड़की का बेटा था। अनंगपाल पृथ्वीराज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर और दिल्ली का राज्य सौंपकर बद्रिकाश्रम तप करने चला गया था।

युद्ध करके अपनी शक्तियों का क्षय कर चुका था। गौरी के आक्रमण करने पर जयचन्द के सामने एक भयानक विपदा पैदा हो गयी। किसी प्रकार अपनी सेना लेकर वह युद्ध-क्षेत्र में पहुँचा और उसने शहाबुद्दीन गौरी की विजयी सेना का सामना किया। उस युद्ध में अपनी पराजय को देखकर जयचन्द ने गंगा को पार कर भाग जाने की चेष्टा की। परन्तु उसका दुर्भाग्य उसके सिर पर मँडरा रहा था। गंगा के अगाध जल में जयचन्द की नाव डूब गयी और वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार राजा जयचन्द का अन्त और कन्नौज राज्य का पतन सम्वत् 1249 सन् 1193 ईसवी में हुआ। इस पतन के बाद कन्नौज राज्य की अधीनता में जो छत्तीस राजा शासन करते थे और आवश्यकता पड़ने पर राठौड़ों के झण्डे के नीच एकत्रित होते थे, वे सभी कन्नौज के राज्य की अधीनता से पृथक हो गये। राठौड़ों का विशाल राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। लेकिन राठौड़ वंश का अन्त नहीं हुआ। कन्नौज के पतन के बाद नयनपाल के वंशजों ने मरु प्रदेश में जाकर अपना अस्तित्व कायम किया। इस वंश की इकतीसवीं पीढ़ी में मानसिंह उत्पन्न हुआ, वह महान् प्रतापी हुआ। अपने शासन काल में उसने राठौड़ वंश के उस गौरव की फिर से प्रतिष्ठा की, जिसको नयनपाल ने कन्नौज जीतकर उन्नत बनाया था।

□

अध्याय–32
राव सीहाजी व मरुभूमि में राठौड़ वंश का विस्तार

कन्नौज के पतन के अठारह वर्षों के बाद सम्वत् 1268 सन् 1212 ईसवी में राजा जयचन्द के पौत्र सियाजी और सेतराम अपने राज्य की भूमि को छोड़कर मरुप्रदेश चले गये। उनके साथ दो सौ अन्य लोग भी वहाँ गये।

सिहाजी और सेतराम के कन्नौज छोड़कर मरु प्रदेश चले जाने का कारण क्या था, इस पर जो ग्रन्थ मिलते हैं, उनका मत एक नहीं है। कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि वे धार्मिक स्थानों के दर्शन करने के लिये कन्नौज से चले गये। उनका इरादा द्वारिका जाने का था, किसी का कहना है कि कन्नौज के पतन के बाद उन्होंने अपने सुख-सौभाग्य की खोज में मरु प्रदेश की यात्रा की थी। इस प्रकार के मतों में यद्यपि निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सही बात क्या थी। परन्तु अनुमान के आधार पर सत्य की खोज की जाती है।

सिहाजी राजा जयचन्द का पौत्र था। उसने स्वाभिमानी राठौड़ वंश में जन्म लिया था। शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण करने पर जयचन्द की मृत्यु हुई और उसके पूर्वजों के राज्य का पतन हुआ, उस समय सिहाजी की तरह किसी भी स्वाभिमानी मनुष्य का राज्य छोड़कर चला जाना ही उचित था। इस दशा में सिहाजी ने कन्नौज छोड़कर अच्छा ही किया। यदि उसने ऐसा न किया होता तो कन्नौज के पतन के बाद भारत के मरुप्रदेश में जिस प्रकार राठौड़ वंश का उत्थान और विस्तार हुआ, वह होता अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

मरुप्रदेश में पहुँचकर सिहाजी ने जिस विस्तृत स्थान पर अपना आधिपत्य और प्रभाव कायम किया, वह जमुना, सिन्ध और गारा नदी तथा अरावली पहाड़ की ऊंची चोटियों से घिरा हुआ था। वहाँ पर विभिन्न जाति के लोग उन दिनों में रहा करते थे। कछवाहों ने उस समय तक कोई प्रतिष्ठा नहीं पायी थी। उनके वंश का राजा पजोन कन्नौज के युद्ध में मुसलमानों के द्वारा मारा गया था। उसका वेटा मलैसी सिंहासन पर बैठा था। अजमेर, आमेर, साँभर और दूसरे चौहान राज्य मुसलमानों के अधिकार में चले गये थे। परन्तु अरावली के अनेक दुर्ग अब भी राजपूतों के अधिकार में थे। मुसलमानों के आक्रमण के बाद भी नाडोल नगर अपनी स्वाधीनता के साथ सुरक्षित था और बीसलदेव का एक वंशधर नाडोल में शासन करता था। मन्डोर नगर में अब भी परिहारों का गौरव प्रतिष्ठा पा रहा था। इंदाकुल परिहारों की एक शाखा है। मानसिंह इसी कुल में उत्पन्न हुआ था।

मन्दोर नगर में उसका अधिकार था। मानसिंह ने बहुत ख्याति पायी थी और मरुप्रदेश में वह एक श्रेष्ठ राजा माना जाता था।

उत्तर की तरफ नागौर कोट के करीब मोहिल लोग रहते थे। यद्यपि उनकी प्रतिष्ठा बहुत कुछ नष्ट हो गयी है। परन्तु ग्रन्थों में उनके बहुत से उल्लेख पाये जाते हैं। उन लोगों के राजा ने ओरीन्त नाम के स्थान पर अपनी राजधानी कायम की थी और उसके अन्तर्गत चौदह सौ चालीस गाँवों में उनका अधिकार था। बीकानेर से लेकर भटनेर तक सम्पूर्ण प्रदेश बहुत-से छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और वे राज्य जाट लोगों के अधिकार में थे। उनके पूर्व की तरफ गारा की रेतीली भूमि पर कई जंगली जातियों का अधिकार था। जैसलमेर में भाटी, उसके दक्षिण में सोन और सिन्धु एवं कच्छ प्रदेश में जाड़ेजा जाति के लोग रहा करते थे।

मरुप्रदेश में और भी अनेक जातियाँ रहती थीं। चन्दावती के पंवारों के बीच सोलंकी रहते थे। ईडर और मेवाड़ की कुछ जातियाँ, खण्डधर के गोहिल लोग, साचोर के देवड़ा, जालोर के सोनगरा, ओरीन्त के मोहिल लोग और सिनली के साला लोग - इस प्रकार कितनी ही प्राचीन जातियों के लोग उस विस्तृत मरुभूमि में रहा करते थे।

बीकानेर नगर से पश्चिम की तरफ बीस मील की दूरी पर कोलूमठ नामक एक स्थान है। सिहाजी अपने साथियों के साथ वहाँ पर पहुँचा। कोलूमठ में एक सोलंकी राजा का शासन था। उसने सिहाजी के साथ शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार किया। सोलंकी राजा के स्नेहपूर्ण व्यवहार से सिहाजी बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ पर लाखा फूलाणी नाम का एक राजपूत रहा करता था। वह जाड़ेजा वंश में उत्पन्न हुआ था। मरुप्रदेश में उसका एक प्रसिद्ध दुर्ग था। उसकी शक्तियाँ महान थीं और उसने वहाँ के लोगों को अपने अत्याचारों से बहुत दुःखी कर रखा था। लाखा का नाम उन दिनों में वहाँ दूर तक फैला हुआ था और सतलज से लेकर समुद्र के किनारे तक जितने भी नगर और ग्राम थे, उनके निवासी लाखा का नाम सुनते ही घबरा उठते थे।[1]

सोलंकी राजा ने सिहाजी और उसके साथियों को आदरपूर्वक अपने यहाँ स्थान दिया। वहाँ रहकर सिहाजी को लाखा की बहुत सी बातें सुनने को मिली। उसे यह भी मालूम हुआ कि यहाँ के लोग लाखा से बहुत डरते हैं और सोलंकी राजा स्वयं उससे भयभीत रहता है। वहाँ पर रहकर सोलंकी राजा के अच्छे व्यवहारों से सिहाजी बहुत प्रभावित हुआ और उसने सोलंकी राजा के शत्रु लाखा को पराजित करने का निश्चय किया।

सोलंकी राजा को सिहाजी का इरादा मालूम हुआ। उसने सिहाजी की सहायता में अपनी सेना देने का वादा किया और सिहाजी ने जब लाखा से युद्ध करने की तैयारी की तो सोलंकी राजा ने अपनी सेना देकर सिहाजी को सेनापति बनाया। सिहाजी का भाई सेतराम भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। जो राठौड़ राजपूत सिहाजी के साथ कन्नौज से मरुप्रदेश आये थे, वे भी युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिये तैयार हो गये।

सिहाजी ने सोलंकी राजा की सेना लेकर लाखा फूलाणी पर आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। अन्त में सिहाजी की विजय हुई। यद्यपि उस युद्ध में उसके भाई सेतराम के साथ-साथ कन्नौज के बहुत से राठौड़ वीर भी मारे गये।

1. यद्यपि लाखा फूलाणी का आतंक चारों तरफ फैला हुआ था, परन्तु उसने निर्बलों पर कभी अत्याचार नहीं किया। वह अपने अनेक धार्मिक कार्यों के लिये भी प्रसिद्ध था। इसलिये बहुत से लोग उसकी प्रशंसा करते थे। राजस्थान के छः प्रसिद्ध नगरों पर लाखा फूलाणी का पूर्ण रूप से अधिकार था।

कोलूमठ का सोलंकी राजा सिहाजी की इस विजय को सुनकर वहुत प्रसन्न हुआ। उसने सिहाजी के साथ अपनी वहन का विवाह कर दिया। सिहाजी कुछ दिनों तक यहाँ रहा। उसके वाद वह द्वारिका की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में अनहिलवाड़ा पट्टन उसे मिला। अपनी थकान को मिटाने के लिये उसने उस नगर में रुकने का इरादा किया। वहाँ के राजा को जव यह मालूम हुआ तो उसने वड़े आदर-सत्कार के साथ सिहाजी का स्वागत किया। वहाँ पर कुछ दिनों तक सिहाजी ने विश्राम किया।

सिहाजी जिन दिनों में अनहिलवाड़ा पट्टन में था, उसने सुना कि यहाँ पर लाखा फूलाणी का आक्रमण होने वाला है। इस आक्रमण के समाचार को सुनकर पट्टन का राजा वहुत भयभीत हो गया। सिहाजी ने उसके भय को दूर किया और लाखा फूलाणी के साथ उसने फिर युद्ध करने का निश्चय किया।समय पर दोनों तरफ के आदमियों का सामना हुआ और लाखा के साथ सिहाजी की मारकाट आरम्भ हो गयी। इस लड़ाई के अन्त में लाखा मारा गया। उसके सिर के दो टुकड़े होकर जमीन पर गिरे। पट्टन की सेना के जयघोष से आकाश गूँज उठा।लाखा के अत्याचारों से लोग वहुत दिनों से पीड़ित हो रहे थे। सिहाजी द्वारा उसके मारे जाने का समाचार सुनकर अनहिलवाड़ा पट्टन के स्त्री-पुरुषों को वड़ी प्रसन्नता हुई। लाखा का आतंक जहाँ तक फैला हुआ था, सभी लोगों ने सिहाजी की प्रशंसा की।

सिहाजी तीर्थ यात्रा करने के लिये कोलूमठ से रवाना हुआ। अनहिलवाड़ा पट्टन में लाखा को मारकर उसने विजय की ख्याति प्राप्त की। इसके पश्चात् वह तीर्थ यात्रा के लिये गया अथवा नहीं, इसका उल्लेख भट्ट ग्रन्थों में कुछ नहीं मिलता। उनमें जो कुछ लिखा है, उससे प्रकट होता है कि सिहाजी अनहिलवाड़ा पट्टन से विदा होकर लूनी नदी के किनारे चला गया और वहाँ पर उसने कुछ दिनों तक निवास किया। वहाँ पर महवा नाम का एक नगर था। उस पर दावी वंश के क्षत्रियों का शासन था।[1] सिहाजी ने वहाँ के राजा को मार कर नगर पर अपना अधिकार कर लिया।

कई स्थानों की लगातार विजय से सिहाजी के हृदय में राज्य का प्रलोभन वढ़ने लगा। इन्हीं दिनों में उसने खेरधर पर आक्रमण किया। वहाँ पर गोहिलों का प्रभुत्व था। गोहिल राजा महेशदास ने सिहाजी का सामना किया। वह युद्ध में मारा गया और गोहिल लोग युद्ध क्षेत्र से चले गये। सिहाजी ने उसके वाद खेरधर पर भी अपना अधिकार कर लिया।

यहाँ पर पाली नगर में कुछ पालीवाल ब्राहमण रहते थे। उनके अधिकार में वहुत वड़ी भूमि थी। उन ब्राह्मणों पर मेर और मीणा जाति के पहाड़ी लोगों के अक्सर आक्रमण होते रहते थे और वे लोग लूट मार करके ब्राह्मणों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे। उनके आतंक से पाली नगर के ब्राह्मण सदा भयभीत रहा करते थे। इन दिनों में उन ब्राह्मणों ने पराक्रमी सिहाजी की विजय के लगातार समाचार सुने। वे लोग सिहाजी के पास गये और पहाड़ी जातियों के अत्याचारों को दूर करने के लिये उन्होंने सिहाजी से प्रार्थना की। सिहाजी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और पहाड़ी जातियों पर आक्रमण करके उसने पाली के ब्राह्मणों को निर्भीक वना दिया।

जंगली जातियों के आक्रमण का भय कुछ दिनों के लिये पाली के ब्राह्मणों के मन से निकल गया। परन्तु उनको इस वात का सन्देह होने लगा कि सिहाजी के चले जाने के वाद

1. दावी राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में एक है। मैंने इन स्थानों की यात्रा की है और कैम्वे की खाड़ी में भावनगर के गोहिलों से मैं मिला था। उनके इतिहास के सम्वन्ध में मैंने उनसे वातें की थीं।

पहाड़ी जातियाँ फिर आक्रमण करेंगी। इसलिये उन ब्राह्मणों ने बहुत-सी भूमि सिहाजी को देकर यह प्रार्थना की कि वह वहीं पर रहे।सिहाजी वहाँ रहने लगा। उसने कोलूमठ की सोलंकिनी राजकुमारी के साथ विवाह किया था। यहाँ पर उसके गर्भ से एक लड़का उत्पन्न हुआ। सियाजी ने उसका नाम आसथाम रखा।

पाली नगर में रहकर सिहाजी के विचार कुछ और ही होने लगे। वह पाली नगर के समस्त ब्राह्मणों की विस्तृत भूमि पर अधिकार करने का विचार करने लगा। इस बीच में उसने वहाँ के ब्राह्मणों के प्रधान को मार डाला और वहाँ की सम्पूर्ण भूमि पर उसने अधिकार कर लिया। एक वर्ष बाद सीहाजी की मृत्यु हो गई।

सिहाजी के तीन लड़के पैदा हुए। सबसे बड़े लड़के का नाम था आसथाम, दूसरे का सोनग और तीसरे का नाम अजमल था। किसी भट्ट कवि ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि सिहाजी का बड़ा पुत्र ठीक उसी की तरह का शूरवीर और पराक्रमी था। उसी ने गोहिलों पर आक्रमण करके खेरधर पर अधिकार किया था। सिहाजी ने जिन दिनों में पाली नगर[1] पर अधिकार किया था, उसके बड़े पुत्र आसथाम ने ईडर को जीतकर अपने छोटे भाई सोनग को वहाँ का अधिकारी बना दिया था।

ईडर नगर गुजरात की सीमा पर बसा हुआ है। उन दिनों में यह नगर दावी वंश के किसी राजा के अधिकार में था। सिहाजी का बड़ा लड़का आसथाम अपनी राजनीतिक चतुरता के लिये प्रसिद्ध था। ईडर के राजा के मरने पर उसने वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया और उसका भाई सोनग वहाँ पर शासन करने लगा। उसके वंशज हातौदिया राठौड़ के नाम से प्रसिद्ध हुये। सिहाजी का तीसरा लड़का अजमल भी बड़ा लड़ाकू था। सौराष्ट्र के पश्चिम की तरफ ऊरवामण्डल नाम का एक नगर था। सौरवंशी भीष्मशाह नाम का एक राजा वहाँ पर राज्य करता था। अजमल ने उसे मार डाला और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। उसके वंशज वाटेला नाम से विख्यात हुये और वे लोग अब तक द्वारिका और उसके आस-पास के नगरों में पाये जाते हैं।

आसथाम आठ पुत्रों को छोड़कर मरा।[2] दूँहड उसका सबसे बड़ा लड़का था। इसलिये पिता के मरने के बाद वही गद्दी पर बैठा। उसके अधिकार में बहुत छोटा-सा राज्य था। कन्नौज का उद्धार करने की अभिलाषा बहुत दिनों से उसके हृदय में थी। पिता के मरने के पश्चात् सिंहासन पर बैठते ही उसने कन्नौज के उद्धार का संकल्प किया। परन्तु वह पूरा न हुआ। इन्हीं दिनों में उसने मन्सोर पर आक्रमण किया। वहाँ पर वह मारा गया। दूँहड के सात लड़के पैदा हुये थे। रायपाल उनमें सबसे बड़ा था। इसलिये पिता के मरने के बाद वही सिंहासन पर बैठा। उसके बाद उसने मन्ड़ोर पर आक्रमण किया और उसके परिहार राजा को मार कर उसने मन्ड़ोर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद परिहारों ने संगठित होकर रायपाल के साथ युद्ध किया और उन लोगों ने उसे मन्ड़ोर से भगा दिया।

---

1. पाली नगर राजस्थान के पश्चिम में है। यह नगर व्यवसाय का एक प्रसिद्ध स्थान है। वह भीलवाड़ा से किसी प्रकार कम नहीं है। यह नगर चारों ओर ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। मराठों के आक्रमण से बचने के लिए वहाँ की इन दीवारों का निर्माण हुआ था। अब वे बहुत कुछ टूट-फूट गयी हैं। इस नगर में दस हजार से अधिक घर पाये जाते हैं। यह नगर प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। तिब्बत और उत्तरी भारत की बहुत-सी व्यावसायिक चीजें यहाँ पर आकर एकत्रित होती थीं और फिर यहाँ से अरब, यूरोप, अफ्रीका को वे चीजें जाती थीं। इस नगर में प्रतिवर्ष पचत्तर हजार रुपये चुंगी के आते थे।
2. दूँहड, जोपसाब, खींमसी, भूपसू, धाडल, जैतमल, बाँदर और ऊदड नाम के आठ बेटे आसथाम के थे। इन आठों भाइयों ने अपने-अपने राज्यों का संगठन अलग-अलग किया। इन आठ पुत्रों से दूँहड, धाडल, जैतमल और अहड के वंशों का पता चलता है, शेष भाइयों का नहीं।

रायपाल के तेरह लड़के थे। उसके बाद उसका बड़ा लड़का कनहुल सिंहासन पर बैठा। उसका बेटा जाल्हन, जाल्हन का बेटा छाडा और छाडा का लड़का टीडा क्रम से सिंहासन पर बैठे। इनके सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण नहीं पाया जाता। जो कुछ उल्लेख मिलता है, उससे इतना ही मालूम होता है कि वे लोग अपने आस-पास के छोटे-छोटे राजाओं के साथ युद्ध करते रहे। वे कहीं पर हारे और कहीं पर जीते। उनका यह क्रम कुछ दिनों तक लगातार चलता रहा। टीडा ने अपने राज्य की उन्नति की थी। उसने कई राज्यों पर अधिकार कर लिया था। जैसलमेर के भट्ट ग्रंथों में लिखा है कि छाडा और टीडा बड़े लड़ाकू थे। टीडा के मरने के बाद सलखा उसके सिंहासन पर बैठा।[1]

उत्थान और पतन राजपूतों के जीवन का खेल रहा है। उनके न तो पतन होने में देर लगती थी और न उनके उन्नत होने में। अपनी उन्नति के थोड़े ही दिनों के भीतर चूँड़ा उन सभी स्थानों से निकाल दिया गया, जिन पर उसके पूर्वजों ने अधिकार कर लिया था। अपने उन दुर्दिनों में वह कालू नामक नगर में चला गया। वहाँ पर एक चारण ने अपने घर में उसे शरण दी।

मन्ड़ोर नगर पर अधिकार करने के बाद चूँड़ा ने नागौर की बादशाही सेना पर हमला किया। वहाँ पर उसे विजय प्राप्त हुई। इसके पश्चात अपनी सेना लेकर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ और गोडवाड़ राज्य की राजधानी नाडौल में पहुँच गया। वहाँ के दुर्ग पर उसने अपनी सेना रखी और उस राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। उसने एक परिहार राजा की लड़की के साथ विवाह किया। उसके चौदह लड़के और एक लड़की पैदा हुई। रिडमल्ल, सत्ता, रणधीर, अडकमल्ल, पुञ्जा, भीम, कान्हा, अज्जा, रामदेव, बीजा, सहेशमल्ल, बोघा, लम्भा और शिवराज उसके चौदह लड़कों के नाम थे। उसकी लड़की का नाम हंसा था। मेवाड़ के राणा लाखा के साथ हंसा का विवाह हुआ था। इसी हंसा से जो लड़का पैदा हुआ, उसने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठकर राणा कुम्भा के नाम पर महान कीर्ति प्राप्त की।

चूँडा के सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं पाये जाते। संक्षेप में इतना ही लिखकर उसका वर्णन समाप्त किया जाता है कि चूँडा नागौर में एक हजार राजपूतों के साथ मारा गया। सम्वत् 1438 सन् 1382 ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा था और सम्वत् 1465 में वह मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का रिडमल्ल मन्ड़ोर के सिंहासन पर बैठा। उसकी माँ मोहिल वंश की लड़की थी।

चूँड़ा की मृत्यु हो जाने के बाद नागौर राठौड़ों के अधिकार से निकल गया। राणा लाखा रिडमल्ल से बहुत स्नेह करता था और अपने सामन्तों से उसे वह बहुत सम्मान देता था। राणा लाखा ने रिडमल्ल को चालीस गाँव और धनला नाम का एक नगर दे दिया था। राणा लाखा के जीवन काल में रिडमल्ल उसका राजभक्त बना रहा और कई अवसरों पर उसने अपने कार्यों के द्वारा अपनी राजभक्ति का प्रमाण दिया। एक बार वह अपनी और मेवाड़ की सेना लेकर चौहानों के एक पुराने दुर्ग पर पहुँचा और वहाँ की रक्षक सेना को मारकर उसने उस दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। रिडमल्ल ने उस दुर्ग को जीतकर राणा लाखा को दे दिया था। राणा लाखा उसके इस कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसको कैंटो नामक एक नगर इनाम में दिया। रिडमल्ल तीर्थ यात्रा करने के उद्देश्य से गया जी गया था। वहाँ पर उसने कई धार्मिक कार्य ऐसे किये, जिनसे वहाँ पर उसकी बड़ी

1. सलखा के वंशज सलखावत के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे लोग अब तक बहुत से स्थानों में पाये जाते हैं।

प्रशंसा हुई। जो लोग तीर्थ यात्रा करते थे, उनको कर देना पड़ता था। रिडमल्ल ने वह सम्पूर्ण कर अदा कर दिया।

राज्य के कार्यों में रिडमल्ल वड़ा वुद्धिमान था। उसके अच्छे कार्यों से प्रजा को वहुत-सी सुविधायें मिली थीं। उसने मेवाड़ के नावालिग राणा के सिंहासन पर अधिकार करने की चेष्टा की थी, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया। इसका वर्णन मेवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है। इस झगड़े के कारण मेवाड़ और मन्डोर में वहुत अन्तर पड़ गया था और दोनों राज्यों के सम्वन्ध एक दूसरे से अलग हो गये थे। राठौड़ वंश के भट्ट कवियों ने रिडमल्ल की अपने ग्रन्थों में प्रशंसा लिखी है और इस वात को स्वीकार किया है कि उसने अपने राज्य में भूमि और कर के सम्वन्ध में कभी पक्षपात से काम नहीं लिया।

रिडमल्ल के विश्वासघात के कारण मेवाड़ और मन्डोर की सीमायें अलग-अलग हो गयी थीं और वे वहुत समय तक अलग वनी रहीं। रिडमल्ल का वर्णन मेवाड़ के इतिहास में भली-भाँति किया जा चुका है। उसके चौवीस लड़के थे, जिनकी सन्तानों ने और वड़े लड़के जोधा ने मारवाड की अधीनता स्वीकार कर ली। सिहाजी के वंशजों ने मरुभूमि में चारों तरफ फैल कर अपना विस्तार किया था। उनकी नामावली जागीरों के साथ नीचे दी जाती है:

	नाम	शाखा	जागीर
1	जोधा (सिंहासन पर)	जोधा	
2	काँधलजी	काँधलोत	वीकानेर
3	चम्पाजी	चम्पावत	अहवा, कैटो, पलरी, हरसोला, जावला, सथलाना, सिंगरी।
4	अरवैराज इसके सात वेटे थे तथा उनमें कूँपा सबसे वड़ा था।	कुम्पावत	असोप, कुम्पालिया, चन्दावल, सिरयारी, खारलो, हरसोर, वल्लू, विजौरिया, शिवपुरा, देवरिया।
5	मंडलाजी	मांडलोत	सरौदा।
6	पाता जी	पत्तावत	कूर्निचरी, वरोह, देसनोख।
7	लाखा जी	लाखावत	धुनार
8	वालो जी	वालावत	पालासनी
9	जैतमल	जैतमालोत	
10.	करन	करनोत	लूनावास
11.	रूपा जी	रूपावत	चौतला
12.	नाथ जी	नाथावत	वीकानेर

	नाम	शाखा	जागीर
13.	डूँगर जी	डूँगरोत	
14.	साँडा जी	साँडावत	
15.	माडन जी	माडनोत	
16.	वीरा	बीरोत	
17.	जगमल जी	जगमालोत	
18.	हम्पा जी	हम्पावत	इनकी जागीरों का कोई वर्णन नहीं पाया जाता है।
19.	शक्ताजी	शक्तावत	इन लोगों ने अपने-अपने श्रेष्ठ वंशजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।
20.	कर्मचन्द	कर्मचन्द्रोत	
21.	अरिवाल जी	अरिवालोत	
22.	केतसी	केतसीओत	
23.	शत्रुशाल	शत्रुशालोत	
24.	तेजमल	तेजमालोत	

□

अध्याय–33

राव जोधा द्वारा जोधपुर की स्थापना तथा मालदेव

सम्वत् 1484 के बैसाख महीने में जोधा ने मेवाड़ राज्य के धनला नामक एक नगर में जन्म लिया था। वह रिडमल्ल का लड़का था। जोधा के पितामह ने मन्ड़ोर पर अधिकार करके उसको अपने राज्य की राजधानी बनाया था और यह नगर बहुत दिनों तक मारवाड़ की राजधानी के रूप में रहा। जोधा ने इस नगर से हटकर अलग अपने नाम का एक नगर बसाने का इरादा किया। कहा जाता है कि इसके लिये किसी सन्यासी ने उसको परामर्श दिया था। वह सन्यासी मन्ड़ोर से चार मील दक्षिण की तरफ विहंगकूट नामक एक पहाड़ की गुफा में रहा करता था। वह राठौड़ों का शुभचिन्तक था। उसी ने जोधा से कहा था कि मन्दोर नगर में अनेक प्रकार के संकट पैदा होंगे। इसलिये बकरचीरा की सीमा पर आप एक नगर की प्रतिष्ठा कराइये।

सन्यासी के इस परामर्श को पाकर जोधा ने उस नये नगर के निर्माण का विचार निश्चित कर लिया और विहंगकूट पर्वत की ऊंची चट्टानों के ऊपर उनको बनाये जाने का कार्य आरम्भ हो गया। इसी पर्वत के ऊपर मन्ड़ोर नगर बसा हुआ था। इस पर्वत पर बसे हुये नगर प्रर आक्रमण करना किसी के लिये आसान न था। उस पर्वत के चारों तरफ घना जंगल था और उस पर्वत की ऊंचाई बहुत अधिक थी। उसकी ऊंची चोटियों पर खड़े होकर देखने से सम्पूर्ण मारवाड़ दिखायी देता था। मारवाड़ के तीन तरफ विस्तृत मरुभूमि थी। उस बालुकामय प्रदेश में जल का स्वाभाविक रूप से अभाव था। जोधा ने अपने नये नगर के निर्माण में इस अभाव की तरफ ध्यान न दिया। कार्य आरम्भ हुआ और निर्माण का कार्य समाप्त हुआ। जोधा ने अपने नाम के आधार पर इस नवीन नगर का नाम जोधपुर रखा। उसमें जल की कोई व्यवस्था न थी। जिस स्थान पर यह नगर बसाया गया था, वहाँ पहले से ही पहाड़ी चट्टानों पर जल का अभाव था। इसका विचार उस समय होना चाहिये था, जब उस नगर की प्रतिष्ठा होने जा रही थी। उस समय स्वयं जोधा ने और उसे परामर्श देने वाले मन्त्रियों ने इसके सम्बन्ध में कुछ न सोचा। नगर के निर्माण का कार्य समाप्त हो जाने पर लोगों का ध्यान इस अभाव की तरफ गया।

जल का अभाव जोधपुर का एक बड़ा अभाव था। मारवाड़ के भट्ट लोगों ने इस अभाव को उस सन्यासी के माथे पर मढ़ने की चेष्टा की और वे लोग सफल भी हुये। सर्व साधारण में कहा जाने लगा कि नगर के निर्माण में उस सन्यासी के साथ - जिसने इस नगर

के निर्माण कराने की सलाह दी थी - अत्याचार किया गया। जिस पहाड़ी गुफा में वह सन्यासी रहता था, उसको भी इसमें शामिल कर लिया गया है। सन्यासी को इससे बड़ा कष्ट हुआ और उसने राज्य के अधिकारियों से प्रार्थना की। लेकिन किसी ने कुछ सुना नहीं। इस दशा में उसके शाप से यह नगर सदा अच्छे जल के लिये दुःखी रहेगा।

सर्वसाधारण की इस धारणा का आधार मारवाड़ के भट्ट कवियों का प्रचार था। उन्होंने जोधा और राज्य के प्रधान अधिकारियों को सुरक्षित रखने के लिये जन साधारण में इस प्रकार का प्रचार किया था।

शुद्ध जल की जब कोई व्यवस्था न हो सकी तो उसके लिये अनेक प्रकार के उपाय सोचे गये। जिन पहाड़ी ऊंची चट्टानों के ऊपर जोधपुर का दुर्ग बना था, उसके नीचे एक सरोवर था। उस सरोवर से जल लाने की व्यवस्था की गयी। उस सरोवर में ऐसी कलें लगवाई गयीं, जिनसे उस सरोवर का जल दुर्ग के ऊपर पहुँचने लगा।

जोधपुर नगर और दुर्ग में अच्छे जल के लिये बहुत-से उपाय किये गये, लेकिन वे सब व्यर्थ गये और किसी से कुछ लाभ न हुआ। इस अभाव का मूल कारण क्या था, इसे इस समय किसी ने नहीं जाना परन्तु इस पर सभी ने विश्वास किया कि सन्यासी के अभिशाप से जोधपुर में जल का अभाव पैदा हुआ और वह अभाव कभी मिट न सकेगा।

सम्वत् 1515 के जेठ महीने में जोधा ने अपने नवीन नगर की प्रतिष्ठा की। उसके बाद तीस वर्ष तक जीवित रहकर सम्वत् 1545 में इकसठ वर्ष की अवस्था में उसने परलोक की यात्रा की। उसके द्वारा प्रतिष्ठित जोधपुर राजस्थान का एक प्रसिद्ध नगर बना। उसके साथियों में और सहायकों में कई शूरवीर थे, जिन्होंने जीवन भर उसके लिये त्याग और बलिदान से काम किया था। जोधा अपने जीवन के अन्त तक उनका सम्मान करता रहा। हरबूसाँकला, पाबूजी और रामदेव राठौड़ की प्रस्तर मूर्तियां बनवा कर जोधा ने मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मन्डोर के श्रेष्ठ स्थानों पर लगवाई थीं।[1]

जोधा ने अपने जिन तीन वीरों की प्रस्तर मूर्तियाँ बनवाई थीं, उनको देखकर उनके तेजस्वी प्रताप का सहज ही आभास होता है। उनके यशस्वी नामों को कोई भी राठौड़ कभी भूल न सकेगा। प्रस्तर की बनी हुई उनकी मूर्तियाँ आज भी दर्शकों के सामने उनके शौर्य और प्रताप की तरफ संकेत करती हैं।[2] सिहाजी ने जिस समय कन्नौज छोड़कर भारत के मरुप्रदेश में जाकर आश्रय लिया था, उस समय से लेकर अब तक तीन शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। इन तीन सौ वर्षों में उसके वंशजों ने मरुप्रदेश में फैलकर वहाँ की समस्त उत्तम भूमि पर अधिकार कर लिया। सिहाजी के वंशजों की संख्या इन दिनों में इतनी बढ़ गयी थी कि जो विस्तृत भूमि उनके अधिकार में थी, वह उनके लिये कम पड़ रही थी और नयी

1. पाबूजी की प्रस्तर मूर्ति उसकी प्रसिद्ध घोड़ी पर बनी हुई है। उस पर बैठा हुआ शूरवीर पाबूजी बड़ा आकर्षक मालूम होता है। रामदेव का नाम सम्पूर्ण मरुप्रदेश में फैला हुआ है। वहाँ के गाँवों के निवासी भी उनके प्रसिद्ध नाम से परिचित हैं।
2. जिन शूरवीरों ने जोधा की सदा सहायता की और अपने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया था। ऐसे कई एक वीरों की प्रस्तर मूर्तियाँ जोधा ने बनवाई। वे सभी कलाकारों के द्वारा पाषाणों पर तैयार की गयी। प्रत्येक शूरवीर अपने युद्ध के वेश में घोड़ों पर चढ़ा हुआ दिखायी देता है। उनके दाहिने हाथ में बर्छे और बायें हाथ में घोड़ों की लगामें हैं। उनकी पीठ पर ढालें लटक रही हैं। कमर में लटकती हुई तलवारें दिखायी देती हैं। युद्ध के दूसरे अस्त्र भी उनके शरीर की शोभा बढ़ा रहे हैं। देखने में ये शूरवीर जीवित मालूम होते हैं। ये सब मूर्तियाँ मन्डोर नगर के एक विशाल मैदान में ऊंचाई पर लगी हुई हैं। एक स्थान पर तीन मूर्तियाँ हैं। पाबूजी, रामदेव और हरबूसाँकला की मूर्तियाँ एक साथ लगी हुई हैं। उसके अन्त में प्रसिद्ध चौहान वीर गंगा की प्रस्तर मूर्ति है। जिसने महमूद का आक्रमण रोकने के लिये सतलज नदी के किनारे अपने सैंतालीस बेटों के साथ प्राणों की बलि दी थी।

भूमि पर उनको अधिकार करने की आवश्यकता थी, जिससे राठौड़ों का वंश सुविधाओं के साथ अपना विस्तार कर सके।

जोधा की चौदह संतानें

	नाम	शाखा	जागीर	विशेष विवरण
1.	साँतल जी		साँतलमेर	पोकरण से छः मील
2.	सूजा जी	X	X	जोधपुर का उत्तराधिकारी
3.	जोगा जी	X	X	वंशहीन
4.	दूदा जी	मेड़तिया	मेड़ता	दूदा जी ने चौहानों से साँभर छीन लिया था। उसके वीरन नाम का एक बेटा था। वीरन के दो लड़के जयमल और जगमल हुये। उनसे जयमलोत और जगमलोत शाखायें निकलीं।
5.	बरसिंह	बरसिंहोत	नोलाई	मालवा में
6.	बीका जी	बीकावत	बीकानेर	स्वतन्त्र जागीर
7.	भारमल्ल	भारमल्लोत	बिलारा	— —
8.	शिवराज	शिवराजोत	दूनारा	लूनी पर
9.	कर्मसिंह	कर्मसिंहोत	क्योनसर	— —
10.	रायपाल	रायपालोंत	X	— —
11.	सावंतसिंह	सावंतसिंहोत	दावारो	— —
12.	बीदा जी	बीदावती	बीदावती	नागौर जिले में
13.	बनबीर	X	X	— —
14.	नीम जी	X	X	— —

जोधाराव के चौदह लड़कों में साँतल जी सबसे बड़ा था। वह पिता के राज्य को छोड़कर राजस्थान के उत्तर-पश्चिम की तरफ भाटिया राज्य में चला गया था। वहाँ पर उसने साँतलमेर नाम का एक दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग पोकरण से छः मील की दूरी पर है।

मरुभूमि के एक भाग में सराई नामक एक यवन जाति रहा करती थी। उसके राजा खान के साथ साँतल का संघर्ष पैदा हो गया। दोनों में युद्ध हुआ। उसमें खान के साथ-साथ साँतल भी मारा गया। उसके सात स्त्रियाँ थीं। वे सातों साँतल के साथ सती हुईं।

दूदा जोधाराव का चौथा लड़का था। मेड़ता की विशाल भूमि में उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा की। उसके वंशज मेड़तिया राठौड़ के नाम से प्रसिद्ध हुये। मरुप्रदेश में

उसकी वहुत वड़ी ख्याति थी। जिस शूरवीर जयमल ने वादशाह अकवर की प्रचण्ड और विशाल सेना के साथ युद्ध करते हुये चित्तौड़ की रक्षा करने में अपने प्राणों का बलिदान किया था और जिसकी वीरता के सम्मान में वादशाह अकवर ने प्रस्तर की मूर्ति वनवा कर दिल्ली के सिंहद्वार पर रखवाई थी,राजकुमार दूदा उसी जयमल का पितामह था। दूदा के एक लड़की पैदा हुई थी, वह अत्यन्त बुद्धिमती और गुणवती थी।[1] उसका नाम मीरावाई था। इस मीरावाई के साथ राणा कुम्भा का विवाह हुआ था। जोधाराव के छठे पुत्र वीका ने जाटों के कुछ गाँवों और नगरों पर अधिकार कर लिया था और वीकानेर की प्रतिष्ठा की थी। उनका वर्णन वीकानेर के इतिहास में किया जायेगा। जोधा की मृत्यु के वाद उसका दूसरा लड़का सूजा मारवाड़ के सिंहासन पर वैठा।[2] उसने सत्ताईस वर्ष तक बुद्धिमानी के साथ शासन किया।

सम्वत् 1572 सन् 1516 ईसवी के सावन महीने के शुल्क पक्ष की पार्वती तृतीया को पीपार नामक नगर में एक उत्सव हो रहा था।[3] इस उत्सव में मारवाड़ की वहुत सी राजपूत स्त्रियाँ गौरी पूजन करने आयी थीं। उस उत्सव के दिन पठानों की एक सेना ने मेले में आकर आक्रमण किया और एक सौ चालीस राजपूत कुमारियों को उस सेना के पठान अपने साथ ले गये। इस घटना को राजा ने सुना। वह क्रोध में आ गया और जो राजपूत कुमारियाँ पठानों के द्वारा अपहरण की गयी थीं, उनका उद्धार करने के लिए वह कातर हो उठा। इतनी जल्दी में सेना की तैयारी न हो सकती थी। इसलिये बिना विलम्ब किये अपने साथ पहरेदार सिपाहियों को लेकर वह रवाना हुआ और वड़ी तेजी के साथ चलकर उसने पठानों का पीछा किया। रास्ते में पठानों की सेना के मिल जाने से युद्ध आरम्भ हो गया। सूजा ने पठानों के साथ भयानक मारकाट की और उसने अपहरण की हुई सभी राजपूत कुमारियों का उद्धार किया। परन्तु लड़ते हुये उसके शरीर में इतने अधिक जख्म हो गये थे कि उनके कारण वह युद्ध भूमि में गिर गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

राजा सूजा के पाँच लड़के थे। सवसे वड़े लड़के की मृत्यु हो गयी थी। इस दशा में उसका दूसरा वेटा गंगा राजसिंहासन पर वैठा। सूरजमल के चार लड़के थे। उसके दूसरे पुत्र ऊदा से ग्यारह लड़के पैदा हुए और उसके वंशज ऊदावत नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश के लोगों को मारवाड़ और मेवाड़ में कई जागीरें मिली थीं। उन जागीरों में नीमाज, जेतारन, गूदोज, वराठिया और रायपुर आदि अधिक मशहूर हैं। तीसरे पुत्र साँगा को एक स्वाधीन नगर प्राप्त हुआ था। उसका नाम वरोह था। साँगा के वंशज साँगावत के नाम से प्रसिद्ध हुये। चौथे पुत्र प्रयाग से प्रागदास शाखा की उत्पति हुई। वीरनदेव सूजा का पाँचवा लड़का था। उसके नारा नाम का एक लड़का पैदा हुआ था।[4] नारा के वंशज नारावत जोधा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसकी एक शाखा हाड़ौती के पंचपहाड़ नामक स्थान में पायी जाती है।

---

1. कुछ लोगों का कहना है कि मीरावाई दूदा की वेटी नहीं थी और न यह राणा कुम्भा को व्याही गयी थी। मीरावाई दूदा के दूसरे वेटे रत्नसिंह की लड़की थी और वह राणा कुम्भा के प्रपौत्र साँगा के लड़के भोजराज को व्याही गयी थी।
2. कुछ लेखकों का कहना है कि जोधा के मरने के पश्चात् उसका वड़ा लड़का साँतल उसके सिंहासन पर वैठा और साँतल के वाद सम्वत् 1548 में उसका भाई उसका उत्तराधिकारी हुआ।
3. जोधपुर से तीस मील की दूरी पर पीपार नाम का एक छोटा-सा नगर है। इसमें लगभग पन्द्रह सौ घर हैं। इस नगर में व्यवसायी लोग अधिक रहते हैं। यहाँ पर एक शिलालेख मिला था। उसमें विजयसिंह और दैलून राजा की कुछ वातों का उल्लेख था। ये दोनों राजा गुहिलोत वंश में पैदा हुये थे और उनकी उपाधि रावल थी।
4. कुछ लोगों का कहना है कि वीरनदेव राजा सूजा का लड़का नहीं था। वल्कि सूजा के लड़के वाणा जी का वेटा था। वह छोटी आयु में ही मर गया था। नाराजी वीरनदेव का नहीं सूजा का वेटा था और वह वाणा जी से वड़ा था।

सम्वत् 1572 सन् 1516 ईसवी में राजा सूजा के मर जाने पर उसका पौत्र गंगा मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके चाचा साँगा ने उसका विरोध किया। उसने गंगा को सिंहासन से उतार कर उस पर अधिकार करने की कोशिश की। इसके फलस्वरूप मारवाड़ में एक भयानक उत्पात पैदा हो गया। मारवाड़ के राठौड़ दो भागों में विभाजित हो गये। कुछ लोग गंगा के पक्ष में थे और कुछ लोग साँगा के। साँगा ने दौलत खाँ लोदी से सहायता माँगी, जिसने कुछ दिन पहले राठौड़ों से नागौर को छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। उसकी सहायता से साँगा ने गंगा के साथ युद्ध करने की तैयारी की। दोनों ओर से युद्ध के वाजे वजे और भयानक मारकाट हुई। उस लड़ाई में साँगा मारा गया और दौलत खाँ लोदी पराजित होकर युद्ध से भाग गया।

गंगा ने वारह वर्ष तक मारवाड़ में राज्य किया। उसके शासन में वावर और राणा संग्राम सिंह के वीच संघर्ष पैदा हुआ। वावर के आक्रमण को रोकने के लिए वावर और संग्राम सिंह के वीच संघर्ष हुआ। राणा संग्रामसिंह ने युद्ध की तैयारी की और उस समय राजस्थान के अन्यान्य राजाओं, सामन्तों और सरदारों के साथ-साथ मारवाड़ का राजा गंगा भी अपनी सेना के साथ मेवाड़ का सहायक वना। मारवाड़ से जो सेना मेवाड़ की सहायता के लिए वावर के साथ युद्ध करने गयी थी, राव गंगा का पौत्र रायमल उसका सेनापति था। वियाना के विस्तृत मैदान में वावर तथा संग्रामसिंह की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। राजपूतों का यह अन्तिम युद्ध था, जिसमें उन्होंने अपने राष्ट्रीय संगठन का परिचय दिया था। इस युद्ध में मारवाड़ का राजकुमार रायमल मेड़तिया के राठौड़ सरदार खैराती और नवरत्न के साथ मारा गया।

इसके चार वर्षों के वाद गंगा की मृत्यु हो गयी और सम्वत् 1588 सन् 1532 ईसवी में मालदेव उसके सिंहासन पर वैठा। उसके शासनकाल में मारवाड़ ने वड़ी उन्नति की थी। मेवाड़ के शक्तिशाली राणा संग्रामसिंह पर वावर विजय प्राप्त कर चुका था। लेकिन उसका कोई प्रलोभन मारवाड़ की तरफ न था। इसीलिये मालदेव को मारवाड़ की उन्नति करने का अवसर मिल गया था। दिल्ली और मारवाड़ की सीमा के कई दुर्गों पर मालदेव ने अधिकार कर लिया और मारवाड़ से दूरवर्ती ढूँढाड़ पर उसने राठौड़ों का झण्डा फहराया था। मारवाड़ की उन्नति में इस समय किसी प्रकार की रुकावट न थी।

राणा संग्राम की मृत्यु और मेवाड़ राज्य का दुर्भाग्य राजस्थान के छोटे राजाओं के लिये अभिशाप हो गया और उत्तर की तरफ से मुगलों और गुजरात के वादशाहों ने आक्रमण आरम्भ कर दिये। लेकिन मालदेव को उनसे कोई आघात नहीं पहुँचा। इस अवसर पर उसने मित्र और शत्रु-दोनों से लाभ उठाया और विना किसी सन्देह के वह राजस्थान का उस समय एक श्रेष्ठ राजा वन गया। इन दिनों में मारवाड़ की परिस्थितियों की आलोचना करते हुये प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने मालदेव को "हिन्दुस्तान का अत्यन्त शक्तिशाली राजा।" लिखा है। मारवाड़ के सिंहासन पर वैठने के वाद उसने अपने पूर्वजों के प्राप्त किये हुये दो प्रधान नगरों नागौर और अजमेर को मुसलमानों से लेकर अपने अधिकार में कर लिया और आठ वर्षों के वाद सम्वत् 1596 में उसने सिधिलों के जालोर, सिवाना और भाद्राजून नामक तीन नगरों को लेकर अपने राज्य में मिला लिया। वीका के वंशजों को वीकानेर से निकाल दिया। लूनी नदी के तटवर्ती जिन नगरों को सिहाजी ने अपने अधिकार में कर लिया था, उनके राजाओं ने राठौड़ों की अधीनता को ठुकरा कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। मालदेव ने उन सवको पराजित करके फिर उन पर अधिकार कर लिया और उनको राठौड़ों की अधीनता में रहने के लिये मजवूर किया। मालदेव के प्रताप को इन दिनों में मरुप्रदेश के समस्त राजाओं ने स्वीकार

किया। मरुस्थली के जो भूमिया लोग इसके पहले वहुत शक्तिशाली और कट्टर माने जाते थे, वे सभी मालदेव से पराजित हो चुके थे और उन्होंने मारवाड़ की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

इस प्रकार अपनी शक्तियों को उन्नत वनाकर मालदेव का ध्यान प्रचण्ड भाटी लोगों की तरफ आकर्षित हुआ। उनके साथ उसका जो युद्ध आरम्भ हुआ, वह वहुत दिनों तक चला। इस वीच में उसने भाटी लोगों के कुछ स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। विक्रमपुर ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।[1]

आमेर की राजधानी से दक्षिण की तरफ चाटसू नाम का एक नगर था, मालदेव ने उस पर अधिकार कर लिया और देवरा लोगों से सिरोही लेकर मारवाड़ में मिला लिया। इन्हीं दिनों में उसने मारवाड़ में कई महल वनवाये और मजबूत दुर्गों का निर्माण करवाया। जोधपुर को सुरक्षित रखने के लिए उसने उसके आस-पास मजवूत दीवारें वनवाई। जोधा ने जोधपुर में जो राजभवन वनवाये थे, मालदेव ने उनमें आवश्यक मरम्मत करवाई। साँतलमेर को तुड़वा कर उसकी सामग्री से उसने पोकरण को सुदृढ़ वनाने का काम किया।[2] सिवाना नगर में कुंडल कोट और उसके निकट पीपलोंद नामक पहाड़ियों पर भद्राजून वसा हुआ है। उसके पास जूडोजरिया पीपाड़ और दूनाडा नामक नगरों में उसने दुर्ग वनवाये। दुर्गों के ऊपर जल ले जाने के लिए उसने एक यन्त्र लगवाया था। इस प्रकार के कार्यों में उसने अपरिमित धन व्यय किया था।[3] केवल मेड़ता के दुर्ग की मरम्मत में उसने चौवीस हजार पौण्ड खर्च किये थे। भट्ट कवियों का कहना है कि सांभर झील से जो आय मारवाड़ राज्य को होती थी, उसी को खर्च करके मालदेव ने इस प्रकार के वहुत से काम किये थे। इसका अर्थ यह है कि उन दिनों में सांभर झील में नमक वहुत तादाद में तैयार होता था।

मालदेव के शासन काल में मारवाड़ के राज्य का बहुत विस्तार हो गया था। सोजत, सांभर, मेड़ता, खाटू, वदनौर, लौनू, रायपुर, भद्राजून, नागौर, सिवाना, लोहागढ़, झागलगढ़, वीकानेर, भीनपाल, पोकरण, वाड़मेर, कसौली, रैवासी, जोजावर, जालौर, वंवली, मलार, नाडोल, फलौदी, साँचोर, डीडवाना, चाटसू, लोहान, मलारना, देवरा, फतहपुर, अमृतसर, फावर, मीनापुर, टोंक, टोडा, अजमेर, जहाजपुर, प्रेमरका और उदयपुर (शेखावाटी के अन्तर्गत) नामक अड़तालीस जिलों में अधिकाँश जिले जालौर, अजमेर, टोंक और वदनौर के अन्तर्गत हैं। ऊपर लिखे हुए विशाल नगर मालदेव के प्रताप और ऐश्वर्य का प्रमाण देते हैं। इन अड़तालीस जिलों में मालदेव ने अधिक समय राज्य नहीं किया। चाटसू, लावान, टोंक, टोड़ा और जहाजपुर थोड़े ही समय में उसके हाथ से निकल गये। वदनौर की भी यही अवस्था हुई। जिला वदनौर और उसके अन्तर्गत तीन सौ आठ गाँवों में राठौड़ रहा करते थे और वे सभी मेड़तिया शाखा से उत्पन्न हुए थे, शूरवीर जयमल राजपूतों की इसी शाखा में पैदा हुआ था, जो मेवाड़ का एक प्रसिद्ध सरदार हुआ और यही कारण था कि उसके समय से वदनौर मेवाड़ राज्य का एक भाग माना गया।

---

1. यहाँ पर उसके पूर्वजों की एक शाखा रहती थी, इस शाखा के लोग जैसलमेर वालों के साथ मिल गये हैं और अव वे मालदोत के नाम से प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ में मालदोत लोग वड़े साहसी समझे जाते हैं।
2. पोकरण झालावाड़ और जोधपुर के मध्य में वसा हुआ है। यहाँ का दुर्ग वहुत मजवूत और सुरक्षित है। इन दिनों में यहाँ का सामन्त राजा सालमसिंह था। वह मारवाड़ के सभी सामन्तों में श्रेष्ठ माना जाता था। वह चम्पावत के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि चम्पावत मारवाड़ की अधीनता में हैं। लेकिन इसको मारवाड़ के राजा का कोई भय नहीं रहता।
3. मेड़ता नगर मन्डोर के राजा का वसाया हुआ था। मालदेव ने इसमें एक दुर्ग बनवा कर अपने नाम पर मालकोट उसका नाम रखा। इस दुर्ग का व्यास दो मील से कम नहीं है।

मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर मालदेव ने दस वर्ष व्यतीत किये। इन दिनों में - जैसा कि ऊपर लिखा गया है - अवसर पाकर उसने सभी प्रकार से अपने राज्य की उन्नति की और अपनी सभी शक्तियाँ उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ मजबूत बना ली थीं। इन्हीं दिनों में बाबर की - जिसने मुगल राज्य की भारत में नींव डाली थी और बड़ी सफलता के साथ जिसने दिल्लो सिंहासन पर बैठ कर अब तक राज्य किया - में मृत्यु हो गयी। उसके मरने पर उसका बेटा हुमायूँ उसके सिंहासन पर बैठा। लेकिन वह अपने पिता के विशाल राज्य पर अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सका।

बादशाह शेरशाह ने अवसर पाकर हुमायूँ पर आक्रमण किया। शेरशाह युद्ध में जितना शूरवीर था, राजनीति में वह उतना ही निपुण था। उसने युद्ध में हुमायूँ को भयानक रूप से पराजित किया। मुगल बादशाह हुमायूँ शेरशाह के भय से कातर हो उठा। कुछ थोड़े से सैनिकों के साथ अपना परिवार लेकर वह दिल्ली की तरफ भाग गया। इन दिनों में राजा मालदेव के सिवा हुमायूँ को और कोई दिखायी न पड़ा, जहाँ जाकर वह शरण ले सकता। इस दशा में बहुत सोच-विचार कर हुमायूँ ने मारवाड़ पहुँच कर मालदेव से आश्रय तथा सहायता के लिए प्रार्थना की। बिगड़े हुए दिनों में कोई किसी की सहायता नहीं करता। मुगल सम्राट हुमायूँ के सामने इस समय भयानक दुर्भाग्य था। वह पराजित होकर अपने राज्य से भागा था। दुर्भाग्य के दिनों को काटने के लिए उसे कहीं आश्रय न मिल रहा था। कुछ दिन पहले जिस भारतवर्ष का वह एक बादशाह था, आज कुछ इने गिने दिनों के बाद उसी देश में उसको जीवन रक्षा के लिए कोई स्थान न मिल रहा था। राजा मालदेव के यहाँ भी उस को आश्रय न मिला। इसका कारण था कि बयाना के भीषण युद्ध में राजा मालदेव का इकलौता बेटा अपनी सेना का नेतृत्व लेकर संग्राम सिंह की तरफ से बाबर के साथ युद्ध करने गया था। वहाँ पर वह मारा गया। पुत्र का वह शोक राजा मालदेव भूला न था। हुमायूँ बाबर का लड़का था और बाबर के साथ युद्ध में उसका बेटा मारा गया था।/ इसलिए असम्मान के साथ हुमायूँ को राजा मालदेव के पास से निराश होकर लौटना पड़ा।

हुमायूँ को आश्रय न देने के और भी कारण राजा मालदेव के सामने थे। उसका बेटा रायमल तो अभी हाल ही में बाबर के द्वारा मारा गया था। लेकिन कन्नौज के पतन से लेकर मालदेव के सामने मुसलमानों की शत्रुता थी। शहाबुद्दीन गौरी ने पृथ्वीराज का सर्वनाश करके और दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर कन्नौज पर आक्रमण किया था। उस समय राजा जयचन्द की मृत्यु के साथ-साथ कन्नौज का पतन हुआ था और राठौड़ वंशी राजा जयचन्द के भाई और भतीजों ने कन्नौज से भागकर भारत की मरुभूमि में जाकर आश्रय लिया। अपने पूर्वजों की यह दुरवस्था राजा मालदेव को भूली न थी। इस प्रकार के कितने ही कारणों से हुमायूँ अपनी भीषण विपदा में मालदेव से किसी प्रकार का आश्रय न पा सका और वहाँ से उसे चला जाना पड़ा।

राजनीति में स्वार्थ को ही महत्व मिलता है। हुमायूँ को शरण न देने के कारण बादशाह शेरशाह के निकट राजा मालदेव के सम्मान की वृद्धि होनी चाहिए थी। क्योंकि उसने उसके शत्रु को आश्रय देने से इनकार किया था। परन्तु शेरशाह के नेत्रों में इसका कोई महत्व न हुआ। वह मुगलों को पराजित करके दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा था। मारवाड़ का राज्य दिल्ली से बहुत दूरी पर न था। वहाँ का राजा मालदेव अपनी शक्तियों के लिये इस देश में प्रसिद्ध हो रहा था। शेरशाह को ऐसे समय पर उससे भयभीत होना स्वाभाविक था। हुमायूँ के बाद उसका मालदेव के साथ युद्ध करना कभी भी सम्भव हो सकता था। इस दशा में बादशाह शेरशाह के लिये यह जरूरी था कि वह पड़ौसी शक्तिशाली राजा को मिटाकर और शक्तिहीन बनाकर इस देश में शासन करे।

शेरशाह ने मारवाड़ पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी। उसने अस्सी हजार लड़ाकू वीरों की एक सेना तैयार की और मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये वह दिल्ली से रवाना हो गया। शेरशाह के इस आक्रमण का समाचार मारवाड़ में राजा मालदेव ने सुना। उसके सामने किसी प्रकार की चिन्ता पैदा नहीं हुई। वह चुपचाप अपनी राजधानी में बैठा रहा और शेरशाह की सेना को मारवाड़ की तरफ लगातार बढ़ने का उसने अवसर दिया।

राजा मालदेव ने इसके बाद शेरशाह से युद्ध करने के लिये अपनी तैयारी आरम्भ की। परन्तु उस तैयारी में किसी प्रकार की उतावली न थी। मारवाड़ के निकट पहुँच कर शेरशाह की फौज ने मुकाम किया और बड़ी सावधानी के साथ वह राजा मालदेव की खबरें लेने लगा।

मारवाड़ में युद्ध की तैयारियाँ हो गयीं। मुसलमानों के आक्रमण को व्यर्थ करने के लिये पचास हजार राठौड़ शूरवीर युद्ध के लिये तैयार हो गये। लेकिन मालदेव की सेना अभी तक अपनी राजधानी में ही थी। उसके सामने किसी प्रकार की चिन्ता और उतावली न थी। उसके ये समाचार भी बादशाह शेरशाह को बराबर मिलते रहे। उसकी समझ में यह न आया कि राजा मालदेव की इस निश्चिन्त अवस्था का कारण क्या है। अपनी छावनी में बैठकर बड़ी सावधानी के साथ शेरशाह मारवाड़ की परिस्थिति पर विचार करने लगा। राठौड़ों की शक्तियों से वह अपरिचित न था। मालदेव को पराजित करना वह बहुत आसान न समझता था इसलिये होने वाले युद्ध की परिस्थितियों पर बड़ी गम्भीरता के साथ वह विचार करने लगा।

मालदेव की शक्तियाँ उन दिनों में इतनी साधारण न थीं, जिनको तुच्छ समझकर कोई मारवाड़ पर आक्रमण करने का साहस करता। इसीलिये शेरशाह मालदेव को पराजित करने के लिये अनेक प्रकार के उपाय सोचता रहा। उसने अपने जीवन में राजनीतिक चालों के द्वारा सदा सफलता पायी थी। हुमायूँ को पराजित करने में भी उसने बड़ी राजनीति से काम लिया था। इस समय उसने अपनी विशाल सेना लेकर मालदेव के साथ युद्ध करने के लिये मारवाड़ पर आक्रमण किया था। उसकी फौज मारवाड़ राज्य की सीमा के बाहर अभी तक पड़ी थी और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुकने के बाद भी मालदेव अपनी सेना के साथ अभी तक राजधानी में ही था।

बहुत सोच-समझ कर शेरशाह ने मालदेव को पराजित करने के लिये निर्णय किया। वह राठौड़ों के युद्ध-कौशल को भली-भाँति जानता था। मालदेव के शूरवीर सरदारों की शक्तियों से भी वह परिचित था। शेरशाह भली प्रकार समझता था कि यदि सरदारों के साथ मालदेव का विश्वास किसी प्रकार भंग किया जा सकता है तो राजा मालदेव की शक्तियाँ बहुत दुर्बल हो जायेंगी और उस दशा मे उसको पराजित करना कोई बड़ा मुश्किल कार्य न होगा। अपनी सफलता के लिये उसने एक षड़यन्त्र की रचना की। बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसने एक पत्र तैयार किया, जिसको पढ़ने से राजा मालदेव का विश्वास तुरन्त अपने सरदारों से हट जायेगा। यह पत्र तैयार करके किसी प्रकार उसने राजा मालदेव के दरबार में पहुँचाने की कोशिश की। शेरशाह को अपने षड़यन्त्र में सफलता प्राप्त हुई। वह पत्र राजा मालदेव के हाथों में पहुँच गया, उसको पढ़ते ही उसके प्राण सूख गये। वह बार-बार सोचने लगा कि अपने जिन सरदारों पर मैं गर्व करता हूँ। वे मेरे शत्रु से मिले हुये हैं और इन सरदारों को इस बात का प्रलोभन है कि मारवाड़ का राज्य शेरशाह की अधीनता में आ जाने पर इस राज्य के सरदारों को आज से अधिक अधिकार और सम्मान प्राप्त होंगे।

शेरशाह ने जो पत्र भेजकर राजा मालदेव के साथ षड़यन्त्र किया था, उसके रहस्य को मालदेव समझ न सका। उसने उस पत्र पर पूरा विश्वास किया और उस पत्र को पाने के बाद उसका सम्पूर्ण विश्वास सरदारों से हट गया। अपने मन की इस परिस्थिति में उसने मन्त्रियों और सरदारों से एक बार भी बात करने का विचार न किया। बादशाह शेरशाह से युद्ध करने के लिये उसने जो पचास हजार राजपूतों की सेना तैयार की थी, वह अभी तक मारवाड़ की राजधानी में मौजूद थी। युद्ध के सम्बन्ध में राजा मालदेव क्या सोच रहा है, इस बात को वहाँ पर कोई न जानता था।

राजा मालदेव के शूरवीर सरदार युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे और राजा मालदेव सरदारों से अपना विश्वास खोकर मन की ऐसी क्षत-विक्षत अवस्था में था, जिसमें यह सोच सकना उसके लिये असम्भव हो गया था कि अब उसे भयंकर विपद के समय क्या करना चाहिये। बादशाह शेरशाह अपने शिविर में बैठा हुआ मारवाड़ की इन भीतरी परिस्थितियों का अध्ययन कर रहा था। उसने जो षड़यन्त्र रचा था, उसमें उसे पूर्ण रूप से सफलता मिली। उसने अपने षड़यन्त्र के द्वारा मालदेव और उसके सरदारों के बीच का सुदृढ़ विश्वास नष्ट कर दिया। मालदेव को यह विश्वास पूरी तौर पर हो गया कि मेरे सभी सरदार शत्रु से मिले हुये हैं। इस दशा में उसने युद्ध स्थगित कर दिया और कर्त्तव्यहीन होकर वह अपनी राजधानी में बैठा रहा।

शेरशाह को जब मालदेव की इन भीतरी परिस्थितियों का सही समाचार मिल गया तो उसने अवसर का लाभ उठाया और मारवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजा मालदेव और उसके सरदारों ने अपनी राजधानी में बैठकर सुना कि शेरशाह की विशाल फौज. मारवाड़ में प्रवेश करने की तैयारी कर रही है। राजा मालदेव ने अपने अविश्वास के सम्बन्ध में न तो सरदारों से कोई बातचीत की और न उसने शत्रु से युद्ध करने का कोई कार्यक्रम बनाया। वह इस भीषण विपद के समय क्यों चुपचाप बैठा हुआ है, मारवाड़ के सरदारों को इसका कुछ भी पता न था। इस अनिश्चित अवस्था में सरदारों ने राजा मालदेव से मिलकर बातचीत की। उसके अविश्वास का रहस्य सरदारों को मालूम हो गया। परन्तु वे मालदेव के मन में उत्पन्न होने वाले सन्देह को मिटा न सके। सभी सरदारों ने मालदेव के भ्रम को दूर करने के लिये बड़ी-से-बड़ी चेष्टायें कीं परन्तु उनको सफलता न मिली। मालदेव के मन में जो सन्देह और अविश्वास पैदा हो गया था, वह ज्यों का त्यों कायम रहा।

शेरशाह की फौज ने मारवाड़ के बाहर मुकाम किया और वहाँ रह कर उसने पूरा एक महीना व्यतीत किया। शेरशाह की चालों से राजा मालदेव और सरदारों में जो फूट पैदा हुई, वह मिट न सकी। सरदारों का विश्वास खोकर राजा मालदेव किसी प्रकार शत्रु के साथ युद्ध करने का साहस न कर सका। सरदारों के बातचीत करने पर भी जब कोई परिणाम न निकला तो ठीक उन्हीं दिनों में सरदारों ने राजा मालदेव से निराश होकर अपने अधिकार के बारह हजार राजपूत सैनिकों को तैयार किया और राजधानी से निकल कर वे लोग उस मुकाम की तरफ रवाना हुये, जहाँ पर शेरशाह की फौज मौजूद थी। बड़ी तेजी के साथ वहाँ पर पहुँचकर मारवाड़ के राजपूतों ने बादशाह के शिविर पर आक्रमण किया। उसके साथ ही भीषण मार-काट आरम्भ हो गयी। शेरशाह की विशाल सेना ने सम्हल कर अपनी पूरी शक्ति के साथ राजपूतों से युद्ध आरम्भ किया। बादशाह की फौज के मुकाबले में राजपूतों की संख्या बहुत कम थी। इसलिये युद्ध में राजपूत अधिक मारे गये।

राजा मालदेव ने जब युद्ध का समाचार सुना और उसे मालूम हुआ कि राज्य के सरदार और उनके साथ के थोड़े से सैनिक बादशाह की बहुत बड़ी फौज के साथ युद्ध में

भयानक रूप से मारे जा रहे हैं। उस समय उसको अपने भ्रम पर वहुत अफसोस हुआ और उसने समझ लिया कि सरदारों पर अविश्वास करने के लिये मेरे साथ एक भीषण षड्यन्त्र रचा गया था। उसने वड़ी पीड़ा के साथ इस बात को अनुभव किया कि अपने सरदारों पर अविश्वास करने में मैंने बहुत बड़ी भूल की है। उसी समय उसने मारवाड़ की रक्षा के लिये अपनी सेना को तैयार किया और युद्ध के क्षेत्र में पहुँचने की उसने चेष्टा की। मालदेव की सेना जिस समय वहाँ पर पहुँची, उसके सरदारों की सेना मारी जा चुकी थी और वहुत से सरदार युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दे चुके थे।

इस दुरवस्था में मालदेव की सेना ने शेरशाह की फौज का सामना किया। परन्तु वह सेना भी अधिक समय तक युद्ध न कर सकी। मालदेव के वहुत से सैनिक मारे गए और अन्त में उसकी पराजय हुई।

शेरशाह से पराजित होकर दिल्ली की राजधानी से हुमायूँ के भागने पर हिन्दुस्तान में उसे कहीं शरण न मिली थी। इसलिये इस देश की मरुभूमि में जाकर अमरकोट में हुमायूँ ने आश्रय लिया था। वहीं पर उसके वेटे अकवर का जन्म हुआ। उसके पश्चात् हुमायूँ भारतवर्ष से निकलकर परसिया के राज्य में चला गया और वहाँ पर बहुत समय तक रहकर उसने अपने जीवन के दिन काटे। वहाँ से लौटकर वह फिर भारतवर्ष में आया और उसने शेरशाह पर आक्रमण किया। उस युद्ध में शेरशाह की पराजय हुई और हुमायूँ फिर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

शेरशाह को पराजित करने के वाद हुमायूँ अधिक समय तक राज्य का सुख भोग न सका। उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद अकवर उसके सिंहासन पर बैठा। वह आरम्भ से ही बुद्धिमान और दूरदर्शी था। अपनी माता के मुख से पिता के दुर्दिनों की घटनायें वह सुना करता था। उन्हीं दिनों में उसने अपनी माता के मुख से यह भी सुना था कि दिल्ली से भागने पर किस प्रकार उसका पिता आश्रय पाने के उद्देश्य से मारवाड़ गया और वहाँ के राजा मालदेव ने उस विपदकाल में आश्रय न देकर किस प्रकार असम्मानपूर्ण व्यवहार किया था। इस प्रकार की घटनाओं को सुनने के बाद अकवर के कोमल अन्तकरण में राजा मालदेव से बदला लेने की भावनायें एक साथ जागृत हो उठीं। उसने कुछ दिन और व्यतीत किये।

अभी अकवर की अवस्था पूरे पन्द्रह वर्ष की भी न हुई थी, सम्वत् 1617 सन् 1561 ईसवी में अकबर अपनी विशाल सेना लेकर रवाना हुआ और मारवाड़ में पहुँचकर उसने वहाँ के दुर्ग को घेर लिया। वहाँ पर दुर्ग की रक्षा के लिये मारवाड़ की जो छोटी सी एक सेना थी, उसने अकवर की फौज के साथ युद्ध किया। उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। उनमें बहुत से राजपूत मारे गये और जो वाकी रहे वे किसी प्रकार दुर्ग से निकलकर भाग गये। अकबर की फौज ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसके वाद अकवर की सेना नागौर की तरफ रवाना हुई और वहाँ पर भी अकवर ने अधिकार कर लिया। इन जीते हुये दोनों नगरों को अकवर ने वीकानेर के राजा रायसिंह को दे दिया और उसको अपनी तरफ से वहाँ का अधिकारी बना दिया।

अकवर का प्रताप इन दिनों में बढ़ रहा था। मेवाड़ को छोड़ कर राजस्थान के सभी राज्य उससे भयभीत हो रहे थे। मारवाड़ के राजा मालदेव ने अकवर की अधीनता स्वीकार कर ली और सम्वत् 1625 सन् 1561 ईसवी में उसने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को अकवर के पास भेजा। अकवर उन दिनों में अजमेर में रहता था। चन्द्रसेन ने वहाँ पहुँचकर बहुमूल्य भेंटें बादशाह अकवर को दीं। लेकिन अकवर को इससे सन्तोष न हुआ। मालदेव का स्वयं

न आना अकबर के असन्तोष का कारण बना। उसने मालदेव के इस अहंकार का बदला लेने के लिये रायसिंह को जोधपुर का भी अधिकारी बना दिया।

चन्द्रसेन राजा मालदेव के भेजने से अकबर के पास गया था। परन्तु वहाँ के व्यवहारों से उसके स्वाभिमान को जो आघात पहुँचा, उसे किसी प्रकार उसने सहन किया। इन्हीं दिनों में मुगलों की एक सेना ने मारवाड़ के सिवाना नगर पर आक्रमण किया। मुगलों की उस सेना का सामना करने के लिये राठौड़ों की एक सेना लेकर चन्द्रसेन युद्ध करने गया और वहाँ पर वह मारा गया। उस समय उसके तीन लड़के थे। उग्रसेन उनमें बड़ा था।

सम्वत् 1625 सन् 1569 ईसवी में मालदेव की मृत्यु हो गयी। उसके निम्नलिखित बारह लड़के थे :–

1- रामसिंह, पिता के निकाल देने पर वह मेवाड़ के राणा के पास चला गया। उसके सात लड़के थे। उनमें पाँचवें पुत्र केशवदास का कुछ उल्लेख पाया जाता है। केशवदास ने चोली महेश्वर नामक स्थान पर अपना निवास स्थान बनाया था।
2- रायमल, बियाना के युद्ध में मारा गया।
3- उदयसिंह, मारवाड़ का राजा।
4- चन्द्रसेन, झाला वंश की राजपूत रमणी से पैदा हुआ था। इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। चन्द्रसेन के तीन लड़के हुये। उग्रसेन उनमें सबसे बड़ा था। उसे भिनाय नामक स्थान का अधिकार मिला था। उग्रसेन के भी तीन लड़के पैदा हुये– कर्ण, कान्ह जी और काहस जी।
5- आस कर्ण, इसका वंश आज भी जूनिया नामक स्थान में पाया जाता है।
6- गोपालदास, ईडर नगर में मारा गया।
7- पृथ्वीराज, इसके वंशज अब तक जालौर में पाये जाते हैं।
8- रतनसिंह, इसके वंशज भद्राजून में रहते हैं।
9- भोजराज, इसके वंशज अहारी में पाये जाते हैं।
10- विक्रमाजीत
11- भान
12- x

(10–12) — इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

मालदेव के मरने के बाद उसका बड़ा बेटा उदयसिंह उसके सिंहासन पर बैठा। उसके कुछ ही समय के बाद उसने अपनी बहन का ब्याह मुगल राजघराने में कर दिया।

□

अध्याय—34

राव मालदेव के पश्चात मारवाड़ व राव उदयसिंह

राजा मालदेव की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ राज्य के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वहाँ के शासन और सम्मान में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो गये। मालदेव के समय तक मारवाड़ में सिहा जी के वंशजों का शासन रहा और अव वह शासन मुगलों की अधीनता में जीवन के दिन व्यतीत करने लगा। मारवाड़ में जहाँ पर राजपूतों का पंचरंगा झण्डा फहराता था, वहाँ पर अव मुगलों का झण्ड़ा फहरा रहा था। जहाँ की शासन सत्ता राठौड़ों के संकेत पर चल रही थी, वहाँ पर मुगलों की सत्ता काम करने लगी। राजा मालदेव के अन्तिम दिनों में मुगलों का आधिपत्य मारवाड़ के नगरों में आरम्भ हुआ और उसके मरने के पश्चात् सम्पूर्ण राज्य को मुसलमानों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उदयसिंह राजा मालदेव का वड़ा लड़का था। पिता के मरने के वाद सिंहासन का वही अधिकारी था। परन्तु सम्राट अकवर की आज्ञा के विना वह सिंहासन पर वैठ न सका। उसका अधिकार अकवर की प्रसन्नता पर निर्भर था। राज्य सिंहासन को प्राप्त करने के लिये अकवर को प्रसन्न करना उदयसिंह के लिये सभी प्रकार आवश्यक था। उसके अन्तःकरण में राजपूतों का स्वाभिमान न था। पूर्वजों के उज्जवल गौरव को सम्मान देने की योग्यता.उसमें न थी। उदयसिंह सिहाजी का अयोग्य वंशज था। उसने स्वाभिमान और स्वातन्त्र्य के सामने राज-सिंहासन को अधिक महत्व दिया। उसने अकवर को प्रसन्न करने में सफलता प्राप्त की। राजा मालदेव का सिंहासन और मारवाड़ का राज्याधिकार प्राप्त हुआ, लेकिन पूर्वजों का स्वाभिमान और गौरव उसे खो देना पड़ा। वादशाह अकवर की आज्ञा लेकर उदयसिंह पिता के सूने राज्य सिंहासन पर वैठा और इस सिंहासन के प्रत्युपकार में उसे अपनी वहन का मुगल घराने में व्याह कर देना पड़ा। उदयसिंह ने मुगल दरवार में मनसवदारी का पद प्राप्त किया और उस दिन से मारवाड़ खुलकर मुगलों की पराधीनता में आ गया।

सम्वत् 1625 में राठौड़ राजा मालदेव का परलोकवास हुआ। उसका सवसे वड़ा लड़का उदयसिंह उसका उत्तराधिकारी था और वही उसके वाद राज सिंहासन पर वैठा। परन्तु भट्ट ग्रन्थों में लिखा गया है कि राजा मालदेव का दूसरा लड़का चन्द्रसेन जव तक जीवित रहा, उदयसिंह को राजसिंहासन प्राप्त नहीं हुआ। मालदेव के समय में ही उदयसिंह की जिन्दगी का रास्ता विगड़ा हुआ दिखायी देता था। उनके मनोभावों में पूर्वजों के गौरव के प्रति सम्मान न था, उसमें स्वाभिमान का विलकुल अभाव था। वह स्वार्थी था और किसी

प्रकार राजसिंहासन पर बैठ कर राज्य सुख का भोग करना चाहता था। मारवाड़ के सामन्तों से उदयसिंह की यह अवस्था छिपी न थी। उसका छोटा भाई चन्द्रसेन इन्हीं कारणों से उसका विरोधी था। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप दोनों भाइयों में संघर्ष पैदा हो गया था। वहाँ के सभी श्रेष्ठ सामन्तों ने चन्द्रसेन का समर्थन किया था। आरम्भ से लेकर उदयसिंह के समय तक मारवाड़ के शासन की हम यहाँ पर कुछ आवश्यक आलोचना करने की चेष्टा करेंगे। शुरू से लेकर उदयसिंह के समय तक मारवाड़ का इतिहास तीन प्रमुख भागों में दिखाई देता है और वह इस प्रकार है :—

(1) खेड़-राज्य में सिहाजी के सन् 1212 ईसवी में आने से लेकर सन् 1381 ईसवी में चूँडा द्वारा मन्दोर जीतने के समय तक।

(2) मन्डोर जीतने के समय से लेकर जोधपुर की प्रतिष्ठा के समय सन् 1459 ईसवी तक।

(3) जोधपुर की प्रतिष्ठा के समय से उदयसिंह के राज्य सिंहासन पर बैठने के समय सन् 1584 ईसवी तक, जब राठौड़ों ने मुगलों की पराधीनता को स्वीकार किया।

इन चार सौ वर्षो में राठौड़ों का ऐतिहासिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ, यहाँ पर उसकी स्पष्ट आलोचना करने की आवश्यकता है। आरम्भ में बहुत दिनों तक भूमिया लोगों से मरुभूमि का पश्चिमी भाग प्राप्त करने में समय व्यतीत हुआ। उन दिनों में वहाँ का जितना भाग उनको प्राप्त हो सका था, उसी पर उनको सन्तोष करना पड़ा। उसके बाद मन्डोर नगर पर विजय प्राप्त करने पर लूनी नदी के दोनों तरफ की उपजाऊ भूमि रणमल्ल और जोधा के लड़कों के अधिकार में आ गयी।[1] इसके पश्चात् जोधपुर नगर बसाया गया और इसके तैयार हो जाने पर राठौड़ों की राजधानी जोधपुर में पहुँच गयी।

रावजोधा के तेईस भाई थे, उनमें कोई भी उत्तराधिकार प्राप्त करने की योग्यता न रखता था। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि उनमें कोई भी उत्तराधिकारी होने के योग्य न था। राज्य के हित के लिये यह आवश्यक था कि उन तेईस के सिवा किसी अन्य को जो सभी प्रकार सक्षम और योग्य हो, उत्तराधिकारी बनाया जाये और ऐसा किसी निकटवर्ती को प्राप्त करके किया जा सकता था। परन्तु जोधा ने इस बात का अपने यहाँ एक विधान बना लिया था कि उसके वंशजों के अतिरिक्त दूसरा कोई जोधपुर के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता। जो राठौड़ मारवाड़ के सामन्त हैं, उनमें से किसी को जोधपुर के सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार जोधा ने अपने यहाँ एक निश्चित व्यवस्था बना ली थी, जिसका वर्णन भली प्रकार अजमेर के इतिहास में किया गया है।

सिहाजी के वंशजों में जोधाराव ने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अपनी उस प्रतिष्ठा को वह स्वयं भी अनुभव करता था। उसने अपने राज्य की जागीरदारी प्रथा के नियमों को बदलने का भी काम किया था। उसके पिता रणमल्ल के चौवीस लड़के थे और उनमें से वह स्वयं एक था। उसके चौदह पुत्र पैदा हुये थे। इन सबको देखकर उसको इस बात का ख्याल हुआ कि इन सबके जो सन्तानें पैदा होंगी, उनकी संख्या बहुत बढ़ जायेगी और जागीरदारी प्रथा की पुरानी व्यवस्था के अनुसार जो जागीरें दी जायेगी, उनसे राज्य की सम्पूर्ण भूमि बहुत से टुकड़ों में बँट जायेगी। उस दशा में भूमि के प्रश्न को लेकर विवाद पैदा होना बहुत स्वाभाविक हो जायेगा। इसलिये भविष्य में पैदा होने वाले इन विवादों को रोकने का

1. रणमल्ल को पिछले पृष्ठों में बहुत से स्थानों पर रिडमल्ल भी लिखा गया है। दोनों नाम एक ही है। सही नाम के लिखने में कहीं-कहीं बड़ी भूल हुई है। — अनुवादक

कार्य अभी से होना चाहिए। इस प्रकार सोच-विचार कर जोधाराव ने जागीरों की संख्या और उनकी सीमा का निश्चय कर दिया था। उसके बड़े भाई काँधल ने बीकानेर के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। उसके वंशज काँधलोत नाम से प्रसिद्ध हुये और उन लोगों ने स्वतन्त्रता के साथ वहाँ पर राज्य किया।

जोधाराव के तीसरे भाई चम्पा जी ने अपने नाम पर एक शाखा की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार की शाखायें बहुतों के द्वारा स्थापित हुई थीं। जोधाराव ने जागीरदारी प्रथा में जो परिवर्तन किये थे, उसी के अनुसार उसने भाइयों, भतीजों और पौत्रों को जागीरें दी थीं।

जोधाराव ने अपने राज्य में जिस प्रकार जागीरों का विभाजन किया था, राजा मालदेव ने उनको स्वीकार किया यद्यपि उसने दूसरी श्रेणी जागीरों की वृद्ध कर दी थी, फिर भी उनकी पूर्ति राज्य की सीमा के बढ़ जाने के कारण हो गयी थी। जोधा से लेकर मालदेव तक जो जागीरें इस राजवंश के लोगों को दी गयी थी, उनके नियमों में कुछ भिन्नता थी। जो जागीरें विजय करके प्राप्त की गयी थी, उनके लिये यह नियम रखा गया कि यदि जागीरदार के कोई पुत्र न हो तो गोद लिया हुआ लड़का भी उसका अधिकारी हो सकता है। परन्तु इसके बाद जो जागीरें दी गयीं, उनमें यह नियम काम नहीं करता और वे पुत्र के अभाव में राज्य में मिला ली जाती थीं।

इस प्रकार का नियम प्राचीन काल से मेवाड़ में चल रहा था। इसके पालन में कभी-कभी उपेक्षा भी हो जाती थी। ये जागीरें दो प्रकार की थीं। कुछ जागीरों में राजा को कर देना पड़ता था और कुछ में कर नहीं देना पड़ता था। सिहाजी से लेकर जोधा तक वंश के जिन लोगों का स्थान राज्य के उत्तर और पश्चिम में था, वे अपनी दुर्बल आर्थिक अवस्था के कारण और कुछ अभिमान के कारण अपनी जागीरों का स्वतन्त्रतापूर्वक भोग करते थे, इतना सब होने पर भी सभी जागीरदार मारवाड़ के राजा को प्रधानता देते रहे और जब कभी राजा पर संकट आता तो वे अपनी-अपनी जागीर के अनुसार धन देकर राजा की सहायता करते थे। ये लोग राजा को किसी प्रकार का कर नहीं देते थे। इसलिये उनकी जागीरें स्वतन्त्र मानी जाती थीं। इस प्रकार की जागीरें, जिनको कुछ नहीं देना पड़ता, बाड़मेर, कोटडा से फलसूँड तक फैली हुई थीं।

इसके बाद जो दूसरी जागीरें थीं, यद्यपि वे पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं थीं, तो भी वे छोटे माफीदार कहे जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनसे सहायता ली जाती है और विशेष उत्सवों पर वे लोग राजा को भेंट देते हैं। महेवा और सनदारी इसी प्रकार की माफीदार जागीरों में से हैं। इस वंश के लोग पूर्वजों की उपाधि से अपना परिचय देते हैं। इनमें से कुछ लोगों को दुहड़िया, किसी को माँगलिया, किसी को ऊहड़ और किसी को धांदल के नाम से सम्बोधित किया जाता है। परन्तु उनके द्वारा इस बात का पता नहीं चलता कि ये लोग राठौड़ हैं।

मारवाड़ राज्य में जागीरदारी प्रथा चल रही थी, वह सिहाजी के समय से चली आ रही थी। यही प्रथा पहले कन्नौज में चला करती थी। राजस्थान के सभी राज्यों की जागीरदारी प्रथा करीब-करीब एक-सी थी और यूरोप की जागीरदारी प्रथा से बिलकुल मिलती-जुलती थी।

उदयसिंह के सिंहासन पर बैठने के सम्बन्ध में भट्ट ग्रन्थों में जो उल्लेख पाया जाता है, वह एक-सा नहीं है। किसी ग्रन्थ में लिखा है कि मालदेव की मृत्यु के बाद सम्वत् 1625 सन् 1569 ईसवी में वह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि वह बड़े भाई चन्द्रसेन के मारे जाने पर गद्दी पर बैठा। इस प्रकार के कुछ

मतभेद उसके सिंहासन पर वैठने के सम्वन्ध में पाये जाते हैं। इसमें सही क्या है, यह नहीं कहा जा सकता।

उदयसिंह जोधाराव का अयोग्य वंशज था और अपनी अयोग्यता के कारण ही उसकी स्वतंत्रता नष्ट हुई। उसमें स्वाभाविक रूप से विलासिता थी। राजपूतों में जो तेज और प्रताप प्रायः पाया जाता है, उसके जीवन में इस प्रकार के गुणों का पूर्ण रूप से अभाव था। अपनी अकर्मण्यता के कारण वह स्वाभिमान को खोकर सब कुछ कर सकता था। उसने अपनी वहन का विवाह मुगल राजघराने में करके अपने पूर्वजों के गौरव को नष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर अकवर ने मारवाड़ राज्य का अजमेर नगर अपने अधिकार में रखकर राज्य का शेष भाग उदयसिंह को लौटा दिया था। इसके अतिरिक्त उदयसिंह ने मालवा के कई नगरों का अधिकार भी वादशाह से प्राप्त कर लिया था। वह वादशाह अकवर की अधीनता में था। परन्तु उसके राज्य की आमदनी पहले से वहुत अधिक हो गयी थी। उसको मुगलों की सैनिक सहायता भी प्राप्त थी, जिससे उसने दूदा के वंशजों से समस्त भूमि लेकर अपने अधिकार में कर ली और कुछ नगर दूसरों से भी उसने छीन लिये थे।

वादशाह अकवर से उदयसिंह को वहुत-सी सुविधायें प्राप्त थीं। अकवर उसे मरुप्रदेश का राजा कहा करता था। उसके चौंतीस सन्तानें थीं। उसके द्वारा कितने ही नये वंशों की स्थापना हुई और उसके लड़कों ने गोविन्दगढ़ तथा पीसांगन आदि कई एक जागीरें कायम की थीं। कुछ जागीरें उसके राज्य की सीमा से वाहर थीं और उनके नाम संस्थापकों के नाम पर रखे गये थे। इनमें से कुछ किशनगढ़ और रतलाम में हैं।

उदयसिंह का शरीर मोटा था और उसकी वुद्धि भी मोटी थी। उसे लोग मोटा राजा कहा करते थे। स्थूल शरीर के कारण वह घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था। उसने तेरह वर्ष राज्य किया। मृत्यु से पहले उसकी एक घटना का उल्लेख मिलता है। यों तो भट्ट ग्रन्थों से पता चलता है कि राठौड़ राजकुमारों को छोटी आयु में नैतिक शिक्षा दी जाती थी और उससे प्रत्येक राजकुमार चरित्रवान वनने की चेष्टा करता था। उदयसिंह को नैतिक शिक्षा मिली थी अथवा नहीं, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके सत्ताईस रानियाँ थीं। उनके अतिरिक्त वुढ़ापे में उसने एक व्राह्मण की लड़की से विवाह करने की चेष्टा की थी। उस घटना का उल्लेख इस प्रकार मिलता हैं :–

'ख्यात' नामक एक भट्ट ग्रन्थ में लिखा है कि उदयसिंह एक दिन वादशाह अकवर के दरवार से लौटकर अपने राज्य को आ रहा था। रास्ते में वीलाड़ा नामक एक ग्राम के निकट उसने एक अत्यन्त रूपवती लड़की को देखा। उदयसिंह ने उस लड़की से वातचीत की। उसे मालूम हुआ कि आयापन्थी सम्प्रदाय के किसी व्राह्मण की वह लड़की है। इस पन्थ के व्राह्मण लोग किसी देवी के उपासक होते हैं और तान्त्रिक विद्या पर विश्वास करते हैं। वे लोग मदिरा और मांस के द्वारा अपनी आराध्य देवी की पूजा करते हैं।

उदयसिंह ने उस सुन्दरी युवती को अपने साथ लाकर विवाह करने का निश्चय किया। उदयसिंह ने उस लड़की के पिता को वुलाकर उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की। व्राह्मण उदयसिंह की वात को सुनकर वहुत दुःखी और लज्जित हुआ। उसने सोच डाला कि मैं अपनी लड़की को मार डालूंगा, परन्तु इस प्रकार का कलंकित कार्य न करूंगा। उसने एक वड़ा होमकुण्ड खोदकर तैयार किया और एक तलवार लेकर उसने अपनी लड़की को मार डाला। उसने उसके शरीर के कई टुकड़े किये और उनको उसने जलते हुये होमकुण्ड में डाल दिया। कुण्ड में वहुत-सी लकड़ियों के साथ घी डाला गया था। इसलिये उसमें से

होली की-सी लपटें उठने लगीं। उसी समय उस ब्राह्मण ने खड़े होकर राजा को श्राप दिया और उसके बाद वह तान्त्रिक ब्राह्मण जलते हुये अग्नि कुण्ड में कूद पड़ा। थोड़ी देर में पिता-पुत्री के शरीर राख का ढेर बन गये।

राजा उदयसिंह ने भी यह समाचार सुना। इस समय उसको अपनी अभिलाषा एक भयानक अपराध मालूम हुई। इसी दिन से उसके मन में एक अशान्ति पैदा हो गयी और प्रत्येक घड़ी वह अस्थिर रहने लगा। इसके कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी। ऊपर लिखा जा चुका है कि उदयसिंह के चौंतीस सन्तानें थीं। उसके सत्रह लड़के थे और सत्रह लड़कियाँ। उसकी इन सन्तानों के सम्बन्ध में नीचे लिखा हुआ विवरण पाया जाता है:

1- शूरसिंह, सिंहासन पर।
2- अखयराज
3- भगवानदासः इसके वल्लू, गोपालदास और गोविन्ददास नाम के तीन लड़के थे। गोविन्द दास ने गोविन्दगढ़ बसाया था।
4- नरहरदास
5- शक्तसिंह — इनके कोई सन्तान नहीं हुई।
6- भूपनसिंह
7- दलपत:- इसके चार पुत्र हुये, महेशदास उनमें सबसे बड़ा था। उसके लड़के रतन ने रतलाम नामक एक दुर्ग बनवाया था। उसके तीन लड़के थे, यशवन्तसिंह, प्रतापसिंह और कुर्नीरन।
8- जयत:- इसके चार लड़के उत्पन्न हुये, हरी, अमर, कन्हीराम और प्रेमराज। इनकी सन्तानों को बलूँता और खरवा की भूमि मिली थी।
9- किशनसिंह:- इसने सम्वत् 1669 सन् 1613 ईसवी में किशनगढ़ बसाया। साहसमल, जगमल, भारमल नाम के इसके तीन लड़के थे। भारमल का लड़का हरीसिंह था और हरीसिंह के रूपसिंह नाम का एक बेटा था। रूपसिंह ने रूप नगर बसाया।
10- यशवन्तसिंह:- इसके लड़के मानसिंह ने मानपुर बसाया। उसकी सन्तानें मनुरूप जोधा के नाम से विख्यात हुईं।
11- केशव:- इसने पीसानगढ़ बसाया था।
12- रामदास
13- पूरनमल
14- माधवसिंह — इनके केवल नाम पाये जाते हैं।
15- मोहनदास
16-- कीरतसिंह
17- x x x

इन पुत्रों के अतिरिक्त उदयसिंह के सत्रह लड़कियाँ भी पैदा हुई थीं, परन्तु भट्ट ग्रन्थों में उनका कोई वर्णन नहीं पाया जाता।

राजावली नामक एक पुस्तक में उदयसिंह की सन्तानों का ऊपर लिखा हुआ विवरण पाया जाता है।

□

अध्याय–35
मारवाड़ के सिंहासन पर राजा सूरसिंह और गजसिंह

उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका वड़ा लड़का शूरसिंह सम्वत् 1651 सन् 1595 ईसवी में मारवाड़ के सिंहासन पर वैठा। इस राज्य का गौरव उदयसिंह के शासन काल में निर्वल पड़ गया था। पिता की मृत्यु के समय में शूरसिंह लाहौर में था। वहाँ पर वह मुगल बादशाह की तरफ से भारत की सीमा का अधिकारी था। वहीं पर उसे उदयसिंह के मरने का समाचार मिला था। सन् 1648 ईसवी में सिन्ध को विजय किया गया। शूरसिंह उसी समय से वहाँ पर था।

शूरसिंह अपने पिता उदयसिंह की तरह का न था। जीवन के आरम्भ से ही वह रणकुशल और पराक्रमी था। उदयसिंह के जीवन काल में उसने अपनी रणकुशलता और वीरता का परिचय दिया था। उससे प्रसन्न होकर मुगल बादशाह अकबर ने उसे एक सम्मानपूर्ण पद देकर सवाई राजा की उपाधि दी थी।

बादशाह अकबर शूरसिंह की योग्यता से बहुत प्रभावित था। इसीलिये उसने इन दिनों में उसको एक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने का आदेश दिया। सिरोही का स्वामी राव सुरतान अपने एक सुदृढ़ पहाड़ी दुर्ग पर रहा करता था। उसका समस्त राज्य पर्वतमय था। उसको इस वात का विश्वास हो गया था कि उसके पहाड़ी और जंगली राज्य के नगरों और स्थानों में मुगल बादशाह की सेना प्रवेश नहीं कर सकेगी। इसी विश्वास के कारण उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी।

बादशाह अकबर की तरफ से शूरसिंह ने सिरोही राज्य पर आक्रमण किया। इसके पहले भी सिरोही राज्य के साथ उसका एक संघर्ष हो चुका था। शूरसिंह ने सिरोही के राजा को जीत कर, उसका सिरोही नगर लुटवा लिया। इस लूट में यहाँ तक अत्याचार किया गया कि राव सुरतान के पास चारपाई पर विछाने के लिये कपड़े तक न रह गये, भट्ट ग्रन्थों में लिखा है कि सिरोही के राजा राव सुरतान का अभिमान नष्ट करने के लिये शूरसिंह को उसके साथ ऐसा करना पड़ा। शूरसिंह ने उसका सम्मानपूर्ण अभिमान मिट्टी में मिला दिया और उसे मुगलों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सामन्त शासन प्रणाली के अनुसार राव सुरतान ने मुगल बादशाह का फरमान मन्जूर किया और अपनी सेना को लेकर वह दिल्ली के लिये रवाना हुआ। इन्हीं दिनों में बादशाह का आदेश पाकर शूरसिंह गुजरात के शाहमुजफ्फर के पास युद्ध करने के लिये रवाना

हुआ। उसके साथ सिरोही का राजा भी अपनी सेना के साथ था। शूरसिंह की सेना धुँधला नामक स्थान पर पहुँच गयी। वहीं पर शाहमुजफ्फर की फौज ने आकर युद्ध शुरू किया। इस लड़ाई में शूरसिंह के सैनिक अधिक मारे गये। लेकिन अन्त में शूरसिंह की ही विजय हुई। शाहमुजफ्फर पराजित हुआ। उसके अधिकार में अनेक नगर और ग्राम थे। वे सबके सब शूरसिंह के अधिकार में आ गये। शाहमुजफ्फर के नगरों को लूटकर शूरसिंह ने जो सम्पत्ति एकत्रित की, उसको उसने बादशाह के पास दिल्ली भेज दिया। शूरसिंह की इस विजय से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसको एक तलवार इनाम में देकर उसको बहुत सी भूमि दी।

गुजरात की विजय में शूरसिंह को लूट में बहुत-सी सम्पत्ति मिली थी। उससे उसने जोधपुर नगर और उसके दुर्ग की उन्नति की। इसी सम्पति में से उसने मारवाड़ के छः भट्ट कवियों को पुरस्कार दिये। प्रत्येक पुरस्कार एक लाख पचास हजार रुपये का था। गुजरात की विजय से शूरसिंह की ख्याति राजस्थान में चारों तरफ फैल गयी। बादशाह अकबर ने उसकी शक्तियों से प्रभावित होकर और भी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य उसे सौंपे। नर्मदा नदी के किनारे अमरबलेचा नाम का एक शूरवीर राजपूत राज्य करता था। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इसलिये अकबर बादशाह ने उसको पराजित करने के लिये शूरसिंह को भेजा। वह अपने साथ तेरह हजार सवारों की सेना, दस बड़ी-बड़ी तोपें और बीस लड़ाकू हाथियों को लेकर रवाना हुआ और नर्मदा नदी के किनारे पहुँचकर उसने अमर बलेचा पर आक्रमण किया।[1] उसका सामना करने के लिये अपने साथ पाँच हजार सवारों को लेकर अमर रवाना हुआ और मुगल सेना के सामने पहुँचकर उसने युद्ध आरम्भ किया। अमर के साथ बहुत छोटी सेना थी। फिर भी उसने शक्ति भर युद्ध किया, अन्त में उसकी पराजय हुई और वह मारा गया। शूरसिंह ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। इस विजय का समाचार सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने शूरसिंह को नौबत भेजी और विजय में मिला हुआ राज्य उसने उसको दे दिया।

इन्हीं दिनों में मुगल बादशाह की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका बड़ा लड़का जहाँगीर मुगलों के सिंहासन पर बैठा। इस नवीन बादशाह के प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट करने के लिये अनेक प्रकार की बहूमूल्य भेंटों के साथ अपने उत्तराधिकारी गजसिंह को लेकर शूरसिंह मुगल दरबार में गया। युवक गजसिंह को देखकर बादशाह जहाँगीर बहुत खुश हुआ। राजकुमार गजसिंह शूरसिंह का सुयोग्य लड़का था। बादशाह ने जालौर के युद्ध में उसकी वीरता का प्रमाण पाया था। इस समय उसको दरबार में देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और अपने दरबारियों के सामने उसकी वीरता और योग्यता की बड़ी देर तक प्रशंसा की।

जालौर के युद्ध-क्षेत्र में गजसिंह ने अपने अद्‌भुत शौर्य का परिचय दिया। उसकी उन्नति का आरम्भ वहीं से हुआ। उसने जालौर को गुजरात के बादशाह से जीतकर मुगल बादशाह को दे दिया था।

इन्हीं दिनों में पठानों के साथ युद्ध करने के लिये बादशाह ने उसे आदेश दिया। गजसिंह ने युद्ध की तैयारी की। उसने जालन्धर पर - जिसका नाम जालौर है - आक्रमण किया। उस युद्ध में बहुत से राठौड़ शूरवीर मारे गये। लेकिन अन्त में सात हजार पठानों को मारकर उसने उस शहर को लुटवा लिया और लूट में मिली हुई सम्पत्ति उसने बादशाह के पास भेज दी।

---

1. बलेचा चौहान वंश की एक शाखा है। अमर उस राजपूत का नाम था।

सम्वत् 1676 सन् 1620 ईसवी में राठौड़ नरेश शूरसिंह की दक्षिण में मृत्यु हो गयी। वह एक शूरवीर और सुयोग्य राजपूत था। वादशाह के दरवार में उसको सम्मान मिला था। दक्षिण में उसने वड़ी ख्याति पायी थी। उसके शासन-काल में जोधपुर का गौरव वढ़ गया था। उसने वहुत-से कुए, तालाव और अनेक इमारतें वनवाई थीं, जिनमें से वहुत-सी अव तक मौजूद हैं। उसके इस निर्माण कार्य में सूरसागर वहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि उस मरुभूमि में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।

शूरसिंह ने छः पुत्र और सात कन्याएं छोड़कर परलोक की यात्रा की। गजसिंह, सवलसिंह, वीरनदेव, विजयसिंह, प्रतापसिंह और जसवन्तसिंह नाम के उसके छः वेटे थे। उसकी सात लड़कियों के सम्वन्ध में कोई उल्लेख नहीं पाया जाता गजसिंह इन छः में सवसे वड़ा लड़का था। पिता की मृत्यु के वाद सन् 1620 ईसवी मे वह सिंहासन पर वैठा। उसका जन्म लाहौर में हुआ था। वहीं पर दरावखाँ वादशाह की तरफ से उसके पास पहुँचा और उसके सिर पर मुकुट रखकर उसके ललाट पर राजतिलक किया और उसकी कमर में तलवार वाँधी।

मारवाड़ के सिंहासन पर वैठने के वाद अजमेर के पास मसूदा नगर भी उसको दिया गया। इन्हीं दिनों में वादशाह ने उसको दक्षिण की सूवेदारी दी और कई प्रकार से उसका सम्मान किया।

गजसिंह अपने जीवन के आरम्भ से ही होनहार और सुयोग्य था। उसमें कई गुण थे। दक्षिण की सूवेदारी पाने के वाद उसने अपनी योग्यता और गम्भीरता के परिचय दिये। उसने कितने ही नगरों को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। खिड़कीगढ़, गोलकुण्डा, केलिया, परनाला, कंचनगढ़, आमेर और सितारा पर उसने इन्हीं दिनों में विजय पायी और ये सभी नगर मुगल राज्य में मिला लिये गये। इनको विजय करने में उसने अपने जिस रणकौशल का परिचय दिया था, उससे प्रसन्न होकर वादशाह ने उसको 'दलथम्भन' की उपधि दी थी।

राजपूत राजकुमारियों के विवाहों का सम्वन्ध मुगलों में अकवर के साथ आरम्भ हुआ था। वह क्रम वरावर जारी रहा। जहाँगीर इस समय दिल्ली के सिंहासन पर था। उसने भी दो राजकुमारियों के साथ विवाह किये थे। उनमें से राठौर राजकुमारी के गर्भ के परवेज नाम का एक लड़का पैदा हुआ। वह जहाँगीर का सवसे वड़ा लड़का था। इसलिये सिंहासन पर वैठने का वही अधिकारी था। आमेर की राजकुमारी से खुर्रम नाम का लड़का पैदा हुआ। वह परवेज से छोटा था। इन दोनों लड़कों में उत्तराधिकारी वनने के लिये झगड़ा पैदा हुआ। खुर्रम छोटा था। परन्तु वह परवेज की अपेक्षा अधिक वुद्धिमान था। वह युद्ध में निपुण और साहसी था। उसमें लोकप्रियता अधिक थी। इसीलिये मुगल दरवार के अधिकांश लोग उससे प्रसन्न रहते थे और खुर्रम का समर्थन करते थे। सीसोदिया वंश के तेजस्वी भीमसिंह और प्रसिद्ध सेनापति महावत खाँ ने प्रसन्न होकर उसके पक्ष का समर्थन किया था। इन दोनों भाइयों के वीच उत्तराधिकार का झगड़ा वहुत वढ़ गया और खुर्रम ने परवेज को मार डालने की चेष्टा की।

मारवाड़ के राजा गजसिंह का सम्मान वादशाह के दरवार में इन दिनों वढ़ा हुआ था। वह दक्षिण में खुर्रम के साथ था। अवसर पाकर सुल्तान खुर्रम ने उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की और उसने उससे अपने उद्देश्य में सहायता माँगी। गजसिंह पहले से ही परवेज का सम्मान करता था। इसलिये उसने खुर्रम की वातों पर ध्यान न दिया। उसकी उदासीनता देखकर खुर्रम को निराशा हुई। वह किसी प्रकार उत्तराधिकारी वनना चाहता था।

गोविन्ददास नामक एक भाटी राजपूत मारवाड़ का विदेशी सामन्त था। वह योग्य और दूरदर्शी था। इसलिये खुर्रम प्रायः उसके साथ परामर्श किया करता था। इन दिनों में उसने उससे सहायता करने के लिये कहा। परन्तु भाटी सरदार के ऊपर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। इसके फलस्वरूप खुर्रम उससे नाराज हो गया और उसको इसका वदला देने के लिये किशनसिंह नाम के एक राजपूत को उसने नियुक्त किया। किशनसिंह ने अवसर पाकर उसको जान से मार डाला। गजसिंह के हृदय को इस दुर्घटना से बहुत आघात पहुँचा। खुर्रम के इस आचरण से उसको घृणा हो गयी और वह दक्षिण को छोड़कर अपने राज्य को चला गया। इसके थोड़े दिनों के वाद वादशाह जहाँगीर के साथ खुर्रम का विद्रोह बढ़ गया। इसीलिये उसने वादशाह को सिंहासन से उतार कर स्वयं वैठने का प्रयास किया।

शहजादा खुर्रम ने जहाँगीर के विरुद्ध सैनिक आक्रमण की तैयारी की। उसकी वह चेष्टा जहाँगीर को मालूम हो गयी। इसलिये उसने राजपूत नरेशों से सहायता लेने का निर्णय लिया। उसका सन्देश पाकर मारवाड़, आमेर, कोटा, वूँदी के राजा अपनी सेनाओं के साथ वादशाह की सहायता के लिये आ गये।

शहजादा खुर्रम भी अपनी सैनिक तैयारी कर चुका था। इन्हीं दिनों में वादशाह को समाचार मिला कि अपनी फौज के साथ खुर्रम आ रहा है। वह भयभीत हो उठा। राठौड़ राजा गजसिंह ने उस समय वादशाह को वहुत धैर्य दिया। गजसिंह के प्रोत्साहन को सुनकर वादशाह जहाँगीर को वहुत शान्ति मिली। प्रसन्न होकर उसने गजसिंह से हाथ मिलाया और उसके हाथ का चुम्बन लिया।

जो राजपूत नरेश वादशाह की सहायता करने के लिये आये थे, वे वादशाह के आदेश से अपनी सेनाओं के साथ खुर्रम के विद्रोह का दमन करने के लिए रवाना हुये। वनारस के पास खुर्रम की फौज मौजूद थी। उसको देखकर हिन्दू राजाओं की सेनायें रुक गयीं और संग्राम करने के लिय श्रेणीवद्ध होकर खड़ी हो गयीं। वादशाह की तरफ से जो सेनायें आयी थीं, उनका नेतृत्व आमेर के राजा को दिया गया।

यह नेतृत्व गजसिंह को मिलना चाहिये था। फिर वादशाह जहाँगीर ने ऐसा क्यों किया। इसका निर्णय करते हुये मारवाड़ के एक भट्ट ग्रन्थ में लिखा है कि उस समय वादशाह की सहायता के लिये जो राजपूत नरेश गये थे, उनमें आमेर के राजा के साथ में वड़ी सेना थी। इसका जो भी कारण रहा हो। परन्तु जहाँगीर के द्वारा नेतृत्व का अधिकार आमेर के राजा को मिलने से राजपूत नरेशों में भयानक ईर्षा पैदा हो गयी। गजसिंह ने इससे अपना अपमान अनुभव किया। उसने वादशाह के शिविर को छोड़कर और कुछ दूर जाकर अपना एक अलग शिविर कायम किया। उसने निर्णय कर लिया कि इस समय जहांगीर और खुर्रम में जो युद्ध होने जा रहा है, उसमें मैं सम्मिलित न होकर दूर से तमाशा देखूंगा। परन्तु वह ऐसा न कर सका। राजा भीमसिंह ने उसकी उदासीनता का विरोध किया और अनेक प्रकार की वातें समझाकर उसने गजसिंह को वादशाह की सहायता करने के लिये विवश किया। सीसोदिया भीमसिंह के परामर्श को सुनकर गजसिंह ने अपना निर्णय वदल दिया और वह वादशाह की सहायता के लिये तैयार हो गया। उसको ऐसा करने के लिये भीमसिंह ने सभी प्रकार विवश किया। उसकी उदासीनता का विरोध करके भीमसिंह ने साफ-साफ शव्दों में उससे कहा था।

"युद्ध-क्षेत्र में आकर आप संग्राम से दूर नहीं रह सकते। यदि किसी भी कारण से आप युद्ध में वादशाह की सहायता नहीं कर सकते तो आपको खुलकर शहजादा खुर्रम के

पक्ष में चले जाना चाहिये। आपको किसी भी अवस्था में खुलकर एक तरफ ही रहना पड़ेगा। जीवन के ऐसे कठोर अवसरों पर जो तटस्थ होकर रहता है, वह कायर होता है।"

भीमसिंह के इन वाक्यों से गजसिंह की उदासीनता दूर हो गयी और वह बादशाह की सहायता करने के लिये फिर से तैयार हो गया। इस समय युद्ध की परिस्थिति बहुत निकट आ गयी थी। विद्रोहियों की फौज के आगे बढ़ते ही गजसिंह ने अपनी शक्तिशाली सेना को आगे बढ़ाया और उस पर भयानक आक्रमण किया। बड़ी तेजी के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। बहुत समय तक युद्ध होने के बाद शहजादा खुर्रम की पराजय हुई। वह अपनी जान बचाकर भाग गया। जिस उत्साही भीमसिंह ने युद्ध आरम्भ होने के पहले गजसिंह की उदासीनता दूर करके उसे युद्ध के लिये उत्तेजित किया था, वह इस युद्ध में मारा गया।

शहजादा खुर्रम की फौज को पराजित करने के लिये आये हुये सभी राजपूत राजाओं को सम्मान मिला। लेकिन उस श्रेय का वास्तव में अधिकारी राजा गजसिंह बना। उसकी सहायता से विद्रोही सेना की पराजय हुई। गजसिंह इस श्रेय का भोग अधिक दिनों तक न कर सका। सम्वत् 1694 सन् 1638 ईसवी में वह गुजरात के एक युद्ध में गया था, जिसमें वह मारा गया।[1]

गजसिंह राठौड़ वंश का एक योग्य राजा था। राजस्थान में उसको बहुत सम्मान मिला। अमर और यशवन्त नाम के उसके दो लड़के थे। उसके अचल नाम का एक तीसरा लड़का भी पैदा हुआ किन्तु वह छोटी अवस्था में मर गया। अमर गजसिंह का बड़ा लड़का था। इसलिये राज्य का वही उत्तराधिकारी था और पिता के सिंहासन पर बैठने का वही अधिकारी था। परन्तु गजसिंह ने स्वयं अमर को इस अधिकार से वंचित कर दिया और इस सम्बन्ध में वह जो निर्णय कर गया था, उसके अनुसार उसका दूसरा पुत्र जसवन्तसिंह सिंहासन पर बिठाया गया।

गजसिंह का पहला पुत्र अमरसिंह था। भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण वही अपने पिता का उत्तराधिकारी था। परन्तु राजा गजसिंह ने उसको इस अधिकार से क्यों वंचित किया था, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। सम्वत् 1690 सन् 1634 ईसवी में गजसिंह ने मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर अपने मन्त्रियों के सामने घोषणा की थी। "अमरसिंह उत्तराधिकार से वंचित किया जाता है। वह कभी मारवाड़ के इस सिंहासन पर बैठ न सकेगा। मेरा उत्तराधिकारी दूसरा बेटा जसवन्तसिंह है। राज्य से निकल जाने का अमर सिंह को आदेश दिया जाता है।"

इस आदेश के साथ-साथ अमरसिंह के राज्य के निकाले जाने की तैयारी होने लगी। उसके वस्त्र और आभूषण उसे दे दिये गये। उसके पहनने के सभी कपड़े काले रंग के थे। काला पजामा, काला अंगरखा, काले रंग की टोपी और काले ही रंग की ढाल व तलवार भी उसको दी गयी। अमर जब इन सब कपड़ों को पहन कर तैयार हुआ तो काले रंग का एक घोड़ा उसको दिया गया। उस पर बैठकर वह राज्य से निकल जाने के लिये रवाना हुआ।

अमरसिंह ने अकेले अपने पिता का राज्य नहीं छोड़ा। उसके वंश के बहुत से लोग और वे लोग, जो राज्य का उत्तराधिकारी समझकर उसका सम्मान करते थे, उन्होंने अपनी इच्छा से अमरसिंह के साथ राज्य छोड़ना स्वीकार किया और वे सबके सब अमरसिंह के साथ रवाना हुए। अमरसिंह सबके साथ मारवाड़ से निकलकर मुगल बादशाह के यहाँ पहुँचा। बादशाह को यह घटना पहले से ही मालूम थी। राज्य से उसका निकाला जाना बादशाह ने भी स्वीकार किया।

1. कुछ लेखकों ने गजसिंह की इस मृत्यु का विरोध किया है। उनका कहना है कि गजसिंह आगरा में जेठ सुदी 13 सम्वत् 1694 में बीमार होकर मरा था।

फिर भी उसने अमरसिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया और मुगल सेना में उसको एक अधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया। अमरसिंह पराक्रमी और युद्ध में कुशल था। इसलिये थोड़े ही दिनों में वादशाह के सामने ऐसे अवसर आये, जिनसे उसको अमर की योग्यता का परिचय मिला। उसने प्रसन्न होकर अमर को राव की उपाधि दी। तीन हजार सेना के ऊपर उसको मनसव वना दिया और नागौर का जिला उस अधिकार में दे दिया।[1]

अमर को राज्याधिकार से वंचित करने के चौथे वर्ष में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, गजसिंह युद्ध में मारा गया और उसके वाद यशवन्तसिंह उसके सिंहासन पर वैठा। आरम्भ में वादशाह उससे प्रसन्न हुआ था। अमरसिंह मुगल वादशाह के यहाँ एक जागीर का अधिकारी हो गया परन्तु उसके स्वभाव और चरित्र में ऐसी निर्वलता थी, जिसके कारण अधिक समय तक वह वादशाह को प्रसन्न न रख सका। कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व का उसके जीवन में भयानक अभाव था।

अमरसिंह शिकार खेलने का वहुत शौकीन था। अपनी इसी आदत के कारण एक वार वह मुगल दरवार में पन्द्रह दिनों तक वरावर अनुपस्थित रहा। उसका यह अपराध था। जिसका जिक्र करते हुए वादशाह शाहजहाँ ने उसको जुर्माने की धमकी दी। परन्तु अमर पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। उसने स्वाभिमान के साथ उत्तर देते हुए कहा: "मैं केवल शिकार के लिये गया था और इसीलिये दरवार में मैं नहीं आ सका।" इसके वाद उसने अपनी तलवार को स्पर्श करते हुए कहा:– "जुर्माना अदा करने के लिये मेरी यह तलवार ही सम्पत्ति है।"

अमर का यह उत्तर शिष्टाचार के विरुद्ध था। वादशाह ने उसकी अशिष्टता का अनुभव किया और उस पर जुर्माना कर दिया, जिसको वसूल करने के लिये वख्शी सलावत खाँ को आदेश दिया गया।[2] उस जुर्माने को वसूल करने के लिये सलावत खाँ अमर के पास गया। अमर ने जुर्माना देने से इनकार कर दिया। सलावत खाँ ने वादशाह के पास पहुँच कर वताया कि अमर जुर्माना देने से इनकार कर रहा है। यह सुनकर वादशाह ने अमर को वुलाया। अमर ने आम खास में पहुँचकर वादशाह से भेंट की। सलावत खाँ भी वहाँ पर मौजूद था। उस समय वादशाह ने जो कुछ कहा, उससे अमर ने अपना तिरस्कार अनुभव किया। उसकी समझ में यह भी आया कि मेरे इस अपमान का कारण सलावत खाँ वख्शी है।

अमर अपने क्रोध को रोक न सका। उसने तेजी के साथ सलावत खाँ पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से उसने उसको घायल कर दिया। इसके वाद वह वादशाह की तरफ झपटा। वादशाह भयभीत होकर सिंहासन छोड़कर भागा और महल के भीतर चला गया। अमर के इस आक्रमण से वादशाह का दरवार आतंकित हो उठा। अमर उस समय एक उन्मादी की तरह सवके सामने मौजूद था और वह अपने कर्त्तव्य का ज्ञान भूल गया

1. कुछ लेखकों ने अमरसिंह के उस प्रकार राज्य से निकाले जाने की घटना का उल्लेख दूसरे ढंग से किया है। उनका कहना है कि गजसिंह की अनेक रानियाँ थीं। जसवन्तसिंह की माँ दूसरी थी और अमरसिंह की दूसरी। जसवन्तसिंह की माँ के कहने पर अमरसिंह को मुगल वादशाह के यहाँ फौज में एक अधिकारी वनवा दिया था और ऐसी व्यवस्था कर दी थी जिससे वह राज्य से अलग रहे। वादशाह की तरफ से अमर को एक जागीर मिली थी। वहीं पर उसकी माता और स्त्रियों को भी भेज दिया गया था।
2. यह सलावत खाँ वख्शी कहलाता था। उसका कार्य केवल वेतन वाँटना ही नहीं था। जैसा कि उसके पद से जाहिर होता है। वल्कि मुआयना करना और हिसाव की जाँच करना भी उसके अधिकार का काम था। वह वादशाह की तरफ से वसूलयावी का काम भी करता था। उसका स्थान मुगल कर्मचारियों में सम्मानपूर्ण था। उसके अधिकार में वहुत से कर्मचारी थे और उन सवके ऊपर अमरसिंह था। अमर और सलावत खाँ में पहले से ही द्वेष चला आ रहा था। इसका कारण कदाचित यह था कि अमरसिंह अपने व्यवहार में वहुत कठोर और उग्र था।

था। उस समय जो उसके सामने पहुँचा, उसी का उसने संहार किया। थोड़े से समय के भीतर उसके हाथ से पाँच मुगल सेनापति मारे गये। बादशाह का दरबार रक्तमय हो उठा। इस भयानक दृश्य को देखकर उसके साले अर्जुन गौड़ ने उसको रोकने की चेष्टा की। लेकिन कोई परिणाम न निकलने पर उसने सम्हल कर अमर पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से उसको घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

अमर की मृत्यु हो गयी। यह देखकर अमर के सरदार उत्तेजित हो उठे और अर्जुन गौड़ से अमर का बदला लेने के लिये वे तैयार हो गये। उसके बाद उन लोगों ने लड़ने की तैयारी की। चम्पावत बल्लू और कुम्पावत भाऊ नाम के दो शूरवीर राजपूत उस सेना के सेनापति हुये, जो मुगलों से युद्ध करने के लिये अमर के सरदारों के द्वारा तैयार की गयी थी। वे राजपूत बड़ी तेजी के साथ लाल किले में पहुँच गये।

इन राजपूतों की संख्या बहुत थोड़ी थी। परन्तु दरबार में अमर का मारा जाना वे सहन न कर सके और उसका बदला लेने के लिये वे तैयार हो गये। राजपूतों के इस आक्रमण को रोकने के लिये मुगलों की सेना आ गयी और उसने इन राजपूतों पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हुआ। राजपूतों ने कुछ समय तक भयानक मारकाट की। मुगल सेना बहुत बड़ी थी। इसलिये राजपूत सरदार और उनके सैनिक मारे गये। अमर का विवाह बूँदी की राजकुमारी के साथ हुआ था। अमर के मारे जाने पर उसकी रानी चिता बनाकर उस पर बैठी और अपने पति के शव को लेकर प्रज्वलित चिता की आग में भस्मीभूत हो गयी।

अमरसिंह के मारे जाने पर उसके सैनिकों और सरदारों ने मुगलों के साथ युद्ध किया और अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। अपने सम्मान और स्वाभिमान के लिये जो राजपूत बलिदान हुये, वे आज संसार में नहीं हैं। परन्तु उनके बलिदानों की कथाएँ आज भी जीवित हैं और उनको कभी मिटाया नहीं जा सकता। अमरसिंह के सरदारों और सैनिकों ने जिस बुखारा नामक सिंहद्वार से लाल किले के भीतर प्रवेश किया था, वह ईटों से बन्द करा दिया गया और उसी दिन से वह सिंहद्वार 'अमरसिंह का फाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह फाटक बहुत समय तक बन्द रहा। सन् 1809 में जब जार्ज स्टील नामक अंग्रेज यहाँ पर आया तो उसके आदेश से वह फाटक खोला गया।

अमरसिंह के उत्तराधिकारी होने पर भी उसके पिता गजसिंह ने उसको राज्याधिकार से वंचित कर दिया था। इसके कारणों का कोई उल्लेख न मिलने पर भी जो घटनायें बाद में उपस्थित होती हैं, उनसे साफ जाहिर हो जाता है कि अमर अनुत्तरदायी, अव्यावहारिक और उद्दण्ड था। उसके इन्हीं अपराधों के कारण उसके पिता राजा गजसिंह ने उसको राज्य में रहने नहीं दिया। उस समय उसे बादशाह ने अपने यहाँ शरण दी थी। परन्तु उसके उद्दण्ड स्वभाव के कारण वहाँ पर भी वह सकुशल न रह सका। उसने स्वयं अपना नाश किया और उसके साथ जिनका सम्बन्ध था, उन सबके संहार का वह कारण बना।[1]

□

---

1. इन घटनाओं से उस समय की बहुत-सी बातों का मनुष्य को ज्ञान होता है। जिस समय का यह इतिहास लिखा जा रहा है। अमरसिंह को अपराधी जानते हुये भी शाहजहाँ ने उसको अपने यहाँ सम्मानपूर्ण स्थान दिया था। एक अयोग्य मनुष्य को आश्रय देने का जो फल मिलता है, शाहजहाँ को भी वही मिला। बादशाह शाहजहाँ ने अमर के अपराधों का दण्ड उसके पुत्र को नहीं दिया। बल्कि उसके लड़के को बादशाह ने नागौर के सिंहासन पर बिठाया। उसका नाम रायसिंह था। नागौर की यह जागीर अमर के वंशजों में बहुत दिनों तक चलती रही। रायसिंह के बाद हठीसिंह, उसका बेटा अनूपसिंह, उसका बेटा इन्द्रसिंह और उसका बेटा मोहकम सिंह उसका मालिक रहा।

अध्याय–36
राजा जसवंत सिंह व औरंगजेब

राजा गजसिंह की मृत्यु के वाद जसवन्तसिंह (यशवन्तसिंह) उसके सिंहासन पर वैठा। वह मेवाड़ की राजकुमारी से पैदा हुआ था। मेवाड़ का सीसोदिया वंश सम्पूर्ण राजस्थान में अत्यन्त गौरव के साथ देखा जाता था।

राजस्थान के उस समय के राजाओं में जसवन्त सिंह को वहुत ख्याति मिली। वह एक सफल शासक था और उसके शासन में सभी प्रकार राज्य ने उन्नति की थी। उसके प्रोत्साहन से कई अच्छे ग्रन्थ लिखे गये थे। वह विचारशील, गम्भीर और रणकुशल राजपूत था।

शूरसिंह और गजसिंह ने दक्षिणी भारत को प्रधानता दी थी। जसवंतसिंह ने भी उसी को महत्व दिया। वह दक्षिणी भारत को अपने अधिकार में लाना चाहता था। परन्तु उसका कोई भी कार्यक्रम मुगल वादशाह की स्वीकृति पर निर्भर था। वादशाह ने अपने अनुमान और अन्दाज से काम लिया। उसने जसवन्तसिंह को आरम्भ में गोड़वाना भेजा। वहाँ पर मुगलों की एक विशाल सेना औरंगजेव के नेतृत्व में पहले से मौजूद थी और उसकी सहायता वाईस सामन्त राजा अपनी-अपनी सेनाओं के साथ कर रहे थे। उन सव के साथ रह कर जसवन्तसिंह को स्वतन्त्र रूप से अपने रण कौशल का परिचय देने के लिए कोई अवसर न था, फिर भी उसने वहाँ पर वड़ी योग्यता और वीरता से काम लिया।

जीवन की इस परिस्थिति में जसवन्तसिंह ने वहुत दिन व्यतीत किये। सन् 1658 ईसवी में वादशाह शाहजहाँ भयानक रूप से बीमार पड़ा। उस समय उसकी तरफ से शासन का प्रवन्ध दारा करता रहा। वह जसवन्तसिंह की योग्यता और युद्ध की कुशलता से वहुत प्रसन्न हुआ। इसलिए उसने जसवन्तसिंह को पंजहजारी की उपाधि दी और उसको मालवा का अधिकारी वना कर उसने भेज दिया।

वादशाह शाहजहाँ के वीमार पड़ते ही उसके लड़कों में राज्य का अधिकार प्राप्त करने के लिए विद्रोह पैदा हुआ। वादशाह की वीमारी जितनी ही भीषण होती जाती थी, उसके लड़कों के विद्रोह उतने ही भयानक होते जाते थे। लड़कों के इन झगड़ों को सुनकर वादशाह को असह्य कष्ट हुआ। वह रोग की जिस दशा में पड़ा हुआ था, उसमें वह कुछ कर सकने के योग्य न था।

बुढ़ापे की असमर्थता के पहले वादशाह शाहजहाँ अपने लड़कों पर वड़ा गर्व करता था। परन्तु बुढ़ापे का आक्रमण होते ही उसका वह गर्व एक साथ अदृश्य हो गया और इस सांघातिक रोग में वीमार पड़ते ही उसके लड़कों ने विद्रोह का जो दृश्य उपस्थित किया,

उसमें बादशाह की निराशा सीमा पार कर गयी। इस असमर्थता के समय सहायता प्राप्त करने के लिये बादशाह ने राजपूतों की तरफ देखा। उसने राजपूत राजाओं को बुलाया और उनके सामने उसने अपनी वर्तमान परिस्थितियाँ रखीं। राजपूत राजाओं ने सभी प्रकार उसको आश्वासन दिया और किसी भी समय उसकी सहायता करने के लिये राजाओं ने बादशाह को वचन दिया, जिनको सुनकर बादशाह को बड़ी शांति मिली।

बादशाह के लड़कों में औरंगजेब ने खुल कर विद्रोह किया और उसने वृद्ध शाहजहाँ को सिंहासन से उतार कर उस पर बैठने का निश्चय कर लिया। इस समाचार को जानकर बादशाह ने राजपूत राजाओं के पास सन्देश भेजा। उस सन्देश को पाते ही आमेर का राजा जयसिंह और मारवाड़ का राजा जसवन्तसिंह - दोनों ही बादशाह की सहायता के लिये रवाना हुये। औरंगजेब के साथ-साथ उसका भाई शुजा भी विद्रोही हो चुका था और वह औरंगजेब का साथी बनकर अपनी विद्रोही सेना की तैयारी कर चुका था। इस प्रकार की खबरें बादशाह को मालूम हो चुकी थीं। इसलिये बादशाह ने दोनों विद्रोहियों के दमन का प्रयत्न किया और उसकी इच्छा के अनुसार राजा जयसिंह शुजा के विरुद्ध और जसवन्तसिंह औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिये रवाना हुआ।[1] जसवन्तसिंह के साथ तीस हजार राजपूतों की एक सेना थी। उसके सिवा उसने अपने अधिकार में मुगलों की एक सेना ली और वह आगरा के लिए रवाना हुआ। जसवन्तसिंह के साथ इस समय एक विशाल सेना हो गयी थी। वह तेजी के साथ नर्मदा की तरफ चला। जिस समय वह उज्जैन के करीब पहुँच गया उसे समाचार मिला कि औरंगजेब अपनी फौज के साथ युद्ध करने के लिये आ रहा है और वह अब अधिक दूर नहीं है। यह सुनकर जसवन्तसिंह की सेना ने वहीं रुककर मुकाम किया। औरंगजेब की फौज ने नर्मदा के किनारे पहुँच कर नदी को पार किया और जहाँ पर वह फौज पहुँच गयी थी, जसवन्तसिंह का शिविर उस स्थान से बहुत दूर न था।

औरंगजेब की फौज के आ जाने का समाचार जसवन्तसिंह को मिला। वह औरंगजेब की तरफ से युद्ध के आरम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगा। औरंगजेब युद्ध करने में जितना बहादुर था उससे बहुत अधिक वह राजनीतिज्ञ और षड़यन्त्रकारी था। उसने युद्ध आरम्भ नहीं किया और जहाँ पर उसकी फौज ने मुकाम किया था, वहीं पर तरह-तरह के षड़यन्त्रों की रचना करने लगा।

औरंगजेब और शुजा के सिवा बादशाह का लड़का मुराद भी विद्रोही हो चुका था। इसलिये जसवन्तसिंह से युद्ध करने के लिये वह भी अपनी एक फौज लेकर नर्मदा के किनारे पहुँच गया था। औरंगजेब और मुराद की फौजों ने मिलकर जसवन्तसिंह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। जसवन्तसिंह अब भी अपने शिविर में चुपचाप बैठा था। अपनी तरफ से युद्ध आरम्भ करने के पक्ष में वह न था। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि उसको अपनी शक्तियों पर विश्वास था और दूसरा यह कि वह बादशाह के पक्ष में उसके लड़कों के साथ युद्ध करने के लिये आया था। इसलिये वह चाहता था कि युद्ध का आरम्भ मेरी तरफ से न होकर औरंगजेब की तरफ से ही होना चाहिये।

इस अवस्था में युद्ध रुका और बहुत समय तक किसी ने किसी पर आक्रमण नहीं किया। इसका लाभ औरंगजेब ने उठाया। उसके आते ही यदि जसवन्तसिंह ने एक साथ

---

1. शाहजहाँ की बीमारी के दिनों में शुजा बंगाल का सूबेदार था। वहीं पर उसने पिता की बीमारी का समाचार सुना और यह भी सुना कि अब उसके बचने की आशा नहीं है। इसलिये सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिये जब वह बंगाल से आ रहा था, बनारस के पास दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह ने उसके साथ युद्ध किया और उसको परास्त किया। उस लड़ाई में राजा जयसिंह ने सुलेमान शिकोह की सहायता की थी। औरंगजेब उन दिनों में दक्षिण का सूबेदार था। वह आरम्भ से ही भयानक कपटी था।

उस पर आक्रमण कर दिया होता तो निश्चित रूप से औरंगजेब की पराजय होती। वह जसवन्तसिंह के साथ युद्ध कर के सफलता प्राप्त करने की शक्ति न रखता था। लेकिन जसवन्तसिंह ने उसका लाभ न उठाया और वह अपने शिविर में चुपचाप बैठा रहा।

इस अवसर को पाकर औरंगजेब मुराद से मिला और उसने अपनी शक्तियों को युद्ध के लिये मजबूत बना लिया। उसने इतना ही नहीं किया, बल्कि उसने जसवन्तसिंह के साथ जो मुगल सेना आगरा से आयी थी, उसके साथ उसने साजिश शुरू कर दी। जसवन्तसिंह के साथ जो मुगल सेना थी, कासिम खाँ उसका सेनापति था। औरंगजेब ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसको मिला लेने की चेष्टा की और उसकी फौज के सिपाहियों में राजपूतों के विरुद्ध ऐसी अफवाहें पैदा कर दी, जिनके कारण जसवन्तसिंह के साथ की मुगल सेना औरंगजेब के षड़यन्त्र में फंस गयीं।

इस अवसर पर औरंजगजेव ने जसवन्तसिंह पर आक्रमण किया। यह युद्ध सन् 1658 ईसवी के मार्च महीने में हुआ। राजा जसवन्तसिंह ने अपनी सेना के साथ औरंगजेब का सामना किया और दोनों ओर से घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। मारकाट के थोड़े ही समय के बाद, जसवन्तसिंह के साथ आगरा से जो मुगल सेना आयी थी और कासिम खाँ जिसका सेनापति था, वह जसवन्तसिंह की सेना से निकलकर औरंगजेब की फौज के साथ मिल गयी। उस मुगल सेना के निकल जाने से जसवन्तसिंह की सेना बहुत थोड़ी रह गयी। अब उसके साथ केवल तीस हजार राजपूत थे। औरंगजेब और मुराद की फौजें एक साथ होकर जसवन्तसिंह से युद्ध कर रही थीं। आगरा की मुगल सेना के मिल जाने से औरंगजेब की शक्तियां महान् हो गयीं और इस विशाल सेना के द्वारा जसवन्तसिंह को पराजित करना औरंगजेब के लिये कठिन नहीं रहा।

युद्ध की यह परिस्थिति जसवन्तसिंह के लिये भयानक हो उठी। उसको इस परिस्थिति का पहले कोई भी अनुमान न था। जसवन्तसिंह ने यह सब दृश्य अपनी आँखों से देखा, परन्तु उसने साहस से काम लिया और अपने तीस हजार राजपूतों पर विश्वास करके वह बराबर युद्ध करता रहा। उसने युद्ध में भयानक मारकाट की और अपने घोड़े को आगे बढ़ा कर एक साथ वह औरंगजेब के सामने पहुँच गया। उस समय मुगलों और राजपूतों में भीषण मारकाट हुई। इतनी देर के युद्ध क्षेत्र में दस हजार मुस्लिम सैनिक मारे गये और उनका संहार करने में सत्रह सौ राठौर राजपूतों ने युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण दे दिये। इनके साथ-साथ गुहिलोत, हाडा, गौड़ और अन्य सामन्तों के बहुत-से शूरवीर सैनिक मारे गये।[1]

युद्ध की परिस्थिति बड़ी भयानक थी। जसवंत सिह और उसका महबूब नामक घोड़ा रक्त से नहाया हुआ था। अंत में दोनों ओर की सेनायें हट गयीं और युद्ध रुक गया। उस समय रक्त से नहाया हुआ जसवंत सिंह भूखे शेर की तरह दिखायी पड़ रहा था। इस युद्ध के सम्बन्ध में भट्ट ग्रंथों में जो पढ़ने को मिलता है, भारत की यात्रा करने वाले बर्नियर और मुस्लिम इतिहासकारों ने उसी प्रकार का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है – "यद्यपि औरंगजेब ने फ्रांसीसी गोलन्दाजों, तोपों और बहुत से हाथियों के साथ एक विशाल सेना लेकर राजपूतों से युद्ध किया था, फिर भी जसवंत सिंह ने उसको पराजित किया होता, यदि

1. कोटा के इतिहास से प्रकट होता है कि कोटा का राजा और उसके पाँचों भाई युद्ध में मारे गये।

जसवंत सिंह ने औरंगजेब की सेना के आने पर असावधानी से काम न लिया होता। जसवंत सिंह अपनी अदूरदर्शिता के कारण विजय से वंचित हुआ।"[1]

फतेहाबाद के इस युद्ध में राजपूतों ने बादशाह शाहजहाँ के प्रति अपनी राजभक्ति का पूरा परिचय दिया। इसमें राजस्थान के अनेक राजवंश बिलकुल नष्ट हो गये। उनमें छः बूँदी के राजकुमार थे। इन राजकुमारों में छत्रसाल ने बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध किया था। उसके अद्भुत शौर्य का वर्णन बूंदी के इतिहास में भली प्रकार किया गया है। खाफी खाँ और बर्नियर - दोनों इतिहासकार इन बातों को स्वीकार करते हैं। भट्ट कवियों ने मेवाड़ और शिवपुर के गुहिलोत और गौड़ राजपूतों का ही उल्लेख किया है। ये लोग उस युद्ध में प्रमुख थे। लेकिन वृद्ध शाहजहाँ बादशाह के सम्मान की रक्षा के लिए राजस्थानी अनेक वंशों के शूरवीर योद्धा जो इस युद्ध में आये थे, उनमें से अधिकांश मारे गये।

फतेहाबाद के इस युद्ध में जिन राजपूतों ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया, उनमें रतलाम का रतनसिंह विशेष स्थान रखता हैं। सभी इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है। 'रासो राव रतन' रतन नामक ग्रंथ में उसकी वीरता का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। रतनसिंह ने राठौड़ वंश में जन्म लिया था और वह राठौड़ उदयसिंह का प्रपौत्र था। उसने इस युद्ध में भयानक रूप से शत्रुओं का संहार किया।

इस युद्ध से लौटकर अपनी बची हुई सेना के साथ जसवंतसिंह अपनी राजधानी पहुँचा। उसकी रानी को जब मालूम हुआ कि वह पराजित होकर और युद्ध से भागकर आया है तो उसने अपना फाटक बन्द करवा लिया और जसवंतसिंह को भीतर आने नहीं दिया। वह युद्ध में पराजित होकर भागने की अपेक्षा वहाँ पर युद्ध करते हुए मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। इसका विस्तार से वर्णन दूसरे स्थान पर किया गया है।

शाहजहाँ बादशाह ने जिस उद्देश्य से राजपूत राजाओं की सहायता ली थी, उसमें उसे कोई सफलता न मिली। उसके विरुद्ध उसके लड़कों के विद्रोह अब और भी भयानक हो उठे। उसकी इस विपद में राजपूतों के सिवा और कोई साथी न था। जिन राजपूतों ने बादशाह की सहायता करने का वचन दिया था और जिन्होंने फतेहाबाद के युद्ध में औरंगजेब की विशाल सेना के साथ युद्ध किया था, उनमें से बचे हुए राजपूतों ने एक बार फिर से बादशाह की सहायता करने का संकल्प किया और जाजाऊ नामक एक ग्राम के निकट औरंगजेब की फौज का सामना किया। परन्तु इस युद्ध से भी कोई अनुकूल परिणाम न निकला। राजपूतों की पराजय हुई। शाहजहाँ सिंहासन से उतार कर वन्दी बना लिया गया और उसका बेटा दारा वहाँ से भाग गया।

औरंगजेब ने पिता के विरुद्ध जो विद्रोह किया था, उसमें उसको पूर्ण रूप से सफलता मिली। बादशाह को बन्दी बनाकर वह सिंहासन पर बैठा। अब उसके सामने उसके भाई शुजा का प्रश्न था। इसलिये उसको दमन करने के लिये औरंगजेब ने तैयारी की। इन्हीं दिनों में उसने जसवंतसिंह को सन्देश भेजकर बुलवाया और आमेर के राजकुमार के द्वारा कहला भेजा कि हमारे विरुद्ध युद्ध अब तक जो कुछ आपने किया है, उसे क्षमा कर दिया जायेगा। परन्तु आपको शुजा के विरुद्ध युद्ध करना होगा।

औरंगजेब के साथ-साथ मुगल सिंहासन का अधिकार प्राप्त करने के लिये शाहजहाँ के विरुद्ध शुजा ने भी विद्रोह किया था। बादशाह के बन्दी हो जाने पर और सिंहासन पर

1. हार्नियर और खाफी खाँ-दोनों ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि जसवंतसिंह के साथ जो मुगल सेना आयी थी, उसके सेनापति कासिमखाँ के औरंगजेब से मिल जाने के कारण जसवन्त सिंह की पराजय हुई।

औरंगजेब के बैठने पर शुजा का विद्रोह औरंगजेब के साथ हो गया। वह स्वयं मुगल सिंहासन का अधिकारी बनना चाहता था। इस दशा में औरंगजेब के साथ युद्ध करने के लिये वह अपनी फौज लेकर रवाना हुआ और आगरा की तरफ बढ़ रहा था।

जसवन्त सिंह को औरंगजेब का सन्देश मिला। उसने सोच-समझकर औरंगजेब का संदेश मन्जूर किया। उसने शुजा के साथ युद्ध करने की तैयारी की। इसके पहले ही औरंगजेब अपनी फौज लेकर शुजा का सामना करने के लिए रवाना हुआ। इलाहाबाद के तीस मील उत्तर की तरफ खजुआ नामक स्थान पर दोनों शहजादों की फौजों का सामना हुआ। उनमें युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध के इसी अवसर पर अपनी राठौड़ सेना लिए हुए जसवन्त सिंह वहाँ पहुँच गया। उस युद्ध को देखकर उसने समझा कि इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। औरंगजेब और शुजा दोनों एक दूसरे के प्राणों के घातक हो रहे हैं उसने मोहम्मद की फौज पर आक्रमण किया और उसके सिपाहियों को काट-काटकर फेंक दिया। उसके बाद वह बादशाही डेरे की तरफ बढ़ा, वहाँ पर जो सामग्री मिली, उसको ऊंटों पर लदवाकर वह आगरा की तरफ रवाना हुआ। औरंगजेब और शुजा में उस समय भयानक युद्ध हो रहा था।

जिस समय जसवन्त सिंह अपनी सेना के साथ आगरा पहुँचा, उसके पहले ही वहाँ पर औरंगजेब के हारने की अफवाह उड़ रही थी। ऐसे असवर पर जसवन्त सिंह का अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच जाना वहाँ के लोगों के लिए घबराहट का कारण हो गया। आगरा में रक्षा करने के लिए औरंगजेब की जो फौज मौजूद थी, उस अफवाह को सुन कर वह बहुत भयभीत हो चुकी थी। उस समय जसवन्त सिंह यदि चाहता तो वहाँ की बादशाही फौज उसके सामने आत्म-समर्पण कर देती और उस समय जसवन्त सिंह शाहजहाँ को कारागार से निकाल सकता था। परन्तु इस तरफ उसका ध्यान न था।

शुजा के साथ औरंगजेब का सन्देश जसवन्त सिंह को मिला। उस अवसर पर औरंगजेब ने बड़ी राजनीति से काम लिया। जसवन्त सिंह ने उस समय समझा कि औरंगजेब शुजा के साथ युद्ध करने जा रहा है। इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। वह समझता था कि शाहजहाँ की वृद्धावस्था है और दारा उसका उत्तराधिकारी है, वह इस अवसर का लाभ उठा सकता है। इसलिए उसने छिपे तौर पर दारा के साथ परामर्श किया और इस अवसर पर उसने अपने सुझाव दिये। इसके लिए दारा ने जहाँ पर जसवन्त सिंह से मिलने का वादा किया था, वहाँ न पहुँचा। इसलिए जसवन्त सिंह ने उसकी सहायता के लिए जो योजना बनायी थी, वह निष्फल हो गयी।

दारा उन दिनों में मारवाड़ के दक्षिण में घूम रहा था। उसको इस समय अपने कर्त्तव्य का ज्ञान न था। वह औरंगजेब से बहुत भयभीत हो चुका था। उसकी अपनी शक्ति कोई काम न कर रही थी। इन्हीं दिनों में उसने सुना कि औरंगजेब से लड़ते हुये शुजा की पराजय हो गयी है। इस अवस्था में औरंगजेब से मेल कर लेने के अलावा कोई रास्ता उसके सामने न था। इसलिए विवश होकर दारा ने मेड़ता पहुँचकर औरंगजेब के साथ मेल कर लिया।

आगरा पहुँचकर जसवंत सिंह वहाँ रुका नहीं। लूट का माल जितना उसके साथ था, सब का सब उसने जोधा के दुर्ग में बन्द करवा दिया। शुजा पर विजय प्राप्त करने के बाद कितने ही राजपूत राजा औरंगजेब के साथ हो गये। औरंगजेब आज का नहीं बहुत पहले का अत्यन्त चतुर राजनीतिज्ञ और षड़यंत्रकारी था। वह तलवार की शक्ति की अपेक्षा षड़यंत्रों की शक्ति पर अधिक विश्वास करता था। शुजा पर विजयी होने के बाद उसने

एक पत्र जसवंतसिंह के पास भेजा, जिसमें उसने जसवंतसिंह को न केवल पूर्ण रूप से क्षमा कर देने का जिक्र किया, बल्कि उसको उसने गुजरात का अधिकारी बना दिया। लेकिन इस शर्त पर कि वह किसी प्रकार दारा की सहायता न करे और हम लोगों के आपसी झगड़े में तटस्थ ही रहे।

औरंगजेब ने अपने पत्र में जो शर्तें लिखी थीं, जसवंतसिंह ने वे स्वीकार कर लीं। उन दिनों में शिवाजी के साथ दक्षिण में मुगलों का युद्ध चल रहा था। औरंगजेब ने जसवंत सिंह को वहाँ भेज दिया। दक्षिण में पहुँकर जसवंत सिंह ने वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन किया। अन्तरात्मा से वह औरंगजेब का पक्षपाती न था। शाहजहाँ की सहायता करने के लिये उसने औरंगजेब के साथ युद्ध किया था परन्तु मुगल सेना के विश्वासघात करने से उसकी पराजय हुई थी और उसके बाद जो विरोधी परिस्थितियाँ सामने आयीं, उनसे विवश होकर उसे औरंगजेब की सभी बातें स्वीकार करनी पड़ीं।

जसवंतसिंह शाहजहाँ के साथ-साथ दारा का पक्षपाती था। परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण दारा स्वयं अपनी रक्षा न कर सकता था। उसकी यह अवस्था जसवंत सिंह के लिये बड़ी भयानक थी। परन्तु इस समय उसके सामने कोई प्रतिकार न था। वह दक्षिण में पहुँच गया था और बड़ी सावधानी के साथ वहाँ पर वह अपनी योजनाओं पर विचार कर रहा था। उसने शिवाजी के साथ पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया और उन पत्रों के द्वारा उसने अपना एक नया कार्यक्रम आरम्भ किया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद औरंगजेब का प्रसिद्ध सेनापति शाइस्ताखाँ शिवाजी के साथ युद्ध करते हुआ मारा गया। उसके मरते ही जसवंत सिंह ने उसके स्थान की पूर्ति की और मुगल सेना का सेनापति होकर शिवाजी के साथ युद्ध आरम्भ किया। सेनापति शाइस्ताखाँ के मारे जाने का समाचार औरंगजेब के पास पहुँचा। इस समाचार के साथ-साथ अपने दूत के द्वारा औरंगजेब ने यह भी सुना कि सेनापति के मारे जाने में जसवंतसिंह का षड़यंत्र है। इसको सुनते ही औरंगजेब के हृदय में आग लग गयी। परन्तु उसने उस समय शान्ति से काम लिया और उसने जसवंत सिंह के पास अपनी इस प्रसन्नता का समाचार भेजा कि उसने सेनापति शाइस्ताखाँ के मारे जाने पर उसके स्थान की पूर्ति की है और मुगलों की फौज में किसी प्रकार की कोई निर्बलता नहीं आने दी।

जसवंत सिंह के विरुद्ध औरंगजेब के हृदय में जो आग पैदा हुई, उसको वह अधिक समय तक छिपा न सका। चुपके-चुपके प्रबन्ध करता रहा और जब वह अपनी व्यवस्था कर चुका तो उसने आमेर के राजा जयसिंह को अधिकारी बनाकर जसवंतसिंह के स्थान पर दक्षिण भेज दिया।

वहाँ पहुँचकर जयसिंह ने शिवाजी के साथ युद्ध किया और उसको गिरफ्तार करके औरंगजेब के पास भेजा। शिवाजी के जाने पर औरंगजेब ने उसके सर्वनाश की योजना बना डाली।

जयसिंह को स्वयं इस बात का विश्वास न था कि औरंगजेब इस प्रकार का विश्वासघात करेगा। उसने शिवाजी को इस उद्देश्य से औरंगजेब के पास नहीं भेजा था। इसीलिए शिवाजी के बन्दी हो जाने पर जयसिंह को मानसिक वेदना हुई। वह किसी प्रकार शिवाजी के छुटकारे की बात सोचने लगा। शिवाजी स्वयं बहुत दूरदर्शी था। बन्दी जीवन से छुटकारा पाने के लिए उसने अनेक उपाय सोच डाले और किसी प्रकार अवसर पाकर वह औरंगजेब के हाथ से निकल गया।

शिवाजी के निकल जाने पर औरंगजेव को जयसिंह पर सन्देह हुआ। उसने जयसिंह को हटाकर उसके स्थान पर फिर से जसवन्त सिंह को नियुक्त किया। जसवन्त सिंह ने इस वार मुअज्जम के साथ साजिश आरम्भ की। इस अवसर पर उसके कई कार्य देखकर औरंगजेव के मन में फिर से सन्देह उत्पन्न होने लगे और अन्त में उसने जसवन्तसिंह को उसके पद से हटा दिया। इसके साथ ही दिलेरखाँ को प्रधान सेनापति वनाकर वहाँ भेज दिया। वह औरंगावाद पहुँच गया। उसकी वह रात उसके जीवन में आखिरी होती परन्तु एकाएक उसे सूचना मिली और वह तुरन्त वहाँ से चला गया। औरंगावाद से उसके चलते ही जसवन्तसिंह और मुअज्जम ने उसका पीछा किया।

दिलेरखाँ - जसवन्तसिंह और मुअज्म से भयभीत हो उठा। अपने प्राण वचाने के लिए वह नर्मदा नदी की तरफ भागा। जसवन्तसिंह और मुअज्जम वरावर उसका पीछा कर रहे थे। यह समाचार औरंगजेव को मिला। उसने तुरन्त जसवन्तसिंह को वुलाया और उसे गुजरात का अधिकारी वनाकर वहाँ भेज दिया। अहमदावाद पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि औरंगजेव ने उसे भयानक रूप से धोखा दिया है। सम्वत् 1726 सन् 1670 ईसवी में वह अपने राज्य में चला गया।

औरंगजेव भयानक रूप से षड़यन्त्रकारी था। अव तक उसकी सम्पूर्ण सफलता का कारण उसके षड़यन्त्रों को छोड़कर और कुछ न था। उसने जसवन्त सिंह के साथ भी वही, किया। जसवन्त सिंह उसकी चालों से वहुत परिचित था और हृदय से उसके साथ ईर्षा रखता था। उसका यह भाव औरंगजेव से छिपा न था। वह जसवन्त सिंह से काम लेता था परन्तु उस पर विश्वास न करता था। इस प्रकार दोनों के वीच एक गम्भीर अविश्वास चल रहा था। जसवन्त सिंह से वदला लेने के लिये औरंगजेव ने अनेक प्रकार के प्रयत्न अव तक किये थे। परन्तु उसे सफलता न मिली थी। फिर भी वह अपनी कोशिश में लगा रहा।

इन्हीं दिनों में अफगानों ने कावुल में विद्रोह कर दिया। इसका समाचार पाते ही औरंगजेव ने जसवन्त सिंह को वुलाया और वड़ी प्रशंसा के साथ कावुल का विद्रोह दमन करने के लिये उसे जाने का आदेश दिया। जसवन्त सिंह कावुल जाने की तैयारी करने लगा। उसने अपने वड़े लड़के पृथ्वीसिंह को राज्य का अधिकार सौंप दिया और मारवाड़ के शूरवीर राठौड़ों को लेकर वह कावुल की तरफ रवाना हुआ, जहाँ से लौटकर फिर वह न आया।

जसवन्त सिंह के कावुल चले जाने पर औरंगजेव ने उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीसिंह को राज दरवार में आने के लिए सन्देश भेजा। उस सन्देश को पाकर पृथ्वीसिंह औरंगजेव के पास आया। वादशाह औरंगजेव ने उसका सम्मान किया और अपने समीप उसे विठाया। एक दिन वह औरंगजेव के दरवार में पहुँचा और उसने वादशाह को सलाम किया। औरंगजेव ने हाथ जोड़े हुए पृथ्वीराज को खड़े देख कर अपने समीप वुलाया और सावधानी के साथ उसके दोनों हाथों को पकड़कर गम्भीरता के साथ कहा– "राठौड़, मैंने सुना है तुम्हारे हाथों में वही वल है, जो कि तुम्हारे पिता जसवन्त सिंह के हाथों में है। अच्छा यह वताओ कि तुम क्या कर सकते हो।"

औरंगजेव की इस वात को सुनकर पृथ्वीसिंह ने राजपूतों के स्वाभाविक गौरव को स्मरण करते हुए उत्तर दिया– "ईश्वर आपके गौरव की रक्षा करे। जव साधारण तौर पर राजा प्रजा को आश्रय देता है तो प्रजा की शक्तियाँ विशाल हो जाती हैं। आप ने तो आज मेरे दोनों हाथों को पकड़ा है। इससे मुझे मालूम होता है कि मैं अव सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय कर सकता हूँ।"

यह कहकर पृथ्वीसिंह चुप हो गया। इस समय उसके मनोभावों में अद्भुत शक्ति का संचार हो रहा था। वह बार-बार अपने गम्भीर नेत्रों से बादशाह की तरफ देखता था। इसी समय औरंगजेब ने कहा–'यह दूसरा कुट्टन मालूम होता है।' [1]

जसवन्त सिंह का बेटा पृथ्वीसिंह अभी युवक था। बादशाह के बुलाने पर वह बड़ी प्रसन्नता के साथ दरबार में आया था। उसे इस बात का गर्व था कि उसका पिता जसवन्त सिंह बादशाह की तरफ से अफगानों के साथ काबुल में युद्ध करने गया है। उसका अन्तःकरण निर्मल था। लेकिन औरंगजेब ने अपनी जिस कुत्सित भावना से प्रेरित होकर उसके साथ यह बातचीत की थी, युवा हृदय पृथ्वीसिंह उसको समझ न सका था। दरबार की पुरानी रीति के अनुसार बादशाह की तरफ से पृथ्वी को खिलअत दी गयी। उसे लेते हुए पृथ्वीसिंह ने बादशाह को सलाम किया और उसे पहनकर वह जब राज दरबार से अपने नगर को जाने लगा तो उसने बादशाह को फिर एक बार सलाम किया।

राजकुमार पृथ्वीसिंह जैसे ही अपने नगर में पहुँचा, उसके हृदय में एक साथ भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई। उसका मस्तक चकराने लगा और थोड़ी ही देर में उसका सम्पूर्ण शरीर शक्तिहीन हो गया। लोगों के देखते-देखते उसके प्राणों का अन्त हो गया। मुगल दरबार में पृथ्वीसिंह को जो खिलअत दी गयी थी, उसमें विष का प्रयोग किया गया था। उसका प्रभाव कुछ समय के बाद हुआ। उस खिलअत को पहनकर पृथ्वीसिंह औरंगजेब से विदा हुआ और अपने नगर पहुँचते-पहुँचते उसके प्राणों का अन्त हो गया।[2]

राजकुमार पृथ्वीसिंह जसवन्त सिंह का बड़ा लड़का था। वह योग्य, प्रतिभाशाली और पराक्रमी था। जसवन्त सिंह पृथ्वीसिंह से बड़ी-बड़ी आशायें रखता था। काबुल जाने के पहले उसने इसी पृथ्वीराज को राज्य का प्रबन्ध सौंपा था। उसे क्या मालूम था कि मेरे जाने के बाद औरंगजेब मेरे पुत्र पृथ्वीराज के साथ इस प्रकार विश्वासघात करेगा।

जसवन्त सिंह ने हिन्दूकुश की तराई में राजकुमार पृथ्वीसिंह की इस प्रकार मृत्यु का समाचार सुना। उसके दो लड़के और थे। जगतसिंह और दलथम्मन सिंह। वे भी जीवित न रह सके। जसवन्तसिंह का अब और कौन था, जिसका वह भरोसा करता और जिसकी आशा पर वह जीवित रहता। पृथ्वीसिंह की मृत्यु के साथ-साथ उसकी आशाओं का दीपक बुझ गया। उसे अब संसार में अंधकार दिखायी देने लगा। प्यारे पुत्र पृथ्वी सिंह की इस प्रकार मृत्यु के समाचार से जो आघात पहुँचा, उसे वह सहन न कर सका और सम्वत् 1737 सन् 1681 ईसवी में उसने परलोक की यात्रा की। उसकी मृत्यु के कुछ महीनों के पश्चात् शिवाजी के जीवन का भी अन्त हुआ। औरंगजेब के यही दो शत्रु थे। उन दोनों की मृत्यु से औरंगजेब के जीवन का मार्ग साफ हो गया। एक भट्ट ग्रन्थ में जसवन्त सिंह की मृत्यु का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "जसवन्तसिह जब तक जीवित रहा, औरंगजेब एक दिन भी सुख की नींद सो नहीं सका। उसके मरते ही औरंगजेब की सारी कठिनाइयों का अन्त हो गया।"

जसवन्त सिंह ने बयालीस वर्ष राज्य किया। राजस्थान में जितने भी गौरवशाली राज्य हुए, उन सब में जसवन्त सिंह को सम्मानपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। वह एक

---

1. औरंगजेब जसवन्त सिंह को कुट्टन कहकर सम्बोधित किया करता था।

राजपूतों के इतिहास में इस प्रकार के और भी उदाहरण पाये जाते हैं। जिसमें वस्त्रों को विषाक्त बनाकर पहनने वालों का सर्वनाश किया गया था। शत्रु को मारने के लिए इस प्रकार विष के प्रयोग प्राचीन यूरोप में भी किये जाते थे। उनका वर्णन हरक्यूलस ने अपने लेखों में किया है। उसने स्वीकार किया है कि पहनने के किसी वस्त्र में विष का प्रयोग करके शत्रु का सर्वनाश करने की रीतियाँ प्राचीन यूरोप में प्रचलित थीं।

स्वाभिमानी राजपूत था। मुगलों की अधीनता में रहने पर भी उसने अपने गौरव को कभी भुलाया न था। मुगलों की शक्तियों को महान समझते हुए भी सदा उसने स्वाभिमान की रक्षा की थी। उसने जीवन भर औरंगजेब की जड़ काटने का काम किया।

जसवन्त सिंह औरंगजेब से घृणा करता था। लेकिन उसकी यह घृणा समस्त मुगलों के प्रति नहीं थी। उन दिनों शाहजहाँ दिल्ली के सिंहासन पर था। यदि जसवन्त सिंह की घृणा का कारण राजनीतिक होता तो उसको मुगल बादशाह शाहजहाँ के साथ घृणा करना चाहिए था। लेकिन उसके साथ जसवन्त सिंह ने सदा अपनी राजभक्ति का परिचय दिया और उसके सम्मान की रक्षा में उसने फतेहाबाद में औरंगजेब के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में यदि मुगल सेना और उसके सेनापति कासिम खां ने विश्वासघात न किया होता तो युद्ध में - जैसा कि उस समय के इतिहासकारों का विश्वास है - जसवन्त सिंह की विजय हुई होती।

जसवन्त सिंह स्वभावतः शाहजहाँ के साथ प्रेम और औरंगजेब के साथ घृणा करता था। बादशाह के बड़े लड़के दारा के साथ भी उसकी मित्रता थी। लेकिन दारा स्वयं जसवन्त सिंह की मित्रता के योग्य न था। वह अयोग्य और अकर्मण्य था। इसीलिए जसवन्त सिंह और राजस्थान के अनेक दूसरे राजाओं की सहानुभूति और सहायता मिलने पर भी वह अपनी और बादशाह शाहजहाँ की रक्षा न कर सका। शाहजादा शुजा के साथ औरंगजेब का युद्ध आरंभ हुआ था, उस समय भी दारा को संभल जाने का अवसर था। उस मौके का लाभ उठाने के सम्वंध में जसवंत सिंह ने दारा को परामर्श भी दिया था। परन्तु दारा कुछ न कर सका। जसवन्त सिंह किसी भी अवस्था में शाहजहाँ का उद्धार करना चाहता था। इसका साधन दारा के सिवा और कुछ नहीं था। इसीलिए जसवन्त सिंह ने बादशाह की तरफ से दारा को औरंगजेब के सामने खड़ा किया था। यदि वह अयोग्य और अकर्मण्य न होता तो बादशाह शाहजहाँ के सिंहासन से उतारे जाने की नौबत न आती और दारा का भी पतन न होता।

शाहजहाँ और दारा के कारण ही औरंगजेब के साथ जसवन्त सिंह की शत्रुता बढ़ी थी। औरंगजेब भली प्रकार इस बात को जानता था कि बादशाह और दारा का सहायक प्रधान रूप से जसवन्त सिंह है। बादशाह को सिंहासन से उतारने के बाद औरंगजेब ने जो पत्र जसवन्त सिंह को भेजा था, उसमें इस बात का साफ-साफ जिक्र किया था और उसने जसवन्त सिंह को गुजरात का अधिकारी इसी शर्त पर बनाया था कि वह किसी भी दशा में दारा का साथ न दे। शक्तियों के अभाव में और दारा की अकर्मण्यता में जसवन्त सिंह को औरंगजेब की लिखी हुई शर्त को स्वीकार करना पड़ा था।

इसके बाद जसवन्त सिंह को शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए औरंगजेब ने दक्षिण भेज दिया। वह दारा से सभी प्रकार हताश हो चुका था और शाहजहाँ सिंहासन से उतारा जा चुका था, फिर भी उसके हृदय में पीड़ा थी। उसके प्रतिकार के लिये वह औरंगजेब का हृदय से पक्षपाती न था। इसके परिणाम स्वरूप दक्षिण में पहुँच कर उसने शिवाजी के साथ एक जाल तैयार किया। औरंगजेब का सेनापति दक्षिण में युद्ध करते हुए मारा गया। उससे भी उसको शान्ति न मिली। औरंगजेब ने दिलेर खाँ को प्रधान सेनापति बनाकर वहाँ भेजा। उस समय उसने दिलेर खाँ के विरुद्ध मुअज्जम को प्रोत्साहित किया।

औरंगजेब से जसवन्त सिंह की ये चालें अप्रकट न रह सकीं। परन्तु वह खुल कर जसवन्त सिंह को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहता था। इसलिये वह राजनीति से काम लेता रहा और जसवन्त सिंह के सर्वनाश की वह चेष्टा करता रहा। जसवन्तसिंह की जो भीतरी

अभिलाषा थी, उसकी सफलता के लिये वह भी बराबर अपना कार्य करता रहा। औरंगजेब जसवन्तसिंह को समझता था और जसवन्तसिंह औरंगजेब को समझता था। दोनों ही अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगे थे।

राजनीतिज्ञ औरंगजेब जसवंन्तसिंह से जो कार्य लेना चाहता था, जसवंत सिंह उसी को अपने उद्देश्य की सिद्धी के लिए साधन बनाने की कोशिश करता था। औरंगजेब जिस अवसर की खोज में था, वह जसवन्तसिंह के काबुल जाने पर उसको मिल गया। उसने राजकुमार पृथ्वीसिंह को बुला कर उसका सर्वनाश किया और यह सर्वनाश जसवन्तसिंह की मृत्यु का कारण बना।

पृथ्वीसिंह और जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ के राठौड़ राजवंश पर किस प्रकार व्रजपात हुआ, उसका वर्णन करने से पहले राठौड़ सरदारों के सम्बन्ध में कुछ लिखना बहुत आवश्यक मालूम होता है। जो सामन्त और सरदार औरंगजेब के विरुद्ध जसवन्तसिंह की सदा सहायता किया करते थे, उनमें नाहर राव प्रमुख था। इसका नाम अनेक ग्रंथों में नाहर खाँ लिखा गया है। यह कुम्पावत वंश का शूरवीर सरदार था और उन दिनों में इसका स्थान बहुत श्रेष्ठ समझा जाता था। उसका वास्तव में नाम मुकुन्ददास था। नाहर खाँ नाम मुगल बादशाह का रखा हुआ था। उसकी घटना इस प्रकार है।

बादशाह ने मुकुन्ददास को दरबार में आने के लिये संदेश भेजा। जो बुलाने गया था, उसका व्यवहार और बातचीत का तरीका राजपूतों के योग्य न था। इसीलिये मुकुन्ददास ने कठोर उत्तर देकर उसे वापस कर दिया। बादशाह उसका उत्तर सुन कर बहुत अप्रसन्न हुआ और जब मुकुन्ददास दरबार में आया तो उसको दण्ड देने के लिए बादशाह ने बिना किसी अस्त्र के उसको बाघ के पिंजड़े में जाने की आज्ञा दी। इस कठोर आज्ञा को सुनकर मुकुन्ददास भयभीत नहीं हुआ और मुस्कराते हुए वह बाघ के पिंजड़े की तरफ रवाना हुआ, वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि बाघ पिंजड़े के भीतर घूम रहा है। उसके समीप पहुँचकर और उसके सामने खड़े होकर मुकुन्ददास ने कहा- "ए मुगल के बाघ, आ और जसवन्तसिंह के बाघ का सामना कर।" मुकुन्ददास की इस बात को सुनकर बाघ चौकन्ना हुआ और मुकुन्ददास की तरफ देख कर उसने गरजते हुये भयानक आवाज की। मुकुन्ददास बाघ की तरफ देख रहा था। भीषण गर्जना करने के बाद बाघ ने अपना मुख दूसरी तरफ घुमा लिया और मुकुन्ददास के सामने वह पिंजड़े में दूसरी तरफ चला गया। यह देखकर मुकुन्ददास ने ऊंचे स्वर में कहा-"यह देखो, बाघ मेरे साथ युद्ध नहीं कर सका। रण से भागे हुए शत्रु पर आक्रमण करना राजपूतों के धर्म के विरुद्ध है।" बहुत से लोग खड़े होकर यह घटना देख रहे थे। औरंगजेब के विस्मय का ठिकाना न रहा। मुकुन्ददास के सामने गरज कर बाघ का दूसरी तरफ घूम जाना औरंगजेब की समझ में भी एक आश्चर्य की बात थी। वह मुकुन्ददास के साहस और शौर्य पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय उसने मुकुन्ददास का नाम नाहर खाँ अर्थात् बाघ पति रखा और उसे बहुत-सा इनाम दिया।

इसी अवसर पर शाहजादा औरंगजेब ने मुकुन्ददास की तरफ देखा और हँसकर कहा- "राठौड़ तुम्हारे अद्‌भुत पराक्रम को मैंने अपनी आँखों से देखा। अब यह तो बताओ कि तुम्हारे कितने लड़के हैं ?"

मुकुन्ददास ने औरंगजेब के प्रश्न को सुना और मुस्कुराते हुए उत्तर दिया। "बादशाह जब आपने मेरी स्त्री से जुदा करके अटक की दूसरी तरफ पश्चिम की ओर भेज दिया था तो फिर मेरे लड़के कैसे पैदा हो सकते हैं।"

मुकुन्ददास के इस उत्तर को सुनकर औरंगजेव ने एक अस्वाभाविक हँसी के साथ प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार की वातचीत मुकुन्ददास के साथ औरंगजेव की और भी हुई थी। किसी समय औरंगजेव ने मुकुन्ददास से कहा : "क्या आप अपने घोड़े पर वैठ करके उसको वड़ी तेजी से दौड़ाते हुए पेड़ की डाली पकड़ कर झूल सकते हो ?"

इस प्रश्न को सुनकर स्वाभिमान के साथ मुकुन्ददास ने कहा- "मैं वन्दर नहीं हूँ, राजपूत हूँ। राजपूत के समस्त कार्य तलवार के द्वारा होते हैं। किसी राजपूत की तलवार का खेल उस समय देखना चाहिये, जव शत्रु उसके सामने हो।"

मुकुन्ददास ने अपने सहज स्वभाव से औरंगजेव को इस प्रकार का उत्तर दिया था। उस समय वह शाहजादा था। परन्तु उसके व्यवहारों में वादशाहत की गन्ध थी इसीलिये मुकुन्ददास ने उसके साथ इस प्रकार की वातचीत की थी।

मुकुन्ददास की वातों को सुनकर औरंगजेव को प्रसन्नता नहीं हुई। उसके वाक्यों में जिस स्वाभिमान का प्रदर्शन होता था, औरंगजेव उसे उसका अभिमान समझता था। इसलिये वह सदा उसके सर्वनाश की वात सोचा करता था और उससे ऐसे काम लेना चाहता था, जिससे उसका विनाश हो। इसी उद्देश्य से उसने उसको देवड़ा राजा सुरतान के विरुद्ध युद्ध करने के लिये भेजा। मुकुन्ददास ने विना किसी प्रकार के भय के शाहजादे की आज्ञा का पालन किया और अपनी राठौड़ सेना को लेकर वह रवाना हो गया।

सिरोही के देवड़ा राजा सुरतान ने जव मुकुन्ददास को सेना के साथ आते हुये सुना तो वह पहाड़ के कठिन स्थानों पर पहुँच गया। उसका अनुमान था कि वहाँ पर शत्रु का प्रवेश नहीं हो सकता। इस विश्वास पर वह निश्चित भाव से वहाँ रहने लगा। एक दिन रात को सुरतान अपने दुर्ग में निर्भीकता के साथ सो रहा था। उस समय दुर्ग में भीतर से लेकर वाहर तक सन्नाटा था। केवल एक पहरेदार वहाँ पर मौजूद था। उस समय मुकुन्ददास अपनी सेना के साथ वढ़ा और वड़ी सावधानी के साथ वह दीवार पर चढ़ गया। वहाँ पर उसने देखा कि अकेला पहरेदार वहाँ पर खड़ा है। उसने उस पर आक्रमण किया और उसके वाद दुर्ग के उस स्थान में उसने प्रवेश किया, जहाँ पर सुरतान सो रहा था।

मुकुन्ददास ने सुरतान को उसकी पगड़ी से चारपाई के साथ वाँध लिया और उस चारपाई को उठाकर वह अपने साथ ले आया।[1] मुकुन्ददास ने सुरतान को अपनी सेना की सुपुर्दगी में दे दिया। उसके वाद जव राठौड़ सेना वहाँ से लौटने लगी, उस समय देवड़ा की सेना जाग पड़ी और उसके सैनिक को जव मालूम हुआ कि राव सुरतान को शत्रु अपने साथ ले जा रहे हैं तो वे सव मिल कर सुरतान को छुड़ाने की चेष्टा करने लगे। यह देखकर मुकुन्ददास ने गरजते हुये कहा- "देवड़ा के सैनिकों, शांत होकर हमारी वात सुनो। यदि आप लोगों ने इस समय मारकाट की तो मैं राव सुरतान का सिर कटवा लूँगा। इसलिए कि उसकी जिन्दगी इस समय मेरे हाथ में है, यदि आप लोगों ने मेरा कहना मान लिया तो विश्वास रखिये कि राव सुरतान का जीवन पूर्ण रूप से सुरक्षित रहेगा और उसके सम्मान को कुछ भी क्षति न पहुँचेगी।"

मुकुन्ददास की इन वातों को सुन कर देवड़ा के सैनिक शांत हो गये। मुकुन्ददास सुरतान को वन्दी वना कर ले गया और राजा जसवन्तसिंह को सौंप दिया। जसवन्तसिंह ने

1. कुछ लेखकों का कहना है कि सुरतान की मृत्यु वहुत पहले हो चुकी थी। नाहर खाँ के समय में उसका प्रपौत्र देवड़ा अखयराज सिरोही का राव था।

सिरोही के राजा सुरतान को सान्त्वना देकर कहा कि आप बादशाह से मुलाकात करें। इससे आपकी कोई हानि न होगी। राव सुल्तान ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

बादशाह से भेंट करने के लिए सुरतान शाही कर्मचारियों के साथ रवाना हुआ। रास्ते में उन कर्मचारियों ने सुरतान को समझाया कि बादशाह के सामने पहुँच कर सलाम करना। इस बात को भूल न जाना। कर्मचारियों के इस उपदेश को सुन-सुन कर राव सुरतान के स्वाभिमान को जोर का आघात पहुँचा। उसने अपने मन में कहा : "मेरे प्राण बादशाह के हाथ में हैं और मेरा सम्मान मेरे अधिकार में है। जो मेरे अधिकार में है, उसकी मैं रक्षा करूँगा।" कर्मचारियों ने जब उसके मुख से कुछ उत्तर न सुना तो उनको संदेह पैदा हुआ लेकिन राजा जसवन्त सिंह ने राव सुरतान के सम्बन्ध में उन्हें बहुत समझा बुझाकर भेजा था। इस लिए कर्मचारियों ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया।

जो कर्मचारी राव सुरतान को बादशाह के पास ले जा रहे थे, उनको विश्वास हो गया कि यह बादशाह को सलाम नहीं करेगा। इसलिए राजा जसवन्तसिंह की बातों को ध्यान में रखकर राव सुरतान को ऐसे रास्ते से बादशाह के सामने ले गये, जो एक आदमी की छाती से ऊंचा न था। उस रास्ते को पार करते ही राव सुरतान ने अपने आप को बादशाह के सामने पाया। उसका उस रास्ते से पार होना बादशाह के निकट सम्मानपूर्ण अभिवादन के रूप में स्वीकार किया गया।

बादशाह ने अपने सामने राव सुरतान को देखा। उसका वीरोचित शरीर, ऊंचा मस्तक और साहसपूर्ण मुख मण्डल देखकर बादशाह को प्रसन्नता हुई। उसने राव सुल्तान को न केवल क्षमा ही कर दिया, बल्कि उसकी पसन्द के अनुसार बादशाह ने उसको एक जागीर देना भी स्वीकार किया।

बादशाह की इस उदारता से राव सुरतान को संतोष नहीं मिला। वह एक स्वाभिमानी राजपूत था। उसने बादशाह की इस उदारता में अपनी पराधीनता को अनुभव किया। वह अभी तक एक छोटा किन्तु स्वतंत्र राजा था और राव उसकी उपाधि थी। लेकिन बादशाह इस समय उसको एक जागीर देकर अपनी अधीनता में एक सामन्त बनाना चाहता था।

राव सुरतान को इससे कभी भी संतोष न मिल सकता था। इसलिए उसने निर्भीकता के साथ कहा : "बादशाह, आप ने मुझे मेरी पसन्द के अनुसार जागीर देने का वचन दिया है। इसके लिए मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूँ और अपनी पसन्द को आप के सामने रखते हुए कहना चाहता हूँ कि अपने छोटे-से राज्य में मुझे रहने का अवसर दिया जाये। मेरा अचलगढ़ राज्य मेरे लिए सबसे बड़ी जागीर है।"

स्वाभिमानी देवड़ा राजा सुरतान की बात को सुन कर बादशाह को किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ। उसने उदारता के साथ उसकी माँग को स्वीकार कर लिया और उसे आबू के दुर्ग में चले जाने की आज्ञा दे दी, राव सुरतान अचलगढ़ वापस लौट गया। □

अध्याय –37

महाराज जसवंत सिंह व अजीत सिंह दुर्गादास का त्याग

पृथ्वीसिंह की मृत्यु के समय जसवन्त सिंह कावुल में था। उसके शोक में जसवन्त सिंह ने परलोक की यात्रा की। उसके मरते ही उसकी रानी, जो उसके साथ थी, सती होने के लिए तैयार होने लगी। उसने चिता वनवाने का आदेश दिया। लेकिन वह गर्भवती थी। सात महीने का शिशु उसके पेट में था। इसलिए उसका सती होना सरदार ऊदा ने उचित नहीं समझा। उसने वड़ी सावधानी के साथ रानी से प्रार्थना की और उसे समझाया कि इस दशा में आपको सती न होना चाहिए। उससे जो पुत्र पैदा हुए थे, उनकी अकाल मृत्यु हो गयी थी। अव जसवन्त सिंह के कोई वालक न था। इसलिए साथ के सरदारों ने मिलकर गर्भवती रानी को सती होने से रोका। इस दशा में जसवन्त सिंह की रानी सती न हो सकी। जसवन्त सिंह के साथ कावुल में जो उप पत्नियाँ थीं, वे सती हो गयीं। उसकी दूसरी रानी मन्ड़ोर नगर में रहती थी। उसको जव जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने सती होने की तैयारी की और अपने पति की पगड़ी साथ में लेकर चिता में वैठी और सती हो गयी।

जसवन्त सिंह के मरने के वाद सम्पूर्ण राजस्थान में शोक मनाया गया। मारवाड़ के स्त्री-पुरुष वहुत दिनों तक दुःखी रहे। जसवंत सिंह ने मारवाड़ के गौरव की रक्षा की थी। अव वह गौरव राज्य के सभी लोगों को अरक्षित दिखायी देने लगा। मन्दिरों में घण्टों का वजना वन्द हो गया, प्रातःकाल और सायंकाल राज्य में शंख वजा करते थे, अव उनकी आवाज कहीं सुनायी न पड़ती थी। मारवाड़ की परिस्थितियाँ जसवन्त सिंह के मरते ही एक साथ भयानक हो उठीं। राज्य के सभी लोग अत्यन्त भयभीत हो उठे। अव उनको कोई ऐसा दिखायी न पड़ता था, जिसके द्वारा मारवाड़ की रक्षा हो सकती। जो ब्राह्मण जसवन्त सिंह के शासन काल में निर्भीक होकर अपने धर्म का प्रचार करते थे, उनका झुकाव अव इस्लाम की तरफ दिखायी पड़ने लगा। इस प्रकार के अनेक परिवर्तन जसवन्त सिंह के मरने के वाद एक साथ सामने आये।

जसवन्त सिंह की विधवा रानी अभी तक कावुल में थी। उसके साथ वहुत से राठौड़ सैनिक और शूरवीर सरदार थे। समय पर उससे एक पुत्र पैदा हुआ। अजीत उसका नाम रखा गया। कुछ समय के वाद जव रानी वहाँ से आने के योग्य हो सकी तो राठौड़ सरदार अपने साथ के सव लोगों को लेकर कावुल से मारवाड़ की तरफ रवाना हुए। उन सव के

दिल्ली में पहुँचते ही औरंगजेब ने राठौड़ सरदारों को आगे न जाने दिया और उसने उनको दिल्ली में ही रोक लिया। उसने शिशु अजीत को सरदारों से लेने का प्रयत्न किया।

राठौड़ सरदारों के दिल्ली आते ही औरंगजेब ने उनको आदेश दिया कि वे जसवन्तसिंह के शिशु अजीत को उसके हवाले कर दें। जब औरंगजेब ने देखा कि जसवन्त सिंह के सामन्त और सरदार इसके लिए तैयार नहीं हैं तो उसने सामन्तों और सरदारों को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। उसने उनसे साफ-साफ कहा : "यदि तुम शिशु राजकुमार को मुझे दे दोगे तो मैं सम्पूर्ण मारवाड़ राज्य तुम सब को बाँट दूँगा।"

औरंगजेब किसी भी दशा में जसवन्तसिंह के शिशु अजीत को लेना चाहता था। परन्तु मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों ने औरंगजेब की बात को स्वीकर नहीं किया और उन सब ने यह निश्चय कर लिया कि जब तक हम लोग जीवित रहेंगे अजीत को औरंगजेब के हवाले न करेंगे। अजीत को लेने के लिए औरंगजेब बराबर आग्रह करता रहा। उसने अनेक प्रकार की बातें की। परन्तु सामन्तों और सरदारों ने अजीत को देना स्वीकार नहीं किया।

औरंगजेब ने दरबार में मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों को बुलाकर अजीत को दे देने के लिए आदेश दिया। राठौड़ सामन्त इसके लिए तैयार न हुए और उन लोगों ने एक मत होकर औरंगजेब को उत्तर देते हुए स्पष्ट कहा–"जिस मातृभूमि के द्वारा हमारा पालन हुआ है उस मातृभूमि की रक्षा हमारी प्रत्येक अस्थिमज्जा और नस के द्वारा होगी।"

सामन्तों और सरदारों ने किसी भी दशा में शिशु अजित को देना स्वीकार नहीं किया। वे बादशाह के दरबार से निकल कर चले आये और जहाँ पर वे ठहरे थे, वहाँ वे पहुँच गये। उसके थोड़े ही समय के बाद मुगलों की एक सेना ने आकर उनको घेर लिया। औरंगजेब के इस अत्याचार से राठौड़ सामन्त बहुत क्रोधित हुए, किन्तु वे सावधान होकर अजीत के प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगे। सभी ने मिलकर एक निर्णय कर लिया। राजधानी के हिन्दुओं में मिठाईयाँ पहुँचाने की तैयारियाँ होने लगीं और टोकरों में मिटाईयाँ भर-भरकर हिन्दुओं के यहाँ भेजना शुरू कर दिया। इस प्रकार जो हजारों टोकरे हिन्दुओं के घरों पर पहुँचाने के लिए रवाना हुए, उनमें एक टोकरे में शिशु अजीत को छिपा कर भेज दिया गया।

इस मिष्ठान के बँटवाने का कार्य समाप्त होने के बाद सभी राठौड़ों ने अपनी तैयारी की। औरंगजेब ने इस समय जैसा व्यवहार इन राठौड़ो के साथ किया था, उसके बदले में युद्ध करने के सिवा और कोई भी रास्ता राठौड़ सामन्तों के सामने न रह गया था। इसलिए युद्ध की तैयारी कर चुकने पर और अपने-अपने घोड़ों पर बैठ कर राठौड़ आगे बढ़े और साथ के लोगों को ललकारते हुए राठौड़ सामन्तों ने कहा – "आज हम लोगों के सामने राठौड़ों के गौरव की रक्षा का प्रश्न है। बादशाह ने हमारे सर्वनाश की चेष्टा की है। इसलिए जो संकट हमारे सामने पैदा हुआ है, उसका हम सामना करें और मारे जाने पर स्वर्ग की यात्रा करें।"

राठौड़ वीरों के इन शब्दों को सुनकर भट्ट कवि सूजा ने गम्भीर होकर कहा–"मारवाड़ की लाज आज आप लोगों के हाथों में है। आपके सामने मातृभूमि और राजपूतों के गौरव की रक्षा का प्रश्न है। अपने प्राणों की बलि देकर आपको इस गौरव की रक्षा करनी है।"

इसी समय दुर्गादास ने कहा –"हिन्दुओं का सर्वनाश करके बादशाह का साहस बढ़ गया है। हम सब लोग जितना दबे हैं, उतने ही हम लोग दबाये गये है। आज हम सब

लोग अत्याचारों का वदला लेंगे।" राठौड़ सामन्तों ने अजीत के प्राणों की किसी प्रकार रक्षा कर ली थी। परन्तु अव उनके सामने उन स्त्रियों के गौरव का प्रश्न था, जो कावुल से उनके साथ आयी थीं। उनके धर्म की रक्षा कैसे होगी, इस प्रश्न को लेकर राठौड़ सामन्त वार-वार सोचने लगे। मुगल सेना ने चारों ओर से घेरा डाल रखा था। उनको घेरे से वाहर ले जाने का कोई रास्ता न था।"

इसलिए उन सामन्तों ने साथ की स्त्रियों का अंत करने का निर्णय किया। क्योंकि इसके सिवा उनके धर्म की रक्षा का दूसरा कोई उपाय न था। घर के भीतर एक वड़े कोठे में वहुत सी वारूद, फूस और लकड़ी एकत्रित की गई। राजपूत स्त्रियों ने अपने देवता का नाम लेकर उस कोठे में प्रवेश किया। उसके वाद कोठे का दरवाजा वंद कर दिया और एक सुराख से वारूद में आग लगा दी गयी। कोठे के भीतर एकत्रित वहुत-सी बारूद का ढेर एक साथ जल उठा और थोड़ी देर में वे समस्त स्त्रियाँ राख के ढेर में परिणित हो गयी।

राठौड़ सामन्तों का पहला कार्य था किसी प्रकार शिशु अजीत की रक्षा करना और दूसरा कार्य था अपनी स्त्रियों और लड़कियों के धर्म को सुरक्षित रखना। इन दोनों कार्यों के सम्वन्ध में जो कुछ सम्भव हो सकता था, मुगलों की राजधानी दिल्ली में उन्होंने किया। अजीत की जान बचाने में उनको सफलता मिली। स्त्रियों के धर्म की रक्षा करने के लिए उनको उनके प्राणों का अंत करना पड़ा। अब वे मुगल सेना के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर राठौड़ों ने मुगल सेना का सामना किया। वात की वात में घमासान युद्ध जारी हो गया। उस मारकाट में दूहड़ के वंशजों ने भयानक रूप से मुगल सैनिकों का संहार किया।[1]

नौ हजार मुगल सैनिकों ने थोड़े से राठौड़ों के साथ युद्ध आरम्भ किया था। इस लड़ाई में राठौड़ों को स्वयं सफलता की आशा न थी। लेकिन युद्ध के सिवा उनके सामने और दूसरा कोई उपाय न था। उन मुगल सैनिकों से भीषण मारकाट करते हुए रत्नसिंह मारा गया उसके वाद कई एक राठौड़ धराशाही हुए। चंद्रभान ने अपने प्राणों की वलि दी। राठौड़ों के साथ जो शूरवीर योद्धा थे, वे एक-एक करके मारे जाने लगे। कवि चन्द वड़े साहस के साथ अपने दोनों हाथों में तलवारें लिये शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहा था। थोड़ी ही देर में वह भी मारा गया।

मुगल सेना के साथ थोड़े से राठौड़ों का यह युद्ध श्रावण कृष्ण पक्ष सम्वत् 1736 सन् 1680 ईसवी में हुआ। भट्ट ग्रंथों में इस युद्ध का वर्णन भली प्रकार किया गया है। शूरवीर राठौड़ों ने अपने प्राण देकर शिशु अजीत की रक्षा की। राठौड़ सामन्त ने वड़ी वुद्धिमानी से काम लिया था। दिल्ली में पहुँच जाने के वाद अजीत के प्राणों को वचाने के लिये उनके पास कोई उपाय न था। इसलिये उन्होंने मिष्ठान वँटवाने का प्रवन्ध किया और मिठाइयों से भरे हुये जो वड़े-वड़े टोकरे वहाँ से भेजे गये, उनमें एक टोकरे के भीतर राठौड़ सामन्तों ने अजीत को छिपा दिया। वह टोकरा - जिसमें अजीत को छिपाया गया था - एक मुसलमान को सौंपा गया। वह पहले से राठौड़ों का विश्वासी था। वह टोकरा एक मुसलमान के द्वारा रवाना किया गया। इसलिये उस पर किसी शाही कर्मचारी को संदेह न हो सकता था। राठौड़ों की यह दूरदर्शिता थी। लोग पहले से उस मुसलमान का विश्वास करते थे। उस टोकरे को ले जाने वाला मुसलमान जानता था कि इस टोकरे में राजा जसवंत सिंह का शिशु छिपाया गया है। राठौड़ों ने उससे यह वात छिपाकर नहीं रखी थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस मुसलमान ने अजीत के प्राणों की रक्षा करने में सहायता की।

---

1. मारवाड़ में दूहड़ नाम का एक राजा हुआ था राव उसकी उपाधि थी।

वह मुसलमान एक निश्चित स्थान पर टोकरा लेकर पहुँच गया और उसके कुछ समय के बाद दुर्गादास युद्ध में बचे हुए सरदारों को साथ में लेकर वहाँ पहुँचा। उसके शरीर में सैंकड़ों जख्म थे, जिनसे बराबर रक्त निकल रहा था। दुर्गादास ने उन जख्मों की परवाह न की। वह किसी प्रकार अजीत को सुरक्षित देखना चाहता था। उस मुसलमान से जिस स्थान का निश्चय हुआ था, वहाँ पर पहुँच कर जब दुर्गादास ने टोकरे में अजीत को सुरक्षित और सकुशल देखा तो उसे बहुत संतोष और सुख मिला। उस समय वह अपने शरीर के सैंकड़ों जख्मों की पीड़ा को भूल गया। जो मुसलमान अजीत को छिपा कर टोकरा लाया था, वह राठौड़ों का परम विश्वासी था। वह जानता था कि राजपूतों के साथ जो उपकार किया जाता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। अजीत के प्राणों की रक्षा करने वाले मुसलमान को उसके इस उपकार के बदले मारवाड़-राज्य की तरफ से जागीर दी गयी, जो अब तक उसके वंशजों में पायी जाती है। इसके साथ-साथ मारवाड़ के दरबार में उसको बहुत बड़ी प्रतिष्ठा मिली। अजीत जब बड़ा हुआ तो उसने उस मुसलमान का बहुत आदर किया और अंत तक अजीत उसको काका कह कर पुकारता रहा।

दुर्गादास अपने कुछ विश्वासी आदमियों के साथ राजकुमार अजीत को लेकर आबू पहाड़ पर चला गया और वहाँ एकान्त स्थान में रह कर वह उस बालक का पालन-पोषण करने लगा। दुर्गादास को वहाँ रह कर भी औरंगजेब का भय बना रहा। इसलिए उसने अपने एकान्तवास का समाचार शक्ति भर किसी को प्रकट नहीं होने दिया।

धीरे-धीरे बहुत दिन बीत गये। अजीत के साथ बहुत दिनों तक दुर्गादास का छिपकर रहना अप्रकट न रह सका। किसी प्रकार मारवाड़ के राजपूतों में यह अफवाह फैलने लगी कि जसवंत सिंह का पुत्र अजीत जीवित है। दुर्गादास के संरक्षण में उसका पालन-पोषण हो रहा है। इस अफवाह के फैलते ही वहाँ के अगणित राजपूत आपस में एक दूसरे से बातें करने लगे और इस बात की खोज में रहने लगे कि यह अफवाह सही कहाँ तक है। इस खोज में मारवाड़ के बहुत से राजपूत दुर्गादास का पता लगाने के लिए बाहर निकले। वे इधर-उधर घूमते हुए आबू पहाड़ पर पहुँच गये।

राजकुमार शिशु अजीत को बहुत पहले से दूनाड़ा का सरदार धनी के नाम से सम्बोधित किया करता था। जो राजपूत आबू पर्वत पर पहुँच गये थे, उन्होंने दुर्गादास और अजीत का पता लगा लिया और जब वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर अजीत रहा करता था तो वे राजकुमार को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आपस में बातचीत करके उन लोगों ने मारवाड़ के सिंहासन पर अजीत को बिठाने का निश्चय किया।

आबू पहाड़ पर अजीत का वह एकान्त स्थान धीरे-धीरे मारवाड़ के दूसरे राजपूतों को भी मालूम हो गया, अब वहाँ पर बहुत-से राठौड़ भट्ट और चारण एकत्रित होने लगे। प्राचीन काल में ईदा नामक एक प्राचीन राजवंश मरुभूमि में राज्य करता था। ईदा परिहार राजपूतों की एक शाखा है। मारवाड़ में राठौड़ों का आधिपत्य कायम होने पर ईदा वंश के लोग अपने राज्य को छोड़कर दूर चले गये थे और अपना राज्य खोकर किसी प्रकार दिन बिताने लगे। परन्तु अपने राज्य के छूट जाने की वेदना अभी तक उस वंश के लोगों में थी। इस समय उनको मौका मिल गया और थोड़े ही दिनों में परिहारों का झंडा प्राचीन मन्डोर में फहराने लगा।

इस विजय से परिहार वंश के राजपूतों को वहुत प्रोत्साहन मिला। रत्नसिंह नाम के एक राठौड़ ने जोधपुर को जीतकर अपने अधिकार में लाने की चेष्टा की।[1] अमर सिंह अपने पिता के द्वारा राज्याधिकार से वंचित किया गया था। औरंगजेव ने रत्नसिंह को जोधपुर विजय करने के लिए तैयार किया था परन्तु उसको सफलता न मिली। राठौड़ सरदारों ने अजीत का पक्ष लेकर उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में रत्नसिंह की पराजय हुई। वह युद्ध से भाग कर नागौर के दुर्ग में पहुँच गया। उसके वाद राठौड़ सरदारों ने ईदा वंशजों पर आक्रमण किया और उन्हें मन्डोर से निकाल दिया।

औरंगजेव ने रत्नसिंह को राठौड़ों से लड़ाने की चेष्टा की थी। परन्तु जव उसको सफलता न मिली तो उसने स्वयं राठौड़ सरदारों पर आक्रमण करने की तैयारी की और एक विशाल सेना लेकर वह मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। मुगल सेना ने जोधपुर पहुँच कर उस नगर को घेर लिया। मुगलों की सेना इतनी वड़ी थी कि मारवाड़ के राठौड़ उसके आक्रमण को रोक न सके। औरंगजेव ने जोधपुर को अपने अधिकार में ले लिया। इसके वाद मुगल सेना ने वहाँ पर लूट मार और भयानक अत्याचार किये। वहाँ की सम्पत्ति को लूट कर मुगल सेना ने मेड़ता, डीडवाना और रोहत नामक नगरों पर आक्रमण किया,

औरंगजेव की मुगल सेना ने एक-एक करके मारवाड़ के सभी नगरों पर अधिकार कर लिया। वहाँ के गाँवों, कस्वों और नगरों को लूटकर उनमें आग लगा दी गई। वहाँ के मंदिर और स्तम्भ गिरा दिये गये। देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ डाली और अगणित हिन्दुओं को मुसलमान वनाने का कार्य किया गया। मंदिरों के स्थानों पर मस्जिदें वनवाई गयीं। उसके वाद औरंगजेव अपनी फौज के साथ राजधानी लौट गया। मेवाड़ का राणा राजसिंह मारवाड़ में किये गये मुगलों के अत्याचारों को सहन न कर सका। उसने राठौड़ों को मिला कर मुगलों से युद्ध करने की तैयारी की। उसके साथ संग्राम करने के लिए औरंगजेव ने सत्तर हजार सैनिकों के साथ तहव्वरखाँ को भेजा और उसको रवाना करने के पश्चात वह स्वयं मुगलों की एक वड़ी फौज लेकर अजमेर की तरफ चला। उसके साथ युद्ध करने के लिए मेड़ता के सामन्तों ने तैयारी की और अपने सैनिकों को लेकर वे पुष्कर के सामीप पहुँच गये। वहाँ पर वाराह का एक प्रसिद्ध मंदिर था। उस मंदिर के सामने मेड़ता की सेना ने मुगलों के साथ युद्ध आरम्भ किया। उनको देखते हुए मुगलों की सेना वहुत अधिक थी। यह युद्ध सम्वत् 1736 के भादो महीने में हुआ। उसमें मेड़ता के सैनिक और सरदार मारे गये।

मेड़ता के युद्ध में विजयी होकर तहव्वर खाँ अपनी फौज के साथ आगे वढ़ा। मरुधर के निवासी ववरा कर पहाड़ों की तरफ भागने लगे। तहव्वर खाँ की फौज का सामना करने के लिए रूपा और कूँपा नाम के दोनों भाइयों ने युद्ध की तैयारी की और वे दोनों वड़ी तेजी के साथ गुडा नाम के स्थान पर पहुँच गये। मुगल सेनापति के साथ वहुत वड़ी फौज थी इसलिए अपने सैनिकों के साथ दोनों भाई मारे गये।

औरंगजेव इन दिनों राजपूतों के सर्वनाश में लगा हुआ था। उसकी शक्तियाँ विशाल थीं। इसलिये वह भयानक अत्याचार करने में भी किसी प्रकार का सोच विचार न करता था। अजयमेरु दुर्ग में पाँच दिन तक रह कर उसने चित्तौड़ का रास्ता पकड़ा और वहाँ पहुँचते ही उसने गेमान्चकारी अत्याचार आरम्भ कर दिये। राणा ने शिशु राजकुमार की रक्षा की और राठौड़ों के युद्ध में सीसोदिया सेना आगे रही थी।

1. कुछ लेखकों का कहना है कि रत्नसिंह गलत नाम है। उसका सही नाम रायसिंह है। वह राव अमर सिंह का वेटा था और जसवंत सिंह का भतीजा था।

औरंगजेब के साथ बहुत बड़ी फौज देखकर चित्तौड़ के लोगों ने शिशु अजीत को बचाने की कोशिश की। उसे एक गुप्त स्थान में छिपा कर रखा गया। औरंगजेब अपनी फौज के साथ देवाड़ी के निकट आ गया। उसका सामना करने के लिए कुम्भा, उग्रसेन और ऊदा आदि कई राठौड़ शूरवीर अपनी सेना के साथ पहाड़ी मार्ग पर पहुँच गये। राठौड़ों ने मुगलों को रोकने की कोशिश की। औरंगजेब ने उस पहाड़ी रास्ते से होकर जब उदयपुर में आक्रमण किया, तो उस समय आजम चित्तौड़ में था। इसी समय औरंगजेब को समाचार मिला कि दुर्गादास ने जालौर राज्य पर आक्रमण किया है। इसको सुनते ही वह अजमेर की तरफ लौट पड़ा। वहाँ जाने के पहले उसने मुकर्रम खाँ को आज्ञा दी कि वह जालौर के युद्ध में बिहारी की सहायता करे।

दुर्गादास उन दिनों में युद्ध का कर वसूल कर रहा था। वह जोधपुर पहुँचा। इन दिनों में औरंगजेब भीषण रूप से धार्मिक पक्षपात कर रहा था और हिन्दुओं के विरुद्ध उसके हृदय में आग जल रही थी। उसने इन दिनों में बार-बार प्रतिज्ञा की कि इस्लाम को छोड़कर इस देश में दूसरा कोई मजहब न रखूँगा। उसने शाहजादा अकबर को एक मुगल सेना देकर तहब्बरखाँ के पास भेज दिया। इन दिनों में मुगल फौजें चारों तरफ लूट मार कर रही थीं और उसके बाद उसके सैनिक आग लगाकर ग्रामों और नगरों का सर्वनाश कर रहे थे। ईदा लोगों ने जोधपुर में अधिकार कर लिया। परन्तु कुम्पावत लोगों ने खत्तापुर में उनका सामना किया और भयानक रूप से उनका नाश किया। मुरधर का राजा एक बार फिर राव की पदवी से वंचित हुआ। यद्यपि बादशाह चाहता था कि परिहार लोग मारवाड़ पर अधिकार करें। लेकिन उसका यह इरादा सम्वत् 1736 के जेठ महीने की त्रयोदशी को बेकार हो गया।

इन दिनों में राठौड़ों ने अरावली पहाड़ पर आश्रय लिया। जहाँ पर वे जाकर रहे थे, वह स्थान अत्यन्त कठोर और जनहीन था। वहाँ पर पहुँचकर राठौड़ों ने अपना सुदृढ़ संगठन किया। वे अचानक अपने पहाड़ी स्थानों से निकलकर मुसलमानों पर आक्रमण करते और उनको मार काटकर एवम् लूटकर फिर अपने स्थानों को भाग जाते। उनके लगातार ऐसा करने से औरंगजेब की परेशानियाँ बहुत बढ़ गयीं। अनेक उपाय करने पर भी उन आक्रमणकारी राठौड़ों से वह मुसलमानों की रक्षा न कर सका।

इस प्रकार के आक्रमणों के द्वारा राठौड़ों को प्रोत्साहन मिल रहा था। उन्होंने अनेक बार एकत्रित होकर मुगलों का विनाश करने के लिये प्रतिज्ञायें कीं। इन्हीं दिनों में उनके एक दल नें जालौर पर आक्रमण किया और उनका दूसरा दल सिवाना पर आक्रमण करने के लिये तैयार हुआ। इसका फल यह हुआ कि औरंगजेब को राणा के साथ युद्ध बन्द कर देना पड़ा और उसने अपनी विशाल सेना मारवाड़ भेज दी।

राणा राजसिंह ने अजीत को अपने यहाँ आश्रय देकर औरंगजेब के साथ आग भड़कायी थी। राणा ने अपने लड़के भीम को सीसोदिया सेना का भार सौंपा और उसे राठौड़ों की सहायता के लिये भेज दिया। उन दिनों में इन्द्रभानु और दुर्गादास राठौड़ सेना के साथ गोडवाडा में मौजूद थे। भीमसिंह वहाँ पहुँच कर उनके साथ मिल गया। शाहजादा अकबर और सेनापति तहब्बर खाँ मुगल फौज को लेकर उनके मुकाबले के लिए पहुँचे। नाडोल नगर में दोनों तरफ से भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। इस संग्राम में दोनों तरफ के बहुत से आदमी मारे गये। राजकुमार भीम युद्ध करते हुये मारा गया। उसकी सेना ने राठोड़ों के साथ मिलकर मुगलों से भीषण युद्ध किया। युद्ध की परिस्थिति लगातार भयानक होती गयी। इन्द्रभानु युद्ध करते हुए ऊदावत जैता के साथ संग्राम भूमि में गिरा और उसके प्राणों का अन्त हो गया। सोनग और दुर्गादास अन्त तक युद्ध करते रहे।

इस युद्ध में जिस प्रकार नरसंहार हुआ, उसको देखकर शाहजादा अकवर ववरा उठा। उसकी समझ में न आया कि इस प्रकार का सर्वनाश किसलिये हो रहा है। उसने इस युद्ध में अपने नेत्रों से राजपूतों की वीरता का दर्शन किया। उसने सोचा, 'जो वीर राजपूत इतने शूरवीर हैं, क्या उनके साथ मिलकर इस नरसंहार को रोका नहीं जा सकता?' उसने सेनापति तहव्वर खाँ से वातें की और इस वात को स्वीकार किया कि इस सर्वनाश का कारण हम लोगों के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। शाहजादा अकवर की वात तहव्वर खाँ की समझ में आ गयी। उसने उसकी वातों का समर्थन किया। सेनापति के साथ परामर्श करके शाहजादा अकवर ने अपना दूत दुर्गादास के पास भेजकर कहा–"राज्य में शान्ति कायम होने के लिये यह जरूरी है कि आपके साथ मेरी मुलाकात हो और इस सिलसिले में वातचीत हो।"

शाहजादा अकवर के द्वारा वह संदेश पाकर दुर्गादास ने राठौड़ सरदारों को वुलाया और शाहजादा अकवर का संदेश सुनाकर उसने उनके साथ परामर्श किया। सभी लोगों ने इसके विरुद्ध सम्मतियाँ प्रकट कीं। किसी ने कहा–"यवनों का विश्वास करना किसी प्रकार ठीक नहीं है। उनकी विश्वासघातकता से राजपूतों का सर्वदा नाश हुआ है।" किसी ने कहा–"शाहजादा अकवर का संदेश किसी रहस्य से खाली नहीं है।"

दुर्गादास ने सव को समझाते हुए कहा–"आपकी सम्मतियाँ विल्कुल ठीक हैं। हमें शत्रु का विश्वास न करना चाहिए। लेकिन यदि सच्चाई के साथ यह संदेश आपके पास भेजा गया है तो उससे आपको भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास करके हमको इतना निर्वल नहीं वन जाना चाहिये कि शत्रु हमारा विनाश कर सके। इसलिये यदि आप लोग मंजूर करें तो मेरा कहना यह है कि हम सव लोग सन्देश भेजकर अकवर के शिविर में चलें और उसके साथ परामर्श करें लेकिन इतना सतर्क और सावधान रहें कि शत्रु हमको क्षति न पहुँचा सके।"

सरदारों ने दुर्गादास की वातों को स्वीकार कर लिया। उसके वाद शाहजादा अकवर से भेंट हुई। किसी प्रकार का विवाद नहीं पैदा हुआ और संधि के रूप में सारी वातें तय हो गयीं। जो कुछ निर्णय हुआ, उससे दोनों तरफ के लोगों को सुख और सन्तोष मिला।

अकवर ने राठौड़ों के साथ संधि करके अपने नाम का सिक्का चलाया। मारवाड़ और मुगल राज्य की सीमायें निर्धारित हो गयीं। राठौड़ों ने अकवर को वादशाह माना। मुगल साम्राज्य के सभी प्रधान सामन्तों ने उसकी वादशाहत को स्वीकार किया। उसके वाद इस प्रकार के कार्य आरम्भ हुए, जिनसे राठौड़ों और मुगलों की इस मित्रता को आघात पहुँचने की सम्भावना न थी।

अजमेर में औरंगजेव को इन सव वातों का समाचार मिला। उसके हृदय को वहुत चोट पहुँची। वह एक साथ अधीर हो उठा। मिले हुए समाचारों से उसने विश्वास कर लिया कि शाहजादा अकवर दुर्गादास के साथ मिल गया है। इस विश्वास के कारण उसके हृदय में एक आग पैदा हो गयी। उसकी अशान्ति का कोई ठिकाना न रहा। दुर्गादास और शाहजादा अकवर के मिल जाने की वात चारों तरफ फैल गयी। लोग तरह-तरह की वातें आपस में करने लगे।

अगणित राजपूतों के साथ शाहजादा अकवर अपनी फौज लिए हुए अजमेर की तरफ रवाना हुआ। यह समाचार जव औरंगजेव को मिला तो वह ववरा उठा और सोचने लगा, "क्या अव मुझे राजपूतों को छोड़कर अकवर के साथ युद्ध करना पड़ेगा? क्या यह वात सही नहीं है कि शाहजादा अपनी और राजपूतों की विशाल सेना लेकर मुझे सिंहासन से

उतारने के लिए आ रहा है ?" इस प्रकार की अनेक बातें सोच कर उसने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया और सेनापति तहव्वर खाँ को सम्पूर्ण भार देकर वह अपनी बेगमों के बीच में चला गया। वह सोचने लगा, "सब भाग्य के अधीन है। मनुष्य भाग्य का खिलौना होता है। भाग्य हम सब को डोरे में बाँधकर नचाता है और हमको नाचना पड़ता है।"

औरंगजेब अपने हृदय को शान्ति देने के लिए अनेक प्रकार की बातें सोचने लगा। वह स्वभाव से षड़यन्त्रकारी था और सच्चाई की अपेक्षा वह षड़यन्त्रों पर अधिक विश्वास करता था। भयानक कठिनाइयों के समय उसने षड़यन्त्रों के द्वारा अपने जीवन में सफलता पायी थी। उसने इस समय भी उन्हीं का आश्रय लिया और तहव्वर खाँ के साथ उसने साजिश शुरू की। औरंगजेब ने अत्यन्त गुप्त रूप से उसके पास सन्देश भेजा कि यदि वह शाहजादा अकबर को हमारे सुपुर्द कर सके तो उसे बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा।

तहव्वर खाँ ने उस सन्देश पर विश्वास कर लिया और उसने रात में छिपे तौर से बादशाह से मुलाकात की और उसके बाद उसने राठौड़ को एक पत्र भेजा। उसमें उसने लिखा –"आप लोगों के साथ जो अकबर की सन्धि हुई थी, उसमें मैं गाँठ के रूप में था। जिस बाँध ने जल के दो भाग कर दिये थे, वह बाँध टूट गया है। बाप और बेटा मिलकर एक हो गये हैं। इस दशा में सन्धि की समस्त बातें अब खत्म हो जाती हैं और मैं उम्मीद करता हूँ कि आप लोग लौट कर चले जायेंगे।"

तहव्वर खाँ ने यह पत्र लिखकर तैयार किया। उसने उस पर अपनी मुहर लगायी और दूत के द्वारा उस पत्र को राठौड़ों के पास भेज कर वह औरंगजेब के पास पहुँचने के लिये रवाना हुआ। औरंगजेब का काम पूरा हो चुका था। उसने समझ लिया कि इस प्रकार के पत्र से अकबर के साथ राठौड़ों का जो सम्बन्ध कायम हुआ है, वह खत्म हो जायेगा। उसने लम्बा पुरस्कार देने के वादे पर यह काम सेनापति तहव्वर खाँ से लिया था। सेनापति के पहुँचने के पहले ही औरंगजेब ने सोच डाला: "मैंने अपनी मर्जी के मुताबिक पत्र लिखवाकर तहव्वर खाँ से राठौड़ों के पास भिजवा दिया है। शाहजादे के साथ राठौड़ों की सन्धि का बहुत कुछ कारण यह सेनापति तहव्वर खाँ था इसलिए इसको पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए। पुरस्कार लेने के लिए ही इस समय तहव्वर खाँ औरंगजेब के पास गया था। उसके सामने आते ही औरंगजेब के एक अधिकारी ने अपनी तलवार से उसकी गरदन को काट कर जमीन पर गिरा दिया। उसके बाद ही आधी रात को तहव्वर खाँ का पत्र लेकर दूत राठौड़ों के पास पहुँचा। उसने वह पत्र उनको दे दिया और साथ ही यह भी बताया कि तहव्वर खाँ मारा गया।

उस पत्र और समाचार से राठौड़ आश्चर्यचकित हो उठे। शाहजादा अकबर का डेरा राठौड़ों के डेरों से बहुत दूर न था। इसीलिए वह समाचार शाहजादा के डेरे में भी फैल गया। उस पत्र और समाचार से एक साथ गड़बड़ी पैदा हुई। राठौड़ों ने अकबर से मिलकर कुछ समझने की चेष्टा न की और वे तुरन्त अपने डेरे को उठा कर अकबर के डेरे से बीस मील के फासले पर चले गये।

राठौड़ों और शाहजादे अकबर के डेरे एक दूसरे के करीब थे। लेकिन राठौड़ों ने उस पत्र के सम्बन्ध में कुछ भी जाँच न की। उस पर उन्होंने एक साथ विश्वास कर लिया और तुरन्त वे वहाँ से कुछ दूरी पर चले गये। राठौड़ों के चले जाने के बाद शाहजादे की फौज भी आँधी में उड़ने लगी। शाहजादा अकबर अपनी बेगम के साथ था। उसके आने के पहले ही उसकी फौज अपना डेरा छोड़कर उस स्थान से रवाना हो गयी।

दूसरे दिन सवेरे शाहजादे अकवर ने सेनापति तहव्वर खाँ के मारे जाने और राठौड़ नथा अपनी सेना के वहाँ से भाग जाने का समाचार सुना। उसकी समझ में वह रहस्य न आया। सवसे पहले उसने अपनी फौज को खोजा। उस समय उसके साथ एक हजार सैनिक भी न रह गये थे। अपनी फौज को पाने के वाद उसने राठौड़ सेना का पता लगाया। राजपूत सेना के मिल जाने पर अकवर ने राठौड़ के सन्देह को दूर करने की कोशिश की।

इसके पहले तहव्वर खाँ के पत्र से राठौड़ों को मालूम हुआ था कि अकवर अपने पिता औरंगजेव के साथ मिल गया है। इसलिए अव वे अकवर का विश्वास करने में वहुत सोच-विचार कर रहे थे। चम्पावत, कुम्पावत, पातावत, लाखावत, कर्णोत, डुंगरोत, मेड़तिया, वरसिंहोत, ऊदावत और विदावत आदि सामन्त एक स्थान पर वैठकर परामर्श करने लगे कि अकवर के साथ हमें अव क्या करना चाहिये। उस परामर्श के अन्त में सभी लोगों ने मिलकर निश्चय किया कि अकवर के मिल जाने के सम्वन्ध में जो पत्र मिला है, वह रहस्यपूर्ण मालूम होता है। क्योंकि उसके वाद ही तुरन्त सेनापति तहव्वर खाँ वादशाह औरंगजेव के आदेश से मारा गया है। इससे साफ जाहिर है कि अकवर के इधर मिल जाने से औरंगजेव का षड़यन्त्र चल रहा है। इस दशा में अभी तक अकवर का कोई अपराध नहीं है। जव तक वह हम लोगों से अलग नहीं हो जाता, हमें भी उसे छोड़ नहीं देना चाहिये।

अकवर और उसके साथ के सैनिक सेना के साथ मिलकर फिर एक हो गये। चम्पावत सरदार के छोटे भाई जैता को अकवर के परिवार की रक्षा का भार सौंपा गया। दुर्गादास ने वड़ी सावधानी और गम्भीरता के साथ, भविष्य के उत्तरदायित्व को अपने ऊपर लिया। इन दिनों में जिस प्रकार दुर्गादास साहस, धैर्य और शौर्य से काम ले रहा था, उसकी प्रशंसा भट्ट ग्रन्थों में वहुत अधिक की गयी है। उसी की शक्तियों के द्वारा इन दिनों में मारवाड़ विध्वंस होने से वच सका था। उसी ने अपने प्राणों की वाजी लगा कर शिशु अजीत की रक्षा की थी। उसने महान शक्तिशाली सम्राट औरंगजेव की परवाह न की।

अन्य सभी शत्रुओं की अपेक्षा दुर्गादास के द्वारा औरंगजेव की परेशानियाँ अधिक वढ़ गयी थीं। इन दिनों में वादशाह के दो शत्रु शिवाजी और दुर्गादास अधिक विद्रोही हो रहे थे। औरंगजेव ने एक चित्रकार को वुलाकर उन दोनों के चित्र लाने का आदेश दिया। कुछ समय में चित्रकार ने दोनों चित्र लाकर वादशाह औरंगजेव के सामने रखे। शिवाजी का चित्र एक आसन पर वैठा हुआ था और दुर्गादास अपने भाले की नोक में रोटी पिरोकर उसे आग पर सेंक रहा था। औरंगजेव ने दोनों चित्रों को देखकर कहा – "मैं शिवाजी को तो किसी प्रकार जाल में फंसा सकता हूँ परन्तु यह कुत्ता मेरी जिन्दगी के लिये जहर से भी ज्यादा खतरनाक हो गया है।"

दुर्गादास और शाहजादा अकवर मिलकर अव फिर एक हो गये थे। औरंगजेव पर आक्रमण करने के लिये दुर्गादास तैयारी करने लगा। इन्हीं दिनों में वादशाह औरंगजेव ने उसके विरुद्ध एक नया जाल तैयार किया। उसने सेनापति तहव्वर खाँ को फँसा कर शाहजादा अकवर को दुर्गादास से अलग करने की जो कोशिश की थी, उसकी वह चाल असफल हो गयी थी। अव उसने दुर्गादास को फँसाने के लिये एक नयी कोशिश की। उसने आठ हजार सोने की मोहरें दुर्गादास के पास भेज दीं और उसके वाद भी उसने उसको प्रलोभन दिये। परन्तु दुर्गादास पर इन प्रलोभनों का कोई प्रभाव न पड़ा। दुर्गादास ने पायी हुई मोहरों का जिक्र शहजादे अकवर से किया और उनमें से वहुत सी मोहरें अकवर की जरूरतों में खर्च की गयीं। कुछ रुपया दोनों तरफ के गरीव नौकरों में वाँटा गया।

औरंगजेब की जब यह चाल भी बेकार हो गयी तो उसने अकबर के विरुद्ध एक मुगल सेना रवाना की। उसके आने का समाचार सुनकर वह भयभीत हुआ। उसके मन में अनेक प्रकार की आशंकायें पैदा होने लगीं। उसे चिन्तित देखकर दुर्गादास ने सन्तोष देते हुए उससे कहा– "आपको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जब तक मैं जिन्दा हूँ, बादशाह आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

दुर्गादास ने राजकुमार अजीत की रक्षा का भार सोगनदेव को सौंपा और एक सेना लेकर वह दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। शाहजादा अकबर की रक्षा के लिये दुर्गादास ने जिन विश्वासी राजपूतों को नियुक्त किया था, उनका वर्णन कवि कर्णीदान ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। उन विश्वस्त राजपूतों में चम्पावतों की संख्या अधिक थी। जोधा, मेड़तिया, यदु, चौहान, भाटी, देवड़ा, सोनगरा और माँगलिया आदि बहुत से सरदार दुर्गादास के साथ गये थे। बादशाह ने दुर्गादास की सेना का पीछा किया। उसकी फौज ने राठौड़ सेना को चारों तरफ से घेर लिया। इस दशा में दुर्गादास ने एक हजार सैनिकों को साथ लेकर उत्तर दिशा की तरफ का रास्ता छोड़ दिया। औरंगजेब ने उसका पीछा किया और जब वह जालौर में पहुँचा तो उसे उस बात का ख्याल हुआ कि दुर्गादास जालौर की तरफ नहीं आया। वह गुजरात के दक्षिण की तरफ और चम्बल नदी की बायीं ओर अकबर को लिये हुए नर्मदा के किनारे पर पहुँच गया है।

इस समय औरंगजेब के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह अपने नित्य के धार्मिक कामों को भी भूल गया और मन की उलझन में उसने कुरान को उठाकर फेंक दिया। उसके बाद उसने आजम से कहाः "उदयपुर को फतह करने के लिये मैं वहाँ पर रहूँगा। तुम्हारा सबसे पहला काम यह है कि राठौड़ों पर आक्रमण करके अपने भाई अकबर को गिरफ्तार करो।"

बादशाह औरंगजेब ने अजमेर पहुँचने के दस दिनों के बाद अपनी सेना जोधपुर और अजमेर में छोड़ दी और वह स्वयं आगे की तरफ रवाना हुआ। दुर्गादास ने अजीत की रक्षा का भार बहुत विश्वासी राठौड़ों को सौंपा था। इसीलिये बहुत कोशिश करने के बाद भी औरंगजेब को अजीत का पता न मिल सका। वह कहाँ पर, किस पर्वत की गुफा में छिपा कर रखा गया है, इसका पता तो मारवाड़ के लोगों को भी न था। बहुत से लोग यह जानना चाहते थे कि अजीत कहाँ है और उसकी रक्षा किस प्रकार हो रही है? परन्तु इन बातों का कोई पता न लगा सका।

बादशाह औरंगजेब के इन दिनों के सारे अत्याचार मेवाड़ और मारवाड़ पर राजकुमार अजीत के कारण हो रहे थे। वह किसी प्रकार अजीत को जीवित नही देखना चाहता था। वह जानता था कि मारवाड़ के सरदारों और सामन्तों ने उसके प्राणों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया है इसीलिये उसने मारवाड़ के नौ हजार ग्रामों और नगरों में भयानक अत्याचार किया था और उनको लूटकर तथा आग लगा कर श्मशान बना दिया था। यही अवस्था उसने मेवाड़ की बनाई थी। इसलिये कि वहाँ के राणा ने अजीत को और उसकी रक्षा करने वालों को अपने यहाँ आश्रय दिया था। राणा के इस अपराध के बदले औरंगजेब ने मेवाड़ राज्य के दस हजार ग्रामों और नगरों का भयानक रूप से विनाश किया था। उसके इन अत्याचारों के कारण मारवाड़ के राठौड़ सरदार और सामन्त भयभीत नहीं हुए और उनकी इस निर्भीकता का कारण शूरवीर दुर्गादास था।

मेवाड़ और मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करके इनायत खाँ ने दस हजार मुगल सेना के साथ जोधपुर में प्रवेश किया और वहाँ पर उसने मुकाम किया। जोधपुर इन दिनों में मुगलों के अधिकार में था। इस पराधीनता से जोधपुर को निकालने के लिये मारवाड़ के

राठौड़ों ने प्रतिज्ञायें कीं। कर्णोत, क्षेमकर्ण, जोधावंशी, महेचा, विजयमल, सूजावत, जैतमाल, शिवदान आदि और भी शूरवीरों ने अपनी सेनायें तैयार कीं। इन लोगों को जव मालूम हुआ कि वादशाह औरंगजेव ने अजमेर से आठ मील की दूरी पर आकर विश्राम किया है, तो उस समय राठौड़ सेना ने जोधपुर पहुँच कर उसकी फौज का सामना किया। परन्तु उसके वाद ही वीस हजार मुगल सेना इनायत खाँ की सहायता के लिये वहाँ पहुँच गयी। उस समय जोधपुर में मुगल फौज के साथ राठौड़ों का भयानक युद्ध हुआ और उस संग्राम में दोनों तरफ के वहुत से आदमी मारे गये। जोधपुर का यह संग्राम सम्वत् 1737 सन् 1681 में आषाढ़ वदी की सप्तमी को हुआ था।

इसके वाद दूसरा युद्ध राठौड़ों और मुगलों के वीच फिर हुआ। उस युद्ध में हरनाथ और कर्ण अपने परिवार के कई लोगों के साथ मारे गये। इस युद्ध का अन्त सम्वत 1738 के आरम्भ में हुआ।

इन संग्रामों में सोनग ने जिस प्रकार अपने अद्भुत पराक्रम का परिचय देकर युद्ध किया था, उसको देखकर औरंगजेव आश्चर्य में आ गया। युद्ध के वाद वादशाह ने अपना दूत उसके पास भेजा और उसके साथ सन्धि की वातचीत शुरू की। इसके साथ-साथ उसने उसको सात हजारी की पदवी दी और उसके वंशजों को अजमेर देकर सोनग को वहाँ का अधिकारी वना दिया।

इसके सम्वन्ध में एक सन्धि पत्र लिखा गया। उसमें औरंगजेव ने यह भी लिख दिया कि–"मैं भगवान की कसम खाकर इस सन्धि पत्र पर मुहर करता हूँ और वादा करता हूँ कि इसके विरुद्ध मैं कभी कोई कार्य न करूँगा।"

इस संधि पत्र को लेकर दीवान असद खाँ वहाँ पर आया और राठौड़ों के वीच पहुँचकर उसने शपथ के साथ कहा –"इस सन्धि के विरुद्ध वादशाह कोई भी कार्य न करेगा।"

शाहजादा अकवर के जीवन की परिस्थितियाँ इस समय भयानक हो उठीं। वह अपने साथ के सैनिकों को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। असद खाँ अजमेर में और सोनग मेड़ता नगर में रहने लगा। औरंगजेव की दृष्टि मेड़ता पर गयी। वह सोनग के सम्वन्ध में विचार करने लगा। उसने राठौड़ों को जो अश्वासन दिया था, उसे उसने भुला दिया और एक ब्राह्मण को धन देकर उसने सोनग का अन्त करने के लिये रास्ता वनाया। भट्ट ग्रन्थों में लिखा गया है कि उस ब्राह्मण के द्वारा सोनग की मृत्यु हो गयी। वहाँ पर यह वात स्पष्ट नहीं की गयी कि उसकी मृत्यु का कारण क्या हुआ। परन्तु इस वात का अनुमान किया जाता है कि उस ब्राह्मण के द्वारा सोनग को विष खिलाकर मारा गया।

सोनग की मृत्यु का समाचार दीवान असद खाँ ने औरंगजेव के पास भेजा। उससे वादशाह को वहुत संतोष मिला। उसने उस ब्राह्मण को जो धन दिया था, सफल हो गया।

राठौड़ों के साथ की गयी सन्धि को तोड़कर और सोनग को संसार से विदाकर औरंगजेव दक्षिण की तरफ रवाना हुआ। इन दिनों में मेड़ता निवासी कल्याण के पुत्र मुकुन्दसिंह को वादशाह की तरफ से एक उपाधि दी गयी थी। मुकुन्दसिंह ने उस उपाधि को ठुकराकर मुगलों के साथ युद्ध करने की तैयारी की। उसने मेड़ता के करीव दीवान असद खाँ की सेना से एक युद्ध किया। विट्ठलदास का वेटा अजवसिंह उस युद्ध में मारा गया। यह युद्ध सम्वत् 1738 कार्तिक सुदी 2 को हुआ था। इस युद्ध में शाहजादा आजम असद खाँ के साथ था। इनायत खाँ जोधपुर में रहने लगा और उसकी फौज जोधपुर के आस-पास भयानक अत्याचार करने लगी।

इनायत खाँ के इस अत्याचार को रोकने के लिये चन्द्रावल का अधिकारी कुम्पावत शम्भू बख्शी उदयसिंह और दुर्गादास का बेटे तेजसिंह राठौड़ सेना के साथ रवाना हुआ। फतहसिंह और रामसिंह शाहजादा अकबर के साथ दक्षिण गये थे। वहाँ पर शाहजादा को छोड़कर वे दोनों कुम्पावत की सहायता करने के लिये आ गये। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से राजपूत मुगलों के साथ युद्ध करने के लिये राठौड़ सेना में पहुँच गये। ये लोग मेवाड़ के कुछ नगरों में फैल गये और वहाँ के मुगल अधिकारी कासिमखाँ को उन लोगों ने मार डाला।

इन दिनों में राठौड़ों की शक्तियाँ बहुत क्षीण हो गई थीं और वे अब शक्तिशाली मुगल सेना के साथ युद्ध करने के योग्य न रह गये थे। इसलिये उनको पहाड़ों पर जाकर आश्रय लेना पड़ा। वे निर्बल हो गये थे। इसलिये वे पहाड़ों के ऊपर दुर्गम स्थानों में छिपे रहते थे और मौका पाकर एकाएक शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें भीषण रूप से क्षति पहुँचाते थे और फिर इसके बाद वे सब लोग भाग कर फिर पहाड़ों पर चले जाते थे।

इस प्रकार की परिस्थितियों में राठौड़ों के कई महीने बीत गये। उन्होंने एक बार भयानक रूप से मुगलों की उस सेना पर आक्रमण किया, जो जैतारण नामक स्थान पर पड़ी हुई थी। राठौड़ों के अचानक आक्रमण से मुगल सेना का भयानक विनाश हुआ। उसके बाद राठौड़ फिर भागकर अपने पहाड़ी स्थानों पर चले गये। इस प्रकार के आक्रमण करके सम्वत् 1739 में राठौड़ों ने अपनी शक्तियाँ पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत बना ली। इन्हीं दिनों में चम्पावत विजयसिंह ने सोजत का दुर्ग जीतकर अपने अधिकार मे कर लिया और राजपूतों की एक सेना लेकर रामसिंह ने मुगलों के साथ युद्ध किया। मिर्जा नूर अली नाम का एक मुसलमान चेरई का अधिकारी था। राठौड़ों ने उस पर आक्रमण किया और तीन घन्टे के युद्ध में हजारों मुसलमान जान से मारे गये।

चम्पावत उदयसिंह और मेड़ता के मोहकमसिंह ने जैतारण के युद्ध में एक राठौड़ सेना को भेजा था। उसके लौटने पर वे दोनों गुजरात की तरफ रवाना हुए और खेराल नगर में पहुँच कर गुजरात के अधिकारी सैयद मोहम्मद का उन्हें सामना करना पड़ा। मुस्लिम सेना ने अचानक राठौड़ों को घेर लिया। परन्तु रात हो जाने के कारण युद्ध नहीं हुआ। सवेरा होते ही दोनों तरफ के लोग आगे बढ़े और युद्ध आरम्भ हो गया। भाटी गोकुलदास अपने बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। रामसिंह ने सैयद मोहम्मद की सेना के साथ भयानक युद्ध किया। परन्तु अन्त में वह भी मारा गया। इस युद्ध में राठौड़ों के सैनिक और सामन्त अधिक मारे गये। लेकिन पराजय मुसलमानों की हुई।

इसी वर्ष भादो के महीने में मुगल सेना ने पाली नगर पर आक्रमण किया। वहाँ पर राठौड़ों ने पाँच सौ मुगलों को युद्ध में पराजित किया। उनका सेनापति अफ़जलखाँ मारा गया। इस युद्ध में राठौड़ों की तरफ से जिसने भीषण युद्ध किया था और मुगलों को पराजित किया था, उसका नाम बल्लू था।

इसके बाद उदयसिंह ने सोजत पर आक्रमण किया। जैतारण में राठौड़ों का फिर से प्रभुत्व कायम हुआ। वैसाख के महीने में मोहकमसिंह ने मेड़ता के बचे हुए मुगल सैनिकों पर आक्रमण किया। उस लड़ाई में सैयद अली मारा गया और उसके मरते ही मुगल सेना युद्ध के क्षेत्र से भाग गयी।

लगातार युद्धों, आक्रमणों और नर हत्याओं के साथ सम्वत् 1739 खत्म हुआ। इस वर्ष राठौड़ अधिक संख्या में मारे गये। लेकिन संख्या में बहुत कम होते हुए भी उन्होंने मुगलों के साथ भयानक युद्ध किये और भीषण रूप से शत्रुओं का संहार किया। इस वर्ष

की लड़ाइयों में राजस्थान के सभी राजपूत मिलकर एक हो गये थे। इसका कारण मुगलों का अत्याचार था। इसलिये जो राजपूत एक, दूसरे के साथ कभी न मिल सके थे, वे भी इन दिनों में मिलकर एक हो गये। सम्वत् 1739 के आखिर में जैसलमेर के भाटी लोग भी राठौड़ों के साथ मिल गये थे और उन लोगों ने राठौड़ों की सहायता करने में अपने प्राणों को उत्सर्ग किया।

सम्वत् 1742 के आरम्भ से मुसलमानों की नई तैयारियाँ आरम्भ हुईं। अव वे अपनी नवीन शक्तियों को लेकर युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। आजम और असदखाँ भारत के दक्षिण में चले गये और वहाँ जाकर औरंगजेव से मिले। इनायत खाँ अधिकारी वनकर अजमेर में रहने लगा। उसे औरंगजेव ने आज्ञा दी थी कि राठौड़ों के साथ युद्ध वरावर जारी रहे और वरसात के दिनों में भी युद्ध वन्द न किया जाये।

इनायत खाँ ने यही किया। इन दिनों में मारवाड़ के सभी नगर और ग्राम मुगलों के अधिकार में थे और उनके अत्याचार से मारवाड़ सभी प्रकार मिट चुका था। जो लोग उन गाँवों और नगरों में वाकी रह गये थे, वे मुगलों के नाम से ववरा रहे थे। अपनी इस निर्वलता में मारवाड़ के वे लोग मेरवाड़ा में पहुँचकर आश्रय लेने लगे और थोड़े समय के भीतर सभी राठौड़ अपने परिवारों को लेकर मेरवाड़ा के पहाड़ी स्थानों पर जाकर रहने लगे।

यहाँ आकर उन लोगों ने फिर से अपना संगठन किया और भयानक कठिनाई में होने पर भी उन्होंने मुगलों पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। वे किसी समय अपने स्थानों से निकल कर अचानक उन गाँवों और नगरों पर आक्रमण कर देते, जो मुगलों के अधिकार में थे। उन नगरों की लूट-मार कर वे फिर पहाड़ी और जंगली स्थानों में भाग जाते। मुगलों से वदला लेने के लिये जितने भी अवसर राठौड़ों को मिल सकते थे, उनको उन्होंने वेकार नहीं जाने दिया। राठौड़ों ने पाली, सोजत और गोडवाड आदि कितने ही नगरों और ग्रामों को लूट कर वरवाद कर दिया।

प्राचीन मन्डोर नगर का अधिकार ख्वाजा सालह नाम के एक मुस्लिम सेनापति के हाथ में था। भाटियों ने उस पर आक्रमण किया और उसे वहाँ से निकाल दिया। वैसाख के महीने में वगड़ी नाम के स्थान पर एक भयानक युद्ध हुआ। उसमें रामसिंह और सामन्तसिंह नाम के दो भाटी सरदारों ने हजारों मुसलमानों का अन्त किया और अपने दो सौ सैनिकों के साथ वे दोनों सरदार मारे गये। अनूपसिंह नाम का एक सरदार कुम्पावतों को लेकर लूनी नदी के समीप पहुँच गया और उसने वहाँ के मुसलमानों का संहार करना आरम्भ किया। उसके इस आक्रमण से उस्तराँ और गाँगणी नाम के दो दुर्गों से मुगलों के सैनिक भाग गये। मोहकमसिंह मेड़तिया सेना के साथ अपनी प्राचीन भूमि में आया और वहाँ के रहने वाले मुसलमानों पर उसने आक्रमण किया। मुगल सेनापति मोहम्मद अली ने अपनी फौज लेकर उसका सामना किया। दोनों ओर से मारकाट आरंभ हुई। अन्त में मोहम्मद अली ने राठौड़ों से युद्ध वंद करने की प्रार्थना की। उसके वाद सन्धि हुई।

राठौड़ों ने युद्ध वन्द कर दिया था और मोहम्मद अली के साथ उनकी जो सन्धि हुई थी, उससे वे निश्चिन्त हो गये। उनको असावधान देखकर मोहम्मद अली ने सन्धि की उपेक्षा करके राठौड़ सेनापति पर आक्रमण किया और धोखे से उसे मार डाला। मुसलमानों के इस विश्वासघात का प्रभाव राठौड़ों पर वहुत वुरा पड़ा। उसका वदला लेने के लिये राठौड़ों ने इधर-उधर अपने आक्रमण आरंभ कर दिये। सुजानसिंह राठौड़ सेना को लेकर दक्षिण की तरफ चला गया। जोधपुर में जो मुस्लिम सेना मौजूद थी, उसके साथ राजपूतों के

संघर्ष आरम्भ हुए। सुजानसिंह के मारे जाने पर सेनापति संग्रामसिंह युद्ध के लिये तैयार हुआ। [1]

संग्रामसिंह उन दिनों में मनसब के पद पर था। उसको एक जागीर मिली हुई थी। उसने युद्ध की तैयारी की। शूरवीर राठौर उसके झण्डे के नीचे आकर एकत्रित हुए। संग्रामसिंह ने अपनी सेना लेकर शिवाँणची पर आक्रमण किया और उसके साथ-साथ बालोतरा तथा पंचभद्रा में लूटमार की।

उदयभानु जोधावत सेना के साथ भद्राजून के सम्मुख पहुँचा और उसने वहाँ पर आक्रमण करके शत्रुओं की धन-दौलत लूटकर उनके खाने-पीने की सामग्री अपने अधिकार में कर ली। वहाँ के मुसलमानों ने उनका सामना किया। परन्तु वे लड़ न सके और जोधावत सैनिकों ने कई बार उनको पराजित किया।

पुरदिल खाँ ने सिवाना और नाहर खाँ ने मेवाटी तथा कुकारी पर अधिकार कर लिया था। इसलिये उन पर आक्रमण करने के लिए चम्पावत लोग मुकुलदर नामक स्थान पर इकट्ठा हुये। उसी अवसर पर उन्हें समाचार मिला कि नूरअली, अशानी खानदान की स्त्रियों को अपहरण करके ले गया है। यह सुनते की रतनसिंह राठौड़ सेना को लेकर रवाना हुआ। उसने कुनारी नामक स्थान पर पहुँच कर पुरदिल खाँ पर आक्रमण किया। पुरदिल खाँ के साथ छः सौ लड़ाकू सैनिक थे। उनमें से बहुत से सैनिकों के साथ पुरदिल खाँ मारा गया। उस लड़ाई में राठौड़ों के केवल सौ सैनिक मारे गये। इस पराजय को सुनते ही मिरजा दोनों अपहृत स्त्रियों को लेकर थोडा की तरफ भागा और कोचाल में पहुंचकर उसने मुकाम किया।

इस समाचार को सुनकर आसकर्ण के पुत्र सबलसिंह ने अपनी सेना को तैयार किया और अफीम खाकर मुस्लिम सेनापति के साथ युद्ध करने के लिये वह रवाना हुआ। दोनों तरफ से मारकाट आरम्भ हुई। उस लड़ाई में भाटी सरदार मारा गया।

धीरे-धीरे सम्वत् 1741 भी समाप्त हो गया। इन दिनों में हिन्दू-मुसलमानों के जो संघर्ष बढ़े थे, उनमें किसी प्रकार कमी न आई। इसके पश्चात् सम्वत् 1742 आरम्भ हुआ। इस वर्ष के आरम्भ में लाखावतों और आशावतों ने साँभर पहुँच कर मुसलमानों के साथ युद्ध करने की तैयारियाँ कीं। कुछ दूसरे सामन्तों ने गोडवाड से निकल कर अजमेर के मुसलमानों पर आक्रमण किया और वहाँ से चलकर वे मेड़ता के मैदानों में पहुँच गये और वहाँ के मुसलमानों पर उन्होंने आक्रमण किया। दोनों ओर से भयानक संघर्ष हुआ।

इस लड़ाई में राठौड़ों की पराजय हुई। विजयी मुसलमानों ने राठौड़ सेना को युद्ध क्षेत्र से भगा दिया। संग्रामसिंह असफल होने के बाद फिर युद्ध की तैयारी करने लगा। अपनी बची हुई सेना को लेकर वह रवाना हुआ और जोधपुर के गाँवों में पहुँच कर उसने आग लगवा दी। इसके बाद दूवाड़ा नगर में वह अपनी सेना के साथ पहुँच गया। वहाँ से उसने जालौर पर आक्रमण किया। वहाँ का मुस्लिम अधिकारी घबरा उठा। परन्तु उस पर कोई अत्याचार नहीं किया गया। उसको आत्मसमर्पण करने के लिये विवश किया गया और इसके लिये उसे सम्मानपूर्वक अवसर दिया गया। इस प्रकार सम्वत् 1742 भी समाप्त हो गया।

□

1. संग्रामसिंह जुझारसिंह का बेटा था। वह मुगल बादशाह के यहाँ नौकर था। वह नौकरी छोड़कर राठौड़ों के साथ आकर मिल गया था।

अध्याय–38
अजीत सिंह व औरंगजेब के षड़यंत्र

राजकुमार अजीत अभी तक आवू पर्वत के किसी एक गुप्त स्थान में था। दुर्गादास ने अत्यन्त विश्वासी राठौड़ सरदारों को उसके संरक्षण और पालन-पोषण का भार इन दिनों मे दे रखा था। यों तो मारवाड़ में वहुतों को यह मालूम हो चुका था कि जसवन्तसिंह का अंतिम वेटा अजीत जीवित है। परन्तु वह कहाँ है और उसका संरक्षण किस प्रकार हो रहा है, यह सव ठीक तौर पर किसी को मालूम न था।

सम्वत् 1743 के आरम्भ से ही मारवाड़ में राजकुमार अजीत की चर्चा अधिक होने लगी। चम्पावत, कुम्पावत, ऊदावत, मेडतिया, जोधावत, करमसोत और मारवाड़ राज्य के दूसरे सामन्त तथा सरदार राजकुमार अजीत को देखने के लिये अधीर होने लगे। उन सव ने मिलकर खींची वंशीय मुकुन्द के पास दूत के द्वारा सन्देश भेजा कि – "हम सव एक वार राजकुमार अजीत को देखना चाहते हैं।"

सन्देश को पाकर मुकुन्द ने दूत को उत्तर दिया – "जिसने विश्वास करके राजकुमार को मुझे सौंपा है, वह इस समय दक्षिण में है।"

सरदारों को इस उत्तर से सन्तोष न मिला। उन सव लोगों ने निश्चय किया कि हम लोग एक वार राजकुमार के दर्शन करेंगे। इसी आधार पर मुकुन्द के पास सन्देशों का आना-जाना आरम्भ हुआ। अन्त में सरदारों ने उसके पास सन्देश भेजा– "जव तक हम राजकुमार को देख न लेंगे, हम सवको सन्तोष न मिलेगा और न हम सवको खाना-पीना अच्छा लगेगा।"

सरदारों के इस आग्रह को मुकुन्द टाल न सका। उनकी वात उसे स्वीकार करनी पड़ी। सरदारों और मुकुन्द के वीच इस समय जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार उत्सुक सामन्त और सरदार आवू पहाड़ को रवाना हुये। कोटा राज्य का हाड़ा राजा दुर्जनशाल भी उनके साथ चला। उसके साथ दो हजार सैनिक सवार थे। सम्वत् 1743 के चैत्र के महीने की अन्तिम तिथि को सामन्तों और सरदारों ने राजकुमार अजीत के दर्शन किये। उस समय आवू पर्वत के उस रमणीक स्थान पर, जहाँ पर राजकुमार अजीत का अव तक पालन पोषण हुआ था, उदयसिंह, संग्रामसिंह, विजय पाल, तेजसिंह, मुकुन्दसिंह और नाहरसिंह आदि चम्पावत और रामसिंह, जगतसिंह और सामन्तसिंह आदि कुम्पावत सरदार उपस्थित थे। उनके अतिरिक्त पुरोहित खींची-मुकुन्द, परिहार और जैनश्रवक यती ज्ञान विजय भी वहाँ पर मौजूद थे।

अच्छे मुहूर्त में राजकुमार अजीत सबके सामने लाया गया। उसको देखकर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। सबसे पहले हाड़ा राव ने राजकुमार को अभिवादन किया। उसके पश्चात् सभी सामन्तों ने अभिवादन करते हुये राजकुमार को स्वर्ण, मणि, मुक्ता और घोड़े भेंट में दिये। उस समय जो लोग वहाँ पर उपस्थित थे, इस समय का दृश्य देखकर, वे परम संतोष का अनुभव कर रहे थे।

इनायतखाँ के द्वारा यह समाचार औरंगजेब को मालूम हुआ। मुगल दरबार में उपस्थित होकर सेनापति इनाइत खाँ ने ऊंचे स्वर में बादशाह से कहा– "जहाँपनाह, राजा के अभाव में जिन लोगों ने अब तक आपके साथ युद्ध किया है, वे अपने राजा की उपस्थिति में क्या करेंगे। इसका आप अनुमान लगा सकते हैं। मेरे ख्याल से अब इन लोगों को शिकस्त देने के लिये आपको एक बहुत बड़ी फौज की जरूरत है। इसके बिना आपका काम नहीं चल सकता।"

सन्तोष और सुख को अनुभव करते हुये राठौड़ सरदार राजकुमार अजीत को आइवा ले गये। वहाँ के राजा ने धूमधाम के साथ राजकुमार का स्वागत किया और उसे बहूमूल्य हीरे जवाहरात के साथ उसने बहुत से घोड़े भेंट में दिये। उस सामन्त राजा के दुर्ग में अनेक प्रकार से अजीतसिंह का स्वागत-सत्कार किया गया और उसी स्थान पर टीका दौड़ की रीति पूरी हो गयी।

इसके बाद राजकुमार ने सबके साथ वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में रायपुर, बीड़ा और बारोद नमक नगर मिले। वहाँ के सरदारों ने स्वागत के साथ-साथ राजकुमार को भेंटें दी। इसके बाद राजकुमार आसोप दुर्ग में पहुँचा। वहाँ पर कुम्पावत सरदार ने उसका बहुत सत्कार किया। आसोप से भाटी सरदार की जागीर लवेरा, लवेरा से मेड़ता, फिरारियाँ और फिरारियाँ से करमसोतों और वहाँ से खीमसर में पहुँच कर वहाँ के सरदारों ने स्वागत किया। इस प्रकार राजकुमार अजीत अपने साथियों के साथ अनेक स्थानों में पहुँचा। प्रत्येक स्थान पर उसका स्वागत-सत्कार किया गया और सभी लोगों ने उसके झण्डे के नीचे आने के लिये वचन दिया। वह खीमसर से पाबूराम धाधल के निवास स्थान कालूनगर में पहुंचा। वहाँ पर पाबूराव ने अपनी सेना लेकर स्वागत किया। इसके पश्चात् सम्वत् 1744 के भादो मास में राजकुमार पोकरण पहुँचा। वहाँ पर दक्षिण से लौटे हुये दुर्गादास ने राजकुमार से भेंट की।

बधावना और टीकादौड़ से राजकुमार अजीत के सौभाग्य का परिचय मिला।[1] इस अवसर पर राजकुमार का जिस प्रकार सत्कार किया गया, उससे राठौड़ों के उत्साह की अपरिमित वृद्धि हुई। दुर्जनशाल ने [2] इस अवसर पर अपने जिस उत्साह और सहयोग का परिचय दिया, उससे राठौड़ों को अपना भविष्य उज्ज्वल दिखायी देने लगा।

राजकुमार अजीत को पाकर राठौड़ों में जिस उत्साह की वृद्धि हुई, उसे देखकर बादशाह औरंगजेब का सेनापति इनायतखाँ बहुत भयभीत हुआ। उसने सोच समझ कर एक फौज तैयार की। लेकिन इसी बीच उसकी मृत्यु हो गयी। बादशाह ने मुहम्मदशाह नामक एक मनुष्य को जसवन्तसिंह का पुत्र कहकर उसे मारवाड़ के सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा

1. बधावना और टीका दौड़ की रीति के अनुसार एक मनुष्य मोतियों से भरा हुआ एक वर्तन नवीन राजा अथवा युवराज के मस्तक पर रखकर उसकी परिक्रमा करता है।
2. इस मौके पर दुर्जनशाल चम्पावत सरदार सुजानसिंह की लड़की से विवाह करने के लिये आया था। परन्तु राजकुमार का स्वागत सत्कार देखकर वह अपने उत्साह को दबा न सका। किसी को उससे कुछ कहना न पड़ा। वह स्वयं उत्साहित होकर युद्ध में साथ देने के लिये तैयार हो गया।

की।[1] राजकुमार अजित को पंचहजारी की उपाधि देकर बादशाह ने उसे मोहम्मदशाह की अधीनता में रखना चाहा। किन्तु मोहम्मदशाह औरंगजेब के इस षड़यंत्र का सम्मान प्राप्त न कर सका। वह जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में बीमार हो जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

इन्हीं दिनों में इनायतखाँ के स्थान पर सुजावतखाँ मारवाड़ का सेनापति बनाया गया। राठौड़ लोग अपने राज्य में मुगलों का आधिपत्य किसी प्रकार सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिये वे हाड़ा लोगों के साथ मिल गये और दोनो की मिली हुई सेनाओं ने मारवाड़ को स्वतन्त्र करने के लिये मुगलों पर आक्रमण किया। मालपुरा और पुरमाँडल में जो मुस्लिम सेना थी, उस पर आक्रमण करके राजपूतों ने उसे तितर-बितर कर दिया। पुरमांडल के दुर्ग को घेरने के समय हाड़ा राजा की एक गोले से मृत्यु हो गयी। विजय प्राप्त करने पर राजपूत आठ हजार मोहरें सेना के खर्च के लिये लेकर मारवाड़ की तरफ लौट पड़े। राज्य के कई अधिकारी अजीत की सहायता करने के लिये धन एकत्रित करने में लग गये। इस प्रकार सम्वत् 1744 भी बीत गया।

सम्वत् 1745 के आरम्भ में सुजावतखाँ ने मारवाड़ पर कर लगाने का निश्चय किया। इस कर में जो धन एकत्रित होगा, उसका चौथाई मुआवतखाँ को दिया जाना निश्चित हुआ। इसी मौके पर इनायतखाँ का लड़का जोधपुर छोड़कर दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। जिस समय वह रेनवाल नामक स्थान पर पहुँचा। जोधा हरनाथ ने उस पर आक्रमण किया और उसकी स्त्रियों के साथ-साथ उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति और सामग्री छीन थी। इस समाचार को सुनकर सुजावतखाँ अपनी सेना के साथ अजमेर से रवाना हुआ। चम्पावत मुकुन्दास ने उस पर आक्रमण किया और उसका सब कुछ छीन लिया।

सम्वत् 1747 में सफीखाँ अजमेर का सूबेदार बनाया गया। दुर्गादास ने उस पर आक्रमण करने की तैयारी की। सफीखाँ एक पहाड़ी मैदान में अपनी सेना के साथ पहूँच गया। दुर्गादास ने उस पर जोरदार आक्रमण किया और उसे मारकर अजमेर की तरफ भगा दिया।

इस प्रकार लगातार पराजय के समाचार बादशाह औरंगजेब को मिले। उसने सफीखाँ को लिखा– "अगर तुम दुर्गादास को परास्त कर सके तो मैं अपने यहाँ तुमको सम्मानपूर्ण दर्जा दूंगा और यदि तुम खुद पराजित हुये तो तुमको पदच्युत करके अपमानित किया जायेगा।"

बादशाह का यह तरीका देखकर सफीखाँ बड़ी परेशानी में पड़ गया और भयभीत होकर अपने सम्मान की रक्षा के लिये वह तरह-तरह के उपाय सोचने लगा। अन्त में उसने राजकुमार अजीत के साथ षड़यंत्र रचने की चेष्टा की और राजकुमार को लिखा– "आपका पैतृक राज वापस करने के लिये बादशाह की तरफ से मुझे अधिकार मिला है। इसलिये आप आकर मुझसे मिलें, जिससे मैं बादशाह के हुक्म की पाबन्दी कर सकूँ।"

सफीखाँ का यह पत्र पाकर बीस हजार राठौड़ सेना के साथ राजकुमार अजीत अजमेर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते मे उसे सफीखाँ पर कुछ संदेह पैदा हुआ। इसलिये उसकी असलियत को समझने के वास्ते उसने चम्पावत मुकुन्ददास को रवाना किया और वह

---

1. जसवंतसिंह के कबीलों की रक्षा के लिये जब राठौड़ मुगलसेना से युद्ध करके मारवाड़ चले आये थे, उस समय दिल्ली के एक मुगल अधिकारी ने एक बालक को ले जाकर बादशाह को दिखाया था और कहा था कि यह जसवन्तसिंह का लड़का है। बादशाह ने मोहम्मदशाह नाम रखकर उसको पाला था। सम्वत् 1745 में उसकी मृत्यु हो गई।

स्वयं अपनी सेना के साथ रास्ते में रुका रहा। पर्वत श्रेणी के आगे बढ़कर कुछ दूर जाने पर मुकुन्ददास को शत्रु के षड़यंत्र का पता चल गया। उसने लौटकर राजकुमार अजीत को सभी बातें बतायी। परन्तु राजकुमार उससे भयभीत न हुआ। उसने अपने सरदारों से बातचीत करते हुये कहा – "जब हम लोग इतने समीप आ गये हैं तो अजयदुर्ग पर पहुँचकर हमें सफीखाँ का रंग-ढ़ंग देख लेना चाहिये।"

इस प्रकार निर्णय करके राजकुमार अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा। सफीखाँ को राठौड़ सेना के आने का समाचार मिला। वह घबरा उठा और अपनी कमजोरी को समझ कर प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगा। वह बहुत सी सम्पत्ति और घोड़ों को साथ में लेकर राजकुमार अजीत के पास पहुँचा और उन्हें भेंट में देकर उसने अधीनता स्वीकार की।

सम्वत् 1748 का वर्ष आरम्भ हुआ, इन दिनों में राणा के विरुद्ध मेवाड़ में विद्रोह हुआ। राजकुमार अमरसिंह अपने पिता राणा जयसिंह को सिंहासन से उतार कर उस पर बैठना चाहता था। मेवाड़ राज्य के सभी सामन्तों और सरदारों ने राजकुमार अमर का साथ दिया। यह देखकर राणा जयसिंह भयभीत हो उठा और वह घबरा कर गोडवाड राज्य में भाग गया और धाणेराव में सेना का संगठन करने लगा। अमर नें उस पर आक्रमण करने की तैयारी की। राणा जयसिंह घबरा उठा। अपनी इस विपद में उसने राठौड़ों से सहायता माँगी। राजकुमार अजीत ने राणा की सहायता करने का निश्चय किया। उसने तुरन्त मेड़तिया लोगों को राणा की सहायता के लिये भेजा और उसके बाद उसने दुर्गादास और भगवानदास को रवाना किया। दुर्गादास ने जोधावंशी रिडमल्ल और मारवाड़ के आठ सामन्तों को लेकर राणा की सहायता के लिये यात्रा की। परन्तु उसके पहुँचने के पहले ही चूड़ावत, शक्तावत, झालावत और चौहानों ने पिता-पुत्र के संघर्ष को दूर कर दिया था।

इन दिनों मे राठौड़ों का साहस और बल जिस प्रकार बढ़ रहा था, वह औरंगजेब से छिपा न था। इन दिनों में औरंगजेब की चिन्ता का और भी कारण था। शाहजादा अकबर की लड़की दुर्गादास के आश्रय में थी। वह अब बड़ी हो गई थी। उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सोचकर औरंगजेब शंकायें करने लगा। उसने सोचा कि ऐसे मौके पर राठौड़ों के साथ सुलह कर लेना ही बुद्धिमानी है। इसके लिए उसने नारायणदास कुलबी को मध्यस्थ बनाया। सुलह की बातचीत आरम्भ हो गयी। सम्वत् 1749 भी बीत गया।

संधि की इस बातचीत के दिनों में बादशाह की तरफ से विश्वासघात किया गया। संधि की बातों का कदाचित यही अभिप्राय था कि राठौड़ों को धोखे में रखा जाये। सम्वत् 1750 में जोधपुर, जालौर और सिवाना के मुगल अधिकारियों ने अपनी-अपनी सेनायें एकत्रित की और एक साथ राजकुमार अजीत पर आक्रमण किया। राठौड़ इस आक्रमण के लिए तैयार न थे। इस दशा में राजकुमार अजीत को पहाड़ी स्थानों का आश्रय लेना पड़ा। वह बल्लभवंशी अक्षों को लेकर युद्ध के लिये तैयार हुआ और उसने मुगलों का सामना किया। परन्तु उसे लगातार पराजित होना पड़ा। इसी मौके पर चम्पावत मुकुन्ददास ने मुगलों पर आक्रमण किया। मोकलसर नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। इस युद्ध में मुकुन्ददास ने मुस्लिम सेना को पराजित करके चाँक के अधिकारी, उसकी सेना और उसके सामन्तों को कैद कर लिया।

इस पराजय के बाद मुगलों की शक्तियाँ लगातार कमजोर पड़ने लगीं। सम्वत् 1751 में मुगलों की परेशानियाँ बहुत बढ़ गयी और उनको विवश होकर राठौड़ों के साथ युद्ध बन्द कर देना पड़ा। मुगल राज्य के कई एक जनपदों ने राठौड़ों की अधीनता मंजूर

की। किसी ने चौथ और किसी ने कर देना आरम्भ किया। इस वर्ष कासिमखाँ ने मुगल राज्य की यह दशा देखकर राठौरों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की।

राजकुमार अजीत उन दिनों में विजयपुर में था। दुर्गादास का लड़का अपनी सेना लेकर मुगलों के सामने पहुँचा। युद्ध आरम्भ हुआ। संग्राम में सफीखाँ को पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में हारकर मुगल और भी निर्बल पड़ गये।

शाहजादा अकबर की लड़की अब भी दुर्गादास के आश्रय में थी। बादशाह औरंगजेब उसको राठौड़ों के आश्रय से लेने का कोई प्रबन्ध न कर सका। उसने उसके सम्बन्ध में जितने भी उपाय सोचे, सभी बेकार हो गये। राठौड़ों के साथ संधि करने का अभिप्राय कोई दूसरा न था। परन्तु उसका भी वह कुछ लाभ उठा न सका। इन दिनों में उसे राठौड़ों की शत्रुता खल रही थी और उनके साथ मित्रता का एक नाटक खेल कर वह कुछ लाभ न उठा पाता था। औरंगजेब ने कभी किसी का विश्वास करना नहीं सीखा था। वह नये षड़यंत्रों के द्वारा संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता था।

औरंगजेब ने जोधपुर के अधिकारी सुजावतखाँ को लिखा– "जैसे भी हो सके, जिस किसी कीमत पर मुमकिन हो, मेरे सम्मान की रक्षा करो।" औरंगजेब के इन शब्दों का अर्थ शाहजादा अकबर की बेटी के सम्बन्ध में था। वह उसके प्रश्न को लेकर बहुत सशंकित हो रहा था और उसे राठौड़ों के अधिकार से लेना चाहता था। परन्तु इसके लिए अभी तक उसको कोई मार्ग न मिला था।

इसी वर्ष मेवाड़ के राणा ने अपने छोटे भाई राजसिंह की बेटी के साथ राजकुमार अजीत का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया और इसके लिए मुक्ता जड़े हुए नारियल, बहुमूल्य हीरा-मोती और दो सजे हुये हाथी तथा दस घोड़े राजकुमार अजीत के पास भेजे गये।

जेठ के महीने में सीसोदिया राजकुमारी के साथ अजीत का विवाह संस्कार हुआ। इसके दूसरे महीने आषाढ़ में राजकुमार अजीत ने अपना दूसरा विवाह देवलिया में किया।[1]

बादशाह औरंगजेब की चिन्तायें दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थीं। वह सब कुछ सहन करना चाहता था, परन्तु वह नहीं चाहता था कि शाहजादा अकबर की बेटी के गौरव को किसी प्रकार आघात पहुँचे और उसके द्वारा उसका असम्मान हो। लेकिन इसके लिये उसके पास कोई उपाय न था। कभी-कभी चिन्तित होकर वह राजकुमार अजीत को पत्र भेजता। परन्तु उनका कोई लाभ न मिलने पर सम्वत् 1753 में उसने दुर्गादास के साथ पत्र व्यवहार किया। उसके फलस्वरूप अकबर की लड़की बादशाह को दे दी गयी[2] और उसी अवसर पर राजकुमार अजीत अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। बादशाह ने दुर्गादास को पंचहजारी पद पर प्रतिष्ठित करने का इरादा किया। परन्तु दुर्गादास ने उसे नामंजूर करके कहा – "इसके बदले में आप मुझे जालौर, सिकानची, सांचोर और थिराद दे सकते हैं।" दुर्गादास ने शाहजादा अकबर की लड़की को जिस सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा था। उसे जानकर औरंगजेब ने दुर्गादास की बहुत प्रशंसा की।

1. मेवाड़-राज्य में प्रतापगढ़ देवलिया नाम की एक छोटी सी रियासत है। इसे मल्ल ने बसाया था। इसकी उत्पत्ति और प्रतिष्ठा का उल्लेख मेवाड़-राज्य के इतिहास में किया जाता है।
2. अकबर की बेटी के लौटाये जाने के सम्बन्ध में दो प्रकार के उल्लेख पाये जाते हैं। कुछ लेखकों का कहना है कि अजीत की इच्छा के विरुद्ध दुर्गादास ने उस लड़की को औरंगजेब को लौटाया था। इससे अजीत दुर्गादास से नाराज हुआ था। इस अवसर पर अजीत राजसिंहासन पर नहीं था। — अनुवादक

सम्वत् 1757 के पौष महीने में अजीत अपने पिता के राजसिंहासन पर वैठा। जोधपुर में जाकर वहाँ के पाँचों द्वारों के सामने एक भैंसे की वलि दी। इन्हीं दिनों में सुजावतखाँ की मृत्यु हुई।

सम्वत् 1759 में आजमशाह ने फिर जोधपुर में आक्रमण किया। अजीतसिंह जालौर में जाकर रहने लगा। उसके कुछ सरदार शत्रुओं के साथ चले गये। इन दिनों में मुसलमानों के अत्याचार फिर से वढ़े और मथुरा, प्रयाग तथा ओकामंडल में गोहत्यायें होने लगीं। इस समय हिन्दुओं की शक्तियाँ क्षीण पड़ रही थीं और मुसलमानों के अत्याचार वढ़ते जा रहे थे। इसी वर्ष माघ में महीने में अजीत की वड़ी रानी से एक लड़का पैदा हुआ। उसका नाम अभयसिंह रखा गया।

यूसुफ खाँ इन दिनों में जोधपुर का प्रधान अधिकारी था। उसने जोधपुर पहुँचकर वादशाह की आज्ञानुसार मेड़ता प्रदेश के शासन अधिकार अजीत के सुपुर्द कर दिया। मेड़ता के सरदार कुशलसिंह और धाँधल गोविन्ददास को वहाँ का प्रवन्ध करने के लिये आदेश मिला। इन्द्रसिंह के पुत्र मुहकमसिंह ने शिशु अवस्था में अजीत की रक्षा की थी। वह मेड़ता का अधिकार अपने लिये चाहता था। लेकिन अजीत के ऐसा न करने से उसको वहुत असन्तोष हुआ। इसलिये उसने वादशाह को एक पत्र लिखा– "यदि आप मुझे मारवाड़ का सेनापति वना दें तो मैं वहाँ के हिन्दूओं और मुसलमानों, दोनों के लिये सन्तोषजनक शासन कर सकता हूँ।"

सम्वत् 1761 में मुगलों के सौभाग्य का सूर्य पश्चिम में पहुँच कर अपने अस्त होने की तैयारी करने लगा। औरंगजेव ने मुगल राज्य के सिंहासन पर वैठकर हिन्दुओं के साथ जितने अमानुषिक अत्याचार किये थे, उनके अन्त होने का समय लोगों को साफ-साफ दिखायी देने लगा। मुरशिदकुली खाँ इधर कुछ दिनों से मारवाड़ का शासक था। इस वर्ष उसका पद जाफर खाँ को दिया गया। जाफर खाँ जोधपुर के राठौर सामन्त के पास आया। मोहकमसिंह ने अजीत से अप्रसन्न होकर एक पत्र वादशाह के पास भेजा। वह पत्र अजीत को मिल गया।

मोहकमसिंह को जव यह मालूम हुआ तो वह अत्यन्त भयभीत हो उठा और अपने स्थान से भागकर वह मुगल वादशाह की सेना में चला गया। अजीत को यह अच्छा न लगा।उसने राजद्रोही मोहकमसिंह को दण्ड देने का निश्चय किया। उसने युद्ध की तैयारी की और दूनाडा नामक स्थान पर पहुँचकर उसने वादशाह की फौज के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में मुगल सेना की पराजय हुई, मोहकमसिंह मारा गया। यह युद्ध सम्वत् 1762 में हुआ था।

सम्वत् 1763 में इव्राहीम खाँ जो लाहौर में वादशाह का सूवेदार था, मारवाड़ होकर गुजरात गया। वहाँ पर उसे शहजादा आजम से शासन का अधिकार लेना था। चैत मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया को राठौड़ों ने समाचार सुना कि वादशाह औरंगजेव की मृत्यु हो गयी। इस समाचार को सुनकर अजीत घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के साथ जोधपुर की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँचकर राजधानी के तोरण द्वार पर मारवाड़ की पुरानी रीति के अनुसार उसने भैंसों का वलिदान किया।

जोधपुर में अजीतसिंह के पहुँचने पर वहाँ की मुगल सेना घवरा उठी। उसका अधिकारी मुगल भयभीत होकर जोधपुर से भाग गया। अजीतसिंह ने अपनी सेना के साथ जोधपुर की राजधानी में प्रवेश किया। राठौड़ सेना ने मुगल सूवेदार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर

अधिकार कर लिया। इसके साथ-साथ मुसलमानों पर आक्रमण किया और अव तक हिन्दू जाति के साथ जो अत्याचार किये गये थे, उनका पूरी तौर पर वदला लिया।

इस समय जोधपुर के मुसलमानों पर भयानक संकट था कि वे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते थे। इसलिये जो भाग सकते थे, वे अपना सव कुछ छोड़कर भाग गये और जो न भाग सके, उन्होंने अपने प्राणों की रक्षा के लिये हिन्दू वेष धारण किया। वहुतों ने अपनी दाढ़ी मुंड़वा ली। इतना सव होने पर भी वहाँ के वहुत से मुसलमान भयानक रूप से मारे गये। इसके वाद वहाँ पर अजीतसिंह का राजतिलक हुआ।

औरंगजेव की मृत्यु हो जाने पर उसके सिंहासन को प्राप्त करने के लिए पुत्रों में प्रलोभन पैदा हुआ। दक्षिण से आज़म, उत्तर से मोअज्जम - दोनों अपनी-अपनी फौजें लेकर रवाना हुये। आगरा में उन दोनों का भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में औरंगजेव का वड़ा लड़का शाहआलम विजयी होकर मुगल सिंहासन पर बैठा और वहादुरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिंहासन पर वैठने के वाद उसने सुना कि अजीतसिंह ने मारवाड़ में मुसलमानों के साथ वड़ा अत्याचार किया और उसने मुसलमानों का सव कुछ छीन लिया।

सम्वत् 1764 में वरसात के वीत जाने पर नवीन मुगल वादशाह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर अजमेर की तरफ रवाना हुआ और अजमेर पहुँचकर उसने वीलाड़ा नामक स्थान पर मुकाम किया। अजीतसिंह ने वादशाही फौज का मुकावला करने के लिये तैयारी की। औरंगजेव संघर्ष के दिनों में धूर्त व्यवहारों का अधिक आश्रय लेता था। नवीन मुगल वादशाह ने इस समय अपने पिता का अनुसरण किया। जव उसने सुना कि अजीतसिंह युद्ध की तैयारी कर रहा है तो उसने अपना दूत भेजकर सन्धि का प्रस्ताव किया।

अजीतसिंह ने सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके वाद वादशाह ने मारवाड़ की राज सनद देने के लिये फिर उस दूत को अजीतसिंह के पास भेजा। अजीतसिंह ने उसको स्वीकार करने के पहले भेंट करने की अभिलाषा प्रकट की। फागुन मास के पहले दिन अजीत अपनी सेना के साथ रवाना होकर वीसलपुर पहुँच गया। वादशाह के प्रधान मन्त्री खानखाना के वड़े वेटे सुजावत खाँ ने कई एक अमीर, भदावर के राजा तथा वूँदी के राव वुधसिंह के साथ वादशाह की ओर से पीपाड़ नामक स्थान पर अजीतसिंह का स्वागत-सत्कार किया।

पीपाड़ नामक स्थान पर एक वैठक हुई। उसमें सन्धि के सम्वन्ध में परामर्श होता रहा। उसके वाद आनन्दपुर नामक स्थान में मुगल वादशाह के साथ अजीतसिंह की भेंट हुई। वादशाह ने अजीत सिंह को 'तेजवहादुर' की उपाधि दी। वह एक तरफ अजीत को प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहा था और दूसरी तरफ उसकी दूसरी कोशिशें चल रही थीं। इसी अवसर पर वादशाह ने महराव खाँ को मुगल सेना के साथ जोधपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया था। विश्वासघाती मोहकम उसके साथ गया था। जिस समय वादशाह ने अजीतसिंह को अपने आदर-सत्कार में उलझा रखा था, महराव खाँ ने वड़ी आसानी के साथ जोधपुर में अधिकार कर लिया।

जिस समय अजीतसिंह को यह मालूम हुआ कि मुगल सेना को लेकर महरावखाँ ने जोधपुर को अपने अधिकार में कर लिया है तो उसे वड़ा क्रोध आया। उस समय वादशाह ने फिर वड़ी चालाकी से काम लिया। अजीतसिंह को आवेश में देखकर उसने अपने मन के भावों को छिपाकर रखा और तरह-तरह से वह अजीतसिंह की खुशामद करता रहा। वादशाह शाहआलम ने उसको दक्षिण जाने और कामवख्श की सहायता करने के लिये विवश किया। आमेर का राजा जयसिंह इस समय वादशाह के साथ था। उसने वादशाह

का व्यवहार देखा। उसमें अजीत को फँसाने के लिये एक जाल के सिवा और कुछ न था। इसलिये उसको बड़ा असन्तोष हुआ।

इसी मौके पर बादशाह शाहआलम ने छिपे तौर पर अपनी एक फौज आमेर राज्य में भेज दी। उसने वहाँ जाकर उस राज्य पर अधिकार कर लिया और जयसिंह के छोटे भाई विजयसिंह को वहाँ का अधिकारी बना दिया। उस समय जयसिंह और अजीतसिंह को लेकर बादशाह दक्षिण चला गया था। उस यात्रा में औरंगजेब के बेटे बादशाह शाहआलम ने राजपूत सेनाओं का लाभ उठाया। जयसिंह और अजीतसिंह दोनों अब बादशाह की चालों को साफ-साफ समझने लगे। नर्मदा नदी को पार करने के बाद दोनों राजपूत राजा अपनी सेनाओं के साथ बिना बादशाह से कुछ कहे सुने राजस्थान की तरफ वापस लौट पड़े। रवाना होने के पहले उन दोनों राजाओं ने अपना एक कार्यक्रम बना लिया।

अजीतसिंह और जयसिंह की सेनायें सबसे पहले उदयपुर पहुँची। राणा अमरसिंह ने राजधानी से निकल कर उनका स्वागत किया और दोनों राजाओं को वह अपनी राजधानी में ले गया। उसके बाद अजीतसिंह और जयसिंह मारवाड़ में पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचने पर चम्पावत सरदार अदयभानु के पुत्र संग्रामसिंह ने उनका स्वागत किया और उसने मस्तक से पगड़ी उतार कर दोनों राजाओं के आगे बिछा दी। उस पर पैर रखते हुए दोनों राजा आगे बढ़े और सामन्त उदयभानु के यहाँ पहुँच गये।

सम्वत 1765 के सावन महीने में मुगलों की परिस्थितियाँ फिर बिगड़ने लगी। महराबखाँ को जब मालूम हुआ कि अजीतसिंह अपनी सेना के साथ लौटकर मारवाड़ आ गया है तो वह बहुत भयभीत हुआ। इन्हीं दिनों में तीस हजार राठौड़ों की सेना ने जोधपुर पहुँचकर उसकी राजधानी को घेर लिया। महराबखाँ ने भयभीत होकर आत्म समर्पण कर दिया। आसकरन के पुत्र ने उस समय उसके प्राणों की रक्षा की। उसके बाद अजीतसिंह वहाँ से लौट कर अपनी राजधानी में आ गया।

राजा जयसिंह अपने राज्य से निकल कर इन दिनों में सूरसागर के समीप रहने के लिये चला गया था। बरसात के बीत जाने पर कछवाहों के श्रेष्ठ सामन्त अजयमल ने जयसिंह को फिर सिंहासन पर बिठाने का इरादा किया। जयसिंह ने अजीतसिंह के साथ सेना लेकर मेड़ता की तरफ यात्रा की। उन दोनों राजाओं की सेनाओं के मेड़ता पहुँचने पर दिल्ली और आगरा में घबराहट पैदा हुई।

अजीतसिंह और जयसिंह की सेनायें मेड़ता से चलकर अजमेर पहुँच गयी। वहाँ का मुगल शासक घबरा उठा और वह ख्वाजा कुतुब मोहम्मदी नाम के एक फकीर की मस्जिद में चला गया और वहाँ से उसने अजीतसिंह के पास सन्देश भेजकर अपने प्राणों की रक्षा के लिये प्रार्थना की। उसने दण्ड स्वरूप अजीतसिंह को बहुत सी सम्पत्ति दी। इसके बाद अजीतसिंह ने आमेर राज्य पर आक्रमण किया। उस राज्य के सभी सामन्त राजा जयसिंह से जाकर मिल गये। आमेर की मुगल सेना के अधिकारी सैयद हुसैन ने बारह हजार मुगलों को लेकर साँभर झील के किनारे अजीतसिंह के साथ युद्ध किया।

इस युद्ध में छः हजार मुगलों के साथ सैयद हुसैन मारा गया। उसकी बाकी सेना युद्ध क्षेत्र से भाग गयी। इस पराजय की खबर पाते ही मुसलमान लोग साँभर छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। अजीतसिंह ने माघ के महीने में अपनी एक सेना साँभर में रखी और आमेर का राज्य उसने जयसिंह को दे दिया। बीकानेर पर आक्रमण करने का अजीतसिंह का पहले से ही इरादा था। उसने रघुनाथ भण्डारी को दीवान की उपाधि देकर साँभर का अधिकारी बना दिया और वह अपनी सेना लेकर बीकानेर की तरफ रवाना हुआ।

सम्वत् 1766 के भादो महीने में बादशाह शाहआलम ने कामबख्श को मरवा डाला। वह कामबख्श से हमेशा जला करता था।[1] राजा जयसिंह ने मुगल बादशाह के साथ सन्धि करने के लिये फिर से प्रस्ताव किया। मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने नागौर पर अपनी सेना भेजकर अधिकार कर लिया। नागौर के राजा इन्द्रसिंह ने अजीत के सामने आत्म-समर्पण किया। इन्द्रसिंह जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह का लड़का था और विश्वासघाती मोहकमसिंह का पिता था। वह अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर मुगलों से मिल गया था। अजीतसिंह ने उसके आत्म-समर्पण करने पर नागौर के स्थान पर लाडनूं का अधिकार उसे दे दिया।

इन्द्रसिंह को इससे सन्तोष न हुआ। वह नागौर का राज्य लेना चाहता था। इसलिये उसने मुगल बादशाह के पास जाकर कहा कि अजीतसिंह ने नागौर पर अधिकार कर लिया है। मुगल बादशाह इस खबर को सुनकर अजीतसिंह से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसी समय अजीतसिंह को मालूम हुआ कि इन्द्रसिंह ने मुगल बादशाह को भड़काने की चेष्टा की है। लेकिन इस समय किसी तरफ से कोई असंगत बात पैदा न हुई और दोनों ने मिलकर उस झगड़े को निपटाने का इरादा किया।

मुगल बादशाह के साथ झगड़े का निपटारा करने के लिये राजपूत डीडवाना नगर के करीब कोलिया नामक स्थान पर पहुँच गये। बादशाह दिल्ली से अजमेर चला आया। अजीतसिंह के साथ राजस्थान के और भी राजा लोग थे, जिनको धमकी मिली थी और जो बादशाह के साथ संघर्ष का निर्णय करने के लिये वहाँ पर आये थे। मुगल बादशाह ने उनके साथ मित्रता का प्रदर्शन आरंभ किया। उसने राजाओं के पास जो वहाँ पर एकत्रित हुये थे, अपने हाथ की सनदें भेजी। उनको लेकर नाहर खाँ राजाओं के पास गया।

आषाढ़ मास के पहले दिन मारवाड़ और आमेर के राजाओं ने उन सनदों को प्राप्त किया। इसके बाद वे बादशाह से भेंट करने के लिये अजमेर गये। बादशाह ने आदरपूर्वक उनसे भेंट की। वहाँ से दोनों राजपूत राजा शासन की सनदें लेकर वापस लौटे। अजीतसिंह सम्वत् 1767 के श्रावण के महीने में जोधपुर की राजधानी में आकर अपने पिता के सिंहासन पर पुनः बैठा। इस वर्ष उसने गौड़ राजकुमारी के साथ विवाह किया। अर्जुनसिंह ने दिल्ली के दरबार में अमरसिंह को जान से मार डाला था। उससे राठौड़ लोगों के साथ उसकी शत्रुता बढ़ गयी थी। अजीतसिंह ने इस शत्रुता को मिटाकर उसके साथ मैत्री कायम की। इसके पश्चात् वह कुरुक्षेत्र को चला गया, जहाँ पर कौरवों और पाण्डवों का युद्ध हुआ था। इस तरह से 1767 का सम्वत् समाप्त हो गया।

मारवाड़ के राठौड़ों को बहुत समय तक जीवन को संघर्ष में बिताना पड़ा। उनको विभिन्न प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा। परन्तु दुर्भाग्य के उन दिनों में भी उन लोगों ने अपने जिस उज्ज्वल चरित्र को कायम रखा और विपदाओं की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद भी उन्होंने अपनी जिस राजभक्ति का परिचय दिया उसकी उपमा संसार के इतिहास में खोजने पर भी आसानी से न मिलेगी।

मारवाड़ के भट्ट ग्रन्थों से जाहिर होता है कि संघर्ष के इस दीर्घकाल में वहाँ से एक सामन्त ने भी स्वाभाविक मृत्यु नहीं पायी। इसका साफ अर्थ यह है कि मारवाड़ में तीस वर्ष तक लगातार युद्ध का जो संघर्ष जारी रहा, उस दीर्घकाल में मारवाड़ के सभी सामन्त

1. कामबख्श औरंगजेब का लड़का [illegible] में एक राजपूत स्त्री से पैदा हुआ था। औरंगजेब उसे बहुत प्रेम करता था।

और सरदार - जिन्होंने परलोक गमन किया - वे केवल युद्ध में मारे गये। उनमें से एक भी बीमार होकर और चारपाई पर लेट कर नहीं मरा।

मारवाड़ के राठौड़ राजपूतों के चरित्र की कई श्रेष्ठ बातें हमारे सामने आती हैं। बादशाह की तरफ से अपरिमित सम्पत्ति देकर देश और धर्म के विरुद्ध उनको आकृष्ट किया गया परन्तु सम्पत्ति और राज्य के प्रलोभन में एक भी राठौड़ ने देशद्रोह और जातिद्रोह न किया। उनको भयानक विपदाओं में रहकर मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार था, परन्तु सम्पत्ति और सम्मान के नाम पर उनको जातिद्रोह करना मन्जूर न था।

मारवाड़ के राठौड़ दुर्गादास की तरह स्वाभिमानी और चरित्रवान व्यक्ति संसार की अन्य जातियों में बहुत कम मिलेंगे। उसने मृत्यु का सामना करके जसवन्तसिंह के पुत्र शिशु अजीत के प्राणों की रक्षा की। सम्पत्ति और राजा के बड़े से बड़े प्रलोभन भी कर्त्तव्य परायणता से उसको डिगा न सके थे। राजस्थान के राजपूतों ने अपने जिस कर्त्तव्य का पालन किया है, उसकी तुलना में अन्य जातियों के इतिहास से उदाहरण निकाल कर उपस्थित करना एक व्यर्थ का प्रयास मालूम होता है। बादशाह औरंगजेब के साथ राठौड़ों की जो शत्रुता चल रही थी, उसको यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नहीं है। औरंगजेब का लड़का शाहजादा अकबर विद्रोही हो गया। उस समय षड़यन्त्रकारी और निर्दय पिता से बचने की उसे आशा न रह गयी। उसे चारों तरफ अन्धकार दिखाई देने लगा। उसका कोई अपना न रहा, जो उस संकट के समय उसकी सहायता करता और औरंगजेब से उसके प्राणों की रक्षा हो सकती। उस समय शाहजादा अकबर ने मुगलों के परम शत्रु राठौड़ों का आश्रय लिया और उन राठौड़ों ने भयानक संघर्षों का सामना करके शाहजादा अकबर के प्राणों की रक्षा की।

शाहजादा अकबर के सिलसिले में उसके परिवार की रक्षा का उत्तरदायित्व राठौड़ों को सौंपा गया। बहुत समय तक अकबर का परिवार राठौड़ों के आश्रय में रहा। उन दिनों में उसके परिवार को जो सम्मान प्राप्त हुआ, उसको लिखकर प्रकट करना सम्भव नहीं है। अकबर की एक लड़की थी। उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया था। उसके सम्बन्ध में बादशाह औरंगजेब को जो चिन्तायें हुई थीं और उस नवयुवती शाहजादी को राठौड़ों के आश्रय से निकालने के लिये औरंगजेब ने जो प्रयास किये थे, उनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। वह शाहजादी राठौड़ों के आश्रय में कितनी सुरक्षित रही थी और किस मान-मर्यादा के साथ उसके उन दिनों का जीवन व्यतीत हुआ था। उस पर यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। उस संरक्षण और श्रेष्ठ सम्मान का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उस शाहजादी को राठौड़ों के अधिकार से निकालने के लिये जब बादशाह औरंगजेब के सारे प्रयत्न असफल हो गये तो उसने राठौड़ों के साथ मित्रता की। उस समय राठौड़ों ने उस शाहजादी को लाकर बादशाह औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया। शाहजादी को पाकर और उसके मुख से अजीतसिंह, दुर्गादास और दूसरे राठौड़ों की प्रशंसा सुनकर बादशाह औरंगजेब ने दुर्गादास की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसने राठौड़ों के निर्मल चरित्र को बार-बार स्वीकार किया। वास्तव में चरित्र उसी का श्रेष्ठ है जिसकी श्रेष्ठता और निर्मलता उसके शत्रुओं को भी स्वीकार करनी पड़ती है। दुर्गादास का जीवन राजपूतों के चरित्र का एक उदाहरण है। दुर्गादास लूनी नदी के किनारे टूनाड़ा का एक सामन्त था। उसकी प्रस्तर मूर्ति आज भी उसके श्रेष्ठ गौरव का परिचय देती है।

अध्याय-39
महाराजा अजीतसिंह अन्तिम दिन

सम्वत् 1768 में बादशाह बहादुरशाह ने अजीतसिंह को कैलाश पर्वत के विद्रोही सामन्तों का दमन करने और नाह प्रदेश पर अधिकार करने के लिये भेजा। अजीतसिंह अपनी शक्तिशाली सेना लेकर बादशाह की तरफ से रवाना हुआ और नाहन प्रदेश में जाकर उसने विद्रोहियों को पराजित किया। वहाँ से विजयी होकर लौटने पर अपनी सेना के साथ अजीतसिंह ने गंगा में स्नान किया और दान-पुण्य करके बसन्त ऋतु में वह अपनी राजधानी लौट आया।

सम्वत् 1769 में मुगल बादशाह की मृत्यु हो गयी। उसके लड़कों में सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करने के लिये आपस में संघर्ष हुआ। उस लड़ाई में अजीमुस्शान मारा गया। और मुईजुद्दीन सिंहासन पर बैठा। उस समय मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने बहुमूल्य उपहार के साथ भण्डारी खीमसी को नये बादशाह के पास भेजा। उस उपहार को पाकर नवीन मुगल बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अजीतसिंह को गुजरात का शासक बना दिया।

सम्वत् 1769 के माघ महीने में अजीतसिंह ने अहमदाबाद पर अधिकार करने के लिये अपनी सेना तैयार की। परन्तु इन दिनों में मुगल सिंहासन का फिर झगड़ा पैदा हुआ। दोनों सैयद भाइयों ने बादशाह मुईजुदीन को मार कर वहाँ के राजसिंहासन पर फर्रूखसियर को बिठाया।

उन्हीं दिनों में जुलफिकार खाँ भी मारा गया। इसके फलस्वरूप मुगलों की शक्ति बहुत कमजोर पड़ गयी। दोनों सैयद भाइयों ने मुगल दरबार में अपना आधिपत्य कायम किया। बादशाह फर्रूखसियर ने सैयद बन्धुओं के परामर्श से अजीतसिंह के पास सन्देश भेजा कि आप अपने बेटे अभयसिंह को राठौड़ सेना के साथ शीघ्र दिल्ली भेजिये। अभयसिंह की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की थी। इसी मौके पर अजीतसिंह को मालूम हुआ कि विश्वासघाती नागौर का राजा मोहकम मुगल दरबार में रहा करता है और बादशाह उसके प्रभाव में भी है।[1] इसलिये अजीतसिंह ने उस विश्वासघाती को संसार से विदा करने के लिये अपने कुछ विश्वस्त आदमियों को दिल्ली भेज दिया। उन्होंने वहाँ पहुँचकर और मौका पाकर मोहकम को जान से मार डाला। इससे दिल्ली के मुगलों में आग भड़की।

1. इस मुकुन्द को मूल पुस्तक में कहीं-कहीं पर मोकाम लिखा गया है। उसका सही नाम मोहकमसिं है। -- अनुवादक

मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए मुगलों की विशाल सेना लेकर सैयद वन्धु दिल्ली से रवाना हुये।

अजीतसिंह को मुगलों के इस आक्रमण का समाचार मिला। उसने अपने परिवार को अभयसिंह के साथ मरु प्रदेश के राडधड़ा नामक स्थान पर भेज दिया।[1] मुगल सेना ने जोधपुर की राजधानी को वहाँ पहुँच कर घेर लिया। उसके वाद वादशाह की तरफ से अजितसिंह के पास आदेश भेजा गया कि उसे भविष्य में अपने अच्छे व्यवहारों का प्रमाण देना होगा और इसकी जमानत में उसका लड़का अभयसिंह वादशाह के दरवार में वरावर रहेगा और समय-समय पर उसे भी वहाँ जाना पड़ेगा।

अजीतसिंह ने इस आदेश को मानने से इन्कार कर दिया। परन्तु दीवान के कहने-सुनने और कवि केसर के परामर्श से उसने उस आदेश को स्वीकार कर लिया। केसर कवि ने उसे समझाते हुए कहा – "वादशाह के इस आदेश को मानने में कोई हानि नहीं है। दौलत खाँ ने जिस समय मारवाड़ पर आक्रमण किया था, मारवाड़ के राजा राव गंगा ने अपने पुत्र मालदेव को इसी प्रकार के आदेश के अनुसार दरवार में रहने के लिये भेजा था।"

अजीतसिंह ने राडधड़ा से अभयसिंह को वुलाया और उसके आ जाने पर सम्वत् 1770 आपाढ़ महीने के अन्त में उसे हुसैनअली के साथ दिल्ली भेज दिया। वहाँ पहुँचकर राजकुमार अभयसिंह ने वादशाह से पांच हजार सेना के अधिकार का पद प्राप्त किया।

पुत्र को भेजने के वाद अजीतसिंह भी दिल्ली के लिये रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने उन शूरवीर राठौड़ों की मृत्यु के स्थानों को देखा, जो उसकी शिशु अवस्था में उसके प्राणों की रक्षा करने के लिए मुगल सेना के द्वारा मारे गये थे। उन स्थानों को देखकर स्वाभिमानी अजीतसिंह के हृदय में प्रतिहिंसा की आग एक साथ प्रज्वलित हो उठी। उसने उसी समय इस प्रकार के अत्याचारों का वदला लेने के लिये प्रतिज्ञा की।

अजीतसिंह दिल्ली पहुँच चुका था। वह मुगल दरवार में उपस्थित हुआ। उसने वादशाह के विरुद्ध नीचे लिखे हुये चार अपराधों का आरोप किया:

1- नौरोजा[2]

2- वादशाह के साथ राजाओं की लड़कियों का विवाह संस्कार।

3- गौहत्या।

4- जजिया कर।

सैयद वन्धुओं के मारवाड़ पर आक्रमण करने के वाद ऊपर लिखे हुये अजीत के जो चार प्रस्ताव वादशाह के सामने पेश किये गये थे। उनमें से वादशाह फर्रूखसियर के साथ अजीतसिंह की लड़की के विवाह का भी एक प्रस्ताव था। उसका उल्लेख इस ग्रन्थ में पहले किया जा चुका है। अजीतसिंह ने इच्छापूर्वक अपनी लड़की का विवाह वादशाह के साथ नहीं किया था, कठोर परिस्थितियों में जकड़ जाने के कारण उसको ऐसा करना पड़ा था। ऐसा न करने पर उसका सर्वनाश उसके नेत्रों के सामने था। इसलिये जो अपराध उसे न करना चाहिए था उसके लिये उसे तैयार होना पड़ा। परन्तु उसके साथ-साथ उसने अपने मन

1. राडधड़ा लूनी नदी के पश्चिमी किनारे पर वसा हुआ है। वह मरुभूमि का एक प्रसिद्ध स्थान है।
2. नौरोजा का मेला प्रत्येक महीने के नवें दिन होता था। उस मेले में राजमहल और बड़े-वड़े अमीर-उमराओं के घरों के लोग अपनी-अपनी दस्तकारी की चीजें लाते थे और उनका क्रय-विक्रय होता था। इसी नौरोजा के नाम पर वर्ष में एक वार केवल स्त्रियों का मेला होता था, जिसमें प्रसिद्ध घरों की स्त्रियाँ ही शामिल होती थीं। वहाँ पर कोई पुरुष न जाता था। इस मेले को अकवर ने जारी किया था।

में मुगल वादशाहत के सम्वन्ध में जो निर्णय कर लिये थे, उनके अनुसार वह सैयद वन्धुओं से जाकर मिल गया।

अजीतसिंह मुगल बादशाह के साथ वहुत समय तक कठपुतली वनकर रहा। इसके कारण राजस्थान के राजपूतों की दृष्टि में उसकी मर्यादा भंग हो गयी। परन्तु वह क्या कर रहा था, इसे वह स्वयं जानता था। उसने नौरोजा के उत्सव में राजपूत स्त्रियों और राजकुमारियों का जाना वन्द कराया। राजपूत लड़कियों के बादशाह के साथ होने वाले विवाहों पर रोक लगायी। गोहत्या वन्द कराने की चेष्टा की। हिन्दुओं के विरुद्ध जजिया कर को विरोध किया। इन सब बातों के साथ-साथ बारशाह ने यह भी स्वीकार किया कि हिन्दुओं के मन्दिरों में बराबर शंखध्वनि होगी। हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं पैदा की जायेगी। अजीतसिंह ने इन सब बातों के साथ अपने राज्य की सीमा की भी वृद्धि की।

सम्वत् 1772 के जेठ महीने में मुगल बादशाह ने अजीतसिंह को गुजरात का शासक नियुक्त किया। इसके पश्चात् अजीत दिल्ली छोड़कर जोधपुर चला गया। जजिया कर से हिन्दुओं को मुक्ति दी गयी। इसका प्रभाव सम्पूर्ण हिन्दू-समाज पर पड़ा और सभी लोगों ने अजीतसिंह की प्रशंसा की।

इस वर्ष अजीतसिंह ने अपने राज्य में अनेक प्रकार के परिवर्तन किये। वह अपने पुत्र अभय सिंह को साथ में लेकर राज्य के सभी हिस्सों में घूमा। सबसे पहले वह जालौर में गया और वहीं पर रहकर उसने बरसात के दिन व्यतीत किये। शरद ऋतु के आते ही अजीतसिंह ने अपनी सेना लेकर मेवासा से आबू और सिरोही के देवड़ा लोगों पर आक्रमण किया और नीमाज पर अधिकार करते ही देवड़ा लोगों ने आत्म-समर्पण किया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उन लागों ने कर देना आरम्भ कर दिया।

इन्हीं दिनों में पालनपुर से फिरोजखाँ ने आकर अजीतसिंह से भेंट की और उसको वहुत सम्मान दिया। थिराड का राजा अजीतसिंह को कर के रूप में वर्ष में एक लाख रूपये दिया करता था। कलवी लोगों के नेता क्षेमकर्ण ने भी उसकी अधीनता मंजूर की। शक्तावत, चम्पावत और विजय भंडारी शासन की व्यवस्था ठीक करने के लिए एक वर्ष पहले पाटन भेजे गये थे। वे सब वहाँ से आकर अजीतसिंह से मिले।

सम्वत् 1773 में अजीतसिंह ने हलवद के झाला को पराजित किया और उसको अधीन बनाकर उसने नवानगर के जाम लोगों पर आक्रमण किया। वे लोग शूरवीर और पराक्रमी थे। उनको अजीतसिंह की शरण में आना पड़ा। उन्होंने कर में तीन लाख रूपये और पच्चीस युद्ध की प्रसिद्ध घोड़ियाँ देकर अजीतसिंह को प्रसन्न किया। इस प्रकार अपने राज्य को शक्तिशाली बनाकर अपनी सेना के साथ अजीतसिंह द्वारिका चला गया। वहाँ की तीर्थयात्रा करके वह जोधपुर की राजधानी लौट आया।

अजीतसिंह ने जोधपुर आकर सुना कि इन्द्रसिंह ने इन दिनों में नागौर पर अधिकार कर लिया है। उसने उसी समय अपनी सेना तैयार की और नागौर पहुँचकर उसने इन्द्रसिंह को राज सिंहासन से उतार दिया।

सम्वत् 1774 में दिल्ली के दरवार में विद्रोह पैदा हुआ। दिल्ली में फर्रुखसियर का शासन चल रहा था। यह विद्रोह सैयद वन्धुओं के विरोध में था। एक तरफ मुगल अमीर उमराव और दूसरी तरफ दोनो सैयद भाई थे। यह विद्रोह अधिक बढ़ गया और उसके भीषण रूप को देखकर बादशाह ने अजीतसिंह को बुलवाया। हुसैन अली इस समय दक्षिण में था। अवदुल्ला वादशाह के विरुद्ध छिपे तौर पर विद्रोहियों की सहायता कर रहा था।

सैयद बन्धु इस समय बड़ी घबराहट में थे। इस संकट के समय दोनों भाइयों ने अजीतसिंह का भरोसा किया और सेना के साथ उसे दिल्ली आने के लिये सन्देश भेजा। अजीतसिंह ने अपनी सेना तैयार की और उसे लेकर वह नागौर, मेड़ता, पुष्कर, मारोट और साँभर होकर दिल्ली पहुँचा। साँभर के दुर्ग में उसने अपनी सेना का एक बड़ा भाग छोड़ दिया और मारोट से उसने अपने पुत्र अभयसिंह को राजधानी की रक्षा करने के लिये भेज दिया। सैयद बन्धुओं को समाचार मिला कि अजीतसिंह अपनी सेना के साथ आ रहा है, वह तुरन्त उसके स्वागत के लिये दिल्ली से रवाना हुए और अलीवर्दी खाँ की सराय में पहुँचकर उन्होंने अजीतसिंह का स्वागत-सत्कार किया। सैयदों ने विद्रोह की सारी बातें अजीतसिंह से कही।

राजा जयसिंह और मुगल अमीर बादशाह की तरफ थे। उन्होंने सैयद बन्धुओं का विरोध किया। इसी अवसर पर जयसिंह ने अजीतसिंह को समझाया कि मुगलों से बदला लेने के लिये इससे अच्छा अवसर दूसरा कोई नहीं मिलेगा। अजीतसिंह ने गुप्त रूप स सैयद बन्धुओं के साथ सन्धि की। इसके बाद सैयद बन्धुओं ने अपने विरोधी जुलफिकार खाँ को जान से मार डाला।

भविष्य में आने वाली परिस्थितियों को कोई नहीं जानता। एक समय था, जब मुगल बादशाह औरंगजेब ने हिन्दुओं के साथ अत्याचार करने में अपनी शक्ति को बाकी न रखा था और जसवन्तसिंह के पुत्र शिशु अजीत को संसार से विदा कर देने के लिये उसने भयानक अत्याचार किये थे। एक समय आज था, जब अत्याचारी औरंगजेब इस संसार से विदा हो चुका था और उसके सिंहासन पर बैठा हुआ मुगल बादशाह फर्रुखसियर केवल अजीतसिंह की सहायता के बल पर अपने सौभाग्य के सपने देख रहा था।

दिल्ली में अजीतसिंह के आने का समाचार सुनकर मुगल बादशाह ने कोटा राज्य के हाड़ाराव भीम और खान दौरानखाँ को तुरन्त अजीतसिंह के पास भेजा और उसने अजीतसिंह से भेंट करने की अपनी तीव्र अभिलाषा प्रकट की। मोती बाग के महल के ऊपर बादशाह के साथ अजीतसिंह की भेंट का स्थान नियुक्त हुआ। अजीतसिंह अपने साथ सामन्तों और बहुत से राठौड़ शूरवीरों को लेकर मोतीबाग के लिये रवाना हुआ। उसके साथ जैसलमेर के रावविष्णुसिंह, देरावल के पद्मसिंह, मेवाड़ के फतेहसिंह, सीतामऊ के राठौड़ प्रधान मानसिंह, रामपुरा के चन्दावत गोपाल, खण्डेला के उदयसिंह, मनोहरपुर के शक्तिसिंह, खिलचीपुर के कृष्णसिंह आदि बहुत से सुयोग्य और सबल राजपूत चले। इस समय मारवाड़ के राजा होने के कारण ही नहीं, बल्कि बादशाह की तरफ से गुजरात के शासक होने के कारण समस्त राजपूत सामन्त और सरदार इस समय अजीतसिंह को अधिक महत्व दे रहे थे। बादशाह ने अत्यन्त सम्मान के साथ मोतीबाग में अजीतसिंह से भेंट की और उसने अजीतसिंह को सातहजारी मनसब की उपाधि दी। मुगल राज्य का कुछ हिस्सा देकर उसके राज्य की सीमा बढ़ायी। इसके साथ-साथ उसने एक करोड़ रूपये की जागीर भी अजीतसिंह को दी।

बादशाह फर्रुखसियर ने अनेक प्रकार से अजीतसिंह का सम्मान किया। हाथी-घोड़े सोने की म्यान में ढकी हुई तलवार, किरिच, हीरों के सिरपेंच, दो कीमती मोतियों की मालायें और बहूमूल्य हीरे-जवाहरात आदि बादशाह फर्रूखसियर ने उपहार में अजीतसिंह को दिये। इसके पश्चात् अबदुल्ला खाँ ने बड़े आदर के साथ अजीतसिंह का स्वागत किया। इस प्रकार के स्वागत-सत्कार के समाचारों को सुनकर सैयद बन्धुओं के विरोधी अनेक प्रकार की शंकायें करने लगे और गुप्त रूप से उन्होंने अजीतसिंह पर एक साथ आक्रमण करने का निश्चय किया।

भट्ट ग्रन्थों के अनुसार सम्वत् 1775 के मास पोष की सुदी दूज के दिन बादशाह फर्रूखसियर ने अजीतसिंह से भेंट की। अजीतसिंह ने भी बादशाह का अधिक से अधिक सम्मान किया। उसने एक लाख रूपये का आसन बिछाकर उसके ऊपर बादशाह के बैठने का जो स्थान तैयार किया गया, वह सर्वथा अपूर्व था। बादशाह उसके ऊपर बिठाया गया और उसको हाथी, घोड़े तथा बहुमूल्य हीरे, जवाहरात भेंट में दिये गये। बादशाह इस सम्मान से बहुत प्रसन्न हुआ। इस अवसर पर दिल्ली में अजीतसिंह को जो सम्मान दिया गया वह पहले कभी किसी को यहाँ पर न मिला था। फागुन के महीने में बादशाह के साथ अजित सिंह और सैयद बन्धुओं ने एक गुप्त परामर्श किया और उस परामर्श में जो निश्चय हुआ, उसके द्वारा एक षड़यन्त्र की सृष्टि की गयी और उसे लिखकर दक्षिण में हुसैन अली के पास भेज दिया गया। इसके साथ ही उसको तुरन्त आकर मिलने के लिये लिखा गया। इस प्रकार के कई कार्य गुप्त रूप से किये गये।

भट्ट कवियों ने इस अवसर की आलोचना करते हुए लिखा है– "इस समय दिल्ली का वातावरण अत्यन्त अनिश्चित रूप में दिखायी दे रहा था। चारों तरफ प्रज्वलित दावानल दिखायी दे रहे थे। भविष्य अन्धकारपूर्ण हो रहा था। दिल्ली के विचारशील व्यक्ति अनेक प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण कल्पनायें कर रहे थे। इन्हीं दिनों में दक्षिण से लौट कर हुसैन अली दिल्ली में आ गया।

उसके महल के पास पहुँचते ही प्रसन्नता के बाजे बजाये गये। हुसैन अली के साथ बड़ी संख्या में जो अश्वारोही सैनिक आये थे, उनको देखकर विद्रोही लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे। बादशाह ने हुसैन अली के पास उपहार में बहुत-सी चीजें भेजी। इस समय दिल्ली में विद्रोहात्मक वातावरण शान्त दिखायी दे रहा था। हुसैन अली के आने के दूसरे दिन सैयद बन्धु और उनके साथी जमुना के किनारे अजीतसिंह से शिविर में जाकर मिले और उन्होंने गुप्त रूप से कुछ बातें की।

सैयद बन्धुओं के चले जाने के बाद अजीतसिंह अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपनी घोड़ी पर सवार हुआ और राठौड़ सेना को लेकर वह बादशाह के महलों की तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने महलों के आस-पास अपनी सेना का घेरा डाल दिया और महलों को अपने अधिकार में ले लिया। दिल्ली के उस समय का उल्लेख करते हुए भट्ट ग्रन्थों में लिखा गया है कि अजीतसिंह उस समय दिल्ली के मुगलों को अत्यन्त भयानक रूप में दिखायी दे रहा था।

अजीतसिंह के आने के पहले दिल्ली की अवस्था अत्यन्त भयानक थी। इस समय विद्रोह की आग फिर भड़की। बादशाह का खजाना लूट लिया गया। फर्रूखसियर के प्राणों की रक्षा करने वाला कोई दिखायी न पडा। आमेर का राजा जयसिंह दिल्ली की इस भयानक परिस्थिति को देखकर वहाँ से अपने राज्य को चला गया। फर्रुखसियर को मार डाला गया और उसके स्थान पर दूसरा मनुष्य दिल्ली के राज सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु चार महीने में उसकी मृत्यु हो गयी।[1] उसके मर जाने पर रफीउद्दौला को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु दिल्ली के मुगल अमीरों ने उसका विरोध किया और उन्होंने आगरा में नीकोशाह को मुगल राज्य का सम्राट बनाया। उसके विरुद्ध हुसैन अली दिल्ली से आगरा की तरफ रवाना हुआ। जाने से पहले उसने अजीतसिंह और अब्दुल्ला को बादशाह रफीउद्दौला की रक्षा के लिये दिल्ली में छोड़ा।

1. बादशाह फर्रुखसियर के मारे जाने का वर्णन पहले किया जा चुका है। उसके स्थान पर जो सिंहासन पर बिठाया गया, उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं है। वह उन्माद के रोग में चौथे महीने में मर गया।

सम्वत् 1776 में अजीतसिंह और सैयद दिल्ली से रवाना हुये। लेकिन मुगलों ने नीकोशाह को जो सलीमगढ़ में कैद कर लिया गया था, छोड़ दिया। बादशाह की मृत्यु हो गयी। अजीतसिंह और सैयदों ने उसके स्थान पर मोहम्मद शाह को सिंहासन पर बिठाया। इसके पश्चात् मुगल साम्राज्य में भयानक विद्रोह उत्पन्न हुये। उसमें साम्राज्य के न जाने कितने नगरों का विध्वंस और विनाश हुआ और न जाने कितने नगरों का निर्माण हुआ। बादशाह फर्रुखसियर की मृत्यु के साथ-साथ आमेर के राजा जयसिंह की समस्त आशायें समाप्त हो गयीं। सैयद बन्धु आमेर के राजा को दण्ड देने की तैयारी करने लगे। जयसिंह को यह समाचार मिला तो वह भयभीत हो उठा।

नवीन सम्राट और सैयद बन्धुओं ने अजीतसिंह के साथ सेनायें लेकर जयपुर का रास्ता पकड़ा और जब वे लोग सीकर पहुँच गये तो जयपुर के सभी सामन्तों ने घबरा कर अजीतसिंह की शरण ली। उन सामन्तों ने अजीतसिंह से प्रार्थना की कि यदि आपने सैयद बन्धुओं से जयपुर के राजा की रक्षा न की तो उसके साथ-साथ हम सब लोगों का भी सर्वनाश हो जायेगा।

जयपुर के सामन्तों की प्रार्थना सुनकर अजीतसिंह ने उनको अपने पास बुलाया और चम्पावत सरदार एवम् अपने मन्त्री को जयसिंह के पास भेज कर उसे आश्वासन दिया कि जयसिंह को अब आने में किसी प्रकार का भय न करना चाहिये।

अजीतसिंह का यह संदेश पाकर जयसिंह, चम्पावत सरदार और अजीतसिंह के मन्त्री के साथ रवाना होकर वहाँ पहुँच गया। अजीतसिंह ने उससे भेंट की और सभी प्रकार से उसको आश्वासन दिया और उसे अपने राज्य में जाने की आज्ञा दी।

आमेर के राजा जयसिंह और बूँदी के बुधसिंह हाड़ा के साथ अजीतसिंह प्रसन्न होकर अपनी राजधानी जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में मनोहरपुर के शेखावत सरदार की एक सुन्दरी लड़की के साथ उसने विवाह किया। कुँवार का महीना था। जोधपुर में अजीतसिंह के पहुँच जाने के बाद जयसिंह ने शूर सागर के किनारे और हाड़ाराव ने जोधपुर के उत्तर की तरफ अपने खेमे लगातार मुकाम किया।

शीतकाल का मौसम व्यतीत हो गया और बसन्त के दिन आरम्भ हो गये। इन्हीं दिनों आमेर के राजा जयसिंह ने अजीतसिंह की लड़की सूर्यकुमारी के साथ विवाह किया। अजीतसिंह ने इस विवाह के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री कुम्पावत भंडारी और अपने गुरुदेव के साथ परामर्श कर लिया था। इस विवाह का पूर्ण वर्णन करने से बहुत विस्तार हो जायेगा। इसलिये यहाँ पर हम संक्षेप में उसका उल्लेख करने की चेष्टा करेंगे।

सम्वत् 1777 में आमेर के राजा जयसिंह ने अजीतसिंह के यहाँ कुछ दिन व्यतीत किये थे। अजीतसिंह ने सैयद बन्धुओं के साथ मिलकर मोहम्मदशाह को उस समय मुगल सिंहासन पर बिठाया था, जब मुगल दरबार में भयानक कलह चल रही थी और सम्पूर्ण साम्राज्य विद्रोह के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। सिंहासन पर बैठने के बाद मोहम्मदशाह अजीतसिंह से बहुत प्रसन्न हुआ और उसी संतोष में उसने, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है - अहमदाबाद का शासन देकर अजीतसिंह को जोधपुर भेज दिया था।

मोहम्मदशाह से विदा होकर जयसिंह और बुधसिंह के साथ वह जोधपुर आ गया था। मोहम्मदशाह सिंहासन पर बैठने के बाद पहले जैसा मोहम्मदशाह न रह गया था। सिंहासन पर बैठने के पूर्व वह केवल मोहम्मदशाह था और अब वह बादशाह मोहम्मदशाह था। अब उसकी शक्तियाँ अत्यन्त विशाल और महान हो चुकी थीं। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम पाये जाते हैं, जो महान बन जाने के बाद उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञ बने

रहते हैं। मोहम्मदशाह उस प्रकार के कृतज्ञ पुरुषों में से न था। सम्राट के सिंहासन पर बैठने के बाद वह अपने व्यवहारों में भी बादशाह बन गया। उसने सैयद बन्धुओं को जान से मरवा डाला और अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिए तैयारी करने लगा।

जोधपुर में यह समाचार अजीतसिंह ने सुना। उसे अत्यन्त क्रोध हुआ। उसने अपनी तलवार लेकर शपथ ली कि जैसे भी होगा, मैं अजमेर पर अधिकार करूँगा।

यह निश्चय कर लेने के बाद अजीतसिंह ने जयसिंह को जोधपुर से विदा किया और बारह दिन व्यतीत होने के पहले ही वह अपनी शक्तिशाली राठौड़ सेना को लेकर मेड़ता पहुँच गया। उसके बाद उसने अजमेर पर आक्रमण किया और वहाँ के मुसलमान अजमेर छोड़ कर भागने लगे। अजीतसिंह ने तारागढ़ के मजबूत दुर्ग पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर बहुत दिनों से मुगलों का शासन चल रहा था। इसलिए हिन्दुओं के मन्दिरों में शंखों और घण्टों का बजना चिरकाल से बन्द था। अब उनकी आवाजें फिर से सुनायी देने लगी। जहाँ पर कुरान के पाठ पढ़े जाते थे, वहाँ पण्डितों के द्वारा पुराण पढ़े जाने लगे।

अजीतसिंह ने साँभर और डीडवाना पर भी अधिकार कर लिया। उसने अनेक दुर्गों पर राठौड़ों के झण्डे फहराये। जयपुर पर अधिकार करके अजीतसिंह ने अपने नाम का सिक्का चलाया। इसके अतिरिक्त उसने शासन में अनेक प्रकार के परिवर्तन किये। वहाँ के सामन्तों की मर्यादा में उसने वृद्धि की। इन सब बातों के साथ-साथ अजीतसिंह ने स्वतन्त्र रूप से अजमेर में अपना शासन आरम्भ किया। उसकी इस सफलता के समाचार न केवल भारतवर्ष के कोने-कोने में पहुँचे, बल्कि इस देश के बाहर मुस्लिम देशों में भी उसकी खबरें पहुँच गयीं।

सम्वत् 1778 में मुगल बादशाह ने अजमेर पर फिर से अपना अधिकार करने का इरादा किया। बादशाह ने मुजफ्फरखाँ को सेनापति बनाकर और उसके अधिकार में एक बहुत बड़ी मुगलों की फौज देकर बरसात के दिनों में अजमेर की तरफ रवाना किया। मुजफ्फरखाँ के जाने का समाचार सुनकर उसके साथ युद्ध करने के लिये अजीतसिंह ने अपने बेटे अभय सिंह को तैयार किया। अभय सिंह के साथ तीस हजार अश्वारोही सैनिक थे और मारवाड़ के आठ सामन्त अपनी सेनाओं के साथ थे। सेना की दाहिनी तरफ चम्पावत लोग, बायीं तरफ कुम्पावत लोग, करमसोत, मेड़तिया, जोधा, इन्दा भाटी, सोनगरा, देवड़ा, खींची, धांधत और गोगावत लोग चल रहे थे।

आमेर में पहुचकर मुगलों और राठौड़ों की सेनाओं का सामना हुआ। मुजफ्फरखाँ राठौड़ों की विशाल सेना को देखकर घबरा उठा। युद्ध के पहले ही मुगल सेना पीछे की तरफ भागने लगी। राठौड़ सेना उसका पीछा करती हुई आगे बढ़ी। राजकुमार अभयसिंह ने शाहजहाँपुर को अधिकार में लेकर नारनोल को लूट लिया और तम्बराघाटी तथा रिवाड़ी से बहुत सा धन एकत्रित किया। कई स्थानों पर राठौड़ सेना ने आग लगा दी, जिससे अलीवर्दी की सराय तथा कितने ही गाँव जल गये।

राठौड़ सेना का यह दृश्य देखकर दिल्ली और आगरा में मुगल घबरा उठे। युद्ध की इस यात्रा में राजकुमार अभय सिंह ने नरूका के राजा की लड़की के साथ विवाह किया।[1] राजकुमार अभय सिंह के मुकाबले में मुजफ्फरखाँ के भाग जाने से सम्राट मोहम्मदशाह ने चार हजार मुगलों की सेना देकर नाहरखाँ को भेजा। वह मुगल सेना के साथ साँभर पहुँच

1. नरुका जयपुर राज्य में सामन्तों का एक प्रसिद्ध वंश था। इस वंश के कितने ही लोग जयपुर राज्य में प्रधान सामन्त थे।

गया। वादशाह ने उसको अजीतसिंह के साथ मित्रता पैदा करने के लिये भेजा था। सम्वत् 1779 में अभय सिंह ने साँभर में मुकाम किया और वहाँ पर उसने अपनी शक्तियों को मजबूत बना लिया। उसका पिता अजीतसिंह अजमेर से वहाँ पर आ गया था। जिस प्रकार कश्यप के साथ सूर्य की भेंट हुई थी, अजीत के साथ उस प्रकार उसके पुत्र अभय सिंह का सामना हुआ।

नाहरखाँ जिस उद्देश्य से साँभर पहुँचा था, उसको सफल बनाने के लिये वह उपयोगी न था। वातचीत की कटुता और कठोरता के कारण वहाँ पर संघर्ष बढ़ गया और राठौड़ सेना के साथ मुगलों का युद्ध आरम्भ हो गया। नाहरखाँ की छोटी-सी सेना राठौड़ों से पराजित हुई। उसी समय चूड़ामन जाट के लड़के ने आकर अजीतसिंह के सामने आत्म-समर्पण किया।

वादशाह मोहम्मद इस समय बड़ी निराशा में था। उसने जो कुछ भी सोचा था, किसी में भी उसे सफलता न मिली। निराश और भयभीत अवस्था में मुगलों का सिंहासन छोड़कर उसने मक्का में जाकर रहने का निर्णय किया।

इन्हीं दिनों में उसने सुना कि मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने नाहरखाँ को मार डाला है। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और नाहरखाँ की मौत का बदला लेने के लिये वह एक साथ उत्तेजित हो उठा। उसने मुगल साम्राज्य की समस्त सेना एकत्रित की और उसने उसको आमेर के राजा जयसिंह, हैदरकुली, इरादत खाँ आदि अनेक शूरवीरों के नेतृत्व में युद्ध करने के लिये भेजा।

श्रावण के महीने में मुगलों की उस विशाल सेना ने अजमेर में पहुँच कर तारागढ़ को घेर लिया। अभयसिंह उस दुर्ग की रक्षा का भार अमरसिंह को सौंपकर सेना लेकर रवाना हुआ। मुगल सेना चार महीने तक तारागढ़ में घेरा डाले पड़ी रही। इस समय मुगलों की सम्पूर्ण शक्तियाँ एक साथ मिलकर आयी थी और उनके साथ युद्ध करने के लिये मारवाड़ की अकेली राठौड़ सेना थी।

चार महीने पूरे बीत जाने के वाद आमेर के राजा जयसिंह के समझाने-बुझाने पर अजीत सिंह ने वादशाह के साथ सन्धि करना स्वीकार किया। यद्यपि उसको मोहम्मदशाह की नीति पर विश्वास न था। परन्तु मुगल अमीरों के शपथ लेने पर और सन्धि के पालन करने का आश्वासन देने पर अजीतसिंह ने अजमेर छोड़ देना स्वीकार कर लिया। राजकुमार अभयसिंह जयसिंह के साथ वादशाह के शिविर में गया। जाने के पहले यह निश्चय हो गया था कि अभयसिंह वादशाह की अधीनता स्वीकार करेगा और उसके फलस्वरूप उसको आवश्यकतानुसार वादशाह के दरवार में रहना पड़ेगा। इस प्रकार के निर्णय में जयसिंह ने मध्यस्थ का काम किया। निर्भीक अभयसिंह ने अपनी तलवार हाथ में लेकर कहा– "मेरी कुशलता इस पर निर्भर है।"

वादशाह के यहाँ पहुँचकर अभयसिंह ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया। उसने यह समझकर कि मेरे पिता को वादशाह के दाहिने स्थान मिलता है, इसलिये मैं भी उसका अधिकारी हूँ, क्यों कि यहाँ पर मैं अपने पिता का प्रतिनिधि वनकर आया हूँ। इसके सम्वन्ध में मुगल दरवार की व्यवस्था क्या है इस पर कुछ भी ध्यान न देकर वह सिंहासन की तरफ आगे बढ़ा। उसी समय मुगल अमीरों में से किसी एक ने अपने संकेत से उसे रोका। उससे अभयसिंह क्रोधित हुआ। उसने हाथ में तलवार लेकर अपने आवेश पूर्ण नेत्रों से इधर-उधर देखा। वादशाह मोहम्मदशाह को यह परिस्थिति बड़ी भयानक मालूम हुई। उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और गले से हीरों का हार उतारकर उसने अभयसिंह को पहना दिया।

वादशाह के ऐसा करने से उस समय की भयानक परिस्थिति शान्ति में परिवर्तित हो गयी। यदि वादशाह ने उस समय ऐसा न किया होता तो उस परिस्थिति का परिणाम क्या होता, उसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

अभयसिंह साहसी और महान पराक्रमी था। यह जयसिंह के साथ वादशाह के दरवार में जा रहा था तो उसके पिता अजीतसिंह ने उसका विरोध किया था। परन्तु अभयसिंह ने पिता के विरोध की परवाह न की थी। पिता और पुत्र के वीच इन दिनों में अथवा कुछ समय पहले से किस प्रकार के व्यवहार चल रहे थे, इसके सम्वन्ध में भट्ट ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इन्हीं दिनों में अजीतसिंह की मृत्यु हुई। राजा अजीतसिंह का जीवन चरित्र जिन राठौड़ कवियों के द्वारा काव्य में लिखा गया है, अजीतसिंह की मृत्यु के सम्वन्ध में खोज करने के लिये हमने उसके पन्नों का भली-भांति अवलोकन किया है। इन राठौड़ कवियों ने अजीतसिंह का ऐतिहासिक जीवन चरित्र उसके पुत्र अभयसिंह के आदेश से और उसकी देखरेख में लिखा है। सूर्यपुराण नामक ग्रन्थ में केवल इतना ही लिखा है– "इस समय अजीतसिंह ने संसार को छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की।"

इसके सम्वन्ध में दूसरा ग्रन्थ 'राज रूपक, नाम का है। उसके ग्रन्थकार ने भी अजीतसिंह की रहस्यपूर्ण मृत्यु पर कोई प्रकाश नहीं डाला वल्कि उसने जो कुछ भी लिखा है, उसके शब्दों से स्पष्ट मालूम होता है कि उसने उस मृत्यु के रहस्य को ढकने की पूरी चेष्टा की है। इस दूसरे ग्रन्थ में लिखा गया है–"अश्वपति के साथ राजकुमार अभयसिंह के होने वाले परिचय को सुनकर अजीतसिंह को प्रसन्नता हुई। इस संसार में अविनाशी कोई वस्तु नहीं है। एक दिन विनाश सवका होता है। आगे और पीछे इस संसार को छोड़कर जाना सभी को है। इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है, जिसका कभी विध्वंस और विनाश न हो सके। रंक से लेकर राजा तक मृत्यु सवके लिये है। जो जन्म लेता है, वह एक दिना मरता है। जो सवसे निर्वल है, उसको भी एक दिन मरना है और जो महान शक्तिशाली है, उसे भी एक दिन मर कर यहाँ से जाना है। संसार में कोई ऐसा नहीं है, जिसकी कभी मृत्यु न हो। इस विश्व में रहने का समय सवका पहले से निर्धारित होता है। उस समय के वीत जाने पर एक क्षण भी किसी का रह सकना सम्भव नहीं होता। मनुष्य सव कुछ कर सकता है, परन्तु मृत्यु के सामने उसका कोई वस नहीं चलता।"

मारवाड़ के राजा अजीतसिंह की मृत्यु का उल्लेख करते हुए 'राजरूपक' के ग्रन्थकार ने आगे फिर लिखा है–"जन्म के साथ मृत्यु को अपने भाग्य में लेकर मनुष्य इस संसार में आता है। अजीतसिंह का जन्म भी इसी प्रकार हुआ और उसकी मृत्यु भी हुई। अजीतसिंह ने मारवाड़ के गौरव की वृद्धि की। हिन्दु जाति का मस्तक ऊंचा किया। राठौड़ों की मर्यादा वढ़ायी और शत्रुओं पर सदा सफलता प्राप्त की। अजीतसिंह के मरने पर जोधपुर की राजधानी एक साथ रो उठी। चारों तरफ रोने और चिल्लाने की आवाजें उठने लगी। वच्चे से लेकर वूढ़े तक - सभी के नेत्रों से आँसू वह निकले। अन्त में सभी को यह समझ कर सन्तोष करना पड़ा कि मृत्यु सभी की होती है।"

अजीतसिंह की मृत्यु के सम्वन्ध में राठौड़ कवियों ने लिखा है–"सम्वत् 1780 के आषाढ़ महीने के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को मरुभूमि के आठ ठाकुरौत अर्थात् आठ श्रेष्ठ सामन्तों की अधीनता में सत्रह सौ राठौड़ वंशी राजपूत नंगे सिर, नंगे पैर स्वर्ग को गये हुये अजीतसिंह के शव के निकट एकत्रित हुये। उनके नेत्रों से अश्रुपात हो रहे थे। नौका के

आकार में एक रथी बनायी गयी।[1] अजीतसिंह का शव उसी में रखा गया और सभी लोग उस रथी को राज श्मशान भूमि में ले गये। चन्दन, लकड़ी, अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों और घी, कपूर से चिता तैयार की गयी। इस मृत्यु का समाचार महलों में पहुँचा। सोलह दासियों के साथ चौहान रानी ने श्मशान भूमि में आकर कहा- "आज मैं अपने प्राणपति के साथ चिंता में बैठकर स्वर्ग की यात्रा करुँगी।" [2]

अजीतसिंह की रानियाँ और उपरानियाँ - सब मिलाकर अट्ठावन थीं। अजीसिंह के मर जाने के बाद एक-एक करके सभी श्मशान भूमि में आयीं और चिता में बैठ कर सती होने के लिये तैयार हो गयी। उन सभी ने उस समय अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं और पति के साथ चिता पर बैठकर भस्म हो जाने को उन्होंने अपना धर्म बताया। उनकी कही हुई बातों का यहाँ पर उल्लेख करके हम अनावश्यक विस्तार नहीं देना चाहते।

रानियों के मुख से अनेक प्रकार की बातों को सुन कर नाजिर ने जो एक राठौड़ था और राजमहलों मे संरक्षक के रूप में रहा करता था, जिसका यह नाम मुस्लिम भाषा के आधार पर रखा गया था - समझाते हुये कहा – "इस समय आप लोगों का इस प्रकार कहना सर्वथा समुचित है। लेकिन जिस समय चिता में आग दी जायेगी, उस समय उसकी भयानक लपटें आप लोगों के जीवित शरीर को जलाने का काम करेगी। उस समय का दृश्य कितना भीषण होगा, उसका अनुमान आप लोगों को कर लेना चाहिए। उस समय यदि घबराकर चिता से आपने भागने का कार्य किया तो यह कलंक आपके वंश के माथे से कभी मिटाया न जा सकेगा। इसलिए हमारी आप लोगों से प्रार्थना है कि इस पर आपको विचार कर लेना चाहिये। प्रज्ज्वलित अग्नि में बैठकर जल जाने का कार्य कितना रोमांचकारी है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

अन्तःपुर के संरक्षक की बातों को सुन कर एक रानी ने कहा: "हम संसार में सब कुछ छोड़ सकती हैं, परन्तु अपने पति को छोड़कर जीवित नहीं रह सकती।"

इसके पश्चात् सभी रानियों ने स्नान करके बहूमूल्य कपड़े और आभूषण पहने। इसके उपरान्त शव के पास जाकर अजीतसिंह के चरणों पर सभी ने अपने मस्तक रखे और अपने इस जीवन का अन्तिम प्रणाम किया। उस समय मन्त्रियों, सरदारों और अन्य सभी गुरुजनों ने रानियों को चिता पर जाने से रोका। उन सब ने पटरानी से प्रार्थना की: "आप चिता पर न बैठकर अपने पुत्र अभय और बख्त के स्नेह का विचार करें। महाराज के न रहने पर राज्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व, दोनों बेटों का विश्वास और भरोसा आपके साथ है। महाराज के न रहने पर मारवाड़ की समस्त प्रजा आपको देखकर सन्तोष करेगी। राज्य के प्रति और अपने बेटों के प्रति आपका जो धर्म है, उसका आपको पालन करना है।"

पटरानी ने इन बातों को सुनकर कहा: "आप सब इस वंश के कल्याण के लिये ऐसा कहते हैं। परन्तु मेरे कल्याण की तरफ आपका ध्यान नहीं है। पति को छोड़कर स्त्री का अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता। इसके सम्बन्ध में मैं आप लोगों से अधिक नहीं कहना चाहती। आपको समझाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैं चाहती हूँ कि आप लोग मेरे कल्याण का रास्ता बन्द न करें और मुझे आशीर्वाद दें कि मैं चिता पर बैठकर उसकी

1. शव को ले जाने के लिए राजपूत लोग नौका के आकार-प्रकार में जो अर्थी तैयार करते थे। उसका नाम रथी है। प्राचीन काल में और आज भी हिन्दुओं का विश्वास है कि मरने के बाद वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। इसलिये हिन्दुओं में मृत्यु के पश्चात् जितने भी संस्कार किये जाते हैं, कुछ उसी उद्देश्य से होते हैं।
2. अवस्था में परिपूर्ण होने के पहले ही इसी रानी के साथ अजीत ने विवाह किया था। पितृ हन्ता अभयसिंह की वह माता थी।

प्रज्वलित अग्नि में हँसते हुए जलकर अपने पति की मैं चिरसंगिनी बन सकूँ। इसके सिवा मेरा कल्याण किसी प्रकार किसी दूसरे मार्ग पर चलकर नहीं हो सकता।"

इसके वाद श्मशान भूमि में बाजे वजे। सहस्त्रों मुखों से एक साथ भगवान का नाम निकला। दीन-दुखियों को धन लुटाया गया। सभी रानियाँ चिता पर बैठ चुकी थीं। उसमें आग दी गयी और क्षण-भर में चिता की होली जली। अजीतसिंह की अवस्था इस समय पैंतालीस वर्ष तीन महीने और वाईस दिन की थी।

मारवाड़ के सिंहासन पर अब तक जितने भी राजा बैठे थे, अजीतसिंह का स्थान सवसे अधिक श्रेष्ठ रहा। उसका जन्म और पालनपोषण जिस प्रकार कठोर रहा, उसकी मृत्यु उसी प्रकार रहस्यपूर्ण रही। अजीतसिंह ने अपनी परिस्थितियों में जकड़े रहने पर भी वंश और राज्य के लिये वहुत कुछ किया।

अजीत जव सत्रह वर्ष की अवस्था में भी न पहुँचा था, मारवाड़ के सामन्त, सरदार और श्रेष्ठ पुरुष उसको देखने के लिये इतने लालायित हो उठे थे कि यदि वे राजकुमार को देखने का अवसर न पाते तो पता नहीं वे क्या करते। राज्य की यह श्रद्धा और भक्ति अजीतसिंह को उस समय प्राप्त हुई थी, जव वह सोलह–सत्रह वर्ष का एक नवयुवक था और न तो उसने अपने राज्य के दर्शन किये थे और न राज्य के लोगों ने उसके दर्शन किये थे। उस अवस्था में मारवाड़ के लोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि हम लोग उसी समय अन्न-जल ग्रहण करेंगे, जव हम अपने नेत्रों से राजकुमार को देख लेंगे।

अजीतसिंह असाधारण रूप से साहसी, वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसके शरीर का गठन उसके शौर्य का परिचय देता था। अजीतसिंह ने शत्रुओं के साथ लगातार तीस वर्षों तक युद्ध किया था। सम्वत् 1765 में अजमेर में सैयद वन्धुओं के साथ जिस संग्राम की आग भड़की थी, उसमें अजीत ने अपनी राजनीति और दूरदर्शिता का परिचय दिया था। उस समय सैयद बन्धुओं के साथ उसकी गुप्त सन्धि हुई थी। अजीतसिंह के जीवन का शेष भाग मुगल वादशाह के दरवार में ही वीता था। मुगल वादशाह ने जैसा व्यवहार उसके साथ किया था, ठीक वैसा ही व्यवहार अजीतसिंह ने मुगल वादशाह के साथ किया था। इस विषय में अजीतसिंह की राजनीति, गम्भीरता और योग्यता सर्वथा प्रशंसनीय थी।

अजीतसिंह के जीवन के कार्यों के सम्वन्ध में सभी बातें ऊपर लिखी जा चुकी हैं। लेकिन उसके जीवन चरित्र में एक ऐसा दाग है, जिसका स्पष्टीकरण उस समय के किसी प्राचीन ग्रन्थ से नहीं होता है। यहाँ पर संक्षेप में उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

अजीत के प्राणों की रक्षा का सम्पूर्ण श्रेय दुर्गादास को है। उसने अपने प्राणों का मोह छोड़कर अजीत की रक्षा की थी। औरंगजेव अजीत के प्राणों को हरण करने के लिये पूर्ण रूप से तुला हुआ था। इसके लिये उसने उचित और अनुचित, सभी प्रकार के कार्य किये थे। शक्तिशाली मुगल वादशाह औरंगजेव से शिशु अजीत के प्राणों की रक्षा करने का कार्य केवल दुर्गादास से ही हो सकता था। इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता है कि यदि दुर्गादास न होता तो कदाचित किसी दूसरे को उसकी रक्षा में सफलता न मिलती और औरंगजेव के द्वारा शिशु अजीत संसार से विदा कर दिया गया होता।

परन्तु दुर्गादास ने अपने विश्वासी राठौड़ सरदारों की सहायता से अजीत के प्राणों की रक्षा की। उसने अनेक अवसरों पर स्वार्थ और त्याग के अपूर्व उदाहरण दिये। बादशाह का कोई भी प्रलोभन दुर्गादास को आकर्षित न कर सका। वह एक स्वाभिमानी राजपूत था। अपने प्राणों को उत्सर्ग करके जो अजीत की रक्षा करना चाहता था, उसके सामने प्रलोभन का क्या महत्व होता है। उसने अनेक मौकों पर वादशाह की सम्पत्ति और

जागीरों को ठुकराया था। अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवन की तैयारी दुर्गादास ने की थी। दुर्गादास स्वाभिमानी, साहसी, शूरवीर और राजभक्त राजपूत था। उसने अपने ये गुण राजकुमार अजीत में पैदा किये थे। अजीतसिंह यदि अपने जीवन में देश, समाज, वंश और राज्य के लिये उपयोगी साबित हो सका तो उसका सम्पूर्ण श्रेय केवल दुर्गादास को था। ऐसी दशा में दुर्गादास ने कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण वह मारवाड़ से निकाल दिया गया।

अजीत सिंह ने किस समय और किस कारण से दुर्गादास के साथ ऐसा व्यवहार किया था, यह नहीं कहा जा सकता। जिन कवियों ने अजीतसिंह का ऐतिहासिक जीवन चरित्र काव्य में लिखा है, उन्होंने इसका कोई उल्लेख कहीं पर नहीं किया। इसका कारण यह नहीं है कि दुर्गादास को मारवाड़ से निकाले जाने की बात गलत है। उन कवियों के उल्लेख न करने का कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अजीतसिंह का जीवन चरित्र अभय सिंह की देखरेख में लिखा था। इसलिये जान-बूझकर इस घटना का उल्लेख न करने दिया गया हो, यह बहुत स्वाभाविक बात है। उन कवियों के ग्रन्थों में एक और भी बड़ा अभाव मिलता है। अजीतसिंह की मृत्यु किस प्रकार हुई, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया। उस समय की सहायक घटनाओं से यह साफ जाहिर है कि अजीतसिंह की मृत्यु का कारण उसका बेटा अभय सिंह था। यद्यपि उसने अपने हाथों से पिता की हत्या नहीं की थी, परन्तु उसने राज्य के प्रलोभन से अपने भाई बख्त सिंह को उकसाया था। उन कवियों ने इसका भी कोई उल्लेख नहीं किया और इस उल्लेख के न करने का भी वही कारण है, जो ऊपर लिखा जा चुका है।

बादशाह बहादुरशाह के यहाँ से समाचारों के कुछ कागज पाये गये थे, उनसे दुर्गादास के सम्बन्ध में कुछ मालूम हुआ। मिले हुए कागजों में अन्यान्य वातों के साथ-साथ एक कागज में पढ़ने को मिला– "दुर्गादास अपने परिवार और अनुचरों के साथ उदयपुर में पिछोला झील के किनारे रहा करता है। उसके आवश्यक खर्चों के लिये राणा की तरफ से प्रति दिन पाँच सौ रूपये के हिसाब से उसको दिये जाते हैं।"

बादशाह की तरफ से दुर्गादास को आत्म-समर्पण करने के लिये आदेश दिया गया था। लेकिन दुर्गादास ने किसी भी सूरत में उसे मंजूर नहीं किया। मैंने इसके सम्बन्ध में सही घटना को जानने के लिये चेष्टा की और मारवाड़ के इतिहास के विशेष जानकार एक यती से मैंने पूछा। वह इस घटना की जानकारी रखता था। उसने अपना उत्तर कविता में दिया– "दुर्गा देशाँ काढ़ियाँ गोला गाँगनी।" अर्थात् दुर्गादास को निकाल कर गाँगनी नगर गोला को दिया गया था। गोला का अर्थ गुलाम होता है।

यह गाँगनी नगर लूनी नदी के उत्तर की तरफ बसा हुआ था और वह कर्मसोत वंश के राजपूतों का प्रधान नगर था। दुर्गादास उस वंश के लोगों का अधिनायक था। यह नगर इन दिनों में मारवाड़ के राजा के अधिकार में है। परन्तु दुर्गादास के समय वह उसी के अधिकार में था। करणोत वंश के राजपूतों ने गाँगनी नगर में एक प्रसिद्ध मन्दिर दुर्गादास के स्मारक में बनवाया। वह मन्दिर आज भी दुर्गादास की स्मृतियाँ लोगों को दिलाता है। अपने त्याग और बलिदान के पुरस्कार में दुर्गादास को जिस प्रकार मारवाड़ राज्य से निकाला गया, उसकी वह दुरवस्था प्रसिद्ध कहावत का समर्थन करती है–"राजाओं पर कभी विश्वास न करना।"

□

अध्याय–40

राजा अभय सिंह व उसका शासन

अजीतसिंह की रहस्यमयी हत्या का यद्यपि कोई उल्लेख उस समय के ग्रन्थों में नही पाया जाता, फिर भी अनेक परिस्थितियाँ इस ओर संकेत करती हैं। आमेर के राजा जयसिंह के परामर्श से राजकुमार अभय सिंह ने वादशाह के दरवार में न केवल जाना स्वीकार किया था, वल्कि अपने पिता अजीतसिंह के विरोध करने पर भी उसने वादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसके वहाँ जाने पर अभय सिंह के मनोभावों में राज्य का प्रलोभन पैदा हुआ और उसी के आधार पर अजीतसिंह की हत्या के षड़यन्त्र की रचना आरम्भ हुई। उसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसके परिणामस्वरूप अजीतसिंह की हत्या की गयी।

मारवाड़ के राजा अजीतसिंह के मरते ही उसके राज्य का पतन आरम्भ हुआ। इस विनाश की जड़ राजमहलों में पड़ी। मुगलों की जिस पराधीनता को मिटाने और पड़यन्त्रकारी मुगलों का वदला देने के लिये अजीतसिंह को वड़े-से-वड़े त्याग, वलिदान करने पड़े थे, उस पराधीनता को अभय सिंह ने प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

अजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के वादशाह मोहम्मद शाह ने अपने हाथ से अभय सिंह के मस्तक पर राजतिलक किया। कमर में तलवार वाँधी, मस्तक पर राजमुकुट रखा और मणि मुक्ता एवं हीरे जवाहरात से जड़ा हुआ किरिच देकर उसको मारवाड़ के सिंहासन पर विठाया। छत्र, चंवर, नौवत और नगाड़े इत्यादि वाजे और वहुमूल्य पदार्थ उपहार में देकर वादशाह ने अभय सिंह का सम्मान किया। नागौर शासन का अधिकार अमर सिंह को दिया गया था। इस अवसर पर मोहम्मद शाह ने वहाँ शासन का अधिकार अभय सिंह को दिया।

मुगल वादशाह से इस प्रकार सम्मानित होकर अभय सिंह अपनी राजधानी जोधपुर आ गया। अभयसिंह ने इन दिनों में जो कुछ किया था, मारवाड़ में कोई भी उससे अपरिचित न था। सभी उसको पिता का हत्यारा और मुगलों की पराधीनता को स्वीकार करने वाला अपराधी समझते थे। परन्तु जव वह दिल्ली से सम्मानित होकर अपनी राजधानी को लौटा तो वहाँ के सभी लोगों ने वड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया। उसके सभी पापों और अपराधों को लोग भूल गये थे। मार्ग के प्रत्येक ग्राम में अभयसिंह का जोरदार स्वागत होता था। राठौड़ वंश की स्त्रियाँ पानी से भरे हुए कलशों को सिर पर रख कर गाना गाती हुई अपने नवीन राजा का सम्मान कर रही थीं। जोधपुर पहुँच कर अभय सिंह ने राठौड़ सामन्तों को उपहार में मूल्यवान पदार्थ दिये और कवियों, चारणों तथा पुरोहितों को सम्पत्ति और भूमि दान में दी। इस प्रकार उसने सभी का सम्मान किया।

राठौड़ वंशी करणीदान एक श्रेष्ठ कवि था, वह राजनीति का पण्डित था और युद्ध करने में शूरवीर था। मारवाड़ के घरेलू विद्रोह के समय की घटनाओं का वर्णन उनसे वड़े

अच्छे ढंग से किया है। सूर्य प्रकाश नामक प्रसिद्ध ग्रंथ काव्य उसी का लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ उस समय के इतिहास का वर्णन करता है। मारवाड़ के इतिहास का वर्णन हमने बहुत कुछ इसी सूर्य प्रकाश नामक ग्रन्थ के आधार पर किया है। यद्यपि उसकी बहुत-सी दूसरी बातें दूसरे साधनों के द्वारा भी प्राप्त की गयी हैं।

अभिषेक से छुट्टी पाने के बाद अभय सिंह ने नागौर का अधिकार अपने हाथ में लेने की तैयारी की। इस नागौर का अधिकार राव अमर सिंह के उत्तराधिकारी इन्द्रसिंह को बादशाह की तरफ से उस समय दिया गया था, जब अजीतसिंह के साथ मोहम्मदशाह का युद्ध आरम्भ हुआ था। उन्हीं दिनों में नागदुर्ग के सिंहासन पर इन्द्र सिंह को बिठाया गया था।[1] अभय सिंह अपनी सेना लेकर नागौर की तरफ रवाना हुआ। इन्द्र सिंह को अब उसके आने का समाचार मिला तो वह अभय सिंह के पास पहुँचा और उसने बादशाह के हस्ताक्षरों की सनद दिखा कर कहा कि यहाँ के शासन का अधिकार मुझे मिला है। आमेर का राजा जयसिंह मेरे इस अधिकार का साक्षी है। यहाँ पर दूसरा कोई अधिकारी नहीं हो सकता।

अभयसिंह ने इन्द्र सिंह की कही हुई बात का कुछ भी ख्याल न किया। उसने नागौर को जा कर घेर लिया। इन्द्रसिंह ने अभय सिंह के साथ युद्ध नहीं किया। उसने नागौर का दुर्ग छोड़ दिया। अभय सिंह ने उस पर अधिकार करके अपने छोटे भाई बक्तसिंह को वहाँ का अधिकारी बना दिया।

इस नागौर राज्य के प्रलोभन में ही बख्त सिंह ने अपने पिता के जीवन को नष्ट किया था। उसने यह अक्षम्य अपराध अभय सिंह के परामर्श से किया था। इसलिए अभय सिंह ने नागौर पर अधिकार करके बख्तसिंह को वहाँ का अधिकारी बनाया। नागौर का अधिकार प्राप्त करने पर मेवाड़, जैसलमेर, बीकानेर और आमेर के राजाओं ने बड़े सम्मान के साथ अभय सिंह को बधाइयाँ भेजीं। सन् 1725 में नागौर को विजय करके अभय सिंह अपनी राजधानी लौट आया।

सन् 1726 में अभय सिंह उन भूमिया लोगों का दमन करने के लिए गया, जो उसके राज्य की दक्षिणी सीमा के निकटवर्ती स्थानों पर रहा करते थे। अभय सिंह के वहाँ पहुँचने पर सिन्धल, देवड़ा, बालाबोड़ा, बलीसा, और सोढा जाति के लोगों ने उसकी अधीनता स्वीकार की।

सन् 1727 में अभयसिंह को बादशाह का एक आदेश मिला। उसने जिसके लिए अपने सभी सामन्तों को सेनाओं के साथ बुलवाया। आदेश पाते ही अपनी-अपनी सेनायें लेकर सामन्त लोग वहाँ पहुँच गये। उन सबको लेकर दिल्ली जाने के पूर्व अभयसिंह अपने राज्य के प्रमुख नगरों को देखने गया और सर्वत्र अपना शासन प्रबन्ध मजबूत बनाया। पर्वतसर नामक स्थान पर पहुँचने के बाद अभय-सिंह को चेचक का रोग हो गया। उस रोग से निजात पाने के बाद सन् 1728 में अभयसिंह दिल्ली पहुँचा। बादशाह ने उसको बुलाने के लिए अपने प्रधान अमीरखाँ और दौराबखाँ को भेजा था।

अभयसिंह के आने पर बादशाह ने सम्मान के साथ उसका स्वागत किया और आदरपूर्वक बातें करते हुए उसने अभयसिंह से कहा – "आज बहुत दिनों के बाद आपसे मुलाकात हुई है। आपको देखकर इस समय मुझे बड़ी खुशी हो रही है।" कुछ देर तक बादशाह के पास रहकर और उसका सम्मान प्राप्त कर अभय सिंह वहाँ से अपने मुकाम पर चला गया। जहाँ पर वह ठहरा हुआ था, बादशाह ने बहुत सी चीजें वहाँ भेजीं।

---

1. नागौर का प्राचीन नाम नागदुर्ग था।

इन्हीं दिनों में दक्षिण के झगड़े बहुत बढ़ गये। शाहजादे ने अपने साथ साठ हजार विद्रोहियों की सेना का संगठन किया और उसने मालवा, सूरत और अहमदपुर पर आक्रमण करके वहां के गिरधर बहादुर, इब्राहिम कुली, रुस्तम अली और मुगल सुजाअत आदि अधिकारियों को मरवा डाला।बादशाह ने इस समाचार को सुनकर तुरन्त वहाँ के विद्रोह को दबाने की चेष्टा की और पचास हजार सैनिकों की एक विशाल सेना देकर उसने सरबुलन्द खाँ को रवाना किया। सेना के खर्च के लिए बादशाह ने खजाने से एक करोड़ रुपये भी दिये। सेनापति सरबुलन्दखाँ अपनी फौज के साथ रवाना हुआ। उसके आगे चलने वाली मुगलों की दस हजार सेना ने विद्रोहियों के साथ युद्ध किया। लेकिन उसकी पराजय हो गई।

विद्रोहियों का इस प्रकार बल और पराक्रम देखकर सरबुलन्द खाँ ने सन्धि का प्रस्ताव किया और अन्त में उसने वहाँ के राज्य के विभाजन को स्वीकार कर लिया। एक दिन जिस समय मोहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हुआ था और दरबार में ऊँची श्रेणी के दो सौ सामन्त और उमराव मौजूद थे, दक्षिण से समाचार आया कि सरबुलन्दखाँ वहाँ पहुँचकर विद्रोहियों के साथ मिल गया। दरबार में उस समय प्रधान राजमन्त्री कमरुद्दीनखाँ, ऐत्तमादुद्दौला खाँ नदौरान, मीरबख्शी, समशुद्दौला, अमीरुलउमरा, मनसूर अली, रोशनउद्दौला, तुर्रावाज खाँ, रुस्तमजंग, अफगान खाँ, ख्वाजा सैयदउद्दीन, सआदत खाँ, बुरहान उलमुल्क, अब्दुलसमद खाँ, दलीलखाँ, जफरखाँ, दलेलखाँ, मीरहमला, खानखाना, जफर जंग, इरादत खाँ, मुरशिद कुली खाँ, जफरयाबर खाँ, अलीवर्दी खाँ और अजमेर का शासक मुज़फ्फर खाँ आदि बहुत से अमीर उमराव बैठे थे। उन सभी की उपस्थिति में ऊँचे स्वर से पढ़ा गया कि सरबुलन्द खाँ ने गुजरात पर अधिकार करके अपने आपको वहाँ का बादशाह घोषित किया है और मंडला, झाला, चौरसमाँ, बघेला तथा गोरिल जातियों को परास्त करके उनका विध्वंस कर डाला है। सरबुलन्द खाँ के इन अत्याचारों से भूमिया लोगों ने अपने-अपने दुर्ग छोड़ दिये हैं और वे सरबुलन्द खाँ की शरण में आ गये हैं। सरबुलन्द खाँ अहमदाबाद का बादशाह बनकर दक्षिण के मराठों से मिल गया है।

इस समाचार को सुनकर बादशाह मोहम्मदशाह ने गंभीरता के साथ विचार कर निर्णय किया कि यदि सरबुलंद खाँ का दमन न किया गया तो इसका प्रभाव साम्राज्य में सभी राजाओं और सामन्तों पर पड़ेगा और वे सभी लोग साम्राज्य की अधीनता को तोड़कर स्वतंत्र हो जाने की चेष्टा करेंगे।

इन दिनों में साम्राज्य के कई भागों से ऐसे समाचार आये थे, जिनसे मालूम हुआ कि साम्राज्य की अधीनता में चलने वाले कितने ही राजाओं ने स्वतंत्र हो जाने की कोशिश शुरू कर दी है। इन दिनों में मुगल बादशाह का प्रताप एक निर्बल दीपक की भाँति कमजोर पड़ गया था। इस दशा में मोहम्मदशाह ने अपने साम्राज्य की शक्तियों को फिर से मजबूत बनाने का उपाय सोचा।

मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब के शासनकाल में ही आरंभ हो गया था। उसके बाद जो लोग उस सिंहासन पर बैठे, साम्राज्य के पतन को वे रोक न सके। धीरे-धीरे मुगलों की शक्तियाँ क्षीण हो गयीं और इधर बहुत दिनों से साम्राज्य का सिंहासन डावाँडोल हो रहा था। मुगलों की इस बढ़ती हुई कमजोरी में सभी अधिकृत हिन्दू और मुसलमान राजा और नवाब साम्राज्य से सम्बंध तोड़ देने की चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार के लोगों में सरबुलंद खाँ पहला आदमी था।

विद्रोहियों के साथ मिलकर सरबुलंद खाँ ने अपने आपको स्वतंत्र बादशाह घोषित कर दिया था। उसका दमन करने के लिये बादशाह अनेक प्रकार के उपाय सोचता रहा। इसके लिये उसने अपना एक बड़ा दरबार किया। उस दरबार में सोने के एक पात्र में पान का बीड़ा बनाकर रखा गया और उस दरबार में साम्राज्य के जितने भी राजा, सामन्त, अमीर-उमराव उपस्थित थे, सबके सामने सरबुलंद खाँ के दमन का प्रस्ताव रखा गया।

उस समय दरबार के सभी लोगों ने इस बात को साफ-साफ समझ लिया कि पान का यह बीड़ा उसी को उठाना चाहिये, जो सरबुलंद खाँ को पराजित कर सकने की सामर्थ्य रखता हो। बीड़े को रखे हुए कुछ समय बीत गया। उपस्थित शूरवीरों में किसी ने भी पान के उस बीड़े को उठाने का साहस न किया। दरबार के कितने ही अमीरों ने अपने सिर नीचे की तरफ झुका लिये। कितने ही लोगों ने उस बीड़े की तरफ देखने का भी साहस न किया।

जो बादशाह अपनी शक्तियों के सामने किसी की कुछ परवाह न करता था और जिसके मामूली संकेत पर बड़े-बड़े राज्यों का विध्वंस और विनाश होता था, आज उसके दरबार में एक भी ऐसा शूरवीर नहीं है जो साम्राज्य की गिरती हुई दीवारों को बचा सके। दरबार में किसी के बीड़ा न उठाने पर बादशाह मोहम्मदशाह का अंतरतम कांप उठा। इसी समय में बैठे हुए एक अमीर ने कहा – "जो सरबुलंद खाँ को पराजित कर सकता हो, उसी को पान का यह बीड़ा उठाना चाहिये।"

उस अमीर की बात समाप्त होते ही दूसरे अमीर ने कहा – "सरबुलंद खाँ को परास्त करना सरल नहीं है। इसलिये समझ बूझकर आगे कदम उठाना चाहिये।"

इसके बाद एक तीसरे अमीर ने कहा – "सरबुलंद खाँ के साथ युद्ध करना जहरीले साँप के मुख को पकड़ने से कम संकटपूर्ण नहीं है।"

दरबार की यह परिस्थिति बादशाह को लगातार भयभीत बना रही थी। इस अवसर पर अमीरों ने दरबार में जो कुछ कहा, उससे दरबारियों के दिल और भी निर्बल पड़ गये। मारवाड़ का राजा अभयसिंह भी उस दरबार में बैठा था। वह गंभीरता के साथ दरबार की परिस्थिति का और उपस्थित लोगों के मनोभावों का अध्ययन कर रहा था। उसने जब देखा कि दरबार में पान का जो बीड़ा रखा गया था, उसके उठाने का किसी ने साहस नहीं किया तो उसने बीड़ा उठाने के लिये अपने मन में निर्णय किया। वह अपने स्थान से उठा और पान के उस बीड़े को उठाकर उसने अपनी पगड़ी पर रखा और फिर बादशाह को सम्बोधित करके कहा –

"बादशाह आप निराश न हों। मैं इस विद्रोही सरबुलन्द खाँ को परास्त करूँगा और उसे मारकर उसका मस्तक आपके सामने लाकर रखूँगा।"

अभयसिंह के इस प्रकार बीड़ा उठाने को सभा में बैठे हुए अमीरों ने देखा और उसके बाद उन लोगों ने अभयसिंह की कही हुई बातों को सुना। उनके दिलों में अभयसिंह के प्रति ईर्ष्या का भाव पैदा हुआ। बादशाह ने अभयसिंह की बातों को सुनकर शान्ति और संतोष को अनुभव किया। उसने उसी समय अभयसिंह को गुजरात के शासन की सनद दी। यह देखकर अमीरों के दिलो में अभयसिंह के विरुद्ध ईर्ष्या की आग प्रज्जवलित हो उठी।

सिंहासन पर बैठे हुए बादशाह मोहम्मदशाह ने अभयसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा – "आपके पूर्वजों ने इस सिंहासन की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए सदा कोशिश की है और उसकी सहायता से मुगल राज्य की परेशानियाँ अनेक बार दूर हुई हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि आपके सहयोग से आज भी इस सिंहासन के सम्मान की रक्षा होगी।"

मारवाड़ के इतिहास में इस वात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि सम्राट मोहम्मद शाह ने अभयसिंह की मर्यादा को वढ़ाने के लिये सात हीरों का एक आभूषण उसी समय उपहार में दिया। उसके साथ-साथ उसने और भी वहुमूल्य चीजें अभयसिंह को भेंट में दी। सम्वत् 1786 के आषाढ़ महीने में अभयसिंह अहमदावाद और अजमेर के शासन की सनद लेकर दिल्ली से विदा हुआ।

मुगल साम्राज्य के अनेक भागों में विभक्त होने की परिस्थिति सरवुलंद खाँ के विद्रोही होने के साथ-साथ आरंभ हुई। सन् 1730 ईसवी के जून महीने में अभयसिंह दिल्ली से रवाना हुआ। वह सीधा अजमेर की तरफ आगे वढ़ा। उस तरफ जाने में उसके दो उद्देश्य थे। अजमेर के शासन की सनद उसे वादशाह से मिल चुकी थी। वहाँ पर अधिकार कर लेने से न केवल मारवाड़ में उसकी शक्तियाँ मजवूत हो जाती थीं, बल्कि राजस्थान के समस्त राज्यों की कुंजी उसके हाथ में आ जाने को थी। दिल्ली से अजमेर जाने में उस समय उसका पहला उद्देश्य यह था। दूसरा उद्देश्य यह था कि अभयसिंह इस भयानक समय में जयसिंह के साथ परामर्श करना चाहता था। आमेर का राजा जयसिंह किस अभिप्राय से इस समय अजमेर आया था, इसका स्पष्टीकरण राठौड़ों के इतिहास में नहीं किया गया। परन्तु दूसरे ग्रंथों में जो उल्लेख किया गया है, उससे जाहिर होता है कि जयसिंह पुष्कर तीर्थ में अपने स्वर्गीय पूर्वजों का श्राद्ध करने के लिये अजमेर गया था।

अजमेर में अभयसिंह और जयसिंह की भेंट हुई। दोनों राजाओं ने एक ही स्थान पर विश्राम किया और साथ-साथ वैठकर भोजन किया। उसी अवसर पर दोनों ने वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों पर वहुत देर तक गंभीरता के साथ परामर्श किया। उस परामर्श की अनेक वातें मुगल साम्राज्य के विध्वंस और विनाश की थी।

अजमेर पहुँचकर अभयसिंह ने अपने कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक स्थानों पर नियुक्त किया। इसके वाद वह मेड़ता चला गया। उसका छोटा भाई बख्तसिंह वहाँ पहले से ही पहुँच चुका था। वह अभयसिंह से सम्मान पूर्वक मिला। बख्तसिंह को नागौर राज्य के शासन की सनद इस समय मिल गयी थी। दोनों भाई सेना और सामन्तों के साथ मेड़ता से जोधपुर की तरफ रवाना हुये। मार्ग में अभयसिंह ने सामन्तों को विदा करते हुये कहा – "विद्रोही सरवुलंद खाँ के साथ युद्ध करने के लिये बहुत शीघ्र जाना है। इसलिये आप लोग देर न करें और अपनी सेनायें लेकर जोधपुर में आ जावें।

अभयसिंह की वात को सुनकर सभी सामन्त प्रसन्नता के साथ अपने-अपने राज्यों को चले गये। अभयसिंह वख्तसिंह के साथ जोधपुर पहुँचा। उसके पश्चात् सरवुलंद खाँ के साथ युद्ध करने की वह तैयारी करने लगा। मारवाड़ के राठौड़ सामन्त अपनी सेनाओं के साथ एक-एक करके जोधपुर में आने लगे। सव सामन्तों के आ जाने पर और सेना के तैयार हो चुकने पर वड़वानल, मगरमुखन और जमराज इत्यादि तोपों की पूजा की गयी। बकरों का वलिदान किया गया।

युद्ध की सम्पूर्ण तैयारी हो चुकने के वाद अभयसिंह के मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। इस समय उसके अधिकार में एक विशाल शक्तिशाली सेना थी। उसके द्वारा उसने अपने पड़ौसी सिरोही के विद्रोही राजा को परास्त करने का इरादा किया। सिरोही का राजा जिस प्रकार उपद्रवी था, उसी प्रकार वह स्वाभिमानी और तेजस्वी भी था। सिरोही का शासन अव तक स्वतंत्र रूप से चल रहा था। सिरोही का राज्य पहाड़ों के ऊपर था। उस राज्य में उग्र स्वभाव के आदमी रहते थे। वे युद्ध करने में भयानक थे। सिरोही के राजा के

साथ मारवाड़ का प्रायः संघर्ष हुआ करता था। अभयसिंह ने इस अवसर पर अपनी शक्तिशाली सेना का लाभ उठाने की इच्छा की।

सिरोही राज्य के तीन तरफ जो पहाड़ी जाति के लोग रहते थे, वे मीणा नाम से प्रसिद्ध थे। इन मीणा लोगों पर अभयसिंह ने आक्रमण करने का निश्चय किया। इन मीणा लोगों से मारवाड़ को अनेक परेशानियाँ पैदा हुआ करती थीं। सिरोही राज्य का कुछ हिस्सा मारवाड़ राज्य के समीप तक चला गया था। उस हिस्से में पहुँचकर मीणा लोग प्रायः मारवाड़ियों के साथ उत्पात किया करते थे। मारवाड़ के पशुओं को वे लोग अपने राज्य में ले जाते थे। अभी हाल में उन मीणा लोगों ने मारवाड़ के पशुओं का अपहरण किया था। इस प्रकार की परिस्थितियों में उनको पराजित करना और उनके कार्यों का दंड देना अभयसिंह के लिये आवश्यक था। इसके लिये यह अवसर बहुत अनुकूल था। उसका अभयसिंह ने लाभ उठाने के उद्देश्य से मीणा लोगों पर आक्रमण की तैयारी की।

सिरोही राज्य के मीणा लोगों को इस होने वाले आक्रमण का समाचार मिला। वे लोग घबरा उठे। राठौड़ सेना के रवाना होने से पहले ही मीणा लोगों ने मारवाड़ के अपहृत पशुओं को लौटा दिया और उस समय उन लोगों ने राठौड़ों के साथ ऐसा व्यवहार किया, जिससे उन पर जो आक्रमण होने जा रहा था, उसकी परिस्थिति ही बदल गयी।

अभयसिंह ने अब सरबुलंद खाँ पर आक्रमण करने का निर्णय किया। इसके लिये उसने जो विशाल और शक्तिशाली सेना तैयार की थी, उसमें न केवल राठौड़ों की सेना थी, बल्कि राजस्थान के अनेक राज्यों की सेनाओं के साथ-साथ दो मुस्लिम सेनापतियों की सेना भी थी। इस अवसर पर अभयसिंह के झंडे के नीचे अनेक राजा अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आये थे, उनमें कोटा और बूँदी की हाड़ा सेना, गागरौन की खींची सेना, शिवपुर की गौड़ सेना, आमेर की कुशवाहा सेना और मरुभूमि की अनेक सेनायें प्रमुख थीं। अभयसिंह उन सभी सेनाओं का सेनापति था।

सन् 1731 ई. के चैत्र महीने में जोधपुर को छोड़कर अभयसिंह अपनी शक्तिशाली सेना के साथ भाद्राजून, 'मालगढ़े', सिवाना और जालौर होता हुआ आगे बढ़ा। पहुँचकर उसने आक्रमण किया। उसी समय संग्राम आरंभ हो गया। चम्पावत सरदार कुछ समय के बाद मारा गया। देवड़ा के लोग पराजित होकर भागने लगे। वहाँ पर राठौड़ सेना ने भयानक मारपीट की। सिरोही के राजा ने जब सुना कि अभयसिंह की सेना ने रिंवाड़ा और पोसालिया– दोनों का भीषण रूप से विध्वंस किया है तो वह घबरा उठा। निराश होकर सिरोही के राजा चौहान राव नारायण दास ने अपने भाई की लड़की का विवाह अभयसिंह के साथ करके अपनी रक्षा का विचार किया।

सिरोही के राजा नारायणदास ने चावड़ा सामन्त मायाराम को मध्यस्थ बनाकर अभयसिंह के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। उस प्रस्ताव में उसने अपने भाई मानसिंह की लड़की का विवाह कर देने का इरादा प्रकट किया। उसके बाद विवाह के प्रस्ताव में एक नारियल, आठ श्रेष्ठ घोड़ियाँ और चार हाथियों का झूल राव नारायणदास ने अभयसिंह के पास भेजा। अभयसिंह ने विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

युद्ध बंद हो गया। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। अभयसिंह ने मानसिंह की लड़की के साथ विवाह किया। इस लड़की से दस महीने के बाद जोधपुर में जो बालक पैदा हुआ, उसका नाम रामसिंह रखा गया। राव नारायणदास ने भतीजी का विवाह कर देने के अतिरिक्त अभयसिंह को कर देना भी स्वीकार किया।

देवड़ा के सभी सामन्त अपनी-अपनी सेनायें लेकर अभयसिंह की विशाल सेना में जाकर मिल गये। इसके पश्चात् अभयसिंह सरस्वती नदी के निकटवर्ती पालनपुर और सिद्धपुर होकर सरबुलंद खाँ का दमन करने के लिए आगे बढ़ा और वहाँ पहुँचकर अपनी सेना का मुकाम करके उसने सरबुलंद खाँ के पास अपना एक दूत भेजा और उसके द्वारा अभयसिंह ने कहला भेजा – "मुगल बादशाह के युद्ध की जितनी सामग्री पर उसने अधिकार कर रखा है। उन सबको वह तुरंत लौटा दे। राज्य की सम्पूर्ण आमदनी और खर्च का हिसाब करके जो कुछं बादशाह का निकले, उसे वह तुरंत दे दे। इसके साथ-साथ अहमदावाद और उसके समस्त दुर्गों से विद्रोही लोग निकल जावें।"

अभयसिंह के दूत से इस माँग को सुनकर सरबुलंद खाँ जरा भी भयभीत नहीं हुआ। उसने अहंकार के साथ उत्तर दिया– "अहमदाबाद का मैं राजा हूँ। जब तक जिन्दा हूँ, अहमदाबाद नहीं छोड़ सकता।"

सरबुलंद खाँ का उत्तर पाकर अभयसिंह ने अपने साथ के सभी राजाओं और सामन्तों के साथ बैठकर परामर्श किया। सरबुलंद खाँ ने जो उत्तर दिया था, वह सबको बताया गया। चम्पावत वंश के अहवा के हरनाथ का बेटा सामन्त कुशलसिंह अभयसिंह के दाहिनीं ओर बैठा हुआ था। सरबुलंद खाँ का उत्तर सुनकर सबसे पहले उसने सम्मति दी। उसके बाद कुम्पावत वंश के सामन्त कन्हीराम जो अभयसिंह की बायीं ओर बैठा था बोला– "हम सबको अब अधिक देर करने की जरूरत नहीं है।"

मेड़ता के सामन्त केशरी सिंह और ऊदावत वृद्ध सामन्त ने कुछ समय तक इस पर विचार किया कि अब हम लोगों को क्या करना चाहिये। इसी समय जोधावंश के खौरवा के सांमन्त ने कहा – "मेरी समझ में युद्ध के बाजे बजने चाहिये। मैं तो युद्ध करने के लिये आया हूँ, इस समय और कुछ विचार करना बिल्कुल व्यर्थ है।" यह कहकर वह चुप हो गया।

जेतावत फतेहसिंह और करणोत अभयमल्ल ने जोधा सामन्त की बातों का समर्थन किया। बड़ी देर तक परामर्श करने के बाद युद्ध करना निश्चित किया गया। सभी लोग एक साथ युद्ध कह कर चिल्ला उठे। उस समय सभी के मनोभावों में उत्तेजना की तरंगें उठ रही थीं। वे प्रत्येक अवस्था में सरबुलंद खाँ का उत्तर सुनकर युद्ध करना चाहते थे। इसीलिये परामर्श के अंत में युद्ध की आवाजें करने लगे।

सबकी बातों को सुनने के बाद अभयसिंह के भाई बख्त सिंह ने उपस्थित राजाओं और सामन्तों को सम्बोधित करके कहा – "आप सभी लोग अपने-अपने शिविर में विश्राम करें। मैं अकेला सेना लेकर सरबुलंद खाँ के साथ युद्ध करने को जाता हूँ।

बख्तसिंह की बात समाप्त होते ही लाल रंग का जल लाया गया और जल के उस पात्र को अभयसिंह के सामने रखा गया। अभयसिंह ने बैठे हुये राजाओं और सामन्तों पर उस जल को छिड़कते हुए कहा – "इस युद्ध में सबको विजय प्राप्त करनी है। उसके अभाव में हम लोग स्वर्ग की यात्रा करेंगे।"

जिस समय अभयसिंह अपने साथ के राजाओं और सामन्तों के साथ परामर्श कर रहा था, सरबुलंद खाँ ने युद्ध की तैयारी की। अपने नगर के प्रत्येक मार्ग पर उसने दो हजार सैनिक और पाँच-पाँच तोपें लगवा दीं। उन तोपों पर यूरोप के लोग नियुक्त थे। बंदूकों को लिये हुए यूरोप का शक्तिशाली दल सरबुलंद खाँ के साथ रक्षक के रूप में था। सरबुलंद खाँ ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के साधनों का आश्रय लिया था और वह युद्ध आरंभ होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

इसी समय अभयसिंह ने अपनी सेना में युद्ध के वाजे वजवाये। उसके वाद दोनों तरफ से भयंकर गोलों की वर्षा आरंभ हुई। लगातार तीन दिनों तक गोलों की मार होती रही। उसमें सरवुलंद खाँ का लड़का मारा गया। तीन दिनों के वाद तलवारों और भालों की मार आरंभ हुई। चम्पावत कुशल सिंह युद्ध करते हुये मारा गया। दोनों तरफ से तलवारों और भालों की जो भीषण मार-काट हो रही थी, उसमें अभयसिंह और वख्तसिंह ने शत्रुओं के वहुत-से आदमियों का संहार किया। अंतिम दिन जव आठ घड़ी दिन वाकी रह गया था, सरवुलंद खाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। परन्तु उसकी अग्रवर्ती सेना का सेनापति उसके वाद भी युद्ध करता रहा। वख्तसिंह ने आगे वढ़कर उस पर आक्रमण किया और अपनी तलवार से सरवुलंद खाँ के सेनापति अलियार के मस्तक के दो टुकड़े कर डाले। उसी समय वह गिर कर मर गया।

अलियार के मरते ही राजपूतों की सेना ने विजय का डंका वजाया। सरवुलंद खाँ घायल होकर युद्ध क्षेत्र से भागा था। अहमदावाद के इस युद्ध में शत्रु के चार हजार चार सौ तिरानवे आदमी मारे गये। इनमें से एक सौ व्यक्ति पालकियों पर वैठकर युद्ध कर रहे थे और आठ हाथियों पर। राठौड़ सेना के एक सौ वीस प्रसिद्ध सरदार और अश्वारोही सैनिक मारे गये। सात सौ सैनिक घायल हुये।

इस युद्ध में सरवुलंद खाँ की पूर्ण रूप से पराजय हुई। उसके सैनिक और सरदार वहुत अधिक संख्या में मारे गये। सरवुलंद खाँ अव निराश हो चुका था। दूसरे दिन प्रातःकाल आकर अभयसिंह के सामने उसने आत्मसमर्पण किया। वह कैद कर लिया गया। उसके साथ-साथ उसके वहुत से आदमी कैद किये गये। अभयसिंह ने सरवुलंद खाँ को वंदी अवस्था में आगरा भेज दिया। उसके साथ जो दूसरे लोग कैद किये गये थे, घायल होने के कारण उनमें से वहुतों की मार्ग में ही मृत्यु हो गई।

इस युद्ध में राठौड़ सेना के अनेक सामन्त और मारवाड़ राजवंश के ऐसे लोग भी मारे गये जिनकी मृत्यु से अभयसिंह को अत्यधिक शोक हुआ। अभयसिंह ने सत्रह हजार नगरों के गुजरात पर, नौ हजार नगरों के मारवाड़ पर और एक हजार नगरों पर अन्यत्र राज्य किया। ईडर, भुज, वागड़, सिन्ध, सिरोही, फतेहपुर, झुंझुनूं, जैसलमेर, नागौर, वाँसवाड़ा, लूनावाड़ा, हलवध आदि राज्यों के राजा और सामन्त अभयसिंह की अधीनता में शासन करते थे।

राजा रामचन्द्र ने विजयादशमी के दिन लंका को विजय किया था। सम्वत् 1787 सन् 1731 ईसवी की उसी विजयादशमी को अभयसिह ने सरवुलंद खाँ पर विजय प्राप्त की और उसे कैद करके आगरा भेज दिया।

विजयी अभयसिंह ने गुजरात पर अधिकार करके सत्रह हजार सैनिकों की सेना वहाँ की रक्षा के लिये रखी और अन्यान्य कीमती चीजों के साथ-साथ गुजरात को लूटकर चार करोड़ रुपये नकद, एक हजार चार सौ तोपें, वंदूकें और युद्ध का वहुत-सा सामान वह अपने साथ जोधपुर ले गया, जिससे उसने अपने दुर्गों को शक्तिशाली वनाया। □

अध्याय –41
अभयसिंह का शेष वृत्तान्त

सरवुलंदखाँ को परास्त करके और जयपुर पर अधिकार करके अभयसिंह जोधपुर चला गया। जयपुर से अपरिमित सम्पत्ति और युद्ध की सामग्री ले जाकर उसने जोधपुर को सुदृढ़ बना लिया। इन दिनों में अभयसिंह ने जो कीर्ति प्राप्त की थी, वह उसके गौरव के लिये किसी प्रकार कम न थी। जोधपुर में उसके जीवन के दिन अब शांतिपूर्वक व्यतीत होने लगे। अभयसिंह ने वृद्धावस्था में प्रवेश किया था। उसकी शक्तियाँ अव धीरे-धीरे निर्वल पड़ने लगी। उसके छोटे भाई वख्तसिंह का साहस और शौर्य उसकी अवस्था के अनुसार बढ़ रहा था।

संघर्ष और संग्राम के दिनों में जो ममता और स्नेह परायणता काम करती है, शान्ति के दिनों में वह कायम नहीं रहती। अभयसिंह ने इन दिनों में जो गौरव प्राप्त किया था, उससे वख्तसिंह के मनोभावों में ईर्ष्या की उत्पत्ति हुई। वह अभयसिंह को द्वेष भरी दृष्टि से देखने लगा। इस ईर्ष्या के प्रमुख कारण क्या थे, इसका कोई उल्लेख उस समय के ग्रंथों में कहीं नहीं मिलता। जो कुछ लिखा गया है उससे जाहिर होता है कि वख्तसिंह अपने आप को साहसी और पराक्रमी समझता था। अभयसिंह को इन दिनों में जो गौरव मिला था, उसका श्रेय वह अपने आपको कम न देता था। इस दशा में मिले हुए गौरव का पूर्ण रूप से अधिकारी अभयसिंह बना। कुछ इस प्रकार की परिस्थितियों ने अभयसिंह के विचारों में उलझन पैदा की।

वख्तसिंह को अपने इन विचारों में राठौड़ कवि करणीदान से सहायता मिली। करणीदान सरवुलंद खाँ के साथ होने वाले युद्ध में शामिल था। उसके बाद जब अभयसिंह जोधपुर आकर शांति और सुख के दिन व्यतीत करने लगा, उस समय करणीदान जोधपुर छोड़कर नागौर में वख्तसिंह के पास चला गया। अभयसिंह के प्रति बख्तसिंह के विचारों में जो ईर्ष्या उत्पन्न हुई थी, उसका स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी यह जाहिर होता है कि राठौड़ कवि करणीदान के जोधपुर से नागौर चले जाने पर उसका प्रादुर्भाव हुआ।

वख्तसिंह कवि करणीदान के साथ अपने उन विचारों के संवंध में परामर्श करता रहा। करणीदान ने दोनों भाईयों के बीच एक षड़यंत्र पैदा करने का कार्य किया। उसके अनुसार निश्चय हुआ कि आमेर के राजा जयसिंह के साथ यदि अभयसिंह का कोई संवर्ष पैदा हो सके तो अपने को सफलता मिल सकती है।

वीकानेर का राजा छोटा किन्तु स्वतंत्र था। वह राठौड़ वंश की एक शाखा में उत्पन्न हुआ था और स्वतंत्र रूप से राज्य कर रहा था। अभयसिंह ने इन्हीं दिनों में उसकी स्वतंत्रता

भंग करने का इरादा किया। दिल्ली के मुगलों की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थीं। इस दशा में मारवाड़ की राठौड़ सेना ने अभयसिंह के आदेश से बीकानेर पर आक्रमण किया। उस समय बीकानेर की सेना ने साहस के साथ उसका सामना किया। मारवाड़ की सेना कई सप्ताह तक बीकानेर को घेरे रही। इस संघर्ष से लाभ उठाने का इरादा बख्तसिंह ने किया। वह पहले से ही करणीदान के परामर्श के अनुसार इस प्रकार के किसी अवसर की प्रतीक्षा में था। इसलिए वह अपनी योजना तैयार करने लगा।

अभयसिंह ने अपने सरदारों और सामन्तों के साथ परामर्श करके बीकानेर पर आक्रमण किया। फिर भी मारवाड़ के राठौड़ों की तरफ से इस संघर्ष में बीकानेर के राजपूतों को अनेक प्रकार की सहायता मिलती रही। वहाँ के लोगों ने अफीम और युद्ध की सामग्री देकर इस समय यदि बीकानेर की सहायता न की होती तो वहाँ का राजा कुछ ही समय के बाद आत्म समर्पण कर देता।

मारवाड़ के राठौड़ों के द्वारा बीकानेर को इन दिनो में जो सहायता मिली, उसका कारण है। मारवाड़ और बीकानेर के राजपूतों का मूल वंश एक ही था। राठौड़ों के सहायता करने का यही प्रमुख कारण था। इस आपसी युद्ध का लाभ उठाने के लिए बख्तसिंह ने करणीदान से परामर्श किया। करणीदान इस प्रकार की बातों में बहुत चतुर और दूरदर्शी था। उसने बख्तसिंह से कहा – "अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण करके आमेर के राजा जयसिंह का अपमान किया है, इस आशय को लेकर आप एक पत्र जयसिंह के पास भेजिए और उसमें साफ-साफ जयसिंह को लिखिए कि अभय सिंह ने यह आक्रमण करके आपको युद्ध के लिए आमंत्रित किया है। इसलिए अपने अपमान का बदला लेने के लिए आप जोधपुर पर आक्रमण कर सकते हैं।"

करणीदान के परामर्श के अनुसार बख्तसिंह ने उस आशय का एक पत्र लिखकर जयसिंह के पास भेज दिया और उसके साथ ही यह भी लिखा गया कि इस कठिन अवसर पर क्या करना चाहिए।

राजा जयसिंह का जितना ही बुढ़ापा आता जाता था, अफीम के सेवन की आदत उतनी ही उसमें बढ़ती जाती थी। इससे कभी-कभी वह सही बातों पर विचार करने में असमर्थ हो जाता। अतएव उसने अपने मंत्रियों और उत्तरदायी कार्यकर्त्ताओं से कह रखा था कि जिस समय हम अफीम के अधिक नशे में हों, उस समय हमारे सामने कोई राजनीतिक मामला अथवा राज्य का कोई गंभीर कार्य उपस्थित न किया जाये।

नागौर के अधिकारी बख्तसिंह का पत्र आमेर राजदरबार में आया। सभी सामन्तों ने उन पर विचार व्यक्त किये और अंत में सब की सम्मति से निर्णय किया गया कि मारवाड़ और बीकानेर के राजपूत अपने ही वंशज हैं। इसलिए आमेर के राजा का इरादा उसमें हस्तक्षेप करने का बिल्कुल नहीं है। यह निर्णय लिखकर बख्तसिंह के पास भेज दिया गया। उसे पढ़कर बख्तसिंह ने जो योजना बनाई थी, वह व्यर्थ हो गई। लेकिन बीकानेर का राजदूत उस समय आमेर के राज-दरबार में बैठा था। उसकी मित्रता आमेर के प्रधान मंत्री विद्याधर के साथ थी।[1] उसकी सहायता से राजदूत ने राजा जयसिंह से भेंट की और उसने प्रार्थना करते हुए कहा – "महाराज बीकानेर पर इस समय भयानक विपद है। हमारे राजा ने

1. विद्याधर एक बंगाली ब्राह्मण था। वह शास्त्रों का पंडित था और ज्योतिष के शास्त्र का महान विद्वान था। वर्तमान जयपुर नगर का निर्माण उसी की सुयोग्य सम्मति के आधार पर हुआ था। आमेर का राजा उसका बड़ा सम्मान करता था।

मारवाड़ के राजा की प्रधानता कभी स्वीकार नहीं की। इसलिए राजा अभयसिंह ने आक्रमण करके बीकानेर को नष्ट-भ्रष्ट करने की चेष्टा की है।"

राजूदत की इन बातों ने राजा जयसिंह को प्रभावित किया। स्वाभिमान में आकर उसने राजा अभयसिंह को लिखा –"हम भी एक ही वंश के साथ सम्बंध रखते हैं। इसलिये बीकानेर पर जो आक्रमण किया है, उसे वापस ले लेना चाहिये।"

पत्र की इन पंक्तियों को लिखकर जयसिंह ने फिर अफीम का सेवन किया और वह पत्र को बंद करने लगा। बीकानेर का राजदूत राजनीति कुशल था। उसने राजा जयसिंह के मन की परिस्थिति का लाभ उठाया। उसने प्रार्थना करते हुए कहा –"महाराज? दो बातें इस पत्र में यदि आप उचित समझें तो और आ जानी चाहिये। एक तो यह कि बीकानेर से राठौड़ सेनायें वापस चली जायें और दूसरी यह कि यदि ऐसा न हुआ तो मेरा नाम जयसिंह है, इसको स्मरण रखिये।"

अफीम के नशे में राजा जयसिंह ने राजदूत की बात सुनी और बिना कुछ सोचे समझे, दूत के कहने के अनुसार उसने पत्र में दो बातें और लिख दीं। बीकानेर का राजदूत अपनी इस सफलता को देखकर प्रसन्न हुआ। राजा जयसिंह से उस पत्र को लेकर बीकानेर का राजदूत वहाँ से विदा हुआ और उसने किसी दूसरे दूत के द्वारा वह पत्र अभयसिंह के शिविर में भेज दिया।

बीकानेर के राजदूत के चले जाने पर आमेर का प्रधानमंत्री राजा जयसिंह के पास पहुँचा। ज्यसिंह ने प्रधानमंत्री से उस पत्र का जिक्र किया,.जो उसने राजा अभयसिंह के पास लिखकर भेजा था। प्रधानमंत्री ने सुनकर कहा – "आप राजा हैं, जो ठीक समझते हैं करते हैं। लेकिन यह पत्र जो राजा अभयसिंह के पास भेजा गया है, मेरी समझ में कुछ अच्छा न सावित होगा। इसलिये यदि आप मुनासिब समझें तो किसी आदमी को भेजकर रास्ते से पत्र ले जाने वाले दूत को वापस बुला लिया जाये।"

राजा जयसिंह की समझ में आ गया। उसने अपना पत्र वापस मांगने के लिये दूत पर दूत भेजे। परन्तु पत्र ले जाने वाला दूत अपने कार्य में होशियार था। राजा जयसिंह के भेजे हुये दूत उसको पा न सके। दोपहर को अनेक सामन्त आमेर के भोजन गृह में खाना खाने के लिये एकत्रित हुए। राजा जयसिंह की उपस्थिति में वृद्ध सामन्त दीपसिंह ने कहा –"महाराज, जो पत्र आपने राजा अभयसिंह के पास भेजा है, उसका परिणाम कुछ अच्छा दिखाई नहीं देता।"

दीपसिंह की इस वात को सुनकर आमेर के सामन्त कुछ देर तक आपस में बातें करते रहे। राजा अभय सिंह ने जयसिंह का पत्र पाकर पढ़ा और उसका उत्तर देते हुए उसने लिखा – "हमारे किसी विवाद में हस्तक्षेप करने और इस प्रकार का पत्र लिखने का आपको क्या अधिकार है? यदि आपका नाम जयसिंह है तो याद रखिये, मेरा नाम भी अभयसिंह है।"

राजा अभयसिंह का यह पत्र जयसिंह के दरबार में आया। सभी सामन्तों के सामने वह खोल कर पढ़ा गया। कुछ देर तक सभी लोग चुपचाप बैठे रहे। उसके बाद कुछ बातें हो चुकने पर दीपसिंह ने कहा – "महाराज, आपके पत्र के जाने के बाद जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है, वह सामने है। अव हम सब सामन्तों को गंभीरता के साथ विचार करके इस राज्य के सम्मान की रक्षा के लिये तैयार हो जाना चाहिये।"

सभी सामन्तों ने दीपसिंह का समर्थन किया। उसी समय राज्य के सामन्तों से युद्ध के लिये तैयार होकर आने के लिए कहा गया। आमेर राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने

लगीं। कुशवाहा सामन्त एक-एक करके अपनी सेनायें लिये हुए आमेर की राजधानी के बाहर एकत्रित होने लगे। बूँदी राज्य के हाड़ा, करौली के यादव, शाहपुरा के सीसोदिया, खींची लोग तथा जाट सेनायें आकर वहाँ पहुँच गयीं। आमेर राज्य के पंचरंगी झंडे के नीचे सब मिलाकर एक लाख सैनिकों का समारोह हुआ। इस विशाल सेना को लेकर अभयसिंह के साथ युद्ध करने के लिये जयसिंह मारवाड़ की तरफ रवाना हुआ। साथ में युद्ध के बाजे बज रहे थे। मारवाड़ की सीमा पर गगवाना नामक स्थान पर आमेर राज्य की विशाल सेना पहुँच गयी और वहीं पर मुकाम करके वह अभयसिंह के आने का रास्ता देखने लगी।

अभयसिंह को आमेर की इस विशाल सेना के आने का समाचार मिला। उसने बीकानेर को छोड़ दिया और अपनी सेना लेकर आमेर की सेना की तरफ रवाना हुआ। बख्तसिंह को नागौर में इन सब बातों का समाचार मिला। यह जानकर कि आमेर और मारवाड़ के बीच एक भयानक संग्राम होने जा रहा है, वह बहुत चिंतित हो उठा। उसने इस भीषण परिस्थिति की पहले कल्पना भी न की थी। ईर्ष्यालु होकर अभयसिंह के प्रति उसने जो एक योजना बनायी थी, वह कुछ और चीज थी। परन्तु आपसी द्वेष के परिणाम स्वरूप राठौर वंश का जो यह सर्वनाश होने जा रहा था, उसको देखकर और उसके सम्बंध में अनेक प्रकार की कल्पनायें करके वह अत्यंत भयभीत हो उठा। उसकी योजना का यह उद्देश्य न था। वह राठौड़ वंश का सर्वनाश देखना नहीं चाहता था। इसलिये उसकी समझ में आ गया कि आमेर की यह विशाल सेना अभय सिंह पर आक्रमण करके मारवाड़ का विध्वंस और विनाश करेगी और उस अवस्था में न केवल मारवाड़ की शक्तियाँ नष्ट हो जायेगी, बल्कि मारवाड़ राज्य को जो गौरव प्राप्त हुआ है, उसका पतन हो जायेगा।

बख्त सिंह नागौर से चलकर अभयसिंह के पास पहुँचा और वर्तमान परिस्थिति पर विचार करते हुए उसने कहा – "बीकानेर को जिस प्रकार आपने घेरा था, उसका घेरा वैसा ही रहने दीजिये। वहाँ से इस समय सेना हटाना ठीक नहीं है। आमेर के राजा के साथ युद्ध करने के लिये मैं अकेला काफी हूँ। अभयसिंह ने उसकी बातों को स्वीकार कर लिया।

बख्तसिंह नागौर लौट गया। उसने अपने सामन्तों को युद्ध के लिये तैयार होकर आने के लिये संदेश भेजा। नागौर राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। आने वाले सामन्तों को अफीम का शर्बत पिलाना शुरू किया गया और उसके बाद कुमकुम का जल उनके ऊपर छिड़का जाने लगा। नागौर के सभी सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आकर वहाँ पहुँच गये। सभी ने अफीम का शर्बत पिया। उसके बाद नागौर में एकत्रित आठ हजार राजपूतों की सेना में युद्ध के बाजे बजे।

उस सेना को लेकर बख्त सिंह नागौर के बाहर निकला और एक बाजरे के खेत के पास जाकर बख्त सिंह ने ऊँचे स्वर से कहा – "इस समय हम आमेर की विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिये जा रहे हैं। इसलिये जो लोग उस युद्ध में जाने के लिये अपने हृदय से उत्सुक हों, वही हमारे साथ चले और बाकी लोग प्रसन्नता के साथ अपने घरों को लौट जायें। यदि आप लोगों में से कोई पराजित होने की अवस्था में भागने की इच्छा रखता हो तो मैं ईश्वर का नाम लेकर उसको लौट जाने की आज्ञा देता हूँ।

इसके बाद बख्तसिंह ने अपना घोड़ा बाजरे के खेत में ले जाकर दौड़ाया। इसका अभिप्राय यह था कि उसके हट जाने पर जो लोग लौटकर घर जाना चाहते हैं, वे चले जायेंगे। कुछ देर में बाजरे के खेत से लौट कर बख्तसिंह ने देखा कि आठ हजार सैनिकों और सरदारों में पाँच हजार से कुछ अधिक लोग युद्ध के लिये मौजूद हैं। बाकी लोग वहाँ

से चले गये हैं। उनको देखकर वख्त सिंह ने समझ लिया कि युद्ध करने के लिये असली सैनिक इतने ही हैं।

अपनी छोटी-सी सेना को लेकर बख्तसिंह मारवाड़ के उस स्थान की तरफ बढ़ा, जहाँ पर आमेर के राजा जयसिंह की सेना मौजूद थी। नागौर की सेना को आता हुआ देखकर आमेर की सेना तैयार होकर युद्ध के लिये आगे बढ़ी। कुछ समय में नागौर की सेना के निकट आ जाने पर बख्तसिंह ने आक्रमण करने की आज्ञा दी। उसी समय शूरवीर राठौड़ सैनिक एक साथ अपने हाथों में तलवारें और भाले लिये हुए आमेर राज्य की सेना पर टूट पड़े। उस भयानक मारकाट में रक्त के नाले बह निकले। युद्ध करते हुए बख्त सिंह ने एक वार अपनी सेना की तरफ देखा। उसे मालूम हुआ कि उसके पाँच हजार सैनिकों में अब केवल साठ सैनिक वाकी रह गये हैं, वाकी सव मारे गये।

इसी समय नागौर के श्रेष्ठ सामन्त गजसिंह पुरापति ने बख्त सिंह से कहा – "महाराज, यहाँ पर एक घना जंगल है। वहाँ चल कर आश्रय लीजिये।"

बख्त सिंह ने पूछा – "सामने का यह मार्ग कौन सा है? जिस रास्ते से हम आये हैं, उस पर होकर हम नहीं जायेंगे।"

इसी समय दूर से वख्त सिंह ने आमेर के राजा जयसिंह का पंचरंगा झंडा उड़ता हुआ देखा। उसने समझ लिया कि यहाँ पर जयसिंह मालूम होता है। उसने बड़ी तेजी के साथ अपने साठ आदमियों को लेकर जयसिंह के शिविर पर आक्रमण किया। उसका शरीर रक्तमय हो रहा था। वख्तसिंह को घोड़े पर तेजी से आता हुआ देखकर दीपसिंह ने घवरा कर जयसिंह को तुरंत भागने का संकेत किया। जयसिंह ने पहले बख्तसिंह का सामना करने की चेष्टा की। परन्तु उसके वाद उत्तर की तरफ से भाग कर वह कुंडला नामक एक ग्राम में पहुँच गया।

भागते समय जयसिंह ने कहा – "मैंने सत्रह युद्ध देखे हैं परन्तु आज के युद्ध की तरह किसी भी युद्ध में किसी को तलवार के द्वारा विजय प्राप्त करते हुए नहीं देखा।" आमेर का राजा जयसिंह राजस्थान में अत्यंत बुद्धिमान और शिक्षित राजा माना जाता था। इस युद्ध में केवल साठ राठौड़ों के डर से भाग कर उसने अपना गौरव नष्ट किया। उसकी आज की इस कायरता से उस वात का समर्थन होता है, जो आम तौर से राजस्थान में कही जाती है- "एक राठौड़ दस कछवाहों के वरावर होता है।"

वख्तसिंह ने डर कर भागी हुई आमेर की सेना पर तीसरी बार आक्रमण करने का इरादा किया। परन्तु राठौड़ कवि करणीदान ने उसको रोक दिया। इस समय जो राठौड़ सेना वख्तसिंह के साथ युद्ध में जाने के लिये आयी थी, करणीदान भी उसमें था।

आमेर की सेना के चले जाने के वाद वख्तसिंह ने युद्ध के मैदान में जो राठौर मारे गये थे, उनका स्मरण किया। उसके कितने ही प्रिय सामन्तों ने इस युद्ध में अपने प्राणों का विसर्जन किया था, उसके परिवार के कितने ही लोग मारे गये थे। इन सभी लोगों से वख्तसिंह वहुत स्नेह करता था। उन सभी लोगों का स्मरण करके और उनके विश्वासपूर्ण व्यवहारों को याद करके बख्तसिंह युद्ध के क्षेत्र में रो उठा। इस युद्ध के पहले ही बख्तसिंह ने जो अनुमान लगाया था, उससे उसको मालूम हुआ था कि इस युद्ध में सभी प्रकार राठौड़ वंश का सर्वनाश होने जा रहा है। दोनों राज्यों के राजपूत इसी राठौर वंश से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए जो सर्वनाश हाने जा रहा था, उससे वह पहले ही भयभीत हुआ था। जिस समय वख्तसिंह अपने विश्वासी सामन्तों और प्रिय कुटुम्बियों के लिये अश्रुपात कर रहा था, अभयसिंह अपनी सेना के साथ वहाँ आ पहुँचा। उसने बख्तसिंह को समझाते हुए कहा –

"आज के इस युद्ध में मैं तुम्हारी सहायता के लिये नहीं आ सका। फिर भी तुमने अपने थोड़े से सैनिकों को लेकर इस युद्ध में जो विजय प्राप्त की है, उससे मारवाड़ के राठौड़ों का गौरव बहुत ऊँचा हो गया है।"

बड़े भाई अभयसिंह के मुख से प्रशंसा के इन शब्दों को सुनकर वख्तसिंह को बहुत शांति मिली। उसी समय उसने प्रतिज्ञा करते हुये कहा – "जयसिंह युद्ध से भाग कर चला गया है, मैं उसे आमेर के दुर्ग से पकड़कर लाऊँगा।"

आमेर के राजा जयसिंह ने अफीम के नशे में जो पत्र अभयसिंह को लिखा था, उसका भयानक परिणाम उसके सामने आया। वीकानेर के राजदूत ने उसको अफीम के नशे में देखकर उससे अनुचित लाभ उठाया और जो वाक्य जयसिंह को अभयसिंह के पत्र में न लिखने चाहिये थे, उनको उस राजदूत ने जयसिंह से लिखवा लिया। मादक पदार्थों के सेवन का जो परिगाम होना चाहिये, वह जयसिंह के सामने आया। अभयसिंह के साथ उसकी शत्रुता वढ़ी, युद्ध में वुरी तरह उसकी पराजय हुई और संग्राम से भाग जाने के कारण उसके जीवन का समस्त गौरव मिट्टी में मिल गया।

इस युद्ध से यह जरूर हुआ कि वीकानेर विध्वंस और विनाश से बच गया। युद्ध के पश्चात् मेवाड़ के राणा ने मध्यस्थ होकर आमेर, वीकानेर और मारवाड़ के राजाओं के वीच शांति और मैत्री कायम करने की चेष्टा की। इसमें राणा को सफलता मिली और वे तीनों राजा आपस में मिलकर एक हो गये।

राजपूत युद्ध में जाने के पहले अपने देवता के दर्शन करते थे और अपनी सेना के साथ वंश के आराध्यदेव को अपने साथ में ले जाते थे। वख्तसिंह ने इस युद्ध में भी यही किया था। युद्ध के समय वख्तसिंह की देवी की मूर्ति जयसिंह के अधिकार में पहुँच गयी थी। जयसिंह उस मूर्ति को अपने साथ जयपुर ले गया और वहाँ के देवता की मूर्ति के साथ उस देवी की मूर्ति का विवाह करके वड़ा उत्सव किया। इसके वाद उन दोनों मूर्तियों को जयसिंह ने वख्तसिंह के पास भेज गया।

अभयसिंह के जीवन में यह आखिरी युद्ध था। उसके पश्चात् उसने फिर कोई युद्ध नहीं किया। सम्वत् 1806 सन् 1750 ईसवी में अभयसिंह की जोधपुर में मृत्यु हो गयी। वह अत्यंत तेजस्वी और शूरवीर था। वृद्धावस्था में अफीम का अधिक सेवन करने के कारण उसमें आलसी होने का एक दुर्गुण पैदा हो गया था। लेकिन उसके कारण उसने मारवाड़ के गौरव में कभी कोई कमी नहीं आने दी।

जयपुर के कछवाहों और मारवाड़ के राठौड़ों में यद्यपि कोई विशेप अंतर नहीं है और दोनों राजपूत एक ही मूल वंश से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु राजस्थान में कछवाहे निर्वल और कायर माने जाते थे। मारवाड़ के राठौड़ आम तौर पर कछवाहों को साहसहीन समझ कर उनसे घृणा किया करते थे। यद्यपि राठौड़ों और कछवाहों में वैवाहिक सम्वंध चलते थे।

किसी समय अभयसिंह ने दिल्ली के वादशाह के सामने हँसी करते हुये जयसिंह से कहा था – "आपका वंश कुशवाहा है और यह वंश कुश से पैदा हुआ है। कुश काटने में जिस प्रकार तीक्ष्ण होता है, आपकी तलवार भी उतनी ही तेज है।" अभयसिंह की यह बात जयसिंह को अच्छी न लगी। उसने वादशाह के सामने इस वातचीत से अपना उपहास समझा। उसने उस समय कुछ न कहा। परन्तु इसके बदले में वह अभयसिंह का अपमान करने के तरह-तरह के उपाय सोचता रहा।

राजस्थान में जयसिंह ने अपनी विद्वत्ता के लिए और अभयसिंह ने तलवार चलाने में अपूर्व ख्याति पायी थी। कृपाराम दिल्ली के मुगलों का कोषाध्यक्ष था। जयसिंह उसके साथ

अपना मेल रखता था। एक दिन वादशाह के पास कृपाराम मौजूद था। अभयसिंह और जयसिंह भी वहाँ पर मौजूद थे। अवसर पाकर कृपाराम अभयसिंह के वल पराक्रम की प्रशंसा करने लगा। उसी समय वादशाह ने कहा – "मैंने सुना है कि आप तलवार चलाने में वहुत ख्याति रखते हैं।"

वादशाह की वात सुनकर अभयसिंह ने उत्तर दिया – "मैं आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग करता हूँ।" वादशाह ने कहा – "किसी मौके पर मैं आपकी तलवार का कमाल देखना चाहता हूँ।" अभयसिंह ने उसको स्वीकार कर लिया।

वादशाह की आज्ञा से अभयसिंह की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक भयानक भैंसा लाया गया और सभी लोगों से जाहिर किया गया कि आज अभयसिंह इस भैंसे के साथ अपनी तलवार का हाथ दिखावेगा। इस वात को सुनते ही वहाँ पर वहुत-से लोग दर्शक वन कर एकत्रित हुए। एक वड़ी भीड़ के वीच में वह भयानक और खूँखार भैंसा लाकर खड़ा किया गया। उस भैंसे को देखते ही लोगों को भय मालूम होता था। वह मनुष्यों पर वड़ी तेज़ी के साथ आक्रमण करता था।

उस भैंसे को देखकर अभयसिंह अपने विश्राम गृह में गया और वहाँ उसने अन्य दिनों की अपेक्षा दोगुनी अफीम का सेवन किया। उस समय उसे मालूम हो गया कि जयसिंह ने अपमानित करने के लिए यह षड़यंत्र रचा है। वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा। विश्राम गृह से लौटकर वह वादशाह के पास आकर खड़ा हो गया।

वादशाह ने मुस्कराते हुये अभयसिंह की तरफ देखा। अभयसिंह वादशाह का अभिप्राय समझ गया। वह अपने स्थान से भैंसे की तरफ वढ़ा। भैंसा वड़ी तेजी से अभयसिंह की तरफ चला। उसके पास आते ही अभयसिंह ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों सींग पकड़ लिए और उसको घसीट कर वह जयसिंह की तरफ ले गया। वादशाह ने अभयसिंह को उधर जाने से रोका। लेकिन अभयसिंह ने इसकी कुछ परवाह न की और उसने अपने दाहिने हाथ में तलवार लेकर एक ही आघात से उस भयानक और खूँखार भैंसे की गर्दन काट कर कर उसका सिर अलग कर दिया। गर्दन के कटते ही उस भैंसे का शरीर जयसिंह के पास गिरा और दवते-दवते वह वच गया। वादशाह ने अभयसिंह की इस वहादुरी की प्रशंसा की।

मारवाड़ पर अभयसिंह के शासन काल में प्रसिद्ध नादिरशाह ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था। उस समय घवराकर वादशाह मोहम्मदशाह ने नादिरशाह के साथ युद्ध करने के लिये राजपूत राजाओं को सेनाओं के साथ वुलवाया। परन्तु कोई राजपूत राजा नहीं आया। अभयसिंह भी नहीं गया।

करनाल के युद्ध में मोहम्मदशाह की पराजय हुई। नादिरशाह की विजयी सेना ने दिल्ली में प्रवेश करके भयानक नरसंहार किया और अमानुषिक अत्याचारों के साथ नादिरशाह की फौज ने वहाँ पर लूट-मार की। राजस्थान का कोई भी राजा नादिरशाह के विरोध के लिए आगे नहीं वढ़ा।

सीहाजी के वंश में जितने भी राठौड़ मारवाड़ के सिंहासन पर वैठे, अभयसिंह उनमें से एक योग्य शासक था लेकिन आमेर के राजा जयसिंह के कहने से उसने दिल्ली दरवार मे जाकर मुगलों की जो अधीनता स्वीकार की थी और उसके वाद उसके पिता अजीतसिंह की जिस प्रकार हत्या हुई थी, उसके द्वारा अभयसिंह के गौरव को एक भयानक आघात पहुँचा। सभ्यता की प्रत्येक अवस्था में अपराध स्वयं अपराधी को दंड देता है। अभयसिंह को उसका दंड मिला। उस दंड के फलस्वरूप मारवाड़ में अभयसिंह के मरते ही जो

आपसी फूट और कलह उत्पन्न हुई, उससे मारवाड़ का राज्य किस प्रकार छिन्न-भिन्न हुआ, इसके विवरण विस्तार के साथ आगामी पृष्ठों में लिखे जायेंगे।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि अजीतसिंह को मारने के लिए किस प्रकार षड़यंत्र से काम लिया गया था, उसका दुष्परिणाम मारवाड़ के राठौड़ों को थोड़े ही दिनों के बाद भोगना पड़ा और जो मारवाड़ इन दिनों में राजस्थान के अन्य राज्यों की अपेक्षा गौरवपूर्ण हो रहा था, उसके विनाश का बीजारोपण अजीतसिंह की मृत्यु के साथ-साथ हुआ।

□

अध्याय –42
रामसिंह व बख्तसिंह को शत्रुता

अभयसिंह की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का रामसिंह जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। अभयसिंह के मरने के ठीक बीस वर्ष पहले सिरोही के मानसिंह की लड़की और अभयसिंह की रानी से रामसिंह का जन्म हुआ था। सिरोही की देवड़ा शाखा चौहान वंश की एक प्रधान शाखा है। रामसिंह स्वभाव का अत्यंत क्रोधी और अदूरदर्शी था। मारवाड़ का राज्य सिंहासन प्राप्त करने के समय तक उसने अपने चरित्र का जो परिचय दिया, उससे कदाचित कोई भी प्रसन्न न था।

रामसिंह के अभिषेक में मरुभूमि के प्रत्येक सामन्त और श्रेष्ठ व्यक्ति ने राजधानी जोधपुर में आकर नवीन राजा के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था। परन्तु उस अभिषेक में नागौर के शासक बख्तसिंह ने आकर भाग नहीं लिया। इस शुभ अवसर पर उसके न आने का क्या कारण था, इसका कोई उल्लेख और स्पष्टीकरण उस समय के भट्ट ग्रंथों में नहीं मिलता।

रामसिंह बख्तसिंह का भतीजा था और रामसिंह के अभिषेक में बख्तसिंह का आना अत्यंत आवश्यक था। उस अभिषेक में रामसिंह के मस्तक पर राजतिलक करना बख्तसिंह का परम कर्त्तव्य था। परन्तु न तो वह स्वयं उसमें गया और न अपने प्रतिनिधि के रूप में उसने किसी सामन्त को भेजा। उसकी तरफ से उस अवसर पर एक धात्री जोधपुर गई थी। राजस्थान में धात्री को माता के समान सम्मान मिलता है।

उस धात्री के भेजने में बख्तसिंह का क्या अभिप्राय था, इसका भी कोई उल्लेख उस समय के ग्रंथों में नहीं पाया जाता। उस धात्री के साथ रामसिंह ने जो व्यवहार किया, वह किसी प्रकार सम्मानपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इतना ही नहीं, बल्कि रामसिंह के उस व्यवहार को निन्दनीय कहा जाना किसी प्रकार अनुचित नहीं हो सकता।

रामसिंह ने इतना ही नहीं किया, बल्कि राजसिंहासन पर बैठने के बाद जालौर का राज्य छोड़ देने के लिए उसने अपने चाचा बख्तसिंह के पास दूत भेजा। अभिषेक के अभी बहुत थोड़े दिन बीते थे। चाचा और भतीजे में विद्वेष की आग सुलगने लगी।

रामसिंह ने दूत भेजने के बाद बख्तसिंह के पास अपना एक पत्र भी भेजा और नागौर राज्य पर आक्रमण करने की वह तैयारी करने लगा। इस अवसर पर रामसिंह ने अपने सुयोग्य सामन्तों और मंत्रियों के साथ परामर्श न किया। उसने निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के साथ बात की और उन्हीं के परामर्श से उसने काम किया। इन निम्न श्रेणी के लोगों में अमियाँ नाम का एक कर्मचारी था। उसके पूर्वज जोधपुर के प्रधान तोरण द्वार पर

नगाड़ा बजाने का काम करते थे। अमियाँ भी जोधपुर का एक कर्मचारी था और वह अपने पिता के स्थान पर काम करता था। यह अमियाँ रामसिंह का एक प्रिय और प्रधान सलाह देने वाला बन गया था।

रामसिंह और अमियाँ के स्वभावों की बहुत सी बातें मिलती जुलती थीं। रामसिंह जो चाहता था, अमियाँ उसी का समर्थन करता था। दोनों के बीच मित्रता का यही प्रधान कारण था। इसी अमियाँ ने रामसिंह को बख्तसिंह से युद्ध करने का परामर्श दिया था।

मारवाड़ के प्रधान चम्पावत सामन्त कुशलसिंह ने जब सुना कि रामसिंह अपने चाचा बख्तसिंह के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहा है तो वह चिन्तित हो उठा और जोधपुर पहुँचकर उसने रामसिंह को समझाने की चेष्टा की। कुशलसिंह के वहाँ पहुँचते ही और अपने स्थान पर बैठते ही रामसिंह ने उसकी तरफ देखा और आवेश में आकर उसने कहा – "आपका मुख न देखना ही मैं अच्छा समझता हूँ।"

रामसिंह के मुख से इस प्रकार के कड़वे शब्द को सुनकर सामन्त कुशलसिंह ने उसकी तरफ देखा और फिर गंभीर होकर उसने कहा – "आपके इस प्रकार के व्यवहार को देखकर आपके चाचा बख्तसिंह को भी इसी प्रकार का व्यवहार प्रकट करने का अधिकार है। आपने बख्तसिंह के साथ जिस प्रकार का व्यवहार आरंभ किया है उसका परिणाम आपके सामने अच्छा नहीं, यह कह कर कुशलसिंह वहाँ से उठकर चल दिया और अपनी सेना के साथ वह जोधपुर के प्रधान राजकवि के मूंधियापाड़ा नगर की तरफ रवाना हुआ। यह राजकवि समस्त मरुभूमि में बड़े सम्मान के साथ देखा जाता था और उसकी वार्षिक आमदनी श्रेष्ठ सामन्तों की आमदनी की तरह एक लाख रुपये से कम न थी।

जोधपुर से चलकर कुशलसिंह उस राजकवि के यहाँ पहुँचा। बख्तसिंह ने जब सुना कि मारवाड़ के प्रधान सामन्त कुशलसिंह ने जोधपुर छोड़ कर नागौर राज्य की सीमा में प्रवेश किया है तो वह उसी समय कुशलसिंह का स्वागत करने के लिये रवाना हुआ। कुशलसिंह के पास पहुँच कर बख्तसिंह ने उसको सोते हुआ पाया। सामन्त को जगाना उचित न समझ कर वहीं पर वह भी लेट गया।

सवेरा होते ही कुशलसिंह ने अपने अनुचरों को हुक्का लाने की आज्ञा दी। उसी समय अनुचरों ने संकेत द्वारा बख्तसिंह की तरफ उसका ध्यान आकर्षित किया। कुशलसिंह तुरंत आश्चर्यचकित होकर खड़ा हो गया। इसी समय बख्तसिंह की भी नींद टूट गई। दोनों में कुछ देर तक बातें होती रही। अंत में सामन्त कुशलसिंह ने विनम्र होकर राजा बख्तसिंह से कहा –" राजन, मेरे इस मस्तक पर अब आप का अधिकार है।" राजकवि वहाँ पर मौजूद था। बख्तसिंह ने उससे सामन्त की ओर संकेत करके कहा – "अहवा से आप की पत्नी और परिवार के लोगों को आप नागौर ले आइये। राज कवि ने इस आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहा –"आज से मैंने भी जोधपुर से सदा के लिए अपना सम्बंध विच्छेद कर लिया है।"

बख्तसिंह ने राजकवि की बात को सुनकर संतोष प्रकट करते हुए कहा – "जोधपुर और नागौर में कोई अंतर हमको और आपको नहीं समझना चाहिये। अपने पास की बाजरे की एक रोटी को हम लोग आपस में बाँटकर खायेंगे।" बख्तसिंह ने अपनी व्यावहारिक चतुरता के द्वारा सामन्त कुशल सिंह और राजकवि के अंतरतम में सदा के लिए स्थान बना लिया।

रामसिंह बख्तसिंह को युद्ध की तैयारी का मौका न देकर नागौर पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। खेरली नामक स्थान पर दोनों तरफ से एक युद्ध हुआ। उसके पश्चात

छह स्थानों पर लगातार दोनों सेनाओं की मार-काट हुई। अंत में रामसिंह की पराजय हुई। वह युद्ध क्षेत्र से भाग गया।

वख्तसिंह विजयी होकर अपनी सेना के साथ जोधपुर की तरफ रवाना हुआ। उसके जोधपुर के निकट पहुँचते ही राठौड़ों ने उसका स्वागत किया। वहाँ पहुँचकर वख्तसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया और उसके वाद वह श्रेष्ठ राठौड़ों के परामर्श से वहाँ के सिंहासन पर वैठा। वगड़ी के जेतावत सामन्त ने वख्तसिंह के मस्तक पर राजतिलक किया। इसके वदले में उस सामन्त को उपाधि दी गई।

वख्तसिंह ने रामसिंह को पराजित करके न केवल तलवार के वल से जोधपुर का राजसिंहासन प्राप्त किया, वल्कि उसने अच्छे व्यवहारों के द्वारा वहाँ के वहुमत से सामन्तों की सहानुभूति भी अपने पक्ष में कर ली। इस दशा में रामसिंह से कोई अन्देशा उसको न रह गया। फिर भी उसने जोधपुर के श्रेष्ठ पुरुषों को अपने पक्ष में कर लेने का इरादा किया।

राजस्थान के प्रत्येक राज्य में पुरोहित और कवि पूर्वजों के अधिकारी माने जाते हैं। इस प्रकार वहाँ एक पुरानी व्यवस्था है। उसके अनुसार मंत्री के पद पर उसका पुत्र और पुरोहित के पद पर पुरोहित का पुत्र नियुक्त किया जाता है। यही व्यवस्था राज्याधिकार के सम्वंध में भी यहाँ पर है। इसीलिए अयोग्य और उग्र स्वभाव का होने पर भी रामसिंह अपने पिता अभयसिंह के सिंहासन पर वैठा था। लेकिन वह इस पैतृक अधिकार को अधिक समय तक भोग न सका। उसने अपने चाचा वख्तसिंह के विरुद्ध आक्रमण किया और उसके फलस्वरूप वह सिंहासन से उतारा गया। जोधपुर राज दरवार के सभी मंत्रियों और सामन्तों ने वख्तसिंह का समर्थन किया। परन्तु वहाँ का पुरोहित वख्तसिंह के पक्ष में न रहा। उस पुरोहित का नाम था जग्गू। इस जग्गू ने रामसिंह को उग्र और अयोग्य समझकर भी समर्थन किया था। जोधपुर के सिंहासन पर वख्तसिंह के वैठने पर रामसिंह ने राजा जयपुर के यहाँ जाकर आश्रय लिया। पुरोहित जग्गू पूरी तौर पर रामसिंह के पक्ष में था। उसने रामसिंह को फिर से राजसिंहासन पर वैठाने का प्रयास किया और इसके लिए मराठों की सहायता प्राप्त करने की इच्छा से जग्गू दक्षिण की तरफ चला गया।

जग्गू का कार्य वख्तसिंह से छिपा न रहा। उसने सोचा कि पुरोहित जग्गू मराठों की सहायता लेकर मारवाड़ के विनाश की चेष्टा कर रहा है। इसलिए इस पुरोहित को अपने अनुकूल वनाने की कोशिश क्यों न की जाये। इसके सम्वंध में अनेक प्रकार की वातें सोच-समझकर वख्तसिंह ने राजनीति से काम लिया। उसने कविता में एक पत्र लिखकर जग्गू पुरोहित के पास भेजा। उसका आशय इस प्रकार है –

"हे मधुकर जिस फूल के सौरभ पर आप आसक्त हो रहे हैं, उसका पेड़ आँधी के आने से नष्ट होकर गिर गया है, उसके सभी पत्ते सूख गये हैं। अव आप क्यों वेकार उसके काँटों में उलझना चाहते हैं।"

वख्तसिंह की इस स्पष्ट वात को पढ़कर पुरोहित को वड़ी प्रसन्नता हुई। वख्तसिंह ने पुरोहित का सम्मान करने के लिये संदेश भेजा, जिसे पुरोहित ने स्वीकार कर दिया।

वख्तसिंह ने जोधपुर के सिंहासन पर वैठकर वड़ी वुद्धिमानी के साथ वहाँ के लोगों को अपने अनुकूल वना लिया था। उसमें इस प्रकार के गुण थे, जिनसे राजस्थान के लोग सदा प्रसन्न रहते थे। रामसिंह का दूत दक्षिण में पहुँचा और वहाँ के मराठा नेताओं से मिलकर रामसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर वैठाने के लिये उसने पूरी चेष्टा की। दक्षिण के मराठा रामसिंह की सहायता करने के लिये तैयार हो गये। लेकिन जव उनको मालूम

हुआ कि राजस्थान के अधिकांश राजा और सामन्त रामसिंह के विरुद्ध वख्तसिंह की सहायता करेंगे, तो वे भयभीत हो उठे।

राजस्थान के राजाओं में यह अफवाह फैल गई कि वख्तसिंह के विरुद्ध रामसिंह की सहायता करने के लिये मराठा लोग आने की तैयारी कर रहे हैं। इससे राजपूतों में सनसनी पैदा हो गयी और वे लोग वख्तसिंह की सहायता करने के लिये तैयार हो गए। रामसिंह के दूत ने मराठों को समझा-बुझा कर मारवाड़ की तरफ चलने के लिये तैयार कर लिया। मराठा लोग रामसिंह की सहायता के नाम पर मारवाड़ को लूटने और वहाँ की अपरिमित सम्पत्ति ले जाने के लिये दक्षिण से रवाना हुए। मरुभूमि के सभी राजाओं और सामन्तों ने मराठों के विरुद्ध वख्तसिंह की सहायता करने का निश्चय किया। इस दशा में मारवाड़ पर आक्रमण करने का मराठों का इरादा क्षत विक्षत हो गया और उन्होंने जो आशायें की थी, उनमें उनको निराश हो जाना पड़ा। राजपूतों की एकता ने मराठों को मारवाड़ की तरफ बढ़ने का मौका नहीं दिया। फिर भी मराठों को रोकने के लिए वख्तसिंह जोधपुर से रवाना हुआ और अजमेर के पास जाकर उसने उस रास्ते पर मुकाम किया, जहाँ से होकर शत्रुओं की सेना मारवाड़ राज्य में प्रवेश कर सकती थी।

आमेर के राजा माधवसिंह की राठौड़ रानी ने वहाँ पर जाकर वख्तसिंह से भेंट की और उसने रामसिंह के हितों की रक्षा करने के लिए वख्तसिंह के दीपक को बुझा दिया।[1] सम्वत् 1809 सन् 1753 ईसवी में वख्तसिंह ने संसार छोड़ कर परलोक की यात्रा की।

मारवाड़ के राज सिंहासन पर बैठकर वख्तसिंह ने तीन वर्ष व्यतीत किये। इस थोड़े से समय में उसने मारवाड़ के समस्त दुर्गों को सुदृढ़ बनवाया और जोधपुर में कई एक ऐसे कार्य किये जिनसे राठौड़ों की शक्तियां पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत हो गई थीं। मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के साथ जो अमानुषिक व्यवहार और अत्याचार किये थे, वख्तसिंह ने भली प्रकार उनका बदला लिया। मुसलमानों के अत्याचारों में हिन्दुओं के मन्दिर गिराकर उनके स्थानों पर मस्जिदें बनवाई गई थीं। वख्तसिंह ने नागौर की मस्जिदें गिरवाकर उनके स्थान पर मन्दिर बनवाये थे। वख्तसिंह के शासनकाल में दिल्ली के मुगल बादशाह की शक्तियाँ बिल्कुल निर्बल पड़ गई थीं और समस्त मुगल साम्राज्य में विद्रोह पैदा हो गये थे।

कृष्णा नदी के किनारे मराठा किसानों ने संगठित होकर दिल्ली के मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया था। उनके संगठन से राजस्थान के राजाओं के सामने भीषण आतंक पैदा हो गया था। यदि वख्तसिंह की मृत्यु न हो जाती और उसको मारवाड़ के राज्य सिंहासन पर कुछ अधिक समय तक बैठने का अवसर मिलता तो राजस्थान की शक्तियाँ इतनी सुदृढ़ हो जाती कि फिर उनको कोई संगठित शक्ति आसानी के साथ दबा न सकती।

□

1. कुछ लेखकों को कहना है कि जयपुर के राजा माधवसिंह की स्त्री ने वहाँ जाकर वख्तसिंह को विषाक्त वस्त्र दिये थे, जिनको पहनने के बाद वख्तसिंह की मृत्यु हो गई। कुछ भी हो, रामसिंह के षड़यंत्र के अनुसार, माधवसिंह की रानी के विषाक्त वस्त्रों के द्वारा उस समय वख्तसिंह की मृत्यु हो गई थी।

अध्याय-43
राजा विजयसिंह व मराठे

बख्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा विजयसिंह बीस वर्ष की अवस्था में मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उन दिनों में दिल्ली का मुगल बादशाह नाम मात्र के लिये बादशाह रह गया था। क्योंकि उसके शासन की शक्तियाँ इन दिनों में बिल्कुल क्षीण हो गई थीं और मुगल साम्राज्य के हिन्दू-मुस्लिम शासकों ने उसके प्रभुत्व को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। मुगलों की अधीनता को तोड़कर छोटे और बड़े सभी राजा अपने आपको स्वतंत्र समझने लगे थे फिर भी मारवाड़ के सिंहासन पर बैठकर प्राचीन प्रथा के अनुसार विजयसिंह ने अपने अभिषेक का समाचार दिल्ली के बादशाह के पास भेजा। उसे मुगल सम्राट ने स्वीकार किया। उस समय राजस्थान के अन्यान्य राजाओं ने विजयसिंह के अभिषेक उत्सव पर बधाई के पत्र भेजें।

मारोठ नामक स्थान मारवाड़ की सीमा पर बसा हुआ था, विजयसिंह का अभिषेक उत्सव वहीं पर किया गया। उस समय विजयसिंह ने मारोठ से मेड़ता जाकर पिता की मृत्यु के कारण कुछ दिन शोक में व्यतीत किये। वहाँ पर बीकानेर, कृष्णगढ़ और रूपनगर के स्वतंत्र राजा अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर आये और सभी ने विजयसिंह के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। उनके सिवा सभी सामन्तों ने वहाँ पहुँचकर विजयसिंह के आदर सत्कार में अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। विजयसिंह ने भी आये हुए राजाओं और सामन्तों का पूर्ण रूप से आदर सत्कार किया। उसके पश्चात् जोधपुर जाकर बड़ी धूम-धाम के साथ उसने अपने पिता का श्राद्ध किया। इस कार्य में उसने बहुत-सा धन व्यय किया और उसने कवियों, भाटों, चारणों, ब्राह्मणों और अनाथों को दान में बहुत-सा धन दिया।

राज सिंहासन पर वैठने के समय विजयसिंह की अवस्था बीस वर्ष की थी। उसकी इस छोटी-सी आयु में रामसिंह उसका शत्रु हो रहा था। रामसिंह की शत्रुता के ही कारण बख्तसिंह की अकाल मृत्यु हुई थी। जिस रामसिंह ने षड़यंत्र रचकर बख्तसिंह को संसार से विदा किया था, वहीं आज बख्तसिंह के प्यारे पुत्र विजयसिंह का शत्रु हो रहा था।

रामसिंह अपनी पूर्ण शक्तियों के द्वारा विजयसिंह को सिंहासन पर बैठने से रोकना चाहता था। इसके लिए उसने सभी प्रकार की चेष्टायें कीं। परन्तु मारवाड़ राज्य के सामन्तों, सरदारों और मंत्रियों ने विजयसिंह के पक्ष का समर्थन किया। इसलिए रामसिंह की कोई भी चेष्टा सफल न हो सकी और रामसिंह को असफल बनाकर विजयसिंह अपने पिता के सिंहासन पर वैठा।

बख्तसिंह के द्वारा मारवाड़ से निकाले जाने पर रामसिंह जयपुर में रहने लगा और वह अपने उद्देश्य की सफलता के लिये तरह-तरह की चेष्टायें कर रहा था। बख्तसिंह की मृत्यु के बाद रामसिंह ने विजयसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय कठोर वाधायें उपस्थित कीं और जब वह इसमें सफल न हो सका तो वह विजयसिंह को पराजित करने और सिंहासन से उतार देने की कोशिश करने लगा।

रामसिंह इन दिनों में जयपुर में रहा करता था और इसके सम्वन्ध में सभी प्रकार के परामर्श वह राजा जयपुर के साथ किया करता था। राजा जयपुर इस वात को भली-भाँति समझता था कि मारवाड़ के सामन्तों और सरदारों ने जव विजयसिंह को सिंहासन पर बिठाकर उसका प्रभुत्व स्वीकार किया है तो रामसिंह के विरोध करने से उसमें कुछ नहीं हो सकता।

नैतिक रूप से विजयसिंह को सिंहासन से उतारने का कोई रास्ता रामसिंह और उसके सहायकों के सामने न था। इसलिए उसने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए दूसरे उपायों का सहारा लिया। उन दिनों में दक्षिण के मराठों ने संगठित होकर अपनी शक्तियाँ मजबूत वना ली थीं। रामसिंह ने उन्हीं मराठों का सहारा लेने का निश्चय किया।

इसके पहले रामसिंह के पुरोहित ने मराठों के पास जाकर उनकी सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की थी। परन्तु उसमें रामसिंह को सफलता न मिल सकी। इस समय मराठों को बख्तसिंह का भय न रह गया था। इसलिए रामसिंह ने निर्भीक होकर मराठों के साथ सन्धि की। उसके बाद मराठा सेना दक्षिण से चलकर कोटा होती हुई जयपुर में आ गयी। रामसिंह मराठा सेना के साथ जयपुर से जोधपुर के लिए रवाना हुआ।

मराठा सेना लेकर रामसिंह के आने का समाचार मारवाड़ में पहुँच गया। वहाँ के लोगों में यह अफवाह फैलने लगी कि मराठा लोग इस राज्य में आकर भीषण अत्याचारों के साथ लूटमार करेंगे। इसलिए रामसिंह के इस आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए राठौड़ राजपूतों के कई दल मेड़ता के मैदानों में आकर एकत्रित होने लगे।

मराठा सेना के साथ पुष्कर तीर्थ में पहुँचकर रामसिंह ने अपने दूत के द्वारा विजय सिंह को संदेश भेजा कि –"तुम इसी समय राज सिंहासन छोड़कर अपने प्राणों की रक्षा करो, अन्यथा तुम्हारी कुशल नहीं है।"

विजयसिंह ने अपने समस्त सामन्तों के सामने रामसिंह का भेजा हुआ संदेश प्रकट किया। उसकी बात सुनकर सभी राठौड़ सामन्त क्रोध में आकर एक साथ कह उठे – "हम लोग युद्ध के लिये तैयार हैं। हमें मराठों का कोई भय नहीं है।"

उत्तेजित राठौड़ सामन्तों ने एक मत से युद्ध का समर्थन किया। विजयसिंह ने रामसिंह के संदेश का जवाब भेज दिया। रामसिंह के साथ जो मराठा सेना आयी थी, वह राठौड़ सेना के मुकाबले में अधिक विशाल थी। उसके साथ जयपुर के कछवाहों की सेना भी थी। राठौड़ राजपूतों को जयपुर की सेना की कुछ भी परवाह न थी। लेकिन मराठों की विशाल सेना को पराजित करने के लिये राठौड़ सामन्त आपस में परामर्श करने लगे।

विजयसिंह युद्ध की तैयारी करके जोधपुर में एकत्रित सेनाओं के साथ मेड़ता के मैदानों में पहुँच गया। यहाँ पर मराठा सेना के साथ युद्ध करके उसको मारवाड़ के सिंहासन के अधिकारी का निर्णय करना था। दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। इस संग्राम में कुछ ही समय की मारकाट करके राठौड़ों ने मराठों के छक्के छुड़ा दिये।

इस भयानक युद्ध में दो घटनायें राठौड़ों के विरुद्ध पैदा हुईं। यदि ये घटनायें न होती तो राठौड़ों ने निश्चित रूप से मराठों को पराजित किया होता। पहली घटना यह हुई कि जिस समय राठौड़ों की अश्वारोही सेना युद्ध-क्षेत्र से भाग कर लौट रही थी, राठौड़ों की दूसरी सेना ने उसको शत्रु सेना समझकर उस पर भीषण रूप से गोलों की वर्षा की। जिससे राठौड़ों की सवारों की सेना को बहुत क्षति पहुँची और अचानक उसके बहुत से शूरवीर मारे गये। दूसरी घटना भी कुछ इसी प्रकार की थी। मराठा सेना का प्रधान सेनापति सिंधिया जिस समय युद्ध क्षेत्र को छोड़कर भागने को था, ठीक उसी समय राठौड़ सेना छिन्न-भिन्न हो गयी।

किशनगढ़ और रूपनगर के दोनों राजा राठौड़ वंश में ही उत्पन्न हुये थे। परन्तु दोनों अपने-अपने राज्यों में स्वाधीनता के साथ शासन करते थे और मुगल बादशाह के प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। किशनगढ़ के राजा ने रूप नगर के राजा को सिंहासन से उतार कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। रूप नगर का राजा सामन्त सिंह अपनी वृद्धावस्था के कारण जमुना नदी के किनारे वृन्दावन चला गया और वहाँ पर वह वैराग्य लेकर अपने दिन व्यतीत करने लगा।

सामन्तसिंह के पुत्र को पिता के सन्यास ले लेने से बहुत शोक पहुँचा। वह किसी प्रकार अपने राज्य का उद्धार करना चाहता था। उसने अपने पिता से भेंट की और बहुत-सी बातें उसने कहीं। लेकिन पिता पर कोई प्रभाव न पड़ा और उसने पुत्र को स्वयं समझाने की चेष्टा की कि संसार के इस माया जाल को छोड़कर तुमको भी अलग हो जाना चाहिये।

पिता की इन बातों को सुनकर उसके पुत्र को बड़ी निराशा हुई। वह पिता के पास से लौट कर आया और राज्य के उद्धार के लिये वह तरह-तरह की बातें सोचने लगा। इन्हीं दिनों में विजय सिंह के साथ रामसिंह का संघर्ष बढ़ा। सामन्त सिंह के बेटे ने इसको अपने लिए एक अवसर समझा और वह रामसिंह के दूत के साथ दक्षिण में मराठों के पास पहुँच गया। वहाँ पर रामसिंह ने दूत के साथ-साथ अपनी सहायता के लिए भी मराठों से प्रार्थना की।

मेड़ता के युद्ध में जिस समय मराठा सेना पराजय की अवस्था में पहुँच रही थी और अपने प्राणों की रक्षा के लिये युद्ध से वह भागना चाहती थी, ठीक उसी समय मराठा सेनापति जय अप्पा ने सामन्त सिंह के बेटे को बुलाकर कहा :– "आपका और रामसिंह का मामला एक साथ है और एक सा है। हम लोग रामसिंह की सहायता करने के लिये आये थे। लेकिन युद्ध की परिस्थिति बिल्कुल हम लोगों के विपरीत जा रही है। इससे जाहिर होता है कि रामसिंह का भाग्य अच्छा नहीं है। अब प्रश्न यह कि हम लोग इस समय आपकी सहायता कर सकते हैं?"

वह युवक मराठा सेनापति की इन बातों को सुनकर घबरा उठा। उसको इस प्रकार की आशा न थी। उसी समय उसने गंभीरता से काम लिया। वह समझता था कि इस समय राठौड़ सेना को पराजित करना साधारण बात नहीं है। इसलिये उसने सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया और तुरन्त उसने अपने एक जातीय अश्वारोही सैनिक को समझा-बुझाकर शत्रुओं की तरफ भेज दिया। वह अश्वारोही सैनिक राठौड़ों की सेना में पहुँचा और वहाँ पर उसने माईनोत राजपूत वंश के सेनापति से कहा :– "विजयसिंह शत्रु की गोली से वहाँ मारा गया। इसलिये अब किसके लिये युद्ध होगा।"

माईनोत सामन्त ने उस अश्वारोही सैनिक को अपना समझकर विश्वास किया। वह तुरन्त अधीर हो उठा। विजयसिंह की मृत्यु का समाचार राठौड़ सेना में फैल गया। किसी ने

उसके सम्बन्ध में पता लगाने की कोशिश नहीं की। राठौड़ सेना घबरा कर इधर-उधर भागने लगी। इस समय राठौड़ सेना के साथ मेड़ता के दूसरे क्षेत्र में विजयसिंह मराठों के साथ युद्ध कर रहा था। वह इस युद्ध में एक लाख सैनिकों की सेना लेकर आया था। उसने आश्चर्य के साथ सुना कि राठोड़ सेना एक साथ युद्ध के क्षेत्र से भाग रही है। विजयसिंह घबरा उठा। जो राठौड़ सेना उसके साथ शत्रुओं से लड़ रही थी, मारवाड़ की सेना के भागने का समाचार उससे भी अप्रकट न रहा। विना सोचे-समझे उस सेना के राठौड़ भी युद्ध क्षेत्र से भागने लगे। विजयसिंह के सामने भयंकर परिस्थिति पैदा हो गयी। किसी प्रकार शत्रु के सामने से हटकर विजयसिंह वहाँ से भाग गया और एक कृषक के यहाँ जाकर उसने प्राणों की रक्षा की।

रूपनगर के राजा सामन्त सिंह के युवक बेटे की राजनीति से विजयसिंह की एक लाख सेना को पराजित होना पड़ा। इस विजय का कोई भी श्रेय मराठा सेना को न मिला। फिर भी विजय उसी की मानी गयी। राठौड़ सेना के भाग जाने पर रामसिंह विजयी होकर युद्ध के क्षेत्र में घूमने लगा। उसने मारवाड़ के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। मराठा सेना मारवाड़ के नगरों में घूम-घूम कर लूट-मार करने लगी।

मराठा सेना का प्रधान जय अप्पा इस युद्ध में भयानक रूप से मारा गया था। इसलिए राठौड़ सेना के भाग जाने के बाद मराठों ने भीषण अत्याचार आरंभ किये, उस निर्दयता को देखकर विजय सिंह घबरा उठा। उसने अजमेर मराठों को दे दिया और कर देना भी उसने स्वीकार कर लिया।

मारवाड़ राज्य में अजमेर सबसे बड़ी विशेषता रखता है। इसलिये अजमेर के निकल जाने पर मारवाड़ का राज्य निर्बल पड़ गया। रूप नगर के युवक राजकुमार की राजनीति के द्वारा मराठा सेना ने राठौड़ों पर विजय प्राप्त की। इसलिये जय अप्पा ने रूप नगर के सिंहासन पर उस युवक को बिठाने का इरादा किया। उसको सुनकर उस युवक ने कहा – "पहले रामसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर बैठना चाहिये। इससे रूपनगर का उद्धार बड़ी आसानी के साथ हो जायेगा।" इसके कई दिनों बाद जयअप्पा मारा गया।[1] उससे रामसिंह के साथ राजपूतों पर संदेह पैदा हो गया।

सेनापति जयअप्पा की मृत्यु हो जाने पर मराठों का समस्त राजपूतों पर अविश्वास पैदा हुआ। उन लोगों ने रामसिंह के समस्त राजपूतों पर आक्रमण किया। विजयसिंह का दूत रावत कुबेर सिंह संधि के सम्बन्ध में मराठों के पास आया था। इस आक्रमण में वह भी मारा गया। नागौर राज्य के ताऊसर नाम के एक ग्राम में जयअप्पा के स्मारक में एक मंदिर बनवाया गया।

राठौड़ों के साथ संधि हो जाने के बाद मराठों ने रामसिंह के पक्ष को छोड़ दिया। इसलिये रामसिंह के सामने फिर से कठिनाइयाँ पैदा हो गयीं। उसने जोधपुर का सिंहासन प्राप्त करने के लिए बाईस वर्ष तक लगातार युद्ध किया। मराठों के अलग हो जाने के बाद रामसिंह फिर असहाय अवस्था में पहुँच गया। इस समय उसकी सहायता करने वाला कोई न था। इसलिये उसने विजय सिंह के यहाँ जाकर आश्रय लिया।

---

1. मराठा सेनापति मेड़ता के इस युद्ध में मारा गया था, इस पर दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। विजय-विलास नामक ग्रंथ में लिखा है कि जयअप्पा युद्ध के संकट में पड़कर रोगी हो गया था।उसकी चिकित्सा करने के लिये राठौड़ राजा ने सूरजमल नामक अपना चिकित्सक भेजा। सूरजमल ने वहाँ जाने से इंकार करते हुए कहा – "आप मुझसे जयअप्पा को विष देने के लिये कह सकते हैं। लेकिन मैं ऐसा न करूँगा।" यह सुनकर विजयसिंह ने कहा – "मैं ऐसा न कहूँगा। आप वहाँ जाकर अच्छी चिकित्सा करें।" सूरजमल ने जाकर जयअप्पा की चिकित्सा की और उसने बहुत जल्दी उसे नीरोग कर दिया।

रामसिंह की इस असहाय अवस्था में विजयसिंह ने मारवाड़ राज्य के साँभर का इलाका उसके जीवन-निर्वाह के लिये दे दिया। साँभर का कुछ भाग जयपुर राज्य के साथ था। इसलिये जयपुर के राजा ने भी वह भाग देकर रामसिंह की सहायता की। इसके बाद रामसिंह निराश अवस्था में सांभर में रहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा। उसके स्वभाव में अब बड़ा परिवर्तन हो गया था। पहले की सी अब उसमें उग्रता और कठोरता न रह गयी थी। वह अब बहुत विनम्र हो गया था। सन् में रामसिंह की जयपुर में मृत्यु हो गई। उसका शरीर वीरोचित और शक्तिशाली था। अपने स्वभाव की उग्रता के कारण जीवन के आरम्भ में वह अपने सामन्तों के निकट अप्रिय हो गया था। उसमें पहले भी अनेक अच्छाईयाँ थीं। परन्तु वह व्यवहार कुशल न था। अपनी इसी अयोग्यता के कारण वह सिंहासन से उतारा गया था।

कुछ भी हो विजय सिंह की विशाल सेना के सामने मराठों की एक छोटी सेना लेकर रामसिंह विजयी हुआ। इस दशा में विजय सिंह की अपेक्षा रामसिंह को राजनीतिज्ञ और सुयोग्य मानना किसी प्रकार अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

निर्वासित अवस्था में रामसिंह ने जयपुर में परलोक की यात्रा की। उसके न रहने के बाद विजय सिंह ने निश्चित होकर अपना राज्य शासन चलाया। मराठों ने अजमेर पर अधिकार करके न केवल मारवाड़ राज्य से कर वसूल किया, बल्कि उसके बाद भी वे लोग लूट-मार करके धन एकत्रित करते रहे और उस सम्पत्ति से उन्होंने अपनी शक्तियाँ प्रबल बना लीं। मराठों ने इतना ही अत्याचार नहीं किया, बल्कि वे अनेक दूसरे उपायों से राजपूतों को निर्बल बनाने का काम करते रहे। मराठों ने सदा दो राजपूतों को लड़ाने की चेष्टा की और किसी एक का पक्ष लेकर वे दूसरे का सर्वनाश करते रहे। इस प्रकार मराठों ने अपनी प्रबल शक्तियों के द्वारा राजपूतों को भयानक क्षति पहुँचाई। अनेक अत्याचारों से मारवाड़ और उसके आस-पास बहुत अशांति बढ़ गयी।

मराठों के उपद्रव के कारण कृषक खेती का कार्य न कर सकते थे। व्यवसायी सदा उनसे डरते थे। मारवाड़ में विजय सिंह की निर्बलता बढ़ जाने के कारण राज्य के समस्त सामन्त स्वतंत्र हो रहे थे। राज्य व्यवस्था नष्ट हो गई थी और मारवाड़ में सर्वत्र अराजकता बढ़ जाने के कारण सदा लूट-मार होती रहती थी। इस लूट-मार और अत्याचार से खेती का कार्य नष्ट हो गया। व्यवसाय बन्द हो गया और लोगों को राज्य का कोई भय न रह गया। विजय सिंह की मान-मर्यादा महलों से लेकर बाहर तक सर्वत्र नष्ट हो गयी।

अन्य राज्यों की अपेक्षा मारवाड़ के सामन्त अधिक स्वतंत्र और सदा शक्तिशाली रहे थे। उनकी इस स्वतंत्रता का कारण यह था कि उनके पूर्वजों के बल-पौरूष से मारवाड़ राज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। यही कारण था कि इस राज्य के सभी सामन्त अधिक स्वाधीनता और सुखों का सदा से भोग करते चले आ रहे थे।

विजय सिंह के प्रभाव के नष्ट हो जाने से वहाँ के सामन्तों में जो स्वच्छन्दता पैदा हो गयी थी, वह धीरे-धीरे बढ़ती गई और राज्य की एक घटना ने उस स्वच्छन्दता को अधिक नियन्त्रणहीन बना दिया था। पोकरण चम्पावत लोगों की जागीर थी। वहाँ का सामन्त निःसन्तान होकर मर गया था। वह मरने के पहले राजा अजीत सिंह के दूसरे पुत्र देवी सिंह को गोद लेने के लिये अपनी स्त्री से कह गया था।[1] गोद लेने की प्रथा के अनुसार जब

1. इस विषय में कुछ अधिकारियों का कहना है कि देवीसिंह अजीत का बेटा नहीं था और न वह पोकरण की जागीर का दत्तक पुत्र बनाया गया था।

कोई बालक किसी जागीर का अधिकारी बन जाता है तो वह अपने पिता के अधिकारों से वंचित हो जाता है।

देवीसिंह ने पोकरण का अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद भी अपने पिता के अधिकारों की लालसा न छोड़ी और जिन दिनों में विजय सिंह जोधपुर के सिंहासन पर अपनी शक्तियों को लगातार खो रहा था, उस समय देवीसिंह का ध्यान मारवाड़ राज्य की ओर आकर्षित हुआ। वह निरंतर जोधपुर के सिंहासन को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इसके लिए उसने अपनी शक्तियों का संगठन किया। वह इन दिनों में राज्य का एक सामन्त था और जो सामन्त मारवाड़ के दरवार में आकर किसी भी राजनैतिक परिस्थिति का निर्णय किया करते थे, देवीसिंह भी उनमें से एक था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इन दिनों में विजय सिंह की शक्तियाँ विल्कुल निर्वल हो गयी थीं और इस निर्वलता का राज्य के सामन्त अनुचित लाभ उठा रहे थे। उन पर विजय सिंह का कोई प्रभाव न रह गया था। जो सामन्त ऐसा कर रहे थे, देवी सिंह उनमें प्रमुख था। सामन्तों में इस बढ़ती हुई अराजकता को देखकर विजय सिंह के मन में अत्याधिक दु:ख होता था। वह किसी प्रकार अनियंत्रित सामन्तों को अपने नियंत्रण में लाना चाहता था, लेकिन इसके लिये उसे कोई रास्ता मिलता न था।

राजस्थान में राजकुमार की धात्री को वहुत सम्मान देने की पुरानी प्रथा है। उसी के अनुसार विजयसिंह भी अपनी धात्री को सम्मान की दृष्टि से देखता था। धात्री से जो बालक उत्पन्न होते थे, उनको राजकुमारों का भाई मानकर उनको धाभाई कहा जाता था। इन धाभाइयों को वयस्क होने पर राज्य में ऊँचे पद मिला करते थे। वहाँ की यह पुरानी प्रथा थी।

राजा विजय सिंह की धात्री का एक लड़का था। जग्गू उसका नाम था। विजय सिंह का धाभाई होने के कारण राज्य में उसने बहुत सम्मान पाया था। यह जग्गू वयस्क होने पर अत्यंत बुद्धिमान और दूरदर्शी सावित हुआ। जग्गू विजय सिंह से वहुत प्रेम करता था और अपने अच्छे परामर्शों से वह उसको सदा सावधान किया करता था।

विजयसिंह भी जग्गू पर विश्वास करता था और किसी भी संकट के समय वह जग्गू के परामर्श को अधिक महत्त्व देता था। दोनों के वीच इस प्रकार श्रद्धा का भाव बहुत दिनों से चला आ रहा था। विजय सिंह के मन में राज्य की दुरवस्था के कारण जो चिन्ता और अशांति रहा करती थी, उसको उसने जग्गू से कई बार प्रकट किया। विजय सिंह की इन चिन्ताओं को सुनकर जग्गू स्वयं बहुत मर्माहत होता था और वह किसी प्रकार विजय सिंह की इस अशांति और चिन्ता को दूर करना चाहता था। मारवाड़ के सामन्तों को नियंत्रण में लाने और राजा विजय सिंह की शक्तियों को प्रबल बनाने के लिये वह अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगा।

जग्गू ने एक योजना तैयार की और उसने राज्य के सामन्तों को समझा-बुझाकर इस बात के लिये राजी कर लिया कि राज्य की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली वैतनिक सेना रखी जाये और वह किसी भी संकट के समय राज्य की रक्षा करे। सामन्तों ने जग्गू की इस बात को स्वीकार कर लिया। उस सेना के लिये यह भी निश्चय हो गया कि वेतन की अदायगी सामन्तों के द्वारा होगी।

सामन्तों से नई-नई सेना के रखे जाने और उसको वेतन दिये जाने के सम्बन्ध में जव स्वीकृति मिल गई तो जग्गू ने कई सौ पुरबिया राजपूतों को अपने यहाँ रखकर पूर्व निश्चय के अनुसार एक वैतनिक सेना तैयार की। राजस्थान के सभी राज्यों में सैनिकों को

मासिक वेतन के स्थान पर भूमि दी जाती थी। लेकिन जग्गू ने जो सेना तैयार की, वह सभी पैदल थी और उनको मासिक वेतन दिये जाने की व्यवस्था की गई। इस सेना के सैनिकों ने यूरोपियन शैली से युद्ध करने की शिक्षा पाई थी। मारवाड़ की इस सेना को देखकर उदयपुर और जयपुर के राजाओं ने भी इसी प्रकार की अपने यहाँ सेनाएँ रखीं।

जग्गू ने मारवाड़ में जो नई सेना रखी थी, उसमें सिन्धी, अरबी और रुहेले व कई प्रकार के राजपूत थे। उस सेना का नियंत्रण और शासन मारवाड़ के राजा के अधिकार में रहा। इन सात सौ वैतनिक सैनिकों का प्रभुत्व और प्रभाव राज्य में पूर्ण रूप से काम करने लगा। उनके वेतन के लिये राज्य के सामन्त धन-संग्रह करते थे। लेकिन वह सेना मारवाड़ के राजा की अधीनता में थी।

कुछ ही दिनों के वाद इस वैतनिक सेना के द्वारा सामन्तों की उपेक्षा होने लगी। उस समय सामनतों ने अपनी निर्वलता को अनुभव किया। उस नई सेना के साथ सामन्तों का यहीं से विरोध आरम्भ हुआ। मारवाड़ की देखा-देखी मेवाड़, जयपुर और कोटा के राजाओं ने भी अपने यहाँ वैतनिक सेनाएँ रखी थीं। परन्तु कोटा को छोड़कर और किसी राज्य ने वैतनिक सेना का लाभ नहीं उठाया।

मारवाड़ की इस नवीन सेना को शक्तिशाली वनाकर जग्गू ने राजा विजय सिंह और दीवान फतेहचन्द के साथ परामर्श किया और मारवाड़ में फैली हुई अराजकता तथा अत्याचार को दूर करने के लिए तैयारी की। राज्य के आस-पास पहाड़ी जातियों के आतंक वहुत वढ़ गये थे। उनको इधर वहुत दिनों से मारवाड़ के राजा का कोई भय न रह गया था। इसलिये उन अत्याचारी जातियों का दमन करना भी अत्यन्त आवश्यक था।

इस प्रकार के सभी कार्यों के लिये धन की आवश्यकता थी। मारवाड़ राज्य का खजाना इन दिनों में खाली पड़ा हुआ था। विजय सिंह की निर्वलता में राज्य का रुपया कहीं पर भी वसूल न होता था। विना धन के राज्य की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती थी। इसलिये जग्गू धन की चिन्ता में रहने लगा। उसकी माता विजय सिंह की धात्री थी। इसलिये विजयसिंह के जन्म के साथ-साथ राज्य की तरफ से उसकी माता को पाँच हजार रुपये वार्षिक मिलने लगे थे। जग्गू को मालूम था कि उसकी माता के पास एक अच्छी सम्पत्ति है। इसलिये जव उसको और कहीं से धन की सहायता न मिल सकी तो उसने अपनी माता से प्रार्थना करने का इरादा किया।

जग्गू इस समय किसी प्रकार धन एकत्रित करके मारवाड़ राज्य का सुधार करना चाहता था। उसने माता से इसके लिये प्रार्थना की और तुरन्त पचास हजार रुपये देने के लिये उसको विवश किया। उसने माता से यह भी कह दिया कि यदि तुम इतने रुपये न दे सकोगी तो मैं आत्म-हत्या करके मर जाऊँगा।

जग्गू की माता अपने वेटे की इस वात को सुनकर घवरा उठी और उसने अपने पास से पचास हजार रुपये लाकर वेटे को दे दिये। इस धन को पाकर जग्गू ने पहाड़ी जातियों को दमन करने की तैयारी की। इस समय मारवाड़ी सेना को घोड़ों की वहुत आवश्यकता थी और उन दिनों में घोड़ों का वड़ा अभाव हो रहा था। इसलिये जव घोड़े न मिल सके तो जग्गू अपनी नई सेना को नागौर तक दूसरी सवारियों पर विठाकर ले गया। उस समय सामन्तों के पूछने पर जग्गू ने वताया कि पहाड़ी जातियों का दमन करने के लिये यह सेना जा रही है।

नागौर के दुर्ग में कई सौ तोपें रखी हुई थीं, उनको लेकर अपनी सेना के साथ जग्गू पहाड़ों की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँचकर उसने पहाड़ की लुटेरी जातियों पर आक्रमण

किया। वे जातियाँ बहुत आसानी के साथ परास्त हो गयीं। उन पर विजयी होकर जग्गू ने अपनी सेना के साथ थल नगरी पर आक्रमण किया। उस समय लोगों की समझ में आया कि मारवाड़ की इस वेतन भोगी सेना को रखने का क्या उद्देश्य है। उस दुर्ग पर जग्गू के अधिकार कर लेने पर मारवाड़ के सभी सामन्त भयभीत हो उठे और वे अपने-अपने सम्मान की रक्षा करने के लिये जोधपुर की राजधानी से बीस मील पूर्व की तरफ बीसलपुर में एकत्रित हुए।

राज्य के सामन्तों को एकत्रित देखकर विजयसिंह चिन्तित हो उठा। जग्गू जिस प्रकार सामन्तों को अधिकार में लाने की चेष्टा कर रहा था, उसका परिणाम विजय सिंह को प्रतिकूल दिखाई देने लगा। वह किसी प्रकार सामन्तों को शान्त करने का उपाय सोचने लगा। खीची वंश का राजपूत गोर्धन अपने बल और पराक्रम के द्वारा राजा बख्तसिंह का परम स्नेही हो गया था। मरने के समय बख्तसिंह ने गोर्धन से विजय सिंह की सहायता करने के लिए कहा था। विजय सिंह को यह बात पहले से मालूम थी। इसलिये इस संकट के समय गोर्धन को बुलाकर विजय सिंह ने पूछा कि इस समय में हमें क्या करना मुनासिब है?

गोर्धन मारवाड़ राज्य की वर्तमान परिस्थितियों को समझता था और राज्य के सामन्तों की अनियन्त्रित दशा से भी वह अपरिचित न था। वह दूरदर्शी और बुद्धिमान था। उसने विजय सिंह को अपनी सम्मति देते हुए कहा :—

"किसी भी दशा में राज्य के सामन्तों को शत्रु बनाना अच्छा नहीं हो सकता। इसलिये मर्यादा के अनुसार उनको सम्मान देना और उनके प्रति सद्भाव प्रकट करना इस समय अधिक हितकर साबित हो सकता है। यदि ऐसा न किया गया और यदि सामन्तों ने मिलकर और संगठित हो कर विरोध किया तो अनिष्ट होने की पूरी संभावना है। इसलिये अपनी सेना को साथ में न लेकर आप स्वयं उस स्थान को जावें, जहाँ पर सभी सामन्त एकत्रित होकर परामर्श कर रहे हैं और अपने सद्भाव तथा शिष्टाचार से सामन्तों को संतोष देने की चेष्टा करें। इसका परिणाम आपके लिये हितकर होगा।"

गोर्धन की बातों को सुनकर विजयसिंह को संतोष मिला। वह सामन्तों के पास जाने की तैयारी करने लगा। उस समय गोर्धन स्वयं साथ में चलने को लिये तैयार हुआ और वह राजा विजयसिंह को लेकर बीसलपुर में एकत्रित सामन्तों से भेंट के लिये पहुँच गया और विजय सिंह को एक स्थान पर छोड़कर उसने सामन्तों से जाकर कहा — "आप लोगों से मिलने के लिये राजा विजय सिंह की सवारी बीसलपुर आ गयी है। इसलिये आप लोग चलकर उनका स्वागत करिये।"

गोर्धन की इस बात पर किसी सामन्त ने ध्यान न दिया और न वे विजयसिंह से मिलने के लिये तैयार हुए। यह देखकर गोर्धन वहाँ से लौटा और वह मारवाड़ के प्रधान सामन्त राजा अहवा के शिविर में विजयसिंह को लेकर गया। यहाँ पर दूसरे सामन्त भी आकर एकत्रित हो गये। उसी समय विजय सिंह ने सभी सामन्तों की ओर देखकर प्रश्न किया—"आप सब लोगों ने हमको क्यों छोड़ दिया है?"

चम्पावत सामन्त ने विजयसिंह के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "राजन, हम लोग विभिन्न राजपूत शाखाओं में पैदा हुए हैं। परन्तु हम लोगों का मूल वंश एक ही है।"

चम्पावत सामन्त के बाद अन्य सामन्तों की बातचीत आरम्भ हो गयी और जो विवाद उत्पन्न हुआ। उसमें विजयसिंह को अपना उद्देश्य सफल होता हुआ दिखायी न पड़ा। इसलिये उसने सोच-विचार कर बड़ी गंभीरता के साथ कहा — "राज्य में किस प्रकार की

व्यवस्था होने से शान्ति कायम हो सकती है और आप लोगों को संतोष मिल सकता है, इस वात को समझने के लिये मैं आप सवके पास आया हूँ।" विजय सिंह के इस प्रश्न को सुनकर सामन्तों ने तीन प्रस्ताव सामने रखे। जो निम्नलिखित है:-

1. धाभाई की अधीनता में जो वैतनिक सेना है, उसको राज्य से निकाल दिया जाये।

2. राजा को आत्म-समर्पण करके सामन्तों के पट्टे हम लोगों के अधिकार में दे देने होंगे।

3. न्यायालय दुर्ग से हटा कर नगर में रखा जाये।

विजयसिंह ने सामन्तों के प्रस्ताव में कही गयी तीनों वातों को ध्यान से सुना और गंभीरता के साथ उन पर विचार किया। पहली और तीसरी वात में उसको कुछ भी विरोध न था। पहली वात के सम्वन्ध में वह जानता था कि धाभाई के द्वारा जो वैतनिक सेना रखी गयी है, उसी से सामन्तों को इस प्रकार का व्यवहार करने के लिये तैयार होना पड़ा है। इसलिये उस वैतनिक सेना को समाप्त कर देना ही इस समय बुद्धिमानी की वात मालूम होती है।

तीसरी वात में सामन्त लोग राजकार्य दुर्ग की अपेक्षा नगर में चाहते हैं। इसमें भी हमको कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु दूसरी वात में जो माँग की गयी है, उससे राजा का प्रभुत्व पूरे तौर पर समाप्त हो जाता है। सामन्तों को जागीरें देकर जो पट्टे लिखे जाते हैं, उन पर अधिकार केवल राजा का रहता है। यदि वह अधिकार भी हमारे हाथ से निकल गया तब तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

विजय सिंह कुछ समय तक सामन्तों के प्रस्ताव पर विचार करता रहा। उसने अन्त में समझा कि वर्तमान परिस्थितियों में सामन्तों को अप्रसन्न करना भविष्य के लिये अच्छा नहीं दिखाई देता। इसलिये उसने बहुत कुछ सोच-विचार कर सामन्तों के प्रस्ताव की तीनों बातों को स्वीकार कर लिया। इससे सभी सामन्त संतुष्ट होकर अपने-अपने राज्यों को चले गये। चम्पावत सामन्त अपनी सेना के साथ विजय सिंह को लेकर जोधपुर की राजधानी चला गया।

गोर्धन के परामर्श के अनुसार विजय सिंह ने सामन्तों से भेंट की और उनके प्रस्ताव की तीनों बातों को उसने स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप सामन्त लोग संतोष के साथ अपने-अपने नगरों को वापस चले गये और उनके द्वारा जो संकट उपस्थित हो सकता था, उसकी संभावना न रही। इसके कुछ ही दिनों के पश्चात् गुरु आत्माराम की भयानक वीमारी का समाचार विजय सिंह को मिला। वह गुप्त रूप से गुरुदेव के पास गया। विजयसिंह को अपने समीप देखकर गुरुदेव ने कहा– "महाराज, आप कुछ चिन्ता न करे। मेरी मृत्यु के साथ-साथ आपकी विपदाओं का अन्त हो जायेगा।"

गुरुदेव की इस वात का जो अभिप्राय था, उसे साफ-साफ धाभाई जग्गू ने विजय सिंह को वताया। वह अभिप्राय उन दो को छोड़कर किसी तीसरे को मालूम न हो सका। गुरुदेव के मर जाने पर विजय सिंह ने दिखावे में वहुत दुःख प्रकट किया। उसके बाद सर्व साधारण को यह वताया गया कि जोधपुर के दुर्ग में गुरुदेव का अंतिम संस्कार होगा।

इस घोषणा के अनुसार राजधानी के दुर्ग में गुरुदेव के अंतिम संस्कार की तैयारियाँ होने लगीं। निश्चित् दिन और समय पर वहाँ पहुँचने के लिये राजा के अंतःपुर से लेकर राजधानी तक स्त्रियाँ दुर्ग के लिये रवाना हुईं। अंतःपुर से जो स्त्रियाँ दुर्ग की तरफ चलीं, उनकी रक्षा के लिये राज्य की सेना उनके साथ-साथ चली। मारवाड़ के सामन्तों के पास

गुरुदेव की मृत्यु और उसके अंतिम संस्कार का समाचार भेजा जा चुका था। इसलिये राजगुरु को श्रद्धांजलि देने के लिए सामन्त लोग अपने-अपने नगरों से रवाना हुए।

जोधपुर का दुर्ग पहाड़ों के ऊपर बना हुआ था। दुर्ग में जाने के लिये पहाड़ों को खोद कर सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। राज्य के सभी सामन्तों के आगे-आगे देवीसिंह सामन्त चल रहा था। सीढ़ियों पर पहुँचकर उसने कहा – "मुझे आज कुछ अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते।" देवीसिंह की इस बात को सुन कर दूसरे सामन्तों ने कहा – "आप मारवाड़ राज्य के सर्वमान्य हैं। आपकी तरफ आँख उठाकर देखने का कोई साहस नहीं कर सकता।"

सामन्तों ने आगे बढ़कर दुर्ग में प्रवेश किया। उसी समय उन लोगों ने देखा कि नक्कार खाने का द्वार बंद हो गया। सामन्त भयभीत हो उठे और उनके मुख से निकल गया–" इतना बड़ा विश्वासघात।" इसी समय अहवा के सामन्त ने अपनी कमर से तलवार निकाली और उसने राज सेना का संहार आरम्भ कर दिया।

सामन्त लोग अपनी सेनाओं को साथ में नहीं लाये थे। उनको इस प्रकार के विश्वासघात की आशंका नहीं थी। राज-सेना के सामने सामन्त लोग कितनी देर युद्ध कर सकते थे, उस मार-काट में कितने ही सामन्त मारे गये और बाकी सामन्त धाभाई जग्गू की सेना के द्वारा कैद हो गये।

कैदी सामन्तों को अपने भविष्य का अनुमान हो गया। इसी समय धाभाई जग्गू ने उत्तेजित होकर बन्दी सामन्तों से कहा – "आप लोग इस संसार को छोड़कर परलोक यात्रा के लिए तैयार हो जाइए।"

सामन्तों ने साहस के साथ उत्तर दिया –"हम सब राजपूत हैं और राजा विजय सिंह के वंश में ही हमने जन्म लिया है। हमारे प्राणों में राठौड़ों का स्वाभिमान मौजूद है। इसलिए हमारी माँग यह है कि वैतनिक सैनिकों की गोलियों से हमारे प्राणों का अन्त न किया जाये। बल्कि तलवार के द्वारा हम सब की गर्दनें काट कर फेंक दी जायें।"

सामन्तों की इस माँग के सम्बन्ध में क्या हुआ, इसका कोई उल्लेख विलास नामक ग्रंथ में नही पाया जाता। धाभाई जग्गू के आदेश से चम्पावत तीन प्रमुख सामन्तों, अहवा के जगत सिंह, पोकरण के देवीसिंह, हरसोलाध के सामन्त, कुम्पावत के चन्द्र सिंह, चन्द्रायण के केशरी सिंह, नीजाम के सामन्त कुमार, रास के सामन्त और ऊदावत लोगों के प्रधान सामन्तों के जीवन अन्त किये गये।

देवीसिंह राजा अजीतसिंह का बेटा था।[1] इसलिए गोली अथवा तलवार से उसको मारने का किसी ने साहस नहीं किया। इसलिए विष के साथ अफीम को घोल कर उसे पीने को दिया गया। देवीसिंह ने उसके पीने का आदेश सुनकर आवेश में कहा – "मैं इस समय एक कैदी हूँ। मुझे विष का यह प्याला पीने के लिए दिया गया है। परन्तु मैं मिट्टी के प्याले में इसे नहीं पी सकता। सोने के प्याले में मुझे यह विष पीने को दिया जाये। उस समय मैं तुरन्त आज्ञा का पालन करूँगा।"

देवीसिंह की इस माँग को पूरा न किया गया और जब उसको मिट्टी के पात्र में विष पीने के लिए विवश किया गया तो उसने विष के उस पात्र को जोर के साथ दूर फेंक दिया और दीवार के विशाल पत्थर पर सिर पटक कर उसने अपने प्राण दे दिये। इसके पहले वहाँ

1. देवीसिंह को कुछ ग्रंथकारों ने अजीतसिंह का नहीं बल्कि महासिंह का बेटा माना है।—अनुवादक

के एक आदमी ने उससे पूछा था :– "आप की वह तलवार कहाँ है, जिसके नीचे आप मारवाड़ के सिंहासन को समझते थे ?"

देवीसिंह ने स्वाभिमान के साथ उस मनुष्य की तरफ देखा और कहा :–" मेरी वह तलवार इस समय पोकरण में मेरे वेटे सवल सिंह की कमर में वंधी हुई है।"

जग्गू की सहायता सें विजय सिंह ने अपने राज्य के निरंकुश और स्वच्छन्द प्रधान सामन्तों को मरवा कर मारवाड़ में शान्ति की व्यवस्था की। जो सामन्त इस प्रकार मारे गये थे, वे सभी उसी वंश के थे, जिस वंश में विजयसिंह ने जन्म लिया था। उन सामन्तों के मारे जाने का कारण उनकी निरंकुशता और स्वच्छन्दता थी। सामन्तों की इस निरंकुशता का कारण विजय सिंह की निर्वलता थी। शासक की कमजोरी और उसके शासन की हीनता प्रजा में और राज्य के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों में अराजकता उत्पन्न करती है। शासन की निर्वलता शासक का अपराध होता है। यदि विजयसिंह की यह अवस्था न होती तो सामन्तों के स्वच्छन्द और निरंकुश होने का कोई कारण न था। जो सामन्त जग्गू के षड़यन्त्र के द्वारा मारे गये थे, उन्होंने और उनके पूर्वजों ने राज्य और राठौड़ों की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए सदा अपने आप को वलिदान किया था। आज उन्हीं सामन्तों का इस प्रकार संहार विजय सिंह के गौरव का कारण नहीं बन सकता।

यदि विजयसिंह में राजपूतों का वल-पौरुष होता अथवा उसके स्थान पर कोई दूसरा प्रतापशाली राठौड़ शासक होता तो राज्य के सामन्तों में अनुशासनहीनता न पैदा होती और न वे इस प्रकार मारे जाते। विजय सिंह का इस प्रकार का कार्य नैतिक प्रतिष्ठा से वंचित हो जाता है। विजय सिंह दूसरे उपायों से अपने सामन्तों को अपने अनुकूल नहीं बना सका, यह उसकी अयोग्यता का सवसे वड़ा प्रमाण है।

जग्गू उसकी धात्री से उत्पन्न हुआ था। उसने एक सगे वंधु की हैसियत से विजय सिंह के साथ प्रेम किया था। वह प्रत्येक अवस्था में विजयसिंह का बढ़ता हुआ गौरव देखना चाहता था। विजय सिंह के प्रति उसकी शुभकामना और शुभ चिन्तन में कोई अंतर न था। उसने निरंकुश सामन्तों को नियंत्रण में लाने के लिए जो कुछ भी किया था, उसमें उसका कोई स्वार्थ न था। अपनी पवित्र भावनाओं से प्रेरित होकर विजय सिंह के कल्याण के लिए उसने सव कुछ किया था। राज्य में शान्ति की प्रतिष्ठा के लिए और वर्तमान अराजकता को नष्ट करने के लिए उसने एक वैतनिक सेना रखी थी। उसके वेतन के लिए अपनी आत्महत्या का भय दिखाकर उसने अपनी माता से पचास हजार रुपये लिए थे। इतनी वड़ी सम्पत्ति को उसने राज्य के आवश्यक कार्यों में खर्च करके अपने अपूर्व त्याग और वलिदान का परिचय दिया था। इस दशा में वह किसी प्रकार निन्दा का अधिकारी नहीं है।

इतना सब होने पर भी जग्गू की प्रशंसा नहीं की जा सकती। सबसे अच्छा यह होता कि उसने नैतिक उपायों के द्वारा सामन्तों को अनुकूल बना कर राजा विजय सिंह का कल्याण किया होता। परन्तु उसमें नैतिक शक्तियों का अभाव था। इसीलिए जो राज्य के सगे सम्वन्धी थे, उनका अन्त करने के लिए उसे षड़यन्त्र की संहार नीतिं का आश्रय लेना पड़ा।

देवीसिंह ने जिस प्रकार अपने प्राणों का अन्त किया, उसका समाचार बड़ी तेजी के साथ पोकरण में पहुँच गया। उसके पुत्र सवल सिंह ने इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु को सुना। उसने तुरन्त क्रोध में आकर अपने पिता का बदला लेने की प्रतिज्ञा की और पोकरण के शूरवीर राजपूतों को लेकर वह पिता का बदला लेने के लिए रवाना हुआ। सबल सिंह ने सबसे पहले व्यावसायिक नगर पाली पहुँचकर लूट-मार की और बाद में उसने वहाँ आग

लगवा दी। उसके बाद वह बीलाडा पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। यह नगर उन दिनों में व्यवसाय के लिए बहुत प्रसिद्ध हो रहा था। बीलाडा नगर में प्रवेश करते ही एक साथ गोलों की वर्षा हुई। उसमें सबल सिंह मारा गया और उसके दूसरे दिन उसका मृत शरीर लूनी नदी के किनारे जलाया गया।

राज्य के निरंकुश प्रधान सामन्तों के मारे जाने पर मारवाड़ में एक साथ परिवर्तन हुआ। राजकर्मचारियों की अनुशासनहीनता बहुत-कुछ समाप्त हो गयी और प्रजा में फैली हुई अराजकता मिटने लगी। कृषि और व्यवसाय के बढ़ने से राज्य की आर्थिक दशा में परिवर्तन हुआ। मारवाड़ के उन दिनों का वर्णन करते हुए उस समय के ग्रंथों में लिखा गया है कि थोड़े ही दिनों के भीतर मारवाड़ में सभी कार्य शान्तिपूर्ण होने लगे और पिछले दिनो में जो अशान्ति बढ़ गयी थी, उसके दूर हो जाने से मारवाड़ राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीने लगे।

मारवाड़ राज्य में अब जो सामन्त रह गये थे उनमें और विजय सिंह में किसी प्रकार का संघर्ष बाकी न रहा। इसलिए राज्य की शक्तियाँ धीरे-धीरे उन्नत होने लगी और सामन्तों के साथ विजयसिंह के सम्बन्धों में स्नेह और माधुर्य पैदा हो गया। सभी सामन्त अपने राजा को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

इन दिनों में विजयसिंह ने अपने राज्य के साथ-साथ चरित्र में भी अनेक परिवर्तन किये थे। उसमें जो स्वाभाविक निर्बलता थी, उसको दूर करके उसने अपने साहस और पराक्रम का परिचय दिया। इन्हीं दिनों में उसने विद्रोही खोसा और सराई जाति के लोगों पर आक्रमण करने की तैयारी की और वहाँ पहुँचकर उसने राजाओं के साथ युद्ध किया। वहाँ पर विजयी होकर विजय सिंह ने अमरकोट के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

विजयसिंह इन दिनों में निर्भीकता से काम ले रहा था। उसने मारवाड़ की सीमा पर जो भाग जैसलमेर राज्य में मिला लिया गया था, उस पर अधिकार कर लिया ओर गोडवाडा राज्य को मेवाड़ के राणा से छीन कर उसने अपने राज्य में मिला लिया। मारवाड़ में यह राज्य बहुत प्रसिद्ध माना जाता था। इसके पहले गोडवाडा राज्य पाँच शताब्दी तक मेवाड़ के राणा के अधिकार में रह चुका था। उसके मारवाड़ में मिल जाने के बाद राणा का उस पर कोई अधिकार न रहा।

स्वर्गीय पिता के न रहने के बाद रामसिंह के साथ विजय सिंह का जो संघर्ष पैदा हुआ था और उसके फलस्वरूप अजमेर देकर उसे मराठों को कर देना पड़ा था उससे विजय सिंह की राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ बहुत दीन-दुर्बल हो गयी थीं। उन्हीं दिनों में सामन्तों की स्वेच्छाचारिता के कारण और देवीसिंह के विद्रोही व्यवहारों से विजय सिंह की असमर्थता भयानक रूप से बढ़ गयी। परन्तु उस प्रकार के सभी संकट अब समाप्त हो गये थे। राज्य के वर्तमान सामन्त अब संगठित रूप से चल रहे थे। मारवाड़ के बुरे दिनों का अब अंत हो चुका था। राज्य में किसी प्रकार आपसी विरोध और संघर्ष न रह गया था। परन्तु अजमेर में मराठों की शक्तियाँ अब भी प्रबल हो रही थीं और विजय सिंह अभी तक उनसे अजमेर वापस न ले सका था।

प्रताप सिंह इन दिनों जयपुर का शासक था। वह योग्य प्रतिभाशाली और तेजस्वी था। मराठों के अत्याचारों से जयपुर का जो विनाश हो रहा था, उससे वह मन ही मन बहुत दुखी हो रहा था। सम्वत् 1843 सन् 1787 ईसवी में उसने अपने दूत के द्वारा संदेश भेजा कि “मराठा लोग राज्य में भयानक अत्याचार कर रहे हैं। इसलिए हम सब लोगों का कर्त्तव्य है कि उनको परास्त करने के लिए हम सभी संगठित हो जावें। इसके लिए मैंने सभी

प्रकार की तैयारी कर ली है। यदि आप ऐसे समय में राठौरों की सेना भेजकर हमारी सहायता करेंगे तो निश्चित रूप से हम मराठों को पराजित करके राजस्थान से उनको भगा देंगे।"

विजय सिंह ने संकट के समय अजमेर के साथ-साथ चौथ देकर मराठों से संधि की थी। वह अब भी मराठों से अपना वदला लेना चाहता था। प्रताप सिंह का यह संदेश पाकर वह प्रसन्न हो उठा और राठौरों की एक सेना तैयार करके उसने प्रताप सिंह के पास उनको भेज दिया।

जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह की स्त्री ने किसी समय विजयसिंह के पिता की हत्या करने का काम किया था और ईश्वरी सिंह ने स्वयं विजय सिंह को कैद करके उसका सर्वनाश करने की चेष्टा की थी। परन्तु विजय सिंह ने इस अवसर पर उन वातों को भुला दिया। वह समझता था कि आपस की इस शत्रुता को यदि हम मिटा नहीं सके तो मराठा लोग हम सव लोगों का सदा सर्वनाश करते रहेंगे। इसलिए राजपूतों के गौरव की रक्षा के लिए उसने पुरानी शत्रुता पर धूल डाली और प्रताप सिंह के अनुसार राठौरों की एक सेना उसने भेज दी। वियार का सामन्त जवानदास राठौरों की उस सेना का सेनापति होकर गया था। वह जयपुर पहुँचकर प्रतापसिंह की सेना के साथ मिल गया।

जयपुर का राजा प्रतापसिंह पहले से ही मराठों के साथ युद्ध के लिए तैयार वैठा था। राठौड़ सेना के पहुँचते ही तूंगा नामक स्थान पर राजपूतों ने मराठों के साथ युद्ध आरंभ कर दिया। उस संग्राम में आरम्भ से ही राठौड़ सेना शक्तिशाली साबित हो रही थी। मराठा सैनिकों ने सेनापति डिवोइन के द्वारा युद्ध की शिक्षा पायी थी। फिर भी इस युद्ध में मराठा सेना के पैर उखड़ने लगे। जवानदास की राठौड़ सेना मराठा गोलंदाजों के ऊपर एक साथ टूट पड़ी और उस समय राठौड़ों ने भयानक मारकाट की, जिससे मराठे घवरा उठे। उनके वहुत-से सैनिक मारे गये और जो वाकी रहे, वे परास्त होकर युद्ध भूमि से भाग गये। इसी अवसर पर विजयी राठौड़ सेना ने अजमेर पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर राठौड़ों का झण्डा लगाकर अपना प्रवंध आरंभ कर दिया।

राठौड़ों ने अजमेर पर अधिकार करके उस संधि को खत्म कर दिया, जो विजय सिंह के द्वारा मराठों के साथ की गयी थी। इसी समय विजय सिंह ने मराठों को कर देना भी वन्द कर दिया।

युद्ध में राजपूतों के साथ पराजित होकर माधव जी सिंधिया निराश नहीं हुआ। फ्राँसीसी सेनापति डिवोइन के साथ परामर्श कररके उसने एक विशाल सेना का संगठन किया और उस सेना को युद्ध की योरोपियन शिक्षा देना शुरू किया। माधव जी सिंधिया अत्यन्त वुद्धिमान और मराठा सेना का दूरदर्शी सेनापति था। राजपूतों के साथ पराजित होकर भी उसने वहुत-सी वातें सीखी थी। अजमेर में रहकर मराठों ने राजपूतों के अनेक गुणों और अवगुणों की जानकारी प्राप्त की थी। माधवजी सिंधिया ने राजपूतों के युद्ध कौशल का अध्ययन करके उसका लाभ मराठा सैनिकों को पहुँचाया था।

तुंग के युद्ध क्षेत्र में पराजित होकर मराठा लोग चार वर्ष तक चुपचाप रहे। इन दिनों में राजपूतों से वदला लेने के लिए उनकी तैयारियाँ गुप्त रूप से होती रही। माधव जी सींधिया अपनी पराजय का कारण भली-भाँति समझता था और वह यह भी समझता था कि दो राज्य के राजपूत अधिक समय तक संगठित होकर और एक होकर नहीं रह सकते। चार वर्षों में उसने अपनी विशाल सेना का संगठन कर लिया। उसके वाद वह राठौरों से वदला लेने के लिए रवाना हुआ। माधव जी सिंधिया की इस विशाल सेना के आने का समाचार

जोधपुर में विजय सिंह को मिला। उसी समय उसने जयपुर के राजा के पास अपने दूत के द्वारा संदेश भेजा कि माधव जी सींधिया की एक बहुत बड़ी सेना मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए आ रही है। इसलिए आप तुरन्त जयपुर की एक शक्तिशाली सेना मराठों को पराजित करने के लिए भेज दीजिए।

विजय सिंह के दूत के द्वारा यह संदेश पाकर जयपुर के राजा ने विचार किया कि हमारी माँग पर मराठों के साथ युद्ध करने के लिए मारवाड़ की राठौर सेना आयी थी और अब इस अवसर पर राजा विजय सिंह की माँग पर मराठों से युद्ध करने के लिए जयपुर की सेना जानी चाहिए।इसलिए उसने जयपुर की एक सेना तैयार करके विजय सिंह के पास भेज दी।

जयपुर की यह सेना मारवाड़ पहुँच गयी। मराठा सेना के आ जाने पर जिस समय राठौर युद्ध के लिए तैयार हो रहे थे, जयपुर की सेना ने राठौर सेना के साथ झगड़ा कर लिया। इस दशा में राठौड़ों को मराठों की प्रबल सेना के साथ केवल अपने बल पर युद्ध करना पड़ा। पाटन के युद्ध क्षेत्र में मराठों के साथ राठौड़ों ने भीषण युद्ध किया। परन्तु मराठा सेना के अत्यधिक और प्रबल होने के कारण राठौड़ सेना पराजित हो गयी। राजा विजयसिंह ने अपनी राजधानी में जयपुर की सेना का विश्वासघात सुना। उससे उसको अत्यन्त क्रोध और दुख हुआ।

मराठों से साथ पराजित होकर राठौरों ने फिर से युद्ध के लिये तैयारी की। सन् 1791 ईसवी में राठौरों ने मेड़ता के मैदानों में मराठों के साथ फिर युद्ध किया। इस दूसरे युद्ध में प्राणों का मोह छोड़कर राठौर राजपूतों ने मराठों के साथ संग्राम किया परन्तु शत्रु-सेना के सामने संख्या में बहुत कम होने के कारण इस दूसरे युद्ध में भी राठौरों की पराजय हुई। माधव जी सिंधिया ने विजयी होकर राजा विजयसिंह से साठ लाख रुपये की माँग की।

विजय सिंह लगातार दो युद्धों में मराठों से पराजित हो चुका था। अब उसके सामने कोई आशा न रह गयी थी, इसलिये अपनी विवश अवस्था में उसने माधव जी सींधिया की माँग के अनुसार साठ लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया।

विजय सिंह के सामने इस स्वीकृति के सिवा और कोई रास्ता न था। जयपुर के राजा प्रताप सिंह की सहायता करके उसने मराठों की संधि तोड़ी था और माधवजी सिंधिया के साथ उसने नई शत्रुता पैदा की थी। चार वर्षों के उपरान्त जब मराठों ने मारवाड़ पर आक्रमण किया, उस समय जयपुर की सेना ने विश्वासघात किया और उसके फलस्वरूप राठौड़ों को पराजित होकर उनके राजा विजयसिंह को दंड स्वरूप साठ लाख रुपये देना स्वीकार करना पड़ा।

इन दिनों में मारवाड़ की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। जोधपुर के खजाने में इतना रुपया न था, जिससे दंड की यह भारी रकम अदा की जा सके। इस दशा में उस रुपये की अदायगी कैसे हो, विजय सिंह की समझ में यह किसी प्रकार न आया।

जोधपुर के खजाने में जो कुछ मौजूद था, उसको निकाल कर देने पर भी साठ लाख रुपये अदा न हो सके। इस दशा में माधव जी सिंधिया के आदेश से मराठा सेना ने मारवाड़ के नगरों में धन की लूट की और उससे जो सम्पत्ति एकत्रित हुई, उससे भी दंड के बाकी रुपये पूरे न हो सके। उस दशा में मारवाड़ के प्रधान सामन्तों और राज्य के श्रेष्ठ आदमियों को कैद करके उनके महलों और प्रासादों की लूट की गई। इससे जो धन एकत्रित हुआ, उससे भी दंड के बाकी रुपयों की पूर्ति न हो सकी।

विजय सिंह के पास दंड के वाकी रुपयों को अदा करने के लिये अब कोई उपाय न था। राज्य के प्रधान सामन्त वन्दी बनाकर मराठा शिविर में रखे गये थे। बाकी रुपयों को वसूल करने के लिये माधव जी सिंधिया ने मारवाड़ के नगरों और गाँवों में फिर से लूट करने के लिये अपनी सेना को आदेश दिया। उस समय मराठा सैनिकों के अत्याचारों से राज्य में चारों तरफ हाहाकार मच गया। स्थान-स्थान से रोने और चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। छोटे-छोटे बच्चे जान से मारे गये। स्त्रियों के सम्मान नष्ट किये गये। मराठों ने अत्याचार में कोई बात वाकी न रखी।

तुंगा के मैदानों में मराठों को पराजित करके राठौढ़ सेना ने अजमेर को अपने अधिकार में कर लिया था और वहाँ का शासन दुभराज को सौंप दिया था। पाटन और मेड़ता के युद्ध क्षेत्रों में राठौड़ सेना को पराजित करके मराठों ने फिर अजमेर पर अधिकार कर लिया। वहाँ के शासक दुभराज ने जव सुना कि मराठों की विशाल सेना भयानक अत्याचारों के साथ अजमेर में प्रवेश कर रही है तो उसने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली। मराठों ने वहाँ पहुँचकर विना किसी प्रकार के युद्ध के अधिकार कर लिया और अजमेर में मराठों का झंडा फहराने लगा।

विजय सिंह मराठों के साथ होने वाली पराजय और उसके फलस्वरूप मारवाड़ में उनके अत्याचारों को थोड़े दिनों में विलकुल भूल गया। उसके जीवन में आरंभ से ही राजपूती स्वाभिमान का अभाव था। राठौड़ों के प्राचीन गौरव को भूलकर उसने विलासिता का आश्रय लिया और ओसवाल जाति की एक सुन्दरी युवती पर आसक्त होकर उसे अपनी उपपत्नी वनाया। उसके शासनकाल में मारवाड़ राज्य का भयानक रूप से पतन हुआ। अब उसकी इस विलासिता के कारण राज्य का सर्वनाश आरंभ हुआ। परन्तु विजय सिंह को इसकी परवाह न थी।

ओसवाल युवती ने विजयसिंह को अंधा बना दिया। उसको उचित और अनुचित कर्मों का ज्ञान न रहा। उस युवती के प्रेम को पाकर विजय सिंह ने सब कुछ भुला दिया और अपनी प्रधान रानी के सम्मान को ठुकरा कर उसने उस युवती को प्रधानता दी। इन दिनों विजयसिंह के मनोभाव वहुत पतित हो गये थे। उसने जीवन की सम्पूर्ण मर्यादा को भुलाकर केवल उस युवती को महत्त्व दिया था। वह युवती विजयसिंह की इस अवस्था से पूर्णरूप से परिचित थी और वह कभी-कभी उसके इस अंधे प्रेम को ठुकरा दिया करती थी। उस समय के भट्ट ग्रंथों में लिखा गया है कि उस युवती ने अनेक मौकों पर विजयसिंह को अपनी जूतियों से मारा था। परन्तु इस पर भी विजयसिंह के स्वाभिमान को आघात न पहुँचा। किसी भी पुरुष के पतन की यह चरम सीमा मानी जा सकती है।

विजय सिंह के इस पतन से मारवाड़ राज्य में अशान्ति और अराजकता बढ़ने लगी। इस पर भी विजयसिंह की आँखें नहीं खुली। मारवाड़ में इन दिनों विजयसिंह का नहीं, उसकी उप-पत्नी का शासन चल रहा था। उस युवती ने ऐसी जाति में जन्म लिया था, जिसमें किसी राजपूत को राजस्थान की व्यवस्था के अनुसार, विवाह करने का कोई अधिकार न था। इसीलिये वह उपपत्नी के रूप में मानी गयी और उसे विजय सिंह की रानी होने का अधिकार न मिल सका। इतना सब होने पर भी वह युवती अपने आपको गौरवपूर्ण समझती थी और विजयसिंह की वड़ी रानी से भी वह अपने को श्रेष्ठ समझती थी।

उस युवती का विश्वास था कि मुझ से जो लड़का पैदा होगा, वह विवाहित रानियों के लड़कों के होने पर भी इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा। लेकिन जब उसके कोई लड़का पैदा न हुआ तो अपने अधिकारों को सुरक्षित वनाने के लिए उसने गुमानसिंह के पुत्र

मानसिंह को गोद लिया और वह उसके उत्तराधिकारी होने की घोषणा करने लगी। विजय सिंह उसके हाथों की कठपुतली था। उसने अपनी बुद्धि नष्ट कर दी थी और आँखें बन्द करके वह अपनी उप पत्नी के आदेशों का पालन करता था। उस युवती ने इसका खूब लाभ उठाया।

उपपत्नी के आज्ञानुसार, विजयसिंह ने अपनी राजधानी में समस्त सामन्तों को बुलाकर एकत्रित किया और उसने मानसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी मानने के लिये उनको आदेश दिया। सामन्तों की समझ में ऐसा करना विधान और न्याय के विल्कुल विरुद्ध था। इसीलिये सामन्तों ने साहस करके स्पष्ट रूप से आदेश को मानने से इन्कार कर दिया। विजयसिंह ने सामन्तों की इस बात की बिल्कुल परवाह न की उसने पण्डितों और पुरोहितों को बुलाकर शास्त्र की रीति से दत्तक पुत्र मानसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार किया और उसका जो वास्तविक पुत्र था, वह राज्य के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया।

राजा विजय सिंह के वंशज

अभयसिंह	बख्त सिंह	आन्नद सिंह ईडर में गोद लिया गया	रूपसिंह मालवा में गोद लिया गयलिया	देवीसिंह पोकरण में गोद लिया गया		
रामसिंह	विजयसिंह	सावन्त सिंह	शेर सिंह	भीम सिंह	गुमान सिंह	सरदार सिंह भीम के द्वारा मारा गया
फतेहसिंह छोटी- आयू मृत्यु	जालिम- सिंह विजयसिंह का उत्तराधि- कारी	शूर सिंह				

राजा विजय सिंह के वंशजों की ऊपर जो नामावली दी गयी है, उसके पढ़ने से मालूम होता है कि राजा विजयसिंह का उत्तराधिकारी जालिम सिंह था, जिसके अधिकारों की अवहेलना करके उसने अपनी उप पत्नी के दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी माना था। उस युवती को उप पत्नी बनाने के बाद उसका भयानक पतन हुआ। उसके परिणामस्वरूप अपनी उपपत्नी को प्रसन्न रखने के लिए वह उचित और अनुचित सभी प्रकार के कार्य करता था। उसके इस नैतिक पतन में अराजकता की भयानक वृद्धि हुई थी।

विजय सिंह के कुशासन की वर्तमान परिस्थितियों को देखकर राज्य के सामन्तों की चिन्तायें बढ़ने लगी। उन सब लोगों ने मिलकर और आपस में परामर्श करके निर्णय किया कि विजय सिंह को सिंहासन से उतारकर भीमसिंह को मारवाड़ का शासक बनाया जाये। इस निर्णय के अनुसार कार्य करने के लिए सामन्तों ने अपनी योजना बनायी। विजय सिंह

को सामन्तों का यह निर्णय मालूम हो गया। उसने एक वार सामन्तों को अनुकूल वनाने में सफलता प्राप्त की थी। उसी विश्वास पर वह इस वार फिर सामन्तों के पास गया और गुप्त रूप से उसने अपना एक पत्र रास के सामन्त के पास भेजा।

उस सामन्त ने विजय सिंह की युवती प्रेमिका उपपत्नी के पास जाकर कहा–"महाराज ने सामन्तों के पास पहुँचकर आपको बुलाने के लिए हमें भेजा है। आपके साथ चलने के लिए राज्य की संरक्षक सेना तैयार है। इसलिए आप तुरन्त हमारे साथ चलिए।" उपपत्नी ने सामन्त का विश्वास किया और अपने महल से निकलकर जिस समय वह सवारी पर वैठने लगी, उसी समय तलवार के आघात से उसका मस्तक गर्दन से कटकर नीचे गिर गया। उसके प्राणों का अन्त करके रास का सामन्त भीमसिंह को लेकर सेना के साथ अपने स्थान पर पहुँच गया। यदि रास का सामन्त भीमसिंह को वहाँ न ले जाकर एकत्रित सामन्तों के पास लेकर गया होता निश्चित रूप से सामन्तों ने अपने पहले के निर्णय के अनुसार विजय सिंह को सिंहासन से उतार कर भीम सिंह को उसके स्थान पर बिठा दिया होता। उस युवती के मारे जाने का समाचार एकत्रित सामन्तों और विजयसिंह ने एक साथ सुना। सभी लोग वहाँ से उठकर भीमसिंह के पास पहुँच गये।

विजय सिंह सामन्तों के साथ था। इसलिए सामन्तों को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली। विजय सिंह ने वहाँ पर सवको प्रसन्न करने के लिए बातें की और भीमसिंह को सोजत और सिवाना का अधिकार देकर सिवाना के दुर्ग में भेज दिया। भीमसिंह ने संतुष्ट होकर उसे स्वीकार कर लिया। उसके चले जाने के बाद विजय सिंह ने अपने वड़े पुत्र जालिम सिंह को वुलाया। मारवाड़ राज्य का वास्तव में वही उत्तराधिकारी था। विजय सिंह ने जव मानसिंह (दत्तक पुत्र) को अपना उत्तराधिकारी बनाया था उस समय जालिम सिंह को को वहुत असंतोष हुआ था। इसलिए उसके इस असंतोष को दूर करने के लिए विजय सिंह ने उसको गोडवाड़ का पूरा अधिकार देकर वहाँ भेज दिया। उसके जाने के समय विजय सिंह ने चुपके से उसको आदेश दिया कि तुम भीमसिंह पर आक्रमण करके उसे राज्य से निकाल दो। जालिम सिंह ने इसे स्वीकार कर लिया।

गोडवाड़ राज्य में पहुँचकर पिता की आज्ञानुसार जालिम सिंह ने भीमसिंह पर आक्रमण करने की तैयारी की, वह अपनी सेना लेकर रवाना हुआ। भीमसिंह को यह समाचार पहले से ही मालूम हो चुका था। जालिम सिंह के वहाँ पहुँचते ही दोनों तरफ से युद्ध आरंभ हुआ। जालिम सिंह की सेना के मुकावले में भीमसिंह की सेना वहुत छोटी थी। इसलिए युद्ध के अंत में भीमसिंह की पराजय हुई और वह युद्ध से भागकर पोकरण के सामन्त के यहाँ चला गया और वहाँ से वह जैसलमेर पहुँच गया।

इन दिनों में मारवाड़ राज्य में वड़ी अशान्ति पैदा हो गयी थी। राज्य की तरफ से व्यवस्था न होने के कारण भयानक रूप से अराजकता वढ़ रही थी। राज्य के सभी सामन्त विजय सिंह के विद्रोही हो रहे थे। इस प्रकार न जाने कितनी बातें पैदा होकर राज्य का विनाश और विध्वंस कर रही थी। उन्हीं दिनों में जोधपुर के सिंहासन पर इकत्तीस वर्ष वैठकर सन् 1850 के आषाढ़ महीने में विजय सिंह की मृत्यु हो गयी।[1]

☐

1. कुछ अधिकारियों ने लिखा है कि विजयसिंह ने जोधपुर के सिंहासन पर वैठ कर इकतालिस वर्ष राज्य किया था। उसका जन्म सन् 1732 में हुआ था और सिंहासन पर वैठने के समय उसकी अवस्था वीस वर्ष की थी।

अध्याय–44
भीमसिंह व मानसिंह का काल

जालिम सिंह के साथ युद्ध में पराजित होकर भीमसिंह जैसलमेर चला गया। वहाँ पर उसने विजय सिंह की मृत्यु का समाचार सुना। उसने तुरन्त जैसलमेर से चलने की तैयारी की और अपनी सेना के साथ जैसलमेर से बाईस घंटे में जोधपुर पहुँचकर उसने बड़ी शीघ्रता के साथ राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

जालिम सिंह विजय सिंह का सबसे बड़ा लड़का था और प्राचीन प्रणाली के अनुसार राज्य का वही उत्तराधिकारी था। भीमसिंह विजय सिंह का पौत्र था। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर जालिम सिंह जोधपुर राजधानी के लिए रवाना हुआ। मेड़ता में आकर उसने मुकाम किया। वहाँ पर उसने सुना कि जैसलमेर से भीमसिंह आकर मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ गया है। यह सुनते ही जालिम सिंह को आश्चर्य हुआ। वह चिन्तित होकर वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने लगा कि इस समय क्या करना चाहिए।

जालिम सिंह के आने का समाचार जोधपुर में भीमसिंह को मिला। उसने यह भी सुना कि जालिम सिंह मेड़ता में आ गया और वह सिंहासन पर बैठने के लिये आया है। इस प्रकार का समाचार पाते ही भीमसिंह ने जालिम सिंह को गिरफ्तार करके लाने के लिये एक सेना रवाना की। जालिम सिंह ने जब यह सुना तो वह बीलाडा चला गया। भीमसिंह की सेना ने वहाँ पहुँच कर उस पर आक्रमण किया। उसमें जालिम सिंह की पराजय हुई इसलिये वह भागकर उदयपुर में राणा के पास पहुँचा।

मेवाड़ की राजनीतिक परिस्थितियाँ उन दिनों में बहुत खराब हो गई थीं। इसलिये राणा के यहाँ से जालिम सिंह की कोई सहायता न हो सकी। जालिम सिंह राणा का भांजा था। परन्तु मेवाड़ राज्य की बढ़ती हुई अशान्ति में वह उसकी कोई सहायता न कर सका। इसलिये भीमसिंह के साथ युद्ध करने के लिए मेवाड़ की सेना न भेजकर उसने जालिम सिंह को राज्य की एक बड़ी जागीर दे दी।

जालिम सिंह शिक्षित, विद्वान और कई विषयों का एक प्रसिद्ध पंडित था। नैतिक विषयों पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी और इतिहास का वह जानकार था। उदयपुर में रहकर वह अपना अधिकांश समय काव्य और इतिहास की आलोचना में व्यतीत करने लगा। जालिम सिंह वहाँ अधिक दिनों तक जीवित न रहा। उसने अपने हाथ से अपनी एक नस काट डाली थी। उससे अधिक रक्त निकल जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

जालिम सिंह मारवाड़ राज्य के सिंहासन पर वैठने का पूर्ण रूप से अधिकारी था। परन्तु वह अवसरवादी और अनावश्यक रूप से युद्ध प्रिय न था। वह एक कवि था। साहित्य के साथ वह विशेष रुचि रखता था।[1]

मारवाड़ के सिंहासन पर वैठकर भीमसिंह ने राज्य के वास्तविक अधिकारी जालिम सिंह को राज्य में आने तक का अवसर नहीं दिया। उसके भाग जाने के वाद भीमसिंह अपने भविष्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की वातें सोचने लगा। वह सोचने लगा कि अव जालिम सिंह के लौट कर आने की आशंका न होने पर भी जोधपुर का सिंहासन संकटहीन नहीं है।

भीमसिंह के इस प्रकार सोचने का कारण था। विजय सिंह के सात लड़के थे। उसकी मृत्यु के समय केवल जालिम सिंह और सरदार सिंह जीवित थे। सरदार सिंह, सामंत सिंह, भीमसिंह और शेरसिंह के कारण सिंहासन के अधिकार का किसी भी समय संघर्ष उपस्थित हो सकता था। उसका अनुमान अभी से भीमसिंह करने लगा और इस आने वाले संकट को निर्मूल करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया।

भीमसिंह स्वभाव अत्यन्त कठोर और निर्भीक था। उसने अपने चाचा सरदार सिंह और शेर सिंह को मरवा डाला। शेरसिंह ने भीमसिंह को गोद लिया था। परन्तु उसने इसकी भी कुछ परवाह न की। इस समय भीमसिंह के जीवन से तीनों संकट समाप्त हो गये। जालिम सिंह भाग कर चला गया। उसके दोनों चाचा मारे जा चुके थे। लेकिन इतने से ही उसको शान्ति न मिली। वह सोचने लगा कि सामन्त सिंह का पुत्र शूरसिंह और गुमानसिंह का पुत्र भान सिंह जिसको विजय सिंह की प्रेमिका युवती उपपत्नी ने गोद लिया था और विजय सिंह जिसको मारवाड़ का शासक वनाना चाहता था, अभी तक जीवित हैं। शूरसिंह अपने अच्छे व्यवहारों के कारण सवका प्रिय हो रहा था, वह भीमसिंह के बड़े भाई का लड़का था। इसलिये भीमसिंह उसके प्राणों का नाश करके अपने राज्य को संकटहीन वनाने का विचार करने लगा।

भीमसिंह को मानसिंह सबसे बड़ा शत्रु दिखायी देने लगा। मानसिंह जालौर के दुर्ग में रहता था। इसलिये उसके प्राणों का नाश करने के उद्देश्य से भीमसिंह एक सेना लेकर रवाना हुआ और उसने जालौर के दुर्ग को घेर लिया। यह दुर्ग वहुत मजवूत वना हुआ था और शत्रु उस पर सहज ही अधिकार नहीं कर सकते थे। भीमसिंह को उसमें सफलता दिखाई न पड़ी। राठौरों की जो सेना उसके साथ आयी थी, वह कई महीने तक उस दुर्ग को घेरे पड़ी रही। लेकिन उसका कोई परिणाम न निकलने पर भीमसिंह ने वहाँ का उत्तरदायित्व अपने सेनापति को सौंपा और वह स्वयं जोधपुर की राजधानी लौट गया। इसके बाद भी राठौर सेना वहाँ पर घेरा डाले पड़ी रही।

मानसिंह के अधिकार में इतनी सेना न थी कि वह भीमसिंह की सेना से युद्ध कर सकता। इसीलिये दुर्ग के भीतर रहकर वह अपनी रक्षा करता रहा। इस अवस्था में और वहुत दिन वीत गये। खाने-पीने की कठिनाइयाँ वढ़ गयीं। उस दुर्ग की वनावट इतनी सुदृढ़ थी कि उसमें शत्रु का प्रवेश न हो सकता था। लेकिन कई महीने वीत जाने के कारण मानसिंह और उसकी साथ की सेना की कठिनाइयाँ वहुत वढ़ गयी।

---

1. यतीज्ञानचन्द्र जिसे मैं आदरणीय गुरु के रूप में मानता था। वह दस वर्ष तक लगाकर मेरे साथ रहा। यती ज्ञान चन्द्र ने जालिम सिंह की योग्यता की मुझसे प्रशंसा की थी। उसने वताया कि जालिम सिंह को कविता का वहुत अच्छा ज्ञान था और यह भी स्वीकार किया कि मैंने अनेक वातों की जानकारी जालिम सिंह से प्राप्त की है।

बिना खाये-पिये कोई भी मनुष्य कितने दिन जीवित रह सकता है। यही परिस्थिति जालौर के दुर्ग में मानसिंह और उसकी सेना की थी। इसलिये विवश होकर मानसिंह ने अवसर पाकर और उस दुर्ग से निकल कर मारवाड़ के गाँवों और नगरों को लूटना आरंभ किया। उस लूट में मानसिंह के सैनिक खाने-पीने की सामग्री अधिक लेकर अपने दुर्ग में आ जाते और मौका पाकर वे लोग फिर लूटने के लिये निकल जाते। भीमसिंह की सेना इस लूट को रोक न सकी। इसका नतीजा यह हुआ कि मानसिंह और उसकी सेना के सामने खाने-पीने की जो कठिनाइयाँ थीं, वे वहुत-कुछ कम हो गयी। इस प्रकार की लूट में मानसिंह का जीवन एक वार वड़े संकट में पड़ गया। वह अपने सैनिकों के साथ दुर्ग से वाहर गया था और लूट कर जैसे ही वह लौटा, भीमसिंह की सेना ने उस पर आक्रमण किया। मानसिंह उस समय पैदल था और भीमसिंह के सैनिकों के द्वारा उसके कैद हो जाने में देर न थी, उसी समय मानसिंह के सामन्त ने उसको अपनी तरफ पकड़ कर खींचा और अपने घोड़े पर वैठा कर वह वड़ी तेजी के साथ वहाँ से चला गया। इस प्रकार उस भयंकर संकट से मानसिंह के प्राणों की रक्षा हो सकी।

राजस्थान के किसी भी राज्य में जव कभी आपसी विद्रोह पैदा होता था उस समय राज्य के सामन्त एक न रह कर दोनों तरफ के सहायक वन जाते थे। राजस्थान के अनेक राज्यों में इस प्रकार देखा जा चुका था। मारवाड़ में इस समय भीमसिंह और मानसिंह में संघर्ष चल रहा था। इसलिये वहाँ के सामन्त दोनों तरफ के सहायक हो रहे थे। कुछ सामन्त भीमसिंह के साथ और कुछ मानसिंह के साथ भी थे। भीमसिंह का पक्ष प्रवल और शक्तिशाली था। इसलिये कितने ही सामन्त भीमसिंह का पक्ष छोड़कर मानसिंह के समर्थक वन गये थे।

भीमसिंह के पक्ष के अनेक सामन्तों के निकल जाने का एक और भी कारण था। सभी सामन्त भीमसिंह को कठोर, अव्यवहारिक और अत्याचारी समझते थे। सामन्तों के साथ भीमसिंह का व्यवहार अच्छा न था। जो सामन्त अपनी सेनाओं को लेकर जालौर के दुर्ग पर आक्रमण करने गये थे, उनको उसमें सफलता न मिलने के कारण भीमसिंह ने उनके सम्वन्ध में कई वार ऐसी वातें कही थी, जो सामन्तों के सम्मान के विल्कुल विरुद्ध थीं। जालौर के दुर्ग में भीमसिंह की विशाल सेना को सफलता न मिलने का एक यह भी कारण था।

भीमसिंह के व्यवहारों से अनेक वार अपमानित होकर मारवाड़ के अनेक सामन्त राज्य को छोड़कर वाहर चले गये और वहीं पर रहने लगे। भीमसिंह ने उनकी परवाह न की और उसने उनकी जागीरों पर अपना अधिकार कर लिया। इन्हीं दिनों में भीमसिंह ने नीमाज के दुर्ग पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी और उस दुर्ग पर अधिकार करके भीमसिंह ने भयानक रूप से उसका विध्वंस किया। इसके वाद भीमसिंह ने उस सेना को भी जालौर के दुर्ग पर अधिकार करने के लिये भेज दिया।

भीमसिंह के द्वारा भेजी हुई इस वैतनिक सेना ने जालौर के नगर पर अधिकार कर लिया। इससे मानसिंह के सामने भयानक संकट पैदा हो गया। मारवाड़ की वैतनिक सेना के आ जाने से मानसिंह को मिलने वाली वाहरी सहायता से निराश हो जाना पड़ा। इन दिनों में फिर उसके सामने खाने-पीने की कठिनाइयाँ भयानक रूप से वढ़ गयी। अव उसके सामने दो ही वातें थी। वह अपने सैनिकों के साथ या तो भूखे रहकर प्राण दे सकता था अथवा भीमसिंह के सामने आत्म समर्पण कर सकता था। इन दोनों में उसे क्या करना चाहिये, इसका निर्णय करना उसके लिये वहुत कठिन हो गया।

जीवन की इस भयंकर परिस्थिति में आक्रमणकारी सेना के प्रधान के दूत ने दुर्ग में पहुँचकर मानसिंह से कहा –"महाराज, इस दुर्ग को मारवाड़ की जिस सेना ने घेर रखा है, उसके सेनापति के आदेश से मैं आपसे यह कहने आया हूँ कि हम सव लोग आप की आज्ञा मानने के लिये तैयार हैं और राजा भीमसिंह के स्थान पर हम सव लोग आप को देखना चाहते हैं इसलिये निर्भीक होकर आप दुर्ग से निकल कर वाहर आ जाइये।"

मानसिंह ने अपने परिवार को छोड़कर जालौर के दुर्ग में ग्यारह वर्ष व्यतीत किये थे और भयानक विपदाओं का सामना किया था। सम्वत् 1860 कार्तिक, सन् 1804 ईसवी के दिसम्बर महीने में मानसिंह को दूत के द्वारा यह समाचार मिला और उसके साथ ही मालूम हुआ कि भीमसिंह की मृत्यु हो गई है, मानसिंह ने इस समाचार पर विश्वास न किया। यद्यपि दूत ने राजमंत्री इन्द्रराज के हाथ का लिखा पत्र लाकर मानसिंह के हाथ में दिया था। इस सन्देश को ठीक-ठीक समझने के लिये राजगुरु देवनाथ को शत्रु के शिविर में भेजा गया और उसके वाद जव सन्देश की सत्यता का समाचार मिल गया तो मानसिंह अपने दुर्ग से वाहर निकला। जो राठौर सेना उसको कैद करने के लिये आई थी। उसने वड़े सम्मान के साथ मानसिंह का स्वागत किया।

सन् 1804 के जनवरी महीने में मानसिंह का राजतिलक हुआ। इन दिनों में मारवाड़ की परिस्थिति वड़ी भयानक हो गई थी और सम्पूर्ण राज्य एक वार विध्वंस हो चुका था। मारवाड़ के सिंहासन पर वैठकर भी मानसिंह ने शान्तिपूर्ण दिनों की आशा न की। विजयसिंह ने देवीसिंह को कैद करके जिस प्रकार उसकी हत्या की थी, उसके लड़के सवल सिंह ने पिता का वदला लेने के लिये जिस सर्वनाश का विष वोया था, उसका वर्णन किया जा चुका है।

मानसिंह के सिंहासन पर वैठने के समय देवीसिंह का पौत्र और सवल सिंह का वेटा सवाई सिंह पोकरण का सामन्त था। उसने असंतुष्ट होकर जोधपुर का राज दरवार छोड़ दिया और दूसरे सामन्तों के साथ मिलकर उसने एक नयी योजना का निर्माण कार्य आरम्भ किया। उसने चोपासनी नामक स्थान पर राज्य के सामन्तों को बुलाकर कहा –"स्वर्गीय भीमसिंह की रानी गर्भवती है। इसलिये हम और आप सभी लोग इस वात की प्रतिज्ञा करें कि यदि रानी के पुत्र उत्पन्न होगा तो मानसिंह को सिंहासन से उतार कर उसका राजतिलक किया जायेगा।"

सवाईसिंह रण कुशल होने के साथ-साथ प्रभावशाली था। उसकी उत्तेजना पूर्ण वातों को सुनकर उपस्थित सामन्तों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसके वाद इसी आशय का एक प्रस्ताव लिखा गया, उस पर सभी लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। अपने इस कार्य में सफलता पाकर सवाई सिंह वहुत प्रसन्न हुआ। भीमसिंह की गर्भवती रानी इन दिनों दुर्ग में रहा करती थी। सवाई सिंह सभी सामन्तों के साथ उस दुर्ग में गया और भीमसिंह की रानी को दुर्ग से लाकर नगर के राजमहल मे रखा।

सामन्तों का निर्णय राजा मानसिंह को मालूम हो गया और उससे जव सामन्तों ने उसका जिक्र किया तो मानसिंह ने वड़ी वुद्धिमानी के साथ स्वीकार किया कि यदि रानी के पुत्र पैदा होगा तो वह मारवाड़ का उत्तराधिकारी होगा और उसके सम्मान को वढ़ाने के लिए नागौर तथा सिवाना की जागीरें उसको दे दी जायेंगी। लेकिन यदि रानी के लड़की पैदा हुई तो ढूँढार के राजकुमार के साथ उसका विवाह किया जायेगा।"

राजा मानसिंह के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर किसी सामन्त ने कुछ न कहा। उन सामन्तों के साथ पोकरण का सामन्त सवाई सिंह भी मौजूद था। कुछ दिनों के

बाद भीमसिंह की विधवा रानी के गर्भ से बालक पैदा हुआ। रानी ने मानसिंह से भयभीत होकर नवजात शिशु को एक टोकरी में छिपा कर विश्वासी अनुचर के द्वारा पोकरण में सवाईसिंह के पास भेज दिया।

सवाईसिंह उस बालक को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़ी सावधानी के साथ उसके पालन-पोषण का प्रबंध करा दिया। दो वर्ष तक उस बालक के जन्म को छिपाकर रखा गया। मानसिंह ने सिंहासन पर बैठकर सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार न किया। जिन सामन्तों ने जालौर के दुर्ग के घेरे के समय उसकी सहायता की थी, उनके सम्मान का उसने ख्याल रखा। परन्तु जो सामन्त भीमसिंह के समर्थक थे, मानसिंह ने अपने शासन के दिनों में उनके साथ कठोर और अनुचित व्यवहार आरंभ किया। जिन दिनों में मानसिंह जालौर के दुर्ग में बन्द था, उसके वंशज दो प्रधान सामन्तों ने उसकी सहायता की थी। जो लोग इसके पक्ष में थे, उनमें भाटी वंश के राजपूत सैनिक थे और कायमदास की अधीनता में विष्णु स्वामी नाम का एक सैनिक दल भी था।[1]

पोकरण का सामन्त मानसिंह से अप्रसन्न था। इधर अनेक सामन्तों के साथ उसका अपमान जनक व्यवहार बढ़ जाने के कारण सवाई सिंह को मौका मिल गया। उसने अपने सामन्तों को बुलाकर भीमसिंह के नवजात शिशु के जन्म का सब हाल बताया और उसने यह भी प्रकट किया कि मैंने इस शिशु के जन्म का समाचार किस प्रकार अब तक छिपाकर रखा है। इस शिशु का नाम धौंकल सिंह रखा गया। उसने यह भी कहा कि दो वर्ष तक मैंने धौंकलसिंह का पालन-पोषण किया है। राजा मानसिंह ने जन्म के बाद इस राजकुमार को नागौर तथा सिवाना देने का वादा किया था। इसलिए इस शिशु को वे दोनों नगर मिल जाने चाहिए।

सामन्तों की सम्मति से राजकुमार के जन्म का समाचार मानसिंह को जाहिर करना निश्चय किया गया। सवाई सिंह ने राजा मानसिंह के पास जाकर कहा – "महाराज भीमसिंह की विधवा रानी से जो शिशु उत्पन्न हुआ था, उसका पालन-पोषण इन दो वर्षों में मेरे द्वारा हुआ है। उस शिशु का नाम धौकलसिंह है। आप ने इनको नागौर और सिवाना देने का वादा किया था। इसलिए उन दोनों नगरों को देकर आपको अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए।"

सवाई सिंह के मुख से इस बात को सुनकर मानसिंह ने कहा – "इस बात का पता लगा लेने पर और निश्चय कर लेने पर कि धौकलसिंह भीमसिंह की विधवा रानी का पुत्र है, मैं निश्चित रूप से अपनी कही हुई बात को पूरा करूँगा।"

भीमसिंह की विधवा रानी ने अपने शिशु धौकलसिंह को पोकरण भेज दिया था और वह स्वयं जोधपुर के महल में रहती थी। मानसिंह ने धौकलसिंह के जन्म का पता लगाना आरम्भ किया। भीमसिंह की रानी ने सुना कि इस बात का अनुसंधान हो रहा है कि धौकल सिंह मेरा बेटा है अथवा नहीं। वह घबरा उठी। उसने सोचा कि यदि मैं धौकलसिंह को अपना पुत्र स्वीकार करती हूँ तो मेरा यह छोटा बालक मानसिंह के द्वारा सहज ही मारा जायेगा। इसलिए उसने सोच समझकर सभी के सामने मानसिंह के पूछने पर कहा–"धौकलसिंह मेरा लड़का नहीं है।"

रानी के मुख से इस बात को सुनकर राजा मानसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी सम्पूर्ण चिन्ता मिट गयी। सामन्त सवाई सिंह ने जो कुछ सोच रखा था, उसका एक साथ

1. विष्णु का भक्त होने के कारण यह दल विष्णु स्वामी दल के नाम से प्रसिद्ध था। महन्त कायमदास के हितों की रक्षा के लिये इस दल के लोगों ने भीषण युद्ध किया था और आवश्यकता पड़ने पर ये लोग दूसरों का साथ भी देते थे।

अन्त हो गया। उस समय सभी सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। धौकल सिंह के पैदा होने के पहले इस वात का कोई प्रमाण न रखा गया था कि भीमसिंह की विधवा रानी गर्भवती है, इसलिये रानी के उत्तर को सुनकर सभी सामन्तों ने इस वात को मान लिया कि धौकलसिंह भीमसिंह की रानी से पैदा नहीं हुआ।

सामन्त सवाई सिंह ने धौकल सिंह के जन्म के वाद मानसिंह के विरुद्ध वड़ी-वड़ी योजनायें वना रखी थी। वे सव यद्यपि निराधार हो गयी, परन्तु सवाई सिंह निराश न हुआ। उसके अंतः करण में अनेक प्रकार की कल्पनाऐं उठने लगीं। उसका सवसे पहला कर्त्तव्य था, सावधानी के साथ धौकल सिंह का पालन-पोषण करना। पोकरण का दुर्ग इसके लिये वहुत सुरक्षित और सुदृढ़ न था। इसलिये धौकल सिंह को शेखावटी में ले जाकर छत्रसिंह भाटी अभय सिंह को सौंप दिया। इसके वाद वह अपनी योजना को सजीव वनाने में फिर लग गया। वह साहसी और शूरवीर होने के साथ-साथ षड़यन्त्र रचने का कार्य भी खूव जानता था।

सवाई सिंह ने स्वयं अपने व्यवहारों से अपनी शत्रुता का परिचय मानसिंह को दिया था। परन्तु अव उसने राजनीति से काम लिया। उसने शत्रुता का भाव बदलकर मित्रता का भाव आरंभ किया। इससे राजा मानसिंह उसका विश्वास करने लगा। उसने समझा कि इतने दिनों तक विरोध करने के वाद सवाई मानसिंह ने मित्र वनकर रहने में अपना कल्याण अनुभव किया है। इसका फल यही हुआ कि मानसिंह ने भी सवाई सिंह के प्रति अच्छे व्यवहार आरंभ किये।

सवाई सिंह ने जिस होने वाली दुर्घटना को सोच करके मानसिंह के साथ इस प्रकार के व्यवहार आरंभ किये थे, वह घटना धीरे-धीरे सामने आने लगी। मारवाड़ के स्वर्गीय राजा भीमसिंह ने मेवाड़ के राणा की लड़की कृष्णाकुमारी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था। राजकुमारी कृष्णा अत्यन्त सुन्दरी थी। विवाह का कोई निर्णय भी न हो पाया था कि इसी वीच में भीमसिंह की मृत्यु हो गयी। सवाई सिंह ने छिपे तौर पर जयपुर के राजा जगतसिंह को सन्देश भेजा कि मेवाड़ के राणा की लड़की अत्यन्त सुयोग्य और सुन्दरी है। इसलिए उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव आप राणा के पास भेजिए।

इस संदेश को पाकर जगतसिंह को वड़ी प्रसन्नता हुई। उसने राजकुमारी कृष्णा के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया और वहुमूल्य उपहारों के साथ उसने चार हजार सैनिकों का एक दल राणा के पास उदयपुर भेज दिया। इसी समय सवाईसिंह ने राजकुमारी कृष्णा के साथ विवाह करने के लिये मानसिंह को प्रोत्साहित किया। उसने कृष्णा कुमारी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और मानसिंह को समझाया कि यह विवाह स्वर्गीय भीमसिंह के साथ होने जा रहा था। अव उसके अधिकारी आप हैं। जगतसिंह के साथ मेवाड़ की राजकुमारी का विवाह होने से मारवाड़ के गौरव को आघात पहुँचता है।

सवाईसिंह के इस प्रकार समझाने पर मानसिंह ने अपने सामन्तों को वुलाने के लिये आदेश दिया और उसके वाद तीन हजार राठौरों की अश्वारोही सेना लेकर वह रवाना हुआ। जयपुर से मूल्यवान उपहारों को लेकर जो सेना मेवाड़ के लिए रवाना हुई थी, हीरासिंह उसका नायक था। राठौर सेना ने मेवाड़ की सीमा के भीतर जाकर जयपुर के राजा का समस्त उपहार लूट लिया। जयपुर की सेना पराजित होकर वहाँ से भाग गयी। जगतसिंह ने मानसिंह के इस व्यवहार पर तुरन्त युद्ध की घोषणा की। दोनों तरफ से लड़ाई की तैयारी होने लगी।

सवाई सिंह की अभिलाषा सफल हुई। वह किसी प्रकार मानसिंह को सिंहासन से उतारना चाहता था। इसके लिए उसने अब तक जितने उपाय सोचे थे, व्यर्थ हो गये थे और अन्त में मित्र बन कर वह मानसिंह को किसी बड़े युद्ध में फंसाने की जो योजना बना रहा था, उसमें इस समय उसे सफलता मिली। जयपुर में मारवाड़ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा होते ही सवाईसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुरन्त मानसिंह के पास जाकर राजा जगतसिंह का विरोध किया और मानसिंह के प्रति अपनी अपूर्व सहानुभूति दिखाकर वह खेतड़ी चला गया।

इसी खेतड़ी में धौकलसिंह अभयसिंह के संरक्षण में रहता था। सवाईसिंह धौकलसिंह को लेकर जयपुर में राजा जगतसिंह से मिला और मानसिंह के द्वारा जयपुर का जो उपहार लूटा गया था उसके सम्बन्ध में वह बिल्कुल अनजान बन गया। जगतसिंह को मालूम हुआ कि मानसिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा को सुनकर सवाई सिंह धौकलसिंह को साथ में लेकर सहायता के लिए आया है। इसलिए जगतसिंह ने सम्मान के साथ उसके स्वागत का आदेश दिया।

सवाईसिंह ने राजा जगतसिंह से भेंट करके बहुत-सी बातें मानसिंह के विरुद्ध कहीं और जगतसिंह को इस बात का विश्वास कराया कि मारवाड़ के साथ इस युद्ध में वहाँ के समस्त सामन्त जयपुर का साथ देंगे। इसलिये कि वे सभी सामन्त मानसिंह के साथ द्वेष रखते हैं और उनको सिंहासन से उतार कर धौकल सिंह को उनके स्थान पर बिठाना चाहते हैं। सवाई सिंह ने जगतसिंह को यह भी बताया कि धौकलसिंह के जन्म लेने के पहले ही मारवाड़ के सभी सामन्तों ने एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये थे जिसमें लिखा गया था कि स्वर्गीय भीमसिंह की विधवा रानी से यदि बालक पैदा होगा तो मानसिंह को सिंहारान से उतारकर उस राजकुमार को राजतिलक किया जायेगा।

राजा जगतसिंह को जब इन यथार्थ बातों की जानकारी हो गयी और उसने जब धौकलसिंह को मारवाड़ का उत्तराधिकारी होना समझ लिया तो जगतसिंह ने धौकलसिंह के साथ बैठकर एक थाल में भोजन किया और उसको अपना भान्जा एवं मारवाड़ का उत्तराधिकारी, कहकर सबको जाहिर किया। धौकलसिंह के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रचार होने पर मारवाड़ के समस्त सामन्त अपनी सेनाओं के साथ जयपुर की सेना में आकर मिल गये। इससे जयपुर की सेना शक्तिशाली हो गयी।

धौकलसिंह का पक्ष लेकर राठौर वंश के जो सामन्त और श्रेष्ठ लोग जयपुर की सेना में आकर मिल गये थे, उनमें बीकानेर का स्वतंत्र राजा प्रधान था। मानसिंह के विरुद्ध बीकानेर के राजा के खड़े होने पर मारवाड़ के सभी सामन्त एक-एक करके जयपुर में आ गये। मारवाड़ में राजा मानसिंह का साथ देने वाला अब कोई न रह गया। फिर भी, उसने जयपुर की सेना के साथ युद्ध करने की तैयारी की और जयपुर की विशाल सेना के पहुँचने के पहले वह अपनी सीमा पर राठौर सेना को लेकर आ गया।

मारवाड़ के सामन्तों की सेनाओं के मिल जाने से जयपुर की सेना के अधिकारी और सैनिक सब मिला कर एक लाख से ऊपर पहुँच चुके थे। इसलिये मारवाड़ का विनाश होने में अब देर न थी। राजा जगतसिंह को मानसिंह से इस बात का बदला लेना था कि मानसिंह ने जयपुर का कीमती उपहार अपनी सेना को लेकर लूट लिया था और मारवाड़ के समस्त सामन्त मानसिंह के विरुद्ध आक्रमण करने के लिये इसलिये तैयार थे कि वे सब मानसिंह के स्थान पर धौकलसिंह को मारवाड़ का शासक बनाना चाहते थे।

मारवाड़ की राठौड़ सेना जयपुर की सेना से बिल्कुल भयभीत नहीं हो रही थी। उसको मारवाड़ के सामन्तों की सेनाओं का भय था। मारवाड़ और जयपुर के इस होने वाले संग्राम को देखकर मराठा लोग वहुत प्रसन्न हुए। वे लोग राजस्थान के राज्यों को एक, दूसरे से लड़ा कर लाभ उठा रहे थे। इस समय भी मराठों को लूटने और लाभ उठाने का अवसर मिला। मराठों के दो दल हो गये थे और उन दोनों दलों का एक ही उद्देश्य था। मानसिंह ने किसी समय होलकर की सहायता की थी। इसलिये अपनी इस भीषण विपद में उसने होलकर से सहायता माँगी। होलकर अपनी मराठा सेना के साथ मानसिंह की सहायता के लिये आ गया और मानसिंह की सेना से अठारह मील की दूरी पर उसने मुकाम करके अपने दूत के द्वारा मानसिंह को संदेश भेजा कि कल प्रातः काल भेंट होगी।

सवाई सिंह वड़ी सावधानी के साथ मानसिंह की चालों का अध्ययन कर रहा था। उसे जव मालूम हुआ कि होलकर अपनी मराठा सेना को लेकर मानसिंह की सहायता के लिए आया है, तो उसने होलकर को मिला लेने की चेष्टा की। उसने होलकर के पास संदेश भेजा कि उसकी मराठा सेना मानसिंह की सहायता न करके कोटा की तरफ चली जाये और वहाँ पहुँचने पर उसको एक लाख रुपये भेंट किये जायेंगे।

होलकर रुपये का लोभी था। बिना युद्ध किये एक लाख रुपये का प्रलोभन वह रोक न सका। मानसिंह के उपकारों को भूलकर उसने सवाईसिंह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और सवाईसिंह से एक लाख रुपये की हुण्डी लेकर वह कोटा की तरफ चला गया। होलकर के इस व्यवहार को देखकर मानसिंह वहुत हताश हो गया। फिर भी उसने साहस से काम लिया और अपनी सेना के बल पर युद्ध करने के लिये वह आगे वढ़ा।

होलकर की मराठा सेना के चले जाने पर जयपुर की विशाल सेना आगे वढ़ी और गागोली नामक स्थान पर उसने गोले वरसाने आरंभ किये। इस समय युद्ध में कुचामन, अहवा, जालौर और नीमाज के सामन्त राजा मानसिंह के सहायक थे। गोलों की वर्षा के वाद दोनों ओर से प्रलंयकारी युद्ध आरंभ हुआ।

मानसिंह के सहायक सामन्तों ने उसको समझाया कि जयपुर की इस विशाल सेना के साथ युद्ध कर सकना असंभव है। इसलिये संग्राम को रोक देना ही अधिक हितकर मालूम होता है। इसी समय कुचामन के सामन्त शिवनाथ सिंह ने मानसिंह के पास जाकर उसको हाथी से उतार लिया और एक तेज घोड़े पर बिठाकर युद्ध से चले जाने के लिये उससे अनुरोध किया। मानसिंह तुरन्त वहाँ से चला गया। लेकिन इस समय उसको अत्यन्त वेदना हुई।

दोनों ओर से गोलों की वर्षा होने के समय मानसिंह किसी प्रकार वहाँ से निकलकर मेड़ता में पहुँच गया। उसके पीछे उसके गोलंदाज भी वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर मानसिंह को कुछ शान्ति मिली। विशाल शत्रु-सेना के आक्रमण से उस समय निकल आना उसको कठिन मालूम हो रहा था। उसने सोचा कि मेड़ता वहुत सुरक्षित स्थान नहीं है। इसलिये वह पीपाड होकर जोधपुर की राजधानी चला गया। मारवाड़ के जिन सामन्तों ने इस भयानक विपद में भी उसका साथ न छोड़ा था, वे भी उसके साथ राजधानी गये।

मानसिंह और उसके सामन्तों के भाग जाने पर जगतसिंह की सेना ने मानसिंह के शिविर में लूट की और मारवाड़ की अठारह तोपें अपने अधिकार में कर ली। जयपुर की सेना के साथ सींधिया की मराठा सेना भी थी। सेनापति डालाराव के सैनिकों ने उस लूट में अधिक लाभ उठाया। अमीर खाँ की फौज ने वहाँ पर वहुत सी चीजें लूटकर अपने कब्जे में कर लीं। जयपुर की इस विशाल सेना ने युद्ध क्षेत्र से चलकर पर्वतसर और उसके आस-पास के गाँवों को लूट लिया।

मानसिंह को इस युद्ध में पराजित करके सवाईसिंह और जगतसिंह की आशाएँ पूरी हुईं। इसी समय जगतसिंह ने सवाईसिंह को बुलाकर कहा : –"मानसिंह पराजित होकर भाग गया है। मैं अव राजकुमारी मेवाड़ के साथ विवाह करने के लिये जाता हूँ और आप जोधपुर जाकर वहाँ के राजसिंहासन पर धौकलसिंह को बिठाने का प्रवंध करिये।"

सवाईसिंह दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ था। उसने जगतसिंह की वात को स्वीकार कर लिया। परन्तु उसके साथ-साथ उसने कहा – "मानसिंह अभी तक पूर्ण रूप से पराजित नहीं हुआ। वह किसी भी समय भयानक परिस्थिति पैदा कर सकता है।" जगतसिंह के परामर्श के अनुसार सवाईसिंह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। जोधपुर की राजधानी न जाकर वह मेड़ता में पहुँचा और वहाँ पर वह तीन दिन तक ठहरा रहा। सवाईसिंह सोचने लगा कि मानसिंह के अधिकार में जो एक छोटी-सी सेना है, उसके द्वारा वह अपनी और राजधानी की रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये यह निश्चित है कि वह जोधपुर से जालौर चला जायेगा। इसलिये कि वहाँ का दुर्ग अधिक सुदृढ़ और सुरक्षित है। उसके जोधपुर से चले जाने पर राजधानी में अपना रास्ता साफ हो जायेगा।

यही हुआ भी। मानसिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर छोड़कर जालौर के लिये रवाना हुआ और वह बीसलपुर पहुँच गया। उसके साथ गायनमल सिंघवी एक उच्च पदाधिकारी था। मानसिंह को जालौर जाते देख कर उसने कहा–"मेरी समझ में जालौर चला जाना आपके लिए हितकर न होगा। मारवाड़ की प्रजा उसी समय तक आप के साथ है जव तक आप जोधपुर राजधानी की रक्षा कर सकेंगे। वहाँ आपके चले जाने के वाद राज्य की प्रजा आपकी होकर न रहेगी।"

अपने उस अधिकारी की वात को सुनकर मानसिंह कुछ समय तक विचार करता रहा। उसकी समझ में यह बात आ गई। उसने राजधानी की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की और अपनी सेना के साथ वहाँ से लौटकर जोधपुर के लिये चल पड़ा। सवाई सिंह ने जो अनुमान लगाया था, वह सही न निकला। जगतसिंह को जव मालूम हुआ कि मानसिंह जोधपुर पहुँच गया है तो उसने मेवाड़ जाने का विचार छोड़ दिया और धौकल सिंह का अभिषेक करने के लिए जयपुर की विशाल सेना को लेकर वह जोधपुर की तरफ चला।

मारवाड़ के बहुत से सामन्तों के विरोधी हो जाने के कारण और उनके शत्रु से मिल जाने से मानसिंह ने अपने उन सामन्तों का भी विश्वास छोड़ दिया, जो अभी तक उसके साथ थे। जोधपुर पहुँचकर वहाँ के दुर्ग की रक्षा का भार अपने सामन्तों को नहीं दिया और वैतनिक सेना के प्रधान हिन्दाल खाँ को उसका अधिकारी बना दिया। साथ ही तीन हजार शूरवीर सैनिकों को उसके नेतृत्व में दे दिया। उनके अतिरिक्त चौहान, भाटी और मन्दोर आदि राजवंशों के सैनिकों के साथ विष्णु स्वामी दल को मिलाकर दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त किया। सव मिलाकर पाँच हजार सैनिक जोधपुर के दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त किए गए।

जोधपुर के दुर्ग का प्रबंध करके मानसिंह ने राज्य के दूसरे दुर्गों की रक्षा करना आवश्यक समझा। जालौर का दुर्ग राज्य के अन्यान्य दुर्गों में विशेषता रखता था। अमरकोट का दुर्ग राज्य की बिल्कुल सीमा पर था। उन दोनों दुर्गों की रक्षा के लिए मानसिंह ने अपनी सेनाएँ रवाना कीं। राज्य के तीन दुर्गों पर अपनी सेनाएँ रखकर मानसिंह जोधपुर में शत्रु-सेना के आने का रास्ता देखने लगा। वह इस समय किसी प्रकार जोधपुर की राजधानी की रक्षा करना चाहता था।

मानसिंह ने राजधानी के दुर्ग की रक्षा का भार वैतनिक और बाहरी सेनाओं को सौंपा था, इससे उसके साथी सामन्तों ने अपना अपमान अनुभव किया। उन्होंने असंतोष अनुभव

करते हुए राजा मानसिंह से प्रार्थना की कि राजधानी के दुर्ग की रक्षा का भार हम लोगों को मिलना चाहिये। मानसिंह ने उनकी इस बात को सुना परन्तु उसकी कुछ परवाह न की। सामन्तों को उत्तर देते हुए उसने कहा– "नगर और दुर्ग दोनों की रक्षा करना है। आपको जोधपुर नगर की रक्षा करने में अपनी शक्तियों का उपयोग करना चाहिये।" मानसिंह के इस उत्तर से उसके सामन्तों को संतोष न मिला और वे राजधानी को छोड़ कर सवाई सिंह के साथ जाकर मिल गये।

जो सामन्त अभी तक मानसिंह के साथ थे, उनके भी चले जाने के बाद मानसिंह की शक्तियाँ और भी निर्बल पड़ गयीं। अब उसके साथ वैतनिक सेना को छोड़कर और कोई न रहा। इसलिये उस सेना पर विश्वास करके वह शत्रुओं से युद्ध करने के लिये तैयार हो गया। मानसिंह में साहस और धैर्य की कमी न थी। वह सोचने लगा – "यद्यपि शत्रु की सेना अत्यन्त विशाल है, समस्त राठौर सामन्त अपनी सेनाओं के साथ शत्रुओं की सहायता कर रहे हैं। मराठा और पठान सेनाएँ भी शत्रु की तरफ से लड़ रही हैं। फिर भी इस राजधानी पर आसानी से शत्रु का अधिकार नहीं हो सकता।" मानसिंह इस प्रकार की बातें सोचकर राजधानी की रक्षा करने का उपाय सोचने लगा।

जगतसिंह जयपुर की शक्तिशाली सेना को लेकर सवाईसिंह के साथ मारवाड़ की तरफ बढ़ा और जोधपुर पहुँचकर उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया। मानसिंह की कोई सेना नगर की रक्षा के लिए न थी। इसलिए जगत सिंह ने जोधपुर नगर पर अधिकार कर लिया और मराठा तथा पठानों की सेना ने वहाँ पर लूट-मार करके भयानक अत्याचार किये। जोधपुर पर अधिकार करके मराठा और पठानों की सेना राजधानी के आस-पास ग्रामों और नगरों में लूट-मार करने लगी। उस समय फलोदी के रहने वालों ने तीन महीने तक आक्रमणकारियों का सामना किया। लेकिन उसके बाद शत्रु के सामने उनको आत्म समर्पण कर देना पड़ा। इसलिए कि उनकी संख्या वहुत कम थी।

जगतसिंह की तरफ से बीकानेर के राजा ने अपनी सेना के साथ पहुँच कर फलोदी राज्य पर अधिकार कर लिया। जोधपुर और उसके आस-पास के अनेक नगरों पर अधिकार कर लेने के बाद सवाई सिंह ने एक घोषणा पत्र प्रकाशित करके धौंकल सिंह को राज्य के सिंहासन पर बिठाने के लिए मारवाड़ की प्रजा से प्रार्थना की। मानसिंह जोधपुर के दुर्ग में अपनी सेना के साथ मौजूद था। उसे किले पर शत्रु सेना के आक्रमण का संदेह होने लगा।

जोधपुर और उसके आस पास के स्थानों में भीषण रूप से लूट-मार करके मराठा और पठानों की सेना ने जोधपुर के किले पर गोलों की वर्षा आरंभ की। उस समय मानसिंह ने बड़े साहस और धैर्य से काम लिया। परन्तु दुर्ग की रक्षा उसे असंभव मालूम होने लगी। जयपुर की विशाल सेना जोधपुर के दुर्ग को पाँच महीने तक बराबर घेरे रही। परन्तु उसे सफलता न मिली। जयपुर की सेना ने उस दुर्ग के एक हिस्से को गोलों से विध्वंस कर दिया। परन्तु उस स्थान की अस्सी फुट ऊँची पत्थर की दीवार को वे तोड़ न सके। इस दशा में आक्रमणकारी सेना निराश होने लगी।

जयपुर की सेना के साथ मराठों और पठानों की जो सेनाएँ आई थीं, उनके सैनिकों और पदाधिकारियों को पाँच महीने तक वेतन देने का कोई प्रबंध न हो सका। उन सब सेनाओं के सैनिकों की संख्या एक लाख से ऊपर थी। उनके खाने-पीने की व्यवस्था में भी बड़ी कमी आ गई। सेनाओं के साथ जो घोड़े थे, उनको पेट भर घास भी न मिलने लगी। जयपुर की सेना के साथ अमीर खाँ की भी एक फौज थी। उसने मारवाड़ के नगरों और ग्रामों में भीषण रूप से लूट की थी और राज्य के सभी व्यावसायिक नगरों को लूटकर उसने

बर्बाद कर दिया था। उसके अत्याचारों से पाली, पीपाड़, बोलाऊ और दूसरे बहुत से नगर बुरी तरह से नष्ट हो गये थे। जिन सामन्तों ने मान सिंह का साथ छोड़कर धौकलसिंह का पक्ष लिया था, उनके नगरों में भी अमीरखाँ ने जाकर लूटमार के साथ सर्वनाश किया। यह देखकर उन सामन्तों ने अमीरखाँ का विरोध किया। मारवाड़ के इस विध्वंस का सबसे बड़ा अपराधी पोकरण का सामन्त सवाईसिंह था। खाने-पीने और वेतन देने की व्यवस्था के न हो सकने पर सवाईसिंह से कहा गया कि वह अपने नगर से इतना धन लावे, जिससे खाने -पीने और वेतन की व्यवस्था की जा सके।

सवाई सिंह ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उसने अपने साथी सामन्तों की सहायता से धन एकत्रित किया, उसके साथ-साथ उसने अपनी संग्रह की हुई सम्पत्ति लाकर दी। उससे कुछ दिनों तक खाने-पीने का काम चलता रहा। उसके बाद धन के अभाव में फिर वही दशा पैदा हो गयी। जयपुर राज्य का खजाना इसके पहले ही खाली हो चुका था। मारवाड़ के जो सामन्त मानसिंह को छोड़कर जयपुर की सेना में आकर मिल गये थे, सवाईसिंह ने उनसे धन की माँग की।

मारवाड़ के जिन चार सामन्तों ने अन्त में मानसिंह का साथ छोड़ा था और सवाईसिंह से जाकर मिल गये थे, उन्होंने सवाईसिंह की धन की माँग का विरोध किया और विरोधी होकर वे अमीरखाँ से जाकर मिल गये। वे चारों सामन्त मानसिंह का साथ देने के लिए फिर से आपस में परामर्श करने लगे।

उन सामन्तों के अमीरखाँ से मिल जाने का कारण था। वे लोग सवाईसिंह के धन माँगने पर बहुत असंतुष्ट हुए और उसका साथ छोड़ देने के लिए उन चारों सामन्तों ने आपस में निर्णय कर लिया। इस दशा में उनके लिए यह जरूरी था कि वे किसी एक पक्ष मे होकर चलें और इसीलिए वे अब फिर मानसिंह के पक्ष का समर्थन करने की बात सोचने लगे। वे चारों सामन्त इस बात को भली भाँति जानते थे कि अमीरखाँ धन का लोभी है और इसी लोभ में वह जयपुर की सेना के साथ आया है, उन चारों सामन्तों ने मिलकर अमीर खाँ के सामने एक प्रस्ताव उपस्थित किया और उसके अनुसार उन लोगों ने अमीरखाँ को समझाया कि जयपुर का राजा जगतसिंह अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ जोधपुर में मौजूद है। जयपुर इस समय बिल्कुल अरक्षित दशा में है। इसलिए उस राज्य पर आक्रमण करके अपरिमित सम्पत्ति लूटी जा सकती है।

अमीर खाँ के साथ उन सामन्तों की यह बातचीत बड़े मौके पर हुई। अमीर खाँ ने मारवाड़ राज्य के पीपाड, पाली और बीलाडा इत्यादि नगरों को जब लूटा था तो जयपुर के राजा जगतसिंह ने कठोरता के साथ उसका विरोध किया था। इसलिए जगतसिंह के असंतोष को अमीर खाँ पहले से ही जानता था। इस समय सामन्तों के उकसाने पर वह जयपुर में आक्रमण करने के लिए सहज ही तैयार हो गया और चारों सामन्तों के साथ वह अपनी सेना लेकर जयपुर की तरफ रवाना हुआ।

जगतसिंह को जब यह मालूम हुआ तो उसने अपने प्रधान सेनापति शिवलाल को कई हजार सैनिकों की सेना देकर अमीरखाँ को दमन करने के लिए भेजा। शिवलाल अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और जयपुर के रास्ते में उसने अमीर खाँ की सेना पर आक्रमण किया। शिवलाल की सेना अमीर खाँ और चारों सामन्तों की सेनाओं से बहुत बड़ी थी। इसलिए अमीरखाँ और चारों सामन्त घबराकर लूनी नदी की तरफ भागने लगे। शिवलाल की सेना ने उनका पीछा किया। अमीर खाँ और उसके साथी भागकर लूनी नदी के दूसरी तरफ निकल गये और कुछ देर में वे गोविन्दगढ़ पहुँच गये।

शिवलाल की सेना लगातार अमीरखाँ का पीछा करती रही। अमीर खाँ सामन्तों के साथ वहाँ से भाग कर हरसोर नामक स्थान पर चला गया। शिवलाल ने वहाँ पहुँचकर फिर उस पर आक्रमण किया। चारों सामन्तों के साथ भागता हुआ अमीर खाँ जयपुर की सीमा पर फागी नामक स्थान पर चला गया। शिवलाल को पहले से इस वात का कुछ भी अनुमान न था कि अमीर खाँ कहीं पर भी डटकर युद्ध न करेगा और एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ लगातार वह भागता रहेगा। अमीर खाँ वहुत पहले से अपने अत्याचारों और षड्यंत्रों के लिए कुख्यात था। शिवलाल के आक्रमण से लगातार भागने में भी वह मन ही मन वहुत प्रसन्न हो रहा था।

फागी नामक स्थान जयपुर की आखिरी सीमा पर था, वहाँ तक अमीर खाँ को भगाकर .और जयपुर की सीमा से वाहर कर शिवलाल ने उसका पीछा करना अव आवश्यक न समझा। उसने जयपुर राज्य की सीमा के भीतर एक स्थान पर अपनी सेना का मुकाम किया और विजय के उल्लास में गौरव अनुभव करने के लिए वह अकेला जयपुर चला गया।

राठौड़ सामन्तों के साथ अमीर खाँ पीपलू नामक स्थान पर पहुँच गया था। वहीं उसने सुना कि शिवलाल अपनी सेना को अकेली छोड़कर जयपुर चला गया है। इस अवसर का लाभ उठाने की उसने चेष्टा की। उसके साथ की सेना युद्ध करने के लिए काफी न थी। इन दिनों में मोहम्मद खाँ और राजा वहादुर की सेनायें ईसरदा को घेरे हुए पड़ी थीं। अमीर खाँ उन दोनों नेताओं को मिलाकर हैदरावादी रिसाला दल में पहुँचा। यह दल इन दिनों में लूटमार के लिए वहुत कुख्यात हो रहा था। अमीर खाँ ने उसको भी अपने साथ मिला लिया और एक शक्तिशाली सेना वनाकर उसने शिवलाल की सेना पर आक्रमण किया।

जयपुर की वह सेना इस समय विना सेनापति के थी और सेनापति के अभाव में कोई भी फौज युद्ध नहीं कर सकती। फिर भी उस सेना ने पूरे तौर पर आक्रमणकारियों का सामना किया। वे युद्ध से पीछे नहीं हटे और अंत में वे सव पराजित होकर मारे गये। अमीर खाँ की विजयी सेना ने पराजित सेना के शिविर में जाकर वहाँ की समस्त युद्ध सामग्री को अपने अधिकार में कर लिया।

जगतसिंह की विशाल सेना छः महीने तक जोधपुर के दुर्ग को घेरे हुए पड़ी रही। दुर्ग में प्रवेश करने की सफलता उसको न मिली। इन छः महीनों में खाने-पीने व वेतन सम्वन्धी कठिनाइयाँ भयानक रूप से उसकी सेना के सामने पैदा हो गयी। जो सेनायें जयपुर की सहायता में जोधपुर आयी थीं उनके पदाधिकारियों का मतभेद भी सवाईसिंह और जगतसिंह के साथ पैदा हुआ।

यह झगड़ा धीरे-धीरे वढ़ने लगा और आपसी असंतोष के कठोर हो जाने के कारण वीकानेर और शाहपुर के राजा जोधपुर छोड़कर अपने-अपने राज्य को चले गये। परन्तु सवाईसिंह और जगतसिंह को उनके चले जाने पर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं हुई। इसी अवसर पर उनको मालूम हुआ कि अमीर खाँ को दमन करने के लिए सेनापति शिवलाल के नेतृत्व में जो सेना भेजी गयी थी, भयानक रूप से उसका विनाश हुआ है। सवाईसिंह को यह समाचार पहले से ही मालूम हो चुका था। लेकिन उसने जगतसिंह को जाहिर नहीं दिया था और जयपुर के दीवान रामचन्द को रिश्वत देकर उसने रोका था कि यह समाचार जगतसिंह को मालूम न होने पावे। उसका विश्वास था कि इस समाचार को सुनते ही जगतसिंह अपनी सेना लेकर जयपुर चला जायेगा और उसके चले जाने पर मानसिंह के विरुद्ध वह सफल न होगा।

सवाईसिंह और रामचन्द्र के छिपाने के वाद भी अधिक समय तक वह समाचार छिप न सका। जगतसिंह की माता ने जयपुर से उस सेना के विनाश का समाचार उसके पास भेजा, जिसे सुनकर जगतसिंह ने सवाईसिंह पर वहुत क्रोध किया। जयपुर के दूत से उस समाचार को पाकर जगतसिंह जोधपुर से चला गया। उसके सामने षड़यंत्रकारी अमीरखाँ का भयानक भय पैदा हो गया।

जगतसिंह ने जोधपुर की राजधानी की लूट में वीस तोपों के साथ जो सम्पत्ति पायी थी उसको अपने सामन्तों के पास भेजकर उसने मराठा सेना के सेनापति को वुलाया। जगतसिंह के सामने इस समय भयानक संकट था।[1] मराठा सेनापति के आ जाने पर जगतसिंह ने कहा–"इस समय मेरे सामने वड़ा संकट है। आपकी सहायता से सकुशल जयपुर पहुँच जाने पर मैं आपको पुरस्कार में वारह लाख रुपये दूँगा।

मराठा सेनापति ने जगतसिंह की इस वात को स्वीकार कर लिया। परन्तु जगतसिंह को जब मालूम हुआ कि अमीरखाँ एक वड़ी सेना के साथ जयपुर के रास्ते में मौजूद है तो वह वहुत घबरा उठा और किसी प्रकार उसने जयपुर जाने का साहस न किया। उसने अपना दूत भेज कर अमीरखाँ से वातचीत कराई। उसमें अमीरखाँ ने नौ लाख रुपये लेकर इस वात को मंजूर किया कि जगतसिंह के जयपुर जाने में मैं कोई विरुद्ध कार्यवाही न करूँगा।

जगतसिंह ने अमीरखाँ की माँग को स्वीकार कर लिया। अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसने धन की परवाह न की और पानी की तरह सम्पत्ति को वहाकर जोधपुर से वह जयपुर के लिए रवाना हुआ। अपने शिविर में उसने आग लगा दी। जिससे उसका वहुत-सा मूल्यवान सामान जल कर राख हो गया। उसके वाद उसने अपना प्यारा हाथी अपने हाथों से मार डाला। क्योंकि उसकी इच्छा के अनुसार वह तेजी से अपनी पीठ पर विठाकर उसे ले न जा सका था।

मराठा सेनापति ने वारह लाख रुपये लेकर जगतसिंह को जयपुर पहुँचा देने का वादा किया था और अमीरखाँ ने नौ लाख रुपये लेकर किसी प्रकार का उत्पात न करने का वादा किया था। फिर भी, जगतसिंह अपने राज्य में पहुँच न सका। जिन चार सामन्तों ने अमीर खाँ को उकसा कर जयपुर पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया था, वे जगतसिंह के शत्रु बन गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मारवाड़ का धन लूट कर हम उसे जयपुर न ले जाने देंगे। इसके लिए उन सामन्तों ने मेड़ता से वीस मील पूर्व की तरफ जा कर जगतसिंह के आने के रास्ते में मारवाड़ के अगणित राठौरों को एकत्रित किया और इन्दराज सिंघी को अपना सेनापति वनाया।

इन्दराज सिंघी राजा मानसिंह के पहले के राजाओं के शासनकाल में मारवाड़ के दीवान के पद पर काम कर चुका था। उस समय एकत्रित राठौरों के साथ बैठकर चारों सामन्तों ने निश्चय किया कि राजा मानसिंह का हम लोगों पर जो अविश्वास था और उसने हमको शत्रुओं के साथ मिला हुआ समझ लिया था, उस संदेह को दूर करना हम सवका कर्त्तव्य है। मारवाड़ की लूट का धन जगतसिंह अपने साथ जयपुर लेकर जा रहा है। उसे लूटकर राजा मानसिंह को हम लोग अर्पित कर दें ऐसा करने से मानसिंह का विश्वास हम

---

1. सन् 1806 ईसवी के पहले की वात है। जगतसिंह ने मराठा सेनापति सिंधिया के पास सहायता के लिए अपने दूत के द्वारा एक पत्र भेजा था। उस समय मैं सिंधिया के शिविर में मौजूद था। बापू सिंधिया, वालाराव इंगले और जीन बैपटिस्ट की सेनायें सिंधिया की अधीनता में काम कर रही थीं। उन सेनाओं को रवाना होते मैंने स्वयं देखा था। सन् 1807 में जयपुर में मैंने वहाँ की सेना के विनाश चिन्ह भी देखे थे।

लोगों को फिर से प्राप्त हो सकेगा। इस निर्णय के साथ एकत्रित राठौर वहाँ पर राजा जगतसिंह के आने का रास्ता देखने लगे।

सेना के साथ जगतसिंह के आते ही राठौड़ों ने उस पर भीषण आक्रमण किया। दोनों ओर से मारकाट आरंभ हो गयी। राजा जगतसिंह ने मारवाड़ के सामन्तों के बल पर ही जोधपुर पर आक्रमण किया था। इस समय उसके साथ सवाईसिंह न था। उसके साथ कोई भी राठौर सामन्त न था। इसलिए राठौड़ों ने जयपुर की सेना को आसानी के साथ पराजित कर लिया और उस सेना के साथ जितनी सम्पत्ति और मूल्यवान सामग्री, जा रही थी, राठौड़ों ने सवकी सव लूट ली। जयपुर की सेना परास्त होकर इधर-उधर भाग गयी। जगतसिंह घवराकर अपने राज्य की तरफ चला गया और जयपुर पहुँचकर उसने किसी प्रकार अपनी जान वचायी।

जगत सिंह के साथ जोधपुर की चवालीस तोपें जा रही थीं, राठौड़ों ने उनको छीन लिया। जगतसिंह के जयपुर भाग जाने के पहले सवाईसिंह धौकल सिंह के साथ जोधपुर छोड़कर नागौर चला गया। मारवाड़ के चारों सामन्तों ने अमीर खाँ से मिलकर एक नयी योजना तैयार की। अमीर खाँ धन के लोभ पर ही कोई कार्य कर सकने के लिए तैयार हो सकता था। इसलिए उन सामन्तों के सामने धन का प्रश्न पैदा हुआ।

किशनगढ़ का राजा राठौड़ राजपूत था। उसने इसमें किसी की सहायता न की थी और वह पूर्ण रूप से तटस्थ होकर रहा था। इसलिये उन सामन्तों ने अमीरखाँ को देने के लिए किशनगढ़ के राजा से दो लाख रुपये की माँग की। राजा किशनगढ़ ने अपने खजाने से दो लाख रुपये सामन्तों को दिये। ये रुपये अमीरखाँ को दे दिये गये, जिन्हें पाकर अमीरखाँ ने वादा किया- "मैं राजा मानसिंह की हर तरीके से सहायता करूँगा।" इसके वाद वे सामन्त अमीर खाँ को लेकर जोधपुर आ गये। राजा मानसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अपने सामन्तों का स्वागत किया और उनके जिन नगरों को छीनकर राज्य में मिला लिया गया था, वे उनको दे दिये गये। इन्दराज सिंधी को मारवाड़ का प्रधान सेनापति वनाया गया।

□

अध्याय–45
मानसिंह व ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा सहायता

मानसिंह ने अपनी राजधानी में अमीरखाँ का वहुत आदर और सम्मान किया। योधागिरि के दुर्ग में सेना के साथ ठहरने का प्रवंध किया और वहुत-सी मूल्यवान चीजें उसे भेंट में दी। इसके वाद मानसिंह और अमीरखाँ में वातें होती रहीं। मानसिंह उसकी सहायता से सवाईसिंह और धौकल सिंह का विनाश करना चाहता था।

उस वातचीत के सिलसिले में अमीरखाँ ने वादा किया कि मैं न केवल आप की सहायता करूँगा वल्कि सवाई सिंह को इस संसार से विदा कर दूँगा, जिससे उसके द्वारा फिर कभी आप का अनिष्ट न हो सके। अमीरखाँ की इस प्रतिज्ञा को सुनकर मानसिंह वहुत प्रसन्न हुआ। वह अमीर खाँ के षड़यंत्रों को भली प्रकार जानता था। उसने इस वात का विश्वास कर लिया कि अमीर खाँ चाहे तो वह सव-कुछ कर सकता है। अमीर खाँ की चालों से ही जगत सिंह की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हुई और उसके फलस्वरूप मानसिंह जोधपुर के दुर्ग से वाहर निकल कर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। अमीर खाँ के वादे से उसे वहुत संतोप मिला और इस कार्य के लिए उसने तीन लाख रुपये अमीर खाँ को दे दिये।

पोकरण के सामन्त सवाई सिंह ने अपने पितामह का वदला लेने के लिए मानसिंह के विरुद्ध धौंकल सिंह के पक्ष का समर्थन किया और मानसिंह पर आक्रमण करने के लिए जयपुर के राजा जगतसिंह को उकसाकर उसने मारवाड़ राज्य का विध्वंस और विनाश कराया था। जगतसिंह के जोधपुर से चले जाने के वाद सवाई सिंह धौंकल सिंह को लेकर जोधपुर से नागौर चला गया। उसके साथ अनेक राठौर सामन्त भी थे। वहाँ पहुँचकर जोधपुर पर एक नया आक्रमण करने के लिए सवाई सिंह एक योजना की तैयारी करने लगा।

अमीर खाँ ने राजा मानसिंह से सवाई सिंह का सर्वनाश करने के लिए प्रतिज्ञा की थी और इस कार्य के लिए उसने तीन लाख रुपये मानसिंह से लिये थे। परन्तु वह जानता था कि सवाई सिंह भी कम षड़यंत्रकारी नहीं है। वह यह भी जानता था कि मारवाड़ के अधिक राठौर सामन्त उसके साथ हैं। इस दशा में युद्ध करके उसको परास्त करना आसान नहीं है। इसलिए सवाई सिंह को सर्वदा के लिए मिटा देने का उपाय वह सोचने लगा।

अमीरखाँ को अपने लड़ने की शक्ति की अपेक्षा कूटनीति पर अधिक विश्वास था और उसी के लिए वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहा था। वड़ी दूरदर्शिता के साथ कुछ सोच समझ कर वह अपनी सेना को लेकर जोधपुर से रवाना हुआ और नागौर से वीस मील की दूरी पर मूँधियाड में उसने अपनी सेना का मुकाम किया। यहाँ पहुँचकर उसने प्रचार किया कि राजा

मानसिंह के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी है। मानसिंह ने उसके साथ जो अपमानजनक व्यवहार किया है, उसको सहन करने के लिए अमीर खाँ किसी प्रकार तैयार नहीं है।

इस समाचार के फैलने में देर न लगी। सवाई सिंह ने भी यह खवर सुनी। वह अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अमीर खाँ से भेंट करने के लिए वह किसी अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इन्हीं दिनों में अमीर खाँ ने अपना एक दूत भेजकर सवाई सिंह से कहा कि यदि मुझे इजाजत मिले तो मैं नागौर की पीर तारकीन मस्जिद में आकर वहाँ पर ठहरने के दिनों में रोजाना नमाज पढ़ लिया करूँ।

दिल्ली के वादशाह का प्रभुत्व क्षीण हो जाने पर और मारवाड़ से उसका अधिकार हट जाने पर मुसलमानों की मस्जिदें और दरगाहें मरुभूमि में एवम् विशेषकर नागौर में नष्ट कर दी गयी थीं। नागौर में यह कार्य वख्तसिंह के शासन काल में विशेष रूप से हुआ था। किसी प्रकार पीर तारकीन की मस्जिद विध्वंस होने से बच गयी थी।

सवाई सिंह नागौर में रहकर पहले से ही चाहता था कि अमीर खाँ से किसी प्रकार भेंट हो। अमीन खाँ ने मानसिंह के साथ पैदा होने वाली शत्रुता का जो प्रचार किया था, उसका वृक्ष फलता-फूलता हुआ दिखायी देने लगा। सवाई सिंह ने अमीर खाँ को पीर तारकीन की मस्जिद में आकर नमाज पढ़ने की इजाजत दे दी। अमीर खाँ अपने शिविर से चलकर नागौर पहुँचा। सवाई सिंह ने सम्मान के साथ उससे भेंट की। वह पीर की मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ने लगा और वहाँ से लौटकर जब वह सवाई सिंह से विदा होकर अपने डेरे में आने लगा तो उसने सवाई सिंह से कहा – "मैंने मानसिंह के साथ बहुत उपकार किये हैं। उनके पुरस्कार के बदले उसने हमारे साथ जिस प्रकार गंदा व्यवहार किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।" यह कहकर अमीर खाँ चुप हो गया।

सवाई सिंह ने अनुभव किया कि अमीर खाँ निश्चय ही मानसिंह से बहुत असंतुष्ट है। उसके मनोभावों को अनुकूल पाकर सवाई सिंह ने कहा –"यदि आप मानसिंह को सिंहासन से हटाकर धौंकल सिंह को उस पर विठाने के लिए सहायता कर सकें तो मैं इस वात का वादा करता हूँ कि आप जितना रुपया माँगेंगे, सिंहासन पर. वैठने के वाद आप को धौंकल सिंह देगा।"

अमीर खाँ ने सवाई सिंह की वात को सुनकर कहा – "मुझे वीस लाख रुपये की आवश्यकता है।"

सवाई सिंह ने उत्तर देते हुए कहा – "मैं शपथ पूर्वक आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर वैठने के वाद वीस लाख रुपये आपको धौंकल सिंह से मिलेंगे।"

सवाई सिंह की वातों को अमीर खाँ ने मंजूर कर लिया। एक संधि पत्र लिखा गया। अमीर खाँ ने कुरान को छूकर प्रतिज्ञा की और संधि को स्वीकार किया। राजपूतों की प्रचलित प्रणाली के अनुसार, सवाई सिंह ने अमीर खाँ के साथ पगड़ी वदली। उसी समय सवाई सिंह ने धौंकल सिंह के साथ अमीर खाँ का परिचय कराया। अमीर खाँ ने धौंकल सिंह का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा – " मैंने आपके साथ जो आज निश्चय किया है, प्राण देकर मैं उसका पालन करूँगा। जोधपुर के सिंहासन पर धौंकल सिंह को विठाने के लिए मैं फिर एक वार प्रतिज्ञा करता हूँ।"

अमीर खाँ से प्रसन्न होकर सवाई सिंह ने वहुमूल्य चीजें उसको भेंट में दीं। इसके वाद अमीर खाँ ने सवाई सिंह को गुप्त रूप से कोई वात प्रकट की और उसके वाद वह नागौर से मूँधियाड़ चला गया।

अमीर खाँ के साथ सवाई सिंह की जो मित्रता कायम हुई, उसकी खुशी में अमीर खाँ ने उसको और उसके राठौर सामन्तों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। निश्चित दिन और समय पर सवाई सिंह राठौर सामन्तों के साथ अमीर खाँ के शिविर पर गया। सन् 1864 फरवरी के मास में नागौर से सवाई सिंह के साथ राठौर सामन्तों के अतिरिक्त पाँच सौ सैनिक अमीर खाँ के निमंत्रण में भाग लेने के लिए पहुँचे। अमीर खाँ ने आमंत्रित सवाई सिंह और उसके साथ के लोगों को वड़े सम्मान के साथ अपने दरवार में विठाया। सवाई सिंह के साथ उसने पगड़ी बदली। इस समय सवाई सिंह वहुत प्रसन्न हो रहा था। उसे विश्वास हो रहा था कि अमीर खाँ की सहायता से निश्चय ही मैं मानसिंह को सिंहासन से उतार सकूँगा।

अमीर खाँ के दरबार में नाच और गाना आरंभ हुआ। रूपवती नर्तकी के नृत्य और गाने को सुनकर सभी राजपूत आनन्द विभोर हो उठे। अमीर खाँ दरवार से किसी कार्य के लिए चला गया था। उस समय भी नृत्य वरावर होता रहा। उसके गानों को सुनकर सवाई सिंह स्वयं वहुत प्रसन्न हो रहा था। एकाएक नृत्य वन्द हो गया और हजारों पठानों ने अपनी भयानक तलवारों के साथ वहाँ पहुँचकर आक्रमण किया। उस समय सवाई सिंह को मालूम हुआ कि अमीर खाँ ने भयानक रूप से हमारे साथ विश्वासघात किया है।

आक्रमणकारी पठानों की संख्या अधिक थी। इसलिए उस दरवार में आये हुए सभी सामन्त काट-काटकर फेंक दिये गये। सवाई सिंह भी जान से मारा गया। अमीर खाँ ने उसका कटा हुआ सिर राजा मानसिंह के पास भेज दिया। सवाई सिंह के साथ जो पाँच सौ राठौर राजपूत आये थे, वे इस संहार को देखकर एक साथ घवरा उठे और भागने के लिए तैयार हुए। उसी समय पठानों के द्वारा वे भी मारे गये।

धौंकल सिंह नागौर में था। अमीर खाँ के द्वारा इस नर-संहार का समाचार पाकर नागौर की सेना अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भाग गयी। अमीर खाँ सेना के साथ नागौर में पहुँचा और उसने वहाँ की सम्पूर्ण संपत्ति लूट ली। बख्तसिंह ने नागौर के दुर्ग में जो युद्ध की बहुत-सी सामग्री एकत्रित की थी, उसको अमीर खाँ ने अपनी सेना के अधिकार में दे दिया। उस दुर्ग की तीन सौ तोपें लेकर अमीर खाँ ने अपने दुर्गों को रवाना की। इसके वाद अपनी योजना में सफल होकर वह सेना के साथ जोधपुर चला गया। वहाँ पर राज मानसिंह ने उसका अपूर्व स्वागत किया। इसी समय मानसिंह ने अमीर खाँ को दस लाख रुपये पुरस्कार में दिये और मूँडवा तथा कुचेरा नाम के दो ग्राम, जिनकी वार्षिक आमदनी तीस हजार रुपये थी, अमीर खाँ को दिये। इसके अतिरिक्त राजा मानसिंह से अमीर खाँ को एक सौ रुपये प्रति दिन के हिसाब से दिये जाने लगे।

सवाई सिंह ने अपने पूर्वजों का वदला लेने के लिए मानसिंह और मारवाड़ का सर्वनाश करने के लिए जो विष वोया था, उसके द्वारा सवाई सिंह का सर्वनाश हुआ। जिस विष के द्वारा शत्रु का विनाश किया जाता है, वही विष विनाश करने वाले के लिए भी विष हो जाता है। सवाई सिंह के जीवन की घटनाओं का अध्ययन करने से मनुष्य को इसी वात की शिक्षा मिलती है। सवाई सिंह मानसिंह का सर्वनाश करने के लिए चला था। परन्तु अंत में उसका स्वयं सर्वनाश हुआ। मानसिंह अव भी जीवित रहा और उसने जोधपुर का सिंहासन अपने अधिकार से जाने नहीं दिया। मारवाड़ की इन घटनाओं से हमें विश्वास कर लेना चाहिए कि मनुष्य का षड़यंत्र दूसरों को नहीं, उसी का विनाश करता है। प्रकृति के इस नियम पर मनुष्य को धैर्य के साथ विश्वास रखना चाहिए। वह सदा सुरक्षित रहे।

सवाई सिंह के जीवन का अंत हो गया। उसने जो कुछ किया था, उसका फल ठीक-ठीक उसे मिला। मानसिंह के जीवन की कठिनाइयों का अभी तक अंत नहीं हुआ। यद्यपि उसने षड़यंत्रकारी अमीर खाँ के द्वारा अपने परम शत्रु सवाई सिंह को संसार से विदा करने में सफलता पायी थी। परन्तु उसकी विपदाओं का अंत यहीं पर नहीं होता।

सवाई सिंह और मारवाड़ के विरोधी राठौड़ सामन्तों के प्राणों का नाश करवा कर राजा मानसिंह ने चारों तरफ से निर्भीक होकर अपना शासन-कार्य आरंभ किया। धौकल सिंह के सामने अब कोई आशा बाकी न रह गयी थी। इसलिए निराश होकर वह नागौर से चला गया। जिन राठौर सामन्तों ने धौंकल सिंह का पक्ष लेकर मानसिंह के साथ युद्ध किया था, उनको दंड देने के लिए मानसिंह ने तैयारी की। सवाई सिंह के प्रोत्साहन देने पर जयपुर के राजा जगत सिंह ने मानसिंह के विरुद्ध आक्रमण किया था। इसलिए मानसिंह ने अमीरखाँ की पठान सेना के द्वारा जयपुर राज्य के कितने ही नगरों और ग्रामों का भयानक रूप से विध्वंस और विनाश करवाया।

मानसिंह का दूसरा शत्रु बीकानेर का राजा था। धौकल सिंह का पक्ष लेकर आरंभ से ही उसने मानसिंह के विरुद्ध राजा जगत सिंह का साथ दिया था और जिस समय कई राज्यों की सेनाओं ने मिल कर जोधपुर पर आक्रमण किया था, उस अवसर का लाभ उठाकर राजा बीकानेर ने फलौदी को बीकानेर के राज्य में मिला लिया था। इसलिए राजा बीकानेर को दंड देने के उद्देश्य से मानसिंह प्रधान सेनापति इन्द्रराज के नेतृत्व में अपनी बारह हजार सेना लेकर बीकानेर राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ अमीर खाँ और हिन्दाल खाँ की फौजें पैंतीस तोपें लेकर बीकानेर की तरफ चलीं।

इस आक्रमण का समाचार राजा बीकानेर को मिला। उसने शीघ्रता के साथ अपनी सेना एकत्रित की और वह बापरी नामक स्थान में पहुँचकर मारवाड़ की सेना का रास्ता देखने लगा। उसी स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध आरंभ हुआ। उस युद्ध में बीकानेर के राजा की पराजय हुई। वह युद्ध क्षेत्र से भाग कर अपनी राजधानी को चला गया। इस लड़ाई में बीकानेर के दो सौ शूरवीर योद्धा मारे गये। युद्ध से उसके भागते ही इन्दराज और अमीर खाँ तथा हिन्दाल खाँ की सेनाओं ने उसका पीछा किया। ये सेनायें पीछा करती हुई गजनेर नामक स्थान पर पहुँच गयी।

बीकानेर की सेना संख्या में बहुत कम न होने पर भी मारवाड़ की सेना के साथ युद्ध करने के योग्य न थी। पठानों की सेनाओं के साथ होने के कारण राजा मानसिंह से बीकानेर का राजा अधिक घबरा उठा। उसने भयभीत होकर संधि का प्रस्ताव किया और दो लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया। इस सम्पत्ति को लेकर संधि की गयी और उसी समय राजा बीकानेर ने फलोदी नामक स्थान से अपना अधिकार हटा लिया।

पठान सेनापति अमीर खाँ ने जगतसिंह का पक्ष लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया था। उसके बाद उसने जगत सिंह का विरोधी बनकर जयपुर में आक्रमण करने की तैयारी की और इसके पश्चात् उसने मानसिंह के साथ मित्रता जोड़कर सवाई सिंह तथा उसके सहायक अन्य राठौर सामन्तों का सर्वनाश किया। अमीर खाँ की राजनीति इन दिनो में खूब सफल हुई। उसने जयपुर और जोधपुर से अपरिमित सम्पत्ति अपनी कूट नीति की कीमत में प्राप्त की। जोधपुर पर आक्रमण के दिनों में उसने मारवाड़ के नगरों को लूटकर मनमानी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली थी। उसके जीवन का उद्देश्य किसी प्रकार धन प्राप्त करना था। सत्य और असत्य एवम् उचित और अनुचित समझने की उसको आवश्यकता न थी।

जयपुर का मित्र बनकर अमीर खाँ ने मारवाड़ का सर्वनाश किया और मारवाड़ का मित्र बनकर उसने जयपुर तथा उसके सहायक राज्यों का सर्वनाश किया। अव उसने फिर मारवाड़ की तरफ दृष्टिपात किया। मारवाड का राजा मानसिंह उसके हाथ की कठपुतली हो रहा था। अमीर खाँ ने न केवल मानसिंह के मन और मस्तिष्क पर शासन आरंभ किया बल्कि उसने मारवाड़ की शक्तियों को अपने अधिकार में लेना आरंभ किया। संपूर्ण मारवाड़ में अमीर खाँ का आतंक फैल गया और राज्य के वढ़े कार्यों में उसी का आतंक काम करने लगा। राजा मानसिंह ने स्वयं उसको प्रधानता दे रखी थी। इसलिए अमीर खाँ ने राठौड़ सामन्तों पर अपना आतंक पैदा करने की चेष्टा की, उसका प्रभुत्व लगातार वहाँ वढ़ने लगा।

राजा मानसिंह ने अमीर खाँ की सहायता से अपनी भयानक विपदाओं से मुक्ति पायी थी। उसी की सहायता से मानसिंह ने अपने शत्रुओं को परास्त किया था। इसलिए जिसके इतने उपकार मानसिंह के सिर पर थे, वह मानसिंह उस परोपकारी के विरुद्ध इस समय कैसे आवाज उठा सकता था। मानसिंह समझता था कि राज्य पर उसका अत्याचार हो रहा है। परन्तु उसने कुछ कह सकने का अथवा विरोध करने का साहस न किया।

अमीर खाँ ने मनमानी सम्पत्ति मानसिंह से वसूल की थी। तीस हजार रुपये वार्षिक की आमदनी के दो प्रसिद्ध नगर उसने राजा मानसिंह से अपनी वहादुरी के पुरस्कार में पाये थे। एक सौ रुपये नित्य उसे अलग से मिलता था। राज्य की सभी सुविधायें बिना किसी मूल्य के उसको अपने आप प्राप्त थीं। इतना लाभ उठाकर भी अमीर खाँ को संतोष न हुआ। इसलिए राज्य के कई एक ग्रामों और नगरों पर उसने अपना अधिकार कर लिया। परन्तु राजा मानसिंह उससे कभी कुछ कह न सका।

इतना सब कुछ होने के बाद भी अमीर खाँ ने अपने अधिकारों का विस्तार मारवाड़ राज्य में किया। उसने अपने सेनापति गफूर खाँ के नेतृत्व में एक सेना नागौर के दुर्ग में भेज दी और प्रसिद्ध मेड़ता की जागीर को नागौर से अलग करके उसने अपने अधिकार में कर ली। इसके बाद भी वह अपने अधिकार को वढ़ाता रहा। उसने अपनी एक सेना नावा के दुर्ग में भेज दी और नावा नगर के साथ-साथ साँभर का विस्तृत इलाका भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। मारवाड़ राज्य में अमीर खाँ के इस शासन के विस्तार को देखकर भी राजा मानसिंह विरोध करने का साहस न कर सका।

राजा मानसिंह के दरवार में अमीर खाँ का प्रभुत्व काम कर रहा था। जो राठौर सामन्त राज-दरबार में आते थे, उनको कुछ कहने-सुनने का अधिकार न था। यदि कभी कोई सामन्त राज्य की दुरवस्था को उपस्थित करके कुछ कहने का साहस करता तो उसे अपमानित हो कर चुप हो जाना पड़ता। मारवाड़ की इस बढ़ती हुई दुरवस्था को देखकर सामन्तों ने आपस में परामर्श किया कि मानसिंह राज्य में जो कुछ भी करता है, उसमें इन्द्रराज और राजगुरु देवनाथ की सम्मति रहती है। इसका अर्थ यह है कि अमीर खाँ ने राज्य में जो अत्याचार कर रखा है, उसके अपराधी इन्दराज और देवनाथ प्रधान रूप से हैं, इसलिए सामन्तों ने निश्चय किया कि इन्दराज और देवनाथ जब तक जीवित रहेंगे, अमीर खाँ के अत्याचार इन राज्य में कभी समाप्त नहीं हो सकते। इसलिए जैसे भी हो सके इस दोनों के जीवन का अन्त किया जाये, परन्तु उनका अन्त करे कौन? यह प्रश्न राज्य के सामन्तों के सामने पैदा हुआ।

उन सामन्तों के सामने बड़ी गंभीर परिस्थिति थी। अमीर खाँ के अत्याचारों से मेवाड़ राज्य की दशा अत्यन्त ही दुर्बल हो गयी थी और सभी की समझ में यह आ गया था कि जब तक राजद्रोही इन्दराज और देवनाथ का अन्त न होगा, उस समय तक अमीर खाँ

के अत्याचार नहीं रोके जा सकते। बहुत सोच-समझ कर उन सामन्तों ने धन के लोभी अमीर खाँ से यह काम करवाने का निश्चय किया गया। अमीर खाँ ने उसे स्वीकार कर लिया। उसने कहा – "इस कार्य के लिए मैं सात लाख रुपये लूँगा और उन दोनों को संसार से विदा कर दूँगा।"

सामन्तों ने अमीर खाँ की इस माँग को स्वीकार कर लिया और उसके वाद अमीर खाँ ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उसने इन्दराज के नेतृव में काम करने वाली पठान सेना को भड़का दिया, उसने अपना वहुत दिनों का वाकी पड़ा हुआ वेतन माँगा और उस सिलसिले में ऐसा संघर्ष हुआ, जिसमें राजगुरु देवनाथ के साथ मन्त्री इन्दराज मारा गया।

देवनाथ के मारे जाने पर मानसिंह वहुत दुःखी हुआ। उसने अपने जीवन में भीषण कठिनाइयों का सामना किया था। परन्तु उसके हृदय पर इस प्रकार का घातक प्रभाव नहीं पड़ा था, जिस प्रकार राजगुरु के मारे पर उसके ऊपर प्रभाव पड़ा। इन दिनों में वह राजगुरु देवनाथ की सम्मति से अपने सभी कार्य करता रहा था। उसने राजगुरु का वहुत विश्वास किया था। अव उसका कोई ऐसा सहायक न रह गया, जिसके परामर्श पर वह अपनी आँखें वन्द करके काम कर सकता। इसलिए अपने जीवन में विल्कुल निराश होकर उसने राज्य के कार्यों से वैराग्य ले लिया। उसने राज दरवार में जाना वन्द कर दिया। परिवार के लोगों से लेकर मंत्रियों तक सव के साथ उसने वातचीत करना वन्द कर दिया। उसके इस वैराग्य को देखकर सभी लोग चिन्तित हो उठे।

राजा मानसिंह की इस उदासीनता को देख कर राज्य के सामन्तों ने उसके साथ वातें की और जव उनको उससे कोई आशा न पैदा हुई तो सामन्तों ने उसके एक मात्र वेटे छत्रसिंह को सिंहासन पर विठा कर राज्य का कार्य आरंभ किया। राजा मानसिंह ने स्वयं अपने हाथों से छत्रसिंह के मस्तक पर राजतिलक किया।

राजकुमार छत्रसिंह ने अभी हाल में ही यौवनावस्था में प्रवेश किया था। उसको शासन करने का ज्ञान न था। इसलिए राज्य की दुरवस्था के प्रति ध्यान न देकर वह विलासिता में पड़ा रहता। इसका परिणाम यह हुआ कि वह सभी के निकट अप्रिय हो गया।

मानसिंह के वैराग्य को देखकर सामन्तों ने वड़ी आशाओं के साथ छत्रसिंह को सिंहासन पर विठाया था। परन्तु वह अत्यन्त अयोग्य निकला। इसलिए राज्य के सामन्त और मन्त्री फिर से चिन्तित रहने लगे। इन्हीं दिनों में वह वीमार हो गया और एक दिन अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने के सम्वन्ध में कुछ लोगों का एक दूसरा ही मत है। उनका कहना है कि छत्र सिंह ने एक रूपवती युवती पर मोहित होकर उसका धर्म नष्ट किया था। इसी अपराध में वह मारा गया। इन दोनों वातों में सही क्या है, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। कुछ भी हो छत्रसिंह की असमय मृत्यु हुई।

राजा मानसिंह के मानसिक उन्माद का यह दूसरा कारण हुआ। राजगुरु देवनाथ के मारे जाने पर उसने राज्य के शासन से विरक्ति ले ली थी और उसने एकान्त में रहकर जीवन व्यतीत करना आरंभ किया था। उसके वाद प्रिय पुत्र छत्रसिंह की मृत्यु से उसके अन्तरतम को ऐसा आघात पहुँचा, जिससे जीवन के प्रति उसे कोई आसक्ति न रह गयी।

छत्रसिंह मानसिंह का इकलौता वेटा था। वह अयोग्य था और मारवाड़ के सिंहासन पर वैठने के योग्य न था। फिर भी वह अपने पिता का अकेला लड़का था। इसलिए राजा मानसिंह का उस पर अगाध स्नेह होना पूर्ण रूप से स्वाभाविक था। इसलिए [illegible] मृत्यु के वाद [illegible] से अश्रद्धा हो गयी। राज्य के [illegible]

का उसने विश्वास छोड़ दिया और उसका यह अविश्वास यहाँ तक बढ़ा कि वह अपनी रानी को भी अपना शत्रु समझने लगा।

न जाने क्यों मानसिंह को विश्वास हो गया कि महलों से लेकर बाहर तक राज्य में सभी लोग मुझे मार डालना चाहते हैं। उसके इस विश्वास का आधार क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु उसके हृदय में सभी के लिए इस प्रकार का अविश्वास पैदा हो गया। इस अविश्वास के कारण ही उसने भोजन करना बन्द कर दिया और अपने भोजन का कार्य उसने अपने विश्वासी अनुचर पर छोड़ दिया। वह जो कुछ खाना लाकर उसे देता था, मानसिंह उसी को खाकर और एकान्त में रहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

मानसिंह के जीवन की यह विरक्ति लगातार बढ़ती गयी। उसने स्नान करना और बाल बनवाना भी बन्द कर दिया। इन दिनों में राज्य के शासन में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो रही थी। इसलिए राजा के अभाव में मन्त्री कार्य संचालन करते रहे। आवश्यकता पड़ने पर वे लोग राजा मानसिंह के पास जाकर जब कुछ बातें करते थे तो मानसिंह मौन रहकर उनको सुन लेता। लेकिन कुछ उत्तर न देता।

मानसिंह की उन्माद अवस्था के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि गुरुदेव देवनाथ के मारे जाने से उसे अत्यधिक मानसिक आघात पहुँचा था। कुछ लोगों का विश्वास है कि वास्तव में उसको उन्माद नहीं हुआ था। राज्य की विरोधी परिस्थितियों से वह बहुत ऊब गया था और उन्हीं दिनों में देवनाथ के मारे जाने के बाद उसके एकमात्र बेटे छत्रसिंह की मृत्यु हुई थी। जीवन के इस विरोधी वातावरण में उसने एकान्त जीवन व्यतीत करना आरंभ किया था। कुछ भी हो, मानसिंह ने अपने आपको राज्य के शासन से सभी प्रकार अलग कर रखा था।

छत्रसिंह की मृत्यु के बाद राजा मानसिंह की मानसिक विरक्ति अधिक बढ़ गयी। उस समय मारवाड़ के सामन्तों ने पोकरण के स्वर्गीय सवाई सिंह के पुत्र सालिम सिंह को बुलाकर जोधपुर के शासन का प्रधान बनाया और उसने शासन का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर राज्य में अपने प्रभुत्व का विस्तार किया।

राजकुमार छत्रसिंह के जीवन काल में एक बार दिल्ली में एक बैठक हुई थी। उसमें मारवाड़ की वर्तमान अशान्ति को मिटाने और शांति कायम करने के सम्बन्ध में विचार होने को था। यह बैठक मेरे द्वारा आमंत्रित हुई थी[1] उस बैठक में भाग लेने के लिए जोधपुर दरबार से एक दूत भेजा गया था। दिल्ली की उस बैठक का परिणाम निकलने के पहले ही छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी।

जोधपुर का शासन सालिम सिंह के अधिकार में चले जाने पर मारवाड़ के अधिकांश सामन्त अपने भविष्य को बड़ी सावधानी से देखने लगे। सालिम सिंह को कुछ समय के लिए जोधपुर का शासन-भार दिया गया था। इसलिए वहाँ के सामन्त इस बात से भयभीत हो रहे थे कि राजा मान सिंह फिर किसी समय यहाँ के सिंहासन पर बैठकर शासन न करने लगे। राजा मानसिंह के शासन से सामन्तों के भयभीत होने का कारण था। राज्य सिंहासन पर बैठकर मानसिंह ने राठौर सामन्तों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। उनकी जागीरें छीन ली गयी थीं और विद्रोही बनने के लिए उनको विवश किया गया था। इसलिए उन दुर्घटनाओं से राठौर सामन्त आज भी भयभीत होकर अपने भविष्य की ओर देख रहे थे।

---

1. मारवाड़ की यह अशान्ति लगभग पूरे देश में फैली हुई थी। जिसको दूर करने के लिए कर्नल टॉड ने दिल्ली में राजस्थान के राजपूतों की एक बैठक बुलाई थी।—अनुवादक

इस प्रकार की परिस्थितियों में चिन्तित होकर राठौर सामन्तों ने आपस में परामर्श करके निश्चय किया कि मानसिंह के सिंहासन पर न बैठने पर ईडर के राजकुमार को लाकर अभिषेक किया जाये और सिंहासन पर बिठाया जाये। मानसिंह के सिंहासन पर बैठने का इस समय सामन्तों के सामने कोई प्रश्न नहीं था। इसलिए कि कई बार प्रार्थना करने पर उसने इंकार कर दिया था। सामन्तों ने इसके सम्बन्ध में ईडर के राजा के पास अपना समाचार भेजा। उसका उत्तर देते हुए ईडर के राजा ने कहा –"हमारे यही एक लड़का है। इसलिए किसी भी इस प्रकार के अवसर के लिए हमको न इच्छा है और न हमारी उत्सुकता है। लेकिन यदि मारवाड़ के सभी सामन्त इस प्रस्ताव में एक मत हों तो मैं इसके लिए इंकार न करूँगा। परन्तु दो-चार सामन्तों के प्रस्ताव करने पर मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

ईडर के राजा का उत्तर पाकर मारवाड़ के सभी सामन्तों ने एकत्रित होकर आपस में परामर्श किया और सभी की सम्मति लेकर यह निश्चय किया गया कि राजा का भार संभालने के लिए पहले राजा मानसिंह से प्रार्थना की जाये। इस निर्णय के अनुसार सामन्तों को फिर से मानसिंह पर निर्भर होना पड़ा। वे लोग राजा मानसिंह से जाकर मिले और मारवाड़ की दुरवस्था का एक चित्र सामन्तों ने उसके सामने रखा। इसके साथ-साथ सामन्तों ने मानसिंह को यह भी वताया कि ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ जो संधि की गयी है और वह आपके सामने आने वाली है, उस पर भी आपको विचार करना है। इस प्रकार की अनेक वातें कहकर उपस्थित सामन्तों ने प्रार्थना की कि आपको अपने शासन का भार न लेने पर मारवाड़ राज्य की दशा सभी प्रकार खराव हो जायेगी।

सामन्तों ने राजा मानसिंह से इस विषय में वड़ी देर तक वातचीत की। राजा मानसिंह ने सामन्तों का विशेष आग्रह देखकर शासन भार स्वीकार करने के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। राजकुमार छत्रसिंह के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी की जो संधि होने जा रही थी, उसकी अनेक वातों पर मानसिंह ने असंतोष प्रकट किया। उस संधि में यह भी लिखा गया था कि अधीन सामन्तों की सेना को आवश्यकता पड़ने पर ईस्ट इंडिया कंपनी अपने अधिकार में ले लेगी। राजा मानसिंह ने संधि की इस शर्त पर विशेष रूप से अपना विरोध प्रकट किया। सन 1817 ईसवी में मारवाड़ के दूत व्यास विष्णु राम नामक ब्राह्मण की उपस्थिति में ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ दिल्ली में यह संधि लिखी गयी थी। मानसिंह का लड़का छत्रसिंह उन दिनों में मारवाड़ राज्य के सिंहासन पर था।

इस संधि के एक वर्ष वाद सन् 1818 ईसवी में दिसम्बर में ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रतिनिधि मिस्टर विल्डर जोधपुर गया था। उसको उस राज्य की वास्तविक परिस्थितियों की रिपोर्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने उपस्थित करनी थी। अखय चंद उन दिनों में मारवाड़ का दीवान था और सालिम सिंह को राठौड़ सामन्तों ने राज्य का प्रवंध करने के लिए नियुक्त किया था। उन दिनों में आवश्यकतानुसार राज्य में अनेक प्रवंध किये गये थे और अनेक प्रधान पदों पर काम करने के लिए कर्मचारियों को नियुक्त किया गया था। इन दिनों की व्यवस्था में सामन्तों का परस्पर विद्रोह चल रहा था और उनके द्वारा राज्य में जो उपद्रव हो रहे थे, स्वर्गीय इन्दराज के वेटे फतेह राज ने उनका विरोध किया था। फतेह राज जोधपुर की राजधानी में एक पदाधिकारी था। वह अपने स्वर्गीय पिता इन्दराज का वदला लेने के लिए सामन्तों की व्यवस्था में वाधायें पैदा करता था।

ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रतिनिधि मि. विल्डर जोधपुर जाकर तीन दिन तक वहाँ पर रहा और उसके वाद वह गुप्त रूप से राजा मानसिंह से मिला। उसने राज्य की परिस्थितियाँ मानसिंह के सामने रखीं और उसने मानसिंह से कहा –"सामन्तों के

स्वेच्छाचार और अन्याय को दूर करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी सेना लेकर आपकी सहायता कर सकती है।"

मानसिंह विचारशील और दूरदर्शी था। उसने कंपनी के प्रतिनिधि की इस बात को सुनकर धन्यवाद दिया और कहा – "आवश्यकता पड़ने पर मैं कंपनी से सैनिक सहायता लूँगा।"

मानसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अंग्रेज प्रतिनिधि को उत्तर दिया। उसने अपने मन में विचार किया कि राज्य के सामन्तों को नियंत्रण में लाने के लिए अंग्रेजी सेना की सहायता आवश्यक नहीं है। इस प्रकार की सहायता के दुष्परिणाम को समझने में मानसिंह को देर न लगी। जीवन के आरंभ से ही वह इस प्रकार की बातों में दूरदर्शी था।

राजा मानसिंह ने सामन्तों के अप्रिय कार्यों पर कठोर व्यवहार करना उचित नहीं समझा। बल्कि उसने ऐसे मौकों पर सामन्तों के साथ उदारता का व्यवहार आरंभ किया। राठौर सामन्त दो श्रेणियों में विभाजित होकर कार्य कर रहे थे। एक श्रेणी राजा के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन करती थी और दूसरी श्रेणी प्रतिकूल वातावरण को प्रोत्साहन देती थी।

मानसिंह ने गंभीरता के साथ शासन कार्य संचालन किया। उसने सामन्तों की मनोवृत्तियों का अध्ययन किया और दोनों श्रेणी के सामन्तों में से योग्य व्यक्तियों को निकाल कर राज्य के ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मानसिंह के व्यवहारों पर दोनों श्रेणी के सामन्तों को संतोष हुआ।

जो सामन्त विद्रोहात्मक कार्यों में सहायता कर रहे थे, मानसिंह ने उनके साथ भी उदारता का व्यवहार किया। इन दिनों में उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। अंग्रेज प्रतिनिधि ने मिल कर मानसिंह को समझाने की कोशिश की थी और कहा था–"कंपनी की सैनिक सहायता के बिना आप किसी प्रकार अपने राज्य में शांति कायम नहीं कर सकते।" राजा मानसिंह ने नम्रता के साथ प्रतिनिधि की इस बात का विरोध किया और उसने उसको उत्तर देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा– 'कंपनी की इस सहायता के लिए धन्यवाद है। परन्तु अपने राज्य में शान्ति कायम करने के लिए मुझे बाहरी सेना की आवश्यकता नहीं है।"

अंग्रेज प्रतिनिधि मि. विल्डर ने मारवाड़ में फैली हुई भयानक अशांति और अराजकता को अपने नेत्रों से देखा था। सामन्तों पर राजा का कोई प्रभाव न रह गया था और वे भयानक रूप से मनमानी कर रहे थे। राज्य की इस दुरावस्था में प्रजा के कष्ट इतने बढ़ रहे थे, जिनको लिखा नहीं जा सकता। उस प्रतिनिधि ने जोधपुर में भी इसी प्रकार की परिस्थितियाँ देखी थीं। उस प्रतिनिधि ने स्वयं स्वीकार किया था कि सामन्तों के स्वेच्छाचार के कारण राज्य में मानसिंह का कोई प्रभाव न रह गया था। सभी राज कर्मचारी अनुशासन हीन हो गये थे और राज्य की प्रजा बराबर लूटी जा रही थी। राजा मानसिंह की निर्बलता इतनी बढ़ गयी थी कि वह सामनतों के किसी भी अनुचित कार्य में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं करता था। उसके अधिकार में जो वैतनिक सेना थी, आर्थिक कष्टों के कारण सभी प्रकार असमर्थ हो रही थी। उसका पिछले तीन वर्षों का वेतन बाकी था। उसके न मिलने से उस सेना का कष्ट और असंतोष बहुत बढ़ गया था। उस सेना के सैनिक राजधानी में प्रजा से माँगकर कभी-कभी अपना पेट भर लेते थे। लेकिन सेना के अधिकांश सैनिक प्रायः अनाहार रहा करते थे। इस प्रकार राजधानी से लेकर राज्य के प्रत्येक नगर और ग्राम तक भयानक दुरवस्था फैली हुई थी।

सन् 1819 ईसवी में उदयपुर, कोटा, बूँदी और सिरोही के राज्यों की तरह ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल के द्वारा मैं मारवाड़ राज्य का राजनैतिक एजेंट बनाया

गया।[1] नवम्बर के महीने में मैं मारवाड़ गया और जोधपुर पहुँचकर मैंने वैतनिक सेना को भयानक कष्टों में देखा। उस समय मैंने सेना के पिछले वेतन में तीस प्रतिशत दिलाने की कोशिश की। सेना ने इसे स्वीकार कर लिया। लेकिन तीन सप्ताह के वाद जोधपुर से मेरे चले जाने पर उस सेना को जो आशा हुई थी, वह भी जाती रही।

जोधपुर में वढ़ी हुई अराजकता के कारण लोगों को किसी प्रकार का डर न रह गया था। इसका कारण यह था कि अपराधियों को कोई दंड देने वाला न था। ऐसा मालूम होता था कि मानो इस राज्य से इंसाफ उठ गया है। इसका प्रमाण यह हुआ कि यदि कोई किसी को मार डालता तो हत्या करने वाले के विरुद्ध कोई कुछ कहने वाला न था। ठीक यही अवस्था दूसरे अपराधों की भी थी। समस्त राज्य विना किसी शासन के चल रहा था। जो निर्वल थे, वे बुरी तरह से सताये जा रहे थे। प्रजा के चीत्कार को सुनने वाला कोई न था। भोजन के अभाव में सैनिक मर रहे थे। राजपूत अपने कर्त्तव्यों का पालन भूल गये थे और खाने-पीने के अभाव में उचित अनुचित का ख्याल भूलकर वे कुछ भी खा लेते और अपने प्राणों की रक्षा करते थे।

राजा मानसिंह कहने के लिए शासक था, परन्तु राज्य की अव्यवस्था के प्रति उसने अपने नेत्र वन्द कर लिये थे। जोधपुर में तीन सप्ताह रह कर मैं राजा मानसिंह से मिला। उस भेंट में राज्य की वर्तमान परिस्थितियों पर वहुत-सी वातें हुई। हम दोनों में मित्रता का भाव पैदा हुआ। मानसिंह ने अपनी वीती हुई विपदाओं की घटनायें मुझे सुनायी। मैं वड़ी सहानुभूति के साथ उनको सुनता रहा और अन्त में यह कह कर मैं राजा मानसिंह से विदा हुआ –"आपकी इन समस्त विपदाओं को मैं भली प्रकार जानता हूँ। आपने उन दिनों में वड़ी वुद्धिमानी से काम लिया और उन कष्टों से छुटकारा पाया। उस समय की सभी घटनाओं को मैं जनता हूँ। आपने दूरदर्शिता से काम लेकर अपने शत्रुओं का नाश किया। अव आप अंग्रेज सरकार के मित्र हैं। इसलिए आपको हमारी सरकार का विश्वास करना चाहिए। मैं इस वात को खूव समझता हूँ कि आपके सामने जितनी भी कठिनाइयाँ हैं वे सभी थोड़े दिनों में दूर हो जायेंगी।"

राजा मानसिंह ने सावधानी के साथ मेरी वात को सुना और प्रसन्न होकर उत्तर देते हुए उसने कहा –"आप जिस शुभकामना.लेकर को लेकर मेरे पास आये हैं, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। साथ ही आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस राज्य में जो कठिनाइयाँ आप देख रहे हैं एक वर्ष के भीतर ही उनका अंत हो जायेगा।"

मानसिह की इस वात को सुनकर मैंने कहा – "यदि आप चाहेंगे तो इसके आधे दिनों में ही आपके राज्य की सारी कठिनाइयाँ खत्म हो जायेगी।"

मारवाड़ राज्य में इन दिनों जो अव्यवस्था थी, वह राज्य की सभी वातों में भयानक हो गयी थी। लेकिन इस समय जो सुधार वहुत जरूरी हो रहे थे, उनको राजा मानसिंह के सामने मैंने संक्षेप में उपस्थित किया और वे इस प्रकार थे :–

1. शासन की शिथिलता को दूर करना।
2. राज्य की आर्थिक दशा सुधारना, जो सर्वसाधारण के असंतोष का कारण वन गयी है।
3. राज्य की सेना को शक्तिशाली वनाना, जिसके ऊपर शासन की व्यवस्था निर्भर है।

---

1. इस ग्रंथ के मूल लेखक कर्नल टॉड को सन् 1819 ईसवी में अंग्रेज गर्वनर जनरल ने मारवाड़ राज्य का भी राजनैतिक एजेंट नियुक्त किया था। – अनुवादक

4. सामन्तों ने निरंकुश होकर राज्य के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया है, बुद्धिमानी के साथ उनकी व्यवस्था करना।

राजा मानसिंह ने अपने राज्य में बारह महीने के भीतर सुधार कर लेने पर विश्वास किया था। उसके अनुसार राज्य में कुछ नये कार्य आरंभ किये गये। गोडवाड राज्य का घाणेराव एक प्रधान नगर था। उसे राज्य में मिला लिया गया और एक वर्ष की उसकी आमदनी को लेकर उसे छोड़ दिया गया। घाणेराव के सामन्त ने इस दंड का रुपया अपने अधीन सरदारों से वसूल किया और अपनी प्रजा पर कर बढ़ाकर उसने बड़ी कठोरता से काम लिया। इस प्रकार के और भी कितने ही कार्य किये गये, जिनके कारण सामन्तों और सरदारों में असंतोष की वृद्धि हुई। कुछ सामन्तों ने इसका विरोध करते हुए स्वाभिमान के साथ अनेक प्रकार की बातें कही।

जोधपुर के प्रधानमंत्री अखय चंद ने राज्य के प्रत्येक भाग में इस प्रकार के कार्य किये, जिनसे राज्य में और भी असंतोष की वृद्धि हुई। इन अत्याचारों को देखकर राज्य के कुछ सामन्त भविष्य में आने वाली विपदाओं का अनुमान लगाने लगे। उनको विश्वास हो गया कि प्रधानमंत्री अखय चन्द कुछ सामन्तों को मिलाकर राज्य का विनाश करने के लिए तैयारी कर रहा है। प्रधानमंत्री के इन अत्याचारों को देखकर मानसिंह ने शासन की व्यवस्था से फिर अपने आपको अलग कर लिया और एकान्तवासी बनकर वह फिर अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगा। उसकी इस दशा को देखकर अनेक सामन्त भयभीत हो उठे।

इन्हीं दिनों में प्रधानमंत्री अखय चन्द के साथ फतहराज का वैमनस्य आरंभ हुआ। राजा मानसिंह की सहानुभूति फतहराज के साथ अधिक थी और बहुत कुछ उसका प्रिय बन गया था। इसके अतिरिक्त मानसिंह की रानी फतहराज के साथ उदारता का व्यवहार करती थी और इसलिए राज्य के अनेक सामन्तों के साथ फतहराज की मैत्री थी। परन्तु प्रधान मंत्री अखय चन्द राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ राज्य की सेना को अपने अधिकार में कर लिया और जोधपुर के दुर्ग के साथ-साथ राज्य के सभी दुर्गों पर उसने अपना आधिपत्य कायम कर लिया।

अखय चन्द की इस शक्ति को देखकर फतहराज का साहस निर्बल पड़ने लगा। अखय चन्द इस बात को समझता था कि फतहराज कुछ नहीं कर सकता। इसलिए निर्भीक होकर उसने राज्य में भयानक अत्याचार आरंभ किये। इन्हीं दिनों में अखय चन्द ने कई बार फतहराज का अपमान भी किया। इसलिए विवश होकर वह अखय चन्द के विरुद्ध उस षड़यंत्र का एक जाल तैयार करने लगा। राज्य में अखय चन्द के अत्याचार लगातार बढ़ते जा रहे थे। प्रजा को लूटकर उसने अपने पास अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। जो सामन्त और सरदार उसके अत्याचारों में शामिल थे उन्होंने भी राज्य को लूटने में कोई कमी न की थी। इसके बाद अखय चन्द जोधपुर के दुर्ग में जाकर रहने लगा। उसने यह अफवाह फैला दी कि राज्य में मेरे लिए बड़ा खतरा पैदा हो गया है, इसीलिए नगर छोड़कर मैं दुर्ग चला आया हूँ।

इस प्रकार छः महीने बीत गये। राजा मानसिंह का एकान्त जीवन चल रहा था और राज्य में अखय चन्द का आधिपत्य काम कर रहा था। एकाएक मानसिंह ने अपना एकान्त जीवन भंग किया और शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर उसने अखय चन्द एवम् उसके समर्थक सामन्तों और सरदारों को राजधानी में बुलाया। अखय चन्द और उसके समर्थकों के आते ही मानसिंह ने आदेश दिया, वे सब के सब कैद कर लिए गये और उसी समय मानसिंह ने अखय चन्द से कहा :–"तुमने राज्य को लूटकर जितनी सम्पत्ति एकत्रित की है, उसे साफ जाहिर करो। अन्यथा तुमको प्राण दंड दिया जायेगा।"

अखयचन्द मानसिंह के इस आदेश को सुनकर एक साथ भयभीत हो उठा। उसने अपने साथ के लोगों के परामर्श से चालीस लाख रुपये का हिसाव लिखकर तैयार किया। राजा मानसिंह ने उस पत्र के अनुसार पूरी सम्पत्ति लेकर अपने अधिकार में कर ली और अखयचन्द के साथ जिनको कैद किया गया था, मानसिंह की आज्ञा से उनको प्राण दंड दिया गया। नग जी जो राज्य का किलेदार था और मूल जी धाँधल के साथ जो एक जागीरदार था को विष का प्याला पिलाकर उसके जीवन का अंत किया गया और फतह पोल द्वार के वाहर उसका मृत शरीर फिकवा दिया गया। धाँधल का भाई जीव राज और विहारीदास खींची का एक दर्जी भी मारा गया। व्यास शिवदास और श्रीकृष्ण ज्योतिषी को मार कर संसार से विदा किया गया।

मानसिंह ने उन सभी लोगों के साथ कठोर व्यवहार किया, जिन्होंने अखयचन्द के साथ मिल कर राज्य में अत्याचार किये थे और प्रजा को लूटकर धन एकत्रित किया था। इस प्रकार के सभी लोग कैद किये गये। उनके पास का धन ले लिया गया और उनमें अधिकांश लोग जान से मारे गये। उनमें वहुत थोड़े आदमी ऐसे थे जो अधिक अपराधी न थे उनको छोड़ दिया गया। नगजी किलेदार और मूल जी जागीरदार दोनों छत्रसिंह के शासन काल में राज्य के कर्मचारी थे। उस समय इन दोनों ने षड़यंत्रों के द्वारा राज्य का वहुत-सा धन लूटा था और उसके वाद अपने नगरों में जाकर उन दोनों ने दुर्ग वनवाये थे। राजा मानसिंह ने सिंहासन पर वैठकर यह प्रकाशित किया कि जिन लोगों ने राज्य में किसी प्रकार का अपराध किया है उनको क्षमा करके उनके पद उनको दिये जायेंगे। उस समय नग जी और मूल जी अपने नगरों से जोधपुर की राजधानी आ गये थे। उनके आने पर उनको कैद कर लिया गया और जो सम्पत्ति वे अपने साथ लेकर चले गये थे, उनसे माँगी गयी। प्राणों के भय से उन दोनों ने वह सम्पत्ति लाकर दे दी। उसे लेकर उन दोनों को दुर्ग के ऊँचे वुर्जों से नीचे फेंक दिया गया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि इस प्रकार जिन लोगों ने राज्य की प्रजा को लूट कर धन इकट्ठा किया था, उससे जो सम्पत्ति राजा मानसिंह को मिली वह एक करोड़ रुपये से कम न थी। लेकिन यदि वह सम्पत्ति इसकी आधी भी रही हो तो भी इस समय राजा मानसिंह के लिए वड़ी रकम सावित हुई।

राजा मानसिंह ने अखयचन्द के साथ-साथ जितने भी लोगों को राज्य में अत्याचार करने के कारण अपराधी समझा था, उन सभी से लूटी हुई सम्पत्ति को वापस लेकर उनको मृत्यु दंड दिया। इससे राज्य में भयानक आतंक पैदा हो गया। राजा मानसिंह ने राज्य के अन्य सम्मानित सामन्तों को भी दंड देने का इरादा किया। पोकरण का सामन्त सालिम सिंह, नीमाज का सामन्त सुरतान सिंह, आहोर का सामन्त ओनाड सिंह भी अखयचन्द के साथ शासन की व्यवस्था में शामिल था। साधारण श्रेणी के कितने ही सामन्त जोधपुर के दरवार में रोजाना जाकर भाग लेते थे। इन सभी सामन्तों की सम्मतियाँ लेकर अखयचन्द राज्य का शासन करता था। अखयचन्द के कैद हो जाने पर ये सभी सामन्त भयभीत हो उठे।

इन भयभीत सामन्तों के पास राजा मानसिंह ने दूत के द्वारा संदेश भेजा कि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही न की जाएगी। अखयचन्द और उसके साथियों ने राज्य में जो अत्याचार किया था, उनको दंड देना आवश्यक था। मानसिंह का यह संदेश पाने के वाद भी उन सामन्तों को विश्वास न हुआ। उनको पहले ही इस वात का पता लग गया था कि मानसिंह ने हम सव लोगों का सर्वनाश करने के लिए षड़यंत्र का एक जाल फैला दिया है। उनको यह भी मालूम हो चुका था कि राजा मानसिंह ने पोकरण के सामन्त सालिम सिंह के वंश को मिटा देने के लिए निश्चित इरादा कर लिया है।

मानसिंह के संदेश का सामन्तों ने विश्वास नहीं किया, इसके कुछ और भी कारण थे। ओनाड सिंह मानसिंह का एक मित्र था। उसके एक निजी अनुचर को मानसिंह ने स्वयं आज्ञा देकर कुछ दूसरे आदमियों के साथ राज-दरवार में बुलाया था। परन्तु वह नहीं गया और उसके अविश्वास ने ही उसके प्राणों की रक्षा की।

नीजाम का सामन्त सुरतान सिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर की राजधानी में रहा करता था। मानसिंह की भयानक विपदाओं में सुरतान सिंह ने बड़ी सहायता की थी। लेकिन मानसिंह ने उसके उन सभी उपकारों को भुला दिया और अपनी आठ हजार वैतनिक सेना को तोपों और गोलंदाओं के साथ लेकर सुरतान सिंह पर आक्रमण किया। उस समय सुरतान सिंह के साथ केवल एक सौ अस्सी सैनिक थे। तोपों के द्वारा गोलों की वर्षा होने पर सुरतान सिंह ने अपने सैनिकों के साथ तलवार लेकर मानसिंह की सेना का सामना किया। उसने और उसके साथ के शूरवीर सैनिकों ने मानसिंह के सैकड़ों आदमियों को काट-काट कर फेंक दिया और अंत में उन सभी ने अपने प्राण दे दिये। सुरतान सिंह के कुछ इने-गिने सैनिक वच गये और वे सुरतान सिंह के परिवार के लोगों को लेकर नीमाज की तरफ भाग गये।

सालिमसिंह की भी इसी प्रकार हत्या करने का इरादा मानसिंह ने किया था। परन्तु सुरतान सिंह पर अनायास आक्रमण करके वह कुछ ऐसा हताश हो गया जिससे वह सालिम सिंह पर आक्रमण न कर सका। सालिम सिंह किसी प्रकार जोधपुर से निकल कर मारवाड़ चला गया। इसके बाद फतहराज को बुलाकर मानसिंह ने राज्य का दीवान बना दिया। फतहराज स्वर्गीय इन्दराज का भाई था और वह राजा मानसिंह का प्रिय हो रहा था।

राजा मानसिंह ने अखयचन्द और उसके सहायक लोगों से जो एक बहुत बड़ी सम्पत्ति वसूल की थी उससे वैतनिक सेना का बकाया वेतन अदा किया। अखयचन्द के मारे जाने से साथ-साथ राज्य के दूसरे सामन्त बहुत भयभीत हो उठे थे। उस समय उन लोगों ने निश्चित रूप से संगठन करके राजा मानसिंह पर आक्रमण किया होता, लेकिन मारवाड़ में यह अफवाह जोरों के साथ फैल चुकी थी कि राजा मानसिंह ने राज्य में शान्ति कायम करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी से अंग्रेजी सेना की सहायता माँगी है और वह सेना किसी भी समय जोधपुर में आकर मानसिंह के आदेश का पालन कर सकती है। केवल इस भय से राज्य के असंतुष्ट सामन्तों ने मानसिंह के विरुद्ध कुछ करने का साहस नहीं किया।

नीमाज के सामन्त सुरतानसिंह के राजधानी में मारे जाने पर नीमाज के कुछ सैनिक सुरतान सिंह के परिवार को लेकर नीमाज चले गये थे। उस परिवार में सुरतान सिंह का एक छोटा सा बालक था। उसको खत्म करने के लिए मानसिंह ने अपनी एक सेना नीमाज पर आक्रमण करने के लिए भेजी।

उस सेना का सामना करने के लिए नीमाज के समस्त निवासी तैयार हो गये। उस दशा में राज मानसिंह के हस्ताक्षरों का एक पत्र सुरतान सिंह के बालक के नाम दिया गया। उस पत्र में लिखा था कि सुरतान सिंह के अपराध को क्षमा करके नीमाज का राज्य तुमको दे दिया जायेगा। उसे लेने के लिए राज दरबार में तुम्हारा आना आवश्यक है।

सुरतान के पुत्र ने मानसिंह के इस पत्र का विश्वास नहीं किया। उस समय जो सेना जोधपुर से नीमाज पर आक्रमण करने के लिए आयी थी, उसके सेनापति ने सुरतान सिंह के लड़के को विश्वास दिलाया और कहा –"राजा मानसिंह के पत्र की सच्चाई का उत्तरदायी मैं हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि राजा मानसिंह ने इस पत्र में जो लिखा है, उसका पालन मैं करूँगा।"

सुरतान सिंह के लड़के ने उस सेनापति की बात का विश्वास कर लिया और अपने दुर्ग से निकलकर मानसिंह के शिविर में पहुँचा उसके पहुँचते ही पत्र के विरुद्ध उसके साथ कार्यवाही की गयी। एक अन्य राज पुरुष ने अपने साथ का आज्ञा-पत्र देकर उस लड़के से कहा :-"महाराज ने आपको कैद करके राज दरबार में लाने का आदेश दिया है।"

यह राजपुरुष उस सेना का सेनापति नहीं था, जो नीमाज पर आक्रमण करने के लिए गयी थी और मानसिंह के पत्र पर विश्वास दिलाकर जिसने नीमाज के राजकुमार उस बालक को आत्म समर्पण करने के लिए तैयार किया था। उस सेनापति ने राजा के आदेश को पढ़ कर कहा - "मुझे राजा के इस आदेश पर आश्चर्य हो रहा है। इसके पहले नीमाज में बालक राजकुमार को बुलाने के लिए जो पत्र दिया गया था, वह कुछ और था और यह कुछ और है। यह बालक मेरे विश्वास दिलाने पर यहाँ आया है। इसलिए मैं इसके साथ विश्वासघात न करूँगा।"

यह कह कर वह सेनापति अपने साथ उस बालक को लेकर अरावली पहाड़ पर चला गया और उसने उसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ से वह बालक सुरक्षित मेवाड़ चला गया।

राजा मानसिंह ने राज्य के सामन्तों को शक्तिहीन बनाने के लिए जो कुछ किया और जिस प्रकार के उपायों का आश्रय लिया, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। निरंकुश सामन्तों ने मानसिंह के इन कार्यों और व्यवहारों को समझते और जानते हुए भी विरोध करने का साहस न किया। उनको मालूम था कि ईस्ट इंडिया कंपनी की अंग्रेजी सेना किसी भी समय राज्य में आकर हम लोगों का विध्वंस और विनाश कर सकती है।

मारवाड़ के सामन्त मानसिंह के अत्याचारों से कुछ महीनों में इतने भयभीत हो उठे कि वे मारवाड़ छोड़कर अन्यत्र भाग जाने का इरादा करने लगे। उनके सामने इस समय अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय न था। इसलिए विवश होकर उन लोगों ने मारवाड़ राज्य छोड़ दिया और वे उसके पड़ौसी राज्यों में अपने परिवारों को लेकर चले गये।

राजा मानसिंह ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ सम्बंध जोड़कर सभी प्रकार का लाभ उठाया। उसने विरोधी सामन्तों को राज्य से निकाल देने में सफलता पायी। उसने राज्य की भयानक अराजकता में शांति कायम करने के लिए वह कार्य किया, जो उसके पूर्ववर्ती राजाओं में किसी के द्वारा न हो सकता था।

मारवाड़ के सामन्त अपने राज्य को छोड़कर कोटा, मेवाड़, बीकानेर और जयपुर में जाकर रहने लगे। राजा मानसिंह ने सामन्त ओनाड सिंह के साथ भी अपनी सहानुभूति और उदारता का प्रदर्शन न किया, जिसकी अनेक सहायतायें मानसिंह को मिली थीं। उसने उन सभी उपकारों को भुला दिया, जिसके द्वारा भयानक विपदाओं के समय उसके प्राणों की रक्षा हुई थी। अनाड़ सिंह ने मानसिंह की भीषण आर्थिक कठिनाइयों में अपनी स्त्री के आभूषणों को बेच कर सहायता की थी और उसने उस सहायता के समय अपनी स्त्री की नाक की नथ भी बेच डाली थी, जिसका उतारना राजस्थान के राजपूतों में अपशकुन माना जाता था। जिस समय पाली में मानसिंह पर शत्रुओं ने भयानक आक्रमण किया था और मानसिंह बिना घोड़े के पैदल था, उस समय अनाड़ सिंह ने बड़े साहस के साथ अपने घोड़े पर मानसिंह को बिठा कर वहाँ से भगाकर उसके प्राणों की रक्षा की थी। जिस समय मारवाड़ के सामन्तों ने मानसिंह का पक्ष छोड़कर धौकलसिंह के पक्ष का साथ दिया था और जयपुर की सेना के साथ अनेक सेनाओं ने मानसिंह पर आक्रमण किया था, उस समय राज्य के केवल चार सामन्तों ने मानसिंह का साथ दिया था और उन चार सामन्तों में अनाड़ सिंह प्रमुख था।

जिस समय जयपुर का राजा जगतसिंह जोधपुर और मारवाड़ के नगरों को लूटकर अपनी सेना के साथ जयपुर जा रहा था, उस समय इन्हीं चार सामन्तों ने आक्रमण करके मारवाड़ की लूटी हुई सम्पत्ति को जयपुर की सेना से छीन लिया था। छत्रसिंह की मृत्यु हो जाने पर जिन सामन्तों ने मानसिंह को फिर से राज सिंहासन पर लाने के लिए चेष्टा की थी, उनमें ओनाड सिंह प्रधान था। इस प्रकार अनाड़ सिंह के न जाने कितने उपकारों का भार मानसिंह के सिर पर था, परन्तु उसने सबको एक साथ भुला दिया।

मारवाड़ के जो सामन्त राज्य छोड़कर चले गये थे, उन्होंने जब कोई दूसरा रास्ता न देखा तो सन् 1821 ईसवी में ईस्ट इंडिया कंपनी के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा और उसमें उन्होंने अपने और राजा मानसिंह के बीच मध्यस्थ बन कर निर्णय करने का प्रस्ताव किया। इस प्रार्थना-पत्र को भेजने के बाद एक वर्ष बीत गया। परन्तु कंपनी की तरफ से न तो उसका कोई उत्तर दिया गया और न कोई कार्य किया गया। इस दशा में उन सामन्तों ने अपनी परिस्थितियाँ मेरे सामने रखीं। उसके बाद मैंने उनको कम्पनी की तरफ से संतोषजनक मध्यस्थता स्वीकार करने के लिए जवाब दिलवाया। उसमें यह भी लिखा गया कि यदि समय पर कंपनी ऐसा न करे तो आप लोग अपने अधिकारों का निर्णय कर सकते हैं।

सन् 1823 ईसवी तक मारवाड़ की राजनैतिक परिस्थिति इसी प्रकार चलती रही। इन दिनों में राजा मानसिंह ने बुद्धिमानी से काम लेकर राज्य में शाँति कायम करने का प्रयत्न किया होता तो मारवाड़ से सामन्तों के बाहर जाने की नौबत न आती और राज्य में जो अराजकता पैदा हो गयी थी, वह बिल्कुल दूर हो जाती। लेकिन राजा मानसिंह ने बुद्धिमानी से काम नहीं लिया।

मारवाड़ राज्य के शासन की आलोचना करते हुए इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि इस राज्य के राठौड़ों और सामन्तों ने आवश्यकता पड़ने पर अपने जीवन के जो बलिदान किये थे और जो राज्य के गौरव की रक्षा की थी वह सर्वथा प्रशंसनीय है। यदि राजस्थान के राजपूतों में आपसी फूट न होती और उसके कारण उन्होंने एक, दूसरे को मिटाने की कोशिश न की होती तो जिन बाहरी जातियों ने उनके राज्य में आकर भयानक अत्याचार किये और लूटकर उन राज्यों का विध्वंस और विनाश किया, उनकी नौबत न आती।

राजस्थान के राज्यों के पतन के दिनों में राजपूतों ने ईस्ट इंडिया कंपनी का आश्रय लिया और कंपनी ने राजपूतों को संगठित होकर अत्याचारियों का सामना करने के लिए तैयार किया, उस समय बाहरी जातियों के अत्याचार और आक्रमण एक साथ खत्म हो गये। क्या हम पूछ सकते हैं कि आज आक्रमण और अत्याचार करने वाले गजनी, गिलजई, लोदी, पठान, तैमूर और मराठा कहाँ हैं? राजपूतों के आपसी विद्रोह के कारण इन बाहरी जातियों को आक्रमण और अत्याचार करने का अवसर मिला था। इन जातियों ने संगठित होकर राजपूतों पर इसलिए आक्रमण किये थे कि ये लोग आपस में लड़कर न केवल निर्बल हो गये थे, बल्कि आपसी द्वेष के कारण वे स्वयं एक दूसरे को मिटाने में लगे थे। पतन की इस अंतिम अवस्था में राजपूतों ने अंग्रेजों के साथ मित्रता की और अंग्रेजों ने सहायता करके उनको जिंदगी के सही रास्ते पर ले जाने की चेष्टा की। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों को लूटकर और उनका संहार करके जो जातियाँ राजस्थान को नष्ट करने में लगी हुई थीं, उनके साहस छूट गये।

राजपूतों के साथ कंपनी की जो संधि हुई है, उसमें पूर्ण रूप से न्याय से काम लिया गया है और राजपूतों के अधिकारों की रक्षा की गयी है। अंग्रेज कंपनी ने दलित और

पीड़ित राजपूतों की राजनैतिक अवस्था को बदलने के लिए पूरे तौर पर कोशिश की है और कंपनी का भीतरी अभिप्राय यह है कि जो राजपूत इस प्रकार निर्वल वना दिये गये हैं, वे फिर से शक्तिशाली हो सकें, उनकी इसी शक्ति पर उनके राज्यों में शांति कायम होने की संभावना हो सकती है।

मारवाड़ की वर्तमान राजनीतिक दुरवस्था में ईडर राज्य के स्वर्गीय राजा जोधा के एक वंशधर को यहाँ के सिंहासन पर विठा देना हमको वहुत आवश्यक मालूम होता है। इस समय वड़ी वुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम लेने की आवश्यकता है। राज्य के सामन्तों ने राज्य छोड़ दिया है। उनके प्रति वर्तमान अवहेलना अच्छा परिणाम नहीं पैदा कर सकती। सामन्तों ने ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने मामलों में मध्यस्थ वनाने की प्रार्थना की है। हमारी समझ में मानसिंह और सामन्तों का मामला सुलझ जाना आवश्यक है। यदि ऐसा न किया गया तो भविष्य भयानक हो सकता है।

हमने मारवाड़ की वर्तमान परिस्थितियों को सभी प्रकार समझने की चेष्टा की है। अंग्रेजों के हृदय में राजपूतों के प्रति सहानुभूति है। किसी भी दशा में मारवाड़ की परिस्थितियाँ बदलनी चाहिये और राजपूतों को एक होकर उत्थान के मार्ग में आगे वढ़ना चाहिये।

जोधपुर के राज सिंहासन पर यदि ईडर का राजकुमार बिठाया जा सके तो विना किसी संदेह के वर्तमान संघर्षों का अंत हो जायेगा। अगर सभी राठौड़ मिलकर और एक स्थान पर बैठ कर इस प्रश्न का निर्णय करें तो निश्चित रूप से ईडर के राजकुमार को सिंहासन पर वैठाने के पक्ष में राठौड़ों का वहुमत रहेगा। अगर ऐसा किया जा सके तो मारवाड़ राज्य का भविष्य उज्ज्वल वन सकता है। इस राज्य में शांति कायम हो सकती है और ईस्ट इंडिया कंपनी को इस राज्य के सम्वंध में जो चिंता हो रही है, वह मिट सकती है।

☐

अध्याय–46
मारवाड़ क्षेत्र का सामान्य वर्णन

मारवाड़ की राजधानी जोधपुर पश्चिम में गिराप और पूर्व की ओर अरावली पहाड़ के शिखर पर श्यामगढ़ के वीच में है। इस राज्य की लंवाई पश्चिम से पूर्व तक दो सौ सत्तर मील है। सिरोही की सीमा से मारवाड़ की उत्तरी सीमा तक इस राज्य के जितने भी नगर हैं, वे सभी वड़े हैं। जिसकी लंवाई दो सौ वीस मील है। डीडवाना और जालौर के उत्तर पूर्व से साँचोर की सीमा के दक्षिण पश्चिमी कोने तक साढ़े तीन सौ मील की लंवाई है।

लूनी नदी ने मारवाड़ के नगरों की अवस्थाओं में परिवर्तन कर दिया है। यह लूनी नदी मारवाड़ की पूर्वी सीमा के पुष्कर से निकलकर, पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है और उसके द्वारा राज्य के दो भाग हो जाते हैं। एक भाग उपजाऊ और दूसरा भाग अनुपजाऊ हो जाता है। इसी नदी के कारण दक्षिणी किनारे से अरावली पर्वत के ऊपर तक के सभी ग्राम और नगर सम्पत्तिशाली वन गये हैं। डीडवाना, नागौर, मेड़ता, जोधपुर, पाली, सोजत, गोडवाड, सिवाना, जालौर, भीनमाल और साँचोर नगरों में अधिकांश भूमि उपजाऊ है। उनमें रहने वालों की संख्या अधिक है और इन नगरों के निवासी एक वर्ग मील में अस्सी मनुष्यों की संख्या में रहा करते हैं। मारवाड़ की जनसंख्या का अनुमान वीस लाख है।

मारवाड़ में जाट लोगों की संख्या प्रत्येक आठ में पाँच है, राजपूतों की दो है। शेष लोगों में ब्राह्मण, व्यवसायी और दूसरे लोग हैं। इस हिसाव से मारवाड़ में राजपूतों की संख्या पाँच लाख है और उनमें पचास हजार सैनिक राजपूत हैं। यहाँ की छत्तीस जातियों के राजपूतों में राठौड़ों ने अधिक सम्मान प्राप्त किया है। यद्यपि अफीम का सेवन करने के कारण इन राजपूतों ने अपने गौरव को वहुत कुछ नष्ट कर दिया है, फिर भी मुगलों के शासन काल में राठौड़ों को अधिक सम्मान मिला था।

मारवाड़ के राठौड़ों में स्वाभिमान था और उसी के कारण आक्रमणकारियों ने उन पर अधिक अत्याचार किये थे। औरंगजेव स्वयं इन स्वाभिमानी राजपूतों से अधिक ईर्ष्या करता था। राजा मानसिंह के समय राठौड़ों की शक्तियों का विनाश हुआ। उस समय उनकी संख्या भी वहुत कम हो गयी थी। लगातार आक्रमणों और अत्याचारों में पड़े रहने के कारण राठौड़ों के नैतिक जीवन को वहुत अधिक आघात पहुँचा। इसके पहले इस वंश के राठौड़ अपने ऊँचे चरित्र के लिए वहुत प्रसिद्ध थे। इन राजपूतों में संगठन की शक्ति थी और आवश्यकता पड़ने पर जातीय गौरव के लिए वे हँस हँसकर वलिदान होते थे परन्तु विनाश और विध्वंस के दिनों में उनकी ये शक्तियाँ क्षीण पड़ गयी थीं और इसीलिए

मारवाड़ राज्य में शासन और राज्य की रक्षा के लिये वैतनिक सेना रखनी पड़ी थी। इस देश में राठौड़ राजपूत अधिक साहसी और शूरवीर माने जाते थे।

मारवाड़ राज्य के कई नगरों में घोड़ों का मेला लगता था। बालोतरा और पुष्कर के मेले में कच्छ, काठियावाड़, मुलतान और अन्य दूरवर्ती स्थानों से उत्तम श्रेणी के घोड़े बिकने के लिए आते थे। मारवाड़ की पश्चिमी सीमा के लूनी नदी के किनारे बसने वाले ग्रामों और नगरों में वहुत अच्छे घोड़े पाये जाते थे। उनमें राडधरा के घोड़े सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। परन्तु पिछले वीस वर्षों से इस राज्य की राजनीतिक परिस्थितियाँ वहुत वदल गयी हैं। अन्य व्यवसायों के साथ-साथ घोड़ों का व्यंवसाय भी वहुत निर्वल पड़ गया है। इसलिए घोड़ों की संख्या में अव वहुत कमी हो गयी है। सिंध नदी के पश्चिमी भाग से जो घोड़े पहले आते थे, उनमें अव वहुत कमी हो गयी है। लूट-मार के दिनों में सैनिकों को घोड़ों की अधिक आवश्यकता रहती थी इसलिए वे अधिक संख्या में बिकने के लिए वाहर से आते थे और वे खरीदे जाते थे। इन दिनों में मारवाड़ की राजनीतिक परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गयी हैं। यहाँ पर अव कोई वाहरी आक्रमण नहीं होता। लूटमार भी बिल्कुल बन्द हो गयी है। इसलिए घोड़ों की आवश्यकतायें भी पहले की सी नहीं रह गयीं।

आक्रमणकारियों के भयानक अत्याचारों के समय जो राठौर सेना युद्ध करती थी, उसमें चार हजार राठौड़ सैनिक सवार होते थे। सैनिक सवारों की संख्या चम्पावत वंश के राजपूतों में अधिक थी। परन्तु मारवाड़ की दुरवस्था के दिनों में उनकी संख्या अधिक नहीं पायी गयी। उन दिनों में राठौड़ों के मुकावले में चम्पावत राजपूतों ने अपनी राजभक्ति का अधिक परिचय नहीं दिया। राठौरों की सेना के प्रत्येक सैनिक को जो भूमि वेतन के स्थान पर दी जाती थी, उसकी आमदनी पाँच सौ रुपये वार्षिक की होती थी।

मिट्टी—मारवाड़ में जहाँ खेती होती है, वहाँ की मिट्टी चार तरह की पायी जाती है। वैकलू, चिकनी, पीली और सफेद। वैकलू मिट्टी राज्य के अधिकांश भागों में पायी जाती है। इस मिट्टी में रेत का भाग अधिक रहता है। इसमें केवल वाजरा, मूँग, मटर, तिल और ज्वार आदि अनाजों की पैदावार होती है। इसमें खरवूजा भी पैदा होता है। चिकनी मिट्टी का रंग काला होता है। यह मिट्टी डीडवाना, मेड़ता, पाली और गोडवाड में पायी जाती है। इस मिट्टी में गेहूँ और इस श्रेणी के दूसरे अनाज पैदा होते हैं। पीली मिट्टी का रंग हल्दी की तरह है। इसमें वालू मिला हुआ है। यह मिट्टी बनसर, जोधपुर, जालौर, वालोतरा और कुछ अन्य स्थानों में पायी जाती है। इस मिट्टी में जौ, कोकना, गेहूँ, तम्वाकू, प्याज और कई प्रकार के शाक पैदा हाते हैं। सफेद रंग की मिट्टी में खेती नहीं होती। अधिक वर्षा के वाद कुछ थोड़ी पैदावार हो जाती है। लेकिन उसी दशा में, जब वर्षा बहुत अधिक होती है, बाजरा भी वहुत कम होता है।

लूनी नदी के दक्षिणी किनारे पाली, सोजत और गोडवाड आदि स्थानों की मिट्टी नदियों के प्रवाह के द्वारा पहाड़ के ऊपर से वहकर आती है। यह मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है। उस मिट्टी में वाजारे के सिवा सभी प्रकार के अनाज अधिक पैदा होते हैं। नागौर और मेड़ता में कुओं के जल से खेती होती है और उसमें अच्छी श्रेणी के अनाज पैदा होते हैं। पश्चिमी भाग में ग्रामों और नगरों की संख्या पाँच सौ दस है। जालौर, साँचोर और भीनमाल के विशाल नगरों की विस्तृत भूमि का अधिकारी राजा होता है। वहाँ की मिट्टी उपज के लिये सबसे अच्छी समझी जाती है। यहाँ की मिट्टी नदियों के द्वारा पहाड़ों से वहकर आयी है और इसलिए वह अधिक उपजाऊ हो गयी है। वहाँ की भूमि में बहुत अच्छी पैदावार हुआ करती थी। लेकिन राजा मानसिंह के शासनकाल में वह उपज घटकर एक तिहाई भी न रह गयी थी। इस भूमि के नगर और ग्राम अधिक उपजाऊ होने के कारण

अधिक सम्पन्न रहते थे। इसीलिए आक्रमणकारियों की लूट इन स्थानों पर अधिक हुआ करती थी। अच्छी मिट्टी होने के कारण इन नगरों की भूमि सबसे अधिक उपजाऊ थी और वहाँ पर गेहूँ, जौ, धान, ज्वार, मूंग और तिल अधिक पैदा होता था। रेतीली भूमि में केवल बाजरा, मूंग और तिल की पैदावार होती है।

इस राज्य में अनाजों की पैदावार इतनी अधिक होती थी कि जिससे कभी दुर्भिक्ष का भय न रहता था और अनाज के अभाव में वह राज्य के एक स्थान से दूसरे स्थान में आसानी से पहुँचाया जाता था। नागौर राज्य में पाँच सौ छः नगर और ग्राम हैं। उनका अधिकारी मारवाड़ का राजकुमार होता है। यह राज्य अनेक प्रकार की सुविधाओं के लिए श्रेष्ठ माना जाता था। खेती के लिए वहाँ पर कुओं की संख्या बहुत अधिक थी और वहाँ के कृषक अपनी खेती में कुओं के द्वारा अधिक लाभ उठाते थे।

मारवाड़ की खानें – इस राज्य में अनाजों की पैदावार की अपेक्षा खनिज पदार्थों की पैदावार अधिक होती थी और ये पदार्थ भारत के प्रत्येक भाग में इस राज्य से पहुँचते थे। पंचभद्रा, डीडवाना और साँभर से पैदा होने वाला नमक इस राज्य की आमदनी का सदा विशेष साधन रहा था। यह नमक इस राज्य में तैयार होकर देश के समस्त बाजारों में पहुँचता है।

मारवाड़ के पूर्व में मकराना नामक एक स्थान है। वहाँ पर संगमरमर की खान थी और उन खान से निकले हुए पत्थरों के द्वारा इस देश की सभी प्रसिद्ध इमारतें किसी समय में बनी थीं। मुगलों के शासनकाल में इस खान निकले हुए कीमती पत्थर राज महलों में लगाये गये थे। दिल्ली और आगरा के सभी प्रसिद्ध मकानों, राजप्रासादों, शिवालयों, मस्जिदों और दूसरी इमारतों में यहाँ के संगमरमर को लगाकर उनकी ख्याति की वृद्धि की गयी है।

मारवाड़ के राज्य में खनिज पदार्थों के द्वारा होने वाली आमदनी राज्य की प्रधान आमदनी थी। जोधपुर और नागौर के पास श्वेत पत्थर की खानें थी। सोजत में टीन और सीसे की खान थी। पाली में फिटकरी तथा भीनमाल और गुजरात के करीब लोहे की खानें थीं। इन खानों से जो पैदावार होती थी, उनसे किसी समय मारवाड़ राज्य को धन की अपरिमित आमदनी होती थी।

शिल्पकला– यह राज्य शिल्प में कभी श्रेष्ठ नहीं रहा। यहाँ पर सूत के मोटे कपड़े और कम्बल तैयार किये जाते थे, जो इसी देश में खप जाते थे। बन्दूक, तलवार और युद्ध के दूसरे अस्त्र-शस्त्र जोधपुर की राजधानी में और पाली में बनते थे। पाली के बने हुए लोहे के सन्दूक बहुत प्रसिद्ध माने जाते थे। लोहे की कढ़ाइयाँ और कढ़ाह यहाँ पर बहुत मजबूत और टिकाऊ बनते थे।

व्यवसाय के सबसे प्रसिद्ध स्थान – राजपूत राज्यों में सर्वत्र व्यावसायिक स्थान पाये जाते थे। मेवाड़ में भीलवाड़ा, बीकानेर में चूरू और जयपुर में मालपुर वाणिज्य के लिए बहुत प्रसिद्ध माना जाता था। ठीक इसी प्रकार मारवाड़ में पाली नगर बहुत प्रसिद्ध व्यावसायिक स्थान था और राजस्थान में सबसे अधिक प्रसिद्ध माना जाता था। उन दिनों में भारतीय व्यवसायी नब्बे प्रतिशत से भी अधिक जैन धर्मावलंबी थे। खेतरी नामक नगर के व्यवसायी हजारों की संख्या में व्यवसाय के लिए इस देश के दूसरे प्रांतों में जाते थे। ओसिया नामक स्थान में जो व्यवसायी रहते थे, वे ओसवाल के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी संख्या लगभग एक लाख थी। वे सभी राजपूत वंशों में उत्पन्न हुए थे और व्यवसाय करने के कारण वे वैश्यों में प्रसिद्ध हो गये।

जैनियों की प्रथा के अनुसार पिता की सम्पत्ति सभी लड़कों में वरावर-वरावर वाँटी जाती है। लेकिन मध्य एशिया में जिट जाति और केल्टर के जूट लोगों में सवसे छोटे लड़के को दुगुना हिस्सा दिया जाता है। यदि पिता के जीवन काल में सम्पत्ति का वेटों में वँटवारा होता है तो लड़कों के साथ पिता को मिला कर सवके भाग वरावर-वरावर कर लिए जाते हैं और एक-एक भाग उनमें से सव कोई ले लेता है। पिता के मर जाने पर उसका भाग सवसे छोटे लड़के को मिलता है। अपनी संपत्ति का वँटवारा करके पिता प्रायः अपने छोटे पुत्र के साथ रहा करता है। संसार में व्यवसाय करने वाली जातियों की एक वहुत वड़ी संख्या है और वे विभिन्न जातियों के नाम से विख्यात हैं। एक जैन पुरोहित ने व्यासयिक जातियों की तालिका तैयार करने की चेष्टा की थी, यद्यपि उसका वह कार्य पूरा न हो सका। अपनी उस तालिका में जैन पुरोहित ने व्यावसाय करने वाली अठारह सौ जातियों का नाम और परिचय दिया था। इसके वाद डेढ़ सौ व्यावसायिक जातियों के नाम उसको अपने एक जैन मित्र से जो किसी दूर देश में रहता था, और मिले। इसलिए जो तालिका तैयार करने की कोशिश की गई थी, उसे उसने अधूरा ही छोड़ दिया।

पाली राजस्थान का ही नहीं, भारतवर्ष का सवसे वड़ा व्यावसायिक नगर उन दिनों में था। वहाँ पर देश के विभिन्त प्रांतों के अतिरिक्त काश्मीर और चीन की वनी हुई वहुत-सी चीजें विकने के लिए आती थीं और उसके वदले में वहाँ के लोग इस देश की वहुत-सी चीजें ले जाते थे जो यूरोप, अफ्रीका, फारस और दूसरे देशों के वाजारों में जाकर विका करती थीं। कच्छ और गुजरात से हाथी दाँत, नावा, खजूर, गोंद, सुहागा, नारियल, रेशमी और वनात के कपड़े, पशमीना के वस्त्र, चन्दन की लकड़ी, कपूर, रंग विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, काफी, मसाले, गंधक आदि वहुत-सी चीजें छकड़ो में भरकर पाली नगर में आती थीं और उन सव के वदले में यहाँ से छींट के वस्त्र, सूखे फल, जीरा, मुलतानी, हींग, चीनी, सोडा, अफीम, प्रसिद्ध तैयार किये हुए वस्त्र, लवण, शालें, रंगीन कम्वल और विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के साथ-साथ और भी वहुत-सी चीजें वहाँ भेजी जाती थीं।

सुईवाह, साँचौर, भीनमाल और जालौर होकर छकड़ों में भरा हुआ माल पाली आता था। यहाँ पर दूर-दूर के व्यवसायी एकत्रित होते थे। पाली की वह अवस्था अव नहीं रह गयी। उसका व्यावसायिक गौरव वहुत समय पहले से निर्वल पड़ रहा था। लेकिन वीस वर्ष पहले वहाँ का वढ़ा हुआ व्यवसाय एक साथ खत्म हो गया था। इसका कारण उन दिनों में लगातार होने वाली लूट-मार थी।

मारवाड़ के मेले–इस राज्य में वर्ष में दो मेले हुआ करते थे। एक तो मूँडवा नामक स्थान में और दूसरा वालोतरा में। मूँडवा के मेले में हाथी, घोड़े और कई दूसरे पशुओं का व्यवसाय होता था। इस मेले में भारत के अन्यान्य नगरों से विकने के लिये वने हुये पदार्थ आते थे और यह मेला माघ महीने के पहले दिन से आरंभ होता था और छः सप्ताह तक वरावर चलता था। उन दिनों में वहाँ वहुत भीड़ होती थी। वालोतरा के मेले में भी घोड़ों, हाथियों और दूसरे पशुओं का क्रय-विक्रय होता था। लेकिन उनकी अपेक्षा दूसरी चीजों के व्यवसाय यहाँ पर मेले के दिनों में अधिक होते थे। देश के लगभग सभी नगरों के लोग यहाँ के मेले को देखने के लिए आते थे।

मारवाड़ के पतन के साथ-साथ इन मेलों का भी पतन हो गया। विदेशी आक्रमण और अत्याचार राज्य में जितने ही वढ़ते गये, व्यावसायिक नगरों का उतना ही पतन होता गया। मूँडवा और वालोतरा के प्रसिद्ध मेलों की भी यही अवस्था हुई।

मारवाड़ में अपराध और न्याय– इस राज्य में राजनैतिक पतन के साथ-साथ अपराधों के प्रति न्याय का कार्य बहुत शिथिल पड़ गया था। राजद्रोह अथवा राजनैतिक अपराध को तो अपराध समझा जाता था और अपराधी को प्राण दंड दिया जाता था। परन्तु दूसरे अपराधों के प्रति दंड देने की व्यवस्था बहुत निर्बल पड़ गयी थी। यदि कोई मनुष्य किसी मनुष्य को मार डालता तो उसे साधारण दंड दिया जाता था। उसे कुछ दिनों के लिए कारागार में रखा जाता अथवा आर्थिक दंड देकर उसे छोड़ दिया जाता था। कभी-कभी इस प्रकार के अपराधी को राज्य से निकल जाने का आदेश होता था।

चोरी और इस प्रकार के अपराधों को साधारण दृष्टि से देखा जाता था। उसको कुछ आर्थिक दंड देकर अथवा कारागार में कुछ दिनों तक रखकर छोड़ दिया जाता था। इस प्रकार के जिस अपराधी को कारागार में रखते थे, उसके भोजन और वस्त्रों का खर्च चोर की सम्पत्ति से वसूल किया जाता था। यदि उससे यह खर्च वसूल न हो सकता था तो उसको अधिक दिनों का कारावास दंड मिलता था। इन दिनों में राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गयी थी, इसीलिए अपराधियों को प्रायः आर्थिक दंड दिया जाता था।

राजा विजय सिंह की मृत्यु के बाद राज्य में न्याय का कार्य इतना शिथिल पड़ गया था, जो बिलकुल नहीं के बराबर था। हालत यह हो गयी थी कि लोगों के घरों की अवस्था अधिक शोचनीय थी और कारागार में बिना किसी चिंता के अपराधियों को पेट भर भोजन मिलता था। अपराधों के बढ़ जाने का एक यह भी कारण था। राज्य की यह अवस्था भी इतनी अधिक शिथिल पड़ गयी थी कि अपराध को अपराध नहीं समझा जाता था। जो अपराधी कारागार भेज दिये जाते थे, उनको सुविधायें देने के लिए राज्य के व्यावसायिक लोग चन्दा करते थे और दान के द्वारा एकत्रित रुपये से कारागार में अपराधियों को सुविधायें पहुँचाई जाती थी। इसका कारण राज्य में और विशेष कर राज्य के व्यावसायिक समाज में जैन धर्म का प्रचार था। कारागार के अपराधियों के खाने-पीने के खर्च में राज्य की तरफ से रुपये व्यय नहीं किये जाते थे, धनिक व्यावसायी दान देकर जो सम्पत्ति इकट्ठा करते थे, उसी से अपराधियों के खाने-पीने और वस्त्रों की व्यवस्था होती थी। कभी-कभी यह भी होता था कि राज्य के खजाने से इनके लिए जो रुपये आते थे, वे कारागार के अध्यक्ष के व्यक्तिगत अधिकार में चले जाते थे और कारागार की व्यवस्था दान की सम्पत्ति के द्वारा होती थी। वर्ष के अनेक अवसरों पर समय से पूर्व अपराधियों को छोड़ दिया जाता था। सूर्यग्रहण, चन्द्र ग्रहण, राजपुत्र का जन्म, राजा का अभिषेक इत्यादि अनेक अवसर वर्ष में आया करते थे, जिनमें अपराधियों को कारागार से छोड़ दिया जाता था।

दीवानी के सभी मामलों का निर्णय पंचायत के द्वारा होता था। पंचायत के निर्णय से संतुष्ट न होने पर राजा से प्रार्थना करने का अधिकार था। इसके लिए प्रार्थी को नियम के अनुसार निश्चित रुपये राजा के यहाँ जमा कराने पड़ते थे। इस प्रकार की प्रार्थना, प्रार्थी के ग्राम का पटेल राजा के सामने उपस्थित करने का अधिकारी था। पटेल का अर्थ है राज्य की भूमि का अधिकारी छोटा अथवा बड़ा, जिसे शासन की पुरानी प्रणाली में सामन्त कहा जाता था और उस नाम को उसके बाद पटेल अथवा जमींदार कहकर सम्बोधित किया जाने लगा। उस प्रार्थना की स्वीकृति राजा के द्वारा होने पर वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों को उन ग्रामों का नाम देकर निर्णय करना पड़ता था कि वे कहाँ-किस ग्राम में अपना फिर से निर्णय कराना चाहते हैं।

जब दोनों पक्षों के द्वारा किसी एक ग्राम का निश्चय हो जाता था, तो उस ग्राम के भूमि के अधिकारी को राजा की तरफ से सूचना दी जाती थी और वह अपने ग्राम के विचारालय में बैठकर उस मामले का फिर से निर्णय करता था। उस ग्राम का निर्णायक

दोनों पक्ष के साक्षियों से शपथ लेकर साक्षी लेता था। इतिहासकार हेरोडाटस कि "मुकदमों का निर्णय करने के लिए इसी प्रकार की शपथ लेने की प्रथा सी में वहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी।"

साक्षी लोग 'गद्दी की आन' की शपथ लेते थे। राजा के नाम की शपथ लेने का अधिकार केवल राजपूतों को था। अन्य जातियों के साक्षी अपने-अपने धर्म के नाम पर शपथ लेकर साक्षी देते थे। दोनों पक्षों की पूरी वातों को सुनकर निर्णायक अपना निर्णय देता था और लिखे हुए निर्णय पर वह अपनी मुहर लगा देता था। उस निर्णय के विरुद्ध किसी पक्ष को कुछ कहने का अधिकार न होता था।

मारवाड़ में राज्य की आमदनी दो तरीकों से होती थी। एक तो कर से और दूसरी माल-गुजारी से। इसमें चार साधन प्रधान थे :–

1. खालसा अर्थात् राजा के अधिकार की भूमि का कर।
2. नमक के द्वारा होने वाली आमदनी।
3. व्यावसायिक चीजों पर लिया जाने वाला कर।
4. राज्य के अन्यान्य कर, जो हासिल के नाम से वसूल किये जाते थे।

पचास वर्ष पहले राजा विजय सिंह के शासनकाल में मारवाड़ के राज्य को सब मिला कर सोलह लाख रुपये की आमदनी होती थी और इस आमदनी का लगभग आधा भाग नमक के द्वारा आता था। लेकिन उसके बाद राज्य की यह आमदनी लगातार घटती गयी और इन दिनों में वह दस लाख रुपये से अधिक नहीं है।

सामन्तों के अधिकार में जो जागीरें हैं, उनकी आमदनी का अनुमान राज्य की आमदनी को मिलाकर पचास लाख रुपये है। परन्तु इन दिनों में इसकी आधी आमदनी के वसूल होने पर भी विश्वास करना कठिन मालूम होता है।

सामन्तों के अधिकार में जो सेनायें हैं, उनमें पैदल सेनाओं के अतिरिक्त अश्वारोही सैनिकों की संख्या पाँच हजार है। सामन्तों को वार्षिक आमदनी के एक हजार रुपये पर एक अश्वारोही और दो पैदल सैनिक रखने का अधिकार है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी सामन्त की वार्षिक आय दस हजार रुपये है तो वह दस अश्वारोही और बीस पैदल सैनिक रख सकता है। आवश्यकता के समय अपनी सेना को लेकर सामन्त को राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

राजा की सम्पूर्ण आय, जो राज्य के खजाने में रखी जाती है, उसका अनुमान दस लाख रुपये है। राज दरवार में कर्मचारियों को जो भूमि दी जाती है, उसकी मालगुजारी इसमें शामिल नहीं है।

जो मालगुजारी अथवा आमदनी प्रजा से वसूल की जाती है, वह कई तरह की है। अनाज पर जो कर वसूल होता है और जिसकी प्रथा वहुत प्राचीन काल से इस देश में चली आ रही है उसको बटाई अथवा विभाग कर कहा जाता है। कृषक जितना अनाज पैदा करता है, उसका आधा भाग वह राजा को दे देता है और आधे भाग का वह स्वयं मालिक होता है।

भारतवर्ष की यह प्रथा पुरानी है। लेकिन उसके प्राचीन नियमों में अव अंतर पड़ गया है। पहले कृषक की पैदावार का एक चौथाई अथवा छठा भाग राजा लेता था। वाकी सव अनाज का अधिकारी कृषक होता था। परन्तु अब राजा का अधिकार वढ़ गया है और वह अब कृषक की पैदावार का आधा भाग लेता है।

किसानों की भूमि की पैदावार की निगरानी राज्य के कर्मचारियों के द्वारा होती थी और उन कर्मचारियों का वेतन किसानों से वसूल किया जाता था। इसके लिए प्रत्येक कृषक को दस मन अनाज पर दो रुपये देने पड़ते थे। इस प्रकार कृषकों से वसूल करके जो रूपये एकत्रित होते थे उसमें निगरानी करने वाले कर्मचारियों और कृषकों से राजा के हिस्से का अनाज वसूल करने वालों का वेतन चुकाया जाता था। इसके बाद जो रुपये बचते थे वे ग्राम के पटेल अर्थात् राज्य की तरफ से भूमि कें अधिकारी के हिस्से में चले जाते थे, उसमें पटवारी का भी भाग रहता था।

राजा के घोड़ों और गायों आदि पशुओं के लिए प्रत्येक कृपक से एक-एक गाड़ी भूसा और ज्वार लिया जाता था। परन्तु अब उसके बदले में प्रत्येक कृपक से एक-एक रुपया लिया जाता है। दुर्भिक्ष पड़ने के वर्ष में इस रुपये के स्थान पर करबी ली जाती है। पटवारी और पटेल को कृषकों और राजा-दोनों के हिस्सों से अनाज दिये जाने का नियम था। इसके लिए अस्सी भागों में एक भाग पटवारी और पटेल का हो जाता था। इस प्रकार के बहुत-से नियम जो प्राचीन काल से अब तक इस देश में चले आ रहे थे, उनमें कुछ तो ज्यों के त्यों और कुछ परिवर्तन के साथ आज भी राजस्थान में चलते हैं और वही मारवाड़ में भी लागू हैं।

अंगकर–मारवाड़ में जितने कर प्रचलित हैं, उनमें एक अंगकर भी है। इसका अर्थ यह है कि राज्य के निवासियों की संख्या पर एक रुपया प्रत्येक प्राणी के हिसाब से जो कर लिया जाता है, वह अंगकर कहलाता है।

घासमारी कर–यह कर राज्य के पशुओं के ऊपर लगाया जाता है। इस कर को, घासमारी कर कहते हैं। प्रत्येक बकरी और भैंस पर एक आना, प्रत्येक भैंसे पर आठ आने और प्रत्येक ऊँट पर तीन रुपये के हिसाब से कर वसूल किया जाता है।

किवाड़ी कर– इस कर को द्वार कर भी कहा जा सकता है। लेकिन यह कर किवाड़ी कर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा विजय सिंह ने इस कर को प्रचलित किया था। उसके शासन के अंतिम दिनों में सभी सामन्त विद्रोही हो गये थे और वे पाली में एकत्रित होकर राजा को सिंहासन से उतारने के लिये तैयारी कर रहे थे। विजय सिंह ने वहाँ पहुँचकर उनको अपने अनुकूल बनाने की चेष्ठा की थी। परन्तु कोई परिणाम न निकला। भीमसिंह ने सिंहासन पर बैठकर विजय सिंह के आने का रास्ता बंद कर दिया था। उस समय विजय सिंह के सामने भयानक कठिनाई पैदा हो गई थी।

उस समय विजय सिंह ने एक सेना का संगठन किया और उसके खर्च के लिए उसने प्रत्येक घर से तीन रुपये वसूल किये। राजा विजय सिंह ने अपनी विपद के समय यह कर वसूल किया था। परन्तु वह स्थायी रूप से प्रचलित हो गया। कुछ समय के बाद जब राज्य में राजा मानसिंह के विरुद्ध विद्रोह पैदा हुआ और पठानों ने राजा की भूमि पर अधिकार कर लिया तो उस समय मानसिंह ने तीन रुपये के स्थान पर दस रुपये वसूल किये। इस कर के वसूल करने का तरीका यह रखा गया कि प्रत्येक नगर और ग्राम के घरों की गणना करके एक सूची तैयार की गयी और उस सूची में प्रत्येक घर की आर्थिक अवस्था का विवरण दिया गया। उस आर्थिक अवस्था के अनुसार कम अधिक प्रत्येक घर से कर वसूल किया गया। गरीब घर से दो रुपये और सम्पन्न घर से बीस रुपये वसूल किये गये।

वाणिज्य कर– मारवाड़ में वाणिज्य पर जो कर वसूल किया जाता था, उसकी सूची नीचे दी जाती है। यह कर व्यवसाय की अवस्था के अनुसार घटता-बढ़ता रहता था।

आक्रमणकारियों की लूट, उनके अत्याचार अथवा दुर्भिक्ष के समय यह कर कम कर दिया जाता था। यहाँ पर नीचे जो सूची दी गई है, वह प्राचीन ग्रंथों के आधार पर तैयार की गयी है। राज्य के उत्थान के दिनों में जो वाणिज्य कर वसूल होता था, वह इस प्रकार है :–

जोधपुर	76000 रुपये
नागौर	75000 रुपये
डीडवाना	10000 रुपये
परवतसर	44000 रुपये
मेड़ता	11000 रुपये
कोलिया	5000 रुपये
जालौर	25000 रुपये
पाली	75000 रुपये
जैसोल और वालोतरा का मेला	41000 रुपये
भीनमाल	21000 रुपये
साँचोर	6000 रुपये
फ़लोदी	41000 रुपये
कुल	**430000 रुपये**

इस कर को वसूल करने के लिए राज्य की तरफ से जो अधिकारी रखे जाते थे, उनको धानी कहा जाता था। एकत्रित कर पर प्रतिशत के हिसाब से धानी लोगों को मासिक वेंतन के रूप में मिलता था। यह कर अनाजों पर भी लिया जाता था। राज्य में जो चीजें वाहर से आती थीं, उन पर भी कर लगता था। जो अनाज राज्य से वाहर जाता था, उस पर भी कर वसूल किया जाता था।

वाणिज्य कर और भूमि की मालगुजारी पहले की अपेक्षा इधर वहुत दिनों से कम होती हुई चली आ रही है। नमक के द्वारा होने वाली आमदनी भी पहले से वहुत घट गयी है। राज्य के अच्छे दिनों में नमक के द्वारा मारवाड़ में जो आमदनी होती थी और जो राज्य के पुराने लेखों के आधार पर तैयार की गयी है, वह इस प्रकार है :–

पचपदरा	200000 रुपये
फलोदी	100000 रुपये
डीडवाना	115000 रुपये
साँभर	200000 रुपये
नाँवा	100000 रुपये
कुल	**715000 रुपये**

इस विभाग के कार्य में कितने ही हजार श्रमजीवी मनुष्य और वैल काम करते हैं। वे श्रमजीवी वनजारा नाम की जाति के होते हैं। जो नमक तैयार होता है, उसका ले जाने के लिए वहुत वड़ी संख्या में वैलों की जरूरत होती है। इसलिए जो वैल नमक ले जाने का कार्य करते हैं, उनकी संख्या लाखों में पहुँच जाती है। सिंधु नदी के तटवर्ती ग्रामों और नगरों से लेकर गंगा जी के समीपवर्ती स्थानों तक इस देश में सर्वत्र यह नमक जाता है।

यह नमक साँभर नमक के नाम से विख्यात है। यों तो जितने नमक हैं, उसमें थोड़ी-बहुत सभी में विभिन्नता रहती है। परन्तु पचपदरा का नमक सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

मारवाड़ के पुराने लेखों को देखने से मालूम होता है कि मालगुजारी के द्वारा राज्य में प्रायः तीस लाख रुपये की आमदनी होती थी। जिसका ब्योरा उन पुराने लेखों में इस प्रकार पाया जाता है :–

1	खालसा अर्थात् राजा के अधिकृत 1484 ग्रामों और नगरों की आमदनी	1500000 रुपये
2	वाणिज्य कर	430000 रुपये
3	नमक की आय	715000 रुपये
4	हासिल अर्थात् विभिन्न कर	300000 रुपये
	योग	2945000 रुपये
	सामन्तों और मंत्रियों की आय	5000000 रुपये
	कुल योग	**7945000 रुपये**

ऊपर राज्य की आमदनी का जो उल्लेख किया गया है, उससे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में मारवाड़ के राजा की अपनी और सामन्तों की आय मिला कर लगभग अस्सी लाख रुपये होती थी। इस आय का आधा भाग भी अब वसूल नहीं होता। मारवाड़ के प्राचीन मंत्रियों के वंशों में बहुत सम्पत्ति पायी जाती थी और उनके वंशज आज भी सम्पत्तिशाली माने जाते हैं।

अपनी सम्पत्ति को छिपा कर रखने की आदत इस देश के निवासियों में बहुत पुरानी है। बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति को छिपाकर रखने का सबसे पहला दुष्परिणाम यह होता है कि उसका कोई उपयोग नहीं हो पाता, जिससे वह सम्पत्ति जितनी होती है, उतनी ही रह जाती है। न तो उसमें कोई वृद्धि हो पाती है और न उसके द्वारा व्यक्तिगत अथवा देश का कोई अच्छा कार्य हो पाता है। नागौर के महलों को गिरवाने के समय राजा विजय सिंह को जमीन में गड़ी हुई बहुत बड़ी सम्पत्ति मिली थी।

मारवाड़ राज्य के सम्बंध में बहुत सी बातों का वर्णन किया जा चुका है। अब इस बात का उल्लेख करना बाकी है कि राठौर राजपूतों में युद्ध करने की शक्ति किस प्रकार थी। राज्य की आमदनी के घटने-बढ़ने के साथ-साथ उनकी सेना में समय-समय पर कमती और बढ़ती होती रही है। विद्रोही सामन्तों का दमन करने के लिए मारवाड़ के राजा को वैतनिक सेना के रखने की आवश्यकता पड़ी थी। उस सेना में जो सैनिक थे, उनमें रुहेले और अफगानी अधिक थे। वे सभी बन्दूकधारी थे। उनके साथ में तोपें भी थी। वे लोग युद्ध करने में बड़े शूरवीर थे।

कुछ दिनों के बाद मारवाड़ की वैतनिक सेना और राज्य की राठौर सेना में संघर्ष पैदा हो गया था। राजा मानसिंह के शासनकाल में वैतनिक सेना के अंतर्गत साढ़े तीन हजार पैदल और पन्द्रह सौ अश्वारोही सैनिक थे। उस सेना में पच्चीस तोपें थीं। पानीपत का रहने वाला हिन्दाल खाँ उस सेना का सेनापति था। वह विजय सिंह के समय से मारवाड़ से सम्बंध रखने लगा था। मारवाड़ के राज दरबार में उसने बड़ा सम्मान पाया था। राजा के साथ उसकी मैत्री का सम्बंध था। राजा मानसिंह काका कहकर उसको सम्बोधित करता था।

इस वैतनिक सेना के अतिरिक्त मारवाड़ में योद्धाओं का एक दूसरा दल भी था। उसका नाम था विष्णु स्वामी दल। कायमदास उस दल का सेनापति था। उस दल में सात सौ पैदल थे, तीन सौ अश्वारोही सैनिक थे और बहुत-से उसके सैनिक धनुर्धारी थे। ये धनुर्धारी धनुष वाण लेकर शत्रुओं के साथ युद्ध करते थे।

यूरोप में वारूद का आविष्कार होने के अर्ध शताब्दी पूर्व भारतवर्ष के लोग धनुष-वाण के द्वारा युद्ध करने में वहुत होशियार और शूरवीर होते थे। इस वैतनिक सेना के पहले राज्य में केवल राठौरों की सेना थी और वे राठौर युद्ध करने में बड़े वहादुर समझे जाते थे। परन्तु राजा मानसिंह के साथ राज्य के सामन्तों का जब विद्रोह पैदा हुआ था उस समय मानसिंह को सामन्तों की सेनाओं का विश्वास न रह गया था। उस दशा में राजा मानसिंह राज्य के सामन्तों का दमन करना चाहता था। इन दिनों में राज्य का नैतिक जीवन वहुत क्षीण हो गया था। लोग अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान भूल गये थे और कर्त्तव्य के अभाव में मारवाड़ के राठौर सभी प्रकार अपना विनाश स्वयं कर रहे थे। उन विद्रोह के दिनों में यह वैतनिक सेना राज्य में रखी गयी थी। उस समय के वाद राज्य का नैतिक वल भयानक रूप से नष्ट हुआ था। यह दशा लगातार वढ़ी।

उन दिनों में मेवाड़ के प्रधान सामन्तों की संख्या सोलह थी, जयपुर के सामन्तों की संख्या वारह थी। मारवाड़ में प्रथम श्रेणी के सामन्त आठ थे। उनके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी के सामन्तों की संख्या सोलह थी। इस राज्य के सामन्तों की सूची उनके पूरे विवरण के साथ नीचे दी जाती है।

प्रथम श्रेणी के सामन्त

नाम	वंश	स्थान	आमदनी	विवरण
केशरी सिंह	चम्पावत	अउवा	100000	मारवाड़ का प्रधानमंत्री।
वख्तावरसिंह	कम्पावत	आसोप	50000	
सालिम सिंह	चम्पावत	पोकरण	100000	अधिक शक्तिशाली।
सुरतान सिंह	ऊदावत	नीमाज	50000	
———	मेड़तिया	रियाँ	25000	अधिक साहसी और वीर।
अजित सिंह	मेड़तिया	वाणेराव	50000	पहले यह मेवाड़ का सामन्त था।
———	करमसोत	खोवंसर	40000	इसका स्थान पहले एक वड़ा नगर था।
———	भाटी	खेजड़ला	25000	यह दूसरे राज्य का निवासी था।

द्वितीय श्रेणी के सामन्त

नाम	वंश	स्थान	आमदनी	विवरण
शिवनाथ सिंह	ऊदावत	कुचामन	50000	शक्तिशाली सामन्त
सुरतान सिंह	जोधा	खारीकादेव	25000	
पृथ्वीसिंह	ऊदावत	चन्दावत	25000	
तेजसिंह	, , खादा	25000		
अनाड़सिंह	भाटी	आहोर	11000	राज्य से निर्वासित
जीतसिंह	कुम्पावत	बगड़ी	40000	
पदमसिंह	, , गजसिंहपुरा	25000		
———	मेड़तिया	मीटरी	40000	
कर्ण सिंह	ऊदावत	मारोत	15000	
जालिमसिंह	चम्पावत	, , 15000		
सवाईसिंह	जोधा	चापुर	15000	
, , , , बूडस्	20000			
शिवदानसिंह	चम्पावत	कांवढ (बड़ा)	40000	
जालिमसिंह	, , हरसोलाव	10000		
साँवलसिंह	, , दीगोद	10000		
हुकुमसिंह	, , कावटा (छोटा)	11000		

मारवाड़ के इन सब सामन्तों को उनकी शक्ति और योग्यता के अनुसार छोटी और बड़ी जागीरें मिली हुई हैं, उनके अधिकारी बन कर ये लोग रहते हैं और आ· ·यक· पड़ने पर राजा की आज्ञा का पालन करते हैं। इनके सिवा बाढमर, कोटडा, जस फलसूंद, वडगाँव, बाँकडा, कालिन्दरी और बरूँदा के जागीरदार भी हैं। यदि · आवश्यकता के समय उन लोगों से माँग करे तो वे भी उनकी आज्ञाओं का पालन सकते हैं। इन जागीरदारों के नाम ऊपर के जागीरदारों अथवा सामन्तों की सूची शामिल नहीं किये गये।

राज्य के जिन सामन्तों के नाम और परिचय ऊपर लिखे गये हैं, उनके अ· ·री भूमि अथवा जागीर पूर्ण रूप से सही नहीं हो सकती। इसका कारण है कि ऊपर दी सूची राज्य के बहुत पुराने लेखों से तैयार की गयी है। वे लेख जिन दिनों में लिखे · उनमें और वर्तमान दिनों में बहुत अन्तर पड़ गया है। बाहरी आक्रमणों, त्याच

आपसी फूट के कारण राज्य की सभी परिस्थितियाँ वहुत निर्वल पड़ गयी हैं। यह निर्वलता प्राचीन काल के वाद लगातार वढ़ी है। इसीलिए इस वढ़ती हुई निर्वलता में सामन्तों की परिस्थितियों का वदल जाना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। इसलिए राज्य के अधिकारी वहुत दिनों से सामन्तों के सम्वंध में एक नयी तालिका तैयार करने की आवश्यकता को अनुभव कर रहे थे। जागीरदारी प्रथा के अनुसार, राज्य में जो विधान प्राचीन काल से चला आ रहा था, उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन हो गये हैं।

अफीम का व्यवसाय

इस ग्रंथ में राजपूतों के अफीम सेवन करने का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया। इससे यह जाहिर है कि राजपूत लोग और विशेष कर राजा और नरेश अफीम का सेवन किया करते थे। यह अफीम खाने-पीने के अन्यान्य पदार्थों की भाँति उनके लिए आवश्यक हो गयी थी, जिसके द्वारा उनकी शारीरिक और नैतिक शक्ति को भयानक आघात पहुँचा था। अफीम का सेवन और व्यवसाय राजपूतों के साथ-साथ अन्य लोगों में किस प्रकार बढ़ा था, उनके ऐतिहासिक तथ्य यहाँ पर देने की हम चेष्टा करेंगे।

राजस्थान के सभी राज्यों में प्राचीन काल से अफीम के सेवन की आदतें चली आ रही थीं। इन आदतों के कारण उन राज्यों में अफीम की खपत बढ़ने लगी और उसने धीरे-धीरे एक विस्तृत व्यवसाय का रूप धारण किया। यह खपत जितनी ही बढ़ती गयी, उसके व्यवसाय में उतनी ही उन्नति होती गयी और व्यवसाय में जितनी ही वृद्धि हुई, राज्यों में उसके सेवन का उतना ही विस्तार होता गया, जिससे वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँची।

गवर्नर जनरल के एजेण्ट लेफ्टिनेन्ट कर्नल ई. आर. सी. ब्रॉडफोर्ड सी. एस. आई. ने राजस्थान में जाकर वहाँ के शासन के सम्बंध में जो विस्तृत वर्णन अंग्रेज गवर्नमेंट के पास भेजा था। उसमें उसने लिखा था :—

राजस्थान के बड़े-बड़े व्यवसायी अपने धन के प्रलोभन में अफीम के व्यवसाय को बढ़ाने में लगे हुए हैं। बड़े व्यवसायी अपने से छोटे व्यवसायियों को पहले से ही रुपये देते हैं और वे छोटे व्यवसायी महाजनों को रुपये देते हैं। महाजनों के द्वारा गाँवों के रहने वाले कृषकों को उन रुपयों से ऋण मिलता है। रुपये लेकर कृषक अफीम तैयार करते हैं और उसे महाजनों को देते हैं। ग्राम का महाजन उस अफीम को लेकर रुपया देने वाले व्यासायियों के पास पहुँचा देता है और वे व्यवसायी उस अफीम को बड़े व्यवसायियों के पास पहुँचाने का काम करते हैं। उनके द्वारा अफीम की बिक्री का कार्य राज्यों में सर्वत्र होता है। इस प्रकार अफीम के व्यवसाय में सभी राज्यों ने लगातार उन्नति की है।

अफीम का व्यवसाय जितना बढ़ता गया, सर्वसाधारण में उसके सेवन का विस्तार उतना ही अधिक होता गया। इन दिनों में अफीम की बिक्री इन राज्यों में बहुत अधिक मात्रा में होती है। कृषक अफीम की खेती करते हैं और इस व्यवसाय में तरक्की करने के लिए कुए खुदवा कर कृषकों की खूब सहायता की गयी है। इस कार्य के लिए बड़े-बड़े व्यवसायियों ने बहुत अधिक रुपया बाँटा है।

कुओं की संख्या काफी बढ़ जाने के कारण अफीम की खेती में बड़ी सहायता मिली है। इन राज्यों में अफीम की जितनी बिक्री बढ़ गयी है, उतनी ही पोस्त को डोडा बिकता है। जिन खेतों में पहले दूसरे अनाजों को पैदा करने का कार्य होता था उन सब में पोस्त का डोडा की खेती की जाती है।

इस व्यवसाय के बढ़ जाने के कारण अफीम की कीमत लगातार घटी है और उसका परिणाम यह हुआ कि गरीब से गरीब आदमी भी अब उसका सेवन करने लगा है। अच्छी अफीम रुपये के लोभ में चीन और दूसरे देशों को भेज दी जाती है। लेकिन साधारण दर्जे की अफीम यहीं पर रखकर देश में सर्वत्र उसकी बिक्री होती है। इसकी खेती में बट्टी नाम

की जो अफीम तैयार होती है, वह बहुत साधारण श्रेणी की अफीम होती है और अच्छी अफीम के मुकाबले में उसकी लगभग आधी कीमत होती है। सस्ती होने के कारण राजपूत और दूसरे लोग इसी अफीम का सेवन करते हैं। उत्तम श्रेणी की न होने के कारण इस सस्ती अफीम के सेवन से स्वास्थ्य को अधिक क्षति पहुँचती है।[1]

□

1. अफीम के व्यवसाय के सम्बन्ध में मूल लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रंथ में कुछ नहीं लिखा। सिवा इसके कि अनेक स्थलों पर राजपूतों के अफीम सेवन का उल्लेख किया हो और उसे बहुत हानिकारक समझा हो। अफीम का व्यवसाय और सेवन इन राज्यों में किस प्रकार बढ़ा है, उसको उपयोगी समझ कर यहाँ लिखा गया है।—अनुवादक

बीकानेर का इतिहास

राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना

राजस्थान के राज्यों में बीकानेर का स्थान दूसरी श्रेणी में है। यह राज्य मारवाड़ की एक शाखा है। इसके राजवंशी राठौर वंशज हैं। बीकानेर के जिस प्रथम राजा ने इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी, उसके पूर्वज राठौर वंशी थे। राठौर राजा जोधा ने प्राचीन राजधानी मन्डोर को छोड़कर जोधपुर का निर्माण किया था, इसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है।

बीका राजा जोधा का दूसरा लड़का था। नवीन राजधानी जोधपुर का निर्माण हो जाने के बाद और मन्डोर से जोधा के जोधपुर में आ जाने के पश्चात् बीका अपने चाचा काँधल के साथ मरुभूमि में अपने राज्य का विस्तार करने के लिये निकला। उसके साथ तीन सौ राठौरों की एक सेना थी। बीका के जोधपुर से निकलने के पहले उसके भाई बीदा ने मोहिलों पर आक्रमण किया और उनके राज्य को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। मोहिल लोग बहुत प्राचीन काल से अपने राज्य में रहा करते थे। बीदा की इस सफलता से बीका को प्रोत्साहन मिला। इसलिए वहाँ के दूसरे राज्यों को परास्त करके राठौरों का राज्य बढ़ाने के लिए वह जोधपुर से रवाना हुआ।

जोधपुर से रवाना होने के समय बीका ने स्वाभिमान के साथ यह प्रतिज्ञा की थी कि मरुभूमि के जिन राज्यों पर मैं आक्रमण करूँगा, उनको या तो मैं परास्त करूँगा अथवा वहीं पर मारा जाऊँगा। उसकी यह प्रतिज्ञा यहाँ के प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में हुई थी। फिर चाहे वह राज्य मित्रता रखता हो अथवा शत्रुता। इस प्रकार के आक्रमण करके दूसरे राज्यों को परास्त करना और उनको अपने राज्य में मिला लेना राजपूत लोग अपना धर्म समझते थे।

जोधपुर से रवाना होकर बीका ने जांगल नामक स्थान पर साङ्खला नाम की एक पुरानी जाति पर आक्रमण किया। उस युद्ध में राठौरों की विजय हुई। उसमें सफलता प्राप्त करने के बाद पूंगल राज्य के भाटी लोगों के साथ बीका का परिचय हुआ। पूंगल का राजा बीका के पराक्रम को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बीका के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। पूंगल के राजा को बीका से भय उत्पन्न हुआ था। इसलिए अपनी लड़की का विवाह बीका के साथ करके उसने अपने राज्य की रक्षा की।

बीका ने पूंगल के राजा के साथ सम्बन्ध जोड़कर कोड़मदेसर नाम के स्थान पर अपने रहने का निर्णय किया। उसने वहाँ पर एक दुर्ग बनवाया और वहाँ पर रह कर उसने

समीप के राज्यों पर आक्रमण करना आरम्भ किया। जो राज्य परांजत हो जाते, उन पर वह अपना अधिकार कर लेता। उसके लगातार ऐसा करने से वहाँ के सभी राज्यों में उसका आतंक पैंदा हो गया। वहाँ के छोटे-छोटे सभी राजा भयभीत हो उठे। ऐसे राज्यों को परास्त करके बीका ने अपने आपको शक्तिशाली वना लिया।

अपने अधिकार की सेना को प्रवल वनाकर और अपने राज्य का विस्तार करके वह मरुभूमि के जाटों के राज्यों की तरफ अग्रसर हुआ। जो लोग वहुत प्राचीन काल से वहाँ पर रहते आ रहे थे। वर्तमान वीकानेर राज्य का अधिकाँश भाग पहले उन्हीं के अधिकार में था।

मरुभूमि में वहुत प्राचीन काल से जाट लोग निवासी थे और प्राचीन एशिया में जितनी भी जातियाँ रहती थीं, उनमें इनकी संख्या वहुत अधिक थी। वे लोग अत्यन्त साहसी और पराक्रमी थे। वीका के आक्रमण के दिनों में उनका राजा निर्वल पड़ गया था। ईसा की चौथी शताव्दी में पंजाव में जाटों का शक्तिशाली राज्य था। भारतवर्ष में आक्रमण के समय इन्हीं जाटों ने मुसलमानों का सामना किया था। सिंधु नदी को पार करके महमूद के आगे वढ़ने पर इन्हीं जाटों ने युद्ध करके अपने राज्य की रक्षा की थी और तैमूर के आक्रमण करने पर उसके साथ इन्हीं जाटों ने भयंकर संग्राम किया था। वादशाह वावर ने लिखा है-"भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए जव मैं आया था, उस समय जाटों ने मेरे साथ युद्ध किया था। पंजाव में इस्लाम का आतंक फैलने पर जाटों ने गुरु नानक के धर्म को स्वीकार किया और वे अपना नाम जाट वदल कर सिक्ख हो गये।"

जाट जाति के लोग भारतवर्ष में आने के पहले एशिया के दूसरे भागों में रहते और जिट अथवा जट जाति के नाम से प्रसिद्ध थे। अपने प्राचीन स्थानों को छोड़कर ये लोग भारतवर्ष की मरुभूमि में कव आये, इसका कोई ऐतिहासिक आधार हमारे पास नहीं है। लेकिन यह निश्चित है कि जिन दिनों में राठौरों ने मरुभूमि के जाटों पर आक्रमण किया था, उस समय इस जाति के सामाजिक आचार और व्यवहार सीथियन लोगों के आचार-व्यवहार जैसे थे। इससे जाहिर होता है कि भारतवर्ष में आने के पहले इस जाति के लोग सीथिया में रहते थे और इनकी जाति सीथियन जाति की कोई एक शाखा थी। उन दिनों में ये लोग खेती का काम करते थे। जाट जाति के लोग प्राचीन काल में एक देवी की पूजा करते थे।

अपने प्राचीन स्थानों से भारतवर्ष में आ जाने के बाद इन जाटों पर मुस्लिम साधु शेख फकीर ने अपने धर्म का प्रभाव डाला। उस समय इनके प्राचीन धार्मिक विश्वासों में अन्तर पड़े। उनके वहुत से लोग इस्लाम की अनेक वातें मानने लगे। एक जाट ने वातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा था- "हम लोग पंजाव के वाहर रहने वाले हैं।"

भारतवर्ष में तैमूर और वावर के आक्रमण के दिनों में राठौरों ने जाटों को पराजित किया था। वीका से परास्त होने से पहले जाट लोग क़ई शताव्दियों से मरुभूमि में रहते थे। वीकानेर राज्य छः भागों में विभाजित है। वे छः भाग इस प्रकार हैं-

1. युनिया 2. गोदरा 3. सारन 4. असिघ 5. वेनीवाल 6. जोया

जाट जाति के लोग छः शाखाओं में विभाजित थे। उन्हीं के नामों से इन स्थानों के नाम प्रसिद्ध हुए थे। इन छः विभागों के सिवा वीकानेर राज्य के तीन भाग और हैं, जो वागौर, खारी पट्टा और मोहिल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वीकानेर राज्य के नौ भाग हैं।

राठौरों ने राज्य के छः भाग जाटों से छीने थे और तीन भाग दूसरे राजपूतों से। प्रत्येक भाग बीकानेर राज्य का एक जिला है। ये छः जिले जो जाटों से छीने गये थे, बीकानेर राज्य के बीच और उत्तरी भाग में हैं। शेष तीन जिले राज्य के दक्षिण और पश्चिम में हैं। उस समय के छः भाग अथवा जिले इस प्रकार हैं-

	विभाग	ग्राम	परगने
1.	पूनिया	300	भादराँ, अजितपुर, सीधमुख, राजगढ़, दारद, साँकू आदि।
2.	बेनीवाल	150	भूरवरखा, सुन्दरी, मनोहरपुर, कूई बाई आदि।
3.	जोया	600	जैतपुर, कंवानो, महाजन, पीपसर, उदयपुर आदि।
4.	असिध	150	रावतसर, विरामसर, दादूसर, गुँडइली, कोजर, फुआग आदि।
5.	सारन	300	वूचावास, सोवाई, वादनू, सिरसिला आदि।
6.	गोदारा	700	पुन्दरासर, गोसेनसर (वड़ा), शेखसर, गडसीसर, गरीबदेसर, रंगीसर, कालू आदि।
	जोड़	2200	
	शेष तीन भाग अथवा जिले		
7.	भागौर	300...	बीकानेर नगर, किला राजासर, सतासर, चतरगढ़, रिनदसिर, बीतनख, भवासीपुर, जयमलसर इत्यादि।
8.	मोहिल	140...	चौपुरा (मोहिलों की राजधानी), सावन्ता, हीरासर, गोपालपुर चारवास, बीदासर, लाडनूं, मलसीसर, खरबूजारा, कोट आदि।
9.	खारीपदा	30...	
	कुल जोड़	2670	

जोधपुर से चले जाने के वाद कुछ ही वर्षों में वीका को मरुभूमि में इतनी बड़ी सफलता मिली कि वह छब्बीस सौ सत्तर ग्रामों का राजा बन गया। उसका आतंक बढ़ जाने के कारण वहाँ के कितने ही राज्यों ने स्वयं आत्म-समर्पण कर दिया था। लेकिन मुश्किल से तीन शताब्दियाँ गुजरी होंगी कि बीकानेर राज्य के ग्रामों की संख्या बहुत कम हो गयी। वर्तमान बीकानेर के राजा सूरतसिंह के शासनकाल में वहाँ के ग्रामों की संख्या तेरह सौ से भी कम रह गयी है।

मरुभूमि में बीका के जाने और वहाँ पर अपने राज्य का विस्तार करने से पहले जो जाट और जोहिया लोग वहाँ रहते थे, वे पशुओं के पालन का व्यवसाय करते थे। वे गायों और भैंसों का घी तैयार करके वेचते थे। भेड़ों के बालों को बेचने का व्यवसाय करते थे और अपनी इन चीजों के बदले में वे गेहूँ, चावल इत्यादि खाने की चीजें लिया करते थे।

यह पहले लिखा जा चुका है कि भारतवर्ष की मरुभूमि में रहने वाले जाटों की संख्या वहुत अधिक थी। वे साहसी, लड़ाकू, शूरवीर भी थे। इस प्रकार उनके शक्तिशाली होने के वाद भी राठौरों के द्वारा आसानी से उनकी पराजय के कारण थे। समस्त जाट छः शाखाओं में विभाजित थे। इन वंशों के जाटों में आपसी फूट बहुत वढ़ गयी थी और वे स्वयं एक दूसरे के लिए घातक हो रहे थे। इन्हीं दिनों में वीका ने वहाँ के छोटे-छोटे कितने ही राज्यों को जीत कर अपना आतंक फैला दिया और उसके वाद वह जाट राज्यों की तरफ आगे वढ़ा। जाटों का प्रत्येक वंश अलग-अलग शासन करता था, उनमें आपसी फूट और द्वेष की जानकारी वीका को हो चुकी थी। इसलिए उसने उनकी फूट का सभी प्रकार से लाभ उठाया।

जाटों पर सहज ही राठौरों की सफलता का एक और भी कारण था। वीका के भाई वीदा ने पहले ही मरुभूमि के मोहिलों पर आक्रमण करके उनको पराजित किया था। मोहिलों के साथ वहुत पहले से जाटों की शत्रुता चली आ रही थी। इन मोहिलों ने मरुभूमि में आक्रमण के दिनों में वीका का साथ दिया था, उन मोहिलों के द्वारा बीका को ऐसी बहुत-सी बातों की जानकारी हुई कि जिनका लाभ उठाकर वीका ने जाटों को परास्त किया और अधिकांश जाट वंशी राज्यों ने भयभीत होकर आत्म-समर्पण किया।

वहाँ के जाट राज्यों में जैसलमेर का एक राज्य भी था। वहाँ के भाटी लोग जाटों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किया करते थे। मोहिलों और भाटी लोगों की शत्रुता के कारण भी विवश और भयभीत होकर जाटों ने बीका की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

उन्हीं दिनों में गोदारा के जाटों ने भी अपने राज्य के सम्बन्ध में निर्णय किया था। उन लोगों ने एकत्रित होकर और निर्णय करके अपने दो प्रतिनिधियों को वीका के पास भेज कर आत्म-समर्पण करने के लिए निम्नलिखित शर्तें उपस्थित कीं-

1. जोहिया और दूसरे राज्यों के जो जाट लोग हमारे साथ शत्रुता रखते हैं, उनके अत्याचारों से वीका को हमारी रक्षा करनी होगी।

2. राठौरों को ऐसा प्रवन्ध करना होगा, जिससे हमारे शत्रु भाटी लोग कभी हम लोगों पर आक्रमण नहीं कर सकें।

3. हम लोगों के व्यक्तिगत और सामाजिक स्वत्व सदा सुरक्षित रहेंगे। उनमें कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाएगा।

गोदारा के जाटों की इस प्रार्थना को बीका ने स्वीकार कर लिया। उसके बाद वहाँ के जाटों ने आत्म-समर्पण किया और वीका को अपना राजा मान लिया। वहाँ के जाटों के सम्बन्ध में निर्णय हुआ कि गोदारा के प्रत्येक घर से एक-एक रुपया कर के रूप में लिया जायेगा और वहाँ के प्रत्येक किसान से दो रुपये कर के रूप में लिए जायेंगे। गोदारा के जाटों ने इन शर्तों को स्वीकार करके राठौरों की अधीनता स्वीकार की।

गोदारा के जाटों को किसी भी अवस्था में बीका के सामने आत्म-समर्पण करना था, क्योंकि विना किसी आक्रमण और युद्ध के वहाँ के जाटों ने आत्म-समर्पण करने के लिए आपस में निश्चय कर लिया था। उनकी इस निर्वलता का बीका सभी प्रकार लाभ उठा सकता था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और उसने गोदारा के जाटों की माँग को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। राठौरों के उत्तम चरित्र का यह एक सजीव प्रमाण है।

राजपूतों में इस प्रकार के चरित्र का कभी अभाव नहीं रहा। मेवाड़ के प्राचीन निवासी भीलों ने गहलोत वंश के प्रथम राजा के सामने आत्म-समर्पण किया था और जिस प्रकार उन भीलों ने उस समय राजा को राजतिलक करके अधीनता स्वीकार की थी, उदयपुर के राणा के वंश में आज तक उन बातों को महत्त्व दिया जाता है। अब तक अभिषेक के समय मेवाड़ में ओगना भीलों का प्रतिनिधि अपने हाथ के अँगूठे को काट कर उसके रक्त से राजा के मस्तक पर तिलक करता है और वह राजा को सिंहासन पर विठाता है। उन्दरी नामक भीलों का प्रतिनिधि अपने पूर्वजों के समान अभिषेक के समय चाँदी के एक पात्र में धान, दूब और रुपये रखकर भेंट में देता है। जयपुर के प्राचीन निवासी मीणा लोग भी राजा के अभिषेक के समय कुछ इसी प्रकार की प्रणाली का अब तक अनुकरण करते हैं।

. बीका के द्वारा प्रार्थना स्वीकार करने पर गोदारा के जाटों ने आत्म-समर्पण किया था और अधीनता स्वीकार करके उनके प्रतिनिधि ने जिस प्रकार बीका के मस्तक पर राजतिलक किया था, राजा के अभिषेक के समय आज तक गोदारा के जाटों के वंशज उसी प्रकार वीकानेर में राजतिलक किया करते हैं और अभिषेक के समय सोने की पच्चीस मुद्राएं भेंट में देते हैं।

बीका में न केवल युद्ध करने की शक्ति थी, वल्कि उसमें नैतिक बल भी था। पराजित करके जिन जातियों को उसने अपने अधिकार में किया था, उनके सम्मान का वह सदा ख्याल रखता था। इसके सम्बन्ध में उसके जीवन की एक छोटी-सी किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना बहुत आवश्यक मालूम होता है। बीकानेर की राजधानी का निर्माण करने के लिए उसने जो स्थान पसन्द किया था, उसका अधिकारी एक जाट था। उस जाट से बीका ने उस स्थान की माँग की और कहा- "राजधानी बनाने के लिए यदि आप यह स्थान हमें दे देंगे तो अपने और आपके नाम को जोड़ कर मैं इस राज्य का नाम रखूँगा।" उस जाट ने हर्षपूर्वक बीका की इस माँग को स्वीकार कर लिया। इसके बाद राजधानी का निर्माण हुआ और मरुभूमि में बीका ने जिस राज्य की प्रतिष्ठा की, उसका नाम वीकानेर रखा गया। उस जाट का नाम नेरा था। बीका ने उस जाट की उदारता को निरन्तर कायम रखने के लिए अपने नाम के साथ उसके नाम को सम्मिलित करके वीकानेर नाम रखा।

कृतज्ञता मनुष्य के चरित्र का सबसे ऊँचा गुण है। किसी की सहायता और उदारता को भुला देना अथवा उसकी अवहेलना करना मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा अपराध है। इस प्रकार का अपराधी अपने जीवन में कभी उन्नति नहीं करता। अन्य गुणों के साथ-साथ बीका में कृतज्ञता का एक महान् गुण भी था और अपने इन्हीं गुणों के कारण वह बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा कर सका।

दीपावली और होली के अवसर पर शेखासर और रूणियाँ के प्रधान बीकानेर के राजा को तिलक करने के लिए आते हैं। रूणियाँ का प्रधान चाँदी के पात्र में चन्दन आदि से टीका करने की सामग्री तैयार करता है और शेखासर का प्रधान उस पात्र को अपने हाथ में लेकर राजा के मस्तक पर तिलक करता है। इसके बदले में उन प्रधानों को राजा की तरफ से सोने की मोहरें और रुपये भेंट में दिये जाते हैं।

जाटों के इन प्रधानों के द्वारा तिलक हो जाने के बाद राज्य के सामन्त लोग तिलक करते हैं। इस प्रकार की प्रथायें बीकानेर राज्य में अब तक मौजूद हैं और वे राजा के प्रति प्रजा की राजभक्ति का प्रमाण देती हैं।

गोदारा के जाटों को अधिकार में ले लेने के बाद बीका ने जोहिया राज्य को जीतकर अधिकार में करने का इरादा किया। जोहिया के साथ जाटों की पुरानी शत्रुता थी। इसलिए वीका के इस प्रकार इरादा करने पर जोहिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिए गोदारा के जाट तैयार हो गये। वीका राठौरों और जाटों की प्रवल सेना को लेकर रवाना हुआ और उसने जोहिया पर आक्रमण किया।

भारत की मरुभूमि के उत्तरी भाग में सतलज नदी तक जोहिया राज्य फैला हुआ था और उस राज्य में ग्यारह सौ नगर और ग्राम थे। यद्यपि उसके वाद उस राज्य के विस्तार में बहुत कमी हो गयी और तीन सौ वर्ष के पहले ही जोहिया का नाम भी लोप हो गया।

जोहिया का राजा शेरसिंह मरुपाल नामक स्थान में रहा करता था। बीका के आक्रमण करने पर शेरसिंह ने बड़ी तेजी के साथ युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना को लेकर उसने बीका का सामना किया। मरुभूमि के अनेक युद्धों में वीका ने सहज ही सफलता प्राप्त की थी, परन्तु जोहिया के युद्ध में शेरसिंह के साथ जो भयानक युद्ध हुआ, उसमें विजय प्राप्त करना वीका को वहुत कठिन दिखायी देने लगा। विजय की प्राप्ति से निराश होकर बीका ने षड़यन्त्रों का आश्रय लिया और विश्वासघात के द्वारा शेरसिंह को मरवा दिया। इसके वाद वीका ने मरुपाल पर अधिकार कर लिया। शेरसिंह के मारे जाने के वाद जोहिया के लोगों ने विवश होकर बीका की अधीनता स्वीकार कर ली।

जोहिया को जीत कर अपनी विजयी सेना के साथ बीका पश्चिम की तरफ रवाना हुआ। भाटी लोगों के राजा ने वहुत पहले जाटों के वागर नामक नगर को छीन कर अपने अधिकार में कर लिया था। इसलिए बीका ने सबसे पहले जाटों के बागर नगर को अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ पर अपनी राजधानी का निर्माण करने का उसने इरादा किया। वागर नगर का अधिकारी एक जाट था, जिसका नाम नेरा था। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बीका ने नेरा से बागर नगर माँगकर 15 मई, सन् 1489 को राजधानी का निर्माण करके उसका नाम बीकानेर रखा।

वीका अपने चाचा कांधल के साथ मन्डोर से रवाना हुआ था। मरुभूमि में तीस वर्ष तक रहकर और वहाँ के राज्यों को अपने अधिकार में करके उसने बीकानेर राज्य की प्रतिष्ठा की। इसके वाद काँधल वीका को बीकानेर में छोड़ कर उत्तर की तरफ रवाना हुआ। उसके साथ राठौरों की एक सेना थी। उस तरफ जाकर काँधल ने सिवाग वेनीवाल और सारण नामक जाटों के वंशों को पराजित करके अपनी शक्तियाँ मजवूत वना लीं। काँधल के वंशज अव तक बीकानेर के उत्तरी भाग में पाये जाते हैं और वे अव काँधलोत राठौरों के नाम से विख्यात हैं।

काँधल ने जिन तीन राज्यों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया था, वे वहुत दिनों तक बीकानेर राज्य में शामिल रहे। परन्तु उसके वाद काँधल के वंशज काँधलोत राठौरों ने वीकानेर के राजा को अपना राजा नहीं माना और न वीकानेर की अधीनता स्वीकार की। उनका कहना था कि काँधल ने राज्यों को जीतकर उन पर अधिकार किया था और हम काँधल के वंशज हैं। हमारे पूर्वज काँधल की सहायता से वीकानेर-राज्य की स्थापना हुई थी, इस

दशा में बीका के वंशजों को, जो आज बीकानेर के सिंहासन पर हैं, हमको अधीनता में लाने का अधिकार है।

बीकानेर-राज्य की स्थापना करने के बाद सन् 1495 में बीका की मृत्यु हो गयी। उसने पूङ्गल के भाटी राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। उससे लूनकरन और गडसी नाम के दो लड़के उत्पन्न हुये। बड़ा भाई होने के कारण लूनकरन पिता के सिंहासन पर बैठा। गडसी ने गडसीसर और अडसीसर नाम के दो नगर बसाये। उसके वंशधर गडसियोत बीका के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं और वे लोग गडसीसर अथवा गरीबदेसर नामक स्थान में रहते हैं। इन दोनों नगरों के अधिकार में चौबीस-चौबीस ग्राम हैं। लूनकरन ने सिंहासन पर बैठने के बाद बीकानेर के पश्चिम की तरफ भाटियों के राज्यों पर आक्रमण किया और उनको जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

लूनकरन की इस सफलता के बाद उसके चार पुत्रों में से बड़े पुत्र ने महाजन नाम के राज्य के एक सौ चवालीस ग्रामों को अधिकार में लेकर स्वतन्त्र जीवन विताने की अभिलाषा जाहिर की। उसके पिता लूनकरन ने इस बात को स्वीकार कर लिया। बड़े पुत्र ने उन एक सौ चवालीस ग्रामों के सिंहासन का अधिकार अपने छोटे भाई जेतसी को दे दिया।

सन् 1513 में लूनकरन की मृत्यु हो गयी। उसके वाद उसका बड़ा लड़का जेतसी उसके सिंहासन पर बैठा। जेतसी के दो भाइयों ने दो स्वतन्त्र राज्यों को जीतकर उन पर अधिकार कर लिया। जेतसी के तीन लड़के पैदा हुए- पहला कल्याणमल, दूसरा शिवजी और तीसरा अश्वपाल। जेतसी ने नारनोत के राजा पर आक्रमण करके और उसको पराजित करके नारनोत पर अधिकार कर लिया। और अपने दूसरे पुत्र सिरंग जी को वहाँ का अधिकारी बना दिया।

बीदा के लड़कों ने नए उपनिवेश कायम किये थे। जेतसी ने उन उपनिवेशों पर प्रभुत्व कायम करके वीदा के लड़कों को कर देने के लिए विवश किया। उनको यह माँग मंजूर करनी पड़ी और वे अपने उपनिवेशों से वार्षिक कर देने लगे।

सन् 1546 में जेतसी के मर जाने पर कल्याणमल पिता के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। उसके तीन लड़के पैदा हुए, रायसिंह, रामसिंह और पृथ्वीसिंह।

सन् 1570 में कल्याणसिंह की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर रायसिंह सिंहासन का अधिकारी हुआ और उसी वर्ष में वह अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल में बीकानेर की उन्नति आरम्भ हुई। इन दिनों में अकबर बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर था। रायसिंह समझता था कि वादशाह अकबर ने राजस्थान के अनेक राजाओं को अधीनता में लाकर मुगल राज्य का विस्तार कर लिया हैं और वह दिन भी शीघ्र आ सकता है, जब मुगल सम्राट बीकानेर राज्य पर प्रभुत्व कायम करने की चेष्टा करे। उस समय शक्तिशाली मुगलों का सामना करना हमारे लिए बहुत कठिन हो जायेगा। इसलिए कि अब तक अनेक राजपूत राजा उसकी अधीनता को स्वीकार कर चुके हैं। इस अवस्था में सब से अच्छा यह होगा कि मुगल वादशाह के साथ पहले से ही मित्रता कायम कर ली जाये।

रायसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय तक जाट लोग राज्य के प्रति पूरे तौर पर राजभक्त बने रहे। परन्तु अब जाटों के साथ राज्य की तरफ से और विशेषकर राठौरों के

व्यवहार वहुत कुछ वदल गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जाट लोगों को जो अधिकार मिले थे, उनमें वहुत कमी आ गयी। उन अधिकारों से वंचित होने के वाद जाट लोग निरन्तर निर्वल होते जाते थे। इसका प्रभाव वीकानेर राज्य की शक्तियों पर पड़ा और रायसिंह को मुगल सम्राट के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।

जैसलमेर के राजा की एक लड़की का विवाह राजा रायसिंह के साथ हुआ था और उसकी दूसरी लड़की वादशाह अकवर को व्याही गयी थी। इस वैवाहिक सम्वन्ध के कारण रायसिंह के प्रति वादशाह अकवर का आकर्षण स्वाभाविक था। पिता की मृत्यु के वाद रायसिंह गंगा जी में पिता की हड्डियों को प्रवाहित करने के लिए गया था। वहाँ से लौटकर वह मुगलों की राजधानी में चला गया। वहाँ पर आमेर का राजा मानसिंह मौजूद था और उसने मुगल दरवार में वहुत सम्मान प्राप्त किया था। राजा मानसिंह ने रायसिंह की वादशाह अकवर से भेंट करायी और उसने वादशाह को रायसिंह का परिचय दिया।

वादशाह अकवर रायसिंह से मिलकर वहुत प्रसन्न हुआ और उसने रायसिंह को चार हजार अश्वारोही सेना का पदाधिकारी वना दिया। इसके साथ ही वादशाह ने रायसिंह को हिसार का शासक नियुक्त किया और राजा की उपाधि देकर वादशाह ने विशेप रूप से वीकानेर के नरेश को सम्मानित किया।

इन्हीं दिनों में जोधपुर के राजा मालदेव के अप्रिय व्यवहारों के कारण वादशाह अकवर ने मारवाड़ पर आक्रमण किया और वहाँ के सम्पत्तिशाली राज्य नागौर को जीतकर उसका अधिकार रायसिंह को दे दिया। इस प्रकार वादशाह से लगातार सम्मानित होकर रायसिंह वीकानेर लौट गया और अपने राज्य में पहुँचकर उसने अपने छोटे भाई रामसिंह को एक राठौर सेना के साथ भाटी लोगों के प्रसिद्ध नगर भटनेर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। रामसिंह ने वहाँ पहुँचकर भटनेर और उसके आस-पास के अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके वाद वह वीकानेर लौट आया।

जोहिया के जाटों ने राठौरों की अधीनता स्वीकार करने के वाद वहुत समय तक किसी प्रकार का विद्रोह नहीं किया। लेकिन दिल्ली से लौटकर और वादशाह से सम्मानित होकर जव रायसिंह अपनी राजधानी को जा रहा था तो जोहिया के जाटों ने विद्रोह करने का इरादा किया। यह देखकर रायसिंह ने एक राठौर सेना उन पर आक्रमण करने के लिए भेजी। वीकानेर की उस सेना ने वहाँ पहुँचकर जोहिया के जाटों पर भयानक अत्याचार किया। उस आक्रमण में हजारों जाट जान से मारे गये और राठौर सेना ने उनके राज्य में भीषण रूप से नर-संहार किया। उस समय के विध्वंस और विनाश से जोहिया का राज्य सदा के लिए निर्वल और जन-शून्य हो गया।

जोहिया राज्य के ग्रामों और नगरों में यूनान के सिकन्दर का नाम अव तक प्रसिद्ध है। दादूसर नामक स्थान में नष्ट-भ्रष्ट प्राचीन महल अव तक मौजूद है, जिसे लोग रंगमहल कहते हैं। कहा जाता है कि यूनान के सिकन्दर ने जव भारत पर आक्रमण किया था, उस समय उसने दादूसर में पहुँचकर उसके राजा को परास्त किया था और दादूसर का विध्वंस किया था। यह वात सही है कि सिकन्दर ने भारत में आकर अनेक राज्यों पर आक्रमण किया

था और पंजाव में उसे भीषण संग्राम करना पड़ा था। लेकिन जोहिया के जाटों पर सिकन्दर के आक्रमण करने का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं पाया जाता। हो सकता है कि सिकन्दर के जिस यूनानी सेनापति ने समुद्र के समीप अपना राज्य कायम किया था,उसने किसी समय जोहिया पहुँचकर दादूसर पर आक्रमण किया हो और वहाँ के विध्वंस के साथ-साथ उसने इस रंगमहल को वरवाद किया हो।

रायसिंह के भाई रामसिंह ने जोहिया के जाटों को दमन करके अपनी सेना के साथ पूनिया की तरफ जाने का इरादा किया। वीका के वंशजों ने गोदारा और जोहिया के जाटों को पराजित कर लिया था। परन्तु पूनिया के जाट अभी तक स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। रामसिंह अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच गया। पूनिया के जाटों ने शक्ति भर युद्ध करके राठौर सेना का मुकावला किया। अंत में उनकी पराजय हुई और राठौर सेना ने उनके राज्य पर भी अधिकार कर लिया। रामसिंह ने इन दिनों में जिन राज्यों पर अधिकार किया था, वहीं पर उसने रहने का विचार किया। जिन जाटों ने पराजित होने के वाद राठौरों की अधीनता स्वीकार की थी, वे अव तक विद्रोही वने हुए थे और उन्होंने अवसर पाकर रामसिंह को जान से मार डाला।

रामसिंह के मारे जाने पर भी वहाँ के जाट राज्यों पर राठौरों का शासन कायम रहा। रामसिंह के जीवनकाल में वहाँ पर वहुत से राठौर रहने लगे थे और उन्होंने वहाँ के वहुत से प्रसिद्ध नगरों पर अधिकार कर लिया था। उन राठौरों के वंशज अव तक रामसिंहोत के नाम से प्रसिद्ध हैं। रामसिंह के जीते हुए राज्यों के द्वारा वीकानेर राज्य की वृद्धि हुई थी लेकिन रामसिंहोत राठौरों ने काँधलोतों की तरह वीकानेर के राजा के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया। रामसिंहोत राठौर जिन नगरों में रहते थे, उनमें दो प्रमुख थे, सीधमुख और साँखू।

पूनिया को पराजित करने के वाद जाटों के छः राज्य राजा वीकानेर के अधिकार में आ गये। वहाँ के जाट लोग खेती और पशुओं के पालन का काम करते थे। इन राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता खोकर वीकानेर को कर देना स्वीकार कर लिया।

राजा रायसिंह ने मुगल सम्राट की प्रधानता स्वीकार ली थी और उसके वाद उसने अपने राज्य को शक्तिशाली वना लिया। मुगलों को उन दिनों में जो युद्ध करने पड़े थे, उनमें रायसिंह ने भी राठौर सेना को लेकर युद्ध किया था। उसने अहमदावाद के शासक मिर्जा मोहम्मद हुसैन के साथ युद्ध करके उसको पराजित किया और अहमदावाद पर अधिकार कर लिया। इससे मुगल-दरवार में उसका सम्मान वहुत वढ़ गया। राजस्थान के राजाओं से मेल करके अथवा उनको पराजित करके अकवर वादशाह ने मुगल साम्राज्य की वहुत वड़ी उन्नति की थी। वहाँ के जिस राजा को अकवर अधिक शक्तिशाली समझता था, उसके साथ मित्रता कायम करने के लिए उसने वड़ी वुद्धिमानी और राजनीति से काम लिया था।

रायसिंह की योग्यता और रण-कुशलता को देखकर वादशाह अकवर वहुत प्रभावित हुआ था। इसलिए उसके सम्वन्ध को स्थायी और सुदृढ़ वनाये रखने के लिए उसने अपने लड़के शाहजादा सलीम का विवाह रायसिंह की लड़की के साथ करने का इरादा किया। रायसिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। इस विवाह के वाद रायसिंह की लड़की से जो लड़का पैदा हुआ,

उसका नाम परवेज रखा गया। राजा रायसिंह ने वादशाह अकवर के साथ सम्वन्ध जोड़कर अपने राज्य वीकानेर की सभी प्रकार उन्नति की। इसके वाद सन् 1632 ईसवी में इस संसार को छोड़कर उसने परलोक की यात्रा की।

रायसिंह के मर जाने के वाद उसका लड़का कर्णसिंह अपने पिता के सिंहासन पर वैठा। रायसिंह के जीवन काल में ही उसने मुगल-सम्राट की अधीनता में दो हजार अश्वारोही सेना के अधिकारी का पद प्राप्त करके सम्मान पाया था और वादशाह ने उसे दौलतावाद का शासक नियुक्त किया था। कर्णसिंह सुलतान दारा शिकोह के साथ विशेष अनुराग रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि दारा शिकोह के जो विरोधी थे, वे कर्णसिंह के साथ ईर्ष्या और द्वेष रखने लगे। उन विरोधियों ने कर्णसिंह की हत्या करने के लिए एक षड़यंत्र की रचना की। परन्तु वह षडयंत्र वूँदी के राजा को मालूम हो गया और उसने कर्णसिंह को सावधान कर दिया।

सिंहासन पर वैठकर कर्णसिंह ने कई वर्ष तक वड़ी योग्यता के साथ शासन किया। इसके वाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके चार लड़के थे-पद्मसिंह, केशरी सिंह,मोहनसिंह और अनूपसिंह। कर्णसिंह के इन चार लड़कों में पहला और दूसरा युद्ध में उस समय मारा गया, जव वे दोनों अपनी राठौर सेना को लेकर मुगल वादशाह की तरफ से युद्ध करने गये थे। दक्षिणी भारत को विजय करने के लिए मुगल वादशाह की जो फौज गयी थी, उसकी सहायता में कर्णसिंह के चारों लड़के राठौर सेना के साथ गये थे। उनमें पद्मसिंह व केशरी सिंह मारे गये। वहीं दक्षिण में वादशाह के शिविर में एक घटना हुई। कर्णसिंह का तीसरा लड़का मोहनसिंह मुगल सेना के शिविर में वैठा था और वहीं पर शाहजादा मोअज्जम भी था। एक हिरन के वच्चे के लिए मोअज्जम के साथ मोहनसिंह का झगड़ा हो गया। उस झगड़े में दोनों ने तलवारें निकालीं और एक-दूसरे पर आक्रमण किया। मोअज्जम की तलवार से मोहनसिंह जख्मी हुआ और गिरते ही उसकी मृत्यु हो गयी। तवारीख फरिश्ता में लिखा है कि इस दुर्घटना को सुनकर राजस्थान के उन राजाओं पर वहुत बुरा प्रभाव पड़ा जो वादशाह की तरफ से युद्ध करने के लिए दक्षिण में गये थे और वे सभी राजपूत क्रोधित होकर वादशाह के शिविर से वीस मील की दूरी पर चले गये।

तवारीख फरिश्ता के अनुसार दक्षिण में वीजापुर का युद्ध इस घटना के बाद हुआ, जिसमें कर्णसिंह के दोनों लड़के मारे गये थे। अव अनूपसिंह अपने पिता का अकेला लड़का रह गया था। कर्णसिंह के परलोक वास करने पर उसने सन् 1674 ईसवी में राजा की उपाधि लेकर और सिंहासन पर वैठकर शासन आरम्भ किया।

राजा रायसिंह के समय से दिल्ली के वादशाह के यहाँ वीकानेर के राठौरों की मर्यादा वढ़ गयी थी। इसका कारण यह था कि वीकानेर से अनेक अवसरों पर वादशाह को सहायता मिली थी। अनूपसिंह स्वयं साहसी और वीर पुरुष था। मुगल वादशाह ने पाँच हजार अश्वारोही सेना का मनसव वनाकर और राजा की उपाधि देकर उसे वीजापुर तथा औरंगावाद का शासक नियुक्त किया था। अनूपसिंह ने भी इसके वदले में कई मौकों पर वादशाह की सहायता की थी। इससे वादशाह और भी अधिक प्रसन्न हुआ था।

जिन दिनों में कावुल के अफगान दिल्ली के वादशाह के विद्रोही हो गये थे, वादशाह ने उन विद्रोहियों को दमन करने के लिए मारवाड़ के राजा को भेज दिया। उस समय अनूपसिंह भी बीकानेर को सेना लेकर बादशाह के आदेश से काबुल विद्रोह का दमन करने के लिए गया था। इस विद्रोह के शांत हो जाने के बाद भी बादशाह की तरफ से अनूपसिंह ने कई युद्ध किये।

अनूपसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में दो प्रकार के उल्लेख पाये जाते हैं। फरिश्ता ने अपने इतिहास में लिखा है कि राजा अनूपसिंह की मृत्यु दक्षिण में हुई थी, परन्तु राठौरों के इतिहास से जाहिर होता है कि अनूपसिंह दक्षिण के युद्ध में अपनी सेना लेकर गया था। वहाँ पर शिविर बनाने के स्थान पर वादशाह के प्रधान सेनापति के साथ उसका झगड़ा हो गया। इसलिए अप्रसन्न होकर वह दक्षिण से अपने राज्य में चला आया और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। स्वरूपसिंह और सुजानसिंह नाम के दो लड़के अनूपसिंह के थे।

अनूपसिंह की मृत्यु के वाद सम्वत् 1765 सन् 1709 ईसवी में स्वरूपसिंह सिंहासन पर बैठा।[1] परन्तु उसने बहुत थोड़े दिनों तक शासन किया। राजा अनूपसिंह ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में बादशाह के साथ सभी सम्बन्ध तोड़ दिये थे। इसलिए वादशाह की तरफ से उसे जो ओडनी राज्य मिला था, वह वापस ले लिया गया। सिंहासन पर बैठने के वाद स्वरूपसिंह ने ओडनी राज्य पर अधिकार करने के लिए ओडनी राज्य पर आक्रमण किया और उसी युद्ध में वह मारा गया। उसका छोटा भाई सुजानसिंह उसके बाद सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में कोई घटना नहीं हुई। सन् 1737 ईसवी में जोरावरसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा।

जोरावरसिंह ने दस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके वाद गजसिंह बीकानेर के सिंहासन पर वैठा। उसके शासन के साथ-साथ राज्य में घटनायें आरम्भ हुई। गजसिंह साहसी और पराक्रमी था। उसने गौरव के साथ इकतालीस वर्ष राज्य करके सभी प्रकार से बीकानेर की उन्नति की। राज्य की सीमा पर रहने वाले शक्तिशाली भाटी लोगों और भावलपुर के मुसलमान राजाओं के साथ युद्ध करके उसने अपनी वहादुरी का परिचय दिया। गजसिंह ने भाटी लोगों के राजासर, कालिया, रनियार, सतसर, बुन्नीपुर, मुतालाई और अनेक छोटे-बड़े नगरों को अधिकार में लेकर अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं दिनों में भावलपुर के राजा खाँ के साथ उसने युद्ध किया और उसके प्रसिद्ध दुर्ग अनूपगढ़ पर अधिकार कर लिया। दाऊद के पोतड़ा लोगों का विध्वंस उसने इसलिए किया कि जिससे वे कभी विद्रोह न कर सकें और इसी उद्देश्य से उसने अनूपगढ़ के पश्चिम की तरफ बसे हुए स्थानों का भी विनाश किया।

राजा गजसिंह के इकसठ पुत्र पैदा हुए, उनमें विवाहित रानियों से केवल छः थे जो इस प्रकार हैं:-

1. छत्रसिंह	2. राजसिंह	3. सुरतानसिंह
4.अजवसिंह	5. सूरतसिंह	6. श्यामसिंह

1. बीकानेर के एक ग्रंथ में लिखा है कि राजा अनूपसिंह की मृत्यु सम्वत् 1755 में दक्षिण में हुई। उसके साथ उसकी अठारह रानियाँ सती हुई थीं।

छत्रसिंह की मृत्यु शिशु अवस्था में ही हो गयी थी। राजसिंह को सूरतसिंह की माँ ने विष देकर मार डाला था। सुरतानसिंह और अजवसिंह इस प्रकार की दुर्घटना से भयभीत होकर जयपुर चले गये थे। इस दशा में सूरतसिंह वीकानेर के सिंहासन का अधिकारी हुआ। श्यामसिंह उस राज्य की छोटी-सी जागीर को पाकर वहीं पर रहने लगा। इस प्रकार उस राज्य में अव सूरतसिंह का कोई प्रतिद्वन्दी न रह गया था।

राजसिंह वास्तव में वीकानेर के सिंहासन का अधिकारी था। गजसिंह की मृत्यु के वाद सन् 1787 ईसवी में राजसिंह वीकानेर के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन के केवल तेरह दिन वीते थे,उसके वाद सूरतसिंह की माँ ने विश्वासघात करके उसको विष पिला दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

राजसिंह के दो लड़के थे-प्रतापसिंह और जयसिंह। विष के द्वारा राजसिंह की मृत्यु हो जाने के वाद राज्य के मंत्री और सामन्त वहुत असंतुष्ट हुए। उनके असन्तोष को देखकर सूरतसिंह ने राजसिंह के वड़े लड़के प्रतापसिंह को सिंहासन पर विठा कर शासन का कार्य आरम्भ किया। प्रतापसिंह की अवस्था बहुत छोटी थी। इसलिए शासन के सम्पूर्ण अधिकार सूरतसिंह के हाथ में ही रहे। इस प्रकार शासन करते हुए सूरतसिंह ने अठारह महीने विता दिये। इन दिनों में उसने राज्य के मंत्रियों और सामन्तों को पूर्ण रूप से अपने अनुकूल वनाने की चेष्टा की। उसने उनको लगातार वहुमूल्य पदार्थ भेंट में दिये और अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उनकी सहानुभूति को अपने पक्ष में करने की कोशिश की।

सूरतसिंह ने सामन्तों, मंत्रियों और राज्य के दूसरे लोगों को दिखाने के लिए वालक प्रतापसिंह को सिंहासन पर विठाया था। परन्तु राज्य का सम्पूर्ण अधिकारी वह स्वयं था। इसलिए कि प्रतापसिंह विल्कुल वालक था। ऐसा करके सूरतसिंह संसार के नेत्रों में धूल झोंक रहा था। फिर भी उसको सन्तोष न था। वह राज्य की सम्पत्ति को अनावश्यक रूप से खर्च करके सामन्तों और मंत्रियों को मिलाने की जो चेष्टा कर रहा था, उसका एक रहस्य था। वह राजसिंह के वालक प्रतापसिंह को सिंहासन पर विठा कर और थोड़े दिनों का नाटक खेल कर संसार से उसे विदा कर देना चाहता था। इसके लिए पहले से ही सामन्तों और मन्त्रियों को मिला लेना उसके लिए जरूरी था जिससे वे लोग वाद में किसी प्रकार का विद्रोह न कर सकें।

वालक प्रतापसिंह के नाम पर अठारह महीने के शासन में उसने अपनी समझ में सामन्तों और मंत्रियों को अनुकूल वना लिया। सूरतसिंह महाजन और भादराँ के सामन्तों को अपना विशेष अनुयायी और समर्थक समझता था। इसलिए उसने वालक प्रतापसिंह के सम्वन्ध में अपने विचारों को उन दोनों सामन्तों से प्रकट किया। सूरतसिंह के विचार सुनकर दोनों सामन्त घवरा उठे। उनकी समझ में सूरतसिंह का यह विचार अत्यन्त घृणित और निन्दनीय था। सूरतसिंह ने उन दोनों सामन्तों को प्रसन्न करने के लिए भूमि और सम्पत्ति दी, जिससे वे उसके अभिप्राय को किसी से प्रकट न कर सकें। फिर भी सूरतसिंह का वह इरादा अप्रकट न रह सका। वीकानेर के दीवान वख्तावर सिंह को जव सूरतसिंह के उस पैशाचिक अभिप्राय की जानकारी हुई तो उसने राजसिंह के वालक प्रतापसिंह के प्राणों की रक्षा का प्रयत्न किया। लेकिन वख्तावरसिंह की चेष्टा सफल न हो सकी। सूरतसिंह ने वख्तावरसिंह को कैद करवा लिया।

बख्तावरसिंह के सम्बन्ध में सूरतसिंह की धारणा पहले से ही अच्छी न थी। वह बख्तावरसिंह को अपना विरोधी समझता था। बालक प्रतापसिंह के सम्बन्ध में जो विश्वासघात सूरतसिंह के हृदय में छिपा हुआ था, उसके प्रकट हो जाने से राज्य के अनेक सामन्तों में विद्रोहात्मक भावनायें उठने लगीं। सूरतसिंह इन परिस्थितियों से अपरिचित न रहा। आने वाली भयानक परिस्थितियों की कल्पना करके सूरतसिंह ने बीकानेर के सामन्तों के पास आदेश भेज कर उनको राजधानी में बुलाया। लेकिन महाजन और भादराँ के दोनों सामन्तों के सिवाय अन्य कोई भी सामन्त राजधानी में नहीं आया।

भेजे हुए आदेश का सामन्तों के द्वारा पालन न करने पर सूरतसिंह बहुत क्रोधित हुआ और वह अपने साथ एक सेना लेकर आज्ञा-पालन न करने वालों सामन्तों का दमन करने के लिए राजधानी से रवाना हुआ। नौहर नामक स्थान पर पहुँचकर सूरतसिंह ने भूखर के सामन्त को अपने पास बुलवाया और उसको कैद करके नौहर के दुर्ग में बन्द करवा दिया। इसके बाद उसने अजितपुर नामक स्थान पर लूट की और साँखू नामक स्थान पर आक्रमण किया। वहाँ के सामन्त दुर्जनसिंह ने सूरतसिंह का सामना किया। लेकिन बीकानेर की सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसके पास सेना काफी न थी। इसलिए पराजित होने की अवस्था में आत्मघात करके वह मर गया।

साँखू में विजयी होने के बाद सूरतसिंह ने दुर्जनसिंह के लड़कों से बारह हजार रुपये लिए। इसके बाद उसने अपनी सेना के साथ साँखू से चलकर राज्य के प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर चूरू को घेर लिया और छः महीने तक वह उस नगर को घेरे पड़ा रहा। लेकिन उसको सफलता न मिली।

भूखर के जिन सामन्तों को कैद करके सूरतसिंह ने नौहर के दुर्ग में रखा था, वे बीकानेर राज्य के सामन्तों में शक्तिशाली सामन्त माने जाते थे। उनको इस बात की चिन्ता होने लगी कि सूरतसिंह राज्य के सभी सामन्तों के साथ इस प्रकार अलग-अलग दुर्व्यवहार करेगा और सामन्त कुछ न कर सकेंगे। इसलिए वे सूरतसिंह को बीकानेर के सिंहासन पर बिठाने के लिए ही गये और उनके तैयार हो जाने पर कुछ दूसरे सामन्तों ने भी सूरतसिंह के पक्ष में अपनी सम्मति दे दी। इसके लिए एक कागज लिखा गया। उस पर उन सामन्तों के हस्ताक्षर हो गये, इसके बाद जिन सामन्तों को सूरतसिंह ने कैद करवाया था, उनको छोड़ दिया गया और दो लाख रुपये लेकर सूरतसिंह अपनी सेना के साथ चूरू नगर से लौट आया।

सूरतसिंह ने राज्य के कितने ही सामन्तों के साथ इस प्रकार का अत्याचार करके उनको अपने अनुकूल बना लिया। उसके बाद वह अपनी राजधानी लौट आया। अब उसको सामन्तों के विरोध का डर न रहा था। इसलिए निर्भीक होकर वह बालक प्रतापसिंह की हत्या का उपाय सोचने लगा। इसी बीच में उसको मालूम हुआ कि बालक प्रतापसिंह की रक्षा का भार हमारी बहन के हाथ में है। उसकी बहन बुद्धिमती और शीलवती थी। वह किसी प्रकार इस बात को नहीं चाहती थी कि बालक प्रतापसिंह की हत्या की जाये। इसके लिए उसको अपने भाई सूरतसिंह से पूरी तौर पर आशंका थी। वह समझती थी कि सूरतसिंह के द्वारा इस बालक के प्राण खतरे में हैं। इसलिए वह राजकुमारी उस बालक को सदा अपने पास रखती थी और एक क्षण के लिए भी वह उसको अपने पास से अलग न होने देती थी।

सूरतसिंह ने अनेक उपायों से अपनी वहन को अनुकूल वनाने की कोशिश की। उसने समझाने-वुझाने के अतिरिक्त प्रताड़ना का भी प्रयोग किया। परन्तु उसकी वहन पर उसके इन व्यवहारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपने इन उपायों से निराश होने के वाद सूरतसिंह ने अपनी उस वहन का विवाह करके उसे ससुराल भेज देने का निश्चय किया। क्योंकि उसकी वह वहन अभी तक अविवाहिता थी। सूरतसिंह ने उसका विवाह करने के लिए नरवर के राजा के पास प्रस्ताव भेजा और वह स्वयं उसकी तैयारी करने लगा।

भारतवर्ष में राजा नल के नाम से सभी परिचित हैं। हिन्दू ग्रंथों में राजा नल की वहुत सी कथायें लिखी गयी हैं। उसी राजा नल ने नरवर राज्य की प्रतिष्ठा की। सूरतसिंह ने अपनी वहन का विवाह करने के लिए जिस राजा से प्रस्ताव किया वह राजा नल का वंशज था। सिंधिया के अत्याचारों से नरवर राज्य विल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और इन दिनों में उस राज्य की दशा अच्छी न थी। सिंधिया की लूट के कारण यह राज्य वहुत समय से दीन-दुर्वल अवस्था में दिन व्यतीत कर रहा था। लेकिन सूरतसिंह ने इसका कुछ भी विचार न किया। वह अपनी उस वहन का विवाह वड़ी जल्दवाजी के साथ करके उसे ससुराल भेज देना चाहता था।

अपने विवाह का समाचार सूरतसिंह की वहन ने सुना और उसने यह भी सुना कि सूरतसिंह ने नरवर के जिस राजा के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव किया है, उसने उस प्रस्ताव को मंजूर करके अपनी स्वीकृति सूरतसिंह के पास भेज दी है। राजकुमारी ने सूरतसिंह को वुलाकर प्रार्थना की कि मेरी अवस्था अधिक हो चुकी है। विवाह न करके मैं आजन्म कुँवारी रहूँगी। इसलिए आप मेरे विवाह की व्यवस्था न करें। इसके वाद राजकुमारी ने नरवर के राजा के पास भी संदेश भेजा कि मेरा विवाह मेवाड़ के राणा अरिसिंह के साथ वहुत पहले निश्चित हो चुका है। इसलिए आप से जो प्रस्ताव किया गया है, वह सही नहीं हैं। आपको किसी धोखे में नहीं पड़ना चाहिए।

राजकुमारी के इन विरोधों का कोई परिणाम न निकला। नरवर के राजा के साथ उसका विवाह कर दिया गया और सूरतसिंह ने इस विवाह के दहेज में तीन लाख रुपये दिये। राजकुमारी का अव कोई वश न था। उसने अव तक राजसिंह के वालक की रक्षा की थी। भविष्य में वह कैसे सुरक्षित रहेगा, इसको वह समझ न सकी। वीकानेर से ससुराल जाने के पहले राजकुमारी ने सूरतसिंह से इस विषय में स्पष्ट वातें कीं। उसने कहा-''इस वालक के साथ आप विश्वासघात करना चाहते हैं और इसीलिए मेरा विवाह करके वीकानेर से मुझे भेज देने का आपने एक रास्ता खोला है। अव तक मैंने उस वालक की रक्षा की थी। भविष्य में भगवान उसकी रक्षा करेगा।''

वहन की इन वातों को सुनकर सूरतसिंह के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। प्रकट रूप में उसको सान्त्वना देने के लिए उसने कहा कि ऐसी वात विल्कुल नहीं है। तुम्हारा अनुमान विल्कुल निराधार है। सूरतसिंह के मुख से इस वात को सुनकर राजकुमारी ने साहसपूर्ण शव्दों में कहा- ''वास्तव में यदि आपके हृदय में उस वालक के प्रति इस प्रकार का विश्वासघात नहीं है तो सवं के सामने अपने देवता की शपथ लेकर कहिए कि मैं अपने इस भतीजे के साथ किसी प्रकार का विश्वासघात न करूँगा।''

राजकुमारी की एक भी न चली। उसके ससुराल चले जाने के बाद सूरतसिंह ने महाजन के सामन्तों को बुलाकर उस बालक की हत्या करने का आदेश दिया। वे सामन्त बहुत दिनों से सूरतसिंह के अनुयायी और पक्षपाती थे। परन्तु ऐसा करने से उन्होंने साफ-साफ इन्कार कर दिया। इसके लिए सूरतसिंह को जब और कोई रास्ता न मिला तो उसने स्वयं अपनी तलवार से राजसिंह के बालक को मार डाला।

उस बालक के मारे जाने के बाद सूरतसिंह अपने सौभाग्य का निर्माण न कर सका। उस बालक की जिस प्रकार हत्या हुई, उसका समाचार बीकानेर के प्रत्येक घर में फैला और राज्य के प्रत्येक राठौर ने उस बालक के प्रति इस अपराध को सुनकर आँखों से आँसू गिराये। राजसिंह के दो भाई सुरतानसिंह और अजबसिंह भयभीत होकर जयपुर चले गये थे, सूरतसिंह के द्वारा राजसिंह के बालक के मारे जाने का समाचार उन्होंने सुना। अत्यन्त क्रोधित होकर उन दोनों भाइयों ने सूरतसिंह को इसका बदला देने का निश्चय किया और भटनेर में आकर दोनों भाइयों ने बीकानेर के सामन्तों को बुलाकर सूरतसिंह को सिंहासन से उतार देने की तैयारी की। सूरतसिंह के इस अक्षम्य अपराध को सभी सामन्त जानते थे। लेकिन जिन सामन्तों को अनैतिक रूप से भूमि और सम्पत्ति देकर सूरतसिंह ने अपने पक्ष में कर रखा था, वे सूरतसिंह के विरोध में सुरतानसिंह और अजबसिंह की सहायता करने का साहस न कर सके। परन्तु भाटी लोग खुलकर दोनों भाइयों की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। यह समाचार बीकानेर में सूरतसिंह को मिला। उसने सुरतानसिंह और अजबसिंह को युद्ध की तैयारी का मौका नहीं दिया और उसने अपनी सेना लेकर एक साथ उन पर आक्रमण कर दिया।

बागोर नामक स्थान में दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। तीन हजार भाटी लोगों ने सूरतसिंह के विरुद्ध सुरतानसिंह और अजबसिंह का साथ देकर युद्ध किया था। उनके मारे जाने पर सूरतसिंह की विशाल सेना विजयी हुई। विरोधियों का सर्वनाश करके और युद्ध में विजयी होकर उस युद्ध भूमि में सूरतसिंह ने एक दुर्ग का निर्माण कराया, जिसका नाम रखा गया, फतहगढ़।

सूरतसिंह के जीवन में जो बाधायें थीं, वे अब सब की सब समाप्त हो चुकी थीं। सूरतसिंह को अब किसी का भय न था। इसलिए सभी प्रकार निर्भीक होकर उसने शासन का कार्य आरम्भ किया। उसने सजातीय बीदावत लोगों के राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ से उसने पचास हजार रुपये कर के रूप में वसूल किये। सूरतसिंह ने सुना था कि चूरू के सामन्त सुरतानसिंह और अजबसिंह की युद्ध में सहायता करेंगे। इसलिए उसने चुरू पर फिर से आक्रमण किया। बीकानेर की सेना ने चुरू पहुँचकर भयानक रूप से वहाँ पर लूट की। उसके बाद कई राज्यों में लूट मार करते हुए सूरतसिंह ने भादरां के करीब छानी राज्य के सामन्तों के दुर्ग पर आक्रमण किया। वहाँ के सामन्तों ने धैर्य के साथ सूरतसिंह का सामना किया। बीकानेर की सेना छः महीने तक उस दुर्ग को घेरे पड़ी रही और अन्त में निराश होकर वहाँ से बीकानेर लौट आयी।

सूरतसिंह अपने विरोधियों का दमन करके निर्भीक हो गया था और राज्य के शासन को मजबूत करने के लिए उसने योजना बनानी आरम्भ कर दी थी। परन्तु राज्य की प्रजा उससे

सन्तुष्ट न थी। विरोधियों को दवाने के लिए सूरतसिंह ने जिस प्रकार अपने राज्य के आदमियों पर अत्याचार किये थे और भूमि तथा सम्पत्ति देकर सामन्तों को अपने पक्ष में कर लिया था, इसे राज्य की प्रजा ने अच्छा नहीं समझा था। न्याय और उदारता के अभाव में प्रजा सूरतसिंह से सभी प्रकार अप्रसन्न हो रही थी। राज्य की इस परिस्थिति को सूरतसिंह ने साफ-साफ अनुभव किया और उसने राज्य के असन्तोप को दूर करने की चेष्टा की।

सूरतसिंह प्रजा के असन्तोप को दूर करना चाहता था लेकिन न्याय और उदार व्यवहारों के द्वारा नहीं। वह दमन पर विश्वास करता था शक्तिशाली विरोधियों को धन और प्रलोभन देकर मिला लेना चाहता था। वह इस समय भी इसी प्रकार की वातों को सोचने लगा। उसका समय अच्छा था। प्रजा के असन्तोप के दिनों में भी जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, वे अनुकूल सावित हुईं।

वीकानेर राज्य की सीमा के समीप भावलपुर राज्य था। उसके राजा के साथ वहुत पहले से विरोध चला आ रहा था। उसके सम्वन्ध में वीकानेर के सामन्तों को अनेक बार युद्ध करना पड़ा था। इन दिनों में भावलपुर के राजा भावलखाँ ने अपने राज्य के तियारो के सामन्त खुदावख्श पर आक्रमण किया। खुदावख्श ने सूरतसिंह से सहायता माँगी। सूरतसिंह ने उस सामन्त को अपने यहाँ आश्रय देकर वीस ग्राम दिये और रोजाना के खर्च के लिए प्रतिदिन के हिसाव से एक सौ रुपया देना मंजूर किया।

भावलपुर राज्य में किरणी वंश के लोग रहते थे। वे युद्ध में साहसी और वीर थे। सूरतसिंह ने उस वंश के लोगों को मिलाकर लाभ उठाने का इरादा किया और सामन्त खुदावख्श से पूछा- "मैं आपकी सहायता करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु इसके वदले में आप मेरे साथ क्या करेंगे।"

खुदावख्श ने इसका उत्तर देते हुए कहा- "वीकानेर राज्य की सीमा को वढ़ाने में मैं सभी प्रकार आपकी सहायता करूँगा।" उसके इस उत्तर को सुनकर सूरतसिंह प्रसन्न हुआ और उसने भावलखाँ के साथ युद्ध करने के लिए अपने सभी सामन्तों के पास सन्देश भेज दिया। वीकानेर के सामन्त सूरतसिंह से सन्तुष्ट न थे। परन्तु इस समय राज्य के सामने राजनीतिक संघर्ष था। उसमें शामिल होना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। इसलिए अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर वे लोग वीकानेर की राजधानी में आने लगे। तियारो का सामन्त खुदावख्श भी अपने साथ पाँच सौ पैदल और तीन सौ सैनिक सवारों की सेना लेकर राजधानी में पहुँच गया। भावलपुर के राजा के साथ युद्ध करने के लिए वीकानेर के जो सामन्त अपनी सेनाओं के साथ आये, उनकी संख्या इस प्रकार थी:

सामन्त	पैदल	अश्वारोही	वन्दूकें
1. भूखर का सामन्त अभयसिंह	2000	300	
2. पूगल का सामन्त रावरामसिंह	400	100	
3. रानेर का सामन्त हाथीसिंह	150	8	
4. सतीसर का सामन्त कर्णसिंह	150	9	
5. जसाना शारोह का अनूपसिंह	250	40	

6. इमनसर का सामन्त खेतसिंह	350	60	
7. जाँगल का सामन्त बेनीसिंह	250	9	
8. बितानो का सामन्त भूमसिंह	61	2	
जोड़	**3611**	**528**	
9. मोजी परिहार के अधिकार की			21
10. नरपति की विदेशी सेना और खासपटागाँ		200	
11. गंगासिंह के अधिकार में	1500	200	4
12. दुर्जनसिंह के अधिकार में	600	30	4
13. अनेकासिंह		300	
14. लाहौरीसिंह सिक्ख सामन्त		250	
15. बुधसिंह		250	
16. अफगान सामन्त सुलतानखाँ और अहमदखाँ के साथ		....	
जोड़	**5711**	**1758**	**29**

राजा सूरतसिंह ने इन सब सेनाओं को एकत्रित करके अपने राज्य के दीवान के लड़के जैतराव मेहता को प्रधान सेनापति बनाया और वह सन् 1800 जनवरी के महीने में भावलपुर राज्य पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। सेनापति जैतराव अपनी राजधानी से चलकर कुनसर, पराजसर, केली और रानेर होकर अनोहागढ़ पहुँच गया और वहाँ से चलकर शिवगढ़ और भोजगढ़ को पार करके फूलरा में मुकाम किया।* हिन्दूसिंह नाम के एक भाटिया सरदार ने भोजगढ़ पहुँचकर उस पर अधिकार कर लिया और वहाँ के दुर्ग में पहुँचकर दुर्ग के अधिकारी मोहम्मद आसफ की सेना को पराजित किया और उसकी स्त्री को कैद करके उसने बीकानेर भेज दिया। उसके बाद पाँच हजार रुपये और चार हजार ऊँट लेकर उस स्त्री को छोड़ दिया गया। बीकानेर की सेना कई सप्ताह तक शिवगढ़, भोजगढ़ और फूलरा के दुर्गों को घेरे रही। इसके बाद विजयी होकर उस सेना ने वहाँ से एक लाख पच्चीस हजार रुपये, अनेक कीमती चीजें और नौ तोपें लेकर अधिकार में कर लीं।

भावलपुर राज्य की सीमा के निकटवर्ती स्थानों और नगरों पर आतंक पैदा करके बीकानेर की सेना सिन्धु नदी से तीन मील के फासले पर खैरपुर पहुँच गयी। भावलपुर राज्य के जो सामन्त वहाँ के राजा से असन्तुष्ट थे, वे भी जैतराव के साथ आकर मिल गये। भावलपुर के राजा भावलखाँ ने बीकानेर की सेना को आगे बढ़ता हुआ देखकर युद्ध की परिस्थिति पर विचार किया। उसने इस अवसर पर बुद्धिमानी से काम लिया और अनेक प्रकार के प्रलोभनों के द्वारा उसने बीकानेर की सेना के सहायकों को तोड़ने की कोशिश की। उसने सेनापति

* भोजगढ़ का पुराना नाम कुल्लूर था और यह मरुभूमि के प्राचीन नगरों में एक नगर था, जो जोहिया की तरह प्रसिद्ध था।

जैतराव का वहुत सम्मान किया, जिससे प्रभावित होकर जैतराव ने भावलपुर राज्य के जीते हुए नगरों से अपना अधिकार हटा लिया और भावलपुर से लौटकर चला आया। इससे सूरतसिंह उससे वहुत अप्रसन्न हुआ और उसको जो सेनापति का पद दिया था, उसे उसने छीन लिया।

बागोर के युद्ध में भाटी लोग सूरतसिंह की सेना के द्वारा पराजित हो चुके थे। इसलिए दो वर्ष तक वे लोग युद्ध की तैयारी करते रहे। इसके वाद वे लोग सूरतसिंह को उसका वदला देने के लिए रवाना हुए। वीकानेर राज्य के लोगों का जो असन्तोष सूरतसिंह के सम्वन्ध में चल रहा था, उसे इन दिनों में सूरतसिंह ने खत्म कर दिया था। इसलिए उसको भाटी लोगों का कोई डर न था और वह उनसे युद्ध करने के लिए अपनी सेना लेकर राजधानी से रवाना हुआ।

भाटी लोगों के साथ वीकानेर की सेना ने फिर से युद्ध किया और भयानक रक्तपात के वाद उसने भाटी लोगों को पराजित किया। इसके वाद भी सन् 1805 ईसवी तक भाटी लोग समय-समय पर सूरत सिंह से युद्ध करते रहे। अंत में वीकानेर की सेना ने भाटी लोगों की राजधानी भटनेर पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा जाव्ताखाँ ने छः महीने तक युद्ध किया और अंत में उसने आत्म समर्पण कर दिया। सूरतसिंह ने भटनेर को अपने राज्य में मिला लिया और जाव्ताँ खाँ वहाँ से रहानियाँ नामक स्थान में जाकर रहने लगा।

इन्हीं दिनों में मारवाड़ के सामन्त सवाई सिंह ने वहाँ के राजा मानसिंह को सिंहासन से उतारकर धौकल सिंह को राज्याधिकारी वनाने की चेष्टा की थी और इसके लिए राजा जयपुर को तैयार किया। सवाई सिंह ने राजा सूरतसिंह से भी प्रार्थना की और सूरतसिंह ने अपनी सेना भेजकर मानसिंह के युद्ध में सवाई सिंह की सहायता की, इसका वर्णन मारवाड़ के इतिहास में किया जा चुका है।

उस संघर्ष के दिनों में सूरत सिंह ने मारवाड़ के फलोदी नगर पर अधिकार कर लिया। परन्तु जव उसे धौकल सिंह का पक्ष निर्वल मालूम हुआ तो वह अपनी राजधानी को लौट आया। उन्हीं दिनों में अपनी शक्तियाँ मजवूत वनाकर जव मानसिंह ने फलोदी पर फिर से अधिकार कर लिया, उस समय सूरतसिंह ने मानसिंह से मेल करके वहुत रुपये उसको भेंट में दिये।

मानसिंह के विरुद्ध धौकलसिंह का पक्ष लेकर सूरतसिंह ने अपनी बुद्धिमता का परिचय नहीं दिया। इसीलिए उसको वहाँ से अपमानित होकर भागना पड़ा। इससे उसने वीकानेर के गौरव को क्षति पहुँचायी। अपने इस अपराध के वदले राज्य की लगभग पाँच वर्ष की आमदनी चौवीस लाख रुपये उसे मानसिंह को दे देने पड़े। इस क्षति और अपमान की पीड़ा से सूरत सिंह वीमार हो गया और उस वीमारी में उसका ठीक होना लोगों को असम्भव दिखायी देने लगा। किसी प्रकार उसे रोग से मुक्ति मिली और उसने एक तरह से नया जीवन प्राप्त किया।

सूरतसिंह ने अपने राज्य की प्रजा पर लगातार कर के वोझ वढ़ाकर भयानक अत्याचार किये। वह स्वयं अपने इस अत्याचार को अनुभव करता था और अपने इन पापों से मुक्ति पाने के लिए उसने व्राह्मणों और पुरोहितों को वहुत-सा धन दान में दिया था। इसके फलस्वरूप व्राह्मण उसे हमेशा घेरे रहते थे और अपने आशीर्वादों से उसको प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे।

सूरतसिंह अपने खजाने को भरने के लिए एक तरफ प्रजा से उसके कष्टों को भूलकर लगातार कर वसूल करता था और दूसरी तरफ इस प्रकार के पाप से मुक्ति पाने के लिए वह ब्राह्मणों के बताये हुए विभिन्न प्रकार के दान करता था। वह स्वभावतः अत्याचारी और निष्ठुर था। राज्य के अनेक सामन्तों ने अनेक कठिन अवसरों पर उसकी सहायता की थी। परन्तु उसने उनके उन उपकारों को भुला दिया और उन सामन्तों का विनाश किया। बीकानेर राज्य के प्रधान सामन्त सीधमुख के नाहर सिंह, गुन्दाइल के गुमानसिंह और ज्ञानसिंह भी उसके द्वारा इसी प्रकार मारे गये। सूरत सिंह ने चूरू पर तीसरी बार आक्रमण करके वहाँ के सामन्तों को, जो विद्रोही हो रहे थे, अनुकूल बना लिया।

राजा सूरतसिंह के अप्रिय और कठोर शासन से बीकानेर राज्य को अनेक प्रकार की क्षति पहुँची, वहाँ की आर्थिक दशा खराब हो गयी और जनसंख्या में भी बहुत कमी आ गयी। राज्य के उत्तरी भाग के सामन्तों ने उसकी अधीनता को मन्जूर न किया और भाटी लोगों की लूटमार बीकानेर के जाटों और किसानों पर धीरे-धीरे बढ़ने लगी। इससे भयभीत होकर राज्य के जाटों और किसानों ने भागकर अपने प्राणों की रक्षा करने का विचार किया। बहुत से जाट, जो खेती का काम करते थे, राज्य से भाग गये और ईस्ट इण्डिया कम्पनी अधिकृत हाँसी और हरियाणा नामक स्थानों में जाकर रहने लगे। वहाँ पर उनको बड़ी शांति मिली। उन्हीं दिनों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहादुर खाँ के राज्य के कई नगरों पर अधिकार कर लिया। उन नगरों में रहने वाले लूट-मार करने के अधिक अभ्यासी थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ जाने के बाद वहाँ के लोग लूट-मार करके बीकानेर को अधिक हानि पहुँचाने लगे।

बीकानेर के राजा की तरफ से जब इन लुटेरों को रोकने का कोई प्रबन्ध न हुआ तो राज्य के जाटों ने अपनी रक्षा करने के लिए अपनी तैयारी की। उनके प्रत्येक ग्राम में मिट्टी का एक बहुत ऊँचा टीला तैयार किया गया और उस टीले पर एक पहरेदार रखा गया। वह पहरेदार जब लुटेरों को आता हुआ देखता तो वह अपने ऊँचे टीले पर से रखा हुआ ढोल बड़े जोर से बजाता, उसको सुन कर ग्राम के सभी लोग लुटेरों से सावधान हो जाते। इस प्रकार का ढ़ोल बजनें पर कई ग्रामों के जाट एकत्रित होकर उन लुटेरों का सामना करते और उन्हें मार कर भगा देते। उनका सामना करने के लिए सभी जाटों के पास भाले थे और अपनी रक्षा के लिए वे ढालें भी रखते थे।

बीदावाटी बीकानेर राज्य का एक प्रसिद्ध भाग था। उसमें बीदा के वंशधर रहा करते थे। पहले यह लिखा जा चुका है कि मारवाड़ के राज्य से बीका के निकलने से पहले उसका भाई बीदा अपनी प्राचीन राजधानी मंदोर से सेना के साथ निकला था। उसने सबसे पहले मेवाड़ के गोडवाड़ राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ पर राणा की शक्तिशाली सेना उसके साथ युद्ध करने के लिए आ गयी। इसलिए भयभीत होकर वह उस स्थान से उत्तर की तरफ चला गया और मोहिल के एक नगर में पहुँचकर उसने मुकाम किया। कुछ लोगों की धारणा है कि मोहिल वंश यदुवंशी राजपूतों की एक शाखा है और कुछ लोगों का कहना है कि मोहिलों की एक स्वतंत्र जाति है।

जो भी हो, मोहिल लोगों के राजा की पदवी ठाकुर थी और वह एक सौ चालीस ग्रामों तथा नगरों पर शासन करता था। वहाँ के संगठित मोहिलों को पराजित करने का साहस

वीदा को न हुआ। इसलिए अपनी सफलता के लिये उसने एक योजना तैयार की। वीदा ने मोहिलों के राजा के साथ मारवाड़ की एक राजकुमारी के विवाह का प्रस्ताव किया। राठौर राजकुमारी के साथ विवाह करना मोहिल राजा के लिए अत्यन्त सम्मानपूर्ण था। इसलिए उसने उस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया।

मोहिलों का राजा छापर नगर में रहता था। इसलिए मारवाड़ के राठौर विवाह करने के लिए राजकुमारी को छापर में ले आये। उसके साथ वहुत-सी डोलियाँ और वहलें आयीं। मोहिलों के राजा ने वड़े सम्मान के साथ उन सव को अपने दुर्ग में स्थान दिया। दुर्ग के भीतर पहुँचने पर डोलियों और वहलों से वहुत वड़ी संख्या में तलवारें लिए हुए राठौर सैनिक निकल पड़े और उन्होंने मोहिलों के राजा पर आक्रमण किया।

उस दुर्ग में मोहिलों की जो सेना थी, उसके साथ वड़ी तेजी से मारकाट आरम्भ हो गयी। इसी समय राठौरों की एक सेना वाहर से आकर उस दुर्ग में पहुँच गयी। उसकी सहायता से वीदा ने वहाँ विजय प्राप्त की और उसने मोहिलों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया, इस जीत के उपलक्ष में वीदा ने लाडनू नामक नगर और वारह ग्राम अपने पिता को दिये, जो अव तक मारवाड़ राज्य के अधिकार में हैं।

वीदा की मृत्यु के वाद उसके पुत्र तेजसिंह ने अपने पिता के नाम से वहाँ पर राजधानी वनवाई। उसके वाद के वंशज वीदावत के नाम से प्रसिद्ध हुये। वीदावत लोग साहसी और शूरवीर थे, वीकानेर के राजा ने उनसे कभी कर नहीं लिया। यहाँ की जमीन एक सी थी और खेती के लिये अत्यन्त उपयोगी थी। इसलिये वहाँ पर गेहूँ की पैदावार वहुत होती थी। उस समय के ग्रन्थों से पता चलता है कि मोहिलों के समस्त नगरों और ग्रामों में चालीस हजार से लेकर पचास हजार व्यक्ति तक रहते थे। इस आवादी का एक तिहाई भाग राठौरों का था। वह राज्य वारह भागों में विभाजित था और प्रत्येक भाग एक जागीर के रूप में था। उनमें पाँच जागीरों के सामन्त वहुत प्रसिद्ध थे। इस राज्य के आदि निवासी मोहिल लोग थे। जिनके परिवार वहाँ पर अव वीस से अधिक न रह गये। वहाँ की शेष जातियों में जाट, कृपक और व्यवसायी हैं।

अध्याय-47

बीकानेर की जाट एवं अन्य जातियाँ

योरोप के लोग बीकानेर की बहुत कम जानकारी रखते थे। वे इसे पूर्ण रूप से मरुभूमि समझते थे। राठौर राजपूतों के द्वारा आज से तीन सौ वर्ष पहले इस राज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय इसकी जैसी हालत थी, वह अब नहीं रह गयी। पहले की अपेक्षा यह राज्य बहुत अवनत हो गया है। उन दिनों, में बीकानेर राज्य की आबादी बहुत घनी थी और दूसरी बातों में भी यह राज्य उन्नत अवस्था में था। परन्तु उसकी वे अवस्थायें अब एक भी नहीं रह गयीं।

इस राज्य की प्राकृतिक अवस्था में बहुत परिवर्तन हो गया है। इसकी उपजाऊ भूमि में बालू की अधिकता हो गयी है। फिर भी यहाँ पर खेती के द्वारा जो अनाज पैदा होता है, उससे यहाँ के निवासियों को खाने-पीने की कोई कमी नहीं रह सकती।

बीकानेर के राजा आवश्यकता पड़ने के समय दस हजार सैनिकों की सेना अपने अधिकार में कर लेते थे और उस सेना के खाने-पीने की पूरी व्यवस्था राज्य की पैदावार से ही होती थी। भूमि की उस पैदावार में भी कमी हो गई है। लेकिन राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति उसके द्वारा हो सकती है। परन्तु कई कारणों से उस पैदावार का लाभ राज्य के निवासी इन दिनों में नहीं उठा पाते।

बीकानेर के इस अभाव के दो प्रमुख कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि शासक की निर्बलता के कारण राज्य में चोरी और डकैती बहुत बढ़ गयी हैं। राज्य के बाहर की जातियाँ प्रायः संगठित होकर इस राज्य के निवासियों पर आक्रमण करती हैं और लोगों के घरों की सम्पत्ति के साथ-साथ उनका अनाज लूटकर ले जाती हैं। इस प्रकार की लूट राज्य में प्रायः होती रहती है, जिससे प्रजा खाने-पीने की चीजों और आर्थिक परिस्थितियों में लगातार गरीब होती जाती है। राज्य की तरफ से उसका कोई प्रबन्ध नहीं हो पाता।

प्रजा की बढ़ती हुई आर्थिक निर्बलता का दूसरा कारण राजा का क्रूर शासन है। प्रजा से अनावश्यक कर वसूल किये जाते हैं। इन करों के वसूल करने का राज्य में कोई विधान नहीं है। पुराने करों के अतिरिक्त राजा कभी भी कोई नया कर लगा सकता है और वह कर निर्दयता के साथ वसूल किया जाता है। इन दोनों कारणों से राज्य की आर्थिक परिस्थितियां दिन पर दिन निर्बल होती जाती हैं। एक तरफ खेती की पैदावार कम हो रही है, राज्य का वाणिज्य क्षीण होता जा रहा है और दूसरी तरफ राजा के कर और लुटेरों के अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं।

इन कारणों का प्रभाव यह पड़ा है कि राज्य की पुरानी अवस्था तेजी के साथ बदल रही है। जनसंख्या लगातार कम हो रही है। तीन शताव्दी पहले राज्य के जो नगर और ग्राम लोगों से भरे हुए दिखाई देते थे, वे बहुत कुछ पहले की अपेक्षा जनहीन हो गये हैं और न जाने कितने ग्राम अपने अस्तित्व खो चुके हैं। जो वाकी रह गये हैं, वे उत्तरोत्तर दीन और दुर्वल होते जाते हैं।

किसी समय इस राज्य में वहुत अच्छा व्यवसाय होता था और उस व्यवसाय से जो महसूल वसूल किया जाता था, उससे राज्य का खजाना सदा भरा रहता था। उस खजाने की दशा अव शोचनीय हो गयी है। जो खजाने राज्य के साधारण करों के द्वारा परिपूर्ण रहते थे, वे अनेक नये कर लगाये जाने के वाद भी अव खाली रहते हैं। राजा का ध्यान प्रजा एवं खजाने की इस दुरवस्था की तरफ नहीं है। वह आवश्यकता पड़ने पर प्रजा से उसी प्रकार रुपये वसूल करता है, जिस प्रकार कुओं से पानी भर लिया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य की शक्तियाँ निर्वल पड़ गयी हैं और प्रजा के कष्टों में अधिक वृद्धि हो गयी है।

विकने के लिये जो चीजें राज्य में वाहर से आती थीं और जिनकी चुंगी से राज्य को अच्छी आमदनी होती थी, लुटेरों के भय से उनका आना वन्द हो गया है। इसके फलस्वरूप राज्य के व्यावसायिक नगर चूरू, राजगढ़ और रेनी आदि के वाजार खाली पड़े रहते हैं। इन वाजारों में सिन्धु और गंगा के निकटवर्ती नगरों का बहुत सा माल जो विकने के लिये आया करता था, सव एक साथ वन्द हो गया है। इस प्रवन्ध की हानि न केवल वीकानेर राज्य को पहुँची है, वल्कि जैसलमेर और पूर्वी सीमा के राज्यों की भी दशा इसी प्रकार की हो गयी है। वीकानेर की तरह उन राज्यों में लुटेरों के आतंक वढ़ गये हैं।

वीकानेर राज्य को वीदावत लोगों ने लूटमार करके क्षति पहुँचायी है, उसी प्रकार जैसलमेर को मालदेवोत और जयपुर के शेखावत लोगों ने लगातार लूट करके कमजोर वना दिया है। इन लुटेरों की संख्या वढ़ गयी है। मरुभूमि के पश्चिमी भाग में रहने वाले सराई, खोसा और राजड लोगों का यही व्यवसाय हो गया है। उनके झुण्ड इधर-उधर घूमा करते हैं और जहाँ कहीं मौका पा जाते हैं, लूटकर भाग जाते हैं। इन लुटेरों की दशा अरेविया के वेडूइन लोगों की तरह हो गयी है।

वीकानेर का विस्तार, उसकी भूमि और जनसंख्या-इस राज्य के पूगल से राजगढ़ तक सभी ग्राम और नगर पूर्वी ग्रामों और नगरों की अपेक्षा अधिक विशाल हैं। वे एक सौ अस्सी मील पक्की भूमि में फैले हुए हैं। उनकी चौड़ाई उत्तर से दक्षिण की तरफ है। भटनेर और महाजन इलाके के मध्यवर्ती ग्राम और नगर एक सौ साठ मील तक फैले हुए हैं। समस्त वीकानेर राज्य की भूमि लगभग वाईस सौ मील तक विस्तार रखती है। पहले किसी समय इस राज्य में दो हजार सात सौ नगर-ग्राम थे। परन्तु इन दिनों में उनकी संख्या आधी से भी कम हो गयी है।

बीकानेर राज्य की जनसंख्या का यों तो कोई हिसाव हमारे सामने नहीं है। परन्तु उसके प्रधान वारह नगरों की जनसंख्या जो नीचे दी जा रही है, उसके आधार पर राज्य की जनसंख्या का अनुमान लगाया जा सकता है और वह अनुमान लगभग सही होना चाहिये। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

जैतपुर के पश्चिम की तरफ के ग्राम और नगर अधिक जन शून्य हो गये हैं और वहाँ से भटनेर तक के ग्रामों और नगरों की भी यही अवस्था है। उत्तर-पूर्व के ग्रामों और नगरों की जनसंख्या वहुत कम है। राज्य के दूसरे भागों की जनसंख्या भी कम है। राज्य के मध्यवर्ती स्थानों की जनसंख्या साधारण है। वहां पर इस कमी का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। उत्तरी भाग के स्थानों की जनसंख्या भी ठीक है। राज्य के प्रमुख बारह नगरों के घरों की संख्या इस प्रकार है-

	नगर		घरों की संख्या
1.	बीकानेर		12000
2.	नोहर		2500
3.	भादरां		2500
4.	नरैनी		1500
5.	राजगढ़		3000
6.	चुरू		3000
7.	महाजन		800
8.	जैतपुर		1000
9.	बीदासर		500
10.	रतनगढ़		1000
11.	देशमुख		1000
12.	सनथाल		50
	जोड़		**28850**
100 ग्राम, प्रत्येक के घरों की संख्या		200	20000
100 ग्राम, प्रत्येक के घरों की संख्या		150	15000
200 ग्राम, प्रत्येक के घरों की संख्या		100	20000
800 छोटे ग्राम, प्रत्येक के घरों की संख्या		30	14000
		कुल जोड़	**107850**

ऊपर लिखे हुए स्थानों के घरों की संख्या का उल्लेख किया गया है। यदि प्रत्येक घर में पाँच मनुष्यों का औसत रखा जाए तो ऊपर लिखे हुए समस्त घरों की जनसंख्या 539250 होती है। राज्य की भूमि के हिसाब से प्रत्येक पच्चीस मनुष्यों के हिस्से में एक वर्ग मील की भूमि आती है। यहाँ के निवासियों में तीन चौथाई जाटों की संख्या है और राज्य के बाकी लोग बीका के वंशज हैं। राज्य में सारस्वत ब्राह्मण, चारण कवि और कुछ अन्य जातियाँ रहती हैं। उनकी संख्या राजपूतों की संख्या का दश प्रतिशत भी नहीं है।

जाट लोग-बीकानेर राज्य में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जाटों की संख्या वहुत अधिक है और वे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सम्पत्तिशाली हैं। उनके अधिकार में

राज्य की अधिक भूमि भी है। परन्तु वे बड़ी गरीबी के साथ रहते हैं। विवाह जैसे कार्यों में वे आवश्यकता से अधिक व्यय करते हैं। उनमें आतिथ्य-सत्कार की भावना विशेष रूप से पायी जाती है। मार्ग में चलने वाले यात्रियों को भी बुलाकर भोजन कराने में वे अपना गौरव अनुभव करते हैं।

सारस्वत ब्राह्मण- इस राज्य में सारस्वत ब्राह्मणों की अधिक संख्या है। वे गर्व के साथ अब भी कहा करते हैं कि मरुभूमि में जाटों के आने के पहले हमारे पूर्वज यहाँ के राजा थे। वे स्वभावत: परिश्रमशील और शान्तिप्रिय देखे जाते हैं। ये लोग मांस खाते हैं, तम्बाकू का सेवन करते हैं और खेती के साथ-साथ अधिक संख्या में गायें रखते हैं।

चारण लोग-बीकानेर में चारण लोगों का सम्मान अधिक होता है। ये लोग अपनी कविताओं में राजपूतों के शौर्य का वर्णन करते हैं। यही कारण है कि राठौर लोग उनकी कविताओं को सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं। राज्य की तरफ से जीवन-निर्वाह के लिये इन लोगों को भूमि दी जाती है। जैसलमेर के इतिहास में चारण कवियों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

प्रत्येक राजपूत परिवार में माली और नाई काम करते हुए देखे जाते हैं। उनकी संख्या प्रत्येक ग्राम में है। यहाँ के राजपूतों के घरों पर प्राय: यही लोग भोजन बनाने का भी काम करते हैं।

चूहड़ और थोरी-ये दोनों वास्तव में लुटेरों की जातियाँ हैं। चूहड़ लोग लक्खी जंगल के और थोरी लोग मेवाड़ के रहने वाले हैं। बीकानेर के सामन्तों के यहाँ इन दोनों जातियों के लोग वेतन लेकर काम करते हैं। ये लोग भयानक कार्यों के सामने भी कभी भयभीत नहीं होते। भादराँ के सामन्तों के यहाँ नौकरों में इन दोनों जातियों के लोगों की संख्या अधिक थी। लोगों का विश्वास है कि चूहड़ लोग बहुत विश्वासी होते हैं। इसलिये सीमा और नगर की रक्षा का भार प्राय: उनके हाथों में दिया जाता है। शवदाह के समय ये लोग एक-एक आना सभी से अपनी दस्तूरी लेते हैं। इससे जाहिर होता है कि इस प्रकार दस्तूरी लेने की प्रथा प्राचीन-काल में उनके पूर्वजों में थी।

राजपूत-इस राज्य में अनेक परिवर्तन होने के बाद भी बीकानेर के राठौरों की वीरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारत की अन्य शूरवीर जातियों में इन राठौरों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण माना जाता है। मारवाड़, आमेर और मेवाड़ के राजपूतों की तरह बीकानेर के राठौरों पर मराठा और पठान अत्याचार नहीं कर सके। लेकिन उनको अपने ही राज्य की क्रूरता से अत्याचारों को अधिक सहना पड़ा है।

राठौर राजपूत खाने-पीने के सम्बन्ध में बहुत पुराने विचारों के पक्षपाती नहीं हैं। वे लोग जिसके हाथ का पानी पीते हैं, उसके हाथ का भोजन भी करते हैं। ये लोग जन्म से ही साहसी,धैर्यशील, सरल स्वभाव के और शूरवीर होते हैं। अफीम, गाँजा और दूसरी मादक चीजों का सेवन करने के कारण इन लोगों ने अपनी शारीरिक शक्तियों का क्षय किया है।

प्राकृतिक अवस्था-कुछ स्थानों को छोड़कर राज्य के लगभग सभी स्थानों की भूमि में बालू अधिक पायी जाती है-कहीं कम और कहीं अधिक। पूर्व से लेकर पश्चिमी सीमा तक

के सभी ग्रामों और नगरों की भूमि रेतीली है। उत्तरी और पूर्वी भाग में राजगढ़ से नोहर और रावतसर तक की मिट्टी उत्तम श्रेणी की पायी जाती है। उस मिट्टी का रंग काला है। कहीं-कहीं उसमें रेत का अंश भी देखा जाता है। यह मिट्टी खेती के लिये उपयोगी है। इसलिये इस भूमि में गेहूँ, चना और चावल की अधिक पैदावार होती है। भटनेर से गारा के नजदीक तक की मिट्टी भी अच्छी पायी जाती है। मोहिलों के ग्रामों और नगरों की भूमि अधिक रेतीली है। बरसात का पानी वहाँ पर चारों तरफ भर जाता है। जिससे खेतों की आवपाशी करने में बड़ी सहायता मिलती है। मेवाड़ और मारवाड़ की अपेक्षा इस राज्य में जो बाजरा पैदा होता है। वह अधिक अच्छा समझा जाता है। तिल और सोंठ की पैदावार भी यहाँ अच्छी होती है।

जो मिट्टी गेहूँ के लिये उपयोगी होती है, उसमें कपास भी अधिक पैदा होती है। एक बार की बोई हुई कपास सात-सात और कभी-कभी दस-दस वर्ष तक बराबर फलती है। कपास के फलों को निकाल लेने के बाद कृषक लोग उनके वृक्षों की शाखाओं का नीचे से आधा भाग काट डालते हैं। उन वृक्षों के नीचे का भाग जो रह जाता है, वह फिर बढ़ता है और पूरे आकार में पहुँचकर फैलता है। बीकानेर में रूई की पैदावार अधिक होती है।

इस राज्य में शाक-सब्जी भी अधिक पैदा होती है। यहाँ ज्वार, कचरी, ककड़ी और बड़े-बड़े तरबूज पैदा होते हैं। जल की कम वृष्टि का प्रभाव इन चीजों की पैदावार में नहीं पड़ता। सूखे तरबूजों का आटा स्वास्थ्य के लिये उपयोगी माना जाता है। भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बीकानेर के तरबूज स्वादिष्ट और उत्तम माने जाते हैं।

इस राज्य की खेती वर्षा पर निर्भर है। यहाँ पर दुर्भिक्ष का भय हरदम बना रहता है। इसलिये यहाँ के निवासी यथा सम्भव खाने के पदार्थों को अपने यहाँ संग्रह करके रखते हैं। ऐसे अवसरों पर गरीब लोग प्रायः भुरुट, बूट, हिरारु आदि के फलों को सुखाकर और उनका आटा बनाकर बाजरे के आटे के साथ मिलाकर खाते हैं। छोटी श्रेणी के लोग बनबेर, खैर और किरीट आदि फलों का अपने यहाँ संग्रह करते हैं। कुछ और भी ऐसी चीजें हैं जो एकत्रित करके रखी जाती हैं और दूसरे अनाजों के अभावों में वे खाने में प्रयोग की जाती हैं।

यहाँ की रेतीली भूमि में बड़े वृक्ष नहीं पाये जाते। राज्य के प्रमुख स्थानों में आम की तरह को वृक्षों के लगाने की कोशिश की जाती है। परन्तु बबूल, पीलू और जाल नाम के छोटे-छोटे वृक्ष यहाँ अधिक पैदा होते हैं। सेटुडा नाम का एक वृक्ष यहाँ पाया जाता है। उसकी ऊँचाई लगभग बीस फुट की होती है। नीम के वृक्ष भी यहाँ पाये जाते हैं। सक नाम का वृक्ष यहाँ अधिक उपयोगी समझा जाता है। लोग कुए के चारों ओर उसका घेरा बना देते हैं जिससे कुए में रेत न जा सके।

बीकानेर राज्य में आक के वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। वे बड़े और मजबूत भी होते हैं, उनकी जड़ों से जो रस्सियाँ बनायी जाती हैं, वे बड़े काम की और मजबूत साबित होती हैं, और वे मूँज की रस्सियों से अच्छी समझी जाती हैं। बीदावाटी में सन और मूँज भी पैदा होती है।

खेती के यन्त्र-यहाँ पर हल के द्वारा खेती होती है। बैलों और ऊँटों के द्वारा हल जोते जाते हैं। दो बैलों अथवा ऊँटों से हल माली लोग उस दशा में चलाते हैं, जब मिट्टी अधिक कड़ी होती है।

जल–यहाँ की भूमि में जल वहुत गहराई में मिलता है। वीकानेर की राजधानी के पास के स्थानों में दो सौ और कहीं तीन सौ फुट जमीन खोदने पर जल निकलता है। वहाँ पर ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ साठ फुट खोदने के पहले पीने का पानी निकल सके। तीस फुट खोदने के वाद जो पानी निकलता है, वह पशुओं के पीने के लायक होता है। प्रत्येक कुए के आस-पास एक तरह के वृक्ष की दीवार वँधी रहती है। इसका घेरा वालू को कुए में जाने से रोकता है। राज्य के सभी प्रधान नगरों में माली लोग जल वेचने का कार्य करते हैं। लोगों के घरों पर हौज वने होते हैं। उनमें वरसात का पानी भरकर इकट्ठा हो जाता है। ये हौज ईंटों और पत्थरों से वनाये जाते हैं। उनके ऊपर हवा जाने का एक मार्ग खुला रहता है। इनमें से कुछ हौज वहुत वड़े होते हैं। इनका पानी आठ महीने तक और कभी-कभी वारह महीने तक उपयोग में लाने के लिये अच्छा वना रहता है। वीकानेर में जल का अभाव होने के कारण वहाँ के लोगों को इस प्रकार के प्रवन्ध करने पड़ते हैं।

नमक की झीलें–यहाँ पर नमक की जो झीलें हैं, वे एक जगह मिलकर सिर झील के नाम से प्रसिद्ध हो गयी हैं। मारवाड़ की झीलों की तरह यहाँ की कोई भी झील वड़ी और विशाल नहीं है। सिर झील के तट पर सिर नाम का एक विशाल नगर वसा हुआ है। उसका नाम यहाँ की वड़ी झील के नाम से रखा गया है।

इस राज्य में सिर झील की लम्वाई और चौड़ाई प्रायः छः मील की समझी जाती है। दूसरी नमक की झील लम्वाई और चौड़ाई में दो मील की है और वह चौपूर के पास है। ये दोनों झीलें कहीं पर भी पाँच फुट से अधिक गहरी नहीं हैं। गर्मी के दिनों में इन झीलों का नमक अपने आप जल के ऊपर आ जाता है और वह जमी हुई अवस्था में लोगों को मिलता है। इन दोनों झीलों का नमक राज्य की दक्षिणी झील से हल्का होता है और इसलिये वह सस्ता भी विकता है।

खनिज पदार्थ–इस राज्य में खनिज पदार्थों की पैदावार वहुत कम है। राज्य के कई भागों में अच्छे पत्थर की खानें हैं। राजधानी से छव्वीस मील की दूरी पर उत्तर-पश्चिम की तरफ पूसियारा नाम की एक खान है।* वीदासर और विरामसर में ताँवे की खानें हैं। लेकिन विरामसर की खान से कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि उससे जो ताँवा निकलता है, वह खर्च को भी पूरा नहीं करता। वीदासर की खानों से तीस वर्ष तक ताँवा निकालने का काम किया गया है। परन्तु अव वह वन्द है।

वीकानेर में कोलाद नाम का एक स्थान है। उसके करीव की एक खान से तेल से भीगी हुई मिट्टी निकलती है। वह विकने के लिये दूसरे देशों और राज्यों में भेजी जाती है। इस मिट्टी से शरीर और वालों की सफाई होती है। कहा जाता है कि इस मिट्टी के प्रयोग से शरीर की सुन्दरता वढ़ती है। राज्य को इस मिट्टी से पन्द्रह सौ रुपये की आमदनी होती है।

राज्य के पशु–यहाँ की गायें श्रेष्ठ मानी जाती हैं। ऊँट वोझ लादने और युद्ध में सवारी का काम देते हैं। भारतवर्ष के अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ के ऊँट अधिक उपयोगी समझे जाते हैं। इसीलिये उनकी कीमत भी अधिक होती है। इस राज्य में भेड़ों की संख्या वहुत

* पूसियारा नामक खान से राज्य को प्रत्येक वर्ष दो हजार रुपये की आमदनी होती है।

है। नील गाय और हिरण भी यहाँ बहुत मिलते हैं। बीकानेर के जंगलों में शेर पाये जाते हैं। भैंसों, बकरियों और गायों के दूध से घी अधिक मात्रा में तैयार होता है। उनकी बिक्री करके यहाँ के लोग बहुत लाभ उठाते हैं।

लोहे की चीजें- लोहे की बनी हुई चीजें बीकानेर की बहुत प्रसिद्ध हैं। राज्य के प्रमुख नगरों में लोहे के कारखाने हैं। उनमें छोटे-बड़े चाकुओं से लेकर तलवारें, भाले और बन्दूकें तैयार की जाती हैं। यहाँ के कारीगर हाथी दाँत की बहुत-सी चीजें तैयार करते हैं। वे स्त्रियों के लिए उनकी चूड़ियाँ और कड़े भी बनाते हैं।

राज्य में साधारण श्रेणी का कपड़ा भी तैयार होता है, जो स्त्रियों और पुरुषों के पहनने में काम आता है।

मेले-कोलाद और गजनेर नामक नगरों में मेले लगते हैं। कार्तिक और फाल्गुन के महीनों में ये मेले वर्ष में दो बार हुआ करते हैं। उनमें अनेक प्रकार के व्यवसायी आते हैं और छोटी-मोटी बहुत-सी चीजों के सिवा ऊँटों, गायों के साथ-साथ मुलतान और लक्खी जंगल के प्रसिद्ध घोड़े बिकते हैं। राज्य के ये मेले पहले बहुत प्रसिद्ध थे। लेकिन उनका वह गौरव अब नहीं रह गया।

राज्य के कर-बीकानेर में पहले कई प्रकार के कर वसूल किये जाते थे। परन्तु उनमें भूमि का कर, खेती का कर और अपराधियों से लिया जाने वाला कर-राज्य के तीन प्रमुख कर थे और उनसे राजा को पाँच लाख रुपये से अधिक की आमदनी नहीं होती थी। बीकानेर के सामन्तों के अधिकार में अन्य राज्यों के सामन्तों की अपेक्षा अधिक भूमि है। इसका कारण यह है कि बीदावत और कांधलोत लोगों ने अपने अधिकार की भूमि पर स्वतंत्र शासन कर रखा था। उन दोनों वंशों के अधिकारियों की भूमि को यदि एक में मिला दिया जाए तो वह मिली हुई भूमि बीकानेर राज्य की शेष सम्पूर्ण भूमि से अधिक हो जाती है। इन दोनों वंशों ने बीकानेर के राजा को कर कभी नहीं दिया। केवल सम्मान के लिए वे लोग राजा का गौरव स्वीकार करते थे। राजगढ़, रेनी, नोहर, गारा, रतनगढ़ और चुरू की भूमि राजा के अधिकार में है। चुरू का अधिकार अभी थोड़े दिन पहले राजा के हाथ में आया है।

राज्य में छः प्रकार के कर वसूल किये जाते हैं-(1) खालसा भूमि कर (2) धुआँ का कर (3) अंग कर (4) चुंगी और यातायात का कर (5) कृषि का कर और (6) मालवा का कर।

1. खालसा भूमि कर-इस कर से राज्य को पहले दो लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। परन्तु अच्छे शासन के अभाव में राज्य के कितने ही नगर और ग्राम बरबाद हो गये हैं। खालसा भूमि के ग्रामों की संख्या पहले दो सौ थी परन्तु अब उनकी संख्या अस्सी से अधिक नहीं है और इन अस्सी ग्रामों से राजा को जो आय होती है, वह एक लाख रुपये से अधिक नहीं होती। इस हानि का बहुत-कुछ कारण राजा सूरतसिंह था। उसने राज्य की भूमि लोगों को देने में बुद्धि से काम नहीं लिया। किसको देना चाहिए और किसको नहीं- कितनी भूमि देनी चाहिए और कितनी न देनी चाहिए, यह विचार सूरत सिंह ने कभी नहीं किया। जिसको जितनी भूमि न देनी चाहिए, उसको उतनी दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य

की दूसरी भूमि की आमदनी मारी गयी और राजा के अधिकार में केवल खालसा भूमि रह गयी। इस आमदनी के घट जाने के कारण खजाने की कमी को वह प्रजा से मनमाना धन लेकर पूरा करता रहा।

2. धुआँ कर–यह कर वास्तव में चूल्हा कर है। प्रत्येक घर में रसोई बनती है और खाना पकाया जाता है। घरों में धुआँ निकलने के लिये धुआँरे नहीं होते। इसलिये सूरतसिंह के शासनकाल में यह कर लगाया गया और प्रत्येक घर अथवा परिवार से इस कर का एक रुपया वसूल किया जाता था। इस कर के पहले अन्य करों से जो रुपये वसूल होते थे, वे कम न थे। प्रत्येक प्रधान सामन्त को इस कर के पहले लगभग एक लाख रुपये की आमदनी होती थी। फिर भी यह कर लगाया गया था। यह कर केवल जैसलमेर और बीकानेर के राज्यों में ही वसूल किये जाते हैं।

3. अंग कर–यह एक प्रकार का शारीरिक कर है, जो प्रत्येक शरीर पर वसूल किया जाता है। राजा अनूपसिंह ने यह कर प्रचलित किया था। इस कर में प्रत्येक स्त्री-पुरुष से चार आने के हिसाब से वसूल किया जाता है। इस कर में गायें, बैल और भैंसें भी शामिल हैं। उन पर भी यह कर लगता है। दस बकरियों का कर एक भैंस के कर के बराबर होता है। प्रत्येक ऊँट पर इस कर का एक रुपया लगता है। राजा गजसिंह ने इस कर को दो गुना कर दिया था। इस कर में प्राय: कमी और बढ़ोतरी होती रही है। राज्य को इसके द्वारा दो लाख रुपये की आमदनी होती है।

4. यातायात अथवा वाणिज्य कर–इस कर में प्राय: परिवर्तन हो जाता है। राजा सूरतसिंह के शासनकाल में इस कर की आमदनी बहुत कम हो गयी थी। प्राचीन काल में केवल राजधानी से इस कर की जो आमदनी होती थी, उतनी उन दिनों में पूरे राज्य की भी नहीं होती थी। पहले इस कर से राज्य को दो लाख रुपये मिलते थे। परन्तु आजकल जो आमदनी होती है, वह एक लाख रुपया भी नहीं है। लुटेरों के अत्याचारों के कारण राज्य के वाणिज्य को बहुत आघात पहुँचा है और उसी से वाणिज्य कर की आमदनी बहुत घट गयी है। मुलतान,भावलपुर और शिकारपुर से जो व्यवसायी बीकानेर होकर पूर्व के नगरों और राज्यों को जाते थे, लुटेरों के भय के कारण उनका राज्य में आना बन्द हो गया है।

5. कृषि कर–यह कर खेती का काम करने वालों पर लगता है और प्रत्येक हल पर पाँच रुपये वसूल किये जाते हैं। प्राचीन काल में इस कर के रूप में किसानों से अनाज लिया जाता था। खेतों की पैदावार का एक चौथाई अनाज राजा ले लेता था। राजा रायसिंह ने इस व्यवस्था में परिवर्तन किया। परिवर्तन का कारण यह था कि पहले किसानों से जो एक चौथाई अनाज वसूल किया जाता था, उसमें राज्य के कर्मचारी बड़ी बेईमानी करते थे और किसानों को बहुत क्षति उठानी पड़ती थी। राजा रायसिंह के द्वारा इस कर में परिवर्तन होने से राज्य के कर्मचारियों को पहले की तरह बेईमानी करने का मौका न मिला। इससे जाट लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस कर से राज्य को पहले दो लाख रुपये की आमदनी होती थी। बीकानेर की खेती लगातार अवनत होती जा रही थी। इसलिए इसके द्वारा एक लाख पच्चीस हजार रुपये की आमदनी होने लगी। इस कमी का बहुत कुछ कारण राज्य में फैली हुई अशान्ति थी, अब उस अवस्था में परिवर्तन हो गया है। इसलिए राज्य की आमदनी भी बढ़नी चाहिए।

6. **मालबा**–माल शब्द का अर्थ भूमि है। बीकानेर में भूमि को जो कर लिया जाता है, वह मालबा कर के नाम से प्रसिद्ध है। यह कर वह है जिसे जाटों ने बीका के सम्मुख आत्म समर्पण करके देना स्वीकार किया था। यह कर बीका के बाद उसके उत्तराधिकारियों में अब तक चला आता है और बीकानेर के राजा उसे बराबर वसूल करते हैं। राज्य की प्रत्येक सौ बीघा भूमि पर इस कर के दो रुपये लिये जाते हैं। इन दिनों में राज्य को इससे जो आमदनी होती है, वह पचास हजार रुपये से भी कम है। करों के द्वारा राज्य की आमदनी का विवरण इस प्रकार है।

1. खालसा ×	100000 रुपये
2. धुआँधार	100000 रुपये
3. अंगकर	200000 रुपये
4. वाणिज्य कर *	75000 रुपये
5. कृषि कर	125000 रुपये
6. मालवा	50000 रुपये
जोड़	**650000 रुपये**

बीकानेर राज्य में धातुई नाम का भी एक कर लगता है। वह तीन वर्ष में एक बार वसूल किया जाता है और एक हल पर पाँच रुपये देने पड़ते हैं। राजा जोरावर सिंह ने यह कर प्रचलित किया था। एशिया घाटी के पचास ग्रामों और बेनीपाल के सत्तर ग्रामों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण राज्य को यह कर देना पड़ता है। जिन ग्रामों से यह कर नहीं लिया जाता, उसका कारण यह है कि उन ग्रामों के निवासी राज्य की सीमा की रक्षा का कार्य करते हैं। इस कर से प्रधान सामन्तों को मुक्त रखा गया है। इसके द्वारा राज्य की आमदनी एक लाख रुपये से भी कम होती है।

ऊपर जिन करों का वर्णन किया गया है राजा सूरतसिंह ने उनके अतिरिक्त राज्य में नये कर लगाकर अपने शासनकाल में रुपये वसूल किये थे। उन दिनों में राज कर्मचारी प्रजा

× नोहर जिले के	84 ग्रामों का कर	100000 रुपये
रेनी जिले के	24 ग्रामों का कर	1000 रुपये
राणिथाँ जिले के	44 ग्रामों का कर	20000 रुपये
जालोली जिले के	1 ग्राम का कर	5000 रुपये
(राजगढ़, चुरू आदि के मिल जाने पर खालसा भूमि का कर)	जोड़	126000 रुपये

* प्राचीन काल के वाणिज्य कर का विवरण नीचे दिया जाता है:

लूनकरण नगर	2000 रुपये
राजगढ़ नगर	10000 रुपये
शेखसर नगर	5000 रुपये
राजधानी वीकानेर	75000 रुपये
चुरू और दूसरे नगर	45000 रुपये
जोड़	137000 रुपये

के साथ भयानक अत्याचार करते थे और मनमाना धन वसूल करते थे। राजा सूरतसिंह के समय इस कर की आमदनी दो गुनी हो गयी थी।

दण्ड और खुशहाली–इन दोनों नामों पर भी कर वसूल किये जाते थे। अपराधियों से जो जुर्माना लिया जाता था, वह दण्ड कर कहलाता था और आवश्यकता पड़ने पर प्रजा से जो कर माँग कर वसूल किया जाता था, उसे खुशहाली कर कहा जाता था। यह कर सामन्तों, व्यवसायियों और सम्पत्तिशालियों से लेकर साधारण प्रजा तक से वसूल किया जाता था।

दण्ड कर वसूल करने के लिये राज्य की तरफ से चौदह कर्मचारी थे। ये कर्मचारी राज्य के प्रमुख नगरों में रहा करते थे। अपराधी को जो दण्ड दिया जाता था, उसका आदेश राज्य के यही कर्मचारी करते थे और जुर्माना करने के बाद यही लोग उसको वसूल भी करते थे। अपराधियों को दण्ड देने के लिए कोई विधान न था। प्रत्येक कर्मचारी, जो राज्य की तरफ से अपराधों का निर्णय करने के लिये नियुक्त होता था, अपनी इच्छानुसार अपराधी को दण्ड की आज्ञा देता था। यह न्यायोचित न था। इसलिये गन्धोली के सामन्तों ने राज्य के इन कर्मचारियों का विरोध किया और उन्हें अपने नगर से निकाल दिया।

राजा सूरतसिंह ने भटनेर पर विजय प्राप्त करके युद्ध के खर्च के लिये खुशहाली कर के नाम पर राज्य के प्रत्येक परिवार से दस रुपये वसूल करने के लिये आदेश दिया और ये रुपये कठोर अत्याचारों के साथ प्रजा से वसूल किये गये थे। बीकानेर में राजा की तरफ से इस प्रकार के जो कर लगते थे और जिनका प्रचार अब तक है, वे खुशहाली कर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस नाम से तो जाहिर यह होता है कि इस कर के रुपये प्रजा को खुश करके वसूल किये जाते हैं। इसीलिये इस कर का नाम खुशहाली कर है। परन्तु किस प्रकार के अत्याचारों के साथ राज्य के कर्मचारी प्रजा से इस कर के रुपये वसूल करते हैं, इसका अनुभव राज्य की उस प्रजा को ही हैं, जिसे राज्य के अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।

सामन्तों की सेनायें–राजा के व्यवहार और चरित्र पर सामन्तों की सेनायें निर्भर होती हैं। यदि सूरतसिंह में प्रजा की भक्ति का भाव होता और उसने किसी भी विपद के समय राज्य और प्रजा की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझा होता तो बीकानेर के सामन्त किसी भी समय बाहरी शक्ति के आक्रमण करने पर दस हजार राजपूतों की सेना लेकर राजा की सहायता कर सकते थे और सामन्तों के द्वारा आने वाले राजपूतों की सेना में बारह सौ अश्वारोही राजपूत होते। यह बात जरूर है कि इन दिनों में राज्य की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। इसलिये इन दिनों में सामन्तों के द्वारा आने वाली राजपूत सेना की उतनी सम्भावना नहीं हो सकती। इन दिनों में राजा के अधिकार में जो सेना है, उसमें एक सेना, जो विदेशी कही जाती है, पाँच सौ पैदल, ढाई सौ अश्वारोही और पाँच बंदूकें रखती है। इस सेना का सेनापति भी बीकानेर राज्य की राजधानी के दुर्ग की रक्षा के लिये एक राजपूत सेना बराबर रखता है। उस सेना को वेतन देने के लिए पच्चीस ग्राम राज्य की तरफ से अलग कर दिये गये हैं।

राजा सूरतसिंह के समय बाहरी सेनायें

	अश्वारोही	पैदल	बन्दूकें
सुलतान खाँ	....	200	....
अनोखेसिंह सिक्ख	....	250	....
बुधसिंह देवड़ा	....	200	....
दुर्जन सिंह	700	4	4
गंगा सिंह	1000	25	6
जोड़	**1700**	**679**	**10**
वन्दूकें	....	....	21
	1700	**679**	**31**

बीकानेर के प्राचीन सामन्तों के विवरण

सामन्त	वंश	निवास	आमदनी	पैदल सेना	अश्वारोही	विवरण
बैरीशाल	बीका	महाजन	40000	50000	100	
अभयसिंह	बेनीरोत	भूकरका	25000	50000	200	बीकानेर का प्रधान सामन्त
अनूपसिंह	वीका	जसाना	5000	400	40	
प्रेमसिंह	बीका	बाई	5000	400	25	
चैनसिंह	वेनीरोत	सावा	20000	2000	300	
हिम्मतसिंह	रावोत	रावतसर	20000	2000	300	
शिवसिंह	वेनीरोत	चूरू	25000	2000	200	
उम्मेदसिंह	वीदावत	वीदासर	50,000	10,000	2,000	
जैतसिंह	वीदावत	साउनदवा				
बहादुरसिंह		मैमनसर				
सूर्यमल्ल	नारनोत	तिनदीसर	40,000	4,000	500	
गुमानसिंह		काटर				
अताईसिंह		कुटचौर				
शेरसिंह		निम्वाजी	5000	500	125	
देवीसिंह		सीधमुख				
उम्मेदसिंह		कारीपुरा				
सुरतानसिंह	नारनोत	अनीतपुरा	20000	5000	400	
करणीदान		विपासर				

सामन्त	वंश	निवास	आमदनी	पैदल सेना	अश्वारोही	विवरण
सुरतानसिंह	कछवाहा	नयनावास	4000	150	30	
पद्मसिंह	पवाँर	जैसीसर	5000	200	100	ये दोनों
किशनसिंह	बीका	हैदेसर	5000	200	50	सामन्त राज्य
रावसिंह	भाटी	पूगल	6000	1500	40	से बाहर के
सुरतानसिंह	भाटी	राजासर	1500	200	50	हैं। एक जय
लखनेरसिंह	भाटी	सनेर	2000	400	75	पुर का और
करणीसिंह	भाटी	सतीसर	1100	200	9	दूसरा वंश
भूमसिंह	भाटी	चक्करा	1500	60	4	का। भाटियों
बीका के प्रारंभिक						ने पूगल पर
चार सामन्त–						अधिकार कर
1.भवानीसिंह	भाटी	बिचनोक	1500	60	6	लिया।
2. जालिमसिंह	भाटी	गुरियाला	1100	40	4	
3. सरदार सिंह	भाटी	सुरजीरा	800	30	2	
4. कायम सिंह	भाटी	रनदीसर	600	32	2	
चन्दन सिंह	करमसोत	नोरवा	11000	1500	500	ग्यारह वर्ष पूर्व जोधपुर से ग्राम पाकर रहने लगा।
सतीदान	रूपावत	वादीला	5000	200	25	
भूमसिंह	भाटी	जांगलू	2500	400	9	
केतसी	भाटी	जामिनसर	15000	500	150	27 ग्राम
ईश्वरीसिंह	मण्डला	सारोंदा	11000	200	150	
पद्मसिंह	भाटी	कूँदसू	1500	60	2	
कल्याणसिंह	भाटी	नैनिया	1000	40	4	
		जोड़	332100	42272	5402	

ऊपर लिखी हुई बीकानेर राज्य के सामन्तों की नामावली उस समय की है, जब राज्य अपने गौरव पर था। लेकिन उसकी राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के पतन के साथ-साथ राज्य के सामन्तों की संख्या और अवस्था भी बदलती गयी।

□

अध्याय-48

भटनेर व उसका शासक बैरसी

भटनेर जो इस समय बीकानेर का एक महत्वपूर्ण अंग है और जिसके द्वारा इस राज्य के विस्तार की वृद्धि हुई है, किसी समय जाटों का प्रसिद्ध निवास स्थान था। वे जाट उस समय इतने शक्तिशाली थे कि वे अपने राजा के साथ भी युद्ध करने के लिए कभी-कभी तैयार हो जाते थे और राजा पर जब कोई आक्रमण करता था तो वे अंपनी पूरी शक्ति के साथ राजा की सहायता करते थे। इसका भटनेर नाम इस बात को जाहिर करता है कि राज्य का सम्बन्ध भाटी लोगों के साथ हुआ। कुछ पुरानी खोजों से पता चलता है कि एक शक्तिशाली राजा ने इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी। भटनेर भाट शब्द से बना है। इसलिये जाहिर है कि प्राचीनकाल में भाटी जाति ने यहाँ पर अपना राज्य कायम किया था और उसका नाम भटनेर रखा। जैसलमेर के इतिहास में इसके सम्बन्ध में अधिक आलोचना की गयी है।

भटनेर राज्य के उत्तरी भाग की भूमि जो गाडा नदी के किनारे तक चली गयी है, इन दिनों में जल-शून्य हो रही है परन्तु प्राचीन काल में उसकी कुछ और ही दशा थी। उन दिनों में भटनेर का इलाका बहुत गौरवपूर्ण माना जाता था। भारतवर्ष में भटनेर एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है और उसको ऐतिहासिक गौरव मिलने का कारण यह है कि मध्य एशिया से भारतवर्ष जाने का रास्ता भटनेर से होकर है। इसलिये यह बहुत सम्भव है कि गजनी के शासक महमूद के द्वारा भारत पर आक्रमण करने के समय भटनेर के शूरवीर जाटों ने युद्ध करके उसको रोकने की चेष्टा की हो। इस जाति के पूर्वजों ने महमूद गजनी के भारत में आने से बहुत पहले इस देश की मरुभूमि में राज्य स्थापित किया था।

जाट वंश को जब राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में माना गया है तो यह निर्विवाद सत्य है कि महमूद गजनी के बहुत पहले से ये जाट लोग बहुत शक्तिशाली थे। शहाबुद्दीन गौरी के भारत में विजयी होने के बारह वर्ष पहले सन् 1205 ईसवी में उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन ने उन जाटों के साथ युद्ध किया था, जो मरुभूमि के उत्तरी भाग में रहते थे और इस युद्ध का कारण यह था कि उन जाटों ने मुस्लिम साम्राज्य के हाँसी नामक इलाके पर अधिकार कर लिया था। बादशाह फीरोज की उत्तराधिकारिणी रजिया बेगम अपने राज्य का सिंहासन छोड़ने के लिये बाध्य होने पर आश्रय के लिये जाटों के पास गयी थी और उन जाटों ने रजिया बेगम को अपने यहाँ स्थान दिया था। उन जाटों ने रजिया बेगम की सहायता में उसके शत्रुओं के साथ युद्ध भी किया था। परन्तु उसका कोई परिणाम न निकला और रजिया बेगम स्वयं युद्ध में मारी गयी।

सन् 1357 ईसवी में फिर से आक्रमण करके तैमूर ने जब भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया. उस समय उसने भटनेर पर आक्रमण किया था और उसके इस आक्रमण का

कारण यह था कि तैमूर ने जब मुलतान पर आक्रमण किया था, उस समय जाटों ने उसके साथ भयंकर युद्ध किया था। इसलिये उसके बदले में तैमूर ने अपनी सेना लेकर भटनेर पर आक्रमण किया और वहाँ के जाटों को उसने भयानक क्षति पहुँचायी।

इस भटनेर के साथ जाटों और भाटी लोगों का इतना निकटवर्ती सम्बन्ध है कि उन दोनों को ऐतिहासिक आधार लेकर और सही की खोज करके, एक दूसरे से पृथक करना कठिन मालूम होता है। तैमूर के आक्रमण करने के कुछ दिनों के बाद मरोठ और फूलरा के एक वंशज ने भाटी राजा की अधीनता से निकलकर भटनेर पर अधिकार कर लिया था। उस भाटी राजा का नाम था बैरसी। भटनेर में उन दिनों एक मुसलमान शासन करता था। उसकी नियुक्ति तैमूर के द्वारा हुई थी अथवा दिल्ली के बादशाह के द्वारा, इसको निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ भी हो, उन दिनों भटनेर में जो मुसलमान शासन करता था, उसका नाम था, चिगात खाँ।

भटनेर पर सत्ताईस वर्ष तक राज्य करके बैरसी ने संसार छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की और उसके स्थान पर उसका बेटा भीरू राजा हुआ। भीरु के शासनकाल में चिगात खाँ के उत्तराधिकारियों ने दिल्ली के बादशाह की सहायता लेकर दो बार भटनेर पर आक्रमण किया और दोनों बार भीरू ने उसको पराजित किया। इसके पश्चात तीसरी बार फिर उसने एक शक्तिशाली सेना लेकर भटनेर पर आक्रमण किया। उस समय युद्ध में भीरू की शक्तियाँ निर्बल पड़ गयीं। भीरू को अन्त में शत्रु से सन्धि का प्रस्ताव करना पड़ा। उस समय शत्रु से उसको उत्तर मिला कि यदि आप इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लें अथवा दिल्ली के बादशाह के साथ अपनी लड़की का व्याह कर दें तो आप के राज्य भटनेर का होने वाला विनाश रोका जायेगा।

भीरू के सामने इस समय भयानक विपद थी। वह अपनी छोटी-सी सेना के साथ भटनेर के दुर्ग में था और खाने-पीने की तथा दूसरी कठिनाइयाँ भयानक रूप से उसके सामने थी। प्राणों की रक्षा का कोई दूसरा उपाय न देखकर उसने पहली शर्त-इस्लाम को स्वीकार कर लिया। उसी समय से भीरू का वंश भट्टी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ और शेष भाटी लोगों से उसका सम्बन्ध टूट गया।

भीरू के पश्चात् उसके वंश के अन्य छः लोगों ने भटनेर के सिंहासन पर बैठकर राज्य किया। भीरू से छठे राजा का नाम रावदुलीच उर्फ हयातखाँ था। वह जिस समय भटनेर के सिंहासन पर बैठा, उस समय बीकानेर के राजा रायसिंह ने आक्रमण करके भटनेर पर अधिकार कर लिया। उसके बाद भीरू के वंशज फतेहाबाद में जाकर रहने लगे। हयातखां के मरने के बाद उसके पोते हुसैन खाँ ने राजा सुजानसिंह के समय आक्रमण करके भटनेर पर अपना अधिकार कर लिया। अन्त में राजा सूरतसिंह ने बहादुर खाँ के शासनकाल में भटनेर पर आक्रमण करके उसको अपने राज्य में मिला लिया।

राजा सूरतसिंह ने जब भटनेर पर आक्रमण किया था, जाब्ता खाँ भटनेर में उस समय राजा था। वह रेनी नामक स्थान में रहा करता था और उसके अधिकार में पच्चीस ग्राम थे। इस रेनी नगर को बीकानेर के रायसिंह ने अपनी रानी के नाम से बसाया था। इमाम मोहम्मद ने उस नगर पर अधिकार कर लिया था। जाब्ता खाँ ने लूटमार करके बहुत-सी सम्पत्ति अपने

अधिकार में कर ली थी। उसके अत्याचारों से जाट लोग बहुत भयभीत रहा करते थे। बीकाने की उत्तरी सीमा से गाड नदी तक की सम्पूर्ण भूमि बहुत उपजाऊ थी। इसलिये वहाँ पर खेर्त का काम बहुत अच्छा होता था। बहुत दिनों के बाद वहाँ की परिस्थितियाँ बिगड़ीं और उस तरफ की सम्पूर्ण भूमि जन-शून्य हो गयी। पहले वहाँ पर जो ग्राम और नगर बसे थे, वे बहुत अच्छी परिस्थितियों में थे। परन्तु वे धीरे-धीरे सब बरबाद हो गये। भटनेर से पच्चीस मील की दूरी पर दक्षिण की तरफ दन्दूसर नामक एक स्थान है। वहाँ के लोगों का कहना है कि प्रमार वंश का राजा जब यहां शासन करता था, उस समय सिकन्दर रूमी ने वहां आकर और आक्रमण करके राज्य का विध्वंस किया था।

□